

## प्रकाशकीय

भारत एव विदेशो मे अपनी साधुता, स्वदेश-भक्ति, सम्पूर्ण मानव-जाति के आध्यात्मिक उत्थान एव प्राच्य तथा पाश्चात्य के मध्य भ्रातृभाव के सार्वभौमिक सदेश के लिए सुपरिचित स्वामी विवेकानन्द को किसी भूमिका की आवश्यकता नहीं है। फिर भी भारत के हिन्दी भाषा-भाषियों को अब तक यह अवसर न मिल पाया था कि वे उनकी सम्पूर्ण कृतियों को हिन्दी भाषा मे उपलब्ध कर अध्ययन कर सकें, जो स्वच्छ एव आकर्षक ग्रथो मे सुपाठ्य एव विश्वसनीय अनुवाद के माध्यम से प्रस्तुत की गयी हो।

अद्वैत आश्रम, मायावती, अल्मोडा बहुत दिनों से इन बहुमूल्य कृतियों को हिन्दी मे प्रकाशित करने का विचार कर रहा था। इसी उद्देश्य से इस आश्रम ने स्वामी जी की कुछ महत्त्वपूर्ण पुस्तको का अनुवाद अपनी हिन्दी पत्रिका 'समन्वय' मे प्रकाशित करना शुरू किया था। यह पत्रिका अब बंद हो गयी है। आश्रम को इस कार्य मे सुप्रसिद्ध हिन्दी कवि श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' से काफी सहायता मिली थी। चूँकि समुचित आर्थिक सहायता नहीं मिल सकी थी, इसलिए कुछ समय बाद इस प्रयास को त्याग देना पडा। बाद मे रामकृष्ण आश्रम, नागपुर ने इस कार्य को पुन आरम्भ किया, लेकिन वह आश्रम भी इसे पूर्ण न कर सका।

साथ ही समयान्तर के साथ पुराने अनुवादो मे सागोपाग सशोधन-सम्पादन की आवश्यकता थी, जो प्रस्तुत ग्रथो मे उपलब्ध है। यही तक नहीं, किसी किसी स्थल पर इन अनुवादो को योग्य विद्वानो द्वारा पर्याप्त नया रूप दिया गया है, अत वर्तमान कृतियाँ केवल पुराने सस्करण की पुनरावृत्ति मात्र नहीं हैं, यद्यपि हमे इनसे काफी सहायता मिली है। इसके अतिरिक्त अब तक हिन्दी मे अप्रकाशित स्वामी जी के अनेक भाषण, लेख आदि का अनुवाद भी इसमे सयोजित किया गया है। स्वामी विवेकानन्द की जन्मशती (१९६३-६४), जो सम्पूर्ण भारत एव विदेशो मे मनायी जा रही है, के अवसर पर इन ग्रथो को हम दस खण्डो मे जनता के सम्मुख उपस्थित कर रहे हैं। आनन्द की वात है कि भारत के अन्य क्षेत्रो मे भी, जैसे बंगाल, उड़ीसा, आन्ध्र, तमिलनाड, मैसूर, केरल, महाराष्ट्र एव गुजरात मे, इन ग्रथो को प्रान्तीय भाषाओ मे प्रकाशित किया जा रहा है।

केन्द्रीय सरकार तथा उत्तर प्रदेश बिहार एवं मध्य प्रदेश सरकारों की उपायतापूर्वक सहायता से यह कष्टसाध्य एवं महँगा प्रयास सफल हो पाया इन सरकारों ने इस सभ्य की पूर्ति के लिए विभिन्न परिभाषों में वार्षिक सहायता भी पर ध्यम का अधिकार्य बर्तित आभन को ही बहन करता पका है। सरकारी सहायता के कारण ही इन र्थों का इतने सस्ते मूस्य पर कितरण सम्भव हो पाया। अतः इस वार्षिक सहायता के लिए हम सनी सरकारों के प्रति वामारी हैं।

अनुबाव के लिए हमें निम्नांकित विद्वानों का सहयोग मिका है जिनके प्रति हम वार्षिक धन्यवाव प्रकट करते हैं

पंडित मुमिबालन्वन पन्त डॉ प्रभाकर माधवे श्री कृषीस्वरताव 'रिनु' श्री भगवान् श्री मोक्षा डॉ नर्मदेस्वर प्रसाव श्री आत्माराम ढाह डॉ नित्यानन्द मिश्र डॉ मवलमोहन सहाय श्री रामचन्द्र राव श्री संमारलन पाण्डे श्री रामभन्त विवारी श्री एम एस द्विवेदी श्री ब्रजनाथ सिंह श्री ब्रजमोहन अवस्ती श्री ब्रजनन्वन सिंह इत्यादि।

डॉ एनुबन्ध श्री आत्माराम ढाह तथा अन्य विद्वानों के प्रति हम कृतज्ञ हैं जिन्होंने सम्पावतावि कार्य में हम सहायता की है।

हम पंडित मुमिबालन्वन पन्त के प्रति विशेष रूप से वामारी है जिन्होंने इस कार्य में यहूरी दिव्यवस्ती सी एवं स्वामी जी के कई पर्थों का अनुबाव किया जो वयम खण्ड में प्रकाशित हैं। 'गिराजा' की द्वारा अनुचित पप नवन खण्ड में प्रकाशित हैं। कुमारी निर्मळा बर्मा ने अनुक्रमिका तैयार करते एवं श्री श्रीराम बर्मा तथा श्री कस्तुरन सिंह ने प्रूक-संखोचन तथा अन्य प्रकार स सहयोग दिते हैं। इसके अतिरिक्त हम अनेक मित्रों के भी कृतज्ञ हैं, जिन्होंने इस कार्य में हमें विविध रूपों से सहायता की।

सम्पेसन मद्रनाकन के प्रति हम उसके निपुण कार्य एवं पूर्ण सहयोग के लिए वामारी हैं।

## विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
भूमिका	छ
स्वामी विवेकानन्द	ण
<b>व्याख्यानमाला : विश्व-धर्म-महासभा</b>	
धर्म-महासभा स्वागत का उत्तर	३
हमारे मतभेद का कारण	५
हिन्दू धर्म पर निबन्ध	७
धर्म भारत की प्रधान आवश्यकता नहीं	२२
बौद्ध धर्म हिन्दू धर्म की निष्पत्ति	२३
अंतिम अधिवेशन में भाषण	२६
<b>राजयोग</b>	
भूमिका	३१
अवतरणिका	३५
साधना के प्राथमिक सोपान	४८
प्राण	५८
प्राण का आध्यात्मिक रूप	७२
आध्यात्मिक प्राण का समय	७८
प्रत्याहार और धारणा	८३
ध्यान और समाधि	९१
सक्षेप में राजयोग	१०१
<b>पातञ्जल योगसूत्र</b>	
उपक्रमणिका	१०९
समाधिपाद	११५
साधनपाद	१५१
विभूतिपाद	१८५
कैवल्यपाद	२०३
परिशिष्ट	२१९

केन्द्रीय सरकार तथा उत्तर प्रदेश बिहार एवं मध्य प्रदेश सरकारों की उदात्तापूर्वक सहायता से यह कष्टसाध्य एवं महंगा प्रयास सफल हो पाया इन सरकारों ने इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए विभिन्न परिमाणों में आर्थिक सहायता दी पर धन्य का अधिकतम मर्यादित आश्रम को ही बहन करना पड़ा है। सरकारी सहायता के कारण ही इन प्रश्नों का इतने सस्ते मूल्य पर वितरण सम्भव हो पाया। अब इस आर्थिक सहायता के लिए हम सभी सरकारों के प्रति आभारी हैं।

अनुवाद के लिए हमें निम्नांकित विद्वानों का सहयोग मिला है जिनके प्रति हम हार्दिक धन्यवाद प्रकट करते हैं

पंडित सुमित्रानन्दन पन्त डॉ प्रभाकर माधवे श्री कबीरदास शिरो  
श्री मन्वान जी जोषा डॉ नर्मदेस्वर प्रसाद श्री आत्माराम शाह, डॉ नित्यानन्द  
मिश्र डॉ मदनमोहन सहाय श्री रामचन्द्र राव श्री धमाराल पाण्डे श्री रामचन्द्र  
तिवारी श्री एम एल द्विवेदी श्री पूषणाथ सिंह श्री ब्रजमोहन बरस्त्री  
श्री ब्रजलाल सिंह इत्यादि।

डॉ रघुचस श्री आत्माराम शाह तथा अन्य विद्वानों के प्रति हम कृतज्ञ हैं जिन्होंने सम्पादनार्थि कार्य में हमें सहायता दी है।

हम पंडित सुमित्रानन्दन पन्त के प्रति विशेष रूप से आभारी हैं जिन्होंने इस कार्य में गहरी विद्युत्स्पी सी एवं स्वामी जी के कई पत्रों का अनुवाद किया जो ब्रह्म साध में प्रकाशित हैं। 'गिरजा' जी द्वारा अनूचित पद्य मन्म साध में प्रकाशित हैं। कुमारी निर्मला वर्मा ने अनुक्रमधिका तैयार करने एवं श्री श्रीराम वर्मा तथा श्री कस्तुर सिंह ने प्रूफ-संशोधन तथा अन्य प्रकार से सहयोग दिये हैं। इसके अतिरिक्त हम अनेक मित्रों के भी कृतज्ञ हैं जिन्होंने इस कार्य में हमें विभिन्न रूपों से सहायता दी।

सम्प्रेक्षक महाराज्य के प्रति हम उसके निपुण कार्य एवं पूर्ण सहयोग के लिए आभारी हैं।



विषय	पृष्ठ
व्याख्यान प्रबंधन एवं कक्षाकाल - १	
भारत : उसका धर्म तथा समाज	
हिन्दू दार्शनिक चिन्तन के सोपान	२२९
बहुरूपीय धार्मिक भावार्थ	२४
भारतीय आध्यात्मिक चिन्ताधारा	२५४
हिन्दू धर्म	२५८
भारतीय कला	२६२
क्या भारत समसामयिक देश है ?	२६६
भारत -	२६९
भारत की जनता	२७३
हिन्दू और ईसाई	२७५
भारत में ईसाई धर्म	२८
हिन्दू और मुसलमान	२८६
स्वतंत्र विचार	२८७
भारतीय नारी	३ ६
प्राथम्य नारी	३२४
अधिकारीवाद का दाय	३२६
पत्रावली - १	३३१
अनुसूचिका	४१३

## भूमिका

### हमारे गुरु और उनका सन्देश

प्रस्तुत सस्करण मे सकलित स्वामी विवेकानन्द की कृतियों के चार खंडो मे' हमे समग्र ससार के प्रति केवल धर्म का शुभ सन्देश ही नही, बल्कि इस देश की सतति के लिए भी हिन्दू धर्म की सुन्द मिलती है। आधुनिक युग के विश्वव्यापी विघटनशील वातावरण मे हिन्दू-धर्म को आवश्यकता थी एक ऐसी चट्टान की, जहाँ वह लगर डाल सके, एक ऐसी प्रामाणिक वाणी की, जिसमे वह स्वय को पहचान सके। स्वामी विवेकानन्द के इन शब्दो और कृतियों में हिन्दू धर्म को यह चरदान उपलब्ध हो गया।

जैसा अन्यत्र कहा गया है, यहाँ इतिहास मे पहली बार स्वय हिन्दू धर्म ही एक उच्चतम कोटि की हिन्दू प्रतिभा के सामान्यीकरण का विषय बना है। युग युग तक अपने पूर्वजो के धार्मिक आदर्शो-विश्वासो को परखनेवाला हिन्दू भाई तथा बाल-बच्चो को उनकी शिक्षा देनेवाली हिन्दू माता आश्वासन और प्रकाश के लिए इन पुस्तको के पृष्ठ पलटेगी। भारत मे अंग्रेजी के लुप्त हो जाने के बाद भी बहुत दिन तक, उम भाषा के माध्यम से विश्व को प्राप्त हुई यह देन अक्षुण्ण रहेगी और पूर्व तथा पश्चिम को समान रूप से सुफल प्रदान करती रहेगी। हिन्दू धर्म को आवश्यकता थी अपने ही भावादशो को सुव्यवस्थित और सुगठित करने की और ससार को ज़रूरत थी सत्य से भयभीत न होनेवाले एक धर्म की। ये दोनो ही यहाँ उपलब्ध हैं। सकट के क्षणो मे जातीय चेतना को एकत्र करने और वाणी प्रदान करनेवाले व्यक्ति के इस आविर्भाव से बढकर सनातन धर्म की अनन्त प्राणशक्ति का, और इस सत्य का कोई दूसरा महत्तर प्रमाण नही दिया जा सकता था कि भारत आज भी उतना ही महान् है, जितना कि वह अतीत मे सदा रहा है।

सम्भवत इस बात का पूर्व-ज्ञान रहा हो कि (भारत अपनी आवश्यकता के प्रति सतुष्ट केवल तभी होगा, जब वह इस जीवनदायी सदेश को अपनी सीमाओ के बाहर की मानव-जाति तक पहुँचाये) ऐसा प्रथम बार केवल



स्वामी विवेकानन्द



ज्ञान में ऐसा बहुत कम है, यूरोप के अतीत से उत्तराधिकार में प्राप्त ऐसा बहुत कम है, जिसकी कोई न कोई चौकी शिकागो की नगरी में न विद्यमान हो। और जहाँ हममें से कुछ को इस केन्द्र का जनसकुल जीवन और अधीर उत्सुकता अभी निरी विश्रुखल ही क्यों न प्रतीत हो, फिर भी इसमें कोई सदेह नहीं कि वे मानवीय एकता के किसी महान् किन्तु धीरसचारी आदर्श को उस समय व्यक्त करने की चेष्टा कर रहे हैं, जब उनकी परिपक्वता के दिन पूर्ण हो जायेंगे।

ऐसी मनोवैज्ञानिक भूमि थी, ऐसा मानस-सागर था—तरुण, तुमुल तथा अपनी शक्ति और आत्मविश्वास से उफनाता, फिर भी जिज्ञासु और जागरूक—जो भाषण आरम्भ करते समय विवेकानन्द के सम्मुख था। इसके ठीक विपरीत, उनके पीछे युग युग के आध्यात्मिक विकास का प्रशान्त सागर था। उनके पीछे एक ससार था, जो अपनी काल-गणना वेदों से करता है और अपनी याद उपनिषदों में करता है—एक ससार, जिसकी तुलना में बौद्ध धर्म प्रायः आधुनिक है, एक ससार—मत-मतान्तरों की धार्मिक व्यवस्थाओं से पूर्ण, उष्ण कटिबन्ध की सूर्य-रश्मियों से स्नात शान्त देश, जिसकी सड़कों की रज पर युग-युगान्तर से सत्तों के चरण-चिह्न अंकित होते रहे थे। सक्षेप में, उनके पीछे था वह भारत—सहस्रों वर्षों के अपने राष्ट्रीय विकास के साथ—जिनमें उसने अपने देश और काल के महान् विस्तार के एक छोर से दूसरे छोर तक अपने समस्त देशवासियों द्वारा सामान्य रूप से मान्यताप्राप्त कुछ मौलिक और सारभूत सत्यों का पता लगाया है, अनेक बातें सिद्ध की हैं, और केवल एक पूर्ण मतैक्य को छोड़कर, लगभग सबको उपलब्ध किया है।

तो यही थे वे दो मानस-प्लावन, प्राच्य और अधुनातन चिन्तन के मानों दो प्रबल महानद। धर्म-महासभा के रगमच पर विद्यमान गैरिक वसनमण्डित यह परिव्राजक एक क्षण के निमित्त इन दोनों प्लावनों का सगम-विन्दु बन गया। हिन्दू धर्म के सामान्य आधारों का सूत्रीकरण इस परम नैर्व्यक्तिक व्यक्तित्व से उन प्लावनों के सम्पर्क के आघात का अपरिहार्य परिणाम था। स्वामी विवेकानन्द के अधरो से जो शब्द उच्चरित हुए, वे स्वयं उनके अनुभवजनित नहीं थे। न उन्होंने अपने गुरुदेव की कथा सुनाने के निमित्त ही इस अवसर का उपयोग किया। इन दोनों के स्थान पर, भारत की धार्मिक चेतना—सम्पूर्ण अतीत द्वारा निर्धारित उनके समग्र देशवासियों का सदेश ही उनके माध्यम से मुखर हुआ था। और जब वे पश्चिम के यौवन और मध्याह्न में बोल रहे थे, तब प्रशात के दूसरी ओर, तमसाच्छन्न गोलार्ध की छायाओं में प्रसुप्त एक राष्ट्र अपनी ओर गतिमान अरुणोदय के पखों पर आनेवाली और उसके प्रति स्वयं उसके ही महत्त्व और शक्ति का

इसी बखतर पर पठित नहीं हुआ। एक बार पहले भी एक राष्ट्र-निर्मायक धर्म का सन्देश ब्रह्म वेदों को भेजकर समूचे भारत ने अपने चिन्तन की परिमा समझी थी—एक ऐसा एकात्मिकरूप जिससे स्वयं आधुनिक हिन्दू धर्म का जन्म हुआ है। हमें यह कमी न भुझा बना चाहिए कि इसी भारत की भूमि पर सर्वप्रथम धर्मों को अपने पुरु का यह आदेश श्रुतिगोचर हुआ था 'तुम सारे संसार में जाओ और जगत् के कोने कोने में प्राणिमात्र को धर्म का उपदेश करो।' यह वही विचार और प्रेम का वही आदेश है जो एक नया रूप धारण करके स्वामी विवेकानन्द के श्रीमुख से उस समय निवृत्त हुआ जब पश्चिम में एक महती समा में उन्होंने कहा 'बहि एक धर्म सत्त्वा है तब निश्चय ही अस्य सनी धर्म सत्त्वे है। अतएव हिन्दू धर्म उचना ही आपका है जितना मेरा। और इसी भाव का विद्यार करते हुए वे फिर कहते हैं "हम हिन्दू केवल सहिष्णु ही नहीं हैं हम अस्य धर्मों के साथ—मुसलमानों की मस्जिद में नमाज पढ़कर, पाउसियों की अग्नि की उपासना करके तथा ईसाइयों के क्रूस के सम्मुख नतमस्तक होकर उनसे एकत्प हो जाते हैं। हम जानते हैं कि निम्नतम जड़-पूजावाद से लेकर उच्चतम निर्मुप आईतबार तक सारे धर्म समाज रूप से असीम की सत्रसने और उसका साक्षात्कार करने के निमित्त मानवीय आत्मा के विविध प्रयास हैं। अतः हम इन सभी धर्मों को संश्लिष्ट करते हैं और उन सबको प्रमसूत्र में बाँधकर आराधना के निमित्त एक अद्भुत स्तवक निर्माण करते हैं। इन वक्ता के हृदय के लिए कोई भी विवेकी या विजातीय नहीं था। इनके लिए केवल मानव-जाति और सर्व का ही अस्तित्वा था।

विश्व-धर्म-महासभा के सम्मुख स्वामी जी के अविनाशक के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि जब उन्होंने अपना भावना आरम्भ किया तो विश्व या 'हिन्दुओं के धार्मिक विचार' किन्तु जब उन्होंने अत किया तब तक हिन्दू धर्म की सृष्टि हो चुकी थी। इस सम्भावना के लिए समय भी परिपक्व हो चुका था। उनके सम्मुख उपस्थित विद्वान् श्रोता-समूह पाश्चात्य विचारधारा का ही प्रतिनिधि था लेकिन इसमें जो परमोत्कृष्ट विधिष्ठता है उस सबका कुछ विकास भी श्रोताओं में विद्यमान था। अमेरिका को और विशेष रूप से सिकागो को जहाँ यह सम्मेलन हुआ यूरोप के प्रत्येक राष्ट्र ने अपने मानवीय योगदान से भाग्यशक्ति किया है। आधुनिक उद्योग और सभ्य के बहुत कुछ उत्कृष्ट और उनमें से कुछ निकृष्ट भाव पश्चिम की इस नगरों की रानी की सीमाओं के भीतर मिलते हैं जिसके परदास—जब वह अपनी आँखों में उत्तर का प्रकाश भरकर बैठती और चिन्तामग्न होती है—मिथिलन बीच के तट पर है। आधुनिक

मचित कोप ।" प्रसगवश वे सनातन धर्म के सम्बन्ध में अपने विचार को भी प्रकट करते हैं। 'विज्ञान की नूतनतम खोजे जिसकी प्रतिध्वनि जैसी लगती हैं, उस वेदान्त दर्शन के उच्च आध्यात्मिक स्तरों से लेकर, विविधतामय पौराणिक-तायुक्त मूर्ति-पूजा के निम्नतम विचार, बौद्धों के अज्ञेयवाद और जैनो के निरीश्वरवाद तक प्रत्येक और सबका स्थान हिन्दू धर्म में है।' उनकी दृष्टि में भारतवासियों का कोई भी मत, संप्रदाय अथवा कोई भी सच्ची धर्मानुभूति—वह किसीको कितनी ही घुमिल क्यों न प्रतीत हो—ऐसी नहीं है, जिसे हिन्दू धर्म की बाहुओं में औचित्यपूर्वक बहिष्कृत किया जा सके। और उनके अनुसार इस भारतीय धर्म-माता का विशिष्ट सिद्धान्त है इष्ट देवता—हर आत्मा को अपने मार्ग को चुनने तथा ईश्वर को अपने ढंग से खोजने का अधिकार। अतः इस प्रकार से परिभाषित हिन्दू धर्म के बराबर विराट् साम्राज्य की पताका का वहन कोई अन्य वाहिनी नहीं करती, क्योंकि जिस प्रकार ईश्वर की प्राप्ति इसका आध्यात्मिक लक्ष्य है, उसी प्रकार इसका आध्यात्मिक नियम है, प्रत्येक आत्मा की स्वस्वरूप में प्रतिष्ठित होने की पूर्ण स्वतंत्रता।

किन्तु सबों का यह समावेश, प्रत्येक की यह स्वतंत्रता हिन्दू धर्म की ऐसी गरिमा न बन पाती, यदि उसका परम आह्वान और उसकी मधुरतम प्रतिज्ञा यह न होती 'हे अमृतपुत्रो ! सुनो ! उच्चतर लोको में रहनेवालो, तुम भी सुनो मैंने उम पुराण पुरुष को पा लिया है, जो समस्त अधिकार, समस्त भ्राति के परे है। और तुम भी उसको जानकर मृत्यु से मुक्ति प्राप्त कर सकोगे।' यही है वह शब्द, जिसके निमित्त शेष सबका अस्तित्व है और रहा है। इसीमें वह चरम अनुभूति है, जिसमें अन्य सबका तिरोभाव हो जाता है। जब 'हमारा प्रस्तुत कार्य'<sup>१</sup> नामक अपने व्याख्यान में स्वामी जी सबको यह शपथ दिलाते हैं कि वे उनकी सहायता एक ऐसे मंदिर का निर्माण करने में करें, जहाँ देश का प्रत्येक उपासक उपासना कर सके, एक ऐसा, जिसके गर्भगृह में केवल ॐ शब्द मात्र होगा, तो हममें से कुछ को उनके इस वचन में एक इससे भी महान् मंदिर की झलक मिलती है—स्वयं भारत की, मातृभूमि की, जैसी कि वह है—और हम केवल भारतीय धर्मों के ही

१ शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आ ये धामानि दिव्यानि तस्यु ।

वेवाहमेत पुरुष महान्त आदित्यवर्णं तमसं परस्तात् ।

तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेति नान्यं पन्था विद्यतेऽयनाय ॥

—श्वेताश्वतरोपनिषद् ॥२।५, ३।८॥

२ ब्र० विवेकानन्द साहित्य, पचम खण्ड, पृ० १६३ ।

रहस्य उद्घाटित करनेवासी मात्री को प्रतीक्षा अपनी आत्मा में कर रहा था। उसी धर्म-महासमा के मंच पर स्वामी विवेकानन्द के अतिरिक्त विशिष्ट महा और संभो के धर्मदूत भी उपस्थित थे। किन्तु एक ऐसे धर्म का प्रचार करने का गौरव उन्हींको था जिस तक पहुँचने के लिए इनमें से प्रथम उन्हींके धर्मों में विविध अवस्थाओं और परिस्थितियों के द्वारा उनी एक क्षण तक पहुँचने के निमित्त 'विभिन्न स्त्री-पुरुषों की माता प्रयति माता है। और जैसा कि उन्हींके बोधित किया वे वहाँ एक ऐसे महापुरुष का परिचय देने के लिए खड़े हुए थे जिसने इन सभी मह-मतान्तरों के विषय में कहा है कि ऐसा नहीं है कि इनमें से कोई एक या दूसरा इस या उस पक्ष में इस या उस कारण सत्य या असत्य है बरन् मयि सर्वमिदं प्रोक्तं सुखे मन्विष्या इव — यह सब मूत्र में मातियों की माँति मुसर्म ही पुष्ट हुए हैं। 'जहाँ मानव-जाति को पवित्र और उसका उन्नयन करती असामान्य पवित्रता असामान्य शक्ति तेरे दक्षिण में आये तू 'जान कि मैं वहाँ हूँ।' विवेकानन्द का कहना है कि एक हिन्दू की दृष्टि में मनुष्य धर्म से सत्य की ओर नहीं जाता बरन् सत्य से सत्य की ओर अपसर होता है निम्नतर सत्य से उच्चतर सत्य की ओर जाता है। यह तथा मुक्ति का यह सिद्धान्त कि मनुष्य को ईश्वर का साम्राज्य करके ईश्वर होता है' यह सत्य कि धर्म केवल तभी हममें पूर्णता को प्राप्त करता है जब वह हमें उस तक ले जाता है जो मृत्यु के संचार में एकमात्र जीवन है, उस तक जो नित्य परिवर्तनशील जगत् का शिरस्तन आधार है उस एक तक ले जाता है जो केवल आत्मा ही है अथ सभी आत्मार्थ जिसकी भाव अभि व्यक्तियाँ मात्र हैं—ये ही महान् विशिष्ट सत्यों के रूप में मान्य हो सकते हैं। भारत ने मानव-वृत्तिहास की शीर्षतम और अद्विष्टतम अनुभूति के द्वारा प्रमाणीकृत इन दोनों सत्यों को उनके माध्यम से पवित्र के आधुनिक जगत् में बोधित किया।

स्वयं भारत के लिए, जैसा पहले ही कहा जा चुका है यह सन्निवृत्त अभिभावक मताधिकार को एक छोटी सी सनद थी। बसता ने हिन्दू धर्म को सर्वांगतया बेदों पर आधारित किया है किन्तु वेद सम्बन्धी हमारी धारणा का ये इस सम्बन्ध के उच्चारण मात्र से ही आध्यात्मिकरण कर बैठे हैं। उनके निकट जो कुछ सत्य है, वह सब वेद है। वे कहते हैं 'वेदों का अर्थ कोई धर्म नहीं है। वेदों का अर्थ है, विविध समयों पर विभिन्न व्यक्तियों द्वारा आविष्कृत आध्यात्मिक नियमों का

१ पीता ॥५७॥

२ मधुसूतिसम्बन्ध धीमदुक्तिमेव वा।

तत्तदेवाक्यं त्वं मम सर्वोऽप्यर्थभवम् ॥पीता ॥१ ॥४१॥

लक्ष्य है। यह एक और भी महान् तथा अधिक सरल, इस सिद्धान्त का अंग है कि अनेक और एक, विभिन्न समयों पर विभिन्न वृत्तियों में मन के द्वारा देखे जानेवाला एक ही तत्त्व है, अथवा जैसा श्री रामकृष्ण ने उसी सत्य को इस प्रकार व्यक्त किया है, "ईश्वर साकार और निराकार, दोनों ही हैं। ईश्वर वह भी है, जिसमें साकार और निराकार, दोनों ही समाविष्ट हैं।" यही—वह वस्तु है, जो हमारे गुरुदेव के जीवन को सर्वोच्च महत्त्व प्रदान करती है, क्योंकि यहाँ वे पूर्व और पश्चिम के ही नहीं, भूत और भविष्य के भी सगम-विन्दु बन जाते हैं। यदि एक और अनेक सचमुच एक ही सत्य हैं, तो केवल उपासना के ही विविध प्रकार नहीं, वरन् सामान्य रूप से कर्म के भी सभी प्रकार, सघर्ष के सभी प्रकार, सर्जन के सभी प्रकार भी, सत्य-साक्षात्कार के मार्ग हैं। अतः लौकिक और धार्मिक में अब आगे कोई भेद नहीं रह जाता। कर्म करना ही उपासना करना है। विजय प्राप्त करना ही त्याग करना है। स्वयं जीवन ही धर्म है। प्राप्त करना और अपने अधिकार में रखना उतना ही कठोर न्यास है, जितना कि त्याग करना और विमुख होना।

स्वामी विवेकानन्द की यही अनुभूति है, जिसने उन्हें उस कर्म का महान् उपदेष्टा सिद्ध किया, जो ज्ञान-भक्ति से अलग नहीं, वरन् उन्हें अभिव्यक्त करने-वाला है। उनके लिए कारखाना, अध्ययन-कक्ष, खेत और क्रीडाभूमि आदि भगवान् के साक्षात्कार के वैसे ही उत्तम और योग्य स्थान हैं, जैसे साधु की कुटी या मन्दिर का द्वार। उनके लिए मानव की सेवा और ईश्वर की पूजा, पौरुष तथा श्रद्धा, सच्चे नैतिक बल और आध्यात्मिकता में कोई अन्तर नहीं है। एक दृष्टि से उनकी सम्पूर्ण वाणी को इसी केन्द्रीय दृढ आस्था के भाष्य के रूप में पढा जा सकता है। एक बार उन्होंने कहा था, "कला, विज्ञान एवं धर्म एक ही सत्य की अभिव्यक्ति के त्रिविध माध्यम हैं। लेकिन इसे समझने के लिए निश्चय ही हमें अद्वैत का सिद्धान्त चाहिए।"

उनके दर्शन का निर्माण करनेवाले रचनात्मक प्रभाव को शायद त्रिगुणात्मक माना जा सकता है। पहले तो सस्कृत और अंग्रेज़ी में उनकी शिक्षा थी। इस प्रकार दो जगत् उनके सम्मुख उद्घाटित हुए एवं उनके वैषम्य ने उन पर एक ऐसी विशिष्ट अनुभूति का बलिष्ठ प्रभाव डाला, जो भारत के धर्म-ग्रन्थों की विषय-वस्तु है। यदि यह सत्य हो, तो यह स्पष्ट है कि वह, जैसे कुछ अन्य लोगों को प्राप्त हो गया, उस प्रकार भारतीय ऋषियों को सयोगवश अप्रत्याशित रूप से नहीं प्राप्त हो गया। वरन् वह एक विज्ञान की विषय-वस्तु था, एक ऐसे तार्किक विश्लेषण का विषय था, जो सत्य की खोज में बड़े से बड़े बलिदान से पीछे हटनेवाला नहीं था।

नहीं बरन् समग्र मानव-जाति के विभिन्न भागों को वहाँ कन्द्रित हाते देखत है उस पुनीत स्वक के चरणों में जहाँ वह प्रतीक प्रतिष्ठित है जो प्रतीक है ही नहीं जहाँ वह नाम है, जो ध्वनि मात्र के अतीत है। सभी उपासनाओं के समस्त मार्ग और सभी बर्म इसी ओर पहुँचते हैं इससे भिन्न विद्या न म्ही। भारत अपनी इस बोधमा में विश्व के परम विमुक्ततावादी धर्मों के साथ है कि प्रयति दुस्य स बहुस्य की मार, अमक स एक की ओर, निम्न स उच्च की ओर, साकार से निराकार की ओर होती है किन्तु विपरीत विद्या में कदापि नहीं। भारत के साथ अंतर कबल इतना है कि वह हर सच्ची अवस्था को—वह जो भी हो और वहाँ भी हो—उस महान् आरोहण का एक सोपान मानकर उसको सहानुभूति और आश्वासन प्रदान करता है।

यदि हिन्दू धर्म के दूत के रूप में उनका कुछ अपना होता तो स्वामी विवेकानन्द जो कुछ से उससे कम महान् सिद्ध हुए होते। पीठा के इन्ध की भाँति बुद्ध की भाँति सफ़रतुर्षा की भाँति भारतीय चिन्तन के अल्प प्रत्यक्ष महान् विचारक की भाँति उनके वाक्य भी बेधों और उपनिषद् के उद्धरणों से परिपूर्ण हैं। भारत के पास जो अपनी ही निधियाँ सुरक्षित हैं भारत के ही प्रति उनके मान उद्घाटक और भाष्यकार के रूप में ही स्वामी जी का महत्त्व है। यदि वे कभी जन्म ही न लेते तो भी जिन सत्ता का उपरोध उन्होंने किया न बीच सरय बने रहते। यही नहीं वे सत्त्व अपने ही प्रामाणिक भी बने रहते। अंतर केवल होता उनकी प्राप्ति की कठिनाई में उनकी अभिव्यक्ति में आधुनिक स्पष्टता और तीक्ष्णता के अभाव में और उनके पारस्परिक सामयस्य एवं एकता की हानि में। यदि वे न होते तो आज सहस्रा कोषों की जीवनदायी सदैव प्रदान करनेवाले वे ग्रन्थ पठितों के विचार के विषय ही बने रह जाते। उन्होंने एक पत्रित की भाँति म्ही एक अधिकारी व्यक्ति की भाँति उपरोध दिया। क्योंकि जिस सत्यानुभूति का उपरोध उन्होंने किया उसकी यह उद्घाटन में वे स्वय ही गोता कमा चुके थे और रामानुज की भाँति उसक रहस्यों को बाह्य जाति-बहिष्कृत और विरोधियों को अतृप्ताने के निमित्त ही वे वहाँ से लौटे थे।

किन्तु फिर भी यह कवन कि उनके उपरोधों में कुछ नवीनता नहीं है पूर्वत सत्य नहीं है। यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि वे स्वामी विवेकानन्द ही वे जिन्होंने अद्वैत दर्शन के सेव्यत्व की बोधमा करत हुए कहा था कि इस अद्वैत में यह अनुभूति समाविष्ट है जिसमें सब एक हैं जो एकमेवादितीय है पर साथ साथ उन्होंने हिन्दू धर्म में यह सिद्धास्त भी संयोजित किया कि द्वैत विधिष्ठाद्वैत और अद्वैत एक ही विकास के तीन सोपान या स्तर हैं जिनमें अंतिम अद्वैत ही

## स्वामी विवेकानन्द

कभी कभी समय की दीर्घ अवधि के बाद एक ऐसा मनुष्य हमारे इस ग्रह में आ पहुँचता है, जो असदिग्ध रूप से दूसरे किसी मंडल से आया हुआ एक पर्यटक होता है, जो उस अति दूरवर्ती क्षेत्र की, जहाँ से वह आया हुआ है, महिमा, शक्ति और दीप्ति का कुछ अंश इस दुःखपूर्ण ससार में लाता है। वह मनुष्यों के बीच विचरता है, लेकिन वह इस मर्त्यभूमि का नहीं है। वह है एक तीर्थयात्री, एक अजनबी—वह केवल एक रात के लिए ही यहाँ ठहरता है।

वह अपने चारों ओर के मनुष्यों के जीवन से अपने को सम्बद्ध पाता है, उनके हर्ष-विषाद का साथी बनता है, उनके साथ सुखी होता है, उनके साथ दुःखी भी होता है, लेकिन इन सबों के बीच, वह यह कभी नहीं भूलता कि वह कौन है, कहाँ से आया है और उसके यहाँ आने का क्या उद्देश्य है। वह कभी अपने दिव्यत्व को नहीं भूलता। वह सदैव याद रखता है कि वह महान्, तेजस्वी एव महामहिमान्वित आत्मा है। वह जानता है कि वह उस वर्णनातीत स्वर्गीय क्षेत्र से आया हुआ है, जहाँ सूर्य अथवा चन्द्र की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वह क्षेत्र आलोको के आलोक से आलोकित है। वह जानता है कि जब 'ईश्वर की सभी सताने एक साथ आनन्द के लिए गान कर रही थीं', उस समय से बहुत पूर्व ही उसका अस्तित्व था।

ऐसे एक मनुष्य को मैंने देखा, उसकी वाणी सुनी और उसके प्रति अपनी श्रद्धा अर्पित की। उसीके चरणों में मैंने अपनी आत्मा की अनुरक्ति निवेदित की।

इस प्रकार का मनुष्य सभी तुलना के परे है, क्योंकि वह समस्त साधारण मापदण्डों और आदर्शों के अतीत है। अन्य लोग तेजस्वी हो सकते हैं, लेकिन उसका मन प्रकाशमय है, क्योंकि वह समस्त ज्ञान के स्रोत के साथ अपना सयोग स्थापित करने में समर्थ है। साधारण मनुष्यों की भाँति वह ज्ञानार्जन की मथर प्रक्रियाओं द्वारा सीमित नहीं है। अन्य लोग शायद महान् हो सकते हैं, लेकिन यह महत्त्व उनके अपने वर्ग के दूसरे लोगों की तुलना में ही सम्भव है। अन्य मनुष्य अपने साथियों की तुलना में साधु, तेजस्वी, प्रतिभावान हो सकते हैं। पर यह सब केवल तुलना की बात है। एक सन्त साधारण मनुष्य से अधिक पवित्र, अधिक पुण्यवान, अधिक एकनिष्ठ है। किन्तु स्वामी विवेकानन्द के सम्बन्ध में

अपने कुछ भी रामकृष्ण परमहंस में जो दक्षिणेश्वर के उद्यान-मन्दिर में रखते और उपरोक्त करते थे स्वामी विवेकानन्द—उन दिनों के 'नरेम'—को प्राचीन धर्मग्रन्थों का वह सरथापन प्राप्त हुआ जिसकी माँग उभरता हुआ और बुद्धि करती रही थी। यहाँ वह सत्य उपलब्ध था जिसका टूटा-फूटा वर्धन ही प्रथम कर पाते हैं। यहाँ एक ऐसा व्यक्ति था जिसके लिए समाधि ही ज्ञान प्राप्त करने का सतत साधन थी। हर बटे भित्त अन्तक से एक की ओर बोलायमान था। हर क्षण प्रतिबन्धन भूमिका से संगृहीत ज्ञान की बाणी से ज्वलित होता था। उनके लक्षिकट हर व्यक्ति को ईश्वर दर्शन की शक्ति मिल जाती थी और शिष्य में भी परम ज्ञान की अभीप्सा 'ज्वर बढ़ने के सबूत' जग उठती थी। किन्तु तथापि वे सम्पूर्ण अज्ञात रूप से ही धर्मग्रन्थों की जीवन्त प्रतिमूर्ति थे क्योंकि उन्होंने उनमें से किसीका कभी अध्ययन ही नहीं किया था। अपने बुद्धदेव रामकृष्ण परमहंस में विवेकानन्द को जीवन की कुञ्जी मिल गयी थी।

किन्तु फिर भी अपने जीवन-कार्य के निमित्त उनकी तैयारी पूरी नहीं हो पायी थी। उनके बुद्धदेव का जीवन एक व्यक्तित्व जिस विराट् परिपूर्णता का अल्पकालिक एवं प्रखर प्रतीक था उसकी परिष्कारिता को आत्मसात करने के लिए कल्याणकुमारी से हिमाचल तक समग्र भारत का भ्रमण करना सर्वत्र साध-सत विद्वाना और जन-साधारण से सम भाव से मिलना सबसे सिद्धा प्रह्व करमा और सबको सिद्धा देना सबके साथ जीवन बिताना और भारत के अतीत एवं वर्तमान का समर्थ परिचय प्राप्त करना अनिवार्य था।

इस प्रकार विवेकानन्द की कृतियाँ का समीक्षा साधन गुरु तथा मातृभूमि—इन तीन स्वर-सहचरियों से निर्मित हुआ है। उनके पास देने योग्य नहीं थिये हैं। इन्होंने उनको वे उपकरण मिल जिनसे विद्वत्-विचार को दूर करनेवाले आध्यात्मिक बरदान की विरासतकरणी इन्होंने प्रस्तुत की। १९ सितंबर, १८९३ ई. से ८ जुलाई, १९०२ ई. तक कार्य की अस्यासिध में भारत में अपनी तथा विश्व की सन्नि कथ प्रवर्धन के लिए उनका हाथा ग जा हीन प्रशिक्षण एवं प्रतिष्ठित कराया उनका भीतर व ही हीन हीनगिमाएँ प्रशिक्षण हैं। हममें से कुछ एने साथ भी हैं जो इसी प्रकार और अपने पीछे छोड़ी गयी उनकी कृतियाँ के लिए उनकी प्रथम दनशरी पुष्पनूति का तथा जिन अनुस्य वास्तविकता में उन्हें विश्व में भिजा उनको पन्थ बढ़ने हैं और विचारण करण हैं कि उनका महान् महान की व्यापकता एवं लार्थलता का धर्म जानने के रूप नहीं तक अनमर्थ रहें हैं।



व्याख्यानमाला  
विश्व-धर्म-महासभा

कहीं तुलना नहीं हो सकती। वे स्वयं ही अलग बर्म क है। व एक दूसरे स्तर क हैं व कि इस सामारिक स्तर क। व एक भास्वर मत्ता है वा एक मुनिदिष्ट प्रयोजन क लिए दूसरे एक उच्चतर मडल व इस मर्त्यभूमि पर अवतरित हुए हैं। कोई सापर जान समता वा कि व मर्त्य पर बीपे काल तक नहीं टहरेगे।

इसमें क्या आश्चर्य है कि प्रकृति स्वयं ऐम मनुष्य क जन्म पर आनन्द मनाती है स्वर्ग क द्वार खुल जाते हैं और सबकुल कीर्ति-मान करते हैं ?

धर्म है वह देस जिसन उनका जन्म दिया है धर्म है व मनुष्य वा उस समय इस पृथ्वी पर जीवित व और धर्म है व कुछ ताम—धर्म धर्म धर्म—जिह उनके पापपत्रों में बैठन का मौभाग्य मिला वा।

—भयिनी किरिचन





## धर्म-महासभा : स्वागत का उत्तर

(विश्व-धर्म-महासभा, शिकागो, ११ सितम्बर, १८९३ ई०)

अमेरिकावासी बहनो तथा भाइयो,

आपने जिस सौहार्द और स्नेह के साथ हम लोगो का स्वागत किया है, उसके प्रति आभार प्रकट करने के निमित्त खडे होते समय मेरा हृदय अवर्णनीय हर्ष से पूर्ण हो रहा है। ससार मे सत्यासियो की सबसे प्राचीन परम्परा की ओर से मैं आपको धन्यवाद देता हूँ, धर्मों की माता की ओर से धन्यवाद देता हूँ, और सभी सम्प्रदायो एव मतो के कोटि कोटि हिन्दुओ की ओर से भी धन्यवाद देता हूँ।

मैं इस मंच पर से बोलनेवाले उन कतिपय वक्ताओ के प्रति भी धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ, जिन्होंने प्राची के प्रतिनिधियो का उल्लेख करते समय आपको यह बतलाया है कि सुदूर देशो के ये लोग सहिष्णुता का भाव विविध देशो मे प्रसारित करने के गौरव का दावा कर सकते हैं। मैं एक ऐसे धर्म का अनुयायी होने मे गर्व का अनुभव करता हूँ, जिसने ससार को सहिष्णुता तथा सार्वभौम स्वीकृति, दोनो की ही शिक्षा दी है। हम लोग सब धर्मों के प्रति केवल सहिष्णुता मे ही विश्वास नहीं करते, वरन् समस्त धर्मों को सच्चा मानकर स्वीकार करते हैं। मुझे एक ऐसे देश का व्यक्ति होने का अभिमान है, जिसने इस पृथ्वी के ममस्त धर्मों और देशो के उत्पीडितो और शरणार्थियो को आश्रय दिया है। मुझे आपको यह बतलाते हुए गर्व होता है कि हमने अपने वक्ष मे यहूदियो के विशुद्धतम अवशिष्ट अश को स्थान दिया था, जिन्होंने दक्षिण भारत आकर उसी वर्ष शरण ली थी, जिस वर्ष उनका पवित्र मंदिर रोमन जाति के अत्याचार से धूल मे मिला दिया गया था। ऐसे धर्म का अनुयायी होने मे मैं गर्व का अनुभव करता हूँ, जिसने महान् जेरथुप्ट्र जाति के अवशिष्ट अश को शरण दी और जिसका पालन वह अब तक कर रहा है। भाइयो, मैं आप लोगो को एक स्तोत्र की कुछ पक्तियाँ सुनाता हूँ, जिसकी आवृत्ति मैं अपने वचन से करता रहा हूँ और जिसकी आवृत्ति प्रतिदिन लाखो मनुष्य किया करते हैं

रचीना वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषाम् ।

नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥

—'जैसे विभिन्न नदियाँ भिन्न भिन्न स्रोतों से निकलकर समुद्र में मिल जाती हैं उसी प्रकार हे प्रभो ! भिन्न भिन्न वृत्ति के अनुसार विभिन्न टेढ़े-भड़े बबबा चीपे रास्ते से जानबाले सोय अन्त में तुझमें ही आकर मिल जाते हैं।'<sup>१</sup>

यह समा जा अभी तक आपोजित सर्वश्रेष्ठ पवित्र सम्मेलनों में से एक है स्वतः ही गीता के इस बहुमूल उपदेश का प्रतिपादन एव जगत् के प्रति उसकी बापमा है :

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तास्तर्ह्येव भवाम्यहम् ।

मम चत्पन्निवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वथा ॥

—'जो कोई मेरी ओर आता है—पाहे किसी प्रकार से हो—मैं उसको प्राप्त होता हूँ। सोय भिन्न भिन्न मार्ग द्वारा प्रयत्न करते हुए अंत में मेरी ही ओर आते हैं।'<sup>२</sup>

साम्प्रदायिकता हठधर्मिता और जनकी बीमत्स बंधनर बर्मान्धता इस सुन्दर पृष्ठी पर बहुत समय तक राज्य कर चुकी है। ये पृष्ठी को हिंसा से भरती रही है, उसको बारम्बार मानकटा के रक्त से नहसाती रही है सम्मताओं को विभ्रस्त करती और पूरे पूरे बेसा को निराशा के गर्त में डालती रही है। यदि ये बीमत्स बालबी न होतीं तो मानक-समाज आज की अवस्था से कहीं अधिक उन्नत हो गया होता। पर अब उनका समय आ गया है और मैं आंतरिक रूप से आशा करता हूँ कि आज सुबह इस समा के सम्मान में जो घंटा-ध्वनि हुई है वह समस्त बर्मान्धता का लम्बार या सेखनी के द्वारा होनेवाले सभी उल्टीड़नों का तथा एक ही मध्य की ओर अपसर होनेवाले मानकों की पारस्परिक कटुताओं का मूल-मिनाह मिड हो।

१ द्विवेकानन्दस्तोत्रम् ॥२०॥

२ गीता ॥१०।११॥

## हमारे मतभेद का कारण<sup>१</sup>

(१५ सितम्बर, १८९३ ई०)

मैं आप लोगो को एक छोटी सी कहानी सुनाता हूँ। अभी जिन वाग्मी वक्ता महोदय ने व्याख्यान समाप्त किया है, उनके इस वचन को आप लोगो ने सुना है कि 'आओ, हम लोग एक दूसरे को बुरा कहना बंद कर दें', और उन्हें इस बात का बड़ा खेद है कि लोगो में सदा इतना मतभेद क्यों रहता है।

परन्तु मैं समझता हूँ कि जो कहानी मैं सुनानेवाला हूँ, उससे आप लोगो को इस मतभेद का कारण स्पष्ट हो जायगा। एक कुँए में बहुत समय से एक मेढक रहता था। वह वही पैदा हुआ था और वही उसका पालन-पोषण हुआ, पर फिर भी वह मेढक छोटा ही था। हाँ, आज के क्रमविकासवादी (evolutionists) उस समय वहाँ नहीं थे, जो हमें यह बतला सकते कि उस मेढक की आँखें थी अथवा नहीं, पर यहाँ कहानी के लिए यह मान लेना चाहिए कि उसकी आँखें थी, और वह प्रतिदिन ऐसे पुरुषार्थ के साथ जल को सारे कीड़ों और कीटाणुओं से रहित पूर्ण स्वच्छ कर देता था कि उतना पुरुषार्थ हमारे आधुनिक कीटाणुवादियों<sup>२</sup> (bacteriologists) को यशस्वी बना दें। इस प्रकार धीरे धीरे यह मेढक उसी कुँए में रहते रहते मोटा और चिकना हो गया। अब एक दिन एक दूसरा मेढक, जो समुद्र में रहता था, वहाँ आया और कुँए में गिर पड़ा।

“तुम कहाँ से आये हो?”

“मैं समुद्र से आया हूँ।”

“समुद्र! भला, कितना बड़ा है वह? क्या वह भी इतना ही बड़ा है, जितना

---

१ १५ सितम्बर, शुक्रवार के अपराह्न में धर्म-महासभा के पंचम दिवस के अधिवेशन के समय भिन्न भिन्न धर्मावलम्बी अपने अपने धर्म की प्रधानता का प्रतिपादन करने के लिए वितण्डावाद में जुट गये थे। अन्त में स्वामी विवेकानन्द ने यह कहानी सुनाकर सबको शांत कर दिया। स०

२. सब बीमारियाँ कीड़ों से उत्पन्न होती हैं, अतएव कीड़ों को नष्ट करना चाहिए—यह इन लोगो का मत है। स०

मेरा यह कुर्बा? और यह कहते हुए उसने कुर्से में एक किनारे से दूसरे किनारे तक छलांग मारी।

समुद्रबाले मेडक ने कहा "मेरे मित्र! ममा समुद्र की तुम्हारा इस छोटे से कुर्से से किस प्रकार कर सकते हो?"

तब उस कुर्सेबाले मेडक ने एक दूसरी छलांग मारी और पूछा "तो क्या तुम्हारा समुद्र इतना बड़ा है?"

समुद्रबाले मेडक ने कहा "तुम किसी बेबकूठी की बात कर रहे हो। क्या समुद्र की तुम्हारा तुम्हारे कुर्से से हो सकती है?"

जब तो कुर्सेबाले मेडक ने कहा "जा जा। मेरे कुर्से से चढ़कर और कुछ हो ही नहीं सकता। संसार में इससे बड़ा और कुछ नहीं है। मूठा नहीं का। जरे इसे बाहर निकाल दो।

यही कठिनाई सबैव रही है।

मैं हिनू हूँ। मैं अपने भ्रू कुर्से में बैठे यही समझता हूँ कि मेरा कुर्बा ही संपूर्ण सत्कार है। ईश्वर भी अपने भ्रू कुर्से में बैठे हुए यही समझता है कि सारा सत्कार उसीके कुर्से में है और मुसकमल भी अपने भ्रू कुर्से में बैठे हुआ उसीको सारा ब्रह्माण्ड मानता है। मैं आप अमेरिकावासियों को बन्ध कहता हूँ क्योंकि आप हम लोगों के इन छोटे छोटे सत्कारों की भ्रू सीमाओं को तोड़ने का महान् प्रयत्न कर रहे हैं, और मैं आशा करता हूँ कि भविष्य में परमात्मा आपके इस उद्योग में सहायता देकर आपका मनोरथ पूर्ण करेगा।



## हिंदू धर्म पर निबन्ध

(धर्म-महासभा में, १९ सितम्बर, १८९३ ई० को पठित)

प्रागैतिहासिक युग से चले आनेवाले केवल तीन ही धर्म आज ससार में विद्यमान हैं—हिन्दू धर्म, पारसी धर्म और यहूदी धर्म। उनको अनेकानेक प्रचंड आघात सहने पड़े हैं, किन्तु फिर भी जीवित बने रहकर वे सभी अपनी आन्तरिक शक्ति का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। पर जहाँ हम यह देखते हैं कि यहूदी धर्म ईसाई धर्म को आत्मसात नहीं कर सका, वरन् अपनी सर्वविजयिनी दुहिता—ईसाई धर्म—द्वारा अपने जन्म-स्थान से निर्वासित कर दिया गया, और केवल मुट्ठी भर पारसी ही अपने महान् धर्म की गाथा गाने के लिए अब अवशेष हैं,—वहाँ भारत में एक के बाद एक न जाने कितने सम्प्रदायों का उदय हुआ और उन्होंने वैदिक धर्म को जड़ से हिला सा दिया, किन्तु भयकर भूकम्प के समय समुद्र-तट के जल के समान वह कुछ समय पश्चात् हजार गुना बलशाली होकर सर्वग्रासी आप्लावन के रूप में पुन लौटने के लिए पीछे हट गया, और जब यह सारा कोलाहल शान्त हो गया, तब इन समस्त धर्म-सम्प्रदायों को उनकी धर्म-माता (हिंदू धर्म) की विराट् काया में चूस लिया, आत्मसात कर लिया और अपने में पचा डाला।

वेदान्त दर्शन की अत्युन्नत आध्यात्मिक उडानों से लेकर—आधुनिक विज्ञान के नवीनतम आविष्कार जिसकी केवल प्रतिध्वनि मात्र प्रतीत होते हैं, मूर्ति-पूजा के निम्न स्तरीय विचारों एवं तदानुषंगिक अनेकानेक पौराणिक दन्तकथाओं तक, और बौद्धों के अज्ञेयवाद तथा जैनो के निरीश्वरवाद—इनमें से प्रत्येक के लिए हिन्दू धर्म में स्थान है।

तब यह प्रश्न उठता है कि वह कौन सा एक सामान्य विन्दु है, जहाँ पर इतनी विभिन्न दिशाओं में जानेवाली त्रिज्याएँ केन्द्रस्थ होती हैं? वह कौन सा एक सामान्य आधार है, जिस पर ये प्रचंड विरोधाभास आश्रित हैं? इसी प्रश्न का उत्तर देने का अब मैं प्रयत्न करूँगा।

हिन्दू जाति ने अपना धर्म श्रुति—वेदों से प्राप्त किया है। उनकी धारणा है कि वेद अनादि और अनन्त हैं। श्रोताओं को, सम्भव है, यह बात हास्यास्पद लगे कि कोई पुस्तक अनादि और अनन्त कैसे हो सकती है। किन्तु वेदों का अर्थ कोई

पुस्तक है ही नहीं। पदा का अर्थ है भिन्न भिन्न काला म भिन्न भिन्न स्थितियाँ द्वारा वाचिष्कृत भाष्यारिम्भ शर्या का शक्ति रूप। जिस प्रकार मूर्तवाक्य का मिथ्यान्त मनुष्यों के पदा समने के पूर्व से ही अपना काम करता पला आया था और आज यदि मनुष्य-जाति उस मूल में जाय तो भी वह नियम अपना काम करता ही रहेगा ठीक वही बात भाष्यारिम्भक जम्बू का धामन करनेवाले नियमों के सम्बन्ध में भी है। एक आत्मा का दूसरी आत्मा के साथ और जीवात्मा का आत्माओं के परम पिता के साथ जो नैतिक तथा भाष्यारिम्भक सम्बन्ध है, वे उनके आचिष्कार के पूर्व भी वे और हम यदि उन्हें मूल में जायें तो भी बन रहे।

इन नियमों या सत्यों का आचिष्कार करनेवाले 'ऋषि' कहलाते हैं और हम उनको पूज्य तक पहुँची हुई आत्मा मानकर सम्मान देते हैं। श्रोतार्थों को यह बातकाते हुए मुझे हर्ष होता है कि इन महानतम ऋषियों में कुछ स्त्रियाँ भी थी।

यहाँ यह कहा जा सकता है कि ये नियम नियम के रूप में अतन्त्र भसे ही हों पर इनका आदि तो अवश्य ही होना चाहिए। वेब हमें यह सिद्धाते हैं कि सृष्टि का न आदि है न अन्त। विज्ञान ने हमें सिद्ध कर दिखाया है कि समस्त विश्व की सारी ऊर्जा-समाप्ति का परिमाण सदा एक सा रहता है। तो फिर, यदि ऐसा कोई समय था जब कि किसी वस्तु का अस्तित्व ही नहीं था उस समय यह सम्पूर्ण व्यक्त ऊर्जा कहाँ थी? कोई कोई कहते हैं कि ईश्वर में ही वह सब अत्यन्त रूप में निहित थी। तब तो ईश्वर कभी अत्यन्त और कभी अत्यन्त है इससे तो यह विकारशील हो पायगा। प्रत्येक विकारशील पदार्थ यौगिक होता है और हर यौगिक पदार्थ में वह परिवर्तन अवश्यम्भावी है जिसे हम विनाश कहते हैं। इस तरह तो ईश्वर भी मृत्यु हो पायगी जो अनर्गल है। अतः ऐसा समय कभी नहीं था जब यह सृष्टि नहीं थी।

यै एक उपमा ई अष्टा और सृष्टि मागो दो रेखाएँ हैं जिनका न आदि है, न अन्त और जो समानान्तर चलती हैं। ईश्वर नित्य क्रियाशील विधाता है जिसकी शक्ति से प्रकृत-वयोधि से से नित्यस- एक के बाद एक ब्रह्माण्ड का सृजन होता है वे कुछ काळ तक गतिमान रहते हैं और तत्पश्चात् वे पुनः विनष्ट कर दिये जाते हैं। सूर्यास्तमत्तौ वाता मयापुर्बमकल्पयत् अर्थात् इस सूर्य और इस जन्मा को विधाता ने पूर्व कल्पों के सूर्य और जन्मा के समान निर्मित किया है—इस वाक्य का नित्य पाठ प्रत्येक हिन्दू बालक प्रतिदिन करता है।

यहाँ पर मैं बड़ा हूँ और अपनी जाँसें बन्द करके यदि मैं अपने अस्तित्व — मैं मैं 'मैं' को समझने का प्रयत्न करूँ तो मुझमें किस भाव का उदय होता है? इस भाव का कि मैं खरीर हूँ। तो क्या मैं नैतिक पदार्थों के संघात के

सिवा और कुछ नहीं हूँ? वेदों की घोषणा है—'नहीं' में शरीर में रहनेवाली आत्मा हूँ, मैं शरीर नहीं हूँ। शरीर मर जायगा, पर मैं नहीं मरूँगा। मैं इस शरीर में विद्यमान हूँ और जब इस शरीर का पतन होगा, तब भी मैं विद्यमान रहूँगा ही। मेरा एक अतीत भी है। आत्मा की सृष्टि नहीं हुई है, क्योंकि सृष्टि का अर्थ है, भिन्न भिन्न द्रव्यों का सघात, और इस सघात का भविष्य में विघटन अवश्यम्भावी है। अतएव यदि आत्मा का सृजन हुआ, तो उसकी मृत्यु भी होनी चाहिए। कुछ लोग जन्म से ही सुखी होते हैं, पूर्ण स्वास्थ्य का आनन्द भोगते हैं, उन्हें सुंदर शरीर, उत्साहपूर्ण मन और सभी आवश्यक सामग्रियाँ प्राप्त रहती हैं। दूसरे कुछ लोग जन्म से ही दुःखी होते हैं, किसीके हाथ या पाँव नहीं होते, तो कोई मूर्ख होते हैं, और येन केन प्रकारेण अपने दुःखमय जीवन के दिन काटते हैं। ऐसा क्यों? यदि ये सभी एक ही न्यायी और दयालु ईश्वर ने उत्पन्न किये हों, तो फिर उसने एक को सुखी और दूसरे को दुःखी क्यों बनाया? ईश्वर ऐसा पक्षपाती क्यों है? फिर ऐसा मानने से भी बात नहीं सुघर सकती कि जो इस वर्तमान जीवन में दुःखी हैं, वे भावी जीवन में पूर्ण सुखी रहेंगे। न्यायी और दयालु ईश्वर के राज्य में मनुष्य इस जीवन में भी दुःखी क्यों रहे?

दूसरी बात यह है कि सृष्टि-उत्पादक ईश्वर को मान्यता देनेवाला सिद्धान्त वैपम्य की कोई व्याख्या नहीं करता, बल्कि वह तो केवल एक सर्वशक्तिमान पुरुष का निष्ठुर आदेश ही प्रकट करता है। अतएव इस जन्म के पूर्व ऐसे कारण होने ही चाहिए, जिनके फलस्वरूप मनुष्य इस जन्म में सुखी या दुःखी हुआ करता है। और ये कारण हैं, उसके ही पूर्वानुष्ठित कर्म।

क्या मनुष्य के शरीर और मन की सारी प्रवृत्तियों की व्याख्या उत्तराधिकार से प्राप्त क्षमता द्वारा नहीं हो सकती? यहाँ जड और चैतन्य (मन), सत्ता की दो समानान्तर रेखाएँ हैं। यदि जड और जड के समस्त रूपान्तर ही, जो कुछ यहाँ है, उसके कारण सिद्ध हो सकते, तो फिर आत्मा के अस्तित्व को मानने की कोई आवश्यकता ही न रह जाती। पर यह सिद्ध नहीं किया जा सकता कि चैतन्य (विचार) का विकास जड से हुआ है, और यदि कोई दार्शनिक अद्वैतवाद अनिवार्य है, तो आध्यात्मिक अद्वैतवाद निश्चय ही तर्कसंगत है और भौतिक अद्वैतवाद से किसी भी प्रकार कम वाछनीय नहीं, परन्तु यहाँ इन दोनों की आवश्यकता नहीं है।

हम यह अस्वीकार नहीं कर सकते कि शरीर कुछ प्रवृत्तियों को आनुवंशिकता से प्राप्त करता है, किन्तु ऐसी प्रवृत्तियों का अर्थ केवल शारीरिक रूपाकृति है, जिसके माध्यम से केवल एक विशेष मन एक विशेष प्रकार से काम कर सकता है। आत्मा की कुछ ऐसी विशेष प्रवृत्तियाँ होती हैं, जिनकी उत्पत्ति अतीत के कर्म से होती

है। एक विशेष प्रवृत्तिवाली जीवतया 'धोम्य योम्यन युम्यते' इस नियमानुसार उसी शरीर में जन्म ग्रहण करती है जो उस प्रवृत्ति के प्रकट करने के लिए सबसे उपयुक्त माध्यम हो। यह विज्ञानसंगत है क्योंकि विज्ञान हर प्रवृत्ति की व्याख्या माध्यम से करना चाहता है और आवय्य भावुतियों से बनती है। अतएव नवजात जीवात्मा की नैसर्गिक आवय्यों की व्याख्या के लिए भावुतियाँ अनिवार्य ही जाती हैं। और पूर्णिके से प्रस्तुत जीवन में प्राप्त नहीं होतीं अतः वे पिछले जीवनों से ही आयी होतीं।

एक और दृष्टिकोण है। मे सभी बातें यदि स्वमंथित भी मान लें तो मैं अपने पूर्व जन्म की कोई बात स्मरण क्यों नहीं कर पाता? इसका समाधान सरल है। मैं अभी अंग्रेजी बोल रहा हूँ। वह मेरी मातृभाषा नहीं है। वस्तुतः इस समय मेरी मातृभाषा का कोई भी अक्षर मेरे चित्त में उपस्थित नहीं है पर उन अक्षरों को सामने लाने का बड़ा प्रयत्न करते ही वे मेरे मन में उमड़ आते हैं। इससे यही सिद्ध होता है कि चेतना मानस-सागर की सतह मात्र है और भीतर, उसकी गहराइयों में हमारी समस्त अनुभवशक्ति संचित है। केवल प्रयत्न तथा सद्योग कीजिए, वे सब ऊपर उठ आयेगे और आप अपने पूर्व जन्मों का भी ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

यह प्रत्यक्ष एवं प्रतिपाद्य प्रमाण है। सत्य-साधन ही किसी परिकल्पना का पूर्ण प्रमाण होता है और ऋषियोग यहाँ समस्त ससार को एक पुत्री के रूप में देखे हैं। हमने उस रहस्य का पता लगा लिया है जिससे स्मृति-सागर की यंत्रीयता यह रही तक का मान्य किया जा सकता है—उसका प्रयोग कीजिए और आप अपने पूर्व जन्मों की संपूर्ण संस्मृति प्राप्त कर लेंगे।

अतएव हिन्दू का यह विश्वास है कि वह आत्मा है। 'उसको सस्त्र काट नहीं सकते अग्नि शय्य नहीं कर सकती बल निमी नहीं सकता और वायु चुबा नहीं सकती। हिन्दुओं की यह धारणा है कि आत्मा एक ऐसा वस्तु है, जिसकी परिधि नहीं है, किन्तु जिसका केन्द्र शरीर में अवस्थित है और मृत्यु का अर्थ है, इस केन्द्र का एक शरीर से दूसरे शरीर में स्थानान्तरित हो जाना। यह आत्मा जड़ की उपलब्धियों से बद्ध नहीं है। वह स्वकल्पित गिर्य-बुद्ध-बुद्ध-मुक्तस्वभाव है। परन्तु किसी कारण से वह अपने को जड़ से बँधी हुई पाती है और अपने को जड़ ही समझती है।

अब दूसरा प्रश्न यह है कि यह विशुद्ध, पूर्ण और विमुक्त आत्मा इस प्रकार जड का दासत्व क्यों करती है? स्वयं पूर्ण होते हुए भी इस आत्मा को अपूर्ण होने का भ्रम कैसे हो जाता है? हमें यह बताया जाता है कि हिन्दू लोग इस प्रश्न से कतरा जाते हैं और कह देते हैं कि ऐसा प्रश्न हो ही नहीं सकता। कुछ विचारक पूर्णप्राय सत्ताओं की कल्पना कर लेते हैं और इस रिक्त को भरने के लिए बड़े बड़े वैज्ञानिक नामों का प्रयोग करते हैं। परन्तु नाम दे देना व्याख्या नहीं है। प्रश्न ज्यों का त्यों ही बना रहता है। पूर्ण ब्रह्म पूर्णप्राय अथवा अपूर्ण कैसे हो सकता है, शुद्ध, निरपेक्ष ब्रह्म अपने स्वभाव को सूक्ष्मातिसूक्ष्म कण भर भी परिवर्तित कैसे कर सकता है? पर हिन्दू ईमानदार है। वह मिथ्या तर्क का सहारा नहीं लेना चाहता। पुरुषोचित रूप में इस प्रश्न का सामना करने का साहस वह रखता है, और इस प्रश्न का उत्तर देता है, "मैं नहीं जानता। मैं नहीं जानता कि पूर्ण आत्मा अपने को अपूर्ण कैसे समझने लगी, जड-पदार्थों के संयोग से अपने को जड-नियमाधीन कैसे मानने लगी।" पर इस सबके वावजूद तथ्य जो है, वही रहेगा। यह सभी की चेतना का एक तथ्य है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने को शरीर मानता है। हिन्दू इस बात की व्याख्या करने का प्रयत्न नहीं करता कि मनुष्य अपने को शरीर क्यों समझता है। 'यह ईश्वर की इच्छा है', यह उत्तर कोई समाधान नहीं है। यह उत्तर हिन्दू के 'मैं नहीं जानता' के सिवा और कुछ नहीं है।

अतएव मनुष्य की आत्मा अनादि और अमर है, पूर्ण और अनन्त है, और मृत्यु का अर्थ है—एक शरीर से दूसरे शरीर में केवल केन्द्र-परिवर्तन। वर्तमान अवस्था हमारे पूर्वानुष्ठित कर्मों द्वारा निश्चित होती है और भविष्य, वर्तमान कर्मों द्वारा। आत्मा जन्म और मृत्यु के चक्र में लगातार घूमती हुई कभी ऊपर विकास करती है, कभी प्रत्यागमन करती है। पर यहाँ एक दूसरा प्रश्न उठता है—क्या मनुष्य प्रचंड तूफान में ग्रस्त वह छोटी सी नौका है, जो एक क्षण किसी वेगवान तरंग के फेनिल शिखर पर चढ़ जाती है और दूसरे क्षण भयानक गर्त में नीचे ढकेल दी जाती है, अपने शुभ और अशुभ कर्मों की दया पर केवल इधर-उधर भटकती फिरती है, क्या वह कार्य-कारण की सतत प्रवाही, निर्मम, भीषण तथा गर्जनशील धारा में पड़ी हुई अशक्त, असहाय भग्न पोत है, क्या वह उस कारणता के चक्र के नीचे पड़ा हुआ एक क्षुद्र शलभ है, जो विषवा के आँसुओं तथा अनाथ बालक की आँहों की तनिक भी चिन्ता न करते हुए, अपने मार्ग में आनेवाली सभी वस्तुओं को कुचल डालता है? इस प्रकार के विचार से अतःकरण कांप उठता है, पर यही प्रकृति का नियम है। तो फिर क्या कोई आशा ही नहीं है? क्या उससे बचने का कोई माग नहीं है?—यही करुण पुकार निराशाविह्वल हृदय के

है। एक विशेष प्रकृतिवाली जीवार्त्मा 'योस्य योम्येन युज्यते' इस नियमानुसार उसी शरीर में जन्म ग्रहण करती है जो उस प्रकृति के प्रकट करने के लिए सबसे उपयुक्त माध्यम हो। यह विज्ञानसंगत है क्योंकि विज्ञान हर प्रकृति की व्याख्या माध्यम से करना चाहता है और आवत भावितियों से बनती है। अतएव नभजात जीवार्त्मा की नैसर्गिक आवतों की व्याख्या के लिए भावितियाँ अनिवार्य हो जाती हैं। और चूंकि वे प्रस्तुत जीवन में प्राप्त नहीं होती अतः वे पिछले जीवनों से ही आयी होंगी।

एक और दृष्टिकोण है। ये सभी बातें यदि स्वयंसिद्ध भी मान लें तो मैं अपने पूर्व जन्म की कोई बात स्मरण क्यों नहीं कर पाता? इसका समाधान सरल है। मैं अभी खड़े ही बैठ रहा हूँ। वह मेरी मातृभाषा नहीं है। वस्तुतः इस समय मेरी मातृभाषा का कोई भी शब्द मेरे चित्त में उपस्थित नहीं है पर उन शब्दों को सामने आने का थोड़ा प्रयत्न करते ही वे मेरे मन में उमड़ आते हैं। इससे यही सिद्ध होता है कि चेतना मानस-सागर की सतह मात्र है और नीचे, उसकी गहराई में हमारी समस्त अनुभवशक्ति संचित है। केवल प्रयत्न तथा उत्थान कीजिए, वे सब ऊपर उठ आवेंगे और आप अपने पूर्व जन्मों का भी ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

यह प्रत्यक्ष एवं प्रतिपाद्य प्रमाण है। उत्प-साधन ही किसी परिदृश्यना का पूर्ण प्रमाण होता है और अविगद्य यहाँ समस्त संचार को एक धुनीती वे रखे हैं। हमने उस रहस्य का पता लगा लिया है जिससे स्मृति-सागर की गंभीरतम गहराई तक का सम्बन्ध किया जा सकता है—उसका प्रयोग कीजिए और आप अपने पूर्व जन्मों की संपूर्ण संस्मृति प्राप्त कर लेंगे।

अतएव हिन्दू का यह विश्वास है कि वह आत्मा है। 'उसको घट्टन काट नहीं सकते अग्नि शब्द नहीं कर सकती जल मिचो नहीं सकता और वायु सुखा नहीं सकती।' हिन्दुओं की यह धारणा है कि आत्मा एक ऐसा ब्रह्म है, जिसकी परिधि नहीं है, किन्तु जिसका केन्द्र शरीर में अवस्थित है और मृत्यु का अर्थ है, इस केन्द्र का एक शरीर से दूसरे शरीर में स्थानान्तरित हो जाना। यह आत्मा जड़ की लयाधिया से बड़ नहीं है। वह स्वकल्पित नित्य-सुख-दुःख-मूलतस्वभाव है। परन्तु किसी कारण से वह अपने को जड़ से बंधी हुई पाती है और अपने को जड़ ही समझती है।

वह सर्वत्र है, शुद्ध, निराकार, सर्वशक्तिमान है, सब पर उसकी पूर्ण दया है। 'तू हमारा पिता है, तू हमारी माता है, तू हमारा परम प्रेमास्पद सखा है, तू ही सभी शक्तियों का मूल है, हमें शक्ति दे। तू ही इन अखिल भुवनो का भार वहन करनेवाला है, तू मुझे इस जीवन के क्षुद्र भार को वहन करने में सहायता दे।' वैदिक ऋषियों ने यही गाया है। हम उसकी पूजा किस प्रकार करें? प्रेम के द्वारा। 'ऐहिक तथा पारत्रिक समस्त प्रिय वस्तुओं से भी अधिक प्रिय जानकर उस परम प्रेमास्पद की पूजा करनी चाहिए।'

वेद हमें प्रेम के सम्बन्ध में इसी प्रकार की शिक्षा देते हैं। अब देखें कि श्री कृष्ण ने, जिन्हें हिन्दू लोग पृथ्वी पर ईश्वर का पूर्णवितार मानते हैं, इस प्रेम के सिद्धांत का पूर्ण विकास किस प्रकार किया है और हमें क्या उपदेश दिया है।

उन्होंने कहा है कि मनुष्य को इस ससार में पद्मपत्र की तरह रहना चाहिए। पद्मपत्र जैसे पानी में रहकर भी उससे नहीं भीगता, उसी प्रकार मनुष्य को भी ससार में रहना चाहिए—उसका हृदय ईश्वर में लगा रहे और उसके हाथ—कर्म करने में लगे रहे।

इहलोक या परलोक में पुरस्कार की प्रत्याशा से ईश्वर से प्रेम करना बुरी बात नहीं, पर केवल प्रेम के लिए ही ईश्वर से प्रेम करना सबसे अच्छा है, और उसके निकट यही प्रार्थना करनी उचित है, 'हे भगवन्, मुझे न तो सम्पत्ति चाहिए, न सन्तति, न विद्या। यदि तेरी इच्छा है, तो सहस्रो बार जन्म-मृत्यु के चक्र में पड़ूंगा, पर हे प्रभो, केवल इतना ही दे कि मैं फल की आशा छोड़कर तेरी भक्ति करूँ, केवल प्रेम के लिए ही तुझ पर मेरा नि स्वार्थ प्रेम हो।' कृष्ण के एक शिष्य उस समय भारत के सम्राट् थे। उनके शत्रुओं ने उन्हें राजसिंहासन से च्युत कर दिया था और उन्हें अपनी सम्राज्ञी के साथ हिमालय के जंगल में आश्रय लेना पड़ा था। वहाँ एक दिन सम्राज्ञी ने उनसे प्रश्न किया, "मनुष्यों में सर्वोपरि पुण्यवान होते हुए भी आपको इतना दुःख क्यों सहना पड़ता है?" युधिष्ठिर ने उत्तर दिया, "महारानी, देखो, यह हिमालय कैसा भव्य और सुन्दर है। मैं इससे प्रेम करता हूँ। यह मुझे कुछ नहीं देता, पर मेरा स्वभाव ही ऐसा है कि मैं भव्य और सुंदर वस्तु से प्रेम करता हूँ और इसी कारण मैं उससे प्रेम करता हूँ। उसी प्रकार मैं ईश्वर से प्रेम करता हूँ। वह अखिल सौन्दर्य, समस्त सुषमा का मूल है। वही एक ऐसा पात्र है, जिससे प्रेम करना चाहिए। उससे प्रेम करना मेरा स्वभाव

१ न धन न जन न च सुन्दरीं कथितां वा जगदीश कामये ।

मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवताद्भक्तिरहैतुकी त्वयि ॥ शिक्षाष्टक ॥४॥

अन्तस्तस्य से ऊपर उठी और उस करुणामय के सिंहासन तक जा पहुँची। वहाँ से माया तथा सात्वतता की शानी निकली और उसने एक वैदिक ऋषि को अंत-स्फूर्ति प्रदान की और उसने संसार के सामने खड़े होकर तूर्य-स्वर में इस आनंद-सन्देश की बापबा की हे अमृत के पुत्रो! सुनो हे दिव्यधामवासी इवमन् ॥ तुम भी सुनो मैंने उस अनादि पुरातन पुरुष का प्राप्त कर लिया है जो समस्त अज्ञान-अवकार और माया के परे है। केवल उस पुरुष को जानकर ही तुम मृत्यु के चक्र से छूट सकते हो। वृष्टय कोई पत्र नहीं है।<sup>१</sup> 'अमृत के पुत्रों'—कैला मधुर और आसाजनक सम्बोधन है यह! बन्धुजो! इसी मधुर नाम—अमृत के अधिकारी से आपको सम्बोधित करें आप इसकी आज्ञा मुझे दें। निश्चय ही हिन्दू आपको पापी कहना अस्वीकार करता है। आप तो ईश्वर की सन्तान हैं, अमर आनंद के भागी हैं पवित्र और पूर्ण आत्मा हैं। आप इस मर्त्यभूमि पर देखता हैं। आप मछा पापी? मनुष्य को पापी कहना ही पाप है, वह मानव स्वरूप पर घोर साक्ष्य है। आप उठें! हे सिंहो! आर्य और इस मिथ्या भ्रम को झटककर दूर फेंक दें कि आप भेड़ हैं। आप हैं आत्मा अमर, आत्मा मुक्त आनंदमय और निरय! आप जड़ नहीं हैं, आप खरीर नहीं हैं जड़ तो मायाका बास है न कि आप हैं बास जड़ का।

अब यह ऐसी शोषणा नहीं करते कि यह सृष्टि-व्यापार कतिपय निर्मम विधानों का संघात है और न यह कि वह कार्य-कारण की अनन्त कारा है बरन् वे यह शोषित करते हैं कि इन सब प्राकृतिक नियमों के मूक से जड़-तत्त्व और घनित के प्रत्येक अनु-परमाणु में जोतप्रोत वही एक विराजमान है 'जिसके आवेष्ट से वामु चली है अग्नि बहकती है बारक बरसते हैं और मृत्यु पृथ्वी पर नाचती है।

और उस पुरुष का स्वरूप क्या है?

१ मन्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आ ये आत्मानि दिव्यानि तस्युः ।

वेदाह्वेतं पुरुषं महात्ममादित्यवर्चं तमसः परस्तात् ।

तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नाम्ना पन्था विद्यतेऽप्रमाद ॥

—इथैतास्वतरोपनिषद् ॥२।५। ३-८॥

२ भयावस्थान्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः ।

भयादिन्द्राच्च वायवच्च मृत्युर्वाविति पञ्चमः ॥

—उठोपनिषद् ॥२।३।३॥



वह सर्वत्र है, शुद्ध, निराकार, सर्वशक्तिमान है, सब पर उसकी पूर्ण दया है। 'तू हमारा पिता है, तू हमारी माता है, तू हमारा परम प्रेमास्पद सखा है, तू ही सभी शक्तियों का मूल है, हमें शक्ति दे। तू ही इन अखिल भुवनो का भार वहन करनेवाला है, तू मुझे इस जीवन के क्षुद्र भार को वहन करने में सहायता दे।' वैदिक ऋषियों ने यही गाया है। हम उसकी पूजा किस प्रकार करें? प्रेम के द्वारा। 'ऐहिक तथा पारत्रिक समस्त प्रिय वस्तुओं से भी अधिक प्रिय जानकर उस परम प्रेमास्पद की पूजा करनी चाहिए।'

वेद हमें प्रेम के सम्बन्ध में इसी प्रकार की शिक्षा देते हैं। अब देखें कि श्री कृष्ण ने, जिन्हें हिन्दू लोग पृथ्वी पर ईश्वर का पूर्णवितार मानते हैं, इस प्रेम के सिद्धांत का पूर्ण विकास किस प्रकार किया है और हमें क्या उपदेश दिया है।

उन्होंने कहा है कि मनुष्य को इस ससार में पद्मपत्र की तरह रहना चाहिए। पद्मपत्र जैसे पानी में रहकर भी उससे नहीं भोगता, उसी प्रकार मनुष्य को भी ससार में रहना चाहिए—उसका हृदय ईश्वर में लगा रहे और उसके हाथ—कर्म करने में लगे रहे।

इहलोक या परलोक में पुरस्कार की प्रत्याशा से ईश्वर से प्रेम करना बुरी बात नहीं, पर केवल प्रेम के लिए ही ईश्वर में प्रेम करना सबसे अच्छा है, और उसके निकट यही प्रार्थना करनी उचित है, 'हे भगवन्, मुझे न तो सम्पत्ति चाहिए, न सन्तति, न विद्या। यदि तेरी इच्छा है, तो सहस्रो वार जन्म-मृत्यु के चक्र में पड़ूंगा, पर हे प्रभो, केवल इतना ही दे कि मैं फल की आशा छोड़कर तेरी भक्ति करूँ, केवल प्रेम के लिए ही तुझ पर मेरा नि स्वार्थ प्रेम हो।' कृष्ण के एक शिष्य उस समय भारत के सम्राट् थे। उनके शत्रुओं ने उन्हें राजसिंहासन से च्युत कर दिया था और उन्हें अपनी सम्राज्ञी के साथ हिमालय के जंगल में आश्रय लेना पड़ा था। वहाँ एक दिन सम्राज्ञी ने उनसे प्रश्न किया, "मनुष्यों में सर्वोपरि पुण्यवान होते हुए भी आपको इतना दुःख क्यों सहना पड़ता है?" युधिष्ठिर ने उत्तर दिया, "महारानी, देखो, यह हिमालय कैसा भव्य और सुन्दर है। मैं इससे प्रेम करता हूँ। यह मुझे कुछ नहीं देता, पर मेरा स्वभाव ही ऐसा है कि मैं भव्य और सुंदर वस्तु से प्रेम करता हूँ और इसी कारण मैं उससे प्रेम करता हूँ। उसी प्रकार मैं ईश्वर से प्रेम करता हूँ। वह अखिल सौन्दर्य, समस्त सुपमा का मूल है। वही एक ऐसा पात्र है, जिससे प्रेम करना चाहिए। उससे प्रेम करना मेरा स्वभाव

१ न धन न जन न च सुन्दरों कथितां वा जगदीश कामये ।

मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवताव्भक्तिरहेतुकी त्वयि ॥ शिक्षाष्टक ॥४॥

है और इसीलिए मैं उससे प्रेम करता हूँ। मैं किसी बात के लिए उससे प्रार्थना नहीं करता मैं उससे कोई वस्तु नहीं माँगता। उसकी जहाँ इच्छा हा मुझे रहे। मैं तो सब अवस्थाओं में केवल प्रेम के लिए ही उस पर प्रेम करना चाहता हूँ मैं प्रेम म सीखा नहीं कर सकता।”<sup>१</sup>

बह कहते हैं कि आत्मा विष्यस्वरूप है, वह केवल पंचभूतों के बन्धनों में बंध गयी है और उन बन्धनों के टूटने पर वह अपने पूज्य को प्राप्त कर लेगी। इस अवस्था का नाम मुक्ति है, जिसका अर्थ है स्वाधीनता—अपूर्णता के बन्धनों से छुटकारा जन्म-मृत्यु से छुटकारा।

और यह बन्धन केवल ईश्वर की दया से ही टूट सकता है और यह दया पवित्र मोक्ष को ही प्राप्त होती है। अतएव पवित्रता ही उसके अनुग्रह की प्राप्ति का उपाय है। उसकी दया किस प्रकार काम करती है? वह पवित्र हृदय में अपने को प्रकाशित करता है। पवित्र और निर्मल मनुष्य इसी जीवन में ईश्वर-दर्शन प्राप्त कर झूठाई हो जाता है। 'तब उसकी समस्त कुटिलता गूट हो जाती है, सारे सन्देह दूर हो जाते हैं।' तब वह कार्य-कारण के मयावह नियम के हाथ का खिलाता नहीं रह पाता। यही हिन्दू धर्म का मूलभूत सिद्धान्त है—यही उसका अखंड मार्मिक भाव है। हिन्दू धर्मों और सिद्धान्तों के आल में जीना नहीं चाहता। यदि इन साधारण इन्द्रिय-व्यभिच विषयों के परे और भी कोई सत्ताएँ हैं, तो वह उनका प्रत्यक्ष अनुभव करना चाहता है। यदि उसमें कोई आत्मा है जो वह वस्तु नहीं है, यदि कोई दयामय सर्वभ्यापी विश्वारमा है, तो वह उसका साक्षात्कार करेगा। वह उसे अवश्य देखेगा और मात्र उसीसे उसकी समस्त झंकारें दूर होंगी। अतः हिन्दू ऋषि आत्मा के विषय में ईश्वर के विषय में यही सर्वोत्तम प्रमाण देता है 'मैंने आत्मा का दर्शन किया मैंने ईश्वर का दर्शन किया है। और यही पूर्णत्व की एकमात्र शर्त है। हिन्दू धर्म मित्र मित्र मठ-मठान्तर्गत या सिद्धान्तों पर विस्वास करने के लिए सचर्च और प्रयत्न में निहित नहीं है, बल्कि वह साक्षात्कार है वह केवल विस्वास कर लेना नहीं है वह होना और बनना है।

१ गार्ह कर्मकलात्मेवी रामभुवि अराम्युत।

इवामि देयमित्येव यत्रे पञ्चभ्यमित्युत ॥

धर्म एव मनाः कृष्णे स्वभावात्पूर्व मे कृतम्।

धर्मवाचित्यको हीनो जन्म्यो धर्मवाहितान् ॥

—सद्धानास्य, बतपर्व ॥११।२।५॥

२ निन्दते हृदयप्रतिबिम्बितान्ते सर्वसंभवम्।

धीमन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्नुद्ये परावरे ॥ मुञ्जकोपनिषद् ॥२।१।८॥

इस प्रकार हिन्दुओ की सारी साधना-प्रणाली का लक्ष्य है—सतत अध्य-  
वसाय द्वारा पूर्ण बन जाना, दिव्य बन जाना, ईश्वर को प्राप्त करना और उसके  
दर्शन कर लेना, और ईश्वर को इसी प्रकार प्राप्त करना, उसके दर्शन कर  
लेना, उस स्वर्गस्थ पिता के समान पूर्ण हो जाना—हिन्दुओ का धर्म है।

और जब मनुष्य पूर्णत्व को प्राप्त कर लेता है, तब उसका क्या होता है ?  
तब वह असीम परमानन्द का जीवन व्यतीत करता है। जिस एकमात्र वस्तु में  
मनुष्य को सुख पाना चाहिए, उसे अर्थात् ईश्वर को पाकर वह परम तथा असीम  
आनन्द का उपभोग करता है और ईश्वर के साथ भी परमानन्द का आस्वादन  
करता है।

यहाँ तक सभी हिंदू एकमत हैं। भारत के विविध संप्रदायों का यह सामान्य  
धर्म है। परन्तु पूर्ण निरपेक्ष होता है, और निरपेक्ष दो या तीन नहीं हो सकता।  
उसमें कोई गुण नहीं हो सकता, वह व्यक्ति नहीं हो सकता। अतः जब आत्मा पूर्ण  
और निरपेक्ष हो जाती है, तब वह ब्रह्म के साथ एक हो जाती है, और वह ईश्वर  
को केवल अपने ही स्वरूप की पूर्णता, सत्यता और सत्ता के रूप में—परम सत्,  
परम चित्, परम आनन्द के रूप में—प्रत्यक्ष करती है। इसी साक्षात्कार के विषय  
में हम बारम्बार पढा करते हैं कि इसमें मनुष्य अपने व्यक्तित्व को खोकर जडता  
प्राप्त करता है या पत्थर के समान बन जाता है।

‘जिन्हे चोट कभी नहीं लगी है, वे ही चोट के दाग की ओर हँसी की दृष्टि से  
देखते हैं।’ मैं आपको बताता हूँ कि ऐसी कोई बात नहीं होती। यदि इस एक  
क्षुद्र शरीर की चेतना से इतना आनन्द होता है, तो दो शरीरों की चेतना का आनन्द  
अधिक होना चाहिए, और उसी तरह क्रमशः अनेक शरीरों की चेतना के साथ  
साथ आनन्द की मात्रा भी अधिकाधिक बढ़नी चाहिए, और विश्व-चेतना का बोध  
होने पर आनन्द की परम अवस्था प्राप्त हो जायगी।

अतः उस असीम विश्व-व्यक्तित्व की प्राप्ति के लिए इस कारास्वरूप दुःखमय  
क्षुद्र व्यक्तित्व का अंत होना चाहिए। जब मैं प्राणस्वरूप से एक हो जाऊँगा, तभी  
मृत्यु के हाथ से मेरा छुटकारा हो सकता है, जब मैं आनन्दस्वरूप हो जाऊँगा,  
तभी दुःख का अंत हो सकता है, जब मैं ज्ञानस्वरूप हो जाऊँगा, तभी सब अज्ञान  
का अन्त हो सकता है, और यह अनिवार्य वैज्ञानिक निष्कर्ष भी है। विज्ञान ने  
मेरे निकट यह सिद्ध कर दिया है कि हमारा यह भौतिक व्यक्तित्व भ्रम मात्र है,  
वास्तव में मेरा यह शरीर एक अविच्छिन्न जडसागर में एक क्षुद्र सदा परिवर्तित  
होता रहनेवाला पिंड है, और मेरे दूसरे पक्ष—आत्मा के सबंध में अद्वैत ही  
अनिवार्य निष्कर्ष है।

विज्ञान एकत्र की सोच के सिवा और कुछ नहीं है। ज्यों ही कोई विज्ञान पूर्ण एकता तक पहुँच जायगा त्यों ही उसकी प्रगति रुक जायगी क्योंकि तब वह अपने सन्म को प्राप्त कर लेगा। उदाहरणार्थ रसायनशास्त्र यदि एक बार उस एक मूल तत्व का पता लगा सके जिससे और सब द्रव्य बन सकते हैं तो फिर वह और आगे नहीं बढ़ सकेगा। भौतिकी जब उस एक मूल शक्ति का पता लगा सकेगी अन्य शक्तियाँ जिसकी अभिव्यक्ति है तब वह वहीं रुक जायगी। वैसे ही धर्मशास्त्र भी उस समय पूर्णता को प्राप्त कर लेगा जब वह उसको खोज लेगा जो इस मृत्यु के इस लोक में एकमात्र जीवन है जो इस परिवर्तनशील जगत् का दाएलत आधार है जो एकमात्र परमात्मा है अन्य सब आत्माएँ जिसकी प्रतीय माग अभिव्यक्तियाँ हैं। इस प्रकार अनेकता और ईश्वर में होते हुए इस परम ईश्वर की प्राप्ति होती है। धर्म इससे माने नहीं जा सकता। यही समस्त विज्ञानों का धर्म सन्म है।

समस्त विज्ञान अंततः इसी निष्कर्ष पर अभिवर्तित पहुँचेंगे। आज विज्ञान का सन्म अभिव्यक्ति है, सृष्टि नहीं और हिन्दू को यह देखकर बड़ी प्रसन्नता है कि जिसको वह अपने अन्तस्तत्र में इतने युगों से महत्त्व देता रहा है अब उसीकी शिक्षा अधिक सक्षम माया में विज्ञान के नूतनतम निष्कर्षों के अतिरिक्त प्रकाश में भी जा रही है।

अब हम धर्म की अमीप्याओं से उत्तरकर ज्ञानरहित लोगों के धर्म की ओर आते हैं। यह मैं प्रारम्भ में ही आपको बता देना चाहता हूँ कि भारतवर्ष में अनेकेश्वरवाद नहीं है। प्रत्येक मन्दिर में यदि कोई बड़ा होकर मुने तो वह यही मानेगा कि भक्तमय सर्वव्यापित्व आदि ईश्वर के सभी गुणों का आरोप उन मूर्तियों में करते हैं। यह अनेकेश्वरवाद नहीं है, और न एकेश्वरवाद से ही इस स्थिति की व्याख्या हो सकती है। 'गुणाव का चाहूँ वृत्त कोई भी नाम क्यों न दे दिया जाय पर वह गुणवि तो वही ही मधुर देता रहेगा। नाम ही व्याख्या नहीं होती।

बचपन की एक बात मुझे यहाँ याद आती है। एक ईसाई पादरी कुछ मनुष्यों की भीड़ बना करके धर्मोपदेश कर रहा था। बहुतों की मजेदार बातों के साथ वह पादरी यह भी कह पाया "जगर मैं तुम्हारी देवमूर्ति को एक बंडा बनाऊँ, तो वह मेरा क्या कर सकती है? एक घोटा में बट चुमता सा जवान दे डाला "जगर मैं तुम्हारे ईश्वर को माली बंधूँ तो वह मेरा क्या कर सकता है? पादरी बोला "मरने के बाद वह तुम्हें क्या देगा। हिन्दू भी तनकर बोस उठा 'तुम मरने के तब ठीक उसी तरह हमारी देवमूर्ति भी तम्हें बंधूँ देगी।

वृक्ष अपने फलो से जाना जाता है। जब मूर्तिपूजक कहे जानेवाले लोगो मे मैं ऐसे मनुष्यो को पाता हूँ, जिनकी नैतिकता, आध्यात्मिकता और प्रेम अपना सानी नहीं रखते, तब मैं रुक जाता हूँ और अपने से यही पूछता हूँ—'क्या पाप से भी पवित्रता की उत्पत्ति हो सकती है?'

अधविश्वास मनुष्य का महान् शत्रु है, पर धर्मान्धता तो उससे भी बढकर है। ईसाई गिरजाघर क्यों जाता है? क्रूस क्यों पवित्र है? प्रार्थना के समय आकाश की ओर मुँह क्यों किया जाता है? कैथोलिक ईसाइयो के गिरजाघरो मे इतनी मूर्तियाँ क्यों रहा करती हैं? और प्रोटेस्टेन्ट ईसाइयो के मन मे प्रार्थना के समय इतनी मूर्तियाँ क्यों रहा करती हैं? मेरे भाइयो! मन मे किसी मूर्ति के बिना आये कुछ सोच सकना उतना ही असम्भव है, जितना स्वास लिये बिना जीवित रहना। साहचर्य के नियमानुसार भौतिक मूर्ति से मानसिक भावविशेष का उद्दीपन हो जाता है, अथवा मन मे भावविशेष का उद्दीपन होने से तदनु रूप मूर्ति-विशेष का भी आविर्भाव होता है। इसीलिए तो हिन्दू आराधना के समय बाह्य प्रतीक का उपयोग करता है। वह आपको बतलायेगा कि यह बाह्य प्रतीक उसके मन को अपने ध्यान के विषय परमेश्वर मे एकाग्रता से स्थिर रहने में सहायता देता है। वह भी यह बात उतनी ही अच्छी तरह से जानता है, जितना आप जानते हैं कि वह मूर्ति न तो ईश्वर ही है और न सर्वव्यापी ही। और सच पूछिए तो दुनिया के लोग 'सर्वव्यापित्व' का क्या अर्थ समझते हैं? वह तो केवल एक शब्द या प्रतीक मात्र है। क्या परमेश्वर का भी कोई क्षेत्रफल है? यदि नहीं, तो जिस समय हम सर्वव्यापी शब्द का उच्चारण करते हैं, उस समय विस्तृत आकाश या देश की ही कल्पना करने के सिवा हम और क्या करते हैं?

अपनी मानसिक संरचना के नियमानुसार, हमे किसी प्रकार अपनी अनतता की भावना को नील आकाश या अपार समुद्र की कल्पना से सम्बद्ध करना पडता है, उसी तरह हम पवित्रता के भाव को अपने स्वभावानुसार गिरजाघर, मस्जिद या क्रूस से जोड लेते हैं। हिन्दू लोग पवित्रता, नित्यत्व, सर्वव्यापित्व आदि आदि भावो का सम्बन्ध विभिन्न मूर्तियो और रूपो से जोडते हैं। अन्तर यह है कि जहाँ अन्य लोग अपना सारा जीवन किसी गिरजाघर की मूर्ति की भक्ति मे ही बिता देते है और उससे आगे नहीं बढते, क्योंकि उनके लिए तो धर्म का अर्थ यही है कि कुछ विशिष्ट सिद्धान्तो को वे अपनी बुद्धि द्वारा स्वीकृत कर लें और अपने मानव-बन्धुओं की भलाई करते रहे—वहाँ एक हिन्दू की सारी धर्म-भावना प्रत्यक्ष अनुभूति या आत्म-साक्षात्कार मे केन्द्रीभूत होती है। मनुष्य को ईश्वर का साक्षात्कार करके दिव्य बनना है। मूर्तियाँ, मन्दिर, गिरजाघर या ग्रन्थ तो धर्म-जीवन की बाल्यावस्था

यें केवल आचार या सहायक मात्र हैं पर उसे उत्तरोत्तर उत्पत्ति ही करनी चाहिए।

मनुष्य को कहीं पर कटना नहीं चाहिए। सास्त्र का वाक्य है कि 'बाह्य पूजा या मूर्ति-पूजा सबसे नीचे की अवस्था है आने बढ़ने का प्रयास करते समय मात्र सिद्ध प्रार्थना साधना की दृष्टि अवस्था है और सबसे उच्च अवस्था तो यह है जब परमेश्वर का साक्षात्कार हो जाय।' देखिए, वही अनुरागी साधक जो पहले मूर्ति के सामने प्रणत रहता था अब क्या कह रहा है—सूर्य जब परमात्मा को प्रकाशित नहीं कर सकता न पद्ममा या वाराणस ही वह विद्युत्प्रभा भी परमेश्वर को उद्भासित नहीं कर सकती। अब इस सामान्य अर्थ की बात ही क्या! ये सभी उसी परमेश्वर के कारण प्रकाशित होते हैं। पर वह किसीकी मूर्ति को माफी नहीं देता और न उसकी पूजा को पाप ही बताता है। वह तो उसे जीवन की एक आवश्यक अवस्था जानकर उसको स्वीकार करता है। 'बाधक ही मनुष्य का अणक है। तो क्या किसी कुछ पुरुष का बधपन या सुबाधस्था को पाप या बुरा कहना उचित होना?

यदि कोई मनुष्य अपने दिव्य स्वरूप को मूर्ति की सहायता से अनुभव कर सकता है, तो क्या उसे पाप कहना ठीक होगा? और जब वह उस अवस्था के परे पहुँच गया है, तब भी उसके लिए मूर्ति-पूजा को अभात्मक कहना उचित नहीं है। हिन्दू की दृष्टि में मनुष्य भ्रम से सत्य की ओर नहीं जा रहा है, वह तो सत्य से सत्य की ओर, निम्न श्रेणी के सत्य से उच्च श्रेणी के सत्य की ओर अग्रसर ही रहा है। हिन्दू के मतानुसार निम्नतम अङ्गपूजावाक्य से लेकर सर्वोच्च ब्रह्मवाक्य तक जितने धर्म हैं वे सभी अपने अपने अर्थ तथा साहचर्य की अवस्था द्वारा निर्धारित होकर उस असीम के ज्ञान तथा उपकर्म के निमित्त मानवार्थ के विविध प्रयत्न हैं और वह प्रत्येक प्रयत्न उत्पत्ति की एक अवस्था को सूचित करता है। प्रत्येक जीव उस मुक्त मरुत पक्षी के समान है, जो धीरे धीरे ऊँचा उड़ता हुआ तथा अधिकाधिक उच्च-अभ्यासन करता हुआ अंत में उस मास्वर सूर्य तक पहुँच जाता है।

१ उत्तमो ब्रह्मतद्भासो प्यन्नतत्त्वस्तु धर्म्यतः।

स्तुतिर्बोधोपयो भासो बहिःपूजाऽप्यथापना ॥ गृहानिर्वाण संन ॥४१९॥

२ न तत्र सूर्यो भासति न चन्द्रतारकं

देवा विद्युतो भासति ज्योतोऽप्यवधिः।

इमेव भासाश्चतुर्भासि तर्षे

तस्य भासा सर्वनिर्ब विभासि ॥ कठोपनिषद् ॥२०२॥१५॥

अनेकता में एकता प्रकृति का विधान है और हिन्दुओं ने इसे स्वीकार किया है। अन्य प्रत्येक धर्म में कुछ निर्दिष्ट मतवाद विधिवद्ध कर दिये गये हैं और सारे समाज को उन्हें मानना अनिवार्य कर दिया जाता है। वह समाज के सामने केवल एक कोट रख देता है, जो जैक, जॉन और हेनरी, सभी को ठीक होना चाहिए। यदि वह जॉन या हेनरी के शरीर में ठीक नहीं आता, तो उसे अपना तन ढँकने के लिए बिना कोट के ही रहना होगा। हिन्दुओं ने यह जान लिया है कि निरपेक्ष ब्रह्म-तत्त्व का साक्षात्कार, चिन्तन या वर्णन केवल सापेक्ष के सहारे ही हो सकता है, और मूर्तियाँ, क्रूस या नवोदित चन्द्र केवल विभिन्न प्रतीक हैं, वे मानो बहुत सी खूंटियाँ हैं, जिनमें धार्मिक भावनाएँ लटकायी जाती हैं। ऐसा नहीं है कि इन प्रतीकों की आवश्यकता हर एक के लिए हो, किन्तु जिनको अपने लिए इन प्रतीकों की सहायता की आवश्यकता नहीं है, उन्हें यह कहने का अधिकार नहीं कि वे गलत हैं। हिन्दू धर्म में वे अनिवार्य नहीं हैं।

एक बात आपको अवश्य बतला दूँ। भारतवर्ष में मूर्ति-पूजा कोई जघन्य बात नहीं है। वह व्यभिचार की जननी नहीं है। वरन् वह अविकसित मन के लिए उच्च आध्यात्मिक भाव को ग्रहण करने का उपाय है। अवश्य, हिन्दुओं के बहुतेरे दोष हैं, उनके कुछ अपने अपवाद हैं, पर यह ध्यान रखिए कि उनके वे दोष अपने शरीर को ही उत्पीडित करने तक सीमित हैं, वे कभी अपने पड़ोसियों का गला नहीं काटने जाते। एक हिन्दू धर्मान्वि भले ही चित्ता पर अपने आपको जला डाले, पर वह विधर्मियों को जलाने के लिए 'इन्क्विज़िशन' की अग्नि कभी भी प्रज्वलित नहीं करेगा। और इस बात के लिए उसके धर्म को उससे अधिक दोषी नहीं ठहराया जा सकता, जितना डाइनों को जलाने का दोष ईसाई धर्म पर मढा जा सकता है।

अतः हिन्दुओं की दृष्टि में समस्त धर्म-जगत् भिन्न भिन्न रुचिवाले स्त्री-पुरुषों की, विभिन्न अवस्थाओं एवं परिस्थितियों में से होते हुए एक ही लक्ष्य की ओर यात्रा है, प्रगति है। प्रत्येक धर्म जडभावापन्न मानव से एक ईश्वर का उद्भव कर रहा है, और वही ईश्वर उन सबका प्रेरक है। तो फिर इतने परस्पर विरोध क्यों है? हिन्दुओं का कहना है कि ये विरोध केवल आभासी हैं। उनकी उत्पत्ति सत्य के द्वारा भिन्न अवस्थाओं और प्रकृतियों के अनुरूप अपना समायोजन करते समय होती है।

वही एक ज्योति भिन्न भिन्न रंग के काँच में से भिन्न भिन्न रूप से प्रकट होती है। समायोजन के लिए इस प्रकार की अल्प विविधता आवश्यक है। परन्तु प्रत्येक के अन्तःस्थल में उसी सत्य का राज्य है। ईश्वर ने अपने कृष्णावतार में हिन्दुओं को यह उपदेश दिया है, 'प्रत्येक धर्म में मैं, मोती की माला में सूत्र की तरह पिरोया

हुमा है ?" जहाँ भी तुम्हें मानव-सृष्टि को उत्पन्न बनानेवाली और पावन करने-वासी अतिशय पवित्रता और असाधारण शक्ति विद्यमान है ठीक जगत् को कि वह मरे तब के भँस सही उत्पन्न हुआ है।" और इस विद्या का परिणाम क्या हुआ है ? सारे मछार का मेरी यह श्रुतीही है कि वह समस्त संस्कृत रचनसास्त्र में मुझे एक ऐसी उक्ति तो दिखा दे जिसमें यह बतलाया गया हो कि केवल हिन्दुओं का ही उद्धार हाथा भीर दूसरा का नहीं। क्या कहते हैं हमारी जाति और सम्प्रदाय की सीमा के बाहर भी पूज्य तक पहुँचे हुए मनुष्य हैं।" एक बात और है। ईश्वर ने ही अपने सभी माता को कर्मिष्ठ करतवाला हिन्दू अज्ञेयवादी बौद्ध धर्म और निरीश्वरवादी जैन धर्म पर कस धड़ा रख सकता है ?

यद्यपि बौद्ध तथा जैन ईश्वर पर निर्भर नहीं रहते तथापि उनके धर्म की पूरी शक्ति प्रत्येक धर्म के महान् केन्द्रों पर—मनुष्य में ईश्वरत्व के विकास की ओर उन्मुख है। उन्होंने पिता को भले न देखा हो पर पुत्र को अवश्य देखा है। और जिसने पुत्र का देख लिया उसने पिता को भी देख लिया।

भाइयो ! हिन्दुओं के धार्मिक विचारों की मही संक्षिप्त स्वरूपा है। हो सकता है कि हिन्दू अपनी सभी योगताओं को कार्यान्वित करने में असफल रहा हो पर यदि कभी कोई सार्वभौमिक धर्म होता है, तो वह किसी देश या काल से सीमाबद्ध नहीं होगा वह उस मसीह ईश्वर के समुच्च ही असीम होगा जिसका वह उपदेश है। जिसका मूर्त यी कृष्ण और ईसा के अनुयायियों पर, सन्तों पर और पापियों पर समान रूप से प्रकाश विकीर्ण करेगा जो न तो बाह्य होना न बौद्ध न ईसाई और न इस्लाम बल्कि इन सबकी समष्टि होगा किन्तु फिर भी जिसमें विकास के लिए अर्थात् अवकाश होगा जो इतना उदार होगा कि पशुओं के स्तर से किञ्चित् उन्नत भिन्नतम श्रेणी मनुष्य से लेकर अपने हृदय और मस्तिष्क के मुक्तों के कारण मानवता से इतना ऊपर उठ गये उन्नततम मनुष्य तक को जिसके प्रति सारा समाज भयानक हो जाता है और आज जिसके मनुष्य होने में संदेह करते हैं, अपनी बाहुओं से आश्रित कर सके और जगत् में सबको स्थान दे सके। वह धर्म ऐसा होगा, जिसकी नीति में उत्पीड़ित या असहिष्णुता का स्थान नहीं होगा वह प्रत्येक देश और पुरुष में विभ्यता को स्वीकार करेगा और उसका संपूर्ण बल और सामर्थ्य

३ । यदि सर्वविध प्रोक्तं मुने मन्विषया इव । त्वीता ॥१०॥

२ । अथ हिन्दुत्वस्यैव धीमनुचितमेव वा ।

तत्तदेव हिन्दुत्वम् त्वं मम लेखोऽस्तम्भस्यम् ॥ त्वीता ॥११॥

३ । अन्तःकृत्स्नि तु तद्बुद्धेः ॥ वेदान्त सूत्र ॥३॥१६॥



मानवता को अपनी सच्ची, दिव्य प्रकृति का साक्षात्कार करने के लिए सहायता देने में ही केन्द्रित होगा।

आप ऐसा ही धर्म सामने रखिए, और सारे राष्ट्र आपके अनुयायी बन जायेंगे। सम्राट् अशोक की परिषद् बौद्ध परिषद् थी। अकबर की परिषद् अधिक उपयुक्त होती हुई भी, केवल बैठक की ही गोष्ठी थी। किंतु पृथ्वी के कोने कोने में यह घोषणा करने का गौरव अमेरिका के लिए ही सुरक्षित था कि 'प्रत्येक धर्म में ईश्वर है।'

वह, जो हिंदुओं का ब्रह्म, पारसियों का अहुर्मज्द, बौद्धों का बुद्ध, यहूदियों का जिहोवा और ईसाइयों का स्वर्गस्थ पिता है, आपको अपने उदार उद्देश्य को कार्यान्वित करने की शक्ति प्रदान करे। नक्षत्र पूर्व गगन में उदित हुआ और कभी घुंघला और कभी देदीप्यमान होते धीरे धीरे पश्चिम की ओर यात्रा करते करते उसने समस्त जगत् की परिक्रमा कर डाली और अब वह फिर प्राची के क्षितिज में सहस्र गुनी अधिक ज्योति के साथ उदित हो रहा है।

ऐ स्वाधीनता की मातृभूमि कोलम्बिया,<sup>१</sup> तू धन्य है। यह तेरा ही सौभाग्य है कि तूने अपने पड़ोसियों के रक्त से अपने हाथ कभी नहीं भिगोये, तूने अपने पड़ोसियों का सर्वस्व हरण कर सहज में ही धनी और सम्पन्न होने की चेष्टा नहीं की, अतएव समन्वय की ध्वजा फहराते हुए सभ्यता की अग्रणी होकर चलने का सौभाग्य तेरा ही था।

---

१ अमेरिका का दूसरा नाम। कोलम्बस ने इसका आविष्कार किया था, इसलिए इसका नाम कोलम्बिया पडा। स०

## धर्म : भारत की प्रधान आवश्यकता नहीं

( २० सितंबर १८९३ ई० )

ईसाइयों को सत् आलोचना सुनने के लिए सर्वैव तैयार रहना चाहिए, और मुझे विश्वास है कि यदि मैं आप लोगों की कुछ आलोचना करूँ तो आप बुरा न मानेंगे। आप ईसाई लोग जो मूर्तिपूजकों की आत्मा का उधार करने के निमित्त अपने धर्म-प्रचारकों को भेजने के लिए इतने उत्सुक रहते हैं, उनके दरीद्री को भूख से मर जाने से बचाने के लिए कुछ क्यों नहीं करते ? भारतवर्ष में जब प्रधानक अकाल पड़ा था तो सहस्रों और लाखों हिन्दू शूद्रा से पीड़ित होकर मर गये पर आप ईसाइयों ने उनके लिए कुछ नहीं किया। आप लोग सारे हिन्दुस्तान में फिरसे बगाले हैं पर पूर्व का प्रधान अभाव धर्म नहीं है, उनके पास धर्म पर्याप्त है—जसके हुए हिन्दुस्तान के कासों दु बार्त भूखे लोग सूखे मले से रोटी के लिए चिल्ला रहे हैं। वे हमसे रोटी माँगते हैं और हम उन्हें देते हैं पत्थर। खूबसूरतों का धर्म का उपदेश देना उनका अपमान करना है। मूर्तों को दर्शन दिखाना उनका अपमान करना है। भारतवर्ष में यदि कोई पुरोहित द्रव्य-भाषित के लिए धर्म का उपदेश करे, तो वह जाति से श्युत कर दिया जायगा और लोग उस पर धुँकेंगे। मैं यहाँ पर अपने दखि माइयों के निमित्त सहायता माँगने आया था पर मैं यह पूरी तरह समझ गया हूँ कि मूर्तिपूजकों के लिए ईसाई-बर्माबलम्बियों से और बिबेवकर उन्हीके देह में सहायता प्राप्त करना कितना कठिन है।

## बौद्ध धर्म: हिंदू धर्म की निष्पत्ति

( २६ सितम्बर, १८९३ ई० )

मैं बौद्ध धर्मावलम्बी नहीं हूँ, जैसा कि आप लोगो ने सुना है, पर फिर भी मैं बौद्ध हूँ। यदि चीन, जापान अथवा सीलोन उस महान् तथागत के उपदेशो का अनुसरण करते हैं, तो भारतवर्ष उन्हें पृथ्वी पर ईश्वर का अवतार मानकर उनकी पूजा करता है। आपने अभी अभी सुना कि मैं बौद्ध धर्म की आलोचना करनेवाला हूँ, परन्तु उससे आपको केवल इतना ही समझना चाहिए। जिनको मैं इस पृथ्वी पर ईश्वर का अवतार मानता हूँ, उनकी आलोचना मुझसे यह सम्भव नहीं। परन्तु बुद्ध के विषय मे हमारी धारणा यह है कि उनके शिष्यो ने उनकी शिक्षाओ को ठीक ठीक नहीं समझा। हिंदू धर्म (हिंदू धर्म से मेरा तात्पर्य वैदिक धर्म है) और जो आजकल बौद्ध धर्म कहलाता है, उनमे आपस मे वैसा ही सम्बन्ध है, जैसा यहूदी तथा ईसाई धर्मों मे। ईसा मसीह यहूदी थे और शाक्य मुनि हिन्दू। यहूदियो ने ईसा को केवल अस्वीकार ही नहीं किया, उन्हे सूली पर भी चढा दिया, हिन्दुओ ने शाक्य मुनि को ईश्वर के रूप मे ग्रहण किया है और वे उनकी पूजा करते हैं। किन्तु प्रचलित बौद्ध धर्म मे तथा बुद्धदेव की शिक्षाओ मे जो वास्तविक भेद हम हिंदू लोग दिखलाना चाहते हैं, वह विशेषत यह है कि शाक्य मुनि कोई नयी शिक्षा देने के लिए अवतीर्ण नहीं हुए थे। वे भी ईसा के समान धर्म की सम्पूर्ति के लिए आये थे, उसका विनाश करने नहीं। अन्तर इतना ही था कि जहाँ ईसा को प्राचीन यहूदी नहीं समझ पाये, वहाँ बुद्धदेव की शिक्षाओ के महत्त्व को स्वयं उनके शिष्य ही अवगत नहीं कर पाये। जिस प्रकार यहूदी प्राचीन व्यवस्थान की निष्पत्ति नहीं समझ सके, उसी प्रकार बौद्ध भी हिन्दू धर्म के सत्यो की निष्पत्ति को नहीं समझ पाये। मैं यह बात फिर से दुहराना चाहता हूँ कि शाक्य मुनि ध्वंस करने नहीं आये थे, वरन् वे हिन्दू धर्म की निष्पत्ति थे, उसकी तार्किक परिणति और उसके युक्ति-सगत विकास थे।

हिन्दू धर्म के दो भाग है—कर्मकांड और ज्ञानकांड। ज्ञानकांड का विशेष अध्ययन सन्यासी लोग करते हैं।

आत्मकांड मे ज्ञान-येत नहीं है। आत्मकांड मे ज्ञान-येत नहीं है।

संन्यासी हो चकृत हैं, और तब बोनो जातियाँ समाप्त हो जाती हैं। धर्म में जाति-भेद नहीं है। जाति तो एक सामाजिक संस्था मात्र है। सायब मुनि स्वयं संन्यासी थे और यह उनकी ही नरिमा है कि उनका हृदय इतना विस्मय था कि उन्होंने बंबों के छिपे हुए सत्तों का निकालकर उनको समस्त संसार में बिक्री में कर दिया। इस ध्यत् म सबसे पहले वे ही ऐसे हुए, जिन्होंने धर्म प्रचार की प्रथा पलायी—इतना ही नहीं बल्कि मनुष्य को दूसरे धर्म से अपने धर्म में दक्षिण करने का विचार भी सबसे पहले जन्हीके मन में उचित हुआ।

सर्वभूतों के प्रति और विशेषकर ब्रह्मानी तथा हीन जनो के प्रति अस्मृत सहानुभूति में ही तत्काल का महान् पीरन सचिहित है। उनके कुछ सिष्य ब्राह्मण थे। बुद्ध के बर्माणसे के समय संस्कृत भाषा की जनभाषा नहीं रह गयी थी। वह उस समय केवल पंडितों के ग्रंथों की ही भाषा थी। बुद्धके के कुछ ब्राह्मण सिष्यों ने उनके उपदेशों का अनुवाद संस्कृत भाषा में करना चाहा था पर बुद्धके उनसे कहा गयी कहते "मैं बलि और साधारण जनो के लिए आया हूँ अतः जनभाषा में ही मुझे बोलने दो। और इसी कारण उनके अधिकार उपदेश अब तक भारत की तत्कालीन लोकभाषा में पाये जाते हैं।

बर्धनशास्त्र का स्थान जो भी हो तत्काल का स्थान जो भी हो पर जब तक इस लोक में मृत्यु नाम की वस्तु है जब तक मानव-हृदय में दुर्बलता वैसी वस्तु है जब तक मनुष्य के अतःकरण से दुर्बलताजनित कर्म कर्म बाहर निकलता है तब तक इस संसार में ईश्वर में विश्वास भी क्वायम रहेगा।

जहाँ तक बर्धन की बात है, तत्काल के सिष्यों ने वेदों की समानता बट्टाओं पर बहुत हाथ-पैर पटके पर वे उसे तोड़ न सके और दूसरी ओर उन्होंने जनता के बीच से उस समानता परमेवर को उठा लिया जिसमें हर नर-नारी इतने अनुपम से आभय लेता है। फल यह हुआ कि बौद्ध धर्म को भारतवर्ष में स्वाभाविक मृत्यु प्राप्त करनी पड़ी और आज इस धर्म की जन्मभूमि भारत में अपने को बौद्ध कहने वाला एक भी स्त्री या पुरुष नहीं है।

किन्तु इसके साथ ही ब्राह्मण धर्म ने भी कुछ खोया—समाज-सुधार का वह उत्साह प्राणिमात्र के प्रति यह आश्चर्यजनक सहानुभूति और कर्मता तथा वह अस्मृत रसायन जिस बौद्ध धर्म ने जन जन को प्रदान किया था एवं जिसके फलस्वरूप प्राचीन समाज इतना महान् हो गया था कि तत्कालीन भारत के सम्बन्ध में सिष्य नाम एक यूनानी इतिहासकार को यह सिखना पड़ा कि एक भी एता हिन्दू नहीं बिरानी देता जो सिष्या-प्रापक करता हो एक भी ऐसी हिन्दू नारी नहीं है, जो बलिगता न हो।

हिन्दू धर्म बौद्ध धर्म के बिना नहीं रह सकता और न बौद्ध धर्म हिन्दू धर्म के बिना ही। तब यह देखिए कि हमारे पारस्परिक पार्थक्य ने यह स्पष्ट रूप से प्रकट कर दिया है कि बौद्ध, ब्राह्मणों के दर्शन और मस्तिष्क के बिना नहीं ठहर सकते, और न ब्राह्मण बौद्धों के विशाल हृदय के बिना। बौद्ध और ब्राह्मणों के बीच यह पार्थक्य भारतवर्ष के पतन का कारण है। यही कारण है कि आज भारत में तीस करोड़ भिखमगों निवास करते हैं, और वह एक सहस्र वर्षों से विजेताओं का दास बना हुआ है। अतः आइए, हम ब्राह्मणों की इस अपूर्व मेधा के साथ तथागत के हृदय, महानुभावता और अद्भुत लोकहितकारी शक्ति को मिला दें।

संन्यासी हो सकते हैं, और तब बोनो जातियाँ समान हो जाती हैं। धर्म में जाति-भेद नहीं है। जाति तो एक सामाजिक संस्था मात्र है। शाक्य मुनि स्वयं संन्यासी थे और यह उनकी ही परिभाषा है कि उनका हृदय इतना विद्यालय था कि उन्होंने 'बेबी' के छिपे हुए सत्यों को निकालकर उनको समस्त संसार में विकीर्ण कर दिया। इस अन्त में सबसे पहले वे ही ऐसे हुए, जिन्होंने धर्म-मन्थन की प्रथा खोली—इतना ही नहीं बल्कि मनुष्य को दूसरे धर्म से अपने धर्म में दीक्षित करने का विचार भी सबसे पहले उन्होंने मन में उचित हुआ।

सर्वभूतों के प्रति और विशेषकर अज्ञानी तथा बीग जनों के प्रति अद्भुत सहा-नुमति में ही उपाय का महान् गौरव परिहित है। उनके कुछ शिष्य ब्राह्मण थे। बुद्ध के धर्मोपदेश के समय संस्कृत भारत की जनभाषा नहीं रह गयी थी। वह उस समय केवल पंडितों के प्रयोग की ही भाषा थी। बुद्ध के कुछ शिष्य शिष्यों ने उनके उपदेशों का अनुवाद संस्कृत भाषा में करना चाहा था पर बुद्ध ने उनसे कहा यही कहते 'मैं बलि और साधारण जनों के लिए जाया हूँ अतः जनभाषा में ही मुझे बोलने दो। और इसी कारण उनके अधिकांश उपदेश अब तक भारत की तत्कालीन लोकभाषा में पाये जाते हैं।

परमेश्वर का स्वान जो भी हो तत्त्वज्ञान का स्वान जो भी हो पर जब तक इस लोक में मृत्यु नाम की वस्तु है जब तक मानव-हृदय में दुर्बलता बँधी वस्तु है, जब तक मनुष्य के अंतःकरण में दुर्बलता-जन्मि कष्ट अन्तः बाहर निकलता है तब तक इस संसार में ईश्वर में विश्वास ही क्षाम्य रहेगा।

जहाँ तक धर्म की बात है उपाय के शिष्यों ने बेबी की सनातन चट्टानों पर बहुत हाथ-पैर पड़े पर वे उसे तोड़ न सके और दूसरी ओर उन्होंने जनता के बीच से उस सनातन परमेश्वर को उठा लिया जिसमें हर तर-नाटी इतने अनुराग से आश्रय देता है। फल यह हुआ कि बौद्ध धर्म को भारतवर्ष में स्वामाजिक मृत्यु प्राप्त करनी पड़ी और आज इस धर्म की जन्मभूमि भारत में अपने को बौद्ध कहने-बाला एक भी स्त्री या पुरुष नहीं है।

किन्तु इसके साथ ही ब्राह्मण धर्म ने भी कुछ खोया—समाज-मुन्थन का वह उदाह्र प्राधिपत्य के प्रति वह आश्चर्यजनक सहाय्य और कक्षा तथा वह अद्भुत रसात्मक जिस बौद्ध धर्म ने जन जन को प्रभाव किया था एवं जिसके फलस्वरूप भारतीय समाज इतना महान् हो गया था कि तत्कालीन भारत के सम्बन्ध में लिखने-वाले एक पुनानी इतिहासकार को यह लिखना पड़ा कि एक भी ऐसा हिन्दू नहीं दिखाने देता जो विषया-भाषण करता हो एक भी ऐसी हिन्दू नारी नहीं है जो बलिगता न हो।

के सार-भाग को आत्मसात करके पुष्टि-लाभ करे और अपने वैशिष्ट्य की रक्षा करते हुए अपनी निजी वृद्धि के नियम के अनुसार वृद्धि को प्राप्त हो।

इस धर्म-महासभा ने जगत् के समक्ष यदि कुछ प्रदर्शित किया है, तो वह यह है उसने यह सिद्ध कर दिया है कि शुद्धता, पवित्रता और दयाशीलता किसी सप्र-दायविशेष की ऐकान्तिक सम्पत्ति नहीं है, एव प्रत्येक धर्म ने श्रेष्ठ एव अतिशय उन्नत-चरित्र स्त्री-पुरुषों को जन्म दिया है। अब इन प्रत्यक्ष प्रमाणों के बावजूद भी यदि कोई ऐसा स्वप्न देखे कि अन्यान्य सारे धर्म नष्ट हो जायेंगे और केवल उसका धर्म ही जीवित रहेगा, तो उस पर मैं अपने हृदय के अन्तस्तल से दया करता हूँ और उसे स्पष्ट बतलाये देता हूँ कि शीघ्र ही, सारे प्रतिरोधों के बावजूद, प्रत्येक धर्म की पताका पर यह लिखा रहेगा—‘सहायता करो, लडो मत।’ ‘पर-भाव-ग्रहण, न कि पर-भाव-विनाश’, ‘समन्वय और शांति, न कि मतभेद और कलह।’

## अंतिम अधिवेशन में भाषण

( २७ सितम्बर, १८९३ ई० )

विश्व-धर्म-महासभा एक मूर्तिमान तथ्य सिद्ध हो गयी है। क्यामय प्रभु ने उन लोगों की सहायता की है, जिन्होंने इसका आयोजन किया तथा उनके परम निःस्वार्थ धर्म की सफलता से विमूषित किया है।

उन महापुरुषों को मेरा धन्यवाद है, जिनके विचारक हृदय तथा सत्य के प्रति मनुष्य ने पहले इस अज्ञात स्वप्न को देखा और फिर उसे कार्यरूप में परिणत किया। उन उदार भावों को मेरा धन्यवाद जिनसे यह समारंभ आप्लावित होता रहा है। इस प्रबुद्ध भोक्तृमण्डली को मेरा धन्यवाद जिसने मुझ पर अधिकृत कृपा रखी है और जिसने मठ-मठान्तरो के मनोमास्त्रिम को इस्का करने का प्रयत्न करनेवाके प्रत्येक विचार का उत्कार किया है। इस समसुरता में कुछ बेसुरे स्वर भी बीच-बीच में सुन गये हैं। उन्हें मेरा विशेष धन्यवाद क्योंकि उन्होंने अपने स्वर वैधिय से इस समरसता को और भी मधुर बना दिया है।

धार्मिक एकता की सर्वसामान्य मिति के विषय में बहुत कुछ कहा जा चुका है। इस समय में इस सम्बन्ध में अपना मत आपके समक्ष नहीं रखूँगा। किन्तु यदि यहाँ कोई यह आशा कर रहा है कि यह एकता किसी एक धर्म की विषय और बाकी सब धर्मों के विनाश से सिद्ध होगी तो उनसे मेरा कहना है कि 'माई, तुम्हारी यह आशा असम्भव है। क्या मैं यह चाहता हूँ कि ईसाई लोग हिन्दू हो जायें? क्यापि नहीं ईस्वर ऐसा न करे। क्या मेरी यह इच्छा है कि हिन्दू या बौद्ध लोग ईसाई हो जायें? ईस्वर इस इच्छा से बचाये।

बौद्ध भूमि में जो विनाश हुआ और मिट्टी बालू तथा बज्र उसके चारों ओर रख दिये गये। तो क्या वह बौद्ध भिष्टी हो जाता है अथवा बालू या बज्र बन जाता है? नहीं वह तो बूझ ही होता है, वह अपनी बुद्धि के नियम से ही बढ़ता है—बालू बज्र और मिट्टी को अपने में पचाकर, उनको उष्मिज पदार्थ में परिवर्तित करके एक बूझ हो जाता है।

ऐसा ही धर्म के सर्वत्र में भी है। ईसाई को हिन्दू या बौद्ध नहीं हो जाना चाहिए, और न हिन्दू अथवा बौद्ध को ईसाई ही। पर ही प्रत्येक को चाहिए कि वह दूसरों



राजयोग



## भूमिका

ऐतिहासिक जगत् के प्रारम्भ से लेकर वर्तमान काल तक मानव-समाज में अनेक अलौकिक घटनाओं के उल्लेख देखने को मिलते हैं। आज भी, जो समाज आधुनिक विज्ञान के भरपूर आलोक में रह रहे हैं, उनमें भी ऐसी घटनाओं की गवाही देनेवाले लोगो की कमी नहीं। पर हाँ, ऐसे प्रमाणों में अधिकांश विश्वास-योग्य नहीं, क्योंकि जिन व्यक्तियों से ऐसे प्रमाण मिलते हैं, उनमें से बहुतेरे अज्ञ हैं, अधविश्वासी हैं अथवा धूर्त हैं। बहुधा यह भी देखा जाता है कि लोग जिन घटनाओं को अलौकिक कहते हैं, वे वास्तव में नक़ल हैं। पर प्रश्न उठता है, किसकी नक़ल? यथार्थ अनुसन्धान किये बिना कोई बात विल्कुल उडा देना सत्यप्रिय वैज्ञानिक-मन का परिचय नहीं देता। जो वैज्ञानिक सूक्ष्मदर्शी नहीं, वे मनोराज्य की नाना प्रकार की अलौकिक घटनाओं की व्याख्या करने में असमर्थ हो उन सबका अस्तित्व ही उडा देने का प्रयत्न करते हैं। अतएव वे तो उन व्यक्तियों से अधिक दोषी हैं, जो सोचते हैं कि वादलो के ऊपर अवस्थित कोई पुरुषविशेष या बहुत से पुरुषगण उनकी प्रार्थनाओं को चुनते हैं और उनके उत्तर देते हैं—अथवा उन लोगो से, जिनका विश्वास है कि ये पुरुष उनकी प्रार्थनाओं के कारण सत्सारा का नियम ही बदल देंगे। क्योंकि इन वाद के व्यक्तियों के सम्बन्ध में यह दुहाई दी जा सकती है कि वे अज्ञानी हैं, अथवा कम से कम यह कि उनकी शिक्षा-प्रणाली दूषित रही है, जिन्होंने उन्हें ऐसे अप्राकृतिक पुरुषों का सहारा लेने की सीख दी और जो निर्भरता अब उनके अवनत-स्वभाव का एक अंग ही बन गयी है। पर पूर्वोक्त शिक्षित व्यक्तियों के लिए तो ऐसी किसी दुहाई की गुजाइश नहीं।

हजारों वर्षों से लोगो ने ऐसी अलौकिक घटनाओं का पर्यवेक्षण किया है, उनके सम्बन्ध में विशेष रूप से चिन्तन किया है और फिर उनमें से कुछ साधारण तत्त्व निकाले हैं, यहाँ तक कि, मनुष्य की धर्म-प्रवृत्ति की आधारभूमि पर भी विशेष रूप से, अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ, विचार किया गया है। इन समस्त चिन्तन और विचारों का फल यह राजयोग-विद्या है। यह राजयोग आजकल के अधिकांश वैज्ञानिकों को अज्ञान्य धारा का अवलम्बन नहीं करता—वह उनकी भाँति उन घटनाओं के अस्तित्व को एकदम उडा नहीं देता, जिनकी व्याख्या दुल्ह हो, प्रत्युत वह तो धीरे-धीरे, पर स्पष्ट शब्दों में, अन्वविश्वान से भरे व्यक्ति को बता देता है कि यद्यपि



## भूमिका

ऐतिहासिक जगत् के प्रारम्भ से लेकर वर्तमान काठ तक मानव-समाज में अनेक अलौकिक घटनाओं के उल्लेख देखने को मिलते हैं। आज भी, जो समाज आधुनिक विज्ञान के भग्नूर आशोक में रह रहे ह, उनमें भी ऐसी घटनाओं की गवाही देनेवाले लोगो की कमी नहीं। पर हाँ, जैसे प्रमाणों में अधिकांश विश्वास-योग्य नहीं, क्योंकि जिन व्यक्तियों से जैसे प्रमाण मिलते ह, उनमें से बहुतेरे अज्ञ हैं, अवविश्वासी ह अथवा भूत ह। बहुधा यह भी देखा जाता है कि लोग जिन घटनाओं को अलौकिक कहते हैं, वे वास्तव में नकल ह। पर प्रश्न उठता है, किसकी नकल? यथार्थ अनुसन्धान किये बिना कोई बात विस्तृत उदा देना मन्यप्रिय वैज्ञानिक-मन का परिचय नहीं देता। जो वैज्ञानिक सूक्ष्मदर्शी नहीं, वे मनोराज्य की नाना प्रकार की अलौकिक घटनाओं की व्याख्या करने में असमर्थ हो उन सबका अस्तित्व ही उदा देने का प्रयत्न करने हैं। अतएव वे तो उन व्यक्तियों से अधिक दोषी हैं, जो सोचते हैं कि बादलों के ऊपर अवस्थित कोई पुरुषविशेष या बहून से पुरुषगण उनकी प्रार्थनाओं का सुनते ह और उनके उत्तर देते हैं—अथवा उन लोगों से, जिनका विश्वास है कि वे पुरुष उनकी प्रार्थनाओं के कारण मसार का नियम ही बदल देंगे। क्योंकि उन बात के व्यक्तियों के सम्मुख में यह दुहाई दी जा सकती है कि वे अज्ञानी है, अथवा क्रम से क्रम यह कि उनकी विश्वास-प्रणाली दूषित रही है जिसने उन्हें जैसे अलौकिक घटना का उद्घाटन देने की शोष दी और जा निर्भरता अब उनके अवनत-स्वभाव का एक अंग ही बन गयी है। पर पूर्वोक्त निश्चित व्यक्तियों के लिए जो ऐसी छिया दृष्टि ही गुजाराय नहीं।

हजारों वर्षों से लोगो ने ऐसी अलौकिक घटनाओं का पर्यवेक्षण किया है, उनमें सम्भव में विशेष रूप से विन्दन किया है और फिर जिनमें से कुछ या राणा जन्म निकाले हैं, उन्हें उदा कि, मुख्य ही रम-प्रवृत्ति की आध्यात्मिक परीक्षाओं से, अथवा सूत्रों के साथ, कि आर किया गया है। इन सम्भव विचारों के विचारों का एक यह गुणोत्कर्षण है। यह परमाणु आत्मिक के अलौकिक विचारों की प्रकल्पन का अर्थपूर्ण ही करना—यह उनकी अलौकिक घटनाओं के अस्तित्व का उद्घाटन उदा नहीं देता, जिनकी व्याख्या सूत्रों के अस्तित्व का उद्घाटन उदा नहीं देता, अथवा अलौकिक के अर्थपूर्ण ही नाव में, पर उदा दृष्टि ही, अथवा अलौकिक के अर्थपूर्ण ही

अधौकिक घटनाएँ, प्रायनायाँ की पूर्ति और विरवास की शक्ति ये सब सत्य हैं तथापि इनका स्वप्नीकरण एसी कुसंस्कारभरी ध्याना द्वारा नहीं हो सकता कि य सब ध्यापार बादरों के ऊपर अवस्थित किसी व्यक्ति या कुछ व्यक्तिमा द्वारा सम्पन्न होते हैं। वह भाषणा करता है कि प्रत्येक मनुष्य सारी मानव-जाति के पीछे वर्तमान ज्ञान और शक्ति के अनन्त सागर की एक छुट्टी कुस्या मात्र है। वह सिद्धा यता है कि जिस प्रकार बामनाएँ और अभाव मानव के अन्तर में हैं उसी प्रकार उसके नीचे ही उन अभावों के मोचन की शक्ति भी है और वहाँ कहीं और जब कभी किसी क्षमता अभाव या प्रारंभ की पूर्ति होती है, तो समझना होगा कि वह हम जनस्य मध्यार से ही पुनः होती है, किसी अप्राकृतिक पुरुष से नहीं। अप्राकृतिक पुरुषों की नामना मानव में काय की शक्ति को मजे ही कुछ परिमाण में उद्दीप्त कर देना हा पर उसमें जाध्यात्मिक अवन्ति भी भात्री है। उसमें स्वाधीनता बची जाती है मम और कुसंस्कार हृदय पर अधिकार जमा छत है तथा 'मनुष्य स्वभाव से ही पुनःप्रवृत्ति है' एना यपकर विरवास हममें पर कर छता है। योपी कहते हैं कि अप्राकृतिक नाम की कोई चीज नहीं है पर ही प्रकृति में ही प्रकार की अमि स्थितियाँ हैं—एक है स्पून और दूसरी मूरम। मूरम कारण है और स्पून कार्य। स्पून महज ही उद्दिष्टों द्वारा उपलब्ध की जा सकता है, पर मूरम नहीं। राजयोग के अन्वय में मूरमतर मनुभूति अजित होती है।

भारतवर्ष में जितने बचमजानुयाया वर्धनशास्त्र हैं, उन सबका एक हा लक्ष्य है, और वह है—मूर्मता प्राप्त करके भारमा का मुक्त कर छना। इसका उपाय है धाम। 'धाम' धर्म बहुनाबध्यायी है। शास्त्र और बचन्त उभय मत किसी न किसी प्रकार के धाम का ममर्षन करत हैं।

प्रस्तुत पुस्तक का विषय है—उद्योग। पानत्रलमूर्म राजयोग का शास्त्र है और उस पर लक्ष्य प्रामाणिक धर्म्य है। अध्याय्य दार्शनिकों का किसी किसी दार्शनिक शिष्य में पत्रलि से मउभह होने पर भी बसनी निरिपन रूप से उनकी मायना प्रभापी का अतमादन करत है। मगक न स्पुपार्क में कुछ उाषाँ का हम धाम की सिद्धा देने के लिए जा बलुगार्द ही पी ब ही इस पुस्तक के प्रथम अंश में निरुद्ध है। और इससे पहले म पत्रलि के मूर्म उन मूर्म के अर्थ और उन पर अर्पित शिका भी मर्मिर्षिट कर ही मरी है। यहाँ तक लक्ष्य हा मका पारिमा शिक धाम का प्रयास न करत और बार्गीला ही मत्र और मरल जाया में निगन का धाम दिया गया है। इनके प्रथमाम में मारनामिर्षा के लिए कुछ मरल और विभर उद्योग दिए गए हैं पर उन तथा का मर्द शिष्य रूप में कारण कर दिया जाया है कि धाम के कुछ कारण अर्थ का उाडकर, निरानर धाम-निधा के लिए

गुरु का सदा पास रहना आवश्यक है।' वातलाप के रूप में प्रदत्त ये सब उपदेश यदि लोगों के हृदय में इस विषय पर और भी अधिक जानने की पिपासा जगा दे, तो फिर गुरु का अभाव न रहेगा।

पातजल दर्शन साख्य मत पर स्थापित है। इन दोनों मतों में अन्तर बहुत ही थोड़ा है। इनके दो प्रधान मतभेद ये हैं—पहला तो, पतजलि आदिगुरु के रूप में एक सगुण ईश्वर की सत्ता स्वीकार करते हैं, जब कि साख्य का ईश्वर लगभग पूर्णताप्राप्त एक व्यक्ति मात्र है, जो कुछ समय तक एक सृष्टि-कल्प का शासन करता है। और दूसरा, योगीगण आत्मा या पुरुष के समान मन को भी सर्वव्यापी मानते हैं, पर साख्य मतवाले नहीं।

—ग्रन्थकर्ता<sup>१</sup>

प्रत्येक आत्मा अभ्यक्त ब्रह्म है।

बाह्य एवं अन्तःप्रकृति का बन्धीभूत करके आत्मा के इस ब्रह्मभाव को व्यक्त करना ही जीवन का चरम लक्ष्य है।

कर्म उपासना मनःसम अथवा ज्ञान इनमें से एक एक से अधिक या सभी उपायों का सहारा लेकर अपना ब्रह्मभाव व्यक्त करो और मुक्त हो जाओ।

बस यही धर्म का सबस्व है। मत, अनुष्ठान पद्धति शास्त्र मन्दिर अथवा अन्य बाह्य क्रिया-कलाप तो उसके गौण व्योरे मात्र हैं।



## प्रथम अध्याय

### ऋवतरणिका

हमारे समस्त ज्ञान स्वानुभूति पर आधारित हैं। जिसे हम आनुमानिक ज्ञान कहते हैं, और जिसमें हम सामान्य से सामान्यतर या सामान्य से विशेष तक पहुँचते हैं, उसकी बुनियाद स्वानुभूति है। जिनको निश्चित विज्ञान<sup>१</sup> कहते हैं, उनकी सत्यता सहज ही लोगों की समझ में आ जाती है, क्योंकि वे प्रत्येक व्यक्ति से कहते हैं—“तुम स्वयं यह देख लो कि यह बात सत्य है अथवा नहीं, और तब उस पर विश्वास करो।” वैज्ञानिक तुमको किसी भी विषय पर विश्वास कर बैठने को न कहेंगे। उन्होंने स्वयं कुछ विषयों का प्रत्यक्ष अनुभव किया है और उन पर विचार करके वे कुछ सिद्धान्तों पर पहुँचे हैं। जब वे अपने उन सिद्धान्तों पर हमसे विश्वास करने के लिए कहते हैं, तब वे जनसाधारण की अनुभूति पर उनके सत्यासत्य के निर्णय का भार छोड़ देते हैं। प्रत्येक निश्चित विज्ञान की एक सामान्य आधार-भूमि है और उससे जो सिद्धान्त उपलब्ध होते हैं, इच्छा करने पर कोई भी उनका सत्यासत्य तत्काल समझ ले सकता है। अब प्रश्न यह है, धर्म की ऐसी सामान्य आधार-भूमि कोई है भी या नहीं? हमें इसका उत्तर देने के लिए ‘हाँ’ और ‘नहीं’, दोनों कहने होंगे।

ससार में धर्म के सम्बन्ध में सर्वत्र ऐसी शिक्षा मिलती है कि धर्म केवल श्रद्धा और विश्वास पर स्थापित है, और अधिकांश स्थलों में तो वह भिन्न भिन्न मतों की समष्टि मात्र है। यही कारण है कि धर्मों के बीच केवल लड़ाई-झगडा दिखायी देता है। ये मत फिर विश्वास पर स्थापित हैं। कोई कोई कहते हैं कि बादलों के ऊपर एक महान् पुरुष है, वही सारे ससार का शासन करता है, और वक्ता महोदय केवल अपनी बात के बल पर ही मुझसे इसमें विश्वास करने को कहते हैं। मेरे भी ऐसे अनेक भाव हो सकते हैं, जिन पर विश्वास करने के लिए मैं दूसरों से कहता हूँ,

---

१ निश्चित विज्ञान (exact science)—अर्थात् वे विज्ञान, जिनके तत्त्व इतनी दूर तक सत्य निर्णित हुए हैं कि गणना के बल पर उनके द्वारा भविष्य निश्चय-पूर्वक कहा जा सकता है, जैसे गणित, गणित-ज्योतिष इत्यादि। स०

सोचते हैं कि हम सदा जीवित रहेंगे। किसी समय राजा युधिष्ठिर से यह प्रश्न पूछा गया, "इस पृथ्वी पर सबसे आश्चर्य की बात क्या है?" राजा ने उत्तर दिया, "हमारे चारों ओर प्रतिदिन लोग मर रहे हैं, फिर भी जो जीवित हैं, वे समझते हैं कि वे कभी मरेंगे ही नहीं।" वस, यही माया है।

हमारी बुद्धि में, हमारे ज्ञान में, यही क्यों, हमारे जीवन की प्रत्येक घटना में ये विषम विरुद्ध भाव दिखायी पड़ते हैं। सुख दुःख का पीछा करता है और दुःख सुख का। एक सुधारक उठता है और किसी राष्ट्र के दोषों को दूर करना चाहता है। पर इसके पहले कि वे दोष दूर हो, हजार नये दोष दूसरे स्थान में उत्पन्न हो जाते हैं। यह बस एक ढहते हुए पुराने मकान के समान है। तुम उस मकान के एक भाग की मरम्मत करते हो, तो उसका कोई दूसरा भाग ढह जाता है। भारत में हमारे समाज-सुधारक जीवन भर जवरन वैवच्य-धारण रूपी दोष के विरुद्ध आवाज उठाते हैं और उसे दूर करने का प्रयत्न करते हैं। तो पश्चिमी देशों में विवाह न होना ही सबसे बड़ा दोष है। एक ओर अविवाहिताओं का कष्ट दूर करने में सहायता करनी होगी, तो दूसरी ओर विधवाओं के आँसू पोछने का प्रयत्न करना होगा। यह तो बस पुरानी गठिया की बीमारी के समान है—उसे सिर से भगाओ, तो कमर में आ जाती है, कमर से भगाओ, तो पैर में उतर जाती है। सुधार करने-वाले उठते हैं और शिक्षा देते हैं कि विद्या, धन, सस्कृति कुछ इने-गिनो के हाथों ही नहीं रहनी चाहिए, और वे इनको सर्वसाधारण तक पहुँचा देने का भरसक प्रयत्न करते हैं। हो सकता है, इससे कुछ लोग अधिक सुखी हो जायँ, पर जैसे जैसे ज्ञानानुशीलन बढ़ता जाता है, वैसे वैसे शारीरिक सुख भी कम होने लगता है। सुख का ज्ञान अपने साथ ही दुःख का ज्ञान भी लाता है। तब हम फिर किस मार्ग का अवलम्बन करें? हम लोग जो कुछ थोड़ा सा सुख भोगते हैं, दूसरे स्थान में उससे उतने ही परिमाण में दुःख भी उत्पन्न होता है। वस, यही नियम है—सब वस्तुओं पर यही नियम लागू होता है। जो युवक हैं, जिनका खून अभी गरम है, वे इस बात को शायद स्पष्ट रूप से समझ न पायें, पर जिन्होंने धूप में बाल पकाये हैं, अपने जीवन में आँधी और तूफान के दिन देखे हैं, वे इसे सहज ही समझ लेंगे। वस, यही माया है। दिन-रात ये बातें घट रही हैं, पर इनका ठीक ठीक समाधान करना असम्भव है। ऐसा भला क्यों होता है? इस प्रश्न का उत्तर पाना सम्भव नहीं, क्योंकि प्रश्न ही तर्कसगत नहीं है। जो बात घट रही है, उसमें न 'कैसे' है, न 'क्यों', हम बस इतना ही जानते हैं कि वह है और हमारा उसमें कोई हाथ नहीं। यहाँ तक कि उसकी धारणा करना—अपने मन में उसका ठीक ठीक चित्र खींचना भी हमारी शक्ति के बाहर है। तब हम भला उसे कैसे सुलझायें?

बत इस संसार की गति के तथ्यार क वर्णन का नाम माया है। साधारणतया साग यह बात सुनकर भयभीत हो जाते हैं। हमें साहसी होना पड़ेगा। घटनाओं पर परदा डालना राग का प्रतिचार नहीं है। कृत्यों से पीछा किये जाने पर जिस प्रकार छरणास अपने मुँह को टीलों में छिपाकर अपने को सुरक्षित समझ बैठता है, उसी प्रकार हम लोग भी आशावादी होकर छिप उस छरणास के समान आचरण करते हैं। पर यह कोई उपाय नहीं है। दूसरी ओर, सांसारिक जीवन की प्रचुरता सुख और स्वच्छन्ता भोगनेवासे इस मायावाद के सम्बन्ध में बड़ी आपत्तियाँ उठाते हैं। इस वेद (इमैण्ड) में निराशावादी होना बहुत कठिन है। सभी मुझसे कहते हैं—संसार का कार्य कितने सुन्दर रूप से चल रहा है, संसार कितना उपतिथीस है! किन्तु उनका अपना जीवन ही उनका संसार है। एक पुराना प्रस्न उठा है—ईसाई धर्म ही एकमात्र धर्म है। क्यों? इसलिए कि ईसाई धर्म को माननेवाके सभी राष्ट्र समृद्धिप्राप्ती हैं। पर इस प्रकार की युक्ति से तो यह सिद्धान्त स्वयं ही भ्रामक सिद्ध हो जाता है क्योंकि अन्य राष्ट्रों का दुर्भाग्य ही तो ईसाई धर्माधिकारी राष्ट्रों की समृद्धि का कारण है और एक का सीमाप्य बिना दूसरे का शून्य नूँसे नहीं बनता। यदि सारी पृथ्वी ही ईसाई धर्म को मानने लग जाय तब तो मनुष्यस्वरूप कोई क-ईसाई राष्ट्र न रहने के कारण ईसाई राष्ट्र स्वयं वरिष्ठ हो जायगा। वत यह युक्ति अपना ही कण्ठन कर लेती है। मनु उन्मिन्न पर भीषित रहते हैं, मनुष्य मनुष्यों पर, और सबसे बराब बात तो यह है कि मनुष्य एक दूसरे पर भीषित रहते हैं—बलवान दुर्बल पर। वस ऐसा ही सर्वत्र हो रहा है। और यही माया है। इसका समाधान तुम क्या करते हो? हम प्रतिदिन नयी नयी युक्तियाँ सुनते हैं। कोई कोई कहते हैं कि अन्त में सबका कल्याण होगा। मान लो कि हमने वह बात स्वीकार कर ली तो अब प्रस्न यह है कि धुम की साधना का क्या केवल वैसाधिक उपाय ही है? वैसाधिक रीति को छोड़कर क्या धुम हाथ धुम नहीं हो सकता? वर्तमान मनुष्यों के बंधन सुखी होने किन्तु इस समय इस भीषण दुःख-कष्ट का होना क्यों बरूरी है? इसका समाधान नहीं है। यही माया है।

किन्तु, हम बहुधा सुनते हैं कि अधुन विकास के क्रम में कमजोर बीरे बीरे हुए होते जायेंगे और संसार से शेष के इस प्रकार कमजोर हुए हो जाने पर अन्त में केवल धुम ही धुम रहे जायगा। यह बात सुनने से तो बड़ी बन्धी कण्ठी है। इस संसार में जिनके पास किसी बात का बन्धाव नहीं जिन्हें रोक एड़ी चोटी का पचीना एक करना नहीं पड़ता जिन्हें कमविकास की बन्धी में पिसना नहीं पड़ता उन लोगों के धम्म को इस प्रकार के सिद्धान्त बड़ा सकते हैं, और उनके लिये ये सिद्धान्त

सचमुच अत्यन्त हितकर और शान्तिप्रद है। साधारण जनसमूह दुःख-कष्ट भोगे—उससे उनका क्या? वे मर मर भी जायें—उसके लिए वे क्यों छटपट करे? ठीक है, पर यह युक्ति आदि से अन्त तक भ्रमपूर्ण है। पहले तो, इन लोगो ने बिना किसी प्रमाण के ही यह धारणा कर ली है कि मसार में अभिव्यक्त शुभ और अशुभ, दोनो विल्कुल निरपेक्ष सत्य है। और दूसरे, इससे भी अधिक दोषयुक्त धारणा तो यह है कि शुभ का परिमाण क्रमशः बढ़ता जा रहा है और अशुभ क्रमशः घटता जा रहा है। अतएव एक समय ऐसा आयेगा, जब अशुभ का अशः विकास द्वारा इस प्रकार घटते घटते अन्त में विल्कुल शून्य हो जायगा और केवल शुभ ही बच रहेगा। ऐसा कहना है तो बड़ा सरल, पर क्या यह प्रमाणित किया जा सकता है कि अशुभ परिमाण में घटता जा रहा है? क्या अशुभ की भी क्रमशः वृद्धि नहीं हो रही है? उदाहरणार्थ, एक जगली मनुष्य को ले लो। वह मन का सस्कार करना नहीं जानता, एक अक्षर तक नहीं पढ़ सकता, लिखना किसे कहते हैं, उसने कभी सुना तक नहीं। यदि उसे कोई गहरी चोट लग जाय, तो वह शीघ्र चगा हो उठता है। पर हम हैं, जो खरोच लगते ही मर जाते हैं। मशीनो से चीजें सुलभ और सस्ती होती जा रही हैं, उनसे उन्नति और विकास के मार्ग की बाधाएँ दूर होती जा रही हैं, पर साथ ही, एक के घनी होने के लिए लाखो लोग पिसे जा रहे हैं—उधर एक के घनी होने के लिए इधर हज़ारो लोग दरिद्र से दरिद्रतर होते जा रहे हैं, और असह्य मानव-समूह क्रीतदास बनाया जा रहा है। जगत् की रीति ही ऐसी है। पाशवी प्रकृतिवाले मनुष्य का सुख-भोग इन्द्रियो में आवद्ध रहता है, उसके सुख और दुःख इन्द्रियो में ही रहते हैं। यदि उसे पर्याप्त भोजन न मिले, तो वह दुःखी हो जाता है। यदि उसका शरीर अस्वस्थ हो जाय, तो वह अपने को अभाग्य समझता है। इन्द्रियो में ही उसके सुख और दुःख दोनो का आरम्भ और अन्त होता है। जैसे जैसे वह उन्नति करता जाता है, जैसे जैसे उसके सुख की सीमा-रेखा विस्तृत होती जाती है, वैसे वैसे उसका दुःख भी, उसी परिमाण में, बढ़ता जाता है। जगल में रहनेवाला मनुष्य ईर्ष्या के वश में होना नहीं जानता, वह नहीं जानता कि कचहरी में जाना, नियमित रूप से कर अदा करना, समाज द्वारा निन्दित होना, पैशाचिक मानव-प्रकृति से उत्पन्न भीषण अत्याचार से अर्हनिश शासित होना, जो एक दूसरे के हृदय के गुप्त से गुप्त भावो का अन्वेषण करने में लगा हुआ है, वह नहीं जानता। वह नहीं जानता कि भ्रान्त ज्ञान से सम्पन्न, गर्वीला मानव किस प्रकार पशु से भी सहस्र गुना पैशाचिक स्वभाव-वाला हो जाता है। बस, इसी प्रकार हम ज्यो ज्यो इन्द्रियपरायणता से ऊपर उठते जाते हैं, त्यो त्यो हमारी सुख अनुभव करने की शक्ति बढ़ती जाती है, और

उमके साथ ही कुछ अनुभव करने की शक्ति भी बढ़ती रहती है। नाकियाँ और भी सूक्ष्म होकर अधिक मात्रा के अनुभव में समर्थ हो जाती है। सभी समाजों में हम देखते हैं कि एक साधारण मूर्ख मनुष्य तिरस्कृत होने पर उतना दुःखी नहीं होता पर पिटा जाने पर अबस्य दुःखी हो जाता है। किन्तु सम्य पुरुष एक साधारण सी बात भी सहन नहीं कर सकता उसकी नाकियाँ इतनी सूक्ष्म हो गयी हैं। उसकी सुख प्रवणता बढ़ जाने के कारण उसका दुःख भी बढ़ गया है। इससे तो शार्दूलिको के क्रमिकासूत्र की कोई पुष्टि नहीं होती। हम अपनी सुखी होने की शक्ति को जितना ही बढ़ाते हैं, हमारी दुःख-भोग की शक्ति भी उसी परिमाण में बढ़ जाती है। मेरा तो विनीत मत यह है कि हमारी सुखी होने की शक्ति यदि 'गणितीय क्रम' (arithmetical progression) के नियम से बढ़ती है, तो दुःखी होने की शक्ति 'व्यामितीय क्रम' (geometrical progression) के नियम से बढ़ेगी। अंग्रेजी मनुष्य समाज के सम्बन्ध में अधिक नहीं जानता। किन्तु हम उन्नतिशील लोग जानते हैं कि हम जितने ही उन्नत होये हमारे सुख और दुःख की सीमाएँ और भी अधिक बढ़ती चार्येगी। और यही माया है।

अतएव हम देखते हैं कि माया विश्व की व्याख्या करने के निमित्त कोई दिखावट नहीं है। वह संसार की वस्तु-स्थिति का वर्णन मात्र है—बिद्व्य भाव ही हमारे अस्तित्व की मिति है। सर्वत्र इन्हीं मयात्मक बिद्व्य भावों में से होकर हम जा रहे हैं। जहाँ धूम है, वहीं अधुम भी है और जहाँ अधुम है वहीं अबस्य धुम है। जहाँ जीवन है वही मृत्यु छाया की भाँति उसका अनुसरण कर रही है। जो हँस रहा है उसीको रोना पड़ेगा और जो रो रहा है, वह भी हँसेगा। यह क्रम बरकत नहीं पाता। हम भले ही ऐसे स्वप्न की कल्पना करें, जहाँ केवल धुम रहेगा अधुम नहीं जहाँ हम केवल हँसें रोयेंगे नहीं—पर जब वे सब कारण समाप्त होंगे तब विद्यमान है तो दग प्रसार होना स्वभावतः अनन्तर है। जहाँ हमें हँसाने की शक्ति विद्यमान है वही फिर रसाने की भी शक्ति निहित है। जहाँ मृग उत्पन्न नान्देवाणी शक्ति विद्यमान है वृग देनेवाणी शक्ति भी वही छिपी हुई है।

अतएव वेदान्त दर्शन आत्मावादी भी नहीं है और निरात्मावादी भी नहीं। वह तो दोनों ही बातों का प्रचार करता है। गारी घन्तारों त्रिम का म हार्नी है वह उन्हें बस उनी का म प्रथम करता है। अर्थात् उनसे मन में घट गगार राम

१ 'गणितीय क्रम' अंश ३।५।७। इत्यादि; यहाँ पर प्रत्येक चरणों अंक करने पूर्ववर्ती अंक से दो दो अधिक है। 'व्यामितीय क्रम' अंश ३।६।१२।२४ इत्यादि; यहाँ पर प्रत्येक चरणों अंक करने पूर्ववर्ती अंक का दुगुणा है। त

और अशुभ, सुख और दुःख का मिश्रण है, एक को बढ़ाओ, तो दूसरा भी साथ साथ बढ़ेगा। केवल सुख का ससार अथवा केवल दुःख का ससार हो नहीं सकता। इस प्रकार की धारणा ही स्वतः विरोधी है। किन्तु इस प्रकार का मत व्यक्त करके और इस विश्लेषण के द्वारा वेदान्त ने इस महान् रहस्य का भेद किया है कि शुभ और अशुभ, ये दो एकदम विभिन्न, पृथक् सत्ताएँ नहीं हैं। इस ससार में ऐसी कोई भी वस्तु नहीं, जिसे एकदम शुभ या एकदम अशुभ कहा जा सके। एक ही घटना, जो आज शुभजनक मालूम पड़ती है, कल अशुभजनक मालूम पड़ सकती है। एक ही वस्तु, जो एक व्यक्ति को दुःखी करती है, दूसरे को सुखी बना सकती है। जो अग्नि बच्चे को जला देती है, वही भूख से मरते व्यक्ति के लिए स्वादिष्ट खाना भी पका सकती है। जिस स्नायुमण्डल के द्वारा दुःख का संवेदन हमारे अन्दर पहुँचता है, सुख का संवेदन भी उसीके द्वारा भीतर जाता है। अशुभ को दूर करना चाहो, तो साथ ही तुम्हें शुभ को भी दूर करना होगा। इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। मृत्यु को दूर करने के लिए जीवन को भी दूर करना पड़ेगा। मृत्युहीन जीवन और दुःखहीन सुख, ये बातें परस्पर विरोधी हैं, इनमें कोई सत्य नहीं है, क्योंकि दोनों एक ही वस्तु की विभिन्न अभिव्यक्तियाँ हैं। कल जो शुभप्रद लगता था, आज वह वैसा नहीं लगता। जब हम बीते जीवन पर नज़र डालते हैं और भिन्न भिन्न समय के अपने आदर्शों की आलोचना करते हैं, तो इस बात की सत्यता हमें तुरन्त दीख पड़ती है। एक समय था, जब शक्तिशाली घोड़े के जोड़े हाँकना ही मेरा आदर्श था। अब वैसी भावना नहीं होती। बचपन में सोचता था कि यदि मैं अमुक मिठाई बना सकूँ, तो मैं पूर्ण सुखी होऊँगा। कभी सोचता था, स्त्री-पुत्र और धन-धान्य से भरा घर होने से मैं सुखी होऊँगा। अब लडकपन की ये सब निरर्थक बातें सोचकर हँसी आती है।

वेदान्त कहता है कि एक समय ऐसा अवश्य आयेगा, जब हम पीछे नज़र डालेंगे और उन आदर्शों पर हँसेंगे, जिनके कारण अपने इस क्षुद्र व्यक्तित्व का त्याग करते हममें भय का संचार होता है। सभी अपनी अपनी देह की रक्षा करने में व्यस्त हैं। कोई भी उसे छोड़ना नहीं चाहता। हम सोचते हैं कि इस देह की यथेच्छ समय तक रक्षा कर लेने से हम अत्यन्त सुखी होंगे, पर समय आने पर हम इस बात पर भी हँसेंगे। अतएव, यदि हमारी वर्तमान अवस्था सत् भी न हो और असत् भी नहीं—पर दोनों का सम्मिश्रण हो, दुःख भी न हो और सुख भी नहीं—पर दोनों का सम्मिश्रण हो, अर्थात् हम यदि ऐसे निराशाजनक अन्तर्विरोध की स्थिति में हों, तो फिर वेदान्त तथा अन्यान्य दर्शनशास्त्र और धर्म-मत आदि की क्या आवश्यकता है? और सर्वोपरि, शुभ कर्म आदि करने

का भी मझ क्या प्रयोजन है? यही प्रश्न मन में उठता है, क्योंकि सोम यही पूछे कि यदि शुभ कर्म करने पर भी अशुभ रहता ही हो और शुभ उत्पन्न करने का प्रयत्न करने पर भी बोर हुआ वना ही रहता ही तो फिर इस प्रकार के प्रयत्न की आवश्यकता ही क्या? तो इसका उत्तर यह है कि पहले तो हमें शुभ को कर्म करने के लिए कर्म करना ही चाहिए, क्योंकि स्वयं शुभी होने का यही एकमात्र उपाय है। हममें से प्रत्येक अपने अपने जीवन में बेर-सबेर इस बात की अपारिधा समझ लेते हैं। तीरुण बुद्धिवाले कुछ धीम्र समझ जाते हैं और मन्द बुद्धिवाले कुछ बेटी से। मन्द बुद्धिवाले कड़ी मातना भोगने के बाद इसे समझ पाते हैं, तो तीरुण बुद्धिवाले बोड़ी ही मातना भोगने के बाद। और बूधरे, यद्यपि हम जानते हैं कि ऐसा समय कभी न आवेगा जब यह जगत् केवल शुभ से भर रहेगा और शुभ विस्तृत न रहेगा फिर भी हमें यही कार्य करना होगा। अन्तर्बिरोध से बचने के लिए यही एकमात्र उपाय है। ये दोनों शक्तियाँ—शुभ एवं अशुभ जगत् को जीवित रखेगी और अन्त में एक दिन ऐसा आवेगा जब हम स्वप्न से जाग जायेंगे और यह सब मिट्टी के बर्तने बनाता बन्द कर देंगे। सचमुच हम विरकास से बर्तने बनाने में ही जमे हुए हैं। हमें यह शिक्षा लेनी ही होगी और इसके लिए समय भी बहुत कम जायगा।

जर्मनी में इस भित्ति पर कि—असीम ससीम हो गया है—बर्लिनसास्त्र रचने की चेष्टा की गयी है। इंग्लैण्ड में अब भी इस प्रकार की चेष्टा चल रही है। पर इन सब शार्शनिकों के मठ का विश्लेषण करने पर यही पामा जाता है कि असीम अपने को जगत् में व्यक्त करने की चेष्टा कर रहा है और एक समय आवेगा जब वह ऐसा करने में सफल हो जायगा। बहुत ठीक है और हमने असीम 'विकास' 'अभिव्यक्ति' आदि शार्शनिक शब्दों का भी प्रयोग किया। किन्तु ससीम किंच प्रकृत असीम को पूर्ण रूप से व्यक्त कर सकता है इस सिद्धान्त की न्यायसंगत मूल भित्ति क्या है, यह प्रश्न शार्शनिक मन स्वभावतः ही पूछ सकते हैं। निरपेक्ष और असीम सत्ता सोपाधिक होकर ही इस जगत् में प्रकाशित हो सकती है। जो कुछ इन्ध्रिय मन और बुद्धि के माध्यम से जायगा उसे स्वतः ही सीमाबद्ध होना पड़ेगा अतएव ससीम का असीम होना निदान्त असम्भव है, ऐसा हो नहीं सकता। बूधरी और, बेवान्त कहता है, यह ठीक है कि निरपेक्ष या असीम सत्ता अपने को ससीम रूप में व्यक्त करने की चेष्टा कर रही है, किन्तु एक समय ऐसा आवेगा जब इस प्रयत्न को असम्भव जानकर उसे पीछे खीटना पड़ेगा। यह पीछे खीटना ही धर्म का पदार्थ आरम्भ है सिद्धा अर्थ है वैराग्य। आधुनिक मनुष्य से वैराग्य की बात कहना अत्यन्त कठिन है। अमेरिका में मेरे बारे में लोग कहते

थे कि मैं पाँच हजार वर्ष तक मृत और विस्मृत एक देश से आकर वैराग्य का उपदेश दे रहा हूँ। इल्लैण्ड के दार्शनिक भी शायद ऐसा ही कहे। पर यह भी सत्य है कि धर्म का एकमात्र पथ यही है। त्याग दो और विरक्त बनो। ईसा ने क्या कहा है? 'जो मेरे निमित्त अपने जीवन का त्याग करेगा, वही जीवन को प्राप्त करेगा।' बार बार पूर्णता की प्राप्ति के लिए त्याग ही एकमात्र साधन है, इसकी शिक्षा उन्होंने बारबार दी है। ऐसा समय आता है, जब अन्तरात्मा इस लम्बे विषादमय स्वप्न से जाग उठती है, वन्चा खेल-कूद छोड़कर अपनी माता के निकट लौट जाने को अधीर हो उठता है। तब इस उक्ति की यथार्थता सिद्ध होती है—

न जालु काम कामानामुपभोगेन शाम्यति ।

हविषा कृष्णवर्त्मैव भूय एवाभिवर्धते ॥

—'काम्य वस्तु के उपभोग से कभी वासना की निवृत्ति नहीं होती, वरन् घृताहुति के द्वारा अग्नि के समान वह तो और भी बढ़ जाती है।'

इस प्रकार, इन्द्रिय-विलास, बौद्धिक आनन्द, मानवात्मा का उपभोग्य सब प्रकार का सुख—सभी मिथ्या है—सभी माया के अधीन है। सभी इस ससार के बन्धन के अन्तर्गत है, हम उसका अतिक्रमण नहीं कर सकते। हम उसके अन्दर भले ही अनन्त काल तक दौड़ते फिरें, पर उसका अन्त नहीं पा सकते, और जब कभी हम थोड़ा सा सुख प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं, तभी दुःख का ढेर हमारे सिर पर आ गिरता है। कितनी भयानक अवस्था है यह! जब मैं इस पर विचार करता हूँ, तो मैं निस्सन्दिग्ध रूप से यह अनुभव करता हूँ कि यह मायावाद, यह कथन कि सब कुछ माया है, इसकी एकमात्र ठीक ठीक व्याख्या है। इस ससार में कितना दुःख है! यदि तुम विभिन्न देशों में भ्रमण करो, तो तुम समझ सकोगे कि एक राष्ट्र अपने दोषों को एक उपाय के द्वारा दूर करने की चेष्टा कर रहा है, तो दूसरा राष्ट्र किसी अन्य उपाय द्वारा। एक ही दोष को विभिन्न राष्ट्रों ने विभिन्न उपायों से दूर करने का प्रयत्न किया है, पर कोई भी कृतकार्य न हो सका। यदि किसी स्थान पर दोष कुछ कम हो भी गया, तो किसी दूसरे स्थान पर दोषों का एक ढेर खड़ा हो जाता है। वस, ऐसा ही चलता रहता है। हिन्दुओं ने अपने जातीय जीवन में सतीत्व धर्म को पुष्ट करने के लिए बाल-विवाह के प्रचलन द्वारा अपनी सन्तान को, और धीरे धीरे सारी जाति को, अधोगामी कर दिया है। पर यह बात भी मैं अस्वीकार नहीं कर सकता कि बाल-विवाह ने हिन्दू जाति को सतीत्व-धर्म से विभूषित किया है। तुम क्या चाहते हो? यदि जाति को सतीत्व-धर्म से थोड़ा-बहुत विभूषित करना चाहो, तो इस भयानक बाल-विवाह द्वारा सारे स्त्री-



पुरुषों को पारितोषिक दृष्टि से दुर्बल करना पड़ेगा। दूसरी ओर, क्या तुम्हारी स्थिति इन्हीं में कुछ भी अच्छी है? नहीं क्योंकि सतीत्व ही तो जाति की जीवनी दानित है। क्या तुमने इतिहास में नहीं पढ़ा है कि देश की मृत्यु का चिह्न असतीत्व के भीतर से होकर आया है—जब यह किसी जाति में प्रवेश कर जाता है तो समझना कि उसका विनाश निकट आ गया है। इन सब दुःखजनक प्रश्नों की भीमांशा कहाँ मिलेगी? यदि माता-पिता अपनी सम्पत्ति के लिए बर-बसु का निर्वाचन करें, तो यह दोष कम हो सकता है। भारत की बेटियाँ मायुक्त होने की अपेक्षा अधिक व्यावहारिक होती हैं। किन्तु उनके जीवन में फिर कविता बहुत कम रह जाती है। पर यदि लोग स्वयं पति और पत्नी का निर्वाचन करते हैं तो इससे भी उन्हें कोई अधिक सुख नहीं मिलता। भारतीय नारियाँ अधिक मुसी हैं। स्त्री और स्वामी के बीच कलह अधिकतर नहीं होता। दूसरी ओर, अमेरिका में जहाँ स्वाधीनता की अधिकता है, सुखी परिवार बहुत कम देखने में आते हैं। पुत्र यहाँ यहाँ सभी बचक हैं। इससे क्या सिद्ध होना है? यही कि इन सब कारणों के द्वारा अधिक सुख प्राप्त नहीं हो सका। हम सभी सुख के लिए उत्कट संघर्ष कर रहे हैं पर एक ओर कुछ प्राप्त होने के पहले ही दूसरी ओर पुत्र आ उपस्थित होता है।

तब क्या हम कोई धूम कर्म न करें? अवश्य करें, और पहले की अपेक्षा अधिक उत्साहित होकर हम ऐसा करें। इन बातों के ज्ञान से इतना होगा कि हमारी बर्मान्यता कटुता भक्त हो जायगी। तब अनेक लोग उत्तेजित होकर 'बोह पैदाधिक हिलू। नारियों के प्रति कैसा दुर्व्यवहार करता है! —ऐसा कहते हुए हिन्दू की ओर अगुभी नहीं उठायेंगे। तब वे विभिन्न देशों के रीति-रिवाजों का आचरण करना सीखेंगे। बर्मान्यता कम होगी कार्य अधिक होगा। बर्मान्य अधिक कर्म नहीं कर पाता। वह अपनी समिति का तीन चौथाई धर्म ही गण्य कर देता है। जो पीर, प्रसास्तनित 'नाम के मादमी' कहे जाते हैं, वे ही कर्म करते हैं। बोधी बकवास करनेवाला बर्मान्य व्यक्ति कुछ भी नहीं कर सकता। अतएव यह जान लेने से कि वस्तु-स्थिति ऐसी ही है, हमारी चिन्ता अधिक होगी। कुछ और अधूम के दृश्य हमें साम्यमात्र से च्युत न कर सकेंगे और छात्रा के पीछे पीछे बौद्ध न सकेंगे। अतएव यह जानकर कि संसार की गति ही ऐसी है हम दीर्घधामी बनें। जवाहरणस्वरूप हम कह सकते हैं कि सभी मनुष्य बोधधूम्य हो जायेंगे पशु भी क्रमशः मनुष्यत्व प्राप्त कर इन्हीं अवस्थाओं में से होकर गुजरेंगे और वनस्पतियों की भी मही बसा होगी। पर यह एक बात निश्चित है—यह महीती नदी प्रवण वेग से समुद्र की ओर बह रही है। पूरा पसे जाकि सब इसके

स्रोत में बहे जा रहे हैं और सम्भवतः विपरीत दिशा में बहने की चेष्टा कर रहे हैं, किन्तु ऐसा समय आयेगा, जब प्रत्येक वस्तु उस अनन्त सागर के वक्षस्थल में समा जायेगी। अतएव यह निश्चित है कि जीवन सारे दुःख और क्लेश, आनन्द, हास्य और क्रन्दन के साथ उस अनन्त सागर की ओर प्रबल वेग से प्रवाहित हो रहा है, और यह केवल समय का प्रश्न है, जब तुम, मैं, जीव, उद्भिद् और सामान्य जीवाणु कण तक, जो जहाँ पर है, सब कुछ उसी अनन्त जीवन-समुद्र में—मुक्ति और ईश्वर में आ पहुँचेगा।

मैं एक बार फिर कहता हूँ कि वेदान्त का दृष्टिकोण न तो आशावादी है और न निराशावादी ही। वह ऐसा नहीं कहता कि ससार केवल शुभ ही शुभ है अथवा केवल अशुभ ही अशुभ। वह कहता है कि हमारे शुभ और अशुभ, दोनों का मूल्य बराबर है। ये दोनों इसी प्रकार हिल-मिलकर रहते हैं। ससार ऐसा ही है, यह समझकर तुम धैर्यपूर्वक कर्म करो। पर क्यों? क्यों हम कर्म करें? यदि घटना-चक्र ही इस प्रकार का हो, तो हम क्या करें? हम अज्ञेयवादी क्यों न हो जायें? आजकल के अज्ञेयवादी भी तो कहते हैं कि इस समस्या का कोई समाधान नहीं है, वेदान्त की भाषा में कहेंगे कि इस मायापाश से छुटकारा नहीं है। अतएव सन्तुष्ट रहो और सबका उपभोग करो। पर यहाँ भी एक अत्यन्त असंगत और महान् भ्रम है। और वह यह है। तुम जिस जीवन से चारों ओर से घिरे हुए हो, उस जीवन के विषय में तुम्हारा ज्ञान किस प्रकार का है? क्या 'जीवन' शब्द से तुम केवल पाँच इन्द्रियो में आवद्ध जीवन को ही लेते हो? यदि ऐसा हो, तो हम पशुओं से कोई अधिक भिन्न नहीं हैं। किन्तु मुझे विश्वास है कि यहाँ बैठे हुए लोगों में से एक भी ऐसा नहीं है, जिसका जीवन सम्पूर्ण रूप से केवल इन्द्रियो में आवद्ध हो। अतएव हमारे वर्तमान जीवन का अर्थ इन्द्रियो की अपेक्षा और भी कुछ अधिक है। सुख-दुःख अनुभव करानेवाली हमारी मनोवृत्ति और हमारे विचार भी तो हमारे जीवन के अग्रस्वरूप हैं। और उस महान् आदर्श, उस पूर्णता की ओर अग्रसर होने की कठोर चेष्टा भी क्या हमारे जीवन का उपादान नहीं है? अज्ञेयवादी कहते हैं कि जीवन जैसा है, वस, वैसा ही उसका भोग करो। पर जीवन कहने से सर्वोपरि इस आदर्श के अन्वेषण की, इस पूर्णता की ओर अग्रसर होने की कठोर चेष्टा का बोध होता है। हमें इसीको प्राप्त करना होगा। अतएव हम अज्ञेयवादी नहीं हो सकते और अज्ञेयवादी के ससार को नहीं अपना सकते। अज्ञेयवादी तो जीवन के आदर्शात्मक उपादान को छोड़कर अवशिष्ट अश को ही सर्वस्व मानते हैं। वे इस आदर्श को ज्ञान का अगोचर समझकर इसका अन्वेषण त्याग देते हैं। वस, इस प्रकृति, इस जगत् को ही माया कहते हैं।

सभी धर्म इसी प्रकृति के बन्धन को टोड़ने की अत्याधिक चेष्टा कर रहे हैं। चाहे देवोपासना द्वारा हो चाहे प्रतीकोपासना द्वारा चाहे दार्शनिक विचारों द्वारा हो अथवा वैद परितः प्रेत-चरितः साधु-चरितः ऋषि-चरितः महात्मा-परितः अथवा मन्वतार-चरितः की सहायता से अनुष्ठित हो सभी धर्मों का चाहे वे विकसित हों चाहे अभिकसित उद्देश्य एक ही है—सभी सीमाओं के परे जाना। संक्षेप में सभी धर्म स्वाधीनता की ओर अग्रसर होने का फटोर प्रयत्न कर रहे हैं। जाने या अनजाने मनुष्य समझ गया है कि वह बड़ है। वह जो कुछ होने की इच्छा करता है, सो मही है। जिस क्षण से उसने अपने चारों ओर दृष्टि फेरी उसी क्षण से उसे यह ज्ञान हो गया। उसी क्षण से उसे अनुभव हो गया कि वह बन्दी है। उसने यह भी जाना कि इस सीमा से अकड़ा हुआ कोई मानो उसके अन्तर में विद्यमान है जो वेह क भी असम्भ्य स्थान में उड़ जाना चाहता है। संसार के उन निम्नतम धर्मों में भी जहाँ दुर्बलता मृगस्य आत्मीयों के चरों में लकड़-छिपकर छिदनेवाले हूया और मुराप्रिय मृग पितरों या अन्य भूत-प्रेतों की पूजा की जाती है, हम स्वाधीनता का यह माग पाते हैं। जो लोग देवताओं की उपासना करते हैं, वे उन देवताओं को अपनी अपेक्षा अधिक स्वाधीन देखते हैं। उनका ऐसा विश्वास रहता है कि द्वार बन्द होने पर भी देवता कोप घर की दीवारों को भेदकर जा सकते हैं। दीवारें उनके मार्ग में बाधा मही शक सकतीं। स्वाधीनता का यह माग कमजोर बढ़ते बढ़ते अन्त में समुद्र ईश्वर के आदर्श में परिणत हो जाता है। इस आदर्श का केन्द्रीय भाग यह है कि ईश्वर मात्रा से असीत है। मैं मानो अपने मनश्चक्षु के सामने मारुत के उन प्राचीन आचार्यों को अरुण्यस्थित आश्रम में इन्हीं सब प्रश्नों पर विचार करते देख रहा हूँ और सुन रहा हूँ उनके स्वर बड़े बड़े बयोबुद्ध पवित्र महर्षिजन भी इन प्रश्नों का समाधान करने में असमर्थ हो रहे हैं, पर एक युवक उनके बीच खड़ा हो बोधना करता है—हे विष्णुनामवासी अमृत के पुत्रगण! सुनो मुझे मार्ग मिल गया है। जो अन्धकार या अज्ञान से असीत है उस ज्ञान लेने पर अन्धकार के बाहर जाने का मार्ग मिल जाता है।

यह माया हमें चारों ओर से घेरे हुए है और वह बहिः कार्यकर है। फिर भी हमें माया में से होकर ही कार्य करना पड़ता है। जो कहता है, 'संसार को पूर्ण

१. शुक्लानु विन्दे अमृतस्य पुत्रा आ वे चामानि विष्णुनि तस्यु ।

वेदाहमेतं पुत्रं ब्रह्मात्मन् आदित्यवर्चं तमसः परस्तात् ।

तमेव विवित्वाऽस्तिमृतपुमैति शक्तः बन्धा विच्छेदकनाथ ॥

शुभमय हो जाने दो, तब मैं कार्य करूँगा और आनन्द भोगूँगा”, तो उसकी बात उसी व्यक्ति की तरह है, जो गगातट पर बैठकर कहता है कि जब इसका सारा पानी समुद्र में पहुँच जायगा, तब मैं इसके पार जाऊँगा। दोनों बातें असम्भव हैं। रास्ता माया के साथ नहीं है, वह तो माया के विरुद्ध है—यह बात भी हमें जान लेनी होगी। हम प्रकृति के सहायक होकर नहीं जन्मे हैं, वरन् हम तो प्रकृति के विरोधी होकर जन्मे हैं। हम बाँधनेवाले होकर भी स्वयं बँधे जा रहे हैं। यह मकान कहाँ से आया? प्रकृति ने तो दिया नहीं। प्रकृति कहती है, ‘जाओ, जगल में जाकर बसो।’ मनुष्य कहता है, ‘नहीं, मैं मकान बनाऊँगा और प्रकृति के साथ युद्ध करूँगा।’ और वह ऐसा कर भी रहा है। मानव जाति का इतिहास प्राकृतिक नियमों के साथ उसके युद्ध का इतिहास है और अन्त में मनुष्य ही प्रकृति पर विजय प्राप्त करता है। अन्तर्जगत् में आकर देखो, वहाँ भी यही युद्ध चल रहा है—पशु-मानव और आध्यात्मिक मानव का, प्रकाश और अन्धकार का यह सग्राम निरन्तर जारी है। मानव यहाँ भी जीत रहा है। मुक्ति की प्राप्ति के लिए प्रकृति के बन्धन को चीरकर मनुष्य अपने गन्तव्य मार्ग को प्राप्त कर लेता है।

हमने अभी तक देखा कि वेदान्ती दार्शनिकों ने इस माया के परे ऐसी किसी वस्तु को जान लिया है, जो माया के अधीन नहीं है, और यदि हम उसके पास पहुँच सकें, तो हम भी माया से बँध नहीं जायेंगे। किसी न किसी रूप में यह भाव सभी धर्मों की सामान्य सम्पत्ति है। किन्तु वेदान्त के मत में यह धर्म का केवल प्रारम्भ है, अन्त नहीं। जो विश्व की सृष्टि तथा पालन करनेवाले हैं, जो मायाधिष्ठित हैं, जिन्हें माया या प्रकृति का कर्ता कहा जाता है, उन सगण ईश्वर का ज्ञान ही वेदान्त का अन्त नहीं है, केवल आदि है। यह ज्ञान क्रमशः बढ़ता जाता है और अन्त में वेदान्ती देखता है कि जिसे वह बाहर खड़ा हुआ समझता था, वह उसके अन्दर ही है और वह स्वयं वस्तुतः वही है। जिसने अपने को अध्यास के कारण बद्ध समझ रखा था, वह वास्तव में वही मुक्तस्वरूप है।

## माया और ईश्वर धारणा का क्रमविकास

(२० अक्टूबर, १८९६ को लन्दन में दिया हुआ व्याख्यान)

हमने देखा कि अद्वैत वेदान्त का एक व्यापारिक सिद्धान्त मायावाद बीच रूप से संहिताओं में भी मिश्रता है और जिन विचारों का विकास उपनिषदों में हुआ है, वे किसी न किसी रूप में संहिताओं में विद्यमान हैं। तुममें से बहुत से लोग अब माया की धारणा से परिचित हो गये होंगे और यह भी जान गये होंगे कि प्रायः लोग भ्रांतिवश माया को 'भ्रम' कहकर उसकी व्याख्या करते हैं। अतएव जब लोग को माया कहते हैं, तब उसे भी भ्रम ही कहकर उसकी व्याख्या करनी पड़ती है। किन्तु माया को 'भ्रम' के अर्थ में लेना ठीक नहीं। माया कोई विशेष सिद्धान्त नहीं है, वह तो यह संसार जैसा है, कबल उसीका तत्पारमक रूप है। इस भाषा को समझने के लिए हमें संहिताओं तक जाना होगा और उसके मूल बीच का अर्थ समझना होगा।

हम यह देख चुके हैं कि कामों में वेदताओं का ज्ञान किधु प्रकार आया। हमें समझना होगा कि ये वेदता पहले केवल सकलित्याभी सत्ताएँ मात्र थे। तुम लोगों में से बहुत प्रीक हिब्रू, पारसी अबदा अन्य जातियों के प्राचीन शास्त्रों में यह पढ़कर समझीत हो जाते हों कि वेदता लोग कभी कभी ऐसा काम करते थे जो हमारी बुद्धि में अत्यन्त श्रुति है। पर हम यह भूल जाते हैं कि हम लोग अभीसारी सत्ताओं के हैं और वेदतापण सत्ताओं बर्ष पाहें कि बीच में और हम यह भी भूल जाते हैं कि इन सब वेदताओं के उपासक लोग उनके अरि में कुछ भी असंगत बात नहीं देख पाते थे और वे अिद्वैत से अपने उन वेदताओं का वर्णन करते थे उससे उन्हें कुछ भी भय नहीं होता था क्योंकि वे सब वेदता सत्ताओं के अनुसूय थे। हम लोगों को आजीवन यह बात सीखनी होगी कि प्रत्येक व्यक्ति को परब उसके अपने आसनों के अनुसार करनी चाहिए, दूसरों के आसनों के अनुसार नहीं। ऐसा न करके हम दूसरों को अपने आसनों की वृष्टि से देखते हैं। यह ठीक नहीं। अपने आसपास खुलेबांधे लोगों के साथ व्यवहार करते समय हम सदा यही भूल करते हैं, और मेरे मतानुसार, दूसरों के साथ हमारी जो कुछ भी अनबन हो जाती है, वह अधिकतर इसी एक कारण से होती है कि

हम दूसरो के देवता को अपने देवता के द्वारा, दूसरो के आदर्शों को अपने आदर्शों के द्वारा और दूसरो के उद्देश्य को अपने उद्देश्य के द्वारा परखने की चेष्टा करते हैं। कुछ विशेष परिस्थितियों से वाच्य हो, मान लो, मैंने कोई एक विशेष कार्य किया, और जब मैं देखता हूँ कि एक दूसरा व्यक्ति वही कार्य कर रहा है, तो मैं सोच लेता हूँ कि उसका भी वही उद्देश्य है, मेरे मन में यह बात एक बार भी नहीं उठती कि यद्यपि फल एक हो सकता है, तथापि उस एक फल के उत्पन्न करनेवाले भिन्न भिन्न सहस्रो कारण हो सकते हैं। मैं जिस हेतु से उस कार्य को करने में प्रवृत्त होता हूँ, अन्य सब लोग उसी कार्य को अन्य हेतुओं से कर सकते हैं। अतएव इन सभी प्राचीन धर्मों पर विचार करते समय हम सामान्यतया जिस तरह दूसरो के सम्बन्ध में विचार करते हैं, वैसा न करके अपने को प्राचीन काल के लोगो के जीवन और विचार की स्थिति में रखकर विचार करना चाहिए।

प्राचीन व्यवस्थान (Old Testament) में क्रूर और निष्ठुर जिहोवा के वर्णन से बहुत से लोग भयभीत हो उठते हैं, पर क्यों? लोगो को यह कल्पना करने का क्या अविचार है कि प्राचीन यहूदियों का जिहोवा आधुनिक रुढिगत कल्पना के ईश्वर के समान होगा? और हमें यह भी न भूलना चाहिए कि हमारे बाद जो लोग आयेंगे, वे उसी तरह हमारे धर्म और ईश्वर की धारणा पर हँसेंगे, जिस तरह हम प्राचीन लोगो के धर्म एव ईश्वर की धारणा पर हँसते हैं। यह सब होने पर भी, इन सब विभिन्न ईश्वर सम्बन्धी धारणाओं का संयोग करनेवाला एक स्वर्ण सूत्र है, और वेदान्त का उद्देश्य है—इस सूत्र की खोज करना। भगवान् कृष्ण ने कहा है—“भिन्न भिन्न मणियाँ जिस प्रकार एक सूत्र में पिरोयी हुई रहती हैं, उसी प्रकार इन सब विभिन्न भावों के भीतर भी एक सूत्र विद्यमान है।” और आजकल की धारणाओं की दृष्टि में वे सब प्राचीन धारणाएँ कितनी ही बीभत्स, भयानक अथवा घृणित क्यों न मालूम पड़ें, वेदान्त का कर्तव्य उन सभी प्राचीन धारणाओं एव सभी वर्तमान धारणाओं के भीतर इस संयोग-सूत्र की दृढ़ प्रतिष्ठा करनी है। प्राचीन काल की भूमिका में वे धारणाएँ सामंजस्यपूर्ण मालूम पडती हैं और ऐसा लगता है कि हमारी वर्तमान धारणाओं से वे शायद अधिक बीभत्स नहीं थीं। उनकी बीभत्सता हमारे सामने तभी प्रकट होती है, जब हम उनको उनकी भूमिका से अलग करके उन पर अपनी परिस्थितियाँ लागू करते हैं। जिस प्रकार प्राचीन यहूदी आज के तीक्ष्ण-बुद्धि यहूदी में और प्राचीन आर्य आज के बौद्धिक हिन्दू में परिणत हो गया है, उसी प्रकार जिहोवा की और अन्य देवताओं की भी क्रमोन्नति हुई है।

हम इतनी ही भूल करते हैं कि हम उपासक की क्रमोन्नति तो स्वीकार

करते हैं, परन्तु उपास्य की नहीं। हम उपासकों को जिस प्रकार उन्नति का भोग देते हैं, उस प्रकार उपास्य को नहीं देना चाहते। तात्पर्य यह कि हम-तुम जिस प्रकार कुछ विशिष्ट भावों के चोतक होने के माते उन भावों की उन्नति के साथ साथ उन्नत हुए हैं, उसी प्रकार देवतागण भी विशेष विशेष भावों के चोतक होने के कारण उन भावों की उन्नति के साथ उन्नत हुए हैं। तुम प्रायः यह आश्चर्य करो कि ईश्वर की भी कहीं उन्नति होती है? तो इस पर ऐसा भी कहा जा सकता है कि क्या मनुष्य की भी कमी उन्नति होती है? आगे चलकर हम देखेंगे कि इस मनुष्य के पीछे जो यथार्थ पुरुष है वह अचल अपरिणामी शुद्ध और नित्य मुक्त है। जिस प्रकार यह मनुष्य उस यथार्थ मनुष्य की छाया मात्र है उसी प्रकार हमारी ईश्वर सम्बन्धी चारबाएँ केवल हमारे मन की सृष्टि हैं—वे उस प्रकृत ईश्वर की आधिक अभिव्यक्ति आभास मात्र हैं। इन समस्त आधिक अभिव्यक्तियों के पीछे प्रकृत ईश्वर है जो नित्य शुद्ध अपरिणामी और अजर है। किन्तु ये आधिक अभिव्यक्तियाँ सर्वथा ही परिणामशील हैं—ये अपने अन्तरात्मक सत्य की प्रामाणिकता मात्र हैं। वह सत्य जब अधिक परिमाण में अभिव्यक्त होता है, तब उसे उन्नति और जब उसका अधिकतम ढका हुआ या अनभिव्यक्त रहता है तब उसे अन्नति कहते हैं। इस प्रकार, जैसे जैसे हमारी उन्नति होती है, वैसे ही वैसे देवताओं की भी होती है। वीधे-साधे धर्मों में जैसे जैसे हमारी उन्नति होती है जैसे जैसे हमारा स्वरूप प्रकाशित होता है वैसे ही वैसे देवता भी अपना स्वरूप प्रकाशित करते जाते हैं।

अब हम मायावाद को समझ सकेंगे। संसार के सभी धर्मों ने इस प्रश्न को उठाया है—संसार में यह अज्ञानमय क्यों है? संसार में यह अज्ञान क्यों है? आदिम धर्मशास्त्र के आदिमार्ग के समय हम इस प्रश्न को उठाने नहीं देगते हमका कारण यह है कि आदिम मनुष्य को जगत् अज्ञानमयपूर्ण नहीं लगा। जगत् के आगे ओर कोई अज्ञानमय नहीं था। किसी प्रकार का मन-विरोध नहीं था। भवे-बुने की कोई प्रतिउत्थिता नहीं थी। उसके हृदय में केवल दो बातों का गणना हो रहा था। एक बहनी थी—यह कला और दूसरी जगत् को करने का नियम बहनी थी। आदिम मानव प्राणनामा का ज्ञान था। उसके मन में जो ज्ञान था वही सारी के बर दालना था। वह इन भावनाओं के सम्बन्ध में विचार करने अथवा उनका गणना करने का शिष्टान्त प्रयत्न नहीं करता था। उन सब कल्पनाओं के सम्बन्ध में भी सही ज्ञान है। वे लोग भी आनी अज्ञानमय के अर्थ में थे। इन भावनाओं को उठाने अज्ञान-मय को जिन-भिन्न कर दिया। विद्वान् विद्वान् की शक्तियों का ना विनीत रूप क्यों यह कोई भी नहीं जानना जानना

भी नहीं चाहता। इसका कारण यह है कि उस समय लोगो में अनुसन्धान की प्रवृत्ति ही नहीं जगी थी, इसलिए वे जो कुछ भी करते, वही ठीक था। उस समय भले-बुरे की कोई धारणा नहीं थी। हम जिन्हें बुरा कहते हैं, ऐसे बहुत से कार्य देवता लोग करते थे, हम वेदों में देखते हैं कि इन्द्र और अन्यान्य देवताओं ने अनेक बुरे कार्य किये हैं, पर इन्द्र के उपासकों की दृष्टि में पाप या बुरा काम कुछ भी न था, अतः वे इस सम्बन्ध में कोई प्रश्न नहीं करते थे।

नैतिक भाव की उन्नति के साथ साथ मनुष्य के मन में एक सग्राम प्रारम्भ हुआ, मनुष्य में मानो एक नयी इन्द्रिय का आविर्भाव हुआ। भिन्न भिन्न भाषाओं और भिन्न भिन्न जातियों ने इसे भिन्न भिन्न नाम दिये हैं, कोई कहता है—यह ईश्वर की वाणी है, और कोई यह कि वह पहले की शिक्षा का फल है। जो भी हो, उसने प्रवृत्तियों को दमन करनेवाली शक्ति के रूप में काम किया। हमारे मन की एक प्रवृत्ति कहती है, यह काम करो, और दूसरी कहती है, मत करो। हमारे भीतर एक प्रकार की प्रवृत्तियाँ हैं, जो इन्द्रियों के द्वारा बाहर जाने की चेष्टा करती रहती हैं। और उनके पीछे, चाहे कितना ही क्षीण क्यों न हो, एक स्वर कहता रहता है—बाहर मत जाना। इन दो बातों के संस्कृत नाम हैं—प्रवृत्ति और निवृत्ति। प्रवृत्ति ही हमारे समस्त कर्मों का मूल है। निवृत्ति से धर्म का आरम्भ है। धर्म आरम्भ होता है—इस 'मत करना' से, आध्यात्मिकता भी इस 'मत करना' से ही आरम्भ होती है। जहाँ यह 'मत करना' नहीं है, वहाँ जानना कि धर्म का आरम्भ ही नहीं हुआ। इस 'मत करना' से ही निवृत्ति का भाव आ गया, और परस्पर युद्ध में रत देवतागण आराधित होने के बावजूद भी मनुष्य की धारणाएँ विकसित होने लगीं।

अब मानवता के हृदय में कुछ प्रेम जाग्रत हुआ। अवश्य उसकी मात्रा बहुत थोड़ी थी और आज भी वह मात्रा कोई अधिक नहीं है। पहले-पहल यह प्रेम कबीले तक सीमित रहा। ये सब देवता केवल अपने कबीले से प्रेम करते थे। प्रत्येक देवता एक एक कबीले का देवता था और उस विशिष्ट कबीले का रक्षक मात्र था। और जिस प्रकार भिन्न भिन्न देवों के विभिन्न वंशीय लोग अपने को उस एक पुरुषविशेष का वंशज कहते हैं, जो उस वंश का प्रतिष्ठाता होता है, उसी प्रकार कभी कभी किसी कबीले के लोग अपने को अपने देवता का वंशधर समझते थे। प्राचीन काल में कुछ ऐसी जातियाँ थी, और आज भी हैं, जो अपने को चन्द्र या सूर्य का वंशधर कहती थीं। संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थों में तुमने बड़े बड़े सूर्यवंशी वीर सम्राटों की कथाएँ पढ़ी होंगी। ये लोग पहले चन्द्र या सूर्य के उपासक थे, और बाद में ये अपने को चन्द्र या सूर्य का वंशज कहने लगे।



जब वह यह कबीरीय भाव खाने लया तब किचित् प्रेम भाया एक बूंदरे के प्रति बोझा कर्तव्य-भाव आया कुछ सामाजिक गृहकार्य की उत्पत्ति हुई और इसके साथ ही साथ यह भावना भी आने लगी कि एक बूंदरे का बोध सहन मा समा किये बिना हम कैसे एक साथ रह सकेंगे ? एक न एक समय अपनी प्रवृत्तियों का संयम किये बिना मनुष्य मर्रा किस प्रकार बूंदरों के साथ यहाँ तक कि एक भी व्यक्ति के साथ रह सकता है ? यह असम्भव है। वस इसी प्रकार संयम की भावना आयी। इस संयम की भावना में ही सम्पूर्ण समाज गुंथा हुआ है, और हम जानते हैं कि जो तर मा नापी ने इस सहिष्णुता या क्षमास्वी महान् पाठ को नहीं पढ़ा है वे अत्यन्त कष्ट में जीवन बिताते हैं।

अतएव जब इस प्रकार धर्म का भाव आया तब मनुष्य के मन में एक अपेक्षाकृत उच्चतर एवं अधिक नीतिसंमत भाव उदित हुआ। तब वे अपने उन्हीं प्राचीन देव-ताओं में—ब्रह्म सृष्टाकृ शरणी गो-मांसाहारी देवताओं में जिनको उनके मांस की गन्ध और तीव्र सुरा की माहृति से ही परम आनन्द मिळता था—कुछ अंतर्पति देखने लगे। शून्यतस्वस्व बेसी बेह में वर्जित जाता है कि कभी कभी इन इतना मद्यपान कर लेता था कि वह बेहोस होकर गिर पड़ता और लच्छ-लच्छ बकने लगता था। इस प्रकार के देवता अब अणु हो गये। तब सभी के उद्देश्यों की खोज आरम्भ हो गयी और देवताओं के कार्यों के उद्देश्य भी पूछे जाने लगे। अमुक देवता के अमुक कार्य का क्या उद्देश्य है ? कोई उद्देश्य नहीं मिळा। अतएव लोगों ने उन सब देवताओं का त्याग कर दिया अथवा बूंदरे शब्दों में वे फिर देवताओं के विषय में और भी उच्च आरनाएँ बनाने लगे। उन्होंने देवताओं के उन सब गुणों तथा कार्यों को जो अच्छे थे जिन्हें वे समझ सकते थे एकत्र किया और जिन कार्यों को उन्होंने अच्छा नहीं समझा अथवा समझा ही नहीं उन्हें अलग कर दिया। इन अच्छे अच्छे भावों की समष्टि को उन्होंने एक नाम देव-देव मा देवताओं का देवता दे दिया। तब उनके उपास्य देवता केवल शक्ति के परिचायक मात्र नहीं रहे शक्ति से अधिक और भी कुछ उनके लिए आवश्यक हो गया। अब वे नीतिपरयय देवता हो गये वे मनुष्यों से प्रेम करने लगे मनुष्यों का हित करने लगे। पर देवता सम्बन्धी आरना फिर भी अज्ञान रही। उन लोगों ने देवता की नीतिपरययता तथा शक्ति को केवल बढ़ा भर दिया। अब वे देवता विश्व में सर्वश्रेष्ठ नीतिपरयय तथा एक प्रकार से सर्वशक्तिमान भी हो गये।

किन्तु यह बोझ-बटि कब तक बल सकती थी ? जैसे जैसे व्याख्याएँ सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होती गयी जैसे जैसे यह कठिनाई मानो और भी कठिन होती गयी। देवता अथवा ईश्वर के गुण यदि 'अणितीय क्रम' (arithmetical

progression) के नियम से बढ़ने लगे, तो सन्देह और कठिनाइयाँ 'ज्यामितीय क्रम' (geometrical progression) के नियम से बढ़ने लगी। निष्ठुर जिहोवा के साथ जगत् का सामंजस्य स्थापित करने में जो कठिनाई होती थी, उससे भी अधिक कठिनाई ईश्वर मन्वन्वी नवीन धारणा के साथ होने लगी। और यह कठिनाई आज तक बनी रही। सर्वशक्तिमान और प्रेममय ईश्वर के राज्य में ऐसी पैशाचिक घटनाएँ क्यों घटती हैं? सुख की अपेक्षा दुःख इतना अधिक क्यों है? साधु-भाव जितना है, असाधु-भाव उससे इतना अधिक क्यों है? ससार में कुछ भी अशुभ नहीं है, ऐसा समझकर भले ही हम आँखें बन्द करके बैठे रहे, पर उससे ससार की वीभत्सता में कुछ भी अन्तर नहीं आता। बहुत हुआ, तो यह समार बस टैण्टालस के नरक' के समान है, उससे यह किसी अश में अच्छा नहीं। यहाँ हम हैं प्रबल प्रवृत्तियाँ लिये और इन्द्रियो को चरितार्थ करने की प्रबलतर वासनाएँ लिये, पर उनकी पूर्ति का कोई उपाय नहीं। अपनी इच्छा के विरुद्ध हममें एक तरफ उठती है, जो हमें आगे बढ़ने को बाध्य करती है, परन्तु जैसे ही हम एक पाँव आगे बढ़ाते हैं, वैसे ही एक धक्का लगता है। हम सभी टैण्टालस की भाँति इस जगत् में जीवित रहने और मरने को मानो विधि-विधान से अभिशप्त हैं। पचेन्द्रिय द्वारा सीमाबद्ध जगत् से अतीत के आदर्श हमारे मस्तिष्क में आते हैं, पर बहुत प्रयत्न करने पर भी हम देखते हैं कि उन्हें हम कभी भी कार्य-रूप में परिणत नहीं कर सकते। प्रत्युत हम अपने चारों ओर की परिस्थिति के चक्र में पिसकर चूर चूर हो परमाणुओं में परिणत हो जाते हैं। और दूसरी ओर, यदि मैं आदर्श-प्राप्ति की चेष्टा का परित्याग कर केवल सासारिक भाव को लेकर रहना चाहूँ, तो भी मुझे पशु-जीवन बिताना पड़ता है और मैं अपने को पतित और गर्हित कर लेता हूँ। अतएव किसी भी ओर सुख नहीं। जो लोग इस ससार में जिस अवस्था में उत्पन्न हुए हैं, उसी अवस्था में रहना चाहते हैं, तो उनके भाग्य में भी दुःख है। और जो लोग सत्य तथा उच्चतर आदर्श के लिए—इस पाशविक जीवन की अपेक्षा कुछ उन्नत जीवन के लिए—प्राण देने को आगे बढ़ते हैं, उनके लिए तो और भी सहस्र

१ ग्रीक लोगों की एक पौराणिक कथा है कि टैण्टालस नामक राजा पाताल के एक तालाब में गिर पड़ा था। तालाब का पानी उसके ओठों तक आता था, परन्तु जैसे ही वह अपनी प्यास बुझाने का प्रयत्न करता, वैसे ही पानी कम हो जाता था। उसके सिर के ऊपर नाना प्रकार के फल लटकते थे, और जैसे ही वह उन्हें पकड़ने जाता कि वे गायब हो जाते थे। स०

पुता कुछ है। यही वस्तु-स्थिति है पर इसकी कोई व्याख्या नहीं। और व्याख्या हो भी नहीं सकती। पर बेदान्त इससे बाहर निकलने का मार्ग बतलाता है। ये सब भाषण वेते समय सायब मुझे कुछ ऐसी भी बातें कहनी पड़ें जिनसे तुम भ्रमभीत हो जाओ पर जो कुछ मैं कह रहा हूँ उसे यदि तुम याद रखो सही प्रति आत्मसात कर लो और उसके सम्बन्ध में दिन-रात चिन्तन करो तो वह तुम्हारे अन्दर बैठ जायगी तुम्हारी उन्नति करेगी और सत्य को समझने तथा सत्य में प्रतिष्ठित होने में तुमको समर्थ करेगी।

जब वह एक तथ्यात्मक वर्णन है कि यह संसार एक दृष्टासत् का नरक है और हम इस जगत् के बारे में कुछ भी नहीं जानते पर साथ ही हम यह भी तो नहीं कह सकते कि हम नहीं जानते। जब मैं सोचता हूँ कि मैं इस जगत् सृष्टिका के बारे में नहीं जानता तो मैं यह नहीं कह सकता कि इसका अस्तित्व है। वह मेरे अस्तित्व का पूर्ण भग हो सकता है। हो सकता है, मैं केवल स्वप्न देख रहा हूँ। मैं स्वप्न देख रहा हूँ कि मैं तुमसे बातें कर रहा हूँ और तुम मेरी बात सुन रहे हो। कोई भी यह सिद्ध नहीं कर सकता कि यह स्वप्न नहीं है। मेरा अस्तित्व भी तो एक स्वप्न हो सकता है और अचानक अपना अस्तित्व देखा किसने है? वह तो हमने केवल मान लिया है। सभी विषयों के सम्बन्ध में यही बात है। अपने धरिरीर को भी तो हम मान ही लेते हैं। फिर यह भी नहीं कह सकते कि हम नहीं जानते। ज्ञान और अज्ञान के बीच की यह अवस्था वह रहस्यमय पहिली यह सत्य और मिथ्या का मिश्रण—कहाँ जाकर इनका मिश्रण हुआ है कौन जाने? हम स्वप्न में विचरण कर रहे हैं—अर्ध निद्रित अर्ध जाग्रत—जीवन भर एक पहिली में जाबद्ध हममें से प्रत्येक की बस यही दशा है। सारे इन्द्रिय-ज्ञान की यही दशा है। सारे वर्णनों की सारे विज्ञान की सब प्रकार के मानवीय ज्ञान की—जिनको लेकर हमें इतना अहंकार है—सबकी बज यही दशा है—यही परिणाम है। बस यही संसार है।

बाहे पदार्थ नहीं बाहे मन बाहे आत्मा बाहे किसी भी नाम से क्यों न पुकारो ज्ञान एक ही है—हम यह नहीं कह सकते कि ये सब हैं और यह भी नहीं कह सकते कि ये सब नहीं हैं। हम इन सबको एक भी नहीं कह सकते और अनेक भी नहीं। यह प्रकाश और अन्धकार का खेल—यह नागाविष दुर्बलता यह अविदित अज्ञान और अविभाज्य मिश्रण जिससे सारी जगत् कभी सत्य मानम होगी है कभी मिथ्या—महा से बन्ध रहा है। इनके कारण कभी लयता है कि हम जाग्रत हैं कभी लयता है कि सोये हुए हैं। बस यही माया है, यही बन्धु-स्थिति है। इसी माया में हमारा जन्म हुआ है, इसीमें हम जीवित हैं

इसीमें सोच-विचार करते हैं, इसीमें स्वप्न देखते हैं। इसीमें हम दार्शनिक हैं, इसीमें साधु हैं, यही नहीं, हम इस माया में ही कभी दानव और कभी देवता हो जाते हैं। विचार के रथ पर चढ़कर चाहे जितनी दूर जाओ, अपनी धारणा को ऊँचे से ऊँचा बनाओ, उसे अनन्त या जो इच्छा हो, नाम दो, पर तो भी यह सब माया के ही भीतर है। इसके विपरीत हो ही नहीं सकता, और मनुष्य का जो कुछ ज्ञान है, वह बस, इस माया का ही साधारण भाव है। इस माया के दिखनेवाले रूप का ज्ञान ही सारे मानवीय ज्ञान की सीमा है। यह माया नाम-रूप का कार्य है। जिस किसी वस्तु का रूप है, जो भी कुछ तुम्हारे मन में किसी प्रकार के भाव का उद्दीपन कर देता है, वह सब माया के ही अन्तर्गत है। जो कुछ देश-काल-निमित्त के नियम के अधीन है, वही माया के अन्तर्गत है।

अब हम पुनः यह विचार करेंगे कि उस प्रारम्भिक ईश्वर-धारणा का क्या हुआ। यह धारणा कि एक ईश्वर अनन्त काल से हमें प्यार कर रहा है, अनन्त, सर्वशक्तिमान और नि स्वार्थ पुरुष है और इस विश्व का शासन कर रहा है, स्पष्ट ही हमें सतुष्ट नहीं कर सकती। दार्शनिक साहस के साथ इस सगुण ईश्वर-धारणा के विरुद्ध खड़ा होता है। वह पूछता है—तुम्हारा न्यायशील, दयालु ईश्वर कहाँ है? क्या वह अपनी मनुष्य और पशुरूप लाखों सन्तानों का विनाश नहीं देखता? कारण, ऐसा कौन है, जो एक क्षण भी दूसरों की हिंसा किये बिना जीवन धारण कर सकता है? क्या तुम सहस्रों जीवन का सहार किये बिना एक साँस भी ले सकते हो? लाखों जीव मर रहे हैं, इसीसे तुम जीवित हो। तुम्हारे जीवन का प्रत्येक क्षण, तुम्हारा प्रत्येक निश्वास सहस्रों जीवों के लिए मृत्यु है, तुम्हारी प्रत्येक हलचल लाखों का काल है। तुम्हारा प्रत्येक ग्राम लाखों की मौत है। वे क्यों मरें? इस सम्बन्ध में एक प्राचीन कुतर्क है—'वे तो अति क्षुद्र जीव हैं।' पर यह तो एक सन्दिग्ध विषय है। कौन कह सकता है कि चीटी मनुष्य से श्रेष्ठ है, अथवा मनुष्य चीटी से? कौन सिद्ध कर सकता है कि यह ठीक है अथवा वह? यदि मान भी लिया जाय कि वे अति क्षुद्र जीव हैं, तो भी वे मरें क्यों? यदि वे क्षुद्र हैं, तो उनको बचे रहने का तो और भी अधिकार है। वे क्यों न जीवित रहे? उनका जीवन इन्द्रियों में ही अधिक आवद्ध है, अतः वे हमारी-तुम्हारी अपेक्षा सहस्र गुना अधिक दुःख-सुख का वोध करते हैं। कुत्ता या भेड़िया जिस चाव के साथ भोजन करता है, उस तरह कौन मनुष्य कर सकता है? इसका कारण यह है कि हमारी समस्त कार्य-प्रवृत्ति इन्द्रियों में नहीं है—वह बुद्धि में है, आत्मा में है। पर कुत्ते के प्राण इन्द्रियों में ही पड़े रहते हैं, वह

## विश्वप्रेम और उससे आत्मसमर्पण का उदय

समष्टि से प्रेम रिय बिना हम व्यक्ति में कैम प्रेम कर सक्त है? ईस्वर ही वह समष्टि है सारे बिन्दु का यदि एक अणुके रूप में बिन्दुन किया जाय तो वही ईस्वर है और उन पृथक् पृथक् रूप में देखने पर वही यह वृक्षमान संसार है—व्यक्ति है। समष्टि वह इकाई है जिसमें साराँ छोटी छोटी इकाइयों का योग है। हम समष्टि के माध्यम से ही सारे बिन्दु को प्रेम करना सम्भव है। भारतीय दार्शनिक व्यक्ति पर ही नहीं रुक जाने के ता व्यक्ति पर एक मरमरी दृष्टि बासकर सुरत एक एमे व्यापक या समष्टि भाव की गोज में लय जात है जिसमें सब व्यक्तियों या विधियों का अन्तर्भाव हो। हम समष्टि की छात्र ही भारतीय दशन और धर्म का लक्ष्य है। ज्ञानी पुरुष ऐसी एक समष्टि की ऐसे एक निरपेक्ष और व्यापक तत्व की कामना करता है जिसे जानने से वह सब कुछ जान सके। मस्त उस एक सर्वव्यापी पुरुष की साक्षात् उपलब्धि कर लेना चाहता है जिससे प्रेम करने में वह सारे बिन्दु से प्रेम कर सके। योही उस मूलमूल शक्ति को अपने अधिकार में लाना चाहता है, जिसके नियमन से वह इस सम्पूर्ण बिन्दु का नियमन कर सके। यदि हम भारतीय विचार-धारा के इतिहास का अध्ययन करें, तो देखेंगे कि भारतीय धन तथा से हर विषय में—भौतिक विज्ञान मनोविज्ञान भक्तिवत्त्व दर्शन आदि सभी में—एक समष्टि या व्यापक तत्व की इस अपूर्व लोज में लगा रखा है। अतएव मस्त इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि यदि तुम केवल एक के बाद दूसरे व्यक्ति से प्रेम करते चके जाओ तो भी अनन्त काल में भी संसार को एक समष्टि के रूप में प्यार करने में समर्थ न हो सकोगे। पर अन्त में जब वह मूल सत्य ज्ञात हो जाता है कि समस्त प्रेम की समष्टि ईस्वर है संसार के मुक्त बद्ध या मुमुक्षु सारे जीवात्माओं की आदर्श-समष्टि ही ईस्वर है, तभी यह विश्वप्रेम सम्भव होता है। ईस्वर ही समष्टि है और यह परिदृश्यमान जगत् उसीका परिच्छिन्न भाग है—उसीकी अभिव्यक्ति है। यदि हम इस समष्टि को प्यार करें, तो इससे सभी को प्यार करना हो जाता है। तब जसत् को प्यार करना और उसकी मकाई करना सहज हो जाता है। पर पहले मन्त्रप्रेम के द्वारा हमें यह शक्ति प्राप्त कर लेनी होगी अन्यथा संसार की मकाई करना कोई हँसी-खेड नहीं है। मस्त कहता है, 'सब कुछ उसीका है, वह मेरा भिन्नतम है मैं उससे प्रेम करता हूँ। इस प्रकार मस्त को सब

कुछ पवित्र प्रतीत होने लगता है, क्योंकि वह सब आखिर उसीका तो है। सभी उसकी सन्तान है, उसके अगस्वरूप हैं, उसके रूप हैं। तब फिर हम किसीको कैसे चोट पहुँचा सकते हैं? दूसरो को बिना प्यार किये हम कैसे रह सकते है? भगवान् के प्रति प्रेम के साथ ही, उसके निश्चित फलस्वरूप, सर्व भूतो के भी प्रति प्रेम अवश्य आयेगा। हम ईश्वर के जितने समीप आते जाते है, उतने ही अधिक स्पष्ट रूप से देखते है कि सब कुछ उसीमे है। जब जीवात्मा इस परम प्रेमानन्द को आत्मसात करने मे सफल होती है, तब वह ईश्वर को सर्व भूतो मे देखने लगती है। इस प्रकार हमारा हृदय प्रेम का एक अनन्त स्रोत बन जाता है। और जब हम इस प्रेम की और भी उच्चतर अवस्थाओ मे पदार्पण करते हैं, तब ससार की वस्तुओ मे क्षुद्र भेद की भावनाएँ हमारे हृदय से सर्वथा लुप्त हो जाती हैं। तब मनुष्य मनुष्य के रूप मे नही दीखता, वरन् साक्षात् ईश्वर के रूप मे ही दीख पडता है, पशु मे पशु-रूप नही दिखायी पडता, वरन् उसमे स्वयं भगवान् ही दीख पडते हैं, यहाँ तक कि ऐसे प्रेमी की आँखो से वाघ का भी वाघ-रूप लुप्त हो जाता है और उसमे स्वयं भगवान् प्रकाशमान दीख पडता है। इस प्रकार, भक्ति की इस प्रगाढ अवस्था मे सभी प्राणी हमारे लिए उपास्य हो जाते हैं। 'हरि को सब भूतो मे अवस्थित जानकर ज्ञानी को सब प्राणियो के प्रति अव्यभिचारिणी भक्ति रखनी चाहिए।'

इस प्रगाढ, सर्वग्राही प्रेम के फलस्वरूप पूर्ण आत्मसमर्पण की अवस्था उपस्थित होती है। तब यह दृढ विश्वास हो जाता है कि ससार मे भला-बुरा जो कुछ होता है, कुछ भी हमारे लिए अनिष्टकर नही। शास्त्रो ने इसीको 'अप्रातिकूल्य' कहा है। ऐसा प्रेमी जीव दुःख उपस्थित होने पर कहता है, "दुःख ! स्वागत है तुम्हारा।" यदि कष्ट आये, तो कहेगा, "आओ कष्ट ! स्वागत है तुम्हारा। तुम भी तो मेरे प्रियतम के पास से ही आये हो।" यदि सर्प आये, तो कहेगा, "विराजो, सर्प ! " यहाँ तक कि यदि मृत्यु भी आये, तो वह अघरो पर मुस्कान लिये उसका स्वागत करेगा। "धन्य हूँ मैं, जो ये सब मेरे पास आते हैं, इन सबका स्वागत है।" भगवान् और जो कुछ भगवान् का है, उस सबके प्रति प्रगाढ प्रेम से उत्पन्न होनेवाली इस पूर्ण निर्भरता की अवस्था मे भक्त अपने को प्रभावित करनेवाले सुख और दुःख का भेद भूल जाता है। दुःख-कष्ट आने पर वह तनिक भी विचलित नही होता। और प्रेमस्वरूप ईश्वर की इच्छा पर यह जो स्थिर, खेदशून्य निर्भरता

१ एव सर्वेषु भूतेषु भक्तिरव्यभिचारिणी।

कर्तव्या पण्डितैर्ज्ञात्वा सर्वभूतमय हरिम् ॥

## विश्वप्रेम और उससे आत्मसमर्पण का उदय

समष्टि में प्रेम किस बिना हम व्यक्ति में प्रेम कर सकते हैं? ईश्वर ही वह समष्टि है। गारे बिना का यदि एक अणु ही भी बिना ही जिया जाय तो बही ईश्वर है और उसे पुष्प पुष्प रूप में बगने पर बही यह दुःखमान संगार है—व्यक्ति है। समष्टि वह इकाई है जिसमें साणा छोटी छोटी इकाइया का योग है। हम समष्टि के माध्यम से ही गारे बिना को प्रेम करना सम्भव है। भारतीय दार्शनिक व्यष्टि पर ही नहीं रुक जाने के ता व्यष्टि पर एक सरसरी दृष्टि साम्प्रदायिक रूप से एक ऐसे व्यापक या समष्टि भाव की गोज में लग जाने हैं जिसमें सब व्यष्टियों या विभेदों का अन्तर्भाव हो। हम समष्टि की गोज ही भारतीय दर्शन और धर्म का कर्म है। यानी पुष्प ऐसी एक समष्टि की ऐम एक निरपेक्ष और व्यापक तत्व की नामना करता है जिसे जानने में वह सब कुछ जान सके। मन्त्र उस एक सर्वव्यापी पुष्प की साक्षात् उपस्थिति कर लेना चाहता है जिसमें प्रेम करने में वह सारे विश्व से प्रेम कर सके। योमी उस मूलभूत व्यक्ति को अपने अधिगार में लाता चाहता है जिसके नियमन में वह हम सम्पूर्ण विश्व का नियमन कर सके। यदि हम भारतीय विचार-धारा के इतिहास का अध्ययन करें, तो देखेंगे कि भारतीय मन सदा से हर विषय में—नीतिक विज्ञान मनोविज्ञान मूलतत्त्व दर्शन आदि सभी में—एक समष्टि या व्यापक तत्व की इस अपूर्व गोज में लगा रहा है। अतएव भक्त इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि यदि तुम केवल एक के बाद दूसरे व्यक्ति से प्रेम करते चके जाओ तो भी अन्त काल में भी संसार को एक समष्टि के रूप में प्यार करने में समर्थ न हो सकोगे। पर अन्त में जब वह मूल सत्य ज्ञात हो जाता है कि समस्त प्रेम की समष्टि ईश्वर है संसार के मुक्त बन्ध या मुमुक्षु सारे जीवात्माओं की आर्ष-समष्टि ही ईश्वर है, तभी यह विश्वप्रेम सम्भव होता है। ईश्वर ही समष्टि है और यह परिदृश्यमान जगत् उसीका परिच्छिन्न भाग है—उसीकी अभिव्यक्ति है। यदि हम इस समष्टि का प्यार करते, तो इससे सभी को प्यार करना हो जाता है। तब जगत् को प्यार करना और उसकी भलाई करना सहज हो जाता है। पर पहले मनवत्प्रेम के द्वारा हमें यह क्षति प्राप्त कर लेनी होगी जससे संसार की भलाई करना कोई हठी-बेच नहीं है। भक्त कहता है, “यह कुछ उचीका है, वह मेरा प्रियतम है मैं उससे प्रेम करता हूँ। इस प्रकार भक्त को सब

कुछ पवित्र प्रतीत होने लगता है, क्योंकि वह सब आखिर उसीका तो है। सभी उसकी सन्तान हैं, उसके अगस्वरूप हैं, उसके रूप हैं। तब फिर हम किसीको कैसे चोट पहुँचा सकते हैं? दूसरो को बिना प्यार किये हम कैसे रह सकते है? भगवान् के प्रति प्रेम के साथ ही, उसके निश्चित फलस्वरूप, सर्व भूतो के भी प्रति प्रेम अवश्य आयेगा। हम ईश्वर के जितने समीप आते जाते हैं, उतने ही अधिक स्पष्ट रूप से देखते हैं कि सब कुछ उसीमे है। जब जीवात्मा इस परम प्रेमानन्द को आत्मसात करने मे सफल होती है, तब वह ईश्वर को सर्व भूतो मे देखने लगती है। इस प्रकार हमारा हृदय प्रेम का एक अनन्त स्रोत बन जाता है। और जब हम इस प्रेम की और भी उच्चतर अवस्थाओ मे पदार्पण करते हैं, तब ससार की वस्तुओ मे क्षुद्र भेद की भावनाएँ हमारे हृदय से सर्वथा लुप्त हो जाती हैं। तब मनुष्य मनुष्य के रूप मे नही दीखता, वरन् साक्षात् ईश्वर के रूप मे ही दीख पडता है, पशु मे पशु-रूप नही दिखायी पडता, वरन् उसमे स्वयं भगवान् ही दीख पडते हैं, यहाँ तक कि ऐसे प्रेमी की आँखो से बाघ का भी बाघ-रूप लुप्त हो जाता है और उसमे स्वयं भगवान् प्रकाशमान दीख पडता है। इस प्रकार, भक्ति की इस प्रगाढ अवस्था मे सभी प्राणी हमारे लिए उपास्य हो जाते हैं। 'हरि को सब भूतो मे अवस्थित जानकर ज्ञानी को सब प्राणियो के प्रति अब्यभिचारिणी भक्ति रखनी चाहिए।'<sup>१</sup>

इस प्रगाढ, सर्वग्राही प्रेम के फलस्वरूप पूर्ण आत्मसमर्पण की अवस्था उपस्थित होती है। तब यह दृढ विश्वास हो जाता है कि ससार मे भला-बुरा जो कुछ होता है, कुछ भी हमारे लिए अनिष्टकर नही। शास्त्रो ने इसीको 'अप्रातिकूल्य' कहा है। ऐसा प्रेमी जीव दुःख उपस्थित होने पर कहता है, "दुःख ! स्वागत है तुम्हारा।" यदि कष्ट आये, तो कहेगा, "आओ कष्ट ! स्वागत है तुम्हारा। तुम भी तो मेरे प्रियतम के पास से ही आये हो।" यदि सर्प आये, तो कहेगा, "विराजो, सर्प !" यहाँ तक कि यदि मृत्यु भी आये, तो वह अघरो पर मुस्कान लिये उसका स्वागत करेगा। "धन्य हूँ मैं, जो ये सब मेरे पास आते हैं, इन सबका स्वागत है।" भगवान् और जो कुछ भगवान् का है, उस सबके प्रति प्रगाढ प्रेम से उत्पन्न होनेवाली इस पूर्ण निर्भरता की अवस्था मे भक्त अपने को प्रभावित करनेवाले सुख और दुःख का भेद भूल जाता है। दुःख-कष्ट आने पर वह तनिक भी विचलित नही होता। और प्रेमस्वरूप ईश्वर की इच्छा पर यह जो स्थिर, खेदशून्य निर्भरता

१ एव सर्वेषु भूतेषु भक्तिरव्यभिचारिणी।

कर्तव्या पण्डितैर्ज्ञात्वा सर्वभूतमय हरिम्॥



## विश्वप्रेम और उससे आत्मसमर्पण का उदय

समष्टि से प्रेम किये बिना हम व्यक्ति में कैसे प्रेम कर सकते हैं? ईश्वर ही वह समष्टि है सारे विश्व का यदि एक अगण्ड रूप में विस्तृत किया जाय तो वही ईश्वर है, और उसे पूषण पूषण रूप से देखने पर वही यह इत्यमान संसार है—व्यक्ति है। समष्टि वह इकाई है जिसमें सारों छोटी छोटी इकाइयों का योग है। इस समष्टि के माध्यम से ही सारे विश्व को प्रेम करना सम्भव है। भारतीय दार्शनिक व्यक्ति पर ही नहीं रुक जाते वे तो व्यक्ति पर एक सरसरी दृष्टि डालकर तुरन्त एक ऐसे व्यापक या समष्टि भाव की शोख में लग जाते हैं, जिसमें सब व्यक्तियों या विशेषों का अन्तर्भाव हो। इस समष्टि की शोख ही भारतीय दर्शन और धर्म का लक्ष्य है। ज्ञानी पुरुष ऐसी एक समष्टि की ऐसे एक निरंतर और व्यापक तत्त्व की कामना करता है जिसे जानने से वह सब कुछ जान सके। भक्त उस एक सर्वव्यापी पुरुष की साक्षात् उपसम्पि कर लेना चाहता है, जिससे प्रेम करने से वह सारे विश्व से प्रेम कर सके। योही उस मूलमूल शक्ति को अपने अधिकार में लाना चाहता है, जिसके नियमन से वह इस सम्पूर्ण विश्व का नियमन कर सके। यदि हम भारतीय विचार-धारा के इतिहास का अध्ययन करें तो देखेंगे कि भारतीय मन सदा से हर विषय में—भौतिक विज्ञान मनोविज्ञान भक्तितत्त्व दर्शन आदि सभी में—एक समष्टि या व्यापक तत्त्व की इस अपूर्व शोख में लगा रखा है। अतएव भक्त इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि यदि तुम केवल एक के बाद दूसरे व्यक्ति से प्रेम करते चले जाओ तो भी अनन्त काल में भी संसार को एक समष्टि के रूप में प्यार करने में समर्थ न हो सकोगे। पर अन्त में जब यह मूल सत्य ज्ञात हो जाता है कि समस्त प्रेम की समष्टि ईश्वर है संसार के मुक्त बन्ध या मुमुक्षु सारे पीडाग्रहाओं की आदर्श-समष्टि ही ईश्वर है, तभी यह विश्वप्रेम सम्भव होता है। ईश्वर ही समष्टि है और यह परितुल्यमान अगण्ट उसीका परिच्छिन्न भाग है—उसीकी अभिव्यक्ति है। यदि हम इस समष्टि का प्यार करें, तो इससे सभी को प्यार करना हो जाता है। तब अपाए को प्यार करना और उसकी भलाई करना सहज हो जाता है। पर पहले भगवत्प्रेम के द्वारा हम यह शक्ति प्राप्त कर लेनी होगी अन्यथा संसार की भलाई करना कोई हौसी-बिल नहीं है। भक्त कहता है, "सब कुछ उसीका है वह मेरा प्रियतम है, मैं उससे प्रेम करता हूँ। इस प्रकार भक्त को सब

कुछ पवित्र प्रतीत होने लगता है, क्योंकि वह सब आखिर उसीका तो है। सभी उसकी सन्तान हैं, उसके अगस्वरूप हैं, उसके रूप हैं। तब फिर हम किसीको कैसे चोट पहुँचा सकते हैं? दूसरो को विना प्यार किये हम कैसे रह सकते हैं? भगवान् के प्रति प्रेम के साथ ही, उसके निश्चित फलस्वरूप, सर्व भूतो के भी प्रति प्रेम अवश्य आयेगा। हम ईश्वर के जितने समीप आते जाते हैं, उतने ही अधिक स्पष्ट रूप से देखते हैं कि सब कुछ उसीमे है। जब जीवात्मा इस परम प्रेमानन्द को आत्मसात करने में सफल होती है, तब वह ईश्वर को सर्व भूतो मे देखने लगती है। इस प्रकार हमारा हृदय प्रेम का एक अनन्त स्रोत बन जाता है। और जब हम इस प्रेम की और भी उच्चतर अवस्थाओ मे पदार्पण करते हैं, तब ससार की वस्तुओ मे क्षुद्र भेद की भावनाएँ हमारे हृदय से सर्वथा लुप्त हो जाती हैं। तब मनुष्य मनुष्य के रूप मे नही दीखता, वरन् साक्षात् ईश्वर के रूप मे ही दीख पडता है, पशु मे पशु-रूप नही दिखायी पडता, वरन् उसमे स्वयं भगवान् ही दीख पडते हैं, यहाँ तक कि ऐसे प्रेमी की आँखो से वाघ का भी वाघ-रूप लुप्त हो जाता है और उसमे स्वयं भगवान् प्रकाशमान दीख पडता है। इस प्रकार, भक्ति की इस प्रगाढ अवस्था मे सभी प्राणी हमारे लिए उपास्य हो जाते हैं। 'हरि को सब भूतो मे अवस्थित जानकर ज्ञानी को सब प्राणियो के प्रति अब्यभिचारिणी भक्ति रखनी चाहिए।'<sup>१</sup>

इस प्रगाढ, सर्वग्राही प्रेम के फलस्वरूप पूर्ण आत्मसमर्पण की अवस्था उपस्थित होती है। तब यह दृढ विश्वास हो जाता है कि ससार मे भला-बुरा जो कुछ होता है, कुछ भी हमारे लिए अनिष्टकर नही। शास्त्रो ने इसीको 'अप्रातिकूल्य' कहा है। ऐसा प्रेमी जीव दुःख उपस्थित होने पर कहता है, "दुःख ! स्वागत है तुम्हारा।" यदि कष्ट आये, तो कहेगा, "आओ कष्ट ! स्वागत है तुम्हारा। तुम भी तो मेरे प्रियतम के पास से ही आये हो।" यदि सर्प आये, तो कहेगा, "विराजो, सर्प !" यहाँ तक कि यदि मृत्यु भी आये, तो वह अघरो पर मुस्कान लिये उसका स्वागत करेगा। "धन्य हूँ मैं, जो ये सब मेरे पास आते हैं, इन सबका स्वागत है।" भगवान् और जो कुछ भगवान् का है, उस सबके प्रति प्रगाढ प्रेम से उत्पन्न होनेवाली इस पूर्ण निर्भरता की अवस्था मे भक्त अपने को प्रभावित करनेवाले सुख और दुःख का भेद भूल जाता है। दुःख-कष्ट आने पर वह तनिक भी विचलित नही होता। और प्रेमस्वरूप ईश्वर की इच्छा पर यह जो स्थिर, खेदशून्य निर्भरता

१ एव सर्वेषु भूतेषु भक्तिरव्यभिचारिणी।

कर्तव्या पण्डितैर्ज्ञात्वा सर्वभूतमय हरिम्॥

है वह तो सबमुझ महान् पीठ्यापुत्र जिया-कलापों से मिलनेवासे नाम-व्रत की अपेक्षा कहीं अधिक वाञ्छनीय है।

अधिकतर मनुष्यों के लिए बेह ही सब कुछ है। बेह ही उनकी सारी बुनियाद है। वैहिक सुख-भोग ही उनका सर्वस्व है। देह और बेह से सम्बन्धित वस्तुओं की उपासना करने का भूत हम सबमें प्रबिष्ट हो गया है। भस्ते ही हम सम्झी चीड़ी बातें करें बड़ी ऊँची ऊँची उड़ानें लें पर आखिर हूँ हम गिद्धों के ही समान। हमारा मन सदा नीचे पड़ हुए सड़े-भस्ते भास के टुकड़े में ही पड़ा रहता है। हम धेर से अपने शरीर की रक्षा क्यों करें? हम उसे धेर को क्यों न दे दें? कम से कम उससे धेर की तो तृप्ति होगी और यह कार्य आत्मत्याग और उपासना से अधिक भिन्न न होगा। क्या तुम ऐसे एक भाव की उपसन्धि कर सकते हो जिसमें स्वार्थ की चिन्ता भी सम्म न हो? क्या तुम अपना यह भाव सम्पूर्ण रूप से गप् कर सकते हो? यह प्रेम-वर्म के धिक्कर की यह सिर चकरा देनेवाली ऊँचाई है और बहुत पौड़े भोग ही उस तक पहुँच सके हैं। पर जब तक मनुष्य इस प्रकार के आत्मत्याग के लिए सारे समय पूरे हृदय के साथ प्रस्तुत नहीं रहता तब तक वह पूर्ण मक्त नहीं हो सकता। हम अपने इस शरीर को अल्प अवकाश अधिक समय तक के लिए भस्ते ही बनादे रख ले पर उससे क्या? हमारे शरीर का एक न एक दिन नाश होना तो अवश्यम्भावी है। उसका अस्तित्व धिरस्थायी नहीं है। वे वश्य हैं जिनका शरीर बूखरों की सेवा में अर्पित हो जाता है। 'एक साधु पुरुष केवल अपनी सम्पत्ति ही नहीं बरन् अपने प्राण भी बूखरों की सेवा में उत्सर्ग कर देने के लिए सर्वत्र उद्यत रहता है। इस संसार में जब मृत्यु निश्चित है तो श्रेष्ठ यही है कि यह शरीर किसी नीच कार्य की अपेक्षा किसी उत्तम कार्य में ही अर्पित हो जाय। हम भस्ते ही अपने जीवन को पचास वर्ष या बहुत हुआ तो सौ वर्ष तक नीच क कार्य पर उसके बाध? उसके बाध क्या होता है? जो बस्तु संघात से उत्पन्न होती है वह विचटित होकर नष्ट भी होती है। ऐसा समय अवश्य आता है, जब उसे विचटित होना पड़ता है। ईसा बुद्ध और मुहम्मद सभी विचगण हो गये। संसार के सारे महापुरुष और आचार्यजन आज इस शरीर से उठ गये हैं।

मक्त कहता है "इस शरणगुर संसार में जहाँ प्रत्येक वस्तु टुकड़े टुकड़े हो चुक म मिली जा रही है। हमें अपने समय का सदुपयोग कर लेना चाहिए। और वास्तव में जीवन का सर्वश्रेष्ठ उपयोग यही है कि उसे सर्वभूतों की सेवा में लगा दिया जाय। हमारा सबसे बड़ा भ्रम यह है कि हमारा यह शरीर ही हम है और जिस किसी प्रकार से हो इसकी रक्षा करनी होनी इसे सुखी रक्षना होना। और यह ममानक बेहात्म बुद्धि ही संसार में सब प्रकार की स्वार्थपरता की बड़ है। यदि तुम यह निश्चित

रूप से जान सकी कि तुम शरीर से विल्कुल पृथक् हो, तो फिर इस दुनिया में ऐसा कुछ भी नहीं रह जायगा, जिसके साथ तुम्हारा विरोध हो सके। तब तुम सब प्रकार की स्वार्थपरता के अतीत हो जाओगे। इसीलिए भक्त कहता है कि हमें ऐसा रहना चाहिए, मानो हम दुनिया की सारी चीजों के लिए मर से गये हों। और वास्तव में यही यथार्थ आत्मसमर्पण है—यही सच्ची शरणागति है—‘जो होने का है, हो।’ यही ‘तेरी इच्छा पूर्ण हो’ का तात्पर्य है। उसका तात्पर्य यह नहीं कि हम यत्र-तत्र लड़ाई-झगडा करते फिरें और सारे समय यही सोचते रहे कि हमारी ये सारी कमजोरियाँ और सासारिक आकाशाएँ भगवान् की इच्छा से हो रही हैं। हो सकता है कि हमारे स्वार्थपूर्ण प्रयत्नों से भी कुछ भला हो जाय, पर वह ईश्वर देखेगा, उसमें हमारा-तुम्हारा कोई हाथ नहीं। यथार्थ भक्त अपने लिए कभी कोई इच्छा या कार्य नहीं करता। उसके हृदय के अन्तरतम प्रदेश से तो वस यही प्रार्थना निकलती है, “प्रभो, लोग तुम्हारे नाम पर बड़े बड़े मन्दिर बनवाते हैं, बड़े बड़े दान देते हैं, पर मैं तो निर्बल हूँ, मेरे पास कुछ भी नहीं है। अतः मैं अपने इस शरीर को ही तुम्हारे चरणों में अर्पित करता हूँ। मेरा परित्याग न करना, मेरे प्रभो।” जिसने एक बार इस अवस्था का आस्वादन कर लिया है, उसके लिए प्रेमास्पद भगवान् के चरणों में यह चिर आत्मसमर्पण कुवेर के धन और इन्द्र के ऐश्वर्य से भी श्रेष्ठ है, नाम-यश और सुख-सम्पदा की महान् आकाशा से भी महत्तर है। भक्त के शान्त आत्मसमर्पण से हृदय में जो शान्ति आती है, उसकी तुलना नहीं हो सकती, वह बुद्धि के लिए अगोचर है। इस अप्रातिकूल्य अवस्था की प्राप्ति होने पर उसका किसी प्रकार का स्वार्थ नहीं रह जाता, और तब फिर स्वार्थ में बाधा देनेवाली कोई वस्तु भी ससार में नहीं रह जाती। इस परम शरणागति की अवस्था में सब प्रकार की आसक्ति समूल नष्ट हो जाती है और रह जाती है सर्वभूतों की अन्तरात्मा और आवारस्वरूप उस भगवान् के प्रति सर्वाविगाहिनी प्रेमात्मिका भक्ति। भगवान् के प्रति प्रेम की यह आसक्ति ही सचमुच ऐमी है, जो जीवात्मा को नहीं बाँधती, प्रत्युत उसके समस्त बन्धन मार्थक रूप से छिन्न कर देती है।

## सच्चे भक्त के लिए पराविद्या और पराभक्ति एक हैं

उपनिषदों में परा और अपरा विद्या में भेद बतलाया गया है। भक्त के लिए पराविद्या और पराभक्ति दोनों एक ही हैं। मुख्यतः उपनिषद् में कहा है, 'ब्रह्म-ज्ञानी के मतानुसार परा और अपरा ये दो प्रकार की विद्याएँ जानने योग्य हैं। अपरा विद्या में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद वषट्ठवेद विद्या (उच्चारणार्थि की विद्या) कल्प (महापद्यति) व्याकरण निरुक्त (वैदिक शब्दों की व्युत्पत्ति और अर्थ बतानेवाला शास्त्र) छन्द और ज्योतिष आदि हैं तथा पराविद्या द्वारा उस अक्षर ब्रह्म का ज्ञान होता है।' इस प्रकार पराविद्या स्पष्टतः ब्रह्मविद्या है।

द्वैतीभाष्य में पराभक्ति की निम्नलिखित व्याख्या है—'एक वर्तन से दूसरे वर्तन में तेज डालने पर जिस प्रकार एक अविच्छिन्न धारा में प्रवाहित होता है उसी प्रकार जब मन भगवान् के सतत चिन्तन में डूब जाता है, तो पराभक्ति की अवस्था प्राप्त हो जाती है।' भगवान् के प्रति अविच्छिन्न आसक्ति के साथ हृदय और मन का इस प्रकार अविरत और नित्य स्थिर भाव ही मनुष्य के हृदय में भगवत्प्रेम का सर्वोच्च प्रकाश है। अन्य सब प्रकार की भक्ति इस पराभक्ति अर्थात् रसानुभा भक्ति की प्राप्ति के लिए केवल उपानसक है। जब इस प्रकार का अपरा अनुराग मनुष्य के हृदय में उत्पन्न हो जाता है तो उसका मन निरन्तर भगवान् के स्मरण में ही डूबा रहता है उसे और किसीका ध्यान ही नहीं जाता। भगवान् के अतिरिक्त वह अपने मन में अन्य विचारों को स्थान तक नहीं देता और फलस्वरूप उसकी आत्मा पवित्रता के अनेक कवच से रक्षित हो जाती है तथा मानसिक एवं भौतिक समस्याओं को छोड़कर शान्त और मुक्त भाव धारण कर लेती है। ऐसा ही व्यक्ति अपने हृदय में भगवान् की उपासना कर सकता है। उसके

१ इति चित्तं वैदित्तव्ये इति ह स्म परं ब्रह्मविद्यो बभूव परा वैवापरा च ।  
तत्रापरा, ऋग्वेदो यजुर्वेदो सामवेदोऽथर्ववेदोः विद्या कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो  
ज्योतिषमिति । अथ परा-मया तद्व्यञ्जनविधयस्तैः ॥ मुख्यश्लोपनिषद् ॥ १।१।४-५॥

२ वैतसी वर्तन-वैव तद्व्यञ्जनार्थं सदा ॥ द्वैतीभाष्य ॥ १०।१७।११॥

लिए अनुष्ठान-पद्धति, प्रतिमा, शास्त्र और मत-मतान्तर आदि अनावश्यक हो जाते हैं, उनके द्वारा उसे और कोई लाभ नहीं होता। भगवान् की इस प्रकार उपासना करना सहज नहीं है। साधारणतया मानवी प्रेम वही लहलहाते देखा जाता है, जहाँ उसे दूसरी ओर से बदले में प्रेम मिलता है, और जहाँ ऐसा नहीं होता, वहाँ उदासीनता आकर अपना अधिकार जमा लेती है। ऐसे उदाहरण बहुत कम हैं, जहाँ बदले में प्रेम न मिलते हुए भी प्रेम का प्रकाश होता हो। उदाहरणार्थ, हम दीपक के प्रति पतिंगे के प्रेम को ले सकते हैं। पतिंगा दीपक से प्रेम करता है और उसमें गिरकर अपने प्राण दे देता है। असल में इस प्रकार प्रेम करना उसका स्वभाव ही है। केवल प्रेम के लिए प्रेम करना ससार में निस्सन्देह प्रेम की सर्वोच्च अभिव्यक्ति है और यही पूर्ण नि स्वार्थ प्रेम है। इस प्रकार का प्रेम जब आध्यात्मिकता के क्षेत्र में कार्य करने लगता है, तो वही हमें पराभक्ति की उपलब्धि कराता है।

## प्रेम का त्रिकोण

प्रेम की उपमा एक त्रिकोण से दी जा सकती है जिसका प्रत्येक कोण प्रेम के एक एक अभिप्राय्य गुण का सूचक है। जिस प्रकार बिना तीनों कोनों के त्रिकोण नहीं बन सकता उसी प्रकार निम्नलिखित तीन गुणों के बिना यथार्थ प्रेम का हुना असम्भव है। इस प्रेमकामी त्रिकोण का पहला कोण तो यह है कि प्रेम में किसी प्रकार का स्व-विश्रय नहीं होता। वहाँ कहीं किसी बदक की भासा रहती है वहाँ यथार्थ प्रेम कभी नहीं हो सकता वह तो एक प्रकार की झूठानवासी सी हो जाती है। जब तक हमारे हृदय में इस प्रकार की चोड़ी सी भी भावना रहती है कि मयबानु की आराधना के बबसे में हमें उससे कुछ मिले तब तक हमारे हृदय में यथार्थ प्रेम का संचार नहीं हो सकता। जो लोग किसी वस्तु की प्राप्ति के लिए ईश्वर की उपासना करते हैं उन्हें यदि वह चीज न मिले तो निरवय ही वे उसकी आराधना करना छोड़ देंगे। मन्त मगबानु से इसलिये प्रेम करता है कि वह प्रेमास्पद है अपने मन्त के इस बीबी प्रेम का और कोई हेतु नहीं रखा।

एक बार एक राजा किसी जन में गया। वहाँ उसे एक साधु मिले। साधु से चोड़ी देर बातचीत करके राजा उनकी पवित्रता और ज्ञान पर बड़ा मुग्ध हो गया। राजा ने उसके प्रार्थना की "महाराज यदि आप मुझसे कोई भेंट बहल करने की कृपा करें, तो बन्ध हो जाऊँ। पर साधु ने इन्कार कर दिया और कहा "इस जगल के एक मेरे लिए पर्याप्त है, पहाकों से निकले हुए मुड पानी के झरने पीने को पर्याप्त जल है बेटे हैं बूखों की छाँ में मेरे शरीर को डकने के लिए काफी है और पर्वतों की कन्दरपट्टें मुझर वर का काम देती हैं। मैं तुमसे अबबा अन्य किसीस कोई भेंट क्यों हूँ? राजा ने कहा महाराज केवल मुझे कृत्तार्थ करने के लिए कृपया कुछ अवसर स्वीकार कर लीजिए, और गया कर मेरे साथ बककर मेरी राजपानी तथा महल को पवित्र लीजिए। विराय आइह के बार साधु ने अन्त में राजा की प्रार्थना स्वीकार कर ली और उसके साथ उसके महल को गये। साथ को भेंट देने के पहले राजा नियमानुसार अपनी दैनिक प्रार्थना करने गया। उसन कहा है ईश्वर, मुझ और अधिक सन्तान को मेरा जन और भी बडे मेरा राज्य अधिवाधिक पैक जाय मेरा शरीर स्वस्व और मीरोग रू आदि आदि। राजा अपनी प्रायना समाप्त भी न कर पाया वा कि साधु उठ लड़े हुए

और चुपके से कमरे के बाहर चल दिये। यह देखकर राजा बड़े असमजस में पड गया और चिल्लाता हुआ साधु के पीछे भागा, "महाराज, आप कहाँ जा रहे हैं, आपने तो मुझसे कोई भी भेंट ग्रहण नहीं की।" यह सुनकर वे साधु पीछे घूमकर राजा से बोले, "अरे भिखारी, मैं भिखारियों से भिक्षा नहीं माँगता। तू तो स्वयं एक भिखारी है, मुझे किस प्रकार भिक्षा दे सकता है। मैं इतना मूर्ख नहीं कि तुझ जैसे भिखारी से कुछ लूँ। जा, भाग जा, मेरे पीछे मत आ।"

इस कथा से ईश्वर के सच्चे प्रेमियों और साधारण भिखारियों में भेद बड़े सुन्दर ढंग से प्रकट हुआ है। भिखारी की भाँति गिडगिडाना प्रेम की भाषा नहीं है। यहाँ तक कि, मुक्ति के लिए भगवान् की उपासना करना भी अघम उपासना में गिना जाता है। प्रेम कोई पुरस्कार नहीं चाहता। प्रेम सर्वदा प्रेम के लिए ही होता है। भक्त इसलिए प्रेम करता है कि बिना प्रेम किये वह रह ही नहीं सकता। जब तुम किसी मनोहर प्राकृतिक दृश्य को देखकर उस पर मोहित हो जाते हो, तो उस दृश्य से तुम किसी फल की याचना नहीं करते और न वह दृश्य ही तुमसे कुछ माँगता है। फिर भी उस दृश्य का दर्शन तुम्हारे मन को बड़ा आनन्द देता है, वह तुम्हारे मन के घर्षणों को हल्का कर तुम्हें शान्त कर देता है और उस समय तक के लिए मानो तुम्हें अपनी नश्वर प्रकृति से ऊपर उठाकर एक स्वर्गीय आनन्द से भर देता है। सच्चे प्रेम का यह भाव उक्त त्रिकोणात्मक प्रेम का पहला कोण है। अपने प्रेम के बदले में कुछ मत माँगो। सदैव देते ही रहो। भगवान् को अपना प्रेम दो, परन्तु बदले में उससे कुछ भी माँगो मत।

प्रेम के इस त्रिकोण का दूसरा कोण है प्रेम का भय से नितान्त रहित होना। जो लोग भयवश भगवान् से प्रेम करते हैं, वे अघम मनुष्य हैं, उनमें अभी तक मनुष्यत्व का विकास नहीं हुआ। वे दण्ड के भय से ईश्वर की उपासना करते हैं। उनकी दृष्टि में ईश्वर एक महान् पुरुष है, जिसके एक हाथ में दण्ड है और दूसरे में चाबुक। उन्हें इस बात का डर रहता है कि यदि वे उसकी आज्ञा का पालन नहीं करेंगे, तो उन्हें कोड़े लगाये जायेंगे। पर दण्ड के भय से ईश्वर की उपासना करना सबसे निम्न कोटि की उपासना है। एक तो, वह उपासना कहलाने योग्य है ही नहीं, फिर भी यदि उसे उपासना कहे, तो वह प्रेम की सबसे भद्दी उपासना है। जब तक हृदय में किसी प्रकार का भय है, तब तक प्रेम कैसे हो सकता है? प्रेम, स्वभावतः सब प्रकार के भय पर विजय प्राप्त कर लेता है। उदाहरणार्थ, यदि एक युवती माँ सड़क पर जा रही हो और उस पर कुत्ता भौंक पड़े, तो वह डरकर समीपस्थ घर में घुस जायगी। परन्तु मान लो, दूसरे दिन वही स्त्री अपने बच्चे के साथ जा रही है और उसके बच्चे पर शेर झपट पड़ता है। तो बताओ, वह क्या



करेगी? बच्चे की रक्षा के लिए वह स्वयं घर के मुँह में बसी बायमी। सचमुच प्रेम समस्त भय पर विजय प्राप्त कर लेता है। भय इस स्वार्थपर भावना से उत्पन्न होता है कि मैं दुनिया से अलग हूँ। और जितना ही मैं अपने को सुरक्षित और स्वार्थपर बनाऊँगा मेरा भय उतना ही बढ़ेगा। यदि कोई मनुष्य अपने को एक छोटा सा तुच्छ जीव समझे तो भय उसे अबस्य भेर सेगा। और तुम अपने को जितना ही कम तुच्छ समझोगे तुम्हारे लिए भय भी उतना ही कम होगा। जब तक तुममें बड़का सा भी भय है तब तक तुम्हारे मानस-सरोवर में प्रेम की तरंगें नहीं उठ सकती। प्रेम और भय दोनों एक साथ कभी नहीं रह सकते। जो मनबान् से प्रेम करते हैं, उन्हें उससे डरना नहीं चाहिए। 'ईश्वर का नाम ध्येय में न लो' इस आदेश पर ईश्वर का सच्चा प्रेमी हूँसता है। प्रेम के धर्म में ईस-नित्या किस प्रकार सम्भव है? ईश्वर का नाम तुम जितना ही सोगे फिर वह किसी भी प्रकार से क्यों न हो तुम्हारा उतना ही संभव है। उससे प्रेम होने के कारण ही तुम उसका नाम लेते हो।

प्रेमरूपी त्रिकोण का तीसरा कोण है प्रेम में किसी प्रतिद्वन्दी का न होना क्योंकि इस प्रेम में ही प्रेमी का सर्वोच्च आदर्श मूठ रहता है। सच्चा प्रेम तब तक नहीं होता जब तक हमारे प्रेम का पात्र हमारा सर्वोच्च आदर्श नहीं बन जाता। हो सकता है कि अनेक स्वकों में मनुष्य का प्रेम अनुचित विद्या में और अपात्र बना जाता हो पर जो प्रेमी है उसके लिए तो उसका प्रेमपात्र ही उच्चतम आदर्श है। हो सकता है, कोई व्यक्ति अपना आदर्श सबसे निकट मनुष्य में देखे और कोई दूसरा किसी बेव-मानव में पर प्रत्येक बच्चा में वह आदर्श ही है, जिसे सच्चे और प्रगाढ़ रूप से प्रेम किया जाता है। प्रत्येक व्यक्ति के उच्चतम आदर्श को ही ईश्वर कहते हैं। ज्ञानी हो या अज्ञानी सानु हो या पापी पुरुष हो अथवा स्त्री चिमित हो अथवा अधिधित प्रत्येक बच्चा में मनुष्य मात्र का परमोच्च आदर्श ही ईश्वर है। सौन्दर्य उदात्तता और शक्ति के उच्चतम आदर्शों के योग में ही हमें प्रेममय एवं प्रेमास्पद ईश्वर का पूर्णतम भाव मिलता है।

स्वभावतः ही ये आदर्श किसी न किसी रूप में प्रत्येक व्यक्ति के मन में वर्तमान रहते हैं। वे मानो हमारे मन के अंग या अंगविशेष हैं। उन आदर्शों को व्यापक दार्शनिक जीवन में परिपक्व करने के लिये सब प्रयत्न हैं, वे ही मानवीय प्रकृति की नाता विन कियाओं के रूप में प्रकट होते हैं। विभिन्न जीवात्माओं में जो विविध आदर्श निहित हैं वे बाहर आकर मूर्त रूप धारण करने की तलाश के लिये प्रकट होते हैं, और इसके अन्तर्गत ही हम अपने चार्गे और समाज में नाता प्रचार की यतिपत्तियाँ और हस्तक्षेप करते हैं। जो कुछ भीतर है वही बाहर जाने का प्रयत्न करता है।

आदर्श का यह नित्य प्रबल प्रभाव ही एक ऐसी कार्यकरी शक्ति है, जो मानव जीवन में सतत क्रियाशील है। हो सकता है, सैकड़ों जन्म के बाद, हजारों वर्ष सघर्ष करने के पश्चात्, मनुष्य समझे कि अपना अभ्यन्तरस्थ आदर्श बाहरी वातावरण और अवस्थाओं के साथ पूरी तरह मेल नहीं खा सकता। और जब वह यह समझ जाता है, तब बाहरी जगत् को अपने आदर्श के अनुसार गढ़ने की फिर अधिक चेष्टा नहीं करता। तब वह इस प्रकार के सारे प्रयत्न छोड़कर प्रेम की उच्चतम भूमि से, स्वयं आदर्श की आदर्श-रूप से उपासना करने लगता है। यह पूर्ण आदर्श अपने में अन्य सब छोटे छोटे आदर्शों को समा लेता है। सभी लोग इस बात की सत्यता स्वीकार करते हैं कि प्रेमी इथियोपिया की भौंहों में भी हेलेन का सौन्दर्य देखता है। तटस्थ लोग कह सकते हैं कि यहाँ प्रेम स्थान-भ्रष्ट हो गया है, पर जो प्रेमी है, वह अपनी हेलेन को ही सर्वदा देखता है, इथियोपिया को बिल्कुल नहीं देखता। हेलेन हो या इथियोपिया, वास्तव में हमारे प्रेम के आधार तो मानो कुछ केन्द्र हैं, जिनके चारों ओर हमारे आदर्श मूर्त होते हैं। ससार साधारणतः किसकी उपासना करता है?—अवश्य उच्चतम भक्त और प्रेमी के सर्वांगीण पूर्ण आदर्श की नहीं। स्त्री-पुरुष साधारणतः उसी आदर्श की उपासना करते हैं, जो उनके अपने हृदय में है। प्रत्येक व्यक्ति अपना अपना आदर्श बाहर प्रक्षिप्त करके उसके सम्मुख भूमिष्ठ हो प्रणाम करता है। इसीलिए हम देखते हैं कि जो लोग निर्दयी और खूनी होते हैं, वे एक रक्तपिपासु ईश्वर की ही कल्पना करते तथा उसे भजते हैं, क्योंकि वे अपने सर्वोच्च आदर्श की ही उपासना कर सकते हैं। और इसीलिए साधुजनों का ईश्वर सम्बन्धी आदर्श बहुत ऊँचा होता है, और वास्तव में वह अन्य लोगों के आदर्श से बहुत भिन्न है।

## प्रेममय ईश्वर स्वयं ही अपना प्रमाण है

जो प्रेमी स्वार्थपरता और भय के परे हो गया है जो फलाकांक्षासून्य हो गया है उसका आदर्श क्या है? वह परमेश्वर से भी नहीं रहेगा 'मैं तुम्हें अपना सर्वस्व अर्पित करता हूँ मैं तुमसे कोई भीज नहीं चाहता। वास्तव में ऐसा कुछ भी नहीं है जिसे मैं अपना कह सकूँ। जब मनुष्य इस प्रकार की अवस्था प्राप्त कर लेता है तब उसका आदर्श पूर्ण प्रेम के प्रेमजनित पूर्ण निर्भीकता के आदर्श में परिणत हो जाता है। इस प्रकार के व्यक्ति के सर्वोच्च आदर्श में किसी प्रकार की संकीर्णता नहीं रह जाती—वह किसी विशेष भाव द्वारा सीमित नहीं रहता। वह आदर्श तो सार्वभौमिक प्रेम अनन्त और असीम प्रेम पूर्ण स्वतन्त्र प्रेम का आदर्श होता है यही क्यों वह सामान्य प्रेमस्वरूप होता है। तब प्रेम-बर्ण के इस महान् आदर्श की उपासना किसी प्रतीक या प्रतिमा के सहारे नहीं करनी पड़ती बल्कि तब तो वह आदर्श के रूप में ही उपासित होता है। इस प्रकार के एक सार्वभौमिक आदर्श की उपासना से उपासना सबसे उत्कृष्ट प्रकार की परामर्शिता है। भक्ति के अन्य सब प्रकार तो इस परामर्शिता की प्राप्ति में केवल सोपासकस्वरूप हैं।

इस प्रेम-बर्ण के पथ में बढ़ते बढ़ते हमें जो सफलताएँ और असफलताएँ मिलती हैं वे सबकी सब उस आदर्श की प्राप्ति के मार्ग पर ही बटती हैं—अर्थात् प्रकाशान्तर से वे उससे सहायता ही पहुँचती हैं। चाबक एक के बाद दूसरी वस्तु देता जाता है और उस पर अपना आत्मन्तरिक आदर्श प्रक्षिप्त करता जाता है। जमरा-ये सारी बाह्य वस्तुएँ इस सतत विस्तारशील आत्मन्तरिक आदर्श को प्रकाशित करने के लिए अनुपयुक्त सिद्ध होती हैं और इसलिए स्वभावतः एक एक करके उनका परिहारा कर दिया जाता है। अन्त में सायक समझ जाता है कि बाह्य वस्तुओं से आदर्श की उपलब्धि करने का प्रयत्न व्यर्थ है और ये सब बाह्य वस्तुएँ तो आदर्श की तुलना में बिल्कुल तुच्छ हैं। कामान्तर में वह उस सर्वोच्च और सम्पूर्ण निर्विषय भावापन्न मूर्त आदर्श को अन्तर में ही जीवन्त और सत्य रूप में अनुभव करने का सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है। जब मनुष्य इस अवस्था में पहुँच जाता है तब उसमें ये सब तर्क-विचार नहीं उठते कि मयवान् को मिट्टी दिया जा सकता है अथवा नहीं मयवान् सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान है या नहीं। उत्तम लिए तो मयवान् प्रथम है—प्रेम का सर्वोच्च आदर्श है और वह यह जानना ही उसके लिए यथेष्ट

है। भगवान् प्रेमरूप होने के कारण स्वतः सिद्ध है, वह अन्य किसी प्रमाण की अपेक्षा नहीं रखता। प्रेमी के पास प्रेमास्पद का अस्तित्व सिद्ध करने के लिए किसी बात की आवश्यकता नहीं। अन्यान्य घर्षों के न्यायकर्ता भगवान् का अस्तित्व सिद्ध करने के लिए बहुत से प्रमाणों की आवश्यकता हो सकती है, पर भक्त तो ऐसे भगवान् की बात मन में भी नहीं ला सकता। उसके लिए तो भगवान् केवल प्रेम-स्वरूप है। 'हे प्रिये, कोई भी स्त्री पति से, पति के लिए प्रेम नहीं करती, वरन् पति में स्थित आत्मा के लिए ही वह पति से प्रेम करती है। हे प्रिये, कोई भी पुरुष पत्नी से, पत्नी के लिए प्रेम नहीं करता, वरन् पत्नी में स्थित आत्मा के लिए ही प्रेम करता है।'

कोई कोई कहते हैं कि स्वार्थपरता ही समस्त मानवीय कार्यों की एकमात्र प्रेरक शक्ति है। किन्तु वह भी तो प्रेम है, पर हाँ, वह प्रेम विशिष्ट होने के कारण निम्न भावापन्न हो गया है—बस, इतना ही। जब मैं अपने को ससार की सारी वस्तुओं में अवस्थित सोचता हूँ, तब निश्चय ही मुझमें किसी प्रकार की स्वार्थपरता नहीं रह सकती। किन्तु जब मैं भ्रम में पड़कर अपने आपको एक छोटा सा प्राणी सोचने लगता हूँ, तब मेरा प्रेम सकीर्ण हो जाता है—एक विशिष्ट भाव से सीमित हो जाता है। प्रेम के क्षेत्र को सकीर्ण और मर्यादित कर लेना ही हमारा भ्रम है। इस विश्व की सारी वस्तुएँ भगवान् से निकली हैं, अतएव वे सभी हमारे प्रेम के योग्य हैं। पर हम यह सर्वदा स्मरण रखें कि समष्टि को प्यार करने से ही अशो को भी प्यार करना ही जाता है। यह समष्टि ही भक्त का भगवान् है। अन्यान्य प्रकार के ईश्वर—जैसे, स्वर्ग में रहनेवाले पिता, शास्ता, स्रष्टा—तथा नानाविध मतवाद और शास्त्र-ग्रन्थ भक्त के लिए कुछ अर्थ नहीं रखते—उसके लिए इन सबका कोई प्रयोजन नहीं, क्योंकि वह तो पराभक्ति के प्रभाव से पूर्णतया इन सबके ऊपर उठ गया है। जब हृदय शुद्ध और पवित्र हो जाता है, तथा दैवी प्रेमामृत से आप्लावित हो जाता है, तब ईश्वर सम्बन्धी अन्य सब धारणाएँ बन्धों की बात सी प्रतीत होने लगती हैं और वे अपूर्ण एव अनुपयुक्त समझकर त्याग दी जाती हैं। सचमुच, पराभक्ति का प्रभाव ही ऐसा है। तब वह पूर्णताप्राप्त भक्त अपने भगवान् को मन्दिरों और गिरजों में खोजने नहीं जाता, उसके लिए तो ऐसा कोई स्थान ही नहीं, जहाँ वह न हो। वह उसे मन्दिर के भीतर और बाहर सर्वत्र देखता है। साधु की साधुता में और दुष्ट की दुष्टता में भी वह उसके दर्शन करता है, क्योंकि उसने तो उस महिमामय प्रभु को पहले से ही अपने हृदय-सिंहासन पर बिठा लिया है और वह जानता है कि वह एक सर्वशक्तिमान एव अनिर्वाण प्रेमज्योति के रूप में उसके हृदय में नित्य दीप्तिमान है और सदा से वर्तमान है।

## प्रेममय ईश्वर स्वयं ही अपना प्रमाण है

जो प्रेमी स्वार्थपरता और भय क परे हो गया है, जो फटाफटासाणुय्य हो गया है, उसका आदर्श क्या है? वह परमेश्वर से भी नहीं कहेया मैं तुम्हें अपना सर्वस्व समर्पित करता हूँ मैं तुमसे कोई भीज नहीं चाहता। वास्तव में ऐसा कुछ भी नहीं है जिसे मैं अपना कहूँ। जब मनुष्य इस प्रकार की अवस्था प्राप्त कर लेता है, तब उसका आदर्श पूर्ण प्रेम के प्रेमवर्धित पूर्ण निर्भीकता के आदर्श में परिवर्त हो जाता है। इस प्रकार के व्यक्ति के सर्वोच्च आदर्श में किसी प्रकार की संकीर्णता नहीं रह पाती—वह किसी विशेष भाव द्वारा सीमित नहीं रहता। वह आदर्श तो सार्वभौमिक प्रेम अनन्त और असीम प्रेम पूर्ण स्वतन्त्र प्रेम का आदर्श होता है यही क्यों वह साक्षात् प्रेमस्वरूप होता है। तब प्रेम-वर्ध के इस महान् आदर्श की उपासना किसी प्रतीक या प्रतिमा के सहारे नहीं करनी पड़ती बरन् तब तो वह आदर्श के रूप में ही उपासित होता है। इस प्रकार के एक सार्वभौमिक आदर्श की आदर्शरूप से उपासना सबसे उत्कृष्ट प्रकार की परामर्शिता है। भक्ति के अन्य सब प्रकार तो इस परामर्शिता की प्राप्ति में केवल उपासकस्वरूप हैं।

इस प्रेम-वर्ध के पथ में चलते चलते हमें जो सफलताएँ और असफलताएँ मिलती हैं वे सबकी सब उस आदर्श की प्राप्ति के मार्ग पर ही गठती हैं—जहाँ प्रकाशान्तर से वे उसमें सहायता ही पहुँचती हैं। चाहे एक के बाव दूसरी वस्तु लेता जाता है और उस पर अपना आन्तरिक आदर्श प्रक्षिप्त करता जाता है। जहाँ-ये सारी बाह्य वस्तुएँ इस सतत विस्तारशील आन्तरिक आदर्श को प्रकाशित करने के लिए अनुपमूलत सिद्ध होती हैं और इसीलिए स्वभावतः एक एक करके उनका परित्याग कर दिया जाता है। अन्त में साधक समझ जाता है कि बाह्य वस्तुओं से आदर्श की उपसम्पि करने का प्रयत्न व्यर्थ है और ये सब बाह्य वस्तुएँ तो आदर्श की तुलना में विस्तृत तुच्छ हैं। कालान्तर में वह उस सर्वोच्च और सम्पूर्ण निर्विशेष-माबापस सूक्ष्म आदर्श को अन्तर में ही जीवन्त और सत्य रूप से अनुभव करने का सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है। जब अन्त इस अवस्था में पहुँच जाता है तब उसमें ये सब लक्ष-विलक्ष नहीं उठते कि भयवान् को सिद्ध किया जा सकता है अथवा नहीं भयवान् सर्वज्ञ और सर्वसम्पितमान है या नहीं। उसके लिए तो भयवान् प्रेममय है—प्रेम का सर्वोच्च आदर्श है और वर यह जानना ही उसके लिए अपेक्ष

इसके बाद है 'सख्य' प्रेम। इस सख्य प्रेम का साधक भगवान् से कहता है, 'तुम मेरे प्रिय सखा हो।' जिस प्रकार एक व्यक्ति अपने मित्र के सम्मुख अपना हृदय खोल देता है और यह जानता है कि उसका मित्र उसके अवगुणों पर कभी ध्यान न देगा, वरन् उसकी सदा सहायता ही करेगा—उन दोनों में जिस प्रकार समानता का एक भाव रहता है, उसी प्रकार सख्य प्रेम के साधक और उसके सखा भगवान् के बीच भी मानो एक प्रकार की समानता का भाव रहता है। इस तरह भगवान् हमारा अन्तरंग मित्र हो जाता है, जिसको हम अपने जीवन की सारी बातें दिल खोलकर बता सकते हैं, जिसके समक्ष हम अपने हृदय के गुप्त से गुप्त भावों को भी बिना किसी हिचकिचाहट के प्रकट कर सकते हैं। उस पर हम पूरा भरोसा—पूरा विश्वास रख सकते हैं कि वह वही करेगा, जिससे हमारा मंगल होगा, और ऐसा सोचकर हम पूर्ण रूप से निश्चिन्त रह सकते हैं। इस अवस्था में भक्त भगवान् को अपनी बराबरी का समझता है—भगवान् मानो हमारा सगी हो, सखा हो। हम सभी इस ससार में मानो खेल रहे हैं। जिस प्रकार बच्चे अपना खेल खेलते हैं, जिस प्रकार बड़े बड़े राजा-महाराजा और सम्राट् अपना अपना खेल खेलते हैं, उसी प्रकार वह प्रेमस्वरूप भगवान् भी इस दुनिया के साथ खेल खेल रहा है। वह पूर्ण है—उसे किसी चीज़ का अभाव नहीं। उसे सृष्टि करने की क्या आवश्यकता है? जब हमें किसी चीज़ की आवश्यकता होती है, तभी हम उसकी पूर्ति के लिए क्रियाशील होते हैं, और अभाव का तात्पर्य ही है अपूर्णता। भगवान् पूर्ण है—उसे किसी बात का अभाव नहीं। तो फिर वह इस नित्य कर्ममय सृष्टि में क्यों लगा है? उसका उद्देश्य क्या है? भगवान् के सृष्टि-निर्माण के सम्बन्ध में जो सब भिन्न भिन्न कल्पनाएँ हैं, वे किंवदन्तियों के रूप में ही भली हो सकती हैं, अन्य किसी प्रकार नहीं। सचमुच, यह समस्त उसकी लीला है। यह सारा विश्व उसका ही खेल है—वह तो उसके लिए एक तमाशा है। यदि तुम निर्धन हो, तो उस निर्धनता को ही एक बड़ा तमाशा समझो, यदि धनी हो, तो उस धनीपन को ही एक तमाशे के रूप में देखो। यदि दुःख आये, तो वही एक सुन्दर तमाशा है, और यदि सुख प्राप्त हो, तो सोचो, यह भी एक सुन्दर तमाशा है। यह दुनिया बस, एक खेल का मैदान है, और हम सब यहाँ पर नाना प्रकार के खेल-खिलवाड़ कर रहे हैं—मौज कर रहे हैं। भगवान् सारे समय हमारे साथ खेल रहा है और हम भी उसके साथ खेलते रहते हैं। भगवान् तो हमारा चिरकाल का सगी है—हमारे खेल का साथी है। कैसा सुन्दर खेल रहा है वह ! खेल खत्म हुआ कि कल्प का अन्त हो गया !

फिर अस्य या अधिक समय तक विधाम—उसके बाद फिर से श्रेष्ठ का आरम्भ—  
 पुनः शगत् की सृष्टि। जब तुम मूस खाते हो कि यह सब एक श्रेष्ठ है और तुम  
 इस श्रेष्ठ में सहायता कर रहे हो। तभी कुछ और कष्ट तुम्हारे पास आते हैं। तब  
 हृदय भारी हो जाता है और संसार अपने प्रचण्ड बीज से तुम्हें बसा देता है।  
 पर ज्यों ही तुम इस दो पक्ष के जीवन की परिवर्तनशील घटनाओं को सत्य समझना  
 छोड़ देते हो और इस संसार को एक श्रीकामूनि तथा अपने आपको भगवान् की बीड़ा  
 में एक सखा-समी सोचने लगते हो त्यों ही दुःख-कष्ट बसा जाता है। वह तो प्रत्येक  
 जन्म-परमाणु में श्रेष्ठ रहा है। वह तो श्रेष्ठते श्रेष्ठे ही पृथ्वी सूर्य चन्द्र आदि का  
 निर्माण कर रहा है। वह तो मानव-हृदय प्राणियों और पौध-पौधों के साथ श्रीका  
 कर रहा है। हम मानो उसके सतरंज के मोहरे हैं। वह मोहरो को सतरंज  
 के सालों में बिठाकर इधर-उधर बसा रहा है। वह हमें कभी एक प्रकार से  
 सजाता है और कभी दूसरे प्रकार से—हम भी जाने या अनजाने उसके श्रेष्ठ  
 में सहायता कर रहे हैं। महा कौशा परमानन्द है। हम सब उसके श्रेष्ठ के साथी  
 जो हैं।

इसके बाद है 'वास्तव्य' प्रेम। उसमें भगवान् का चिन्तन पिता-स्वयं से न  
 करके सन्तान-स्वयं से करना पड़ता है। हो सकता है वह कुछ कबीर सा मामूम  
 हो पर उसका उद्देश्य है—अपनी भगवान् सम्बन्धी भावना से ऐश्वर्य के समस्त  
 भाव दूर कर देना। ऐश्वर्य की भावना के साथ ही भय आता है। पर प्रेम में भय  
 का कोई स्थान नहीं। यह सत्य है कि चरित्र-गठन के लिए शक्ति और आत्म-  
 पालन आवश्यक हैं पर जब एक बार चरित्र पठित हो जाता है—जब प्रेमी वास्तव  
 प्रेम का आस्वादन कर लेता है और जब प्रेम की प्रबल उत्पत्तता का भी उसे बोझ  
 सा अनुभव हो जाता है, तब उसके लिए नीतिशास्त्र और शासन-नियम आदि की  
 कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। प्रेमी कहता है कि भगवान् को महामहिम  
 ऐश्वर्यशाही अथवा या देवदेव के रूप में सोचने की मेरी इच्छा ही नहीं होती।  
 भगवान् के साथ सम्बन्धित वह जो मयोत्पादक ऐश्वर्य की भावना है, उसीको  
 दूर करने के लिए वह भगवान् को अपनी सन्तान के रूप में प्यार करता है। माता  
 पिता अपने बच्चे से मममौठ नहीं होते उसके प्रति उनकी सदा मही होती। वे  
 उस बच्चे से कुछ माचना नहीं करते। बच्चा तो सदा पामेबावा ही होता है और  
 उसके लिए वे लोभ ही बार भी मरने को तैयार रहते हैं। अपने एक बच्चे के लिए  
 वे लोभ इन्डार जीवन भी त्योछावर करन को प्रस्तुत रहते हैं। वस इसी प्रकार  
 भगवान् से वास्तव्य-भाव से प्रेम किया जाता है। जो सम्प्रदाय भगवान् के  
 अवतार में विश्वास करते हैं, जहाँमे यह वास्तव्य भाव की उत्पत्तता स्वाभाविक

रूप से आती और पनपती है। मुसलमानों के लिए भगवान् को एक सन्तान के रूप में मानना असम्भव है, वे तो डरकर इस भाव से दूर ही रहेंगे। पर ईसाई और हिन्दू इसे सहज ही समझ सकते हैं, क्योंकि उनके तो बाल ईसा और बाल कृष्ण हैं। भारतीय रमणियाँ बहुधा अपने आपको श्री कृष्ण की माता के रूप में सोचती हैं। ईसाई माताएँ भी अपने आपको ईसा की माता के रूप में सोच सकती हैं। इससे पाश्चात्य देशों में ईश्वर के मातृभाव का प्रचार होगा, और इसीकी आज उन्हें विशेष आवश्यकता है। भगवान् के प्रति भय और भक्ति के कुसस्कार हमारे हृदय में बहुत गहरे जमे हुए हैं और भगवत्सम्बन्धी इन भय और भक्ति तथा महिमा-ऐश्वर्य के भावों को प्रेम में विलकुल निमग्न कर देने में बहुत समय लगता है।

प्रेम का यह दिव्य रूप एक और मानवीय भाव में प्रकाशित होता है। उसे 'मधुर' कहते हैं और वही सब प्रकार के प्रेमों में श्रेष्ठ है। इस ससार में प्रेम की जो उच्चतम अभिव्यक्ति है, वही उसकी नींव है और मानवीय प्रेमों में वही सबसे प्रबल है। पुरुष और स्त्री के बीच जो प्रेम रहता है, उसके समान और कौन सा प्रेम है, जो मनुष्य की सारी प्रकृति को बिल्कुल उलट-पलट दे, जो उसके प्रत्येक परमाणु में सचरित होकर उसको पागल बना दे, उसकी अपनी प्रकृति को ही भुला दे, और उसे चाहे तो देवता बना दे, चाहे दैत्य ? दैवी प्रेम के इस मधुर भाव में भगवान् का चिन्तन पतिरूप में किया जाता है—ऐसा विचार कि हम सभी स्त्रियाँ हैं, इस ससार में और कोई पुरुष नहीं, एक ही पुरुष है और वह है हमारा प्रेमास्पद भगवान्। जो प्रेम पुरुष स्त्री के प्रति और स्त्री पुरुष के प्रति प्रदर्शित करती है, वही प्रेम भगवान् को देना होगा।

हम इस ससार में जितने प्रकार के प्रेम देखते हैं, जिनके साथ हम अल्प या अधिक परिमाण में क्रीडा मात्र कर रहे हैं, उन सबका एक ही लक्ष्य है और वह है भगवान्। पर दुख की बात है कि मनुष्य उस अनन्त समुद्र को नहीं जानता, जिसकी ओर प्रेम की यह महान् सरिता सतत प्रवाहित हो रही है, और इसलिए अज्ञानवश वह इस प्रेम-सरिता को बहुधा छोटे छोटे मानवी पुतलों की ओर बहाने का प्रयत्न करता रहता है। मानवी प्रकृति में सन्तान के प्रति जो प्रबल स्नेह देखा जाता है, वह सन्तान-रूपी एक छोटे से पुतले के लिए ही नहीं है। यदि तुम आँखें बन्द कर उसे केवल सन्तान पर ही न्योछावर कर दो, तो तुम्हें उसके फलस्वरूप दुख अवश्य भोगना पड़ेगा। पर इस प्रकार के दुख से ही तुममें यह चेतना जाग्रत होगी कि यदि तुम अपना प्रेम किसी मनुष्य को अर्पित करोगे, तो उसके फलस्वरूप कभी न कभी दुख-



फिर बस्य या अधिक समय तक विराम—उसके बाद फिर से खेल का आरम्भ—  
 पुनः जनत् की सृष्टि ! जब तुम भूल जाते हो कि यह सब एक खेल है और तुम  
 इस खेल में सहायता कर रहे हो तभी कुछ और कष्ट तुम्हारे पास आते हैं तब  
 दुःख भारी हो जाता है और संसार अपने प्रबन्ध बोस से तुम्हें घसा देता है।  
 पर ज्यों ही तुम इस बोस के जीवन की परिवर्तनशील घटनाओं को सत्य समझना  
 छोड़ देते हो और इस संसार को एक श्रीरामूमि तथा अपमं आपको भगवान् की श्रीराम  
 में एक सच्चा-संधी सोचने लगते हो त्यों ही दुःख-कष्ट चला जाता है। वह तो प्रत्येक  
 भव-परमाणु में खेल रहा है। वह तो लेकते लेकते ही पृथ्वी सूर्य चन्द्र आदि का  
 निर्माण कर रहा है। वह तो मानव-हृदय प्राणियों और पेड़-पौधों के साथ श्रीराम  
 कर रहा है। हम मानो उसके पतन के मोहरे हैं। वह मोहरो को पतन  
 के क्षणों में बिठकर इधर-उधर चला रहा है। वह हमें कभी एक प्रकार से  
 सजाता है और कभी दूसरे प्रकार से—हम भी जाने या अनजाने उसके खेल  
 में सहायता कर रहे हैं। अहा कैसा परमाणु है ! हम सब उसके खेल के साथी  
 जो हैं।

इसके बाद है 'वात्सल्य' प्रेम। उसमें भगवान् का चिन्तन पिता-स्व से न  
 करके सन्तान-स्व से करना पड़ता है। हो सकता है यह कुछ बच्चा या मानुस  
 हो पर उसका उद्देश्य है—अपनी भगवान् सम्बन्धी धारणा से ऐश्वर्य के समस्त  
 भाग दूर कर देना। ऐश्वर्य की भावना के साथ ही मम जाता है। पर प्रेम में मम  
 का कोई स्थान नहीं। यह सत्य है कि चरित्र-गठन के लिए भक्ति और आत्मा  
 पावन आवश्यक है पर जब एक बार चरित्र गठित हो जाता है—जब प्रेमी सत्य  
 प्रेम का आस्वादन कर लेता है और जब प्रेम की प्रबल उन्मत्तता का भी उसे बोझ  
 या अनुभव हो जाता है, तब उसके लिए नीतिशास्त्र और साधन-विधम आदि की  
 कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। प्रेमी कहता है कि भगवान् का महामहिम  
 ऐश्वर्यसाक्षी जगन्नाथ या देवदेव के रूप में सोचने की मेरी इच्छा ही नहीं होती।  
 भगवान् के साथ सम्बन्धित यह जो मयोत्पादक ऐश्वर्य की भावना है, उसीको  
 दूर करने के लिए वह भगवान् को अपनी सन्तान के रूप में प्यार करता है। माता  
 पिता अपने बच्चे से मयमील नहीं होते उनके प्रति उनकी दया नहीं होती। वे  
 उस बच्चे से कुछ याचना नहीं करते। बच्चा तो सदा पालेबाधा ही होता है और  
 उसके लिए वे लोग ही बार भी मरने को तैयार रहते हैं। अपने एक बच्चे के लिए  
 वे लोग हजार जीवन भी न्योछावर करने को प्रस्तुत रहते हैं। वह इसी प्रकार  
 भगवान् से बाल्य भाव से प्रेम किया जाता है। जो सम्प्रदाय भगवान् के  
 अवतार में विरवास करने हैं, उन्हींमें यह वात्सल्य-भाव की उपासना स्वाभाविक

उपयोगी मानकर ग्रहण करते हैं। पर मूर्ख लोग इसे नहीं समझते—और वे कभी ममझेंगे भी नहीं। वे उसे केवल भौतिक दृष्टि से देखते हैं। वे इस आध्यात्मिक प्रेमोन्मत्तता को नहीं समझ पाते। और वे समझ भी कैसे सके? 'हे प्रियतम, तुम्हारे अधरो के केवल एक चुम्बन के लिए' जिसका तुमने एक बार चुम्बन किया है, तुम्हारे लिए उसकी पिपासा बढ़ती ही जाती है। उसके समस्त दुःख चले जाते हैं। वह तुम्हें छोड़ और सब कुछ भूल जाता है।' प्रियतम के उस चुम्बन के लिए—उनके अधरो के उस स्पर्श के लिए व्याकुल होओ, जो भक्त को पागल कर देता है, जो मनुष्य को देवता बना देता है। भगवान् जिसको एक बार अपना अधरामृत देकर कृतार्थ कर देते हैं, उसकी सारी प्रकृति विल्कुल बदल जाती है। उसके लिए यह जगत् उड़ जाता है, सूर्य और चन्द्र का कोई अस्तित्व नहीं रह जाता और यह सारा विश्व-ब्रह्माण्ड एक बिन्दु के समान प्रेम के उस अनन्त सिन्धु में न जाने कहाँ विलीन हो जाता है। प्रेमोन्माद की यही चरम अवस्था है।

पर सच्चा भगवत्प्रेमी यहाँ पर भी नहीं रुकता, उसके लिए तो पति और पत्नी की प्रेमोन्मत्तता भी यथेष्ट नहीं। अतएव ऐसे भक्त अवध (परकीय) प्रेम का भाव ग्रहण करते हैं, क्योंकि वह अत्यन्त प्रबल होता है। पर देखो, उसकी अवैधता उनका लक्ष्य नहीं है। इस प्रेम का स्वभाव ही ऐसा है कि उसे जितनी वाधा मिलती है, वह उतना ही उग्र रूप धारण करता है। पति-पत्नी का प्रेम अवाध रहता है—उसमें किसी प्रकार की विघ्न-वाधा नहीं आती। इसीलिए भक्त कल्पना करता है, मानो कोई स्त्री परपुरुष में आसक्त है और उसके माता, पिता या स्वामी उसके इस प्रेम का विरोध करते हैं। इस प्रेम के मार्ग में जितनी ही वाधाएँ आती हैं, वह उतना ही प्रबल रूप धारण करता जाता है। श्री कृष्ण वृन्दावन के कुजों में किस प्रकार लीला करते थे, किस प्रकार सब लोग उन्मत्त होकर उनसे प्रेम करते थे, किस प्रकार उनकी वाँसुरी की मधुर तान सुनते ही चिरधन्य गोपियाँ सब कुछ भूलकर, इस ससार और इसके समस्त बन्धनों को भूलकर, यहाँ के सारे कर्तव्य तथा सुख-दुःख को विसराकर, उन्मत्त सी उनसे मिलने के लिए छूट पड़ती थी—यह सब मानवी भाषा द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। मानव, हे मानव, तुम दैवी प्रेम की बातें तो करते हो, पर

१ सुरतवर्धन शोकनाशन स्वरितवेणुना सुष्ठु चुम्बितम्।

इतररागविस्मरण नृणा वितर वीर नस्तेऽधरामृतम् ॥

—श्रीमद्भागवत ॥१०।३१॥

कष्ट अवश्य प्राप्त होना। अतएव हमें अपना प्रेम उसी पुष्पोत्तम को देना होना जिसका बिनास नहीं जिसमें कमी परिवर्तन नहीं और जिसके प्रेम-समुद्र में कमी उबार-साटा नहीं। प्रेम को अपन प्रकृत सक्ष्य पर पहुँचना चाहिए—उस तो उसके निकट जाना चाहिए, जो वास्तव में प्रेम का अनन्त धामर है। सभी तस्वीरों समुद्र में ही जाकर गिरती है। यही तक कि पर्वत से दूरनेवाली पानी की एक बूँद भी वह फिर कितनी भी बड़ी क्यों न हो किसी झरने या नदी में पहुँचकर बस वहीं नहीं रुक जाती बल्कि वह भी अन्त में किसी न किसी प्रकार समुद्र में ही पहुँच जाती है। भगवान् हमारे सब प्रकार के भावों का एकमात्र सक्ष्य है। यदि तुम्हें क्रोध करना है, तो भगवान् पर क्रोध करो। उकाहना देना है, तो अपन प्रेमास्पद को उकाहना दो—अपने सखा को उकाहना दो। मला अस्य किसे तुम बिना डर के उकाहना दे सकते हो? मरत्य भीव तुम्हारे क्रोध को न सह सकेगा। वहाँ तो प्रतिक्रिया होगी। यदि तुम मुक्त पर क्रोध करा तो निश्चित है मैं तुरन्त प्रतिक्रिया करूँगा क्योंकि मैं तुम्हारे क्रोध को सह नहीं सकता। अपने प्रेमास्पद से कहो 'प्रियतम तुम मेरे पास क्यों नहीं आते? तुमने क्यों मुझे इस प्रकार अकेला छोड़ रखा है? उसको छोड़ मला और किसमें आगन्व है? मिट्टी के छोटे छोटे कोना में मला कीन सा आनन्द हो सकता है? हमें तो अगन्त आनन्द के बनीमूत धार को ही खोजना है—और भगवान् ही आनन्द का वह बनीमूत धार है। आओ हम अपने समस्त भावों और समस्त प्रवृत्तियों को उसकी ओर मोड़ दें। वे सब उसीके लिए हैं। वे यदि अपना सक्ष्य भ्रूण जायें तो वे फिर कृत्स्न रूप धारण कर लेंगे। पर यदि वे अपने ठीक लक्ष्य-स्वरूप ईश्वर में जाकर पहुँचें तो उनमें से अत्यन्त नीच वृत्ति भी पूर्ववर्णन परिवर्तित हो जायगी। भगवान् ही मनुष्य के मन और शरीर की समस्त शक्तियों का एकमात्र सक्ष्य है—एकामय है,—फिर वे शक्तियाँ किसी भी रूप से क्यों न प्रकट हो। मानव-हृदय का समस्त प्रेम—धारे मात्र भगवान् की ही ओर जायें। वही हमारा एकमात्र प्रेमास्पद है। यह मानव-हृदय मला और किसे प्यार करेगा? वह परम सुन्दर है, परम महान् है—अहा! वह साक्षात् सौन्दर्यस्वरूप है दिव्यता स्वरूप है। इस लघार में भला और कीन है जो उससे अधिक सुन्दर हो? उसे छोड़ इन दुनिया में भला और कीन पति होने के उपयुक्त है? उसके सिवा इस जगत् में भला और कीन हमारा प्रेम-पान हो सकता है? अतः वही हमारा पति हो, वही हमारा प्रेमास्पद हो।

बहुधा ऐसा होता है कि भगवत्प्रेम में उनके मन्तव्य जब इस भगवत्प्रेम का वर्णन करते जाते हैं तो इसके लिए वे सब प्रकार के मानवी प्रेम की जापा को

## उपसंहार

जब प्रेम का यह उच्चतम आदर्श प्राप्त हो जाता है, तो ज्ञान फिर न जाने कहाँ चला जाता है। तब भला ज्ञान की इच्छा भी कौन करे? तब तो मुक्ति, उद्धार, निर्वाण की बातें न जाने कहाँ गायब हो जाती हैं। इस दैवी प्रेम में छके रहने से फिर भला कौन मुक्त होना चाहेगा? 'प्रभो! मुझे धन, जन, सौन्दर्य, विद्या, यहाँ तक कि, मुक्ति भी नहीं चाहिए। वस, इतनी ही साध है कि जन्म जन्म में तुम्हारे प्रति मेरी अहैतुकी भक्ति बनी रहे।' भक्त कहता है, "मैं शक्कर हो जाना नहीं चाहता, मुझे तो शक्कर खाना अच्छा लगता है।" तब भला कौन मुक्त हो जाने की इच्छा करेगा? कौन भगवान् के साथ एक हो जाने की कामना करेगा? भक्त कहता है, "मैं जानता हूँ कि मैं ही वह हूँ, तो भी मैं उससे अपने को अलग रखूँगा और उससे पृथक् रहूँगा, ताकि मैं उस प्रियतम में आनन्द ले सकूँ।" प्रेम के लिए प्रेम—यही भक्त का सर्वोच्च सुख है। प्रियतम में आनन्द लेने के लिए कौन हजार बार भी बद्ध होने को तैयार न होगा? एक सच्चा भक्त प्रेम को छोड़ और किसी वस्तु की कामना नहीं करता। वह स्वयं प्रेम करना चाहता है, और चाहता है कि भगवान् भी उससे प्रेम करे। उसका निष्काम प्रेम नदी के प्रवाह की विरुद्ध दिशा में जानेवाले ज्वार के समान है। वह मानो नदी के उद्गम-स्थान की ओर, स्रोत की विपरीत दिशा में जाता है। ससार उसको पागल कहता है। मैं एक ऐसे महापुरुष<sup>१</sup> को जानता हूँ, जिन्हें लोग पागल कहते थे। इस पर उसका उत्तर था, "भाइयो, सारा ससार ही तो एक पागलखाना है। कोई सासारिक प्रेम के पीछे पागल है, कोई नाम के पीछे, कोई यश के लिए, तो कोई पैसे के लिए। फिर कोई ऐसे भी हैं, जो उद्धार पाने या स्वर्ग जाने के लिए पागल हैं। इस विराट् पागलखाने में मैं भी एक पागल हूँ—मैं भगवान् के लिए पागल हूँ। तुम पैसे के लिए पागल हो, और मैं भगवान् के लिए। जैसे तुम पागल हो, वैसा ही मैं भी। फिर भी मैं सोचता हूँ कि मेरा ही पागलपन सबसे उत्तम है।" यथार्थ भक्त के प्रेम में इसी प्रकार की तीव्र उन्मत्तता रहती है और

१ शिक्षाष्टक ॥४॥

२ श्री रामकृष्ण परमहंस ।

साथ ही इस सभार की असभार वस्तुओं में भी मन विभे रहते हो—क्या तुम सन्ने हो? 'जहाँ राम है वहाँ काम नहीं और जहाँ काम है वहाँ राम नहीं। वे दोनों कभी एक साथ नहीं रह सकते—मकास और अन्वकार क्या कभी एक साथ रहे हैं?'<sup>१</sup>

---

१ जहाँ राम तहाँ काम नहीं जहाँ काम तहाँ राम।

तुलसी कबहूँ होत नहीं, रचि रजनी इक ठाम ॥ तुलसीदास ॥

## उपसंहार

जब प्रेम का यह उच्चतम आदर्श प्राप्त हो जाता है, तो ज्ञान फिर न जाने कहाँ चला जाता है। तब भला ज्ञान की इच्छा भी कौन करे? तब तो मुक्ति, उद्धार, निर्वाण की बातें न जाने कहाँ गायब हो जाती हैं। इस दैवी प्रेम में छके रहने से फिर भला कौन मुक्त होना चाहेगा? 'प्रभो! मुझे धन, जन, सौन्दर्य, विद्या, यहाँ तक कि, मुक्ति भी नहीं चाहिए। वस, इतनी ही साध है कि जन्म जन्म में तुम्हारे प्रति मेरी अहैतुकी भक्ति बनी रहे।' भक्त कहता है, "मैं शक्कर हो जाना नहीं चाहता, मुझे तो शक्कर खाना अच्छा लगता है।" तब भला कौन मुक्त हो जाने की इच्छा करेगा? कौन भगवान् के साथ एक हो जाने की कामना करेगा? भक्त कहता है, "मैं जानता हूँ कि मैं ही वह हूँ, तो भी मैं उससे अपने को अलग रखूँगा और उससे पृथक् रहूँगा, ताकि मैं उस प्रियतम में आनन्द ले सकूँ।" प्रेम के लिए प्रेम—यही भक्त का सर्वोच्च सुख है। प्रियतम में आनन्द लेने के लिए कौन हज़ार बार भी बद्ध होने को तैयार न होगा? एक सच्चा भक्त प्रेम को छोड़ और किसी वस्तु की कामना नहीं करता। वह स्वयं प्रेम करना चाहता है, और चाहता है कि भगवान् भी उससे प्रेम करे। उसका निष्काम प्रेम नदी के प्रवाह की विरुद्ध दिशा में जानेवाले ज्वार के समान है। वह मानो नदी के उद्गम-स्थान की ओर, स्रोत की विपरीत दिशा में जाता है। ससार उसको पागल कहता है। मैं एक ऐसे महापुरुष<sup>१</sup> को जानता हूँ, जिन्हें लोग पागल कहते थे। इस पर उसका उत्तर था, "भाइयो, सारा ससार ही तो एक पागलखाना है। कोई सासारिक प्रेम के पीछे पागल है, कोई नाम के पीछे, कोई यश के लिए, तो कोई पैसे के लिए। फिर कोई ऐसे भी हैं, जो उद्धार पाने या स्वर्ग जाने के लिए पागल हैं। इस विराट् पागलखाने में मैं भी एक पागल हूँ—मैं भगवान् के लिए पागल हूँ। तुम पैसे के लिए पागल हो, और मैं भगवान् के लिए। जैसे तुम पागल हो, वैसा ही मैं भी। फिर भी मैं सोचता हूँ कि मेरा ही पागलपन सबसे उत्तम है।" यथार्थ भक्त के प्रेम में इसी प्रकार की तीव्र उन्मत्तता रहती है और

१ शिक्षाष्टक ॥४॥

२ श्री रामकृष्ण परमहंस ।

इसके सामने अन्य सब कुछ उड़ जाता है। उसके लिए तो यह सारा जगत् केवल प्रेम से भरा है—प्रेमी को बस ऐसा ही वीक्षता है। जब मनुष्य में यह प्रेम प्रवेश करता है तो वह चिरकाल के लिए मुझी चिरकाल के लिए मुक्त हो जाता है। और इसी प्रेम की यह पवित्र उन्मत्तता ही हममें समाप्ती हुई सत्तार-व्याधि को सदा के लिए दूर कर दे सकती है। उससे बासताएँ नष्ट हो जाती हैं और बास नावों के साथ ही स्वार्थपरता का भी नाश हो जाता है। तब मन्त्र भगवान् के समीप बसा जाता है क्योंकि उसने उन सब बसातार बासताओं को फेंक दिया है, जिससे वह पहले भरा हुआ था।

प्रेम के बर्म में हमें ईश भाव से आरम्भ करना पड़ता है। उस समय हमारे लिए भगवान् हमसे भिन्न रहता है और हम भी अपने को उससे भिन्न समझते हैं। फिर प्रेम बीच में आ जाता है। तब मनुष्य भगवान् की ओर अपसर होने लगता है और भगवान् भी जगत् मनुष्य के अधिकाधिक निकट आने लगता है। मनुष्य सत्तारक सारे सम्बन्ध—जैसे माता पिता पुत्र पुत्रा स्वामी प्रेमी आदि भाव—केटा है और अपने प्रेम के आदर्श भगवान् के प्रति उन सबको आर्षे-पित्त करता जाता है। उसके लिए भगवान् इन सभी रूपों में विराजमान है और उसकी उन्नति की चरम अवस्था तो वह है, जिसमें वह अपने उपास्य देवता से सम्पूर्ण रूप से निमग्न हो जाता है। हम सबका पहले अपने प्रति प्रेम रहता है, और इस शुद्ध अहं-भाव का असंगत बाधा प्रेम को भी स्वार्थपर बना देता है। परन्तु जगत् में ज्ञान-ज्योति का सरपूर प्रकाश जाता है, जिसमें यह शुद्ध अहं उस जगत् के साथ एक हो जाता है। इस प्रेम के प्रकाश में मनुष्य स्वयं सम्पूर्ण रूप से परिवर्तित हो जाता है और जगत् में इस सुन्दर और प्राणी को उन्मत्त बना देने वाले सत्य का अनुभव करता है कि प्रेम प्रेमी और प्रेमास्यक तीनों एक ही हैं।

ब्याख्यान, प्रवचन एवं कक्षालाप-४

(राजयोग)





## राजयोग पर छः पाठ<sup>१</sup>

ससार के अन्य विज्ञानों की भाँति राजयोग भी एक विज्ञान है। यह विज्ञान मन का विश्लेषण तथा अतीन्द्रिय जगत् के तथ्यों का सकलन करता है और इस प्रकार आध्यात्मिक जगत् का निर्माता है। ससार के सभी महान् उपदेष्टाओं ने कहा है, “हमने देखा और जाना है।” ईसा, पॉल और पीटर सभी ने जिन सत्यों की शिक्षा दी, उनका प्रत्यक्ष साक्षात्कार करने का दावा किया है।

यह प्रत्यक्ष अनुभव योग द्वारा प्राप्त होता है।

हमारे अस्तित्व की सीमा चेतना अथवा स्मृति नहीं हो सकती। एक अति-चेतन भूमिका भी है। इसमें और सुषुप्ति में सवेदनाएँ नहीं प्राप्त होती। किन्तु इन दोनों के बीच ज्ञान और अज्ञान जैसा आकाश-पाताल का भेद है। यह आलोच्य योगशास्त्र ठीक विज्ञान के ही समान तर्कसंगत है।

मन की एकाग्रता ही समस्त ज्ञान का उत्स है।

योग हमें जड-तत्त्व को अपना दास बनाने की शिक्षा देता है, और उसको हमारा दास होना ही चाहिए। योग का अर्थ जोड़ना है अर्थात् जीवात्मा को परमात्मा के साथ जोड़ना, मिलाना।

मन चेतना में और उसके अधीन कार्य करता है। हम लोग जिसे चेतना कहते हैं, वह हमारे स्वरूप की अनन्त शृंखला की एक कड़ी मात्र है।

हमारा यह ‘अहम्’ किञ्चित् मात्र चेतना और अचेतनता के विपुल परिणाम को आच्छादित करता है, जब कि उसके परे, और उसकी प्रायः अज्ञात, अतिचेतन की भूमिका है।

श्रद्धाभाव से योगाभ्यास करने पर मन का एक के बाद एक स्तर खुलता जाता है और प्रत्येक, नये तथ्यों को प्रकाशित करता है। हम अपने सम्मुख नये जगती

---

१ इन पाठों की रचना स्वामी विवेकानन्द द्वारा अमेरिकन भक्त शिष्या श्रीमती सारा सी० वुल के निवास-स्थान पर कुछ घनिष्ठ श्रोताओं के सम्मुख दिये गये कक्षालापों के आधार पर हुई है, जो उनके द्वारा सुरक्षित रखे गये थे और जो अन्त में सन् १९१३ में निजी मडली में वितरित करने के लिए मुद्रित किये

की सृष्टि होती ही बेपत्त है। नयी शक्तियाँ हमारे हाथों में आ जाती हैं। किन्तु हमें माय में ही नहीं रुक जाना चाहिए, और जब हमारे सामने हीरों की खान पड़ी हो तो काँच के बानों से हमें चौबिया नहीं जाना चाहिए।

केवल ईश्वर ही हमारा सन्ध है। उसकी प्राप्ति न ही पाना ही हमारी मृत्यु है।

गणसत्ताकीभी साधक के लिए तीन बातों की आवश्यकता है।

पहली है ऐहिक और पारमार्थिक इन्द्रिय भोग-वासना का त्याग और केवल भगवान् और सत्य का सन्ध बनाना। हम यहाँ सत्य की उपलब्धि के लिए हैं, भोग के लिए नहीं। भोग पशुओं के लिए छोड़ दो जिनको हमारी अपेक्षा उसमें कहीं अधिक आत्मत्व मिलता है। मनुष्य एक विचारशील प्राणी है, और मृत्यु पर विजय तथा प्रकाश को प्राप्त कर लेने तक उसे संघर्ष करते ही रहना चाहिए। उस क्रिमुक्त की शक्तियों में अपनी दक्षिण नष्ट नहीं करनी चाहिए। समाज की पूजा एवं शोचप्रिय जनमत मूर्ति-पूजा ही है। आत्मा का सिद्ध देव त्याग या काम नहीं होता।

दूसरी है सत्य और समवेत्तापत्ति की तीव्र आकांक्षा। बल में बुरता मनुष्य जैसे धामु के लिए व्याकुल होता है, वैसे ही व्याकुल हो जाओ। केवल ईश्वर की ही चाहो और कुछ भी स्वीकार न करो जो जानासी मात्र है। उससे बोधा न जाओ। सबसे विमुक्त होकर केवल ईश्वर की खोज करो।

तीसरी बात में छः अभ्यास हैं

- (१) मन को बहिर्मुख न होने देना।
- (२) इन्द्रिय-निग्रह।
- (३) मन को अन्तर्मुख बनाना।
- (४) निर्विरोध सहिष्णुता या पूर्ण तितिक्षा।
- (५) मन को एक भाव में स्थिर रखना। ध्येय को सम्मुख रखो और उसका चिन्तन करो। कभी व्यर्थ न करो। समय की गणना न करो।
- (६) अपने स्वरूप का सतत चिन्तन करो।

अंधविश्वास का परित्याग कर दो। अपनी दुष्कृता के विरहास में अपने को सम्मोहित न करो। जब तक तुम ईश्वर के साथ एकात्मकता की अनुभूति (वास्तविक अनुभूति) न कर लो तब तक रात-दिन अपने आपको बतते रहो कि तुम यथार्थतः क्या हो।

इन साधनाओं के बिना कोई भी फल प्राप्त नहीं हो सकता।

इन ब्रह्म की आरम्भ कर सकते हैं, पर उसे भाषा के द्वारा व्यक्त करना

असम्भव है। जैसे ही हम उसे अभिव्यक्त करने की चेष्टा करते हैं, वैसे ही हम उसे सीमित बना डालते हैं और वह ब्रह्म नहीं रह जाता।

हमें इन्द्रिय-जगत् की सीमाओं के परे जाना है और बुद्धि से भी अतीत होना है। ऐसा करने की हममें शक्ति है।

[एक सप्ताह तक प्राणायाम के प्रथम पाठ का अभ्यास करने के पश्चात् शिष्य को चाहिए कि वह गुरु को अपना अनुभव बताये।]

### प्रथम पाठ

इस पाठ का उद्देश्य व्यक्तित्व का विकास है। प्रत्येक व्यक्तित्व का विकास आवश्यक है। सभी एक केन्द्र में मिल जायेंगे। 'कल्पना प्रेरणा का द्वार और समस्त विचार का आधार है।' सभी पैगम्बर, कवि और अन्वेषक महती कल्पना-शक्ति से सम्पन्न थे। प्रकृति की व्याख्या हमारे भीतर है, पत्थर बाहर गिरता है, लेकिन गुह्यत्वकर्षण हमारे भीतर है, बाहर नहीं। जो अति आहार करते हैं, जो उपवास करते हैं, जो अत्यधिक सोते हैं, जो अत्यल्प सोते हैं, वे योगी नहीं हो सकते। अज्ञान, चंचलता, ईर्ष्या, आलस्य और अतिशय आसक्ति योग-सिद्धि के महान् शत्रु हैं। योगी के लिए तीन बड़ी आवश्यकताएँ हैं

प्रथम—शारीरिक और मानसिक पवित्रता, प्रत्येक प्रकार की मलिनता तथा मन को पतन की ओर ढकेलनेवाली सभी बातों का परित्याग आवश्यक है।

द्वितीय—धैर्य प्रारम्भ में आश्चर्यजनक दृश्य प्रकट होंगे, पर बाद में वे सब अन्तर्हित हो जायेंगे। यह सबसे कठिन समय है। पर दृढ़ रहो, यदि धैर्य रखोगे, तो अन्त में सिद्धि सुनिश्चित है।

तृतीय—लगन सुख-दुःख, स्वास्थ्य-अस्वास्थ्य सभी दशाओं में साधना में एक दिन का भी नागा न करो।

साधना का सर्वोत्तम समय दिन और रात की सधि का समय है। यह हमारे शरीर की हलचल के शान्त रहने का समय है—दो दशाओं के मध्य का शून्य-स्थल है। यदि इस समय न हो सके, तो उठने के ही बाद और सोने के पूर्व अभ्यास करो। नित्य स्नान—शरीर को अधिक से अधिक स्वच्छ रखना—आवश्यक है।

स्नान के पश्चात् बैठ जाओ। आसन दृढ़ रखो अर्थात् ऐसी भावना करो कि तुम चट्टान की भाँति दृढ़ हो, कि तुम्हें कुछ भी विचलित करने में समर्थ नहीं है। कंधे, सिर और कमर एक सीधी रेखा में रखो, पर मेरुदण्ड के ऊपर जोर न डालो,

घारी जिया इमीके सहारे होती है अत इसको शक्ति पहुँचानेवाला कोई कार्य न होगा चाहिए।

अपने पैर की अँगुलियों से आरम्भ करके अपने शरीर के प्रत्येक अंग की स्थिरता की भावना करो। इस भाव वा अपने में चिन्तन करो और यदि चाहो तो प्रत्येक का स्पर्श करो। प्रत्येक का पूर्ण अर्थात् उसमें कोई विकार नहीं है, सोचते हुए धीरे धीरे ऊपर चढ़कर फिर तक आओ। तब समस्त शरीर के पूर्ण होने के भाव का चिन्तन करो यह सोचते हुए कि मुझे सत्य का साक्षात्कार करने के हेतु यह ईश्वर द्वारा प्रदत्त साधन है। यह वह तीका है जिस पर बैठकर तुम्हें सघार समुद्र पार करके अनन्त सत्य के तट पर पहुँचना है। इस जिया के पश्चात् अपनी नासिका के दोनों छिद्रों से एक शीर्ष श्वास लो और फिर उसे बाहर निकालो। इसके पश्चात् जितनी बेर तक सरकटापूर्वक बिना श्वास लिये रह सको रहो। इस प्रकार के चार प्राणायाम करो और फिर स्वाभाविक रूप से श्वास लो और भगवान् से ज्ञान के प्रकाश के लिए प्रार्थना करो।

"मैं उस घटा की महिमा का चिन्तन करता हूँ जिसने विश्व की रचना की है वह मरे मन की प्रवृत्त करे। बैठो और दस-पन्द्रह मिनट इस भाव का ध्यान करो।

अपनी अनुभूतियों को अपने मुँह के अतिरिक्त और किसीको न बताओ। यथासम्भव कम से कम बात करो।

अपना चिन्तन शब्दबुद्धो पर बढाओ हम वीसा सोचते हैं वैसे ही मन पाते हैं।

पवित्र चिन्तन हमें अपनी समस्त मालसिक भक्तिताओ को भस्म करने में सहायता देता है। जो ओमी नहीं है, वह बाध है। मुक्ति-नाम के हेतु एक एक करके सभी बन्धन काटने होने।

इस जगत् के परे जो सत्य है, उसको सभी लोग जान सकते हैं। यदि ईश्वर की सत्ता सत्य है तो अक्षय ही हमें उसको एक तथ्य के रूप में अनुभव करना चाहिए और यदि आत्मा वीसी कोई सत्ता है, तो हमें उसे देखने और अनुभव करने में समर्थ होना चाहिए।

यदि आत्मा है, तो उसका साक्षात्कार करने के लिए हमें कुछ ऐसा बनना पड़ेगा जो शरीर नहीं है।

शोयी इन्द्रियों को दो मुख्य वर्गों में विभाजित करते हैं ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ अथवा ज्ञान और कर्म।

अन्तरिन्द्रिय या मन के चार स्तर हैं प्रथम—मनस् अर्थात् मनन अथवा चिन्तन-कथित। इसको सम्यक्त न करने पर प्रायः इसकी समस्त शक्ति लपट हो

जाती है। उचित समय किये जाने पर यह अद्भुत शक्ति बन जाती है। द्वितीय—बुद्धि अर्थात् इच्छा-शक्ति (इसको बोध-शक्ति भी कहा जाता है)। तृतीय—अहंकार अर्थात् आत्मचेतन अहंबुद्धि। चतुर्थ—चित्त अर्थात् वह तत्त्व, जिसके आधार और माध्यम से समस्त शक्तियाँ क्रियाशील होती हैं, मानो यह मन का घरातल है अथवा वह समुद्र है, जिसमें समस्त क्रिया-शक्तियाँ तरंगों का रूप धारण किये हुए हैं।

योग वह विज्ञान है, जिसके द्वारा हम चित्त को अनेक क्रिया-शक्तियों का रूप धारण करने अथवा उनमें रूपान्तरित होने से रोकते हैं। समुद्र में चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब जिस प्रकार तरंगों के कारण अस्पष्ट अथवा विच्छिन्न हो जाता है, उसी प्रकार आत्मा अर्थात् सत्स्वरूप का प्रतिबिम्ब भी मन की तरंगों से विच्छिन्न हो जाता है। केवल जब समुद्र दर्पण की भाँति तरंगशून्य होकर शान्त हो जाता है, तभी चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब दिखायी पड़ता है। उसी प्रकार जब चित्त अर्थात् मनस्स समय के द्वारा सम्पूर्ण रूप से शान्त हो जाता है, तभी स्वरूप का साक्षात्कार होता है।

यद्यपि चित्त सूक्ष्मतर रूप में जड़ है, तथापि वह देह नहीं है। वह देह द्वारा चिरकाल तक आबद्ध नहीं रहता। पर इस बात से सिद्ध होता है कि हम कभी कभी देहभाव से परे हो जाते हैं। अपनी इन्द्रियों को वशीभूत करके हम इच्छानुसार इस बात का अभ्यास कर सकते हैं।

यदि हम ऐसा करने में पूर्ण समर्थ हो जायँ, तो समस्त विश्व हमारे वश में हो जाय, क्योंकि हमारी इन्द्रियों को लेकर ही यह जगत् है। स्वाधीनता ही उच्च जीवन की कसौटी है। आध्यात्मिक जीवन उस समय प्रारम्भ होता है, जिस समय तुम अपने को इन्द्रियों के बधन से मुक्त कर लेते हो। जो इन्द्रियों के अधीन हैं, वही ससारी हैं, वही दास हैं।

चित्त को तरंगों का रूप धारण करने से रोकने में पूर्ण समर्थ होने पर हमारी देह का नाश हो जाता है। इस देह को तैयार करने में करोड़ों वर्षों से हमें इतना कड़ा परिश्रम करना पड़ा है कि उसी चेष्टा में व्यस्त रहते रहते हम यह भूल गये कि इस देह की प्राप्ति का वास्तविक उद्देश्य पूर्णता-प्राप्ति है। हम सोचने लगे हैं कि हमारी समस्त चेष्टाओं का लक्ष्य इस देह की तैयारी है। यही माया है। हमें इस भ्रम को मिटाना होगा और अपने मूल उद्देश्य की ओर जाकर इस बात का अनुभव करना होगा कि हम देह नहीं हैं, यह तो हमारा दास है।

मन को अलग करके उसे देह से पृथक् देखना सीखो। हम देह के ऊपर सवेदना और प्राण को आरोपित करते हैं और फिर सोचते हैं कि वह चेतन और मत्स्य

है। हम इतने दीर्घकाल से यह खोल पाने हुए हैं कि मूल पाठे हैं कि हम और वेह एक नहीं हैं। योग हमें देह को इच्छानुसार बलन करने तथा उसे अपने हाथ अपने सामन न कि स्वामी के रूप में देखने में सहायता करता है। योगाम्नास का प्रथम प्रमुख उद्यम मानसिक शक्तियों का नियंत्रण करना है। दूसरा उन्हें पूर्ण शक्ति सगाकर किसी एक विषय पर केन्द्रित करना है।

यदि तुम बहुत बात करते हो तो तुम योगी नहीं हो सक्ते।

### द्वितीय पाठ

इस योग का नाम अष्टांग योग है, क्योंकि इसको प्रथमतः आठ भागों में विभक्त किया गया है। वे हैं

प्रथम—यम। यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण है और सारा जीवन इसके द्वारा शासित होना चाहिए। इसके पाँच विभाग हैं

- (१) मन कर्म बचन से हिसा न करना।
- (२) मन कर्म बचन से झोम न करना।
- (३) मन कर्म और बचन की पवित्रता।
- (४) मन कर्म और बचन की पूर्ण सत्यता।
- (५) अपरिग्रह (किसीसे कोई बात न लेना)।

द्वितीय—नियम। शरीर की देखभाल नित्य स्नान परिमित आहार इत्यादि।

तृतीय—आसन। मेरुदण्ड के ऊपर जोर न देकर कमर, गर्दन और शिर सीधा रखना।

चतुर्थ—प्राणायाम। प्राणवायु बचवा जीवन-शक्ति को बसीमूठ करने के लिए स्वास-प्रस्वास का संयम।

पंचम—मत्याहार। मन को अन्तर्मुख करना तथा उसे बहिर्मुखी होने से रोकना अङ्ग-तत्त्व की समझने के लिए उसे मन में बुझाना बसौ चस पर बार बार विचार करना।

षष्ठ—धारणा। एक विषय पर ध्यान केन्द्रित करना।

सप्तम—ध्यान।

अष्टम—समाधि आनाजोक हमारी समस्त साधना का उद्देश्य।

हमें यम-नियम का अभ्यास जीवनपर्यन्त करना चाहिए। जहाँ तक दूसरे अभ्यासों का सम्बन्ध है हम ठीक वैसे ही करते हैं, वैसे कि थोके बिना दूसरे

तिनके को दृढ़तापूर्वक पकड़े पहलेवाले को नहीं छोड़ती है। दूसरे शब्दों में हमें अपने पहले कदम को भली भाँति समझकर अम्यास कर लेना है और तब दूसरा उठाना है।

इस पाठ का विषय प्राणायाम अर्थात् प्राण का नियमन है। राजयोग में प्राण-वायु चित्तभूमि में प्रविष्ट होकर हमें आध्यात्मिक राज्य में ले जाती है। यह समस्त देहयंत्र का मूल चक्र है। प्राण प्रथम फुफ्फुस पर क्रिया करता है, फुफ्फुस हृदय को प्रभावित करते हैं, हृदय रक्त-प्रवाह को और वह क्रमानुसार मस्तिष्क को तथा मस्तिष्क मन पर क्रिया करता है। जिस प्रकार इच्छा-शक्ति बाह्य सवेदन उत्पन्न करती है, उसी प्रकार बाह्य सवेदन इच्छा-शक्ति जाग्रत कर देता है। हमारी इच्छा-शक्ति दुर्बल है, हम जड-तत्त्व के इतने बधन में हैं कि हम उसकी शक्ति को नहीं जान पाते। हमारी अधिकांश क्रियाएँ बाहर से भीतर की ओर होती हैं। बाह्य प्रकृति हमारे आन्तरिक साम्य को नष्ट कर देती है, किन्तु जैसा कि हमें चाहिए, हम उसके साम्य को नष्ट नहीं कर पाते। किन्तु यह सब भूल है। वास्तव में प्रबलतर शक्ति तो भीतर की शक्ति है।

वे ही महान् सत और आचार्य हैं, जिन्होंने अपने भीतर के मनोराज्य को जीता है। और इसी कारण उनकी वाणी में शक्ति थी। एक ऊँची मीनार पर वदी किये गये एक मन्त्री की कहानी<sup>१</sup> है। वह अपनी पत्नी के प्रयत्न से मुक्त हुआ। पत्नी भृगु, मधु, रेशमी सूत, सुतली और रस्सी लायी थी। यह रूपक इस बात को स्पष्ट करता है कि किस प्रकार हम रेशमी धागे की भाँति प्रथम प्राणवायु का नियमन करके अन्त में एकाग्रतारूपी रस्सी पकड़ सकेंगे, जो हमें देहरूपी कारागार से निकाल देगी और हम मुक्ति प्राप्त करेंगे। मुक्ति प्राप्त करने पर उसके हेतु प्रयुक्त साधनों का हम परित्याग कर सकते हैं।

प्राणायाम के तीन अंग हैं

- (१) पूरक—श्वास लेना।
- (२) कुम्भक—श्वास रोकना।
- (३) रैचक—श्वास छोटना।

मस्तिष्क में से होकर मेरुदण्ड के दोनों ओर बहनेवाले दो शक्ति-प्रवाह हैं, जो मूलाधार में एक दूसरे का अतिक्रमण करके मस्तिष्क में लौट आते हैं। इन दोनों में एक का नाम 'सूर्य' (पिंगला) है, जो मस्तिष्क के वाम गोलार्ध से प्रारम्भ होकर मेरुदण्ड के दक्षिण पाद में मस्तिष्क के आधार (सहस्रार) पर एक दूसरे को लाँच-

१. कहानी के हेतु 'दिव्यमानन्द साहित्य', प्रथम खंड द्रष्टव्य। स०



कर पुनः मूलाधार पर अंग्रेजी के आठ (8) अंक के अर्ध भाग के आकार के समान एक दूसरे का फिर अतिक्रमण करती है।

दूसरे शक्ति-प्रवाह का नाम 'बन्ध' (बद्ध) है, जिसकी क्रिया उपर्युक्त क्रम के ठीक विपरीत है और जो इस आठ (8) अंक को पूर्ण बनाती है। हाँ इसका निम्न भाग ऊपरी भाग से कहीं अधिक लम्बा है। ये शक्ति प्रवाह दिन-रात अतिशील रहते हैं और विभिन्न केन्द्रों में बिन्दु हूँ कहते हैं बड़ी बड़ी जीवनी-शक्तियों का संभव क्रिया करते हैं। पर ध्यान ही हमें उनका ज्ञान हो। एकाग्रता हाथ हम उनका अनुभव कर सकते हैं और शरीर के विभिन्न अंगों में उनका पता लगा सकते हैं। इस 'सूर्य' और 'बन्ध' के शक्ति-प्रवाह स्वास-क्रिया के साथ अनिष्ट रूप से सम्बद्ध हैं और इसीके नियमन हाथ हम शरीर को नियमित करते हैं।

कठोपनिषद्<sup>१</sup> में वेद को रथ मन को अगाम इन्द्रियों को घोड़े विषय को पथ और बुद्धि को सारथी कहा गया है। इस रथ में बैठी हुई आत्मा रथी है। यदि रथी समझदार नहीं है और सारथी से घोड़ों को नियंत्रित नहीं कर सकता तो वह कभी भी अपने प्रिय तक नहीं पहुँच सकता। अतः, दुष्ट अस्त्रों के समान इन्द्रियाँ उसे नहीं चाहेंगी शीघ्र के शर्मनी। यहाँ तक कि उसकी जान भी ले सकती हैं। वे जो शक्ति-प्रवाह सारथी के हाथों में रोकथाम के हेतु अगाम हैं और अस्त्रों को अपने बंध में करने के लिए उसे इनक ऊपर नियंत्रण करना आवश्यक है। नीतिपरायण होने की शक्ति हमें प्राप्त करनी ही है। जब तक हम उसे प्राप्त नहीं कर लेते हम अपने कर्मों को नियंत्रित नहीं कर सकते। नीतिशास्त्रों को कार्यरूप में परिणत करने की शक्ति हमें केवल योग से ही प्राप्त हो सकती है। नीतिपरायण होना योग का उद्देश्य है। अमर्त्य के सभी बड़े बड़े आचार्य योगी थे और उन्होंने प्रत्येक शक्ति प्रवाह को बंध में कर रखा था। योगी इन दोनों प्रवाहों को मेरुदण्ड के तले में संयत करके उनकी मेरुदण्ड के नीचे के केन्द्र से होकर परिष्कृत करते हैं। उन वे प्रवाह ज्ञान के प्रवाह बन जाते हैं। यह स्थिति केवल योगी की ही होती है।

प्राणावाम की द्वितीय शिखा कोई एक प्रवाही सभी के लिए नहीं है। प्राणावाम का अत्युत्पन्न क्रमबद्धता के साथ होना आवश्यक है और इसकी सबसे सहज विधि गमना है। चूँकि यह (गमना) पूर्णस्वेग संभव ही जाती है, हम इसके बजाय एक निश्चित संख्या में पवित्र मंत्र मंत्र का अपन करते हैं।

प्राणायाम की क्रिया इस प्रकार है दायें नथुने को अँगूठे से दबाकर चार बार 'ॐ' का जप करके धीरे धीरे बायें नथुने से श्वास लो।

तत्पश्चात् बायें नथुने पर तर्जनी रखकर दोनो नथुनो को कसकर बन्द कर दो और 'ॐ' का मन ही मन आठ बार जप करते हुए श्वास को भीतर रोके रहो।

पश्चात्, अँगूठे को दाहिने नथुने से हटाकर चार बार 'ॐ' का जप करते हुए उसके द्वारा धीरे धीरे श्वास को बाहर निकालो।

जब श्वास बाहर हो जाय, तब फुफ्फुस से समस्त वायु निकालने के लिए पेट को दृढतापूर्वक सकुचित करो। फिर बायें नथुने को बंद करके चार बार 'ॐ' का जप करते हुए दाहिने नथुने से श्वास भीतर ले जाओ। इसके बाद दाहिने नथुने को अँगूठे से बंद करो और आठ बार 'ॐ' का जप करते हुए श्वास को भीतर रोको। फिर बायें नथुने को खोलकर चार बार 'ॐ' का जप करते हुए पहले की भाँति पेट को सकुचित करके धीरे धीरे श्वास को बाहर निकालो। इस सारी क्रिया को प्रत्येक बैठक में दो बार दुहराओ अर्थात् प्रत्येक नथुने के लिए दो के हिसाब से चार प्राणायाम करो। प्राणायाम के लिए बैठने के पूर्व सारी क्रिया प्रार्थना से प्रारम्भ करना अच्छा होगा।

एक सप्ताह तक इस अभ्यास को करने की आवश्यकता है। फिर धीरे धीरे श्वास-प्रश्वास की अवधि को बढ़ाओ, किन्तु अनुपात वही रहे। अर्थात् यदि तुम श्वास भीतर ले जाते समय छ बार 'ॐ' का जप करते हो, तो उतना ही श्वास बाहर निकालते समय भी करो और कुम्भक के समय बारह बार करो। इन अभ्यासों के द्वारा हम और अधिक पवित्र, निर्मल और आध्यात्मिक होते जायेंगे। किसी विपथ में पड़ने से अथवा कोई शक्ति (सिद्धि) की चाह से बचे रहो। प्रेम ही एक ऐसी शक्ति है, जो चिरकाल तक हमारे साथ रहती है और बढ़ती जाती है। राजयोग के द्वारा ईश्वर को प्राप्त करने की इच्छा रखनेवाले व्यक्ति को मानसिक, शारीरिक, नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से सबल होना आवश्यक है। अपना प्रत्येक कदम इन बातों को ध्यान में रखकर ही बढ़ाओ।

लाखों में कोई विरला ही कह सकता है, "मैं इस ससार के परे जाकर ईश्वर का साक्षात्कार करूँगा।" शायद ही कोई सत्य के सामने खड़ा हो सके। किन्तु अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए हमें मरने के लिए भी तैयार रहना पड़ेगा।

## तृतीय पाठ

कुंडलिनी आत्मा का अनुभव बड़ क रूप में न करो बल्कि उसके यथार्थ स्वरूप को जानो। हम सोच आत्मा को बेह समझते हैं किन्तु हमारे लिए इसको इन्द्रिय और बुद्धि से अलग करके सोचना आवश्यक है। सभी हमें इस बात का ज्ञान होगा कि हम अमृतस्वरूप हैं। परिवर्तन से बाध्य है कार्य और कारण का द्वैत और जो कुछ भी परिवर्तित होता है, उसका नद्वय होता अवश्यम्भावी है। इसमें यह सिद्ध होता है कि न तो शरीर और न मन अविनाशी हो सकते हैं क्योंकि दोनों में निरंतर परिवर्तन हो रहा है। केवल जो अपरिवर्तनशील है, वही अविनाशी हो सकता है क्योंकि उसे कुछ भी प्रभावित नहीं कर सकता।

हम शत्यस्वरूप हो नहीं पाते बल्कि हम शत्यस्वरूप हैं किन्तु हमें सत्य को आनृत करनेवाके अज्ञान के पर्व को हटाना होना। बेह विचार का ही रूप है। 'सूर्य' और 'चन्द्र' शक्ति प्रवाह शरीर के सभी अंगों में शक्ति-संचार करते हैं। अचिच्छिद्य अतिरिक्त शक्ति सुषुम्ना के अन्तर्गत विभिन्न चक्रों अथवा सामान्यतया विहित स्नायु-केन्द्र में संचित रहती है।

ये शक्ति-प्रवाह मृत बेह में दृष्टिगत नहीं होते और केवल स्वल्प शरीर में ही देखे जा सकते हैं।

मोक्षी को एक विशेष सुनिश्चि रहती है क्योंकि वह केवल इनका अनुभव ही नहीं करछा अपितु इन्हें प्रत्यक्ष देखता भी है। वे उसके जीवन में व्योढिमंय हो उठते हैं। ऐसे ही उसके महान् स्नायु-केन्द्र भी हैं।

कार्य ज्ञात तथा अज्ञात दोनों यथाज्ञों में होते हैं। योमियों की एक बुररी बधा भी होती है वह है ज्ञानातीत या अतिचेतन अवस्था जो सभी देखों और सभी युगों में समस्त आत्मिक ज्ञान का स्रोत रही है। ज्ञानातीत बधा में कभी भूक नहीं होती किन्तु जब अम्मजात प्रकृति के द्वारा प्रेरित कार्य पूर्वकल्पेण यंजवत् होता है, तब पूर्वकर्त्ता (ज्ञानातीत बधा) ज्ञान की बधा के परे की स्थिति होती है। इसे अन्तःप्रेरणा कहते हैं परन्तु बोधी कहता है 'यह शक्ति प्रत्येक भानुष्य में अन्तर्निहित है और अन्ततोगत्वा सभी अंग इसका आनन्द प्राप्त करेगी।

हमें 'सूर्य' और 'चन्द्र' की गतियों को एक नये रास्ते से परिचायित करना होगा और उनके लिए सुषुम्ना का मुख कोलकर एक मया रास्ता बना होगा। जब हम इस सुषुम्ना से होकर शक्ति-प्रवाह को मस्तिष्क तक ले जाने में सफल हो पाते हैं, उस समय हम शरीर से बिल्कुल अलग हो पाते हैं।

मेरुदंड के तले त्रिकास्थि (sacrum) के निकट स्थित मूलाधार चक्र सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। यह स्थल काम-शक्ति के प्रजनन-तत्त्व का निवास है, और योगी इसको एक त्रिकोण के भीतर छोटे से कुडलीकृत सर्प के प्रतीक के रूप में मानते हैं। इस प्रसुप्त सर्प को कुडलिनी कहते हैं। इसी कुडलिनी को जाग्रत करना ही राजयोग का प्रमुख उद्देश्य है।

महती काम-शक्ति को पशुसुलभ क्रिया से उन्नत करके मनुष्य शरीर के महान् डाइनेमो मस्तिष्क में परिचालित करके वहाँ संचित करने पर वह ओजस् अर्थात् महान् आध्यात्मिक शक्ति बन जाती है। समस्त सत् चिन्तन, समस्त प्रार्थनाएँ उस पशुसुलभ शक्ति के एक अंश को ओजस् में परिणत करने में सहायता करती हैं और हमें आध्यात्मिक शक्ति प्रदान करती हैं। यह ओजस् ही मनुष्य का सच्चा मनुष्यत्व है, और केवल मनुष्य के शरीर में ही इस शक्ति का सग्रह सम्भव है। जिसकी समस्त पशुसुलभ काम-शक्ति ओजस् में परिणत हो गयी है, वही देवता है। उमकी वाणी में शक्ति होती है और उसके वचन जगत् को पुनरुज्जीवित करते हैं।

योगी मन ही मन कल्पना करता है कि यह कुडलिनी क्रमशः धीरे धीरे उठकर सर्वोच्च स्तर अर्थात् सहस्रार में पहुँच रही है। जब तक मनुष्य अपनी सर्वोच्च शक्ति, काम-शक्ति को ओज में परिणत नहीं कर लेता, कोई भी स्त्री या पुरुष, वास्तविक रूप में आध्यात्मिक नहीं हो सकता।

कोई शक्ति उत्पन्न नहीं की जा सकती, उसे केवल एक दिशा में परिचालित किया जा सकता है। अतः हमें चाहिए कि हम अपनी महती शक्तियों को अपने वश में करना सीखें और अपनी इच्छा-शक्ति से उन्हें पशुवत् रखने के बजाय आध्यात्मिक बना दें। अतः यह स्पष्ट है कि पवित्रता ही समस्त धर्म और नीति की आधारशिला है। विशेषतः राजयोग में मन, वचन की पूर्ण पवित्रता परमावश्यक है। विवाहित और अविवाहित, सभी लोगों के लिए एक ही नियम लागू होता है। देह के इस सार अंश को वृथा नष्ट कर देने पर आध्यात्मिकता की प्राप्ति सम्भव नहीं है।

इतिहास बताता है कि सभी युगों में बड़े बड़े द्रष्टा महापुरुष या तो सन्यासी और तपस्वी थे अथवा विवाहित जीवन का परित्याग कर देनेवाले थे। केवल पवित्रात्मा ही भगवत्साक्षात्कार कर सकते हैं।

प्राणायाम से पूर्व इस त्रिकोणमंडल को ध्यान में देखने की चेष्टा करो। आँखें बन्द करके इसके चित्र की मन ही मन स्पष्ट कल्पना करो। सोचो कि इसके चारों ओर अग्निशिखा है और उसके बीच में कुडलिनी सोयी पड़ी है। जब तुम्हें कुडलिनी

स्पष्ट रूप से बीसने को अपनी कल्पना में इसे मूलाधार चक्र में स्थित करो और क्रमिक मंत्रों को व्यवहार करके कुंडलिनी को अपने के हेतु द्वारा उसके मस्तक पर आवात करो। जितनी ही शक्तिशाली कल्पना होगी उतनी ही शक्ति से वास्तविक फल की प्राप्ति होगी और कुंडलिनी आसक्त हो आयगी। जब तक वह आसक्त नहीं हुई, तब तक यही सोचो कि वह आसक्त हो गयी है, तथा शक्ति प्रवाहों को अनुभव करने की चेष्टा करो और उन्हें सुपुण्या पथ में परिचाहित करने का प्रयास करो। इससे उमकी क्रिया में शीघ्रता होती है।

### चतुर्थ पाठ

मन को बध में करने की शक्ति प्राप्त करने के पूर्व हमें उसका मही प्रकार अध्ययन करना चाहिए।

बचक मन को सुवत करके हमें उसे विषयों से लीजना होगा और उसे एक विचार में केन्द्रित करना होगा। बार बार इस क्रिया को करना आवश्यक है। इच्छा शक्ति द्वारा मन को बध में करके उसकी क्रिया रोककर ईश्वर की महिमा का चिन्तन करना चाहिए।

मन को स्थिर करने का सबसे सरल उपाय है चुपचाप बैठ जाना और उसे कुछ क्षण के लिए बंध जहाँ जाम जाने देना। बुद्ध्यापूर्वक इस भाव का चिन्तन करो 'मैं मन को विचारण करते हुए देखनेवाला छात्री हूँ। मैं मन नहीं हूँ।' परन्तु मन को ऐसा सोचता हुआ कल्पना करो कि मानो वह तुमसे बिस्तृत भिन्न है। अपने को ईश्वर से अभिन्न मानो मन जबवा जड़ पदार्थ के साथ एक करके कदापि न सोचो।

सोचो कि मन तुम्हारे सामने एक विस्तृत तारनहीन सरोवर है और जाने जानेवाले विचार इसके तट पर उठनेवाले बुलबुले हैं। विचारों को रोकने का प्रयास न करो बल्कि उनको देखो और जैसे जैसे वे विचारण करते हैं जैसे जैसे तुम भी उनके पीछे चलो। यह क्रिया धीरे धीरे मन के बृत्तों को सीमित कर देगी। कारण यह है कि मन विचार की विस्तृत परिधि में भ्रमता है और ये परिधियाँ विस्तृत होकर निरन्तर बढ़नेवाले बृत्तों में फैलती रहती हैं ठीक जैसे ही जैसे किसी सरोवर में डेका फेकने पर होता है। मन इस क्रिया को चकट देना चाहते हैं और बड़े बृत्तों से प्रारम्भ करके उन्हें छोटा बनाते चले जाते हैं—यहाँ तक कि अन्त में हम मन को एक बिन्दु पर स्थिर करके उसे बही रोक सकें। बुद्ध्यापूर्वक इस भाव का चिन्तन

करो, "मैं मन नहीं हूँ, मैं देखता हूँ कि मैं सोच रहा हूँ। मैं अपने मन तथा अपनी क्रिया का अवलोकन कर रहा हूँ।" प्रतिदिन मन और भावना से अपने को अभिन्न ममज्ञने का भाव कम होता जायगा, यहाँ तक कि अन्त में तुम अपने को मन में विलकुल अलग कर सकोगे और वास्तव में इसे अपने से भिन्न जान सकोगे।

इतनी सफलता प्राप्त करने के बाद मन तुम्हारा दास हो जायगा और उसके ऊपर इच्छानुसार शासन कर सकोगे। इन्द्रियो से परे हो जाना योगी की प्रथम स्थिति है। जब वह मन पर विजय प्राप्त कर लेता है, तब सर्वोच्च स्थिति प्राप्त कर लेता है।

जितना सम्भव हो सके, एकान्त सेवन करो। तुम्हारा आसन सामान्य ऊँचाई का होना चाहिए। प्रथम कुशासन विद्याओ, फिर मृगचर्म और उसके ऊपर रेशमी कपड़ा। अच्छा होगा कि आसन के साथ पीठ टेकने का साधन न हो और वह दृढ हो।

चूँकि विचार एक प्रकार के चित्र है, अतः हमें उनकी रचना न करनी चाहिए। हमें अपने मन से सारे विचार दूर हटाकर रिक्त कर देना चाहिए। जितनी ही शीघ्रता से विचार आयें, उतनी ही तेजी से उन्हें दूर भगाना चाहिए। इसे कार्यरूप में परिणत करने के लिए हमें जड-तत्त्व और देह के परे जाना परमावश्यक है। वस्तुतः मनुष्य का समस्त जीवन ही इसको सिद्ध करने का प्रयास है।

प्रत्येक ध्वनि का अपना अर्थ होता है। हमारी प्रकृति में इन दोनों का परस्पर सम्बन्ध है।

हमारा उच्चतम आदर्श ईश्वर है। उसका चिन्तन करो। यही नहीं कि हम ज्ञाता को जान सकते हैं, अपितु हम तो वही हैं।

अशुभ को देखना तो उसकी सृष्टि ही करना है। जो कुछ हम है, वही हम वाहर भी देखते हैं, क्योंकि यह जगत् हमारा दर्पण है। यह छोटा सा शरीर हमारे द्वारा रचा हुआ एक छोटा सा दर्पण है, वल्कि समस्त विश्व हमारा शरीर है। इस बात का हमें सतत चिन्तन करना चाहिए, तब हमें ज्ञान होगा कि न तो हम मर सकते हैं और न दूसरो को मार सकते हैं, क्योंकि वह तो हमारा ही स्वरूप है। हम अजन्मा और अमर हैं और प्रेम ही हमारा कर्तव्य है।

'यह समस्त विश्व हमारा शरीर है। समस्त स्वास्थ्य, समस्त सुख हमारा सुख है, क्योंकि यह सब कुछ विश्व के अन्तर्गत है।' कहो, "मैं विश्व हूँ।" अन्त में हमें जान लेना है कि यह सत्य ही है।

तो ये वो श्लोक है। कृष्ण के उपदेश के सारस्वरूप इन श्लोकों से बड़ा भारी बक प्राप्त होता है

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्।

विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति ॥ ११।२७॥

और,

समं पश्यन् हि सर्वत्र समबन्धितमीश्वरम्।

न हिनस्तात्मनात्मानं ततो माति परां गतिम् ॥ ११।२८॥

—“विनास होनेवाले सब मूर्तों में जो भोग बनिवासी परमात्मा को स्थित देखते हैं यथावत् में उन्हींका देखना सार्थक है क्योंकि ईश्वर को सर्वत्र समान भाव से देखकर वे आत्मा के द्वारा आत्मा की हिंसा नहीं करते इसलिए वे परमगति को प्राप्त होते हैं।

इस प्रकार इस देश और अग्याय देशों में कस्याय कार्य की दृष्टि से बेबाल के प्रचार और प्रसार के लिए विस्तृत क्षेत्र है। इस देश में और विदेशों में भी मनुष्य जाति के दुःख दूर करने के लिए तथा मानव-समाज की उत्थति के लिए हम परमात्मा की सर्वव्यापकता और सर्वत्र समान रूप से उसकी विद्यमानता का प्रचार करना होगा। जहाँ भी बुवाई दिखाई देती है, वहीं अन्नान भी मीनूष रहता है। मैंने अपने ज्ञान और अनुभव द्वारा मार्कम किया है और यही शास्त्रों में भी कहा गया है कि भेद-बुद्धि से ही संसार में सारे अघुम और अभेद-बुद्धि से ही सारे भुम फलते हैं। यदि सारी विभिन्नताओं के अन्तर ईश्वर के एकत्व पर विश्वास किया जाय तो सब प्रकार से संसार का कस्याय किया जा सकता है। यही बेबाल का सर्वोच्च आदर्श है। प्रत्येक विषय में आदर्श पर विश्वास करना एक बात है और प्रतिदिन के छोटे छोटे कार्यों में उसी आदर्श के अनुसार काम करना विरूपुन दूसरी बात है। एक ऊँचा आदर्श दिना देना अच्छी बात है इसमें गन्देह नहीं पर उस आदर्श तक पहुँचन का उपाय कौन सा है ?

स्वभावतः यहाँ यही कठिन और उद्विग्न करने वाला जाति-भेद तथा समाज गुणार का सवाल का उपस्थित होता है, जो कर्त्तव्यियों से सर्वसाधारण क मन में उठता रहा है। मैं तुमसे यह बात स्पष्ट शब्दों में कह देना चाहता हूँ कि मैं केवल जाति-जाति का भेद मिटानेवाला अथवा समाज-गुणारक भाव नहीं हूँ। सभी धर्म में जाति भेद या समाज-गुणार से पैदा कुछ मतलब नहीं। तुम जादे जित जाति या समाज के क्यों न हो उनमें कुछ बन्धन-बिगाड़ना नहीं पर तुम किसी भी जाति-धर्म को पूना की दृष्टि से क्यों देखो ? मैं केवल प्रेम और भाव प्रेम की

का आदर्श विशिष्ट रूप से प्रतिष्ठित है। यूरोप के बड़े बड़े धर्माचार्य भी यह प्रमाणित करने के लिए हजारों रुपये खर्च कर रहे हैं कि उनके पूर्वपुरुष उच्च वंशों के थे और तब तक वे सन्तुष्ट नहीं होंगे जब तक अपनी वंशपरम्परा किसी भयानक क्रूर शासक से स्थापित नहीं कर लेंगे, जो पहाड़ पर रहकर राही बटोहियों की ताक में रहते थे और मौका पाते ही उन पर आक्रमण कर लूट लेते थे। आभिजात्य प्रदान करने वाले इन पूर्वजों का यही पेशा था और हमारे धर्माध्यक्ष कार्डिनल इनमें से किसीसे अपनी वंशपरम्परा स्थापित किये बिना सन्तुष्ट नहीं रहते थे। फिर दूसरी ओर भारत के बड़े से बड़े राजाओं के वंशधर इस बात की चेष्टा कर रहे हैं कि हम अमुक कौपीनधारी, सर्वस्वत्यागी, वनवासी, फल-मूलाहारी और वेदपाठी ऋषि की सन्तान हैं। भारतीय राजा भी अपनी वंशपरम्परा स्थापित करने के लिए वही जाते हैं। अगर तुम अपनी वंशपरम्परा किसी महर्षि से स्थापित कर सकते हो, तो ऊँची जाति के माने जाओगे, अन्यथा नहीं।

अतएव, हमारा उच्च वंश का आदर्श अन्यान्य देशवासियों के आदर्श से बिल्कुल भिन्न है। आध्यात्मिक साधनासम्पन्न महात्यागी ब्राह्मण ही हमारे आदर्श हैं। इस ब्राह्मण-आदर्श से मेरा क्या मतलब है? आदर्श ब्राह्मणत्व वही है, जिसमें सासारिकता एकदम न हो और असली ज्ञान पूर्ण मात्रा में विद्यमान हो। हिन्दू जाति का यही आदर्श है। क्या तुमने नहीं सुना है, शास्त्रों में लिखा है कि ब्राह्मण के लिए कोई कानून-कायदा नहीं है—वे राजा के शासनाधीन नहीं हैं, और उनके लिए फौजी की सजा नहीं हो सकती? यह बात बिल्कुल सच है। स्वार्थपर मूढ़ लोगों ने जिस भाव से इस तत्त्व की व्याख्या की है, उस भाव से उसको मत समझो; सच्चे वेदान्ती भाव से इस तत्त्व को समझने की चेष्टा करो। यदि ब्राह्मण कहने से ऐसे मनुष्य का बोध हो, जिसने स्वार्थपरता का एकदम नाश कर डाला है, जिसका जीवन ज्ञान और प्रेम की शक्ति को प्राप्त करने में तथा इनका विस्तार करने में ही बीतता है, जो देश ऐसे ही सच्चरित्र, नैष्ठिक तथा आध्यात्मिक ब्राह्मणों, स्त्री तथा पुरुषों से परिपूर्ण है, वह देश यदि विधिनिषेध के परे हो, तो इसमें आश्चर्य की कौन सी बात है? ऐसे लोगों पर शासन करने के लिए सेना या पुलिस इत्यादि की क्या आवश्यकता है? ऐसे आदमियों पर शासन करने का ही क्या काम है? अथवा ऐसे लोगों को किसी शासन-तन्त्र के अधीन रहने की ही क्या जरूरत है। ये लोग साधुस्वभाव महात्मा हैं—ईश्वर के अन्तरगस्वरूप हैं, ये ही हमारे आदर्श ब्राह्मण हैं और हम शास्त्रों में देखते हैं—सत्ययुग में पृथ्वी पर केवल एक जाति थी और वह ब्राह्मण थी। महाभारत में हम देखते हैं, पुराकाल में सारी पृथ्वी ब्राह्मणों का ही निवास था। क्रमशः जगते जगते उनकी अवनति होने लगी,



सुमन किया है अच्छा ही किया है पर इससे भी अच्छा करने की चेष्टा करो। पुराने जमाने में इस बेस में बहुतेरे अच्छे काम हुए हैं पर अब भी उससे बड़ बड़े काम करने का पर्याप्त समय और अवकाश है। मैं निश्चित हूँ कि तुम जानते हो कि हम एक जगह एक अवस्था में चुपचाप बैठे नहीं रह सकते। यदि हम एक जगह स्थिर रहे, तो हमारी मृत्यु अनिवार्य है। हमें या तो आन बचना होगा या पीछे हटना होगा—हमें उभरते रहना होगा नहीं तो हमारी अवसति आप से आप होती जायगी। हमारे पूर्व पुरुषों ने प्राचीन काल में बहुत बड़े बड़े काम किए हैं, पर हमें उनकी अपेक्षा भी उत्कृष्टतर जीवन का विकास करना होगा और उनकी अपेक्षा और भी महान् कार्यों की ओर अग्रसर होना पड़ेगा। अब पीछे हटकर अवसति को प्राप्त होना यह कैसे हो सकता है? ऐसा कभी नहीं हो सकता। नहीं हम कदापि बैसा होने नहीं देंगे। पीछे हटने से हमारी जाति का अक्षय्य और मरज होगा। अतएव 'अग्रसर होकर महत्तर कर्मों का अनुष्ठान करो'—तुम्हारे सामने यही मेरा वक्तव्य है।

मैं किसी अधिक्त समाज-सुधार का प्रचारक नहीं हूँ। मैं समाज के लोगों का सुधार करने की चेष्टा नहीं कर रहा हूँ। मैं तुमसे केवल इतना ही कहता हूँ कि तुम जागे खडो और हमारे पूर्वपुरुष समस्त मानव जाति की उन्नति के लिए जो सर्वांग सुन्दर प्रचाली बताने में हैं उसीका अवलम्बन कर उनके उद्देश्य को सम्पूर्ण रूप से कार्य में परिवर्तित करो। तुमसे मेरा कहना यही है कि तुम जोप मानव के एकत्व और उसके नैसर्गिक ईश्वरत्व-मानक्यी बेवर्ती आदर्श के अधिकाधिक समीप पहुँचते जाओ। यदि मेरे पास समय होता तो मैं तुम लोगों को बड़ी प्रसन्नता के साथ यह बिसाता और बताना कि आज हमें जो कुछ कार्य करना है उसे हजारी वर्ष पहले हमारे स्मृतिकारों ने बता दिया है। और उनकी बातों से हम यह भी जान सकते हैं कि आज हमारी जाति और समाज के आचार-व्यवहार में जो सब परिवर्तन हुए हैं और होंगे उन्हें भी उन लोगों ने आज से हजारों वर्ष पहले जान लिया था। वे भी जाति भेद को तोड़ने वाले थे पर आजकल की तरह नहीं। जाति-भेद को तोड़ने से उनका मतलब यह नहीं था कि सब मर के लोग एक साथ मिस्रकर घराब कबाब उद्यान या बितने मूल और पानक हैं वे सब जाड़े जिसके साथ घासी कर से और घारे बेघ को एक बहुत बड़ा पागलखाना बना है और न उनका यही विश्वास था कि जिस बेस में बितने ही अधिक्त विषय-विषाह है वह बेस उठना ही उन्नत समझा जायगा। इस प्रकार से किसी जाति को उन्नत होते मुझे कभी देखना है।

शाह्य ही हमारे पूर्वपुरुषों के आदर्श थे। हमारे सभी शास्त्रों में आशा

का आदर्श विशिष्ट रूप से प्रतिष्ठित है। यूरोप के बड़े बड़े धर्माचार्य भी यह प्रमाणित करने के लिए हजारों रुपये खर्च कर रहे हैं कि उनके पूर्वपुरुष उच्च वंशों के थे और तब तक वे सन्तुष्ट नहीं होंगे जब तक अपनी वंशपरम्परा किसी भयानक क्रूर शासक से स्थापित नहीं कर लेंगे, जो पहाड़ पर रहकर राही बटोहियों की ताक में रहते थे और मौका पाते ही उन पर आक्रमण कर लूट लेते थे। आभिजात्य प्रदान करने वाले इन पूर्वजों का यही पेशा था और हमारे धर्माध्यक्ष कार्डिनल इनमें से किसीसे अपनी वंशपरम्परा स्थापित किये बिना सन्तुष्ट नहीं रहते थे। फिर दूसरी ओर भारत के बड़े से बड़े राजाओं के वंशधर इस बात की चेष्टा कर रहे हैं कि हम अमुक कौपीनधारी, सर्वस्वत्यागी, वनवासी, फल-मूलाहारी और वेदपाठी ऋषि की सन्तान हैं। भारतीय राजा भी अपनी वंशपरम्परा स्थापित करने के लिए वही जाते हैं। अगर तुम अपनी वंशपरम्परा किसी महर्षि से स्थापित कर सकते हो, तो ऊँची जाति के माने जाओगे, अन्यथा नहीं।

अतएव, हमारा उच्च वंश का आदर्श अन्यान्य देशवासियों के आदर्श से बिल्कुल भिन्न है। आध्यात्मिक साधनासम्पन्न महात्यागी ब्राह्मण ही हमारे आदर्श हैं। इस ब्राह्मण-आदर्श से मेरा क्या मतलब है? आदर्श ब्राह्मणत्व वही है, जिसमें सासारिकता एकदम न हो और असली ज्ञान पूर्ण मात्रा में विद्यमान हो। हिन्दू जाति का यही आदर्श है। क्या तुमने नहीं सुना है, शास्त्रों में लिखा है कि ब्राह्मण के लिए कोई कानून-कायदा नहीं है—वे राजा के शासनाधीन नहीं हैं, और उनके लिए फाँसी की सजा नहीं हो सकती? यह बात बिल्कुल सच है। स्वार्थपर मूढ़ लोगो ने जिस भाव से इस तत्त्व की व्याख्या की है, उस भाव से उसको मत समझो, सच्चे वेदान्ती भाव से इस तत्त्व को समझने की चेष्टा करो। यदि ब्राह्मण कहने से ऐसे मनुष्य का बोध हो, जिसने स्वार्थपरता का एकदम नाश कर डाला है, जिसका जीवन ज्ञान और प्रेम की शक्ति को प्राप्त करने में तथा इनका विस्तार करने में ही बीतता है, जो देश ऐसे ही सच्चरित्र, नैष्ठिक तथा आध्यात्मिक ब्राह्मणों, स्त्री तथा पुरुषों से परिपूर्ण है, वह देश यदि विधिनिषेध के परे हो, तो इसमें आश्चर्य की कौन सी बात है? ऐसे लोगो पर शासन करने के लिए सेना या पुलिस इत्यादि की क्या आवश्यकता है? ऐसे आदमियों पर शासन करने का ही क्या काम है? अथवा ऐसे लोगो को किसी शासन-तन्त्र के अधीन रहने की ही क्या जरूरत है। ये लोग साधुस्वभाव महात्मा हैं—ईश्वर के अन्तरंगस्वरूप हैं, ये ही हमारे आदर्श ब्राह्मण हैं और हम शास्त्रों में देखते हैं—सत्ययुग में पृथ्वी पर केवल एक जाति थी और वह ब्राह्मण थी। महाभारत में हम देखते हैं, पुराकाल में सारी पृथ्वी पर केवल ब्राह्मणों का ही निवास था। क्रमशः ज्यों ज्यों उनकी अवनति होने लगी,

बहु जाति भिन्न भिन्न जातियों में विभक्त होती गयी। फिर, जब कल्प चक्र भूमता भूमता सत्ययुग आ पहुँचिमा तब फिर स सभी ब्राह्मण ही हो जायेंगे। वर्तमान युग चक्र भविष्य में सत्ययुग के जाने की सूचना दे रहा है, इसी बात की ओर मैं तुम्हारा ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ। ऊँची जातियों को नीची करने मतवाहे बाह्य विहार करने और क्षत्रिक मुक्त-भोग के लिए अपने अपने वर्णाभ्रम-धर्म की मर्यादा तोड़ने से इस जातिभेद की समस्या हल नहीं होगी। इसकी मीमांसा तमी होगी जब हम लोगों में स प्रत्येक मनुष्य देवान्ती धर्म का आदेश पासन करने मयेपा जब हर कोई सच्चा धार्मिक होने की चेष्टा करेगा और प्रत्येक व्यक्ति आदर्श बन जायगा। तुम आर्य हो या अनार्य ऋषि-संस्तान हो ब्राह्मण हो या अत्यन्त नीच मन्त्रज जाति के ही क्यों न हो माण्डूक्य के प्रत्येक निवासी के प्रति तुम्हारे पूर्वपुरुषों का विद्या हुआ एक महान् आदेश है। तुम सबके प्रति बस एक ही आदेश है कि चुपचाप बैठे रहने से काम न होगा। निरन्तर उभति के लिए चेष्टा करते रहना होगा। ऊँची स ऊँची जाति से लेकर नीची से नीची जाति के लोगों (वीरिया) को भी ब्राह्मण होने की चेष्टा करनी होगी। बेबान्त का यह आदर्श केवल मारुतधर्म के लिए ही नहीं बल्कि सारे संसार के लिए उपयुक्त है। हमारे जातिभेद का लक्ष्य यही है कि बीरे धीरे सारी मानव जाति आध्यात्मिक मनुष्य के महान् आदर्श को प्राप्त करने के लिए मगधर हो जो वृत्ति दामा धीच धान्ति उपासना और ध्यान का मय्यासी है। इस आदर्श में ईश्वर की स्थिति म्बिकृत है।

इस उद्देश्य को कार्यरूप में परिणत करने का उपाय क्या है? मैं तुम लोगों को फिर एक बार याद दिला देना चाहता हूँ कि कोसने निष्ठा करने या बालियों की बीछार करने से कोई सद्गुरुस्य पूर्ण नहीं हो सकता। लगातार क्यों तक इस प्रकार की कितनी ही चेष्टाएँ की गयी हैं, पर कभी अच्छा परिणाम प्राप्त नहीं हुआ। केवल पारस्परिक सम्मान और प्रेम के द्वारा ही अच्छे परिणाम की प्राप्ति की जा सकती है। यह महान् विषय है और मेरी दृष्टि में जो मोजदार है उनकी व्याख्या के लिए कई भाषणों की आवश्यकता होगी जिनमें मैं प्रतिदिन उल्लेखाल अपने विचारों को व्यक्त कर सकूँ। मठएव आज मैं यहीं पर अपनी मन्तूठा का उपलहार करता हूँ। हिन्दुओं! मैं तुम्हें केवल इतनी ही याद दिला देना चाहता हूँ कि हमारा यह राष्ट्रीय बंध हमें सबियों से हम पार से उठ पार करता आ रहा है। सामय आजकल इसमें कुछ छेद हो गये हैं सामय यह कुछ पुराना भी पड़ गया है। यदि यही बात है, तो हम सारे भारतवासियों की प्राणों की बाबी लगाकर इन छेदों को बन्द कर देने और इसका औचित्य करने की चेष्टा करनी चाहिए। हमें अपने मर्जी देवमाइयों की हम सारे की मूचना दे देनी चाहिए। वे प्राणों और

हमारी सहायता करें। मैं भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक ओर से चिल्लाकर लोगों को इस परिस्थिति और कर्तव्य के प्रति जागरूक करूँगा। मान लो, लोगो ने मेरी बात अनसुनी कर दी, तो भी मैं इसके लिए उन्हें न तो कोसूँगा और न भर्त्सना ही करूँगा। पुराने ज़माने में हमारी जाति ने बहुत बड़े बड़े काम किये हैं, और यदि हम उनसे भी बड़े बड़े काम न कर सकें, तो एक साथ ही शान्तिपूर्वक डूब मरने में हमें सन्तोष होगा। देशभक्त बनो—जिस जाति ने अतीत में हमारे लिए इतने बड़े बड़े काम किये हैं, उसे प्राणों से भी अधिक प्यारी समझो। हे स्वदेशवासियो ! मैं ससार के अन्यान्य राष्ट्रों के साथ अपने राष्ट्र की जितनी ही अधिक तुलना करता हूँ, उतना ही अधिक तुम लोगो के प्रति मेरा प्यार बढ़ता जाता है। तुम लोग शुद्ध, शान्त और सत्त्वभाव हो, और तुम्हीं लोग सदा अत्याचारों से पीड़ित रहते आये हो—इस मायामय जड जगत् की पहली ही कुछ ऐसी है। जो हो, तुम इसकी परवाह मत करो। अन्त में आत्मा की ही जय अवश्य होगी। इस बीच आओ हम काम में सलग्न हो जायँ। केवल देश की निन्दा करने से काम नहीं चलने का। हमारी इस परम पवित्र मातृभूमि के काल-जर्जर कर्मजीर्ण आचारों और प्रथाओं की निन्दा मत करो। एकदम अधविश्वासपूर्ण और अतार्किक प्रथाओं के विरुद्ध भी एक शब्द मत कहो, क्योंकि उनके द्वारा भी अतीत में हमारी जाति और देश का कुछ न कुछ उपकार अवश्य हुआ है। सदा याद रखना कि हमारी सामाजिक प्रथाओं के उद्देश्य ऐसे महान् हैं, जैसे ससार के किसी और देश की प्रथाओं के नहीं हैं। मैंने ससार में प्रायः सर्वत्र जाति-पाँति का भेदभाव देखा है, पर उद्देश्य ऐसा महिमामय नहीं है। अतएव, जब जातिभेद का होना अनिवार्य है, तब उसे घन पर खड़ा करने की अपेक्षा पवित्रता और आत्मत्याग के ऊपर खड़ा करना कही अच्छा है। इसलिए निन्दा के शब्दों का उच्चारण एकदम छोड़ दो। तुम्हारा मुँह बन्द हो और हृदय खुल जाय। इस देश और सारे जगत् का उद्धार करो। तुम लोगो में से प्रत्येक को यह सोचना होगा कि सारा भार तुम्हारे ही ऊपर है। वेदान्त का आलोक घर घर ले जाओ, प्रत्येक जीवात्मा में जो ईश्वरत्व अन्तर्निहित है, उसे जगाओ। तब तुम्हारी सफलता का परिमाण जो भी हो, तुम्हें इस बात का सन्तोष होगा कि तुमने एक महान् उद्देश्य की सिद्धि में ही अपना जीवन बिताया है, कर्म किया है और प्राण उत्सर्ग किया है। जैसे भी हो, महत्-कार्य की सिद्धि होने पर मानव जाति का दोनों लोको में कल्याण होगा।

## मद्रास अभिनन्दन का उत्तर

गणधी श्री उब मंगल लखे तो बनी मंगल गणधी-गणधी द्वारा उन् एक  
मातृत्व धन दिया गया। कए एक प्रकार का

काम बुझ लखावी श्री

आज हम सब भारत गणधी देनों के बर्षिक प्रकार के गीतों के अन्तर  
पर भारत मंगलनिवासी गणधीवर्षी की अंतर में आकरा हासिल गणधी करते हैं।  
आज आगरी मंगल में श्री लखे का मंगल अन्ति का रहे है उसका अर्थ का नहीं  
है कि का एक प्रकार का गीत-आज अपना अन्तर है, कान् हमने आज लखे आगरी  
गणधी में आन आगरीक एक हासिल प्रेम की भेन का है तथा आन्ते अन्तर की एक  
में भाग्यवर्षी के उन्पे पारिविक आगरी के प्रचार कर गणधी के प्रतिगणधी का श्री  
मंगल बानी दिया है उन्पे निमित्त अपनी कृपाका प्रकट करन है।

उब गिणगी गहर में बर्षे-मंगलमा का आवांजन दिया गया उन् गमय लखा  
भाविबन्ग हकारे मंगल के कुछ आगरी के मन में एक बात की उल्लुभता उन्पे हुई  
कि हमारे भेन तथा प्राचीन बर्षे का भी प्रतिनिधित्व बनी योग्यतापूर्वक दिया जान  
गया उन्पे उन्पे का मंगल अन्ति गणधी मंगल अन्ति उन्पे द्वारा अन्पे मंगल  
पाचार्य देगा में प्रचार हो। उन् अन्तर पर हमारा यह नीमाय्य का कि हमारी  
आगरी भेन हुई और पुन हम उन् बात का अनुभव हुआ जो कृपा विभिन्न उन्पे  
के इतिहास में मंगल मित्र हुआ है अर्थात् गमय आने पर एसा व्यक्ति स्वयं भाविभूत  
हो जाना है जो मंगल के प्रचार में महापक हाता है। और अब आपने उन् पर्व  
महाममा में हिन्दू पर्व के प्रतिनिधित्व का में जाने का बीड़ा उठाया तो हममें से अन्ति  
काय लोगों के मन में यह निश्चित भावना उल्लुभ हुई कि उन् विरहमरणीय बर्षे  
महाममा में हिन्दू बर्षे का प्रतिनिधित्व बड़ी योग्यतापूर्वक हीगा क्योंकि आपकी  
अनेकानेक शक्तियों को हम लोग बीड़ा बहुत जान चुके थे। हिन्दू पर्व के सनाउन  
विद्यालया का प्रतिपादन आपने जिस स्वच्छता शुद्धता तथा प्रायायिकता से किया  
उससे केवल बर्षे-महाममा पर ही एक महत्त्वपूर्ण प्रभाव नहीं पड़ा कान् उसके  
द्वारा अन्पे पाचार्य वेसों के स्त्री-पुरुषों को भी यह अनुभव हो गया कि भारतवर्ष  
के इस आध्यात्मिक ओठ में कितना ही अमररक तथा प्रेम का सुख पान किया  
जा सकता है और उसके फलस्वरूप मातृत्व जाति का इतना सुन्दर, पूर्ण व्यापक

तथा शुद्ध विकास हो सकता है, जितना कि इस विश्व में पहले कभी नहीं हुआ। हम इस बात के लिए आपके विशेष कृतज्ञ हैं कि आपने ससार के महान् धर्मों के प्रतिनिधियों का ध्यान हिन्दू धर्म के उस विशेष सिद्धान्त की ओर आकर्षित किया, जिसको 'विभिन्न धर्मों में वन्वुत्व तथा सामजस्य' कहा जा सकता है। आज यह सम्भव नहीं रहा है कि कोई वास्तविक शिक्षित तथा सच्चा व्यक्ति इस बात का ही दावा करे कि सत्य तथा पवित्रता पर किसी एक विशेष स्थान, सम्प्रदाय अथवा वाद का ही स्वामित्व है या वह यह कहे कि कोई विशेष धर्म-मार्ग या दर्शन ही अन्त तक रहेगा और अन्य सब नष्ट हो जायेंगे। यहाँ पर हम आप ही के उन सुन्दर शब्दों को दुहराते हैं, जिनके द्वारा श्रीमद्भागवद्गीता का केन्द्रीय सामजस्य भाव स्पष्ट प्रकट होता है कि 'ससार के विभिन्न धर्म एक प्रकार के यात्रास्वरूप है, जहाँ तरह तरह के स्त्री-पुरुष इकट्ठे हुए हैं तथा जो भिन्न भिन्न दशाओं तथा परिस्थितियों में से होकर एक ही लक्ष्य की ओर जा रहे हैं।'

हम तो यह कहेंगे कि यदि आपने सिर्फ इस पुण्य एव उच्च उद्देश्य को ही, जो आपको सौंपा गया था, अपने कर्तव्य रूप में निवाहा होता, तो उतने से ही आपके हिन्दू भाई बड़ी प्रसन्नता तथा कृतज्ञतापूर्वक आपके उस अमूल्य कार्य के लिए महान् आभार मानते। परन्तु आप केवल इतना ही न करके पाश्चात्य देशों में भी गये, तथा वहाँ जाकर आपने जनता को ज्ञान तथा शान्ति का सदेश सुनाया जो भारतवर्ष के सनातन धर्म की प्राचीन शिक्षा है। वेदान्त धर्म के परम युक्तिसम्मत होने को प्रमाणित करने में आपने जो यत्न किया है उसके लिए आपको हार्दिक धन्यवाद देते समय हमें आपके उस महान् सकल्प का उल्लेख करते हुए बड़ा हर्ष होता है, जिसके आधार पर प्राचीन हिन्दू धर्म तथा हिन्दू दर्शन के प्रचार के लिए अनेकानेक केन्द्रों वाला एक सक्रिय मिशन स्थापित होगा। आप जिन प्राचीन आचार्यों के पवित्र मार्ग का अनुसरण कर रहे हैं, एव जिस महान् गुरु ने आपके जीवन और उसके उद्देश्यों को उत्प्रेरित किया है, उन्हींके योग्य अपने को सिद्ध करने के लिए आपने इस महान् कार्य में अपनी सारी शक्ति लगाने का सकल्प किया है। हम इस बात के प्रार्थी हैं कि ईश्वर हमें वह सुअवसर दे जिसमें कि हम आपके साथ इस पुण्य कार्य में सहयोग दे सकें। साथ ही हम उम सर्व-शक्तिमान दयालु परमपिता परमेश्वर से करवद्ध होकर यह भी प्रार्थना करते हैं कि वह आपको चिरजीवी करे, शक्तिशाली बनाए तथा आपके प्रयत्नों को वह गौरव तथा सफलता प्रदान करे जो सनातन मत्य के ललाट पर सदैव अंकित रहती है।

इसके बाद खेतड़ी के महाराजा का निम्नलिखित मानपत्र भी पढा गया



## स्वामी जी का उत्तर

बन्धुओ, मनुष्य की इच्छा एक होती है परन्तु ईश्वर की दूसरी। विचार यह था कि तुम्हारे मानपत्र का पाठ तथा मेरा उत्तर ठीक अग्रेजी शैली पर हो, परन्तु यही ईश्वरेच्छा दूसरी प्रतीत होती है—मुझे इतने बड़े जनसमूह से 'रथ' में चढ़कर गीता के ढग से बोलना पड़ रहा है। इसके लिए हम कृतज्ञ ही हैं, अच्छा ही है कि ऐसा हुआ। इससे भाषण में स्वभावतः ओज आ जायगा तथा जो कुछ मैं तुम लोगो से कहूँगा उसमें शक्ति का संचार होगा। मैं कह नहीं सकता कि मेरी आवाज तुम सब तक पहुँच सकेगी या नहीं, परन्तु मैं यत्न करूँगा। इसके पहले शायद खुले मैदान में व्यापक जनसमूह के सामने भाषण देने का अवसर मुझे कभी नहीं मिला था।

जिस अपूर्व स्नेह तथा उत्साहपूर्वक उल्लास से मेरा कोलम्बो से लेकर मद्रास पर्यन्त स्वागत किया गया है तथा जैसा लगता है कि सम्पूर्ण भारतवर्ष में किये जाने की सम्भावना है, वह मेरी सर्वाधिक स्वप्नमयी रगीन आशाओं से भी अधिक है। परन्तु इससे मुझे हर्ष ही होता है। और वह इसलिए कि इसके द्वारा मुझे अपना वह कथन प्रत्येक बार सिद्ध होता दिखाई देता है जो मैं कई बार पहले भी व्यक्त कर चुका हूँ कि प्रत्येक राष्ट्र का एक ध्येय उसके लिए सजीवनीस्वरूप होता है, प्रत्येक राष्ट्र का एक विशेष निर्धारित मार्ग होता है, और भारतवर्ष का विशेषत्व है धर्म। ससार के अन्य देशों में धर्म तो केवल कई बातों में से एक है, असल में वहाँ तो वह एक छोटी सी चीज़ गिना जाता है। उदाहरणार्थ, इंग्लैंड में धर्म राष्ट्रीय नीति का केवल एक अंश है, इंग्लिश चर्च शाही घराने की एक चीज़ है और इसलिए उनकी चाहे उसमें श्रद्धा-भक्ति हो अथवा नहीं, वे उसके सहायक सदैव बने रहेंगे, क्योंकि वे तो यह समझते हैं कि वह उनका चर्च है। और प्रत्येक भद्र पुरुष तथा महिला से यही आशा की जाती है कि वह उसी चर्च का एक सदस्य बनकर रहे, और वही मानो भद्रता का चिह्न है। इसी प्रकार अन्य देशों में भी एक एक प्रबल राष्ट्रीय शक्ति होती है, यह शक्ति या तो ज़बरदस्त राजनीति के रूप में दिखाई देती है अथवा किसी बौद्धिक खोज के रूप में। इसी प्रकार कहीं या तो यह सैन्यवाद के रूप में दिखाई देती है अथवा वाणिज्यवाद के रूप में। कह सकते हैं कि उन्हीं क्षेत्रों में राष्ट्र का हृदय स्थित रहता है और इस प्रकार धर्म तो उस राष्ट्र की अन्य बहुत सी चीज़ों में से केवल एक ऊपरी सजावट की सी चीज़ रह जाती है।

पर भारतवर्ष में धर्म ही राष्ट्र के हृदय का मर्मस्थल है, इसीको राष्ट्र की रीढ़ कह लो अथवा वह नीव समझो जिसके ऊपर राष्ट्ररूपी इमारत खड़ी है। इस देश



में राजनीति पक्ष घटी तक कि बुद्धिबिनाग भी गौण गमने जाने है। भारत में धर्म को सर्वोपरि गुरुता जाता है। मैंने यह बात संकटों बार सुनी है कि भारतीय जनता साधारण जनता की बातों में भी अतिगर्हणी है और यह बात मनुष्य की भी है। जय में कोसमों में उतरा तो मुझे यह पता चला कि वहाँ किसी को भी इस बात का ध्यान न था कि यूपान में कौनी राजनीतिक उन्नतगुणस मर्षी हुई है वहाँ क्या क्या परिवर्तन हो रहे हैं मविमंडल की कंठी हार हो रही है, भादि भादि। एक भी व्यक्ति को यह ज्ञान न था कि समाजवाद अराजकतावाद भादि धर्मों का अथवा यूरोप के राजनीतिक वातावरण में अमुक परिवर्तन का क्या अर्थ है। परन्तु ब्रह्मरी ओर यदि तुम संज्ञा के ही लोगों को से सो तो वहाँ के प्रत्येक स्त्री-पुरुष तथा बच्चे बच्चे को मासम था कि उनके देश में एक भारतीय समाज की आया है जो अिकागो की धर्म-महासमा में भाग लेने के लिए भेजा गया था तथा जिसने वहाँ अपने धर्म में सफलता प्राप्त की। इससे निश्चय होता है कि उस देश के लोग वहाँ तक एसी सुखता से सम्बन्ध है जो उनके मठसब की है अथवा जिसने उनके वैदिक जीवन का तास्कर है उसने वे पकर अवगत हैं तथा जानने की इच्छा रखते हैं। राजनीति तथा उस प्रकार की अन्य बातें भारतीय जीवन के अत्या बदयक विषय कभी नहीं रहे हैं। परन्तु धर्म एवं आध्यात्मिकता ही एक ऐसा मुख्य आधार रहे है जिसके ऊपर भारतीय जीवन निर्भर रहा है तथा फटा-फूटा है और दमना ही नहीं भविष्य में भी इसे इसीपर निर्भर रहना है।

संसार के राष्ट्रों द्वारा बड़ी समस्याओं का समाधान हो रहा है। भारत ने सर्वत्र एक का पक्ष ग्रहण किया है तथा अन्त सम्स्त संसार ने वृद्धि का पक्ष। यह समस्या यह है कि भविष्य में कौन टिक सकेगा? क्या कारण है कि एक राष्ट्र जीवित रहता है तथा दूसरा नष्ट हो जाता है? जीवनसंप्राम में पूजा टिक सकती है अथवा प्रेम भोगविनास विरत्वाधी है अथवा त्याग भीतिकता टिक सकती है या आध्यात्मिकता। हमारी विचारवादा उसी प्रकार की है जैसी हमारे पूर्वजों की अति प्राचीन प्रागैतिहासिक काल में थी। जिस अन्तकारमय प्राचीन काल तक पौराणिक परम्पराएँ भी पहुँच नहीं सकती उसी समय हमारे पधस्त्री पूर्वजों ने अपनी समस्या के पक्ष का ग्रहण कर लिया और संसार को चुनौती दे दी। हमारी समस्या को हल करने का रास्ता है वैराग्य त्याग निर्भीकता तथा प्रेम। बस ये ही सब टिकने योग्य हैं। जो राष्ट्र इन्द्रियों की आसक्ति का त्याग कर देता है, वही टिक सकता है। और इसका अन्त यह है कि आज हमें इतिहास इस बात की उपदेशी दे रहा है कि प्रायः प्रत्येक सभ्य में बरसाती मेढकों की तरह मने राष्ट्रों का उत्थान तथा पतन हो रहा है—अगम्य सूर्यसे प्रारम्भ करते हैं कुछ दिनों तक सुखकाव

मचाते हैं और फिर समाप्त हो जाते हैं। परन्तु यह भारत का महान् राष्ट्र जिसको अनेकानेक ऐसे दुर्भाग्यो, खतरों तथा उथलपुथल की कठिनतम समस्याओं से उलझना पडा है, जैसा कि ससार के किसी अन्य राष्ट्र को करना नहीं पडा, आज भी कायम है, टिका हुआ है, और इसका कारण है सिर्फ वैराग्य तथा त्याग क्योंकि यह स्पष्ट ही है कि बिना त्याग के धर्म रह ही नहीं सकता। इसके विपरीत यूरोप एक दूसरी ही समस्या के सुलझाने में लगा हुआ है। उसकी समस्या यह है कि एक आदमी अधिक से अधिक कितनी सम्पत्ति इकट्ठा कर सकता है, वह कितनी शक्ति जुटा सकता है, भले ही वह ईमानदारी से हो या वैईमानी से, नेकनामी से हो या वदनामी से। क्रूर, निर्दय, हृदयहीन, प्रतिद्वन्द्विता, यही यूरोप का नियम रहा है। पर हमारा नियम रहा है वर्ण-विभाग, प्रतिस्पर्धा का नाश, प्रतिस्पर्धा के बल को रोकना, इसके अत्याचारों को रौंद डालना तथा इस रहस्यमय जीवन में मानव का पथ शुद्ध एवं सरल बना देना।

स्वामी जी का भाषण इस प्रकार हो ही रहा था कि इस अवसर पर जनता की ऐसी भीड़ उमड़ी कि उनका भाषण सुनना कठिन हो गया। इसलिए स्वामी जी ने यह कहकर ही सक्षेप में अपना भाषण समाप्त कर दिया।

मित्रो, मैं तुम्हारा जोश देखकर बहुत प्रसन्न हूँ, यह परम प्रशसनीय है। यह मत सोचना कि मैं तुम्हारे इस भाव को देखकर नाराज़ हूँ, बल्कि मैं तो खुश हूँ, बहुत खुश हूँ—बस ऐसा ही अदम्य उत्साह चाहिए, ऐसा ही जोश हो। सिर्फ इतना ही है कि इसे चिरस्थायी रखना—इसे बनाये रखना। इस आग को बुझ मत जाने देना। हमें भारत में बहुत बड़े बड़े कार्य करने हैं। उसके लिए मुझे तुम्हारी सहायता की आवश्यकता है। ठीक है, ऐसा ही जोश चाहिए। अच्छा, अब इस ममा को जारी रखना असम्भव प्रतीत होता है। तुम्हारे सद्य व्यवहार तथा जोशीले स्वागत के लिए मैं तुम्हें अनेक धन्यवाद देता हूँ। किसी दूसरे मौके पर शान्ति में हम-तुम फिर कुछ और बातचीत तथा भावविनिमय करेंगे—मित्रो, अभी के लिए नमस्ते।

चूँकि तुम लोगों की भीड़ चारों ओर है और चारों ओर घूमकर व्याख्यान देना असम्भव है, इसलिए इस समय तुम लोग केवल मुझे देखकर ही सतुष्ट हो जाओ। अपना विस्तृत व्याख्यान मैं फिर किसी दूसरे अवसर पर दूँगा। तुम्हारे उत्साहपूर्ण स्वागत के लिए पुन धन्यवाद।

## मेरी क्रान्तिकारी योजना

[मद्रास के विक्टोरिया हॉल में दिया गया भाषण]

उस दिन अधिक भीड़ के कारण मैं व्याख्यान समाप्त नहीं कर सका था अतएव मद्रास निवासी मेरे प्रति जो निरन्तर सतव्य व्यवहार करते आये हैं उसके लिए आज मैं उन्हें अनेकानेक धन्यवाद देता हूँ। मैं यह नहीं जानता कि अमितान्त-पत्रों में मेरे लिए जो सुन्दर सुन्दर विशेषण प्रयुक्त हुए हैं, उनके लिए मैं किस प्रकार अपनी कृतज्ञता प्रकट करूँ। मैं प्रभु से इतनी ही प्रार्थना करता हूँ कि वे मुझे इन कृपापूर्ण तथा उदार प्रशंसकों के योग्य बना दें और इस योग्य भी कि मैं अपना सारा जीवन अपने बर्ष और मातृभूमि की सेवा में अर्पण कर सकूँ प्रभु मुझे इनके योग्य बनाये।

मैं समझता हूँ कि मुझमें अनेक बोगों के होते हुए भी बौद्धा साहस है। मैं भारत से पाश्चात्य देशों में कुछ सम्बन्ध के ममा था और उसे मैंने निर्भीकता से अमेरिका और इन्डो-एशियाटिक्स के सामने प्रकट किया। आज का विषय आरम्भ करने के पूर्व मैं साहसपूर्वक हो सम्ब तुम लोगों से कहना चाहता हूँ। कुछ दिनों से मेरे चारों ओर कुछ ऐसी परिस्थितियाँ उपस्थित हो रही हैं, जो मेरे कार्य की उन्नति में विशेष रूप से विघ्न डालने की चेष्टा कर रही हैं यहाँ तक कि यदि सम्भव हो सके तो वे मुझे एकबारगी कुचल कर मेरा अस्तित्व ही नष्ट कर दें। पर ईश्वर को धन्यवाद कि वे सारी चेष्टाएँ विफल हो गयी हैं, और इस प्रकार की चेष्टाएँ सबैव विफल ही सिद्ध होती हैं। मैं गठ तीन बर्षों से बैस रहा हूँ कुछ लोग मेरे एवं मेरे कार्यों के सम्बन्ध में कुछ भ्रान्त बारबाएँ बनाये हुए हैं। जब तक मैं विशेष से वा मैं चुप रहा मैं एक धम्म भी नहीं बोका। पर आज मैं अपने बेश की भूमि पर खड़ा हूँ मैं स्पष्टीकरण के रूप में कुछ सम्ब कहना चाहता हूँ। इन सबों का क्या फल होगा अबवा ये सम्ब तुम लोगों के हृदय में किन किन भावों का सरोक करेगे इसकी मैं परवाह नहीं करता। मुझे बहुत कम चिन्ता है क्योंकि मैं वहीं संन्यासी हूँ जिसने लगभग चार बर्ष पहले अपने बंध और कर्मबन्ध के साथ तुम्हारे नगर में प्रवेश किया था और वहीं सारी बुनियाद इस समय भी मेरे सामने पड़ी है।

बिना और अधिक भूमिका के मैं अब अपने विषय को आरम्भ करता हूँ। सबसे पहले मुझे थियोसॉफिकल सोसायटी के सम्बन्ध में कुछ कहना है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि उक्त सोसायटी से भारत का कुछ भला हुआ है और इसके लिए प्रत्येक हिन्दू उक्त सोसायटी और विशेषकर श्रीमती वेसेंट का कृतज्ञ है। यद्यपि मैं श्रीमती वेसेंट के सम्बन्ध में बहुत कम ही जानता हूँ, पर जो कुछ भी मुझे उनके बारे में मालूम है, उसके आधार पर मेरी यह धारणा है कि वे हमारी मातृभूमि की सच्ची हितचिन्तक हैं और यथाशक्ति उसकी उन्नति की चेष्टा कर रही हैं, इसलिए वे प्रत्येक सच्ची भारत-सन्तान की विशेष कृतज्ञता की अधिकारिणी हैं। प्रभु उन पर तथा उनसे सम्बन्धित सब पर आशीर्वाद की वर्षा करें! परन्तु यह एक बात है, और थियोसॉफिकल सोसायटी में सम्मिलित होना एक दूसरी बात। भक्ति, श्रद्धा और प्रेम एक बात है, और कोई मनुष्य जो कुछ कहे, उसे बिना विचारे, बिना तर्क किये, बिना उसका विश्लेषण किये निगल जाना सर्वथा दूसरी बात। एक अफवाह चारों ओर फैल रही है और वह यह कि अमेरिका और इंग्लैण्ड में जो कुछ काम मैंने किया है, उसमें थियोसॉफिस्टों ने मेरी सहायता की है। मैं तुम लोगों को स्पष्ट शब्दों में बता देना चाहता हूँ कि इसका प्रत्येक शब्द गलत है, प्रत्येक शब्द झूठ है। हम लोग इस जगत् में उदार भावों एवं भिन्न मतवालों के प्रति सहानुभूति के सम्बन्ध में बड़ी लम्बी-चौड़ी बातें सुना करते हैं। यह है तो बहुत अच्छी बात, पर कार्यत हम देखते हैं कि जब कोई मनुष्य किसी दूसरे मनुष्य की सब बातों में विश्वास करता है, केवल तभी तक वह उससे सहानुभूति पाता है, पर ज्यों ही वह किसी विषय में उससे भिन्न विचार रखने का साहस करता है, त्यों ही वह सहानुभूति गायब हो जाती है, वह प्रेम खत्म हो जाता है। फिर, कुछ ऐसे भी लोग हैं, जिनका अपना अपना स्वार्थ रहता है। और यदि किसी देश में ऐसी कोई बात हो जाय, जिससे उनके स्वार्थ में कुछ घक्का लगता हो, तो उनके हृदय में इतनी ईर्ष्या और घृणा उत्पन्न हो जाती है कि वे उस समय क्या कर डालेंगे, कुछ कहा नहीं जा सकता। यदि हिन्दू अपने घरों को साफ करने की चेष्टा करते हो, तो इससे ईसाई मिशनरियों का क्या बिगड़ता है? यदि हिन्दू प्राणपण से अपना सुधार करने का प्रयत्न करते हो, तो इसमें ब्राह्मणसमाज और अन्यान्य सुधारसंस्थाओं का क्या जाता है? ये लोग हिन्दुओं के सुधार के विरोध में क्यों खड़े हो? ये लोग इस आन्दोलन के प्रबलतम शत्रु क्यों हो? क्यों?—यही मेरा प्रश्न है। मेरी समझ में तो उनकी घृणा और ईर्ष्या की मात्रा इतनी अधिक है कि इस विषय में उनसे किसी प्रकार का प्रश्न करना भी सर्वथा निरर्थक है।

आज से चार बर्य पहले जब मैं अमेरिका जा रहा था—साठ समुद्र पार, बिना किसी परिचय-पत्र के बिना किसी ज्ञान-गुरुवान के एक घनहीन मित्रहीन अज्ञात सन्नाही के रूप में—तब मैंने बियोर्त्सॉफ़िस्टो सोसायटी के नेता से मेंट की। स्वभावतः मैंने सोचा था कि जब ये अमेरिकावासी हैं और भारत-भक्त हैं तो सम्भवतः अमेरिका के किसी सञ्चन के नाम मुझे एक परिचय-पत्र दे देंगे। किन्तु जब मैंने उनके पास जाकर इस प्रकार के परिचय-पत्र के लिए प्रार्थना की तो उन्होंने पूछा “क्या आप हमारी सोसायटी के सदस्य बनोगे? मैंने उत्तर दिया ‘नहीं मैं किस प्रकार आपकी सोसायटी का सदस्य हो सकता हूँ? मैं तो आपके अधिकांश सिद्धांतों पर विपक्ष गृही करता।’ उन्होंने कहा “तब मुझे खेप है मैं आपके लिए कुछ भी नहीं कर सकता। क्या यही मेरे लिए रास्ता बना देना था? जो हो मैं अपने कतिपय मद्रासी मित्रों की सहायता से अमेरिका गया। उन मित्रों में से अनेक यहाँ पर उपस्थित हैं, केवल एक ही अनुपस्थित है, म्यामाबीस सुब्रह्मण्य अम्पर जिनके प्रति अपनी परम इतच्छता प्रकट करना खेप है। उनमें प्रतिभासाक्षी पुरुष की अस्तुर्वृष्टि विद्यमान है। इस जीवन में मेरे सञ्च मित्रों में से वे एक हैं वे भारत माता के सच्चे सपूत हैं। अस्तु, बर्म-महासभा के कई मास पूर्व ही मैं अमेरिका पहुँच गया। मेरे पास रुपये बहुत कम थे और वे खीझ ही समाप्त हो गये। इधर बाबा भी जा गया और मेरे पास वे सिर्फ़ गरमी के कपड़े। उस बोर शीतप्रवास देख भ मैं आश्चर्य क्या करूँ यह कुछ सूझता न था। यदि मैं मार्ग में भीक माँगने लगता तो परिणाम यही होता कि मैं जेक भेज दिया जाता। उस समय मेरे पास केवल कुछ ही डांहर बचे थे। मैंने अपने मद्रासवासी मित्रों के पास तार भेजा। वह बात बियोर्त्सॉफ़िस्टो को मालूम हो गयी और उनमें से एक ने लिखा अब शीतान शीत ही मर जायगा ईस्वर की इन्सा से बचना ही तुम्हा। बका टली! ता क्या यही मेरे लिए रास्ता बना देना था? मैं ये बातें इस समय कहता नहीं चाहता था किन्तु मेरे बेशकाशी यह सब जानने के इच्छुक थे अतः कहनी पड़ी। तब तीन बपों तक इस सम्बन्ध में एक शब्द भी मैंने मुँह से नहीं निकाला। चुपचाप रहता ही मेरा मूलमन रहा किन्तु आज ये बातें मुँह से निकल पड़ी। पर बात यहाँ पर पूरी नहीं हो जाती। मैं बर्म-महासभा में कई बियोर्त्सॉफ़िस्टों को भेजा। मैंने उनसे बातचीत करने और मिलने-जुलने की बिष्टा की। उन लोगों ने जिस अज्ञाना धरी दृष्टि से मेरी ओर देखा वह आज भी मरी गडकों पर नाच रही है—मातो वह कह रही थी “यह कहाँ का धुत्र कीड़ा यहाँ बेवताओं के बीच आ गया? मैं पूछता हूँ क्या यहाँ मेरे लिए रास्ता बना देना था? हाँ तो बर्म-महासभा से मेरा बहुत माथ तथा मप हो गया और तब से मेरे ऊपर अत्यधिक कार्य भार आ गया। पर प्रत्येक स्वान

पर इन लोगों ने मुझे दवाने की चेष्टा की। थियोसॉफिकल सोसायटी के मदस्यो को मेरे व्याख्यान सुनने की मनाही कर दी गयी। यदि वे मेरी वक्तृता सुनने आते, तो वे सोसायटी की सहानुभूति खो देते, क्योंकि इस सोसायटी के गुप्त (एसोटेरिक) विभाग का यह नियम ही है कि जो मनुष्य उक्त विभाग का सदस्य होता है, उसे केवल कुयमी और मोरिया (वे जो भी हों) के पाम से ही शिक्षा ग्रहण करनी पडती है—अवश्य इनके दृश्य प्रतिनिधि, मिस्टर जज और मिमेज़ वेसेन्ट से। अत उक्त विभाग के सदस्य होने का अर्थ यह है कि मनुष्य अपना स्वावीन विचार विल्कुल छोड़कर पूर्ण रूप से इन लोगों के हाथ में आत्मसमर्पण कर दे। निश्चय ही मैं ये सब बातें नहीं कर सकता था, और जो मनुष्य ऐसा करे, उसे मैं हिन्दू कह भी नहीं सकता। मेरे हृदय में स्वर्गीय मिस्टर जज के लिए बड़ी श्रद्धा है। वे गुणवान, उदार, सरल और थियोसॉफिस्टो के योग्यतम प्रतिनिधि थे। उनमें और श्रीमती वेसेन्ट में जो विरोध हुआ था, उसके सम्बन्ध में कुछ भी राय देने का मुझे अधिकार नहीं है, क्योंकि दोनों ही अपने अपने 'महात्मा' की सत्यता का दावा करते हैं। और यहाँ आश्चर्य की बात तो यह है कि दोनों एक ही 'महात्मा' का दावा करते हैं। ईश्वर जाने, सत्य क्या है—वे ही एकमात्र निर्णायक हैं। और जब दोनों पक्षों में प्रमाण की मात्रा बराबर है, तब ऐसी अवस्था में किसी भी पक्ष में अपनी राय प्रकट करने का किसी को अधिकार नहीं।

हाँ, तो इस प्रकार उन लोगों ने समस्त अमेरिका में मेरे लिए मार्ग प्रशस्त किया। पर वे यही पर नहीं रुके, वे दूसरे विरोधी पक्ष—ईसाई मिशनरियों—से जा मिले। इन ईसाई मिशनरियों ने मेरे विरुद्ध ऐसे ऐसे भयानक झूठ गढ़े, जिनकी कल्पना तक नहीं की जा सकती। यद्यपि मैं उस परदेश में अकेला और मित्रहीन था, तथापि उन्होंने प्रत्येक स्थान में मेरे चरित्र पर दोषारोपण किया। उन्होंने मुझे प्रत्येक मकान से बाहर निकाल देने की चेष्टा की, और जो भी मेरा मित्र बनता, उसे मेरा शत्रु बनाने का प्रयत्न किया। उन्होंने मुझे भूखो मार डालने की कोशिश की, और यह कहते मुझे दुःख होता है कि इस काम में मेरे एक भारतवासी भाई का भी हाथ था। वे भारत में एक सुधारक दल के नेता हैं। ये सज्जन प्रतिदिन घोषित करते हैं कि 'ईसा भारत में आये हैं।' तो क्या इसी प्रकार ईसा भारत में आयेंगे? क्या इसी प्रकार भारत का सुधार होगा? इन सज्जन को मैं अपने बचपन से ही जानता था, ये मेरे परम मित्र भी थे। जब मैं उनसे मिला, तो बड़ा ही प्रसन्न हुआ, क्योंकि मैंने बहुत दिनों से अपने किसी देशभाई को नहीं देखा था। पर उन्होंने मेरे प्रति ऐसा व्यवहार किया। जिस दिन वर्म-महासभा ने मुझे सम्मानित किया, जिस दिन शिकागो में मैं लोकप्रिय हो गया, उसी दिन से

आज से चार वर्ष पहले जब मैं अमेरिका जा रहा था—घात समुद्र पार, बिना किसी परिचय-पत्र के बिना किसी आग-पहचान के एक अनजान मित्रहीन अज्ञात संध्यासी के रूप में—तब मैंने बियोसॉफिस्टा सोसायटी के नेता से मेंट की। स्वभावतः मैंने सोचा था कि जब ये अमेरिकावासी हैं और भारत भक्त हैं, तो सम्भवतः अमेरिका के किसी राजन के नाम मुझे एक परिचय-पत्र दे देंगे। किन्तु जब मैंने उनके पास जाकर इस प्रकार के परिचय-पत्र के लिए प्रार्थना की तो उन्होंने पूछा “क्या आप हमारी सोसायटी के सदस्य बनोगे? मैंने उत्तर दिया “नहीं मैं किस प्रकार आपकी सोसायटी का सदस्य हो सकता हूँ? मैं तो आपके अधिकांश सिद्धान्तों पर विश्वास नहीं करता। उन्होंने कहा ‘तब मुझे खेद है मैं आपके लिए कुछ भी नहीं कर सकता। क्या यही मेरे लिए रास्ता बना देना था? जो हो मैं अपने कतिपय मराठी मित्रों की सहायता से अमेरिका गया। उन मित्रों में से अनेक यहाँ पर उपस्थित हैं केवल एक ही अनुपस्थित है, म्यायाशीव सुब्रह्मण्य यम्बर जिन्होंने प्रति अपनी परम हताशता प्रकट करना खेप है। उनमें प्रतिभाशाली पुरुष की अन्तर्वृष्टि विद्यमान है। इस जीवन में मेरे सच्चे मित्रों में से वे एक हैं वे भारत माता के सच्चे सपूत हैं। अस्तु, धर्म-महासभा के कई मास पूर्व ही मैं अमेरिका पहुँच गया। मेरे पास रुपये बहुत कम थे और वे शीघ्र ही समाप्त हो गये। इधर जाड़ा भी आ गया और मेरे पास वे सिर्फ़ गरमी के कपड़े। उस घोर शीतप्रधान रोग में मैं आतिर क्या करूँ यह कुछ सूझता न था। यदि मैं मार्ग में भीड़ मोकने लगना तो परिणाम यही होता कि मैं जेल भेज दिया जाता। उस समय मेरे पास केवल कुछ ही डाक्टर बचे थे। मैंने अपने मराठवासी मित्रों के पास तार भेजा। यह बात बियोसॉफिस्टा को मालूम हो गयी और उनमें से एक ने लिखा अब घातान सीधे ही मर जायगा ईस्वर की कृपा से अच्छा ही हुआ। बला टली! तो क्या यही मेरे लिए रास्ता बना देना था? मैं ये बातें इस समय कहना नहीं चाहता था किन्तु मेरे देहावासी यह सब जानने के इच्छुक थे अब कहनी पड़ी। मत तीन बयों तक इस सम्बन्ध में एक शब्द भी मैंने मुँह से नहीं निकाला। चुपचाप रहना ही मेरा मूलमंत्र रहा किन्तु आज ये बात मुँह से निकल पड़ी। पर बात यही पर पूरी नहीं हो जाती। मैंने धर्म-महासभा में कई बियोसॉफिस्टा को भेजा। मैंने जलसे बातचीत करने और मिलने-जुलने की अप्ना की। उन लोगों ने जिस अजाना भरी दृष्टि से मेरी ओर देखा वह आज भी मेरी नज़रों पर गाढ़ रही है—यानी वह कह रही थी “यह कहाँ का दुष्ट कौतूहल यहाँ देखतारों के बीच आ गया? मैं पूछता हूँ क्या यहाँ मेरे लिए रास्ता बना देना था? हाँ तो धर्म-महासभा में मेरा बहुत नाम तथा पत्र हो गया और तब से मेरे ऊपर अत्यधिक कार्य भार आ गया। पर प्रत्येक तबान

सबका दास बना सके। मैं उन्हीं महापुरुष के श्री चरणों को अपने मस्तक पर धारण किये हूँ। वे ही मेरे आदर्श हैं—मैं उन्हीं आदर्श पुरुष के जीवन का अनुकरण करने की चेष्टा करूँगा। सबका सेवक बनकर ही एक हिन्दू अपने को उन्नत करने की चेष्टा करता है। उसे इसी प्रकार, न कि विदेशी प्रभाव की सहायता से, सर्वसाधारण को उन्नत करना चाहिए। बीस वर्ष की पश्चिमी सम्यता मेरे मन में उम मनुष्य का दृष्टान्त उपस्थित कर देती है, जो विदेश में अपने मित्र को भूखा मार डालना चाहता है। क्यों?—केवल इसीलिए कि उसका मित्र लोकप्रिय हो गया है और उसके विचार में वह मित्र उसके धनोपार्जन में बाधक होता है। और असल, सनातन हिन्दू धर्म के उदाहरणस्वरूप हैं ये दूसरे व्यक्ति, जिनके सम्बन्ध में मैंने अभी कहा है। इमसे विदित हो जायगा कि सच्चा हिन्दू धर्म किस प्रकार कार्य करता है। हमारे इन सुधारकों में से एक भी, ऐसा जीवन गठन करके दिखाये तो सही जो एक पैरिया की भी सेवा के लिए तत्पर हो। फिर तो मैं उसके चरणों के समीप बैठकर शिक्षा ग्रहण करूँ, पर हाँ, उसके पहले नहीं। लम्बी-चौड़ी बातों की अपेक्षा थोड़ा कुछ कर दिखाना लाख गुना अच्छा है।

अब मैं मद्रास की समाज-सुधारक समितियों के बारे में कुछ कहूँगा। उन्होंने मेरे साथ बड़ा सदय व्यवहार किया है। उन्होंने मेरे लिए अनेक मधुर शब्दों का प्रयोग किया है और मुझे बताया है कि मद्रास और बंगाल के समाज-सुधारकों में बड़ा अन्तर है। मैं उनसे इस बात में सहमत हूँ। मैंने अक्सर तुम लोगों से कहा है, और यह तुम लोगों में से बहुतों को याद भी होगा कि मद्रास इस समय बड़ी अच्छी अवस्था में है। बंगाल में जैसी क्रिया-प्रतिक्रिया चल रही है, वैसी मद्रास में नहीं है। यहाँ पर धीरे धीरे स्थायी रूप से सब विषयों में उन्नति हो रही है, यहाँ पर समाज का क्रमशः विकास हो रहा है, किसी प्रकार की प्रतिक्रिया नहीं। बंगाल में कहीं कहीं कुछ कुछ पुनरुत्थान हुआ है, पर मद्रास में यह पुनरुत्थान नहीं है, यह है समाज की स्वाभाविक उन्नति। अतएव दोनों प्रदेशों के निवासियों की विभिन्नता के सम्बन्ध में समाज-सुधारक जो कुछ कहते हैं, उनसे मैं सर्वथा सहमत हूँ। परन्तु एक विभिन्नता और है, जिसे वे नहीं समझते। इन सस्थाओं में से कुछ मुझे डराकर अपना सदस्य बनाना चाहती हैं। ये लोग ऐसा करें, यह एक आश्चर्यजनक बात है। जो मनुष्य अपने जीवन के चौदह वर्षों तक लगातार फाकाकशी का मुकाबला करता रहा हो, जिसे यह भी न मालूम रहा हो कि दूसरे दिन का भोजन कहाँ से आयेगा, सोने के लिए स्थान कहाँ मिलेगा, वह इतनी सरलता से धमकाया नहीं जा सकता। जो मनुष्य बिना कपड़ों के और बिना यह जाने कि दूसरे समय भोजन कहाँ से मिलेगा, उस स्थान पर रहा हो, जहाँ का तापमान शून्य से भी तीस-



उमका स्वर बरक मया और छिने छिने मुझे हानि पहुँचाने में उन्होंने कोई कसर छठ नहीं रखी। मैं पूछता हूँ क्या इसी तरह ईसा भारतवर्ष में आयेंगे? क्या बीस वर्ष ईसा की उपासना कर उन्होंने यही शिक्षा पाई है? हमारे ये बड़े बड़े मुबारकमन कहते हैं कि ईसाई धर्म और ईसाई सोम भारतवासियों को उन्नत बनायेंगे। तो क्या वह इसी प्रकार होगा? यदि उक्त सज्जन को इसका एक घण्टाहरण किया जाय तो निस्सन्देह स्थिति कोई आशाजनक प्रतीत नहीं होती।

एक बात और। मैंने समाज-मुबारकों के मुसपत्र में पढ़ा था कि मैं शूद्र हूँ और मुझसे पूछा गया था कि एक शूद्र को संन्यासी होने का क्या अधिकार है? तो इसपर मेरा उत्तर यह है कि मैं उन महापुरुष का बंधुधर हूँ जिनके चरमकर्मकों पर प्रत्येक ब्राह्मण 'ममाम बर्मराजाय चित्रगुप्ताय नमः' उच्चारण करते हुए पुण्याब्धि प्रदान करता है और जिनके ब्रह्म विभूत शक्ति हैं। यदि अपने पुत्रों पर विश्वास हो तो इन समाज-मुबारकों को जान सेना चाहिए कि मेरी जाति में पुराने जमाने में क्या सेवाओं के अतिरिक्त कई सहायियों तक जाये भारतवर्ष का शासन किया जा। यदि मेरी जाति की मजता छोड़ दी जाय तो भारत की वर्तमान सम्यता का क्या सेव रहैया? अकेले बंगाल में ही मेरी जाति में सबसे बड़े ब्राह्मणिक सबसे बड़े कवि सबसे बड़े इतिहासज्ञ सबसे बड़े पुण्यतत्त्ववेत्ता और सबसे बड़े धर्मप्रचारक उत्पन्न हुए हैं। मेरी ही जाति ने वर्तमान समय के सबसे बड़े वैज्ञानिकों से भारतवर्ष को विभूत किया है। इन निन्दकों को बोझ अपने देश के इतिहास का तो ज्ञान प्राप्त करना या ब्राह्मण अभिय तथा वैश्य इन तीनों वर्गों के सम्बन्ध में ज्ञान अध्ययन तो करना या ज्ञान यह तो जानना या कि तीनों ही वर्गों को संन्यासी होने और देश के अध्ययन करने का समाज अधिकार है। ये बातें मैंने जो ही प्रसंगवत्त कह दीं। ये जो मुझे शूद्र कहते हैं इसकी मुझे तनिक भी पीडा नहीं। मेरे पूर्वजों ने शरीरों पर जो अत्याचार किया था इससे उसका कुछ परिपोष हो जायगा। यदि मैं पैरिया (नाथ जाय्याल) होता तो मुझे और भी आनन्द आता क्योंकि मैं उन महापुरुष का शिष्य हूँ जिन्होंने सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण होते हुए भी एक पैरिया (जाय्याल) के घर को साफ करन की अपनी इच्छा प्रकट की थी। अवश्य यह इस पर सहमत हुआ नहीं—और मन्त्र हीना भी कैसे? एक तो ब्राह्मण फिर उस पर संन्यासी के आकर घर साफ करवे इस पर क्या वह कभी राजी हो सकता था? निदान एक दिन आभी पण्ड को उठकर बुद्ध रूप से उन्होंने उस पैरिया के घर में प्रवेश किया और उसका पात्राणा साफ कर दिया उन्होंने अपने कर्मों सम्ये बालों से उस स्वाम को पोंछा बासा। और यह काम वे कपाठार कई दिनों तक करते रहे, ताकि वे अपने की

सवका दास बना सके। मैं उन्हीं महापुरुष के श्री चरणों को अपने मस्तक पर धारण किये हूँ। वे ही मेरे आदर्श हैं—मैं उन्हीं आदर्श पुरुष के जीवन का अनुकरण करने की चेष्टा करूँगा। सवका सेवक बनकर ही एक हिन्दू अपने को उन्नत करने की चेष्टा करता है। उसे इसी प्रकार, न कि विदेशी प्रभाव की सहायता से, सर्वसाधारण को उन्नत करना चाहिए। बीस वर्ष की पश्चिमी सम्यता मेरे मन में उस मनुष्य का दृष्टान्त उपस्थित कर देती है, जो विदेश में अपने मित्र को भूखा मार डालना चाहता है। क्यों?—केवल इसीलिए कि उसका मित्र लोकप्रिय हो गया है और उसके विचार में वह मित्र उसके धनोपार्जन में बाधक होता है। और असल, सनातन हिन्दू धर्म के उदाहरणस्वरूप है ये दूसरे व्यक्ति, जिनके सम्बन्ध में मैंने अभी कहा है। इससे विदित हो जायगा कि सच्चा हिन्दू धर्म किस प्रकार कार्य करता है। हमारे इन सुधारकों में से एक भी, ऐसा जीवन गठन करके दिखाये तो सही जो एक पैरिया की भी सेवा के लिए तत्पर हो। फिर तो मैं उसके चरणों के समीप बैठकर शिक्षा ग्रहण करूँ, पर हाँ, उसके पहले नहीं। लम्बी-चौड़ी बातों की अपेक्षा थोड़ा कुछ कर दिखाना लाख गुना अच्छा है।

अब मैं मद्रास की समाज-सुधारक समितियों के बारे में कुछ कहूँगा। उन्होंने मेरे साथ बड़ा सदय व्यवहार किया है। उन्होंने मेरे लिए अनेक मधुर शब्दों का प्रयोग किया है और मुझे बताया है कि मद्रास और बंगाल के समाज-सुधारकों में बड़ा अन्तर है। मैं उनसे इस बात में सहमत हूँ। मैंने अक्सर तुम लोगों से कहा है, और यह तुम लोगों में से बहुतों को याद भी होगा कि मद्रास इस समय बड़ी अच्छी अवस्था में है। बंगाल में जैसी क्रिया-प्रतिक्रिया चल रही है, वैसी मद्रास में नहीं है। यहाँ पर धीरे धीरे स्थायी रूप से सब विषयों में उन्नति हो रही है, यहाँ पर समाज का क्रमशः विकास हो रहा है, किसी प्रकार की प्रतिक्रिया नहीं। बंगाल में कहीं कहीं कुछ कुछ पुनरुत्थान हुआ है, पर मद्रास में यह पुनरुत्थान नहीं है, यह है समाज की स्वाभाविक उन्नति। अतएव दोनों प्रदेशों के निवासियों की विभिन्नता के सम्बन्ध में समाज-सुधारक जो कुछ कहते हैं, उनसे मैं सर्वथा सहमत हूँ। परन्तु एक विभिन्नता और है, जिसे वे नहीं समझते। इन सस्थाओं में से कुछ मुझे डराकर अपना सदस्य बनाना चाहती हैं। ये लोग ऐसा करें, यह एक आश्चर्यजनक बात है। जो मनुष्य अपने जीवन के चौदह वर्षों तक लगातार फाकाकशी का मुकाबला करता रहा हो, जिसे यह भी न मालूम रहा हो कि दूसरे दिन का भोजन कहाँ से आयेगा, सोने के लिए स्थान कहाँ मिलेगा, वह इतनी सरलता से घमकाया नहीं जा सकता। जो मनुष्य बिना कपड़ों के और बिना यह जाने कि दूसरे समय भोजन कहाँ से मिलेगा, उस स्थान पर रहा हो, जहाँ का तापमान शून्य से भी तीस-

द्वितीय बम था। वह भाग्य में दूनी गणना में नहीं। दरमया या गणना। परी परी  
 बना है जो मैं उनमें नहीं।—युद्ध में जानी पाई। दुःख है। मेरा पीड़ा निम्न का  
 अनुभव भी है और मेरे पास गणना के लिए एक गणना है जो मैं बिना किसी दर  
 के बिना भविष्य की भिन्ना विषय को दूंगा। गुणवत्ता में मैं नहीं। वि मैं  
 स्वयं उनमें नहीं। वह कर गुणवत्ता है। वे भाग केवल इतर उतर भाग गुणवत्ता  
 बनाया पाता है। और मैं जानता हूँ। आपण गुणवत्ता। हम लोग का मतभेद है  
 केवल गुणवत्ता की प्रमाणा में। उनकी प्रमाणा विभागात्मक है और मेरी मपर  
 मान्यता। मैं गुणवत्ता में विचारण नहीं। बनाया मैं विचारण करता हूँ। सामाजिक  
 उपरति में। मैं जाने को ईश्वर के म्यात्र पर प्रविष्टि कर जाने गनाय व लोगों  
 के गिर पर यह उल्लेख मझे का साह्य नहीं। कर गणना वि तुम्हें इनी भवि  
 पसना हागा कुमरी लग्य नहीं। मैं ठा गिने उग गिणती की भाँति हागा भाह्य  
 हूँ जो राम के मंगु भाँति के गणय जाने मोगसामग्यर योड़ा बाय साकर गणु  
 हो गया थी। परी मेरा भाव है। यह अद्भुत चाल-वीर्यमूर्ति। यह युय युग से  
 कार्य करता आ रहा है। राष्ट्रीय जीवन का यह अद्भुत प्रगत हम लोगों के सम्मुख  
 बा रहा है। जीवन जानता है। जीवन साह्यपूर्वक बत सतना है कि यह अद्भुत है या  
 बुद्ध और या विग प्रगत जोगा? हवाओं पटमायक उमरे चारा और  
 उपरिपत हातर उग एक विगिष्ट प्रगत की मृति दरर बनी उमरी मति की  
 मन्द और बनी उम तीव्र कर देने है। उमर वेग को नियमित करने का जीवन  
 साह्य कर सतना है? हमारा काम तो एक ही। आर बुद्धि न रत केवल काम  
 करत जाना है। वीर्य वि पीता में बहा है। राष्ट्रीय जीवन को जिस ईपत की  
 अन्तर्गत है। इत जामी बम बहु अरत इन व उपरति करता जायगा। कोर् उगकी  
 उपरति का मार्ग निर्दिष्ट नहीं कर सतना। हमारे समाज में बहुत सी बुद्धियाँ हैं  
 पर इस तरह बुद्धियाँ तो हमारे समाजों में भी हैं। यहाँ की मूर्ति विषयार्थों के  
 ज्ञान से कभी कभी तर होती है। तो पाश्चात्य देश का बायुमन्त्रक अविवाहित  
 स्त्रियों की आहा से मर्य रहता है। यहाँ का जीवन प्रदीवी की जेटी से अर्जित  
 है। तो यहाँ पर लोग विनामिता के विषय व जीवनमृत हो रहे हैं। यहाँ पर लोग  
 इसलिये आत्महत्या करना चाहते हैं कि उनके पास खाने को कुछ नहीं है। तो यहाँ  
 पाषाण (मौन) की प्रचुरता के कारण लोग आत्महत्या करते हैं। बुद्धियाँ सभी  
 बन्द हैं। यह तो पुराने पाठ-लोग की तरह है। यदि उसे पीर से हटाओ तो वह  
 छिर में बसा जाता है। यहाँ से हटाने पर वह बूझती जगह भाग जाता है। वह  
 उसे केवल एक जगह से बूझती बन्द ही भगा सकते हैं। वे बन्धो बुद्धियाँ के  
 निराकरण की अपेक्षा करना ही सही उपाय नहीं है। हमारे वर्तमानस्थलों में विद्या

है कि अच्छे और बुरे का नित्य सम्बन्ध है। वे एक ही मिक्के के दो पहलू हैं। यदि तुम्हारे पाम एक है, तो दूसरा अवश्य रहेगा। जब ममूद्र में एक स्थान पर लहर उठती है तो दूसरे स्थान पर गड्ढा होना अनिवार्य है। इतना ही नहीं, सारा जीवन ही दोपयुक्त है। बिना किसी की हत्या किये एक साँस तक नहीं ली जा सकती, बिना किसी का भोजन छीने हम एक कोर भी नहीं खा सकते। यही प्रकृति का नियम है, यही दार्शनिक सिद्धान्त है।

इसलिए हमें केवल यह समझ लेना होगा कि सामाजिक दोषों के निराकरण का कार्य उतना वस्तुनिष्ठ नहीं है, जितना आत्मनिष्ठ। हम कितनी भी लम्बी चौड़ी डींग क्यों न हाँके समाज के दोषों को दूर करने का कार्य जितना स्वयं के लिए शिक्षात्मक है, उतना समाज के लिए वास्तविक नहीं। समाज के दोष दूर करने के सम्बन्ध में सबसे पहले इस तत्त्व को समझ लेना होगा, और इसे समझकर अपने मन को शान्त करना होगा, अपने खून की चढती गरमी को रोकना होगा, अपनी उत्तेजना को दूर करना होगा। ससार का इतिहास भी हमें यह बताता है कि जहाँ कहीं इस प्रकार की उत्तेजना से समाज के मुघार करने का प्रयत्न हुआ है, वहाँ केवल यही फल हुआ कि जिम उद्देश्य से वह किया गया था, उस उद्देश्य को ही उसने विफल कर दिया। दासत्व को नष्ट कर देने के लिए अमेरिका में जो लड़ाई लड़ी थी, उसकी अपेक्षा, अधिकार और स्वतंत्रता की स्थापना के लिए किसी बड़े सामाजिक आन्दोलन की कल्पना ही नहीं की जा सकती। तुम सभी लोग उसे जानते हो। पर उसका फल क्या हुआ? यही कि आजकल के दास इस युद्ध के पूर्व के दासों की अपेक्षा सौगुनी अधिक बुरी दशा को पहुँच गये। इस युद्ध के पूर्व ये बेचारे नीग्रो कम से कम किसी की सम्पत्ति तो थे, और सम्पत्ति होने के नाते इनकी देखभाल की जाती थी कि ये कहीं दुर्बल और बेकाम न हो जायें। पर आज तो ये किसी की सम्पत्ति नहीं हैं, इनके जीवन का कुछ भी मूल्य नहीं है। मामूली बातों के लिए ये जीते जी जला दिये जाते हैं, गोली से उड़ा दिये जाते हैं, और इनके हत्यारों पर कोई कानून ही लागू नहीं होता। क्यों? इसीलिए कि ये 'निगर' हैं, मानो ये मनुष्य तो क्या पशु भी नहीं हैं! समाज के दोषों को प्रबल उत्तेजनापूर्ण आन्दोलन द्वारा अथवा कानून के बल पर सहसा हटा देने का यही परिणाम होता है। इतिहास इस बात का साक्षी है—इस प्रकार का आन्दोलन चाहे किसी भले उद्देश्य से ही क्यों न किया गया हो। यह मेरा प्रत्यक्ष अनुभव है। प्रत्यक्ष अनुभव से ही मैंने यह सीखा है। यही कारण है कि मैं केवल दोष ही देखने-वाली इन सस्थाओं का सदस्य नहीं हो सकता। दोषारोपण अथवा निन्दा करने की भला आवश्यकता क्या? ऐसा कौन सा समाज है, जिसमें दोष न हो? सभी

समाज में तो बोध है। यह तो सभी कोई जानता है। आज का एक बच्चा भी इसे जानता है वह भी समाज पर टूटा होकर हमारे सामने हिन्दू धर्म की मयानक बुराइयों पर एक लम्बा भाषण दे सकता है। जो भी अधिभित विदेशी पृथ्वी की प्रवृत्ति करता हुआ भारत में पहुँचता है वह रेल पर से भारत को उड़ती मजर से बेस मर भेठा है और बस फिर भारत की मयानक बुराइयों पर बड़ा धारगमित व्याख्याय देने लगता है। हम जानते हैं कि यहाँ बुराइयें हैं। पर बुराई तो हर कोई बिधा सकता है। मानव समाज का सच्चा हितैषी तो वह है जो इन कठिनाइयों से बाहर निकलने का उपाय बताये। यह तो इस प्रकार है कि कोई एक शार्शनिक एक बूबत हुए कड़क को गर्भर भाव से उपदेश दे रहा था तो कड़के ने कहा 'पहले मुझ पानी से बाहर निकलिये फिर उपदेश दीजिये।' बस ठीक इसी तरह भारतवर्षी भी कहते हैं 'इम सोर्गो ने बहुत व्याख्याय सुन लिये बहुत सी संस्थाएँ देख ली बहुत से पत्र पत्र लिये अब तो ऐसा मनुष्य चाहिए जो अपने हाथ का सहारा दे हम इन पुत्रों के बाहर निकाले। कहाँ है वह मनुष्य जो हमसे आस्थिक प्रेम करता है जो हमारे प्रति सच्ची सहानुभूति रखता है? बस उही जायमी की हमें बकरत है। यही पर मेरा इन समाज-सुधारक आलोचना से सर्वथा मतभेद है। आज ही बर्ष हो गये ये आलोचन बस रहे हैं पर सिवाम निष्ठा और विद्वेषपूर्ण साहित्य की रचना के इनसे और क्या काम हुआ है? ईस्वर करता यहाँ ऐसा न होता। इन्होंने पुराने समाज की कठोर आलोचना की है उस पर तीव्र दोषारोपण किया है उसकी कटु निन्दा की है और अन्त में पुराने समाज ने भी इनके समाज स्वर उठाकर ईंट का जबाब ईंट से दिया है। इसके फलस्वरूप प्रत्येक भारतीय भाषा में ऐसे साहित्य की रचना हो गयी है, जो पाठि के लिए, बेस के लिए कलकलस्वरूप है। क्या यही सुधार है? क्या इसी तरह बेस गौरव के पत्र पर बबसा? यह बोध है किसका?

इसके बाद एक और महत्वपूर्ण विषय पर हमें विचार करना है। भारतवर्ष में हमारा शासन सब राजाओं द्वारा हुआ है राजाओं ने ही हमारे सब काम बनाने हैं। अब वे राजा नहीं हैं और इस विषय में अपसर होने के लिए हमें मार्ग बिलालनेवाला अब कोई नहीं रहा। सरकार साइस नहीं करती। वह तो जनमत की गति देखकर ही अपनी कार्य-प्रणाली निश्चित करती है। अपनी समस्याओं को हल कर लेनेवाला एक कल्याणकारी और प्रबल लोकमत स्थापित करने में समर्थ लगता है—काली लम्बा समय लगता है और इस बीच हमें प्रतीक्षा करनी होती। अथवा सामाजिक सुधार की सम्पूर्ण समस्या यह रूप लेती है कहाँ है वे लोग जो सुधार चाहते हैं? पहले उन्हें तैयार करो। सुधार चाहते

वाले लोग हैं कहां? कुछ थोड़े से लोग किसी बात को उचित समझते हैं और वस उसे अन्य सब पर ज़बरदस्ती लादना चाहते हैं। इन अल्पसंख्य व्यक्तियों के अत्याचार के समान दुनिया में और कोई अत्याचार नहीं। मुट्ठी भर लोग, जो सोचते हैं कि कतिपय बातें दोषपूर्ण हैं, राष्ट्र को गतिशील नहीं कर सकते। राष्ट्र में आज प्रगति क्यों नहीं है? क्यों वह जड़भावापन्न है? पहले राष्ट्र को शिक्षित करो, अपनी निजी विधायक सस्थाएँ बनाओ, फिर तो कानून आप ही आ जायेंगे। जिस शक्ति के बल से, जिसके अनुमोदन से कानून का गठन होगा, पहले उसकी सृष्टि करो। आज राजा नहीं रहे, जिस नयी शक्ति से, जिस नये दल की सम्मति से नयी व्यवस्था गठित होगी, वह लोक-शक्ति कहाँ है? पहले उसी लोक-शक्ति को सगठित करो। अतएव समाज-सुधार के लिए भी प्रथम कर्तव्य है—लोगों को शिक्षित करना। और जब तक यह कार्य सम्पन्न नहीं होता, तब तक प्रतीक्षा करनी ही पड़ेगी।

गत शताब्दी में सुधार के लिए जो भी आन्दोलन हुए हैं, उनमें से अधिकांश केवल ऊपरी दिखावा मात्र रहे हैं। उनमें से प्रत्येक ने केवल प्रथम दो वर्गों से ही सम्बन्ध रखा है, शेष दो से नहीं। विधवा-विवाह के प्रश्न से ७० प्रतिशत भारतीय स्त्रियों का कोई सम्बन्ध नहीं है। और देखो, मेरी बात पर ध्यान दो, इस प्रकार के सब आन्दोलनों का सम्बन्ध भारत के केवल उच्च वर्गों से ही रहा है, जो जनसाधारण का तिरस्कार करके स्वयं शिक्षित हुए हैं। इन लोगों ने अपने अपने घर को साफ करने एवं अग्नेजों के सम्मुख अपने को सुन्दर दिखाने में कोई कसर बाकी नहीं रखी। पर यह तो सुधार नहीं कहा जा सकता। सुधार करने में हमें चीज के भीतर, उसकी जड़ तक पहुँचाना होता है। इसीको मैं आमूल सुधार कहता हूँ। आग जड़ में लगाओ और उसे क्रमशः ऊपर उठने दो एवं एक अखंड भारतीय राष्ट्र सगठित करो।

पर यह एक बड़ी भारी समस्या है, और इसका समाधान भी कोई सरल नहीं है। अतएव शीघ्रता करने की आवश्यकता नहीं। यह समस्या तो गत कई शताब्दियों से हमारे देश के महापुरुषों को ज्ञात थी।

आजकल, विशेषतः दक्षिण में, बौद्ध धर्म और उसके अज्ञेयवाद की आलोचना करने की एक प्रथा सी चल पड़ी है। यह उन्हें स्वप्न में भी ध्यान नहीं आता कि जो विशेष दोष आजकल हमारे समाज में वर्तमान हैं, वे सब बौद्ध धर्म द्वारा ही छोड़े गये हैं। बौद्ध धर्म ने हमारे लिए यही वसीयत छोड़ी है। जिन लोगों ने बौद्ध धर्म की उन्नति और अवनति का इतिहास कभी नहीं पढ़ा, उनके द्वारा लिखी गयी पुस्तकों में हम पढ़ते हैं कि बौद्ध धर्म के इतने विस्तार का कारण था—गौतम

बुद्ध द्वारा प्रचारित अपूर्व आचार-धाम्म और उसका लोकोत्तर चरित्र। समान् बुद्धदेव के प्रति मेरी यथेष्ट भ्रष्टा-भक्ति है। पर मेरे चर्चों पर ध्यान वा बौद्ध धर्म का विस्तार उक्त महापुरुष के मठ और अपूर्व चरित्र के कारण उतना नहीं हुआ जितना बौद्धों द्वारा निर्माण किये गये बड़े बड़े मन्दिरों एवं भव्य प्रतिमाओं के कारण समग्र बेस के सम्मुख किये गये भड़कीले उत्सवों के कारण। इसी भाँति बौद्ध धर्म ने उन्नति की। इन सब बड़े बड़े मन्दिरों एवं आडम्बर भरे क्रियाकलापों के सामने चरों में हवन के लिए प्रतिष्ठित छोटे छोटे अमिच्छुण्ड ठहर स सके। पर अन्त में इन सब क्रिया कलापों में भारी अवनति हा गयी—ऐसी अवनति कि उसका वर्णन भी योक्षार्थों के सामने नहीं किया जा सकता। जो इस सम्बन्ध में जानने के इच्छुक हों वे इसे क्रिश्चि परिमाण में दक्षिण भारत के गाना प्रकार क कलाधिस्य से युक्त बड़े बड़े मन्दिरों में देख लें और बौद्धों से उत्तराधिकार के रूप में हमने केवल यही पामा।

इसके बाद महान् सुधारक श्री शंकराचार्य और उनके अनुयायियों का अन्वेषण हुआ। उस समय से आज तक इन कई सौ वर्षों में भारतवर्ष की सर्वसाधारण जनता का धीरे धीरे उस मौलिक बिस्वुद वेदान्त के धर्म की ओर जान की चेष्टा की गयी है। उन सुधारकों को बुराईयों का पूरा ज्ञान था पर उन्होंने समाज की निन्दा नहीं की। उन्होंने यह नहीं कहा कि 'जो कुछ तुम्हारे पास है वह सभी गलत है, उसे तुम फेंक दो। ऐसा कभी नहीं हो सकता था। आज मैंने पढा मेरे मित्र डाक्टर बीरोब कहते हैं कि ईसाई धर्म के प्रभाव से ३ वर्षों में यूनानी और रोमन धर्म के प्रभाव को उल्टा दिया। पर जिसने कभी यूरोप यूनान और रोम को देखा है वह ऐसा कभी नहीं कह सकता। रोमन और यूनानी धर्मों का प्रभाव प्रोटेस्टेन्ट देशों तक में सर्वत्र व्याप्त है। प्राचीन देवता मये बेस में वर्तमान है—केवल नाम भर बदल दिये गये हैं। बैबियाँ लो हो गयी हैं 'भेरी' देवता हो गये हैं 'सन्त' (saints) और अनुष्ठानों ने गया गया रूप धारण कर लिया है। यहाँ तक कि प्राचीन उपाधि पाटिपक्ष मैक्सिमस पूर्ववत् ही विद्यमान है। अतएव अज्ञानक परिवर्तन नहीं हो सकते। शंकराचार्य और रामानुज एवं जानते थे। इसलिए उस समय प्रचलित धर्म को धीरे धीरे उन्नततम आदर्श तक पहुँचा देना ही उनके लिए एक उपाय शेष था। यदि वे बुराई प्रभाषी का सहारा लेते तो वे वाकई सिद्ध होते क्योंकि उनका धर्म का प्रभाव मठ ही है अन्म-विनासवाद। उनके धर्म

१ रोम में पुरोहित बिद्यार्थ्य के प्रबालाप्यायक इसी नाम से पुकारे जाते हैं। इसका अर्थ है—प्रधान पुरोहित। अमी पोप इसी नाम से सम्बोधित किये जाते हैं।

का मूलतत्त्व यही है कि इन सब नाना प्रकार की अवस्थाओं में से होकर आत्मा उच्चतम लक्ष्य पर पहुँचती है। अतः ये सभी अवस्थाएँ आवश्यक और हमारी सहायक हैं। भला कौन इनकी निन्दा करने का साहस कर सकता है ?

आजकल मूर्ति-पूजा को गलत बताने की प्रथा सी चल पड़ी है, और सब लोग बिना किसी आपत्ति के उसमें विश्वास भी करने लग गये हैं। मैंने भी एक समय ऐसा ही सोचा था और उसके दडस्वरूप मुझे ऐसे व्यक्ति के चरण कमलों में बैठ कर शिक्षा ग्रहण करनी पड़ी, जिन्होंने सब कुछ मूर्ति-पूजा के ही द्वारा प्राप्त किया था, मेरा अभिप्राय श्री रामकृष्ण परमहंस में है। यदि मूर्ति-पूजा के द्वारा श्री रामकृष्ण जैसे व्यक्ति उत्पन्न हो सकते हैं, तब तुम क्या पसन्द करोगे—सुधारको का धर्म, या मूर्ति-पूजा ? मैं इस प्रश्न का उत्तर चाहता हूँ। यदि मूर्ति-पूजा के द्वारा इस प्रकार श्री रामकृष्ण परमहंस उत्पन्न हो सकते हों, तो और हजारों मूर्तियों की पूजा करो। प्रभु तुम्हें सिद्धि दे। जिस किसी भी उपाय से हो सके, इस प्रकार के महापुरुषों की सृष्टि करो। और इतने पर भी मूर्ति-पूजा की निन्दा की जाती है। क्यों ? यह कोई नहीं जानता। शायद इसलिए कि हजारों वर्ष पहले किसी यहूदी ने इसकी निन्दा की थी। अर्थात् उसने अपनी मूर्ति को छोड़कर और सब की मूर्तियों की निन्दा की थी। उस यहूदी ने कहा था, यदि ईश्वर का भाव किसी विशेष प्रतीक या सुन्दर प्रतिमा द्वारा प्रकट किया जाय, तो यह भयानक दोष है, एक जघन्य पाप है, परन्तु यदि उसका अकन एक सन्दूक के रूप में किया जाय, जिसके दोनों किनारों पर दो देवदूत बैठे हैं और ऊपर बादल का एक टुकड़ा लटक रहा है, तो वह बहुत ही पवित्र, पवित्रतम होगा। यदि ईश्वर पेड़ों का रूप धारण करके आये, तो वह महापवित्र होगा, पर यदि वह गाय का रूप लेकर आये, तो यह मूर्ति-पूजा का कुसंस्कार होगा। —उसकी निन्दा करो। दुनिया का वम यही भाव है। इसीलिए कवि ने कहा है, 'हम मर्त्य जीव कितने निर्बोध हैं।' परस्पर एक दूसरे के दृष्टिकोण से देखना और विचार करना कितना कठिन है। और यही मनुष्य समाज की उन्नति में घोर विघ्नस्वरूप है। यही है ईर्ष्या, घृणा और लड़ाई-झगड़े की जड़। अरे बालको, अपरिपक्व बुद्धिवाले नासमझ लड़को, तुम लोग कभी मद्रास के बाहर तो गये नहीं, और खड़े होकर सहस्रो प्राचीन संस्कारों से नियन्त्रित तीस करोड़ मनुष्यों पर कानून चलाना चाहते हो। क्या तुम्हें लज्जा नहीं आती ? दूर हो जाओ धर्मनिन्दा के इस कुकर्म से, और पहले खुद अपना सबक सीखो। श्रद्धाहीन बालको, तुम कागज़ पर कुछ पक्तियाँ घसीट सकने में और किसी मूर्ख को पकड़कर उन्हें छपवा लेने में अपने को समर्थ समझकर सोचते हो कि तुम जगत् के शिक्षक हो, तुम्हारा मत ही भारत का जनमत है। तो



क्या ऐसी बात है? इन्हींके मैं महास के समाज-सुधारकों से कहना चाहता हूँ कि मुझमें उनके प्रति बड़ी बड़ा और प्रेम है। उनके विद्यालय हृदय उनकी स्वदेश प्रीति पीड़ित और निर्धन के प्रति उनका प्रेम के कारण ही मैं उनसे प्यार करता हूँ। किन्तु माई जैसे माई से स्नेह करता है और साथ ही उसके वीर भी बिरा बेठा है ठीक इसी तरह मैं उनसे कहता हूँ कि उनकी कार्यप्रणाली ठीक नहीं है। यह प्रणाली भारत में सौ वर्ष तक आबकारी मयी पर बहुकामयाब न हो सकी। अब हमें किसी नयी प्रणाली का सहारा लेना होगा।

क्या भारतवर्ष में कमी सुधारकों का अभाव था? क्या तुमने भारत का इतिहास पढ़ा है? रामानुज संकर, मातक चैतन्य कबीर और बाबू कौन थे? ये सब बड़े बड़े धर्माचार्य जो भारत-भयन में अत्यन्त उच्चतर नक्षत्रों की तरह एक के बाद एक उदय हुए और फिर अस्त हो गये कौन थे? क्या रामानुज के हृदय में नीच जातिवर्गों के लिए प्रेम नहीं था? क्या उन्होंने अपने सारे जीवन भर पैरिया (चाण्डाल) तक को अपने सम्प्रदाय में ले लेने का प्रयत्न नहीं किया? क्या उन्होंने अपने सम्प्रदाय में मुसलमान तक को मिला लेने की चेष्टा नहीं की? क्या मातक ने मुसलमान और हिन्दू दोनों को समान मान से शिक्षा देकर समाज में एक नयी बसन्त लाने का प्रयत्न नहीं किया? इन सबने प्रयत्न किया और उनका काम आज भी जारी है। भेद केवल इतना है कि वे आज के समाज-सुधारकों की तरह बन्नी नहीं थे वे इनके समान अपने मुँह से कमी अधिष्ठाप नहीं उतारते थे। उनके मुँह से केवल आसीर्ष्य ही निकलता था। उन्होंने कमी मर्त्सना नहीं की। उन्होंने जोयों से कहा कि जाति को सतत उन्नतिशील होना चाहिए। उन्होंने अतीत में बुद्धि बाधकर कहा "हिन्दुओं तुमने अभी तक जो किया अच्छा ही किया पर भाइयो तुम्हें अब इससे भी अच्छा करना होगा। उन्होंने यह नहीं कहा 'पहले तुम बुद्ध से और अब तुम्हें अच्छा होना होगा। उन्होंने यही कहा 'पहले तुम अच्छे से अब और भी अच्छे बनो। इससे अमीन-आसमान का झर्क पैदा हो जाता है। इन जोयों को अपनी प्रकृति के अनुसार उन्नति करनी होगी। विशेषी सत्त्वामो ने बलपूर्वक विष कृत्रिम प्रणाली को हममें प्रचलित करने की चेष्टा की है उसके अनुसार काम करना मुषा है। वह असम्भव है। जय हो प्रभु! हम जोगों की ठोड़-मरोड़कर गये सिरे से बूखे राष्ट्रों के डबि में गड़ना असम्भव है। मैं बूखी जमीनों की सामाजिक प्रणालियों की मित्या नहीं करता। वे उनके लिए अच्छी हैं पर हमारे लिए नहीं। उनके लिए जो कुछ अमृत है हमारे लिए बही विष हो सकता है। पहले यही बात सीखनी होगी। अन्य प्रकार के विज्ञान अन्य प्रकार के परम्परागत संस्कार और अन्य प्रकार के आचार्यों से उनकी वर्तमान

सामाजिक प्रथा गठित हुई है। और हम लोगो के पीछे हैं हमारे अपने परम्परागत सस्कार और हज़ारो वर्षों के कर्म। अतएव हमें स्वभावतः अपने सस्कारो के अनुसार ही चलना पड़ेगा, और यह हमें करना ही होगा।

तब फिर मेरी योजना क्या है? मेरी योजना है—प्राचीन महान् आचार्यों के उपदेशो का अनुसरण करना। मैंने उनके कार्य का अध्ययन किया है, और जिस प्रणाली से उन्होंने कार्य किया, उनके आविष्कार करने का मुझे सौभाग्य मिला। वे सब महान् समाज-संस्थापक थे। बल, पवित्रता और जीवन-शक्ति के वे अद्भुत आधार थे। उन्होंने सबसे अद्भुत कार्य किया—समाज में बल, पवित्रता और जीवन-शक्ति संचारित की। हमें भी सबसे अद्भुत कार्य करना है। आज अवस्था कुछ बदल गयी है, इसलिए कार्यप्रणाली में कुछ थोड़ा सा परिवर्तन करना होगा, वस इतना ही इससे अधिक कुछ नहीं। मैं देखता हूँ कि प्रत्येक व्यक्ति की भाँति प्रत्येक राष्ट्र का भी एक विशेष जीवनोद्देश्य है। वही उसके जीवन का केन्द्र है, उसके जीवन का प्रधान स्वर है, जिसके साथ अन्य सब स्वर मिलकर समरसता उत्पन्न करते हैं। किसी देश में, जैसे इंग्लैंड में, राजनीतिक सत्ता ही उसकी जीवन-शक्ति है। कलाकौशल की उन्नति करना किसी दूसरे राष्ट्र का प्रधान लक्ष्य है। ऐसे ही और दूसरे देशों का भी समझो। किन्तु भारतवर्ष में धार्मिक जीवन ही राष्ट्रीय जीवन का केन्द्र है और वही राष्ट्रीय जीवनरूपी संगीत का प्रधान स्वर है। यदि कोई राष्ट्र अपनी स्वाभाविक जीवन-शक्ति को दूर फेंक देने की चेष्टा करे—शताब्दियों से जिस दिशा की ओर उसकी विशेष गति हुई है, उससे मुड़ जाने का प्रयत्न करे—और यदि वह अपने इस कार्य में सफल हो जाय, तो वह राष्ट्र मृत हो जाता है। अतएव यदि तुम धर्म को फेंककर राजनीति, समाज-नीति अथवा अन्य किसी दूसरी नीति को अपनी जीवन-शक्ति का केन्द्र बनाने में सफल हो जाओ, तो उसका फल यह होगा कि तुम्हारा अस्तित्व तक न रह जायगा। यदि तुम इससे बचना चाहो, तो अपनी जीवन-शक्तिरूपी धर्म के भीतर से ही तुम्हें अपने सारे कार्य करने होंगे—अपनी प्रत्येक क्रिया का केन्द्र इस धर्म को ही बनाना होगा। तुम्हारे स्नायुओं का प्रत्येक स्पन्दन तुम्हारे इस धर्मरूपी मेरुदंड के भीतर से होकर गुज़रे।

मैंने देखा है कि 'सामाजिक जीवन पर धर्म का कैसा प्रभाव पड़ेगा', यह बिना दिखाये मैं अमेरिकावासियों में धर्म का प्रचार नहीं कर सकता था। इंग्लैंड में भी, बिना यह बताया कि 'वेदान्त के द्वारा कौन कौन से आश्चर्यजनक राजनीतिक परिवर्तन हो सकेंगे', मैं धर्म-प्रचार नहीं कर सका। इसी भाँति भारत में सामाजिक सुधार का प्रचार तभी हो सकता है, जब यह दिखा दिया जाय कि उस नयी प्रथा से

आध्यात्मिक जीवन की उन्नति में कौन सी विधायक सहायता मिलेगी। राजनीति का प्रचार करने के लिए हमें सिखाना होना कि उसका डाय हमारे राष्ट्रीय जीवन की आकांक्षा—आध्यात्मिक उन्नति—की कितनी अधिक पूर्ति हो सकेगी। इस संसार में प्रत्येक व्यक्ति को अपना अपना माप चुन लेना पड़ता है उसी भाँति प्रत्येक राष्ट्र को भी। हमारे युवा पूर्ण अपना पय निर्धारित कर लिया था और अब हमें उसीसे छेने पड़ना चाहिए—उसीके अनुसार चलना चाहिए। फिर, हमारा यह जयन भी तो उठना कोई बुरा नहीं। जब के बड़े वैतन्य का मनुष्य के बड़े ईश्वर का चिन्तन करना क्या संसार में इतनी बुरी चीज है? परलोक में कुछ वास्ता इस लोक के प्रति ठीक विरक्ति प्रबल त्याग-शक्ति एवं ईश्वर और अविनाशी आत्मा में बूढ़ विश्वास तुम लोगों में उठत विद्यमान है। क्या तुम इसे छोड़ सकते हो? नहीं तुम इसे कभी नहीं छोड़ सकते। तुम कुछ दिन भौतिकवादी होकर और भौतिकवाद की चर्चा करके मछे ही मुझमें विश्वास जमाने की चेष्टा करो पर मैं आमतो हूँ कि तुम क्या हो। तुमको छोड़ा बर्म अच्छी तरह समझा देने भर की बेर है कि तुम परम वास्तिक हो जाओगे। छोचो अपना स्वभाव मसा कैसे बचल सकते हो?

मरा भारत में किसी प्रकार का सुधार या उन्नति की चेष्टा करने के पक्ष बर्म-प्रचार आवश्यक है। भारत को समाजवादी अथवा राजनीतिक विचारों से ज्वाहित करने के पहले आवश्यक है कि उसमें आध्यात्मिक विचारों की बाढ़ का बी जाय। सर्वप्रथम हमारे उपनिषदों पुराणों और अन्य सब शास्त्रा में जो अपूर्व सत्य छिपे हुए है उन्हें इन सब ग्रन्थों के पत्रों से बाहर निकालकर, मठों की चहारदीवारियाँ भेदकर, बगो की शून्यता से दूर लाकर, कुछ सम्प्रदाय-विशेषों के हाथों से छीनकर बेस में सर्वत्र बिखेर देना होगा ताकि ये सत्य बाबालक के समान सारे देश की चारों ओर से लपेट ले—उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक सब जगह फैल जायें—हिमाक्ष से इन्द्याकुमारी और सिन्धु से ब्रह्मपुत्र तक सर्वत्र वे बचक उठें। सबसे पहले हमें यही करना होगा। सभी को इन सब शास्त्रों में निहित उपबेध सुनाने होये क्योंकि उपनिष में कहा है 'पहले इसे सुनना होया फिर ममन करना होया और उसके बाद निश्चिन्ता'। पहले लोग इन सत्यों को सुनें। और जो भी व्यक्ति अपने शास्त्र के इन महान् सत्यों को बूझने को सुनाने में

१ आत्मा वा मरे इच्छन् व्योतभ्यो मल्लभ्यो  
निश्चिन्तास्तिस्यो मीत्रेभ्यस्तमि धरुमरे बुद्धे भूते  
मते चिन्ता इदं सर्वं विदितम् ॥ बृहदारण्यक ४.५.१६॥

सहायता पहुँचायेगा, वह आज एक ऐसा कर्म करेगा, जिसके समान कोई दूसरा कर्म ही नहीं। महर्षि व्यास ने कहा है, “इम कलियुग मे मनुष्यों के लिए एक ही कर्म शेष रह गया है। आजकल यज्ञ और कठोर तपस्याओं से कोई फल नहीं होता। इस समय दान ही एकमात्र कर्म है।”<sup>१</sup> और दानों में धर्मदान, अर्थात् आध्यात्मिक ज्ञान का दान ही सर्वश्रेष्ठ है। दूसरा दान है विद्यादान, तीसरा प्राणदान और चौथा अन्नदान। इस अपूर्व दानशील हिन्दू जाति की ओर देखो! इस निर्घन, अत्यन्त निर्घन देश में लोग कितना दान करते हैं, इसकी ओर जरा नज़र डालो। यहाँ के लोग इतने अतिथिसेवी हैं कि एक व्यक्ति बिना एक कौड़ी अपने पास रखे उत्तर में दक्षिण तक यात्रा करके आ सकता है। और हर स्थान में उसका ऐसा सत्कार होगा, मानो वह परम मित्र हो। यदि यहाँ कहीं पर रोटी का एक टुकड़ा भी है, तो कोई भिक्षुक भूख से नहीं मर सकता।

इस दानशील देश में हमें पहले प्रकार के दान के लिए अर्थात् आध्यात्मिक ज्ञान के विस्तार के लिए साहसपूर्वक अग्रसर होना होगा। और यह ज्ञान-विस्तार भारतवर्ष की सीमा में ही आवद्ध नहीं रहेगा, इसका विस्तार तो सारे ससार भर में करना होगा। और अभी तक यही होता भी रहा है। जो लोग कहते हैं कि भारत के विचार कभी भारत में बाहर नहीं गये, जो सोचते हैं कि मैं ही पहला सन्धासी हूँ जो भारत के बाहर धर्मप्रचार करने गये, वे अपनी जाति के इतिहास को नहीं जानते। यह कई बार घटित हो चुका है। जब कभी भी ससार को इसकी आवश्यकता हुई, उसी समय इस निरन्तर बहनेवाले आध्यात्मिक ज्ञान-स्रोत ने ससार को प्लावित कर दिया। राजनीति सम्बन्धी विद्या का विस्तार रणभेरियों और सुसज्जित सेनाओं के बल पर किया जा सकता है। लौकिक एवं समाज सम्बन्धी विद्या का विस्तार आग और तलवारों के बल पर हो सकता है। पर आध्यात्मिक विद्या का विस्तार तो शान्ति द्वारा ही सम्भव है। जिस प्रकार चक्षु और कर्णगोचर न होता हुआ भी मृदु ओस-विन्दु गुलाब की कलियों को विकसित कर देता है, वैसे वैसे ही आध्यात्मिक ज्ञान के विस्तार के सम्बन्ध में भी समझो। यही एक दान है, जो भारत दुनिया को बार बार देता आया है। जब कभी भी कोई दिग्विजयी जाति उठी, जिसने ससार के विभिन्न देशों को एक साथ ला दिया और आपस में यातायात तथा संचार की सुविधा कर दी, त्यो ही भारत उठा और

१ इसी आशय की व्यवस्था निम्नलिखित श्लोक में भी है  
तप पर कृते युगे त्रेताया ज्ञानमुच्यते।

द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेक कलौ युगे ॥ मनुसहिता १।८६॥

उसने संसार की समस्त उपनि में अपन आध्यात्मिक ज्ञान का भाग भी प्रदान कर दिया। बुद्धदेव के जन्म के बहुत पहले में ही ऐसा होता आया है और इसके सिद्ध आज भी बाल एशिया माइनर और मलय द्वीप समूह के मौजूद हैं। अब जब महाबलघाटी विभिन्नयी धूर्तानी में जब समय के ज्ञान संसार के सब मार्गों को एक साथ ला दिया था तब भी यही बात बटी है — भारत के आध्यात्मिक ज्ञान की बाढ़ में बाहर उमड़कर संसार को प्रभावित कर लिया था। आज पाश्चात्य वैज्ञानिकों जिस सम्मता का गर्व करते हैं वह उसी फलज का अन्वेषण मात्र है। आज फिर से यही सुयोग उपस्थित हुआ है। इन्हीं की शक्ति में सारे संसार की जातियों को एकता के मूत्र में इस प्रकार बाँध दिया है, जैसे पहले कभी नहीं हुआ था। अंग्रेजों के दाताभाव और संसार के साधन संसार के एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक फैले हुए हैं। आज अंग्रेजों की प्रतिभा के कारण सारा अपूर्व रूप से एकता की ओर में बँध गया है। इस समय संसार के मित्र मित्र स्वानों में जिस प्रकार के व्यापारिक केन्द्र स्थापित हुए हैं जैसे मानव जाति के इतिहास में पहले कभी नहीं हुए थे। अतएव इस सुयोग में भारत प्रीरन उठकर बात अन्वेषण अन्वेषण रूप से जगत् को अपने आध्यात्मिक ज्ञान का बाण दे रहा है। अब इन सब मार्गों के सहारे भारत की यह मात्र राशि समस्त संसार में फैलती रहेगी। मैं जो अमेरिका गया वह मेरी या तुम्हारी इच्छा से नहीं हुआ बल्कि भारत के साम्य-विवादात्मकान् ने मुझे अमेरिका भेजा और वे ही इसी भाँति सैकड़ों आश्रमियों को संसार के अन्ध रातों में भेजेंगे। इसे दुनिया की कोई ताकत नहीं रोक सकती। अतएव तुमको भारत के बाहर भी गर्म प्रचार के लिए जाना होगा। इसका प्रचार जगत् की सब जातियों और मनुष्यों में करना होगा। पहले यही गर्म प्रचार आवश्यक है। धर्म-प्रचार करने के बाद उसके साथ ही साथ लौकिक विद्या और अन्याय्य आवश्यक विद्याएँ बाप ही लावनीयें। पर यदि तुम लौकिक विद्या बिना धर्म के प्रवृत्त करना चाहो तो मैं तुमसे साक्ष्य करूँ कि भारत में तुम्हारा ऐसा प्रयास व्यर्थ सिद्ध होगा वह लोगों के हृदयों में स्थान प्राप्त न कर सकेगा। यहाँ तक कि इतना बड़ा बौद्ध धर्म भी कुछ अर्थों में इसी कारणवश यहाँ अपना प्रभाव न बना सके।

इसलिए मेरे मित्रों मेरा विचार है कि मैं भारत में कुछ ऐसे विद्यालय स्थापित करूँ जहाँ हमारे तबयुवक अपने धार्मिकों के ज्ञान में शिक्षित होकर भारत तथा भारत के बाहर अपने धर्म का प्रचार कर सकें। मनुष्य केवल मनुष्य भर चाहिए। बाकी सब कुछ अपने बाप ही लायगा। आवश्यकता है दीर्घकाल सेनाधीन अन्वेषण और बुद्धविश्वासी निष्कण तबयुवकों की। ऐसे ही निकल जायें तो संसार का कामकाज ही जाय। इच्छासक्ति संसार में सबसे अधिक बलवर्ती है। उसके

सामने दुनिया की कोई चीज नहीं ठहर सकती, क्योंकि वह भगवान्—साक्षात् भगवान् से आती है। विशुद्ध और दृढ इच्छाशक्ति सर्वशक्तिमान है। क्या तुम इसमें विश्वास नहीं करते? सबके समक्ष अपने धर्म के महान् सत्यो का प्रचार करो, ससार इनकी प्रतीक्षा कर रहा है। सैकड़ों वर्षों से लोगो को मनुष्य की हीनावस्था का ही ज्ञान कराया गया है। उनसे कहा गया है कि वे कुछ नहीं हैं। ससार भर में सर्वत्र सर्वसाधारण से कहा गया है कि तुम लोग मनुष्य ही नहीं हो। गताब्दियों से इस प्रकार डराये जाने के कारण वे बेचारे सचमुच ही करीब करीब पशुत्व को प्राप्त हो गये हैं। उन्हें कभी आत्मतत्त्व के विषय में सुनने का मौका नहीं दिया गया। अब उनको आत्मतत्त्व सुनने दो, यह जान लेने दो कि उनमें से नीच से नीच में भी आत्मा विद्यमान है—वह आत्मा, जो न कभी मरती है, न जन्म लेती है, जिसे न तलवार काट सकती है न आग जला सकती है और न हवा सुखा सकती है, जो अमर है, अनादि और अनन्त है, जो शुद्धस्वरूप, सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापी है।

उन्हे अपने में विश्वास करने दो। आखिर अग्रेजो में और तुममें किसलिए इतना अन्तर है? उन्हे अपने धर्म अपने कर्तव्य आदि के सम्बन्ध में कहने दो। पर मुझे अन्तर मालूम हो गया है। अन्तर यही है कि अग्रेज अपने ऊपर विश्वास करता है, और तुम नहीं। जब वह सोचता है कि मैं अग्रेज हूँ, तो वह उस विश्वास के बल पर जो चाहता है वही कर सकता है। इस विश्वास के आधार पर उसके अन्दर छिपा हुआ ईश्वर भाव जाग उठता है। और तब वह उसकी जो भी इच्छा होती है, वही कर सकने में समर्थ होता है। इसके विपरीत, लोग तुमसे कहते आये हैं, तुम्हें सिखाते आये हैं कि तुम कुछ भी नहीं हो, तुम कुछ भी नहीं कर सकते, और फलस्वरूप तुम आज इस प्रकार अकर्मण्य हो गये हो। अतएव आज हम जो चाहते हैं, वह है—बल, अपने में अटूट विश्वास।

हम लोग शक्तिहीन हो गये हैं। इसीलिए गुप्तविद्या और रहस्यविद्या—इन रोमांचक वस्तुओं ने धीरे धीरे हममें घर कर लिया है। भले ही उनमें अनेक सत्य हों, पर उन्हींमें लगभग हमें नष्ट कर डाला है। अपने स्नायु बलवान बनाओ। आज हमें जिसकी आवश्यकता है, वह है—लोहे के पुट्टे और फौलाद के स्नायु। हम लोग बहुत दिन रो चुके। अब और रोने की आवश्यकता नहीं। अब अपने पैरों पर खड़े हो जाओ और 'मर्द' बनो। हमें ऐसे धर्म की आवश्यकता है, जिससे

१ नैन छिन्दन्ति शस्त्राणि नैन दहति पावकः ।

न चैन वलेदयन्त्यापो न शोषयति भास्व ॥ गीता २।२३॥

हम मनुष्य बन सकें। हमें ऐसे सिद्धान्तों की जरूरत है जिससे हम मनुष्य हो सकें। हमें ऐसी सर्वापसम्पन्न सिसा चाहिए, जो हमें मनुष्य बना सके। और यह रही सत्य की कसौटी—जो भी तुमको धारीरिक मानसिक और आध्यात्मिक दृष्टि से दुर्बल बनाये उसे बहर की भाँति त्याग दो उसमें जीवन-शक्ति नहीं है, वह कभी सत्य नहीं हो सकता। सत्य तो बलप्रय है, वह पवित्रता है, वह ज्ञानस्वरूप है। सत्य तो यह है जो धर्म दे जो हृदय के अन्वकार को पूर कर दे जो हृदय में स्फूर्ति धर दे। मसे ही इन रहस्य-विद्यार्थों में कुछ सत्य हो पर य तो साधारणतया मनुष्य को दुर्बल ही बनाती हैं। मेरा विश्वास करो मेरा यह जीवन भर का अनुभव है। मैं भारत के लगभग सभी स्थानों में भ्रम चुका हूँ सभी युद्धों का अन्वेषण कर चुका हूँ और हिमालय पर भी रह चुका हूँ। मैं ऐसे लोगों को भी जानता हूँ जो जीवन भर नहीं रहे हैं। और अन्त में मैं इसी निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि इन सब रहस्य-विद्यार्थों से मनुष्य दुर्बल ही होता है। मैं अपने देश से प्रेम करता हूँ मैं तुम्हें और अधिक पतित और स्वाभाविक कमबोर नहीं देख सकता। अतएव तुम्हारे कल्याण के लिए, सत्य के लिए और जिससे मेरी भाँति और अधिक अवनत न हो जाय इसलिये मैं जोर से बिल्काकर कहने के लिए बाध्य हो रहा हूँ—बस ठहरो। अवनति की ओर और न बढ़ो—यहाँ तक गये हो बस उतना ही काफी हो चुका। अब वीर्यवान होने का प्रयत्न करो कमबोर बनानेवासी इन सब रहस्यविद्यार्थों को तिराक़ा पति दे दो और अपने उपनिषदों का—उस बलप्रय आत्मोत्थर दिव्य दर्शन प्राप्त का—आश्रय ग्रहण करो। सत्य जितना ही महान् होता है उतना ही घट्ट बोल गम्य होता है—स्वयं अपने अस्तित्व के समान सद्बल। जैसे अपने अस्तित्व को प्रमाणित करने के लिए और किसी की आवश्यकता नहीं होती बस बीता ही। उपनिषद् के सत्य तुम्हारे सामने है। इनका अनुसन्धान करो इनकी उपलब्धि कर इन्हें कार्य में परिणत करो। बस देखोमे भारत का उद्धार निश्चित है।

एक बात और बहकर मैं समाप्त करूँगा। श्रीम वेदमन्त्रि की चर्चा करते हैं। मैं भी वेदमन्त्रि में विश्वास करता हूँ और वेदमन्त्रि के सम्बन्ध में मेरा भी एक आदर्श है। बड़े काम करने के लिए तीन बातों की आवश्यकता होती है। पहला है हृदय की अनुभव-शक्ति। बुद्धि या विचार-शक्ति में क्या है? यह तो कुछ दूर जाती है श्री बन नहीं रुक जाती है। पर हृदय तो प्रेरणा-शक्ति है? प्रेम अममब हारो को श्री उद्घाटित कर देता है। यह प्रेम ही जगत् के सब गत्यो का द्वार है। अतएव ऐ मेरे भावी गुणार्थो मेरे भावी वेदमन्त्रो, तुम अनुभव करो। क्या तुम अनुभव करत हो? क्या तुम हृदय से अनुभव करने ही कि देव और श्रुतियों की बरोड़ा बनाने काय पशुम्य ही गयी है? क्या तुम हृदय

से अनुभव करते हो कि लाखों आदमी आज भूखो मर रहे हैं, और लाखों लोग शताब्दियों से इसी भाँति भूखो मरते आये हैं ? क्या तुम अनुभव करते हो कि अज्ञान के काले बादल ने सारे भारत को ढक लिया है ? क्या तुम यह सब सोचकर बेचैन हो जाते हो ? क्या इस भावना ने तुमको निद्राहीन कर दिया है ? क्या यह भावना तुम्हारे रक्त के साथ मिलकर तुम्हारी धमनियों में बहती है ? क्या वह तुम्हारे हृदय के स्पन्दन से मिल गया है ? क्या उसने तुम्हे पागल सा बना दिया है ? क्या देश की दुर्दशा की चिन्ता ही तुम्हारे ध्यान का एकमात्र विषय बन बैठी है ? और क्या इस चिन्ता में विभोर हो जाने से तुम अपने नाम-यश, पुत्र-कलत्र, धन-सम्पत्ति, यहाँ तक कि अपने शरीर की भी सुघ विसर गये हो ? क्या तुमने ऐसा किया है ? यदि 'हाँ', तो जानो कि तुमने देशभक्त होने की पहली सीढ़ी पर पैर रखा है—हाँ, केवल पहली ही सीढ़ी पर ! तुमसे अधिकारी जानते हैं, मैं अमेरिका धर्म-महासभा के लिए नहीं गया, वरन् इस भावना का दैत्य मुझमें, मेरी आत्मा में था। मैं पूरे बारह वर्ष सारे देश भर भ्रमण करता रहा, पर अपने देशवासियों के लिए कार्य करने का मुझे कोई रास्ता ही नहीं मिला। यही कारण था कि मैं अमेरिका गया। तुमसे अधिकारी, जो मुझे उस समय जानते थे, इस बात को अवश्य जानते हैं। इस धर्म-महासभा की कौन परवाह करता था ? यहाँ मेरे देशवासी, मेरे ही रक्त-मासमय देहस्वरूप मेरे देशवासी, दिन पर दिन डूबते जा रहे थे। उनकी कौन खबर ले ? वस यही मेरा पहला सोपान था।

अच्छा, माना कि तुम अनुभव करते हो, पर पूछता हूँ, क्या केवल व्यर्थ की बातों में शक्तिक्षय न करके इस दुर्दशा का निवारण करने के लिए तुमने कोई यथार्थ कर्तव्य-पथ निश्चित किया है ? क्या लोगों की भर्त्सना न कर उनकी सहायता का कोई उपाय सोचा है ? क्या स्वदेशवासियों को उनकी इस जीवन्मृत अवस्था से बाहर निकालने के लिए कोई मार्ग ठीक किया है ? क्या उनके दुःखों को कम करने के लिए दो सान्त्वनादायक शब्दों को खोजा है ? यही दूसरी बात है।

किन्तु इतने ही से पूरा न होगा। क्या तुम पर्वताकार विघ्न-बाधाओं को लाँघकर कार्य करने के लिए तैयार हो ? यदि सारी दुनिया हाथ में नगी तलवार लेकर तुम्हारे विरोध में खड़ी हो जाय, तो भी क्या तुम जिसे मृत्यु समझते हो, उसे पूरा करने का साहस करोगे ? यदि तुम्हारे पुत्र-कलत्र तुम्हारे प्रतिकूल हो जायें, भाग्य-लक्ष्मी तुमसे रूठकर चली जाय, नाम की कीर्ति भी तुम्हारा नाश छोड़ दे, तो भी क्या तुम उम सत्य में मलग्न रहोगे ? फिर भी क्या तुम उसके पीछे लगे रहकर अपने लक्ष्य की ओर सतत बढ़ते रहोगे ? जैसा कि महान् राजा भर्तृ-



हरि ने कहा है 'चाहे नीतिनिपुण लोग निम्ना करें या प्रसंसा स्मरनी माय या बहो उसकी इच्छा हो जाली जाय मृत्यु जाय हो या सी बर्ष बाद धीर पुत्र्य तो वह है जो म्याम के पत्र से ठिक भी विपस्मित गही होता ।' क्या तुममें ऐसी दृढ़ता है ? क्या मही तीसरी बात है । यदि तुममें ये तीन बातें है तो तुममें से प्रत्येक अद्भुत कार्य कर सकता है । तब फिर तुम्हें समाचारपत्रों में छपवाने की अथवा व्याख्यान देते हुए फिरते रहन की आवश्यकता न होगी स्वयं तुम्हारा मुल ही खीण हो उठेगा ? फिर तुम चाहे पर्वत की कन्दरा में रहो तो भी तुम्हारे विचार पर्वत की चट्टानों को भेदकर बाहर निकल आवेये और सैकड़ों बर्ष तक सारे संसार में प्रतिध्वनित होते रह्ये । और ही सकता है, तब तक ऐसे ही रहें जब तक उन्हें किसी मस्तिष्क का आचार न मिस जाय और वे उसीके माध्यम से कार्यशील हो उठें । विचार निष्कपटता और पवित्र उद्देश्य में ऐसी ही अनवरत शक्ति है ।

मुझे डर है कि तुम्हें बेर हो रही है, पर एक बात और । ऐ मेरे स्वर्णवासियों मेरे मित्रो मेरे बन्धो राष्ट्रीय जीवनस्वी यह बहाव सारों लोगों को जीवनस्वी समुद्र के पार करता रहा है । कई घंटावियों से इसका यह कार्य चल रहा है और इसकी सहायता से लाओ आत्माएँ इस घामर के उस पार अमृतमाम में पहुँची है । पर आज घामर तुम्हारे ही बोध से इस पोट में कुछ सपनी हो गई है, इसमें एक बो सेव हो गये हैं तो क्या तुम इसे कोसोगे ? संसार में जियने तुम्हारा सबसे अधिक उपकार किमा है, उसके विपक्ष बड़े होकर उस पर माली बरसाना क्या तुम्हारे लिए उचित है ? यदि हमारे इस समाज में इस राष्ट्रीय जीवनस्वी बहाव में छेद है, तो हम तो उसकी सन्तान है । आओ जलें उन छेदों को बन्द कर दें — उसके लिए हँसते हँसते अपने हृदय का रक्त बहा दें । और यदि हम ऐसा न कर सकें तो हमें मर जाना ही उचित है । हम अपना मेजा निकालकर उसकी डाट बनायेंगे और बहाव के उन छेदों में मर देंगे । पर उसकी कमी भरसना न करें ? इस समाज के विपक्ष एक कड़ा शत्रु तक न निकालो । उसकी कटीत की वीर्य-परिमा के लिए मेरा उस पर प्रेम है । मैं तुम सबको प्यार करता हूँ क्योंकि तुम वेदताओं की सन्तान ही महिमाशाली पूर्वजों के वंशज हो । तब मला मैं तुम्हें कैसे कोस सकता हूँ ? यह असम्भव है । तुम्हारा सब प्रकार से कल्याण हो । ऐ मेरे बन्धो मैं तुम्हारे पास आया हूँ अपनी सारी योजनाएँ तुम्हारे सामने रखने के लिए । यदि तुम उन्हें सुनो तो मैं तुम्हारे साथ काम करने को तैयार हूँ । पर यदि तुम उनको

१ निम्नानु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुक्तानु कर्मणि समाविष्टानु पञ्चानु वा पक्षेभ्यम् ।  
अथैव वा मरुतमस्तु मुवात्तरे वा म्याम्यात् पक्षः प्रविशति परं न वीर्यः ॥

न मुत्तो, और मुझे ठुकराकर अपने देश के बाहर भी निकाल दो, तो भी मैं तुम्हारे पास वापस आकर यही कहूँगा, “भाई, हम सब डूब रहे हैं।” मैं आज तुम्हारे बीच बैठने आया हूँ। और यदि हमे डूबना है, तो आओ, हम सब साथ ही डूबें, पर एक भी कटु शब्द हमारे ओठों पर न आने पाये।

## भारतीय जीवन में वेदान्त का प्रभाव

[ मद्रास में दिया हुआ भाषण ]

हमारी जाति और धर्म की व्यक्त करने के लिए एक शब्द बहुत प्रचलित हो गया है। वेदान्त धर्म से मरा क्या अभिप्राय है, इसको समझाने के लिए उक्त शब्द 'हिन्दू' की किञ्चित् व्याख्या करने की आवश्यकता है। प्राचीन अरस्तु वैद्यनिवासी सिन्धु नहर के लिए 'हिन्दू' इस नाम का प्रयोग करते थे। संस्कृत भाषा में जहाँ 'स' आता है प्राचीन अरस्तु भाषा में वही 'ह' रूप में परिणत हो जाता है। इसलिये सिन्धु का 'हिन्दू' हो गया। तुम सभी लोग जानते हो कि यूनानी लोग 'ह' का उच्चारण नहीं कर सकते थे इसलिये उन्होंने 'ह' को छोड़ दिया और इस प्रकार हम 'इण्डियन' नाम से जाने गये। प्राचीन काल में इस शब्द का अर्थ जो भी हो अब इस हिन्दू शब्द की जो सिन्धु नहर के दूसरे किनारे से निवासियों के लिए प्रयुक्त होता था कोई सार्थकता नहीं है क्योंकि सिन्धु नहर के इस ओर रहने वाले सभी एक धर्म के माननेवाले नहीं हैं। इस समय यहाँ हिन्दू, मुसलमान पारसी ईसाई, बौद्ध और जैन भी बाध करते हैं। 'हिन्दू' शब्द के व्यापक अर्थ के अनुसार इन सबको हिन्दू कहना होगा किन्तु धर्म के हिसाब से इन सबको हिन्दू नहीं कहा जा सकता। हमारा धर्म मित मित्र प्रकार के भासिक विश्वास मान तथा अनुष्ठान और क्रिया-कर्मों का समष्टि-स्वरूप है। सब एक साथ मिठा हुआ है किन्तु यह कोई साधारण नियम से संयोजित नहीं हुआ इसका कोई एक साधारण नाम भी नहीं है और न इसका कोई एक ही है। कदाचित् केवल एक यही विषय है जहाँ धारे सम्प्रदाय एकमत हैं कि हम सभी अपने-अपने देवों पर विश्वास करते हैं। यह भी निश्चित है कि जो व्यक्ति देवों की सर्वोच्च प्रामाणिकता को स्वीकार नहीं करता उसे अपने को हिन्दू कहने का अधिकार नहीं है। तुम जानते हो कि ये देव दो भागों में विभक्त हैं—कर्मकांड और ज्ञानकांड। कर्मकांड में गंगा प्रचार के माध्यम और अनुष्ठान-मंडलियाँ हैं जिनका अधिकार आजकल प्रचलित नहीं है। ज्ञानकांड में देवों के आध्यात्मिक उपदेश लिपिबद्ध हैं—वे उपनिषद् अथवा 'वेदान्त' के नाम से परिचित हैं और ईश्वरी विदित्वा-ईश्वरी अथवा अद्वैतवादी समस्त धार्मिकों और आचार्यों ने उनको ही उच्चतम प्रमाण कहकर स्वीकार किया है। भारत

के समस्त दर्शन और सम्प्रदायो को यह प्रमाणित करना होता है कि उसका दर्शन अथवा सम्प्रदाय उपनिषद्रूपी नीव के ऊपर प्रतिष्ठित है। यदि कोई ऐसा करने में समर्थ न हो सके तो वह दर्शन अथवा सम्प्रदाय घर्म-विरुद्ध गिना जाता है, इसलिए वर्तमान समय में समग्र भारत के हिन्दुओं को यदि किसी साधारण नाम से परिचित करना हो तो उनको 'वेदान्ती' अथवा 'वैदिक' कहना उचित होगा। मैं वेदान्ती घर्म और वेदान्त इन दोनों शब्दों का व्यवहार सदा इसी अभिप्राय से करता हूँ।

मैं इसको और भी स्पष्ट करके समझाना चाहता हूँ, कारण यह है कि आजकल कुछ लोग वेदान्त दर्शन की 'अद्वैत' व्याख्या को ही 'वेदान्त' शब्द के समानार्थक रूप में प्रयोग करते हैं। हम सब जानते हैं कि उपनिषदों के आधार पर जिन समस्त विभिन्न दर्शनों की सृष्टि हुई है, अद्वैतवाद उनमें से एक है। अद्वैतवादियों की उपनिषदों के ऊपर जितनी श्रद्धा-भक्ति है, विशिष्टाद्वैतवादियों की भी उतनी ही है और अद्वैतवादी अपने दर्शन को वेदान्त की भित्ति पर प्रतिष्ठित कह कर जितना अपनाते हैं, विशिष्टाद्वैतवादी भी उतना ही। द्वैतवादी और भारतीय अन्यान्य समस्त सम्प्रदाय भी ऐसा ही करते हैं। ऐसा होने पर भी साधारण मनुष्यों के मन में 'वेदान्ती' और 'अद्वैतवादी' समानार्थक हो गये हैं और शायद इसका कुछ कारण भी है। यद्यपि वेद ही हमारे प्रधान शास्त्र हैं, हमारे पास वेदों के सिद्धान्तों की व्याख्या दृष्टान्त रूप से करने वाले परवर्ती स्मृति और पुराण भी निश्चित रूप से वेदों के समान प्रामाणिक नहीं हैं। यह शास्त्र का नियम है कि जहाँ श्रुति एवं पुराण और स्मृति में मतभेद हो, वहाँ श्रुति के मत का ग्रहण और स्मृति के मत का परित्याग करना चाहिए। इस समय हम देखते हैं कि अद्वैत दार्शनिक शंकराचार्य और उनके मतावलम्बी आचार्यों की व्याख्या में अविक परिमाण में उपनिषद् प्रमाण-स्वरूप उद्धृत हुए हैं। केवल जहाँ ऐसे विषय की व्याख्या का प्रयोजन हुआ, जिसको श्रुति में किसी रूप में पाने की आशा न हो, ऐसे थोड़े से स्थानों में ही केवल स्मृति-वाक्य उद्धृत हुए हैं। अन्यान्य मतावलम्बी स्मृति के ऊपर ही अधिकाधिक निर्भर रहते हैं, श्रुति का आश्रय कम ही लेते हैं और ज्यों ज्यों हम द्वैतवादियों की ओर ध्यान देते हैं, हमको विदित होता है कि उनके उद्धृत स्मृति-वाक्यों के अनुपात का परिणाम इतना अधिक है कि वेदान्तियों से इस अनुपात की आशा नहीं की जाती। ऐसा प्रतीत होता है कि इनके स्मृति-पुराणादि प्रमाणों के ऊपर इतना अधिक निर्भर रहने के कारण, अद्वैतवादी ही क्रमशः विशुद्ध वेदान्ती कहे जाने लगे।

जो ही, हमने प्रथम ही यह दिखा दिया है कि वेदान्त शब्द से भारत के समस्त घर्म समष्टिरूप से समझे जाते हैं, और यह वेदान्त वेदों का एक भाग होने के कारण

सभी लोगों द्वारा स्वीकृत हमारा सबसे प्राचीन ग्रन्थ है। आधुनिक विद्वानों का विश्वास जो भी हों एक हिन्दू यह विश्वास करने को कभी तैयार नहीं है कि वेदों का कुछ अथ एक समय में और कुछ अन्य समय में लिखा गया है। उनका अब भी यह कुछ विश्वास है कि समग्र वेद एक ही समय में उत्पन्न हुए थे जबकि यदि मैं कहूँ सचुँ उनकी सृष्टि कभी नहीं हुई वे चिरकाल से सृष्टिकर्ता के मन में वर्तमान थे। 'वेदान्त' शब्द से मेरा यहाँ अभिप्राय है और भारत के द्वैतवाद, विशिष्ट-द्वैतवाद और अद्वैतवाद सभी उसके अन्तर्गत हैं। सम्भवतः हम बीड़ धर्म यहाँ तक कि जैन धर्म के भी अंधविशेषों को ग्रहण कर सकते हैं, यदि उक्त धर्मावलम्बी अनुग्रहपूर्वक हमारे मध्य में जाने को सहमत हों। हमारा हृदय यथेष्ट प्रसन्न है हम उनको ग्रहण करने के लिए प्रस्तुत हैं वही जाने को राजी नहीं है। हम उनको ग्रहण करने के लिए सदा प्रस्तुत हैं कारण यह है कि विशिष्ट रूप से विश्लेषण करने पर तुम देखोगे कि बीड़ धर्म का सार भाग इन्हीं उपनिषदों से लिया गया है यहाँ तक कि बीड़ धर्म का तत्वाकषिप्त अच्युत और महान् आचार-शास्त्र किसी न किसी उपनिषद् में अविकल रूप से विद्यमान है। इसी प्रकार जैन धर्म के उत्तमोत्तम सिद्धान्त भी उपनिषदों में वर्तमान हैं केवल अच्युत और मनमानी बातों को छोड़कर इसके परंपरात् भारतीय धार्मिक विश्वासों का जो समस्त विकास हुआ है, उसका बीड़ धर्म उपनिषदों में देखते हैं। कभी कभी इस प्रकार का निर्मूलक अभियोग लगाया जाता है कि उपनिषदों में भक्ति का आदर्श नहीं है। जिन्होंने उपनिषदों का अध्ययन अच्छी तरह किया है, वे जानते हैं कि यह अभियोग बिल्कुल सत्य नहीं है। प्रत्येक उपनिषद् में अनुसन्धान करने से यथेष्ट भक्ति का विषय पाया जाता है किन्तु इनमें से अधिकांश भाग जो परवर्ती काल में पुराण तथा अग्याय्य स्मृतियों में इष्टनी पूर्णता से विकसित पाये जाते हैं उपनिषदों में बीजरूप में विद्यमान हैं। उपनिषदों में मानो उसका बीजा उसकी त्वरेखा ही वर्तमान है। किसी किसी पुराण में यह बीजा पूर्ण किया गया है किन्तु कोई भी ऐसा पूर्ण विकसित भारतीय आदर्श नहीं है जिसका मूल ज्योत उपनिषदों में जोड़ा न जा सकता हो। बिना उपनिषद्-विद्या के विशेष ज्ञान के अनेक व्यक्तियों ने भक्तिवाद को क्विसी झोठ से विकसित सिद्ध करने की हास्यास्पद चेष्टा की है किन्तु तुम सब जागृत हो कि उनकी सम्पूर्ण चेष्टा बिल्कुल हुई है। तुम्हें जितनी भक्ति की आवश्यकता है, सब उपनिषदों में ही क्यो संहिता पर्यन्त सबसे विद्यमान है—उपासना प्रेम भक्ति और जो कुछ आवश्यक है सब विद्यमान है। केवल भक्ति का आदर्श अधिकाधिक स्पष्ट होता रहा है। संहिता के भागों में सब और अनेकमुक्त धर्म के विद्वान् पाये जाते हैं। संहिता के किसी किसी स्थल पर देखा जाता है कि उपासक वरुण

अथवा अन्य किसी देवता के सम्मुख भय से कांप रहा है। और कई स्थलो पर यह भी देखा जाता है कि वे अपने को पापी समझकर अधिक यत्रणा पाते हैं, किन्तु उपनिषदो मे इस प्रकार के वर्णन के लिए कोई स्थान नहीं है, उपनिषदो मे भय का घर्म नहीं है, उपनिषदो मे प्रेम और ज्ञान का घर्म है।

ये उपनिषद् ही हमारे शास्त्र हैं। इनकी व्याख्या भिन्न भिन्न रूप से हुई है और मैं तुमसे पहले कह चुका हूँ कि जहाँ परवर्ती पौराणिक ग्रन्थो और वेदो मे मतभेद होता है, वहाँ पुराणो के मत को अग्राह्य कर वेदो का मत ग्रहण करना पड़ेगा। किन्तु कार्यरूप मे हमसे ९० प्रतिशत मनुष्य पौराणिक और शेष १० प्रतिशत वैदिक हैं और इतने भी है या नहीं, इसमे भी सन्देह है। साथ ही हम यह भी देखते हैं कि हमारे बीच नाना प्रकार के अत्यन्त विरोधी आचार भी विद्यमान हैं—हमारे समाज मे ऐसे भी धार्मिक विचार प्रचलित हैं, जिनका हिन्दू शास्त्रो मे कोई प्रमाण नहीं है। शास्त्रो का अध्ययन करके हमे यह देखकर आश्चर्य होता है कि हमारे देश मे अनेक स्थानो पर ऐसे कई आचार प्रचलित हैं, जिनका प्रमाण वेद, स्मृति अथवा पुराण आदि मे कही भी नहीं पाया जाता, वे केवल लोकाचार है। तथापि प्रत्येक अबोध ग्रामवासी सोचता है कि यदि उसका ग्राम्य आचार उठ जाय, तो वह हिन्दू नहीं रह सकता। उसकी धारणा यही है कि वेदान्त धर्म और इस प्रकार के समस्त क्षुद्र लोकाचार परस्पर घुलमिल कर एकरूप हो गये हैं। शास्त्रो का अध्ययन करने पर भी वे नहीं समझ सकते कि वे जो करते हैं, उसमे शास्त्रो की सम्मति नहीं है। उनके लिए यह समझना बड़ा कठिन होता है कि ऐसे समस्त आचारो का परित्याग करने से उनकी कुछ क्षति नहीं होगी, वरन् इससे वे अधिक अच्छे मनुष्य बनेंगे। इसके अतिरिक्त एक और कठिनाई है—हमारे शास्त्र बहुत विस्तृत हैं। पतजलिप्रणीत 'महाभाष्य' नामक भाषा-विज्ञान ग्रन्थ मे लिखा है कि सामवेद की सहस्र शाखाएँ थी। वे सब कहाँ हैं? कोई नहीं जानता। प्रत्येक वेद का यही हाल है। इन समस्त ग्रन्थो के अधिकाश का लोप हो गया है, सामान्य अश ही हमारे निकट वर्तमान है। एक एक ऋषि परिवार ने एक एक शाखा का भार ग्रहण किया था। इन परिवारो मे से अधिकाशो का स्वाभाविक नियम के अनुसार वशलोप हो गया, अथवा विदेशी अत्याचार से मारे गये या अन्य कारणो से उनका नाश हो गया। और उन्हीके साथ साथ जिस वेद की शाखा विशेष की रक्षा का भार उन्होंने ग्रहण किया था, उसका भी लोप हो गया। यह बात हमको विशेष रूप से स्मरण रखनी चाहिए, कारण यह है कि जो कोई नये विषय का प्रचार अथवा वेदो के विरोधी भी किसी विषय का समर्थन करना चाहते हैं, उनके लिए यह व्यक्ति प्रधान सहायक है। जब भारत मे श्रुति और लोकाचार को लेकर तर्क

होता है जबवा जब यह सिद्ध किया जाता है कि यह लोकाचार धृति-विकृत है तब दूसरा पक्ष यही उत्तर देता है—नहीं यह धृति-विकृत नहीं है यह धृति की उस साक्षा में या जिसका इस समय लोप हुआ गया है, अथ यह प्रथा भी बेह-सम्मत है। धार्मिकों की ऐसी समस्त टीका और टिप्पणियों में किसी ऐसे सूत्र को पाना वास्तव में बड़ा कठिन है, जो सबसे समान रूप से मिलता हो। किन्तु हमको इस बात का सहज ही में विश्वास हो जाता है कि इन गाना प्रकार के विभागों तथा उपविभागों में कहीं न कहीं अवश्य ही कोई सम्मिश्रित भूमि अन्तर्निहित है। अर्थों के ये छोटे छोटे बड़ अवश्य किसी विशेष आदर्श योजना तथा सामग्र्य के आधार पर निर्मित किये गये होंगे। इस प्रतीयमान निराशाजनक विभ्रम पुत्र के जिसको हम अपना बर्णन करते हैं मूल में अवश्य कोई न कोई एक समग्र्य निहित है। अन्यथा यह इतने समग्र तक कदापि बड़ा नहीं रह सकता था यह जब तक रक्षित नहीं रह सकता था।

अपने भाष्यकारों के भाष्यों को देखने से हमें एक बुरी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। अद्वैतवादी भाष्यकार जब अद्वैत सम्बन्धी धृति की व्याख्या करता है उस समय वह उसके वैसे ही भाव रहन देता है, किन्तु वही भाष्यकार जब द्वैत-भावात्मक सूत्रों की व्याख्या करने में प्रवृत्त होता है, उस समय वह उसके अर्थों की सीधताली करके अद्भुत बर्णन निकालता है। भाष्यकारों ने समय समय पर अपना अभीष्ट अर्थ व्यक्त करने के लिए 'अर्था' (अन्तरहित) शब्द का अर्थ 'बकरी' भी किया है—कैसा अद्भुत परिवर्तन है! इसी प्रकार, यहाँ तक कि इससे भी बुरी तरह, अद्वैतवादी भाष्यकारों ने भी धृति की व्याख्या की है। वहाँ उनको द्वैत के अनुकूल धृति मिली है, उसको उन्होंने सुरक्षित रखा है, किन्तु वहाँ भी अद्वैतवाद के अनुसार पाठ बाया है वही उन्होंने उस धृति के अर्थ की महत्ता के अर्थ से विद्वृत करके व्याख्या की है। यह संस्कृत भाषा इतनी जटिल है, वैदिक संस्कृत इतनी प्राचीन है, संस्कृत भाषा-शास्त्र इतना पूर्ण है कि एक शब्द के अर्थ के सम्बन्ध में मनु युवांतर तक तर्क चला सकता है। यदि कोई पंडित कृतसंस्कृत हो जाय तो वह किसी व्यक्ति की बकवाद को भी मुक्तिवश से जबवा शास्त्र और व्याकरण के नियम उपबृण कर कुछ संस्कृत सिद्ध कर सकता है। उपनिषदों को समझने के मार्ग में इस प्रकार की कई विभ्र-वाचार्य उपस्थित होती हैं। विभ्रता की दृष्टि से मुझे एक ऐसे व्यक्ति के साथ रहने का अवसर प्राप्त हुआ था जो वैसे ही उनके अद्वैतवादी के वैसे ही अद्वैतवादी भी के वैसे ही परम भक्त के वैसे ही ज्ञानी भी थे। इसी व्यक्ति के साथ रह कर प्रथम बार मेरे मन में आया कि उपनिषद् और अग्याप्त्य शास्त्रों के पाठ को केवल अन्वेषित्वात् ही भाष्यकारों वा अनुस्मरण

न करके, स्वाधीन और उत्तम रूप से समझना चाहिए। और मैं अपने मत में तथा अपने अनुसन्धान में इसी सिद्धान्त पर पहुँचा हूँ कि ये समस्त शास्त्र परस्पर विरोधी नहीं हैं, इसलिए हमको शास्त्रों की विकृत व्याख्या का भय नहीं होना चाहिए। समस्त श्रुतिवाक्य अत्यन्त मनोरम हैं, अत्यन्त अद्भुत हैं और वे परस्पर विरोधी नहीं हैं, उनमें अपूर्व सामंजस्य विद्यमान है, एक तत्त्व मानो दूसरे का सोपानस्वरूप है। मैंने इन समस्त उपनिषदों में एक यही भाव देखा है कि प्रथम द्वैत भाव का वर्णन उपासना आदि से आरम्भ हुआ है, अन्त में अपूर्व अद्वैत भाव के उच्छ्वास में वह समाप्त हुआ है।

इसीलिए अब मैं इसी व्यक्ति के जीवन के प्रकाश में देखता हूँ कि द्वैतवादी और अद्वैतवादियों को परस्पर विवाद करने की कोई आवश्यकता नहीं है, दोनों का ही राष्ट्रीय जीवन में विशेष स्थान है। द्वैतवादी का रहना आवश्यक है, अद्वैतवादी के समान द्वैतवादी का भी राष्ट्रीय धार्मिक जीवन में विशेष स्थान है। एक के बिना दूसरा नहीं रह सकता, एक दूसरे का पूरक है, एक मानो गृह है, दूसरा छत। एक मानो मूल है और दूसरा फलस्वरूप। इसलिए उपनिषदों का मनमाना विकृत अर्थ करने की चेष्टा को मैं अत्यन्त हास्यास्पद समझता हूँ। कारण, मैं देखता हूँ कि उनकी भाषा ही अपूर्व है। श्रेष्ठतम दर्शन रूप में उनके गौरव के बिना भी, मानव जाति के मुक्ति-पथ-प्रदर्शक धर्मविज्ञान रूप में उनके अद्भुत गौरव को छोड़ देने पर भी, उपनिषदों के साहित्य में उदात्त भावों का ऐसा अत्यन्त अपूर्व चित्रण है, जैसा ससार भर में और कहीं नहीं है। यही मानवीय मन के उस प्रबल विशेषत्व का, अन्तर्दृष्टिपरायण, अन्तःप्रेरणीय उस हिन्दू मन का विशेष परिचय पाया जाता है। अन्यत्र अन्य जातियों के भीतर भी इस उदात्त भाव के चित्र को अंकित करने की चेष्टा देखी जाती है, किन्तु प्रायः सर्वत्र ही तुम देखोगे कि उनका आदर्श बाह्य प्रकृति के महान् भाव को ग्रहण करना है। उदाहरणस्वरूप मिल्टन, दान्ते, होमर अथवा अन्य किसी पाश्चात्य कवि को लिया जा सकता है। उनके काव्यों में स्थान स्थान पर उदात्त भावव्यजक अपूर्व स्थल हैं, किन्तु उनमें सर्वत्र ही बाह्य प्रकृति की अनन्तता को इन्द्रियों के माध्यम से ग्रहण करने की चेष्टा है—बाह्य प्रकृति के अनन्त विस्तार, देश की अनन्तता के आदर्श को प्राप्त करने का प्रयत्न है। हम वेदों के संहिता भाग में भी यही चेष्टा देखते हैं। कुछ अपूर्व ऋचाओं में जहाँ सृष्टि का वर्णन है, बाह्य प्रकृति के विस्तार का उदात्त भाव, देश का अनन्तत्व, अभिव्यक्ति की उच्चतम भूमियाँ उपलब्ध कर सका है। किन्तु उन्होंने शीघ्र ही जान लिया कि इन उपायों से अनन्तत्व को प्राप्त नहीं किया जा सकता, उन्होंने समझ लिया कि अपने मन के जिन सकल भावों को वे भाषा में व्यक्त करने की चेष्टा कर रहे थे,



उनको अनन्त बेस अनन्त विस्तार और अनन्त बाह्य प्रकृति प्रकाशित करने में असमर्थ है। तब उन्होंने अगत्-समस्या की व्याख्या के लिए अन्य मार्गों का अवलम्बन किया। उपनिषदों की भाषा ने नया रूप धारण किया उपनिषदों की भाषा एक प्रकार से 'मिति' बाधक है स्थान स्थान पर अस्फुट है, मानो वह तुम्हें अतीन्द्रिय राज्य में ले जाने की चेष्टा करती है केवल तुम्हें एक ऐसी वस्तु दिखा देती है, जिसे तुम ग्रहण नहीं कर सकते जिसका तुम इन्द्रियों से बोध नहीं कर पाते फिर भी उस वस्तु के सम्बन्ध में तुमको छात्र ही यह निश्चय भी है कि उसका अस्तित्व है। संसार में ऐसा स्वप्न कहाँ है जिसके साथ इस श्लोक की तुलना हो सके?—

न तत्र सूर्यो भासि न चन्द्रतारकम् ।

मेमा विश्रुतो भासि कुतोऽप्यमणि ॥<sup>१</sup>

—'वहाँ सूर्य की किरण नहीं पहुँचती वहाँ चन्द्रमा और तारे भी नहीं चमकते जिसकी भी उस स्थान को प्रकाशित नहीं कर सकती इस सामान्य अग्नि का ठो कहना ही क्या ?

पुनश्च समस्त संसार के समग्र दार्शनिक भाव की अत्यन्त पूर्ण अभिव्यक्ति संसार में और कहाँ पाओगे हिन्दू जाति के समग्र चिन्तन का सारांश मानव जाति की मोक्षाकांक्षा की समस्त कल्पना जिस प्रकार बहुमूत भाषा में अंकित हुई है जिस प्रकार अपूर्व रूपक में अंकित हुई है, ऐसी तुम और कहाँ पाओगे ? क्या

ह्य सुपर्णा समुद्रा सञ्जाया समानं बृहं परिवत्सवाते ।

सयोरन्ध्रं पिप्पलं स्वाहृत्यनलमग्न्यो अभिषाकधीति ॥

समाने बृहो पुण्यो निमग्नेऽग्नीसया धोचरति सुहृत्मान् ।

बृह्यं यथा पश्यत्यन्वमीसमस्य महिमानमिति बीतप्रोक्तः ॥

एक ही बृहत् क ऊपर सुन्दर पंखवाली को चिड़ियाँ रूढ़ी हैं—बोनों बड़ी मित्र हैं उनमें एक उसी बृहत् के फल खाती है, दूसरी फल न खाकर स्थिर बाव से चुपचाप बैठी है। नीचे की छाया में बैठी चिड़िया कभी मीठे कभी कड़वे फल खाती है—और इसी कारण कभी सुखी जबना कभी दुःखी होती है किन्तु ऊपर की छाया में बैठी हुई चिड़िया स्थिर और नन्मीर है वह अच्छे-बुरे को फल नहीं खाती वह सुख और दुःख की परवाह नहीं करती अपना ही महिमा न मग्न है ये दोनों पक्षी जीवात्मा और परमात्मा हैं। मनुष्य इस जीवन के मीठे और कड़वे फल खाता है, वह बन की पंख में मस्त है, वह इन्द्रिय गुण के

१ अतीन्द्रियम् ॥२॥११५॥

२ भृशकोपनिषद् ॥३॥१११॥ ३॥

पीछे दौड़ता है, सासारिक क्षणिक वृथा सुख के लिए उन्मत्त होकर पागल के समान दौड़ता है। उपनिषदों ने एक और स्थान पर सारथि और उसके असयत दुष्ट घोड़े के साथ मनुष्य के इस इन्द्रिय-सुखान्वेषण की तुलना की है। वृथा सुख के अनुसन्धान की चेष्टा में मनुष्य का जीवन ऐसा ही बीतता है। बच्चे कितने सुनहले स्वप्न देखते हैं, अन्ततः केवल यह जानने के लिए कि ये निरर्थक हैं। वृद्धावस्था में वे अपने अतीत कर्मों की पुनरावृत्ति करते हैं, और फिर भी नहीं जानते कि इस जजाल से कैसे निकला जाय। ससार यही है। किन्तु सभी मनुष्यों के जीवन में समय समय पर ऐसे स्वर्णिम क्षण आते हैं—मनुष्य के अत्यन्त शोक में, यहाँ तक कि महा आनन्द के समय ऐसे उत्तम सुअवसर आ उपस्थित होते हैं, जब सूर्य के प्रकाश को छिपानेवाला मेघखड मानो थोड़ी देर के लिए हट जाता है। उस समय इस क्षण-काल के लिए अपने इस सीमाबद्ध भाव के परे उस सर्वातीत सत्ता की एक झलक पा जाते हैं जो अत्यन्त दूर है, जो पंचेन्द्रियावद्ध जीवन से परे बहुत दूर है, जो इम ससार के व्यर्थ भोग और इसके सुख-दुःख से परे बहुत ही दूर है, जो प्रकृति के उस पार दूर है, जो इहलोक अथवा परलोक में हम जिस सुख-भोग की कल्पना करते हैं उससे भी बहुत दूर है, जो धन, यश और सन्तान की तृष्णा से भी परे बहुत दूर है। मनुष्य क्षण-काल के लिए दिव्य दृश्य देखकर स्थिर होता है—और देखता है कि दूसरी चिडिया शान्त और महिमामय है, वह खट्टे या मीठे कोई भी फल नहीं खाती, वह अपनी महिमा में स्वयं आत्मतृप्त है, जैसा गीता में कहा है

यस्त्वात्मरतिरेव स्यात्मात्मतृप्तश्च मानवः ।

आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ॥३१७॥

—‘जो आत्मा में रत है, जो आत्मतृप्त है और जो आत्मा में ही सन्तुष्ट है, उसके करने के लिए और कौन कार्य शेष रह गया है?’

वह वृथा कार्य करके क्यों समय गँवाये? एक बार अचानक ब्रह्म-दर्शन प्राप्त करने के पश्चात् मनुष्य पुनः भूल जाता है, पुनः जीवन के खट्टे और मीठे फल खाता है—और उस समय उसको कुछ भी स्मरण नहीं रहता। कदाचित् कुछ दिनों के पश्चात् वह पुनः ब्रह्म के दर्शन प्राप्त करता है और जितनी चोट खाता है, उतना ही नीचे का पक्षी ऊपर बैठे हुए पक्षी के निकट आता जाता है। यदि वह सौभाग्य से ससार के तीव्र आघात पाता रहे, तो वह अपने साथी, अपने प्राण, अपने मखा उसी दूसरे पक्षी के निकट क्रमशः आता है। और वह जितना ही निकट आता है, उतना ही देखता है कि उस ऊपर बैठे हुए पक्षी की देह की ज्योति आकर उसके पखों के चारों ओर खेल रही है।

और वह जितना ही निरट जाता जाता है उतना ही रूपान्तरण पटित होता है। पीरे पीरे वह जब अत्यन्त निकट पहुँच जाता है, तब देगता है कि मानों वह कमल मिटता जा रहा है—अन्त में उसका पूर्ण रूप छ कोप हो जाता है। उस समय वह समझता है कि उसका पृथक् अस्तित्व भी न था वह उसी हिस्से हुए पत्तों के भीतर सान्त और गम्भीर भाव से बँटे हुए दूसरे पक्षी का प्रतिबिम्ब मात्र था। उस समय वह जानता है कि वह स्वयं ही वही अगर बैठा हुआ पक्षी है, वह सदा से सान्त भाव में बैठा हुआ था—यह उसीकी महिमा है। वह निर्मम हो जाता है, उस समय वह सम्पूर्ण रूप से वृत्त होकर बीरे और सान्त भाव में निमग्न रहता है। इसी रूप में उपनिषद् ईश भाव से आरम्भ कर पूर्ण अर्पित भाव में हमें ले जाते हैं।

उपनिषदों के अपूर्व बहिष्कृत जगत् विषय तथा उच्चतम भावसमूह शिक्षाने के लिए अनन्त उदाहरण उपभूत किये जा सकते हैं किन्तु इस व्याख्यान में इसके लिए समय नहीं है। तो भी एक बात और कहूँगा उपनिषदों की भाषा और भाव की पति सरस है, उनकी प्रत्येक बात ठसठस की बार के समान हवींके की चोट के समान साक्षात् भाव से हृदय में आघात करती है। उनके वर्ण समझने में कुछ भी भ्रम होने की सम्भावना नहीं—उस संगीत के प्रत्येक सुर में सक्ति है और वह हृदय पर पूरा असर करता है। उनमें अस्पष्टता नहीं असम्भव कथन नहीं किसी प्रकार की अटिकता नहीं जिससे विमोघ भ्रम जाम। उनमें अवनति के बिन्दु नहीं है अन्योन्यिकता द्वारा वर्णन की भी क्यादा बेष्टा नहीं की गयी है। उपनिषदों में इस प्रकार के वर्णन भी नहीं मिलेंगे कि विशेषण के पश्चात् विशेषण लेकर कर्मावयव भाव को अटिक करने से प्रकृत विषय का पता न लगे विमोघ बनकर जाने छपे और उस साहित्यिक गोरक्षका के बाहर निकलने का उपाय ही न सूझे। यदि यह मानवप्रतीत है, तो यह एक ऐसी जाति का साहित्य है जिसमें अभी-अपनी जातीय तेजस्विता का ह्रास नहीं हुआ।

उपनिषदों का प्रत्येक पृष्ठ मुझे सक्ति का सन्धय देता है। यह विषय विशेष रूप से स्मरण रखने योग्य है, समस्त जीवन में गीते बड़ी महाशिक्षा प्राप्त की है—उपनिषद् कहते हैं, हे मातम तेजस्वी बनो वीर्यवान बनो दुर्बलता को त्यागो। मनुष्य प्रकृत करता है क्या मनुष्य में दुर्बलता नहीं है? उपनिषद् कहते हैं अवश्य है किन्तु अधिक दुर्बलता द्वारा क्या यह दुर्बलता दूर होगी? क्या तुम गैर से गैर होने का प्रयत्न करोगे? पाप के द्वारा पाप अथवा निर्बलता द्वारा निर्बलता दूर होती है? उपनिषद् कहते हैं हे मनुष्य तेजस्वी बनो वीर्यवान बनो उठकर खड़े हो जाओ। जगत् के साहित्य में केवल इन्हीं उपनिषदों में 'अभी' (अधसूय) यह शब्द बार बार व्यवहृत हुआ है—और सदा के किसी शास्त्र में ईस्वर अथवा

मानव के प्रति 'अभी'—'भयशून्य' यह विशेषण प्रयुक्त नहीं हुआ है। 'अभी'—निर्भय बनो। और मेरे मन मे अत्यन्त अतीत काल के उस पाश्चात्य सम्राट् सिकन्दर का चित्र उदित होता है और मैं देख रहा हूँ—वह महाप्रतापी सम्राट् सिन्धु नद के तट पर खड़ा होकर अरण्यवामी, शिलाखड पर बैठे हुए वृद्ध, नग्न, हमारे ही एक सन्यासी के साथ बात कर रहा है। सम्राट् सन्यासी के अपूर्व ज्ञान से विस्मित होकर उसको अर्थ और मान का प्रलोभन दिखाकर यूनान देश मे आने के लिए निमन्त्रित करता है। और वह व्यक्ति उसके स्वर्ण पर मुसकराता है, उसके प्रलोभनो पर मुसकराता है और अस्वीकार कर देता है। और तब सम्राट् ने अपने अधिकार-त्रल से कहा, "यदि आप नहीं आयेंगे तो मैं आपको मार डालूंगा।" यह सुनकर सन्यासी ने खिलखिलाकर कहा, "तुमने इस समय जैसा मिथ्या भाषण किया, जीवन मे ऐसा कभी नहीं किया। मुझको कौन मार सकता है? जड जगत् के सम्राट्, तुम मुझको मारोगे? कदापि नहीं। मैं चैतन्यस्वरूप, अज और अक्षय हूँ। मेरा कभी जन्म नहीं हुआ और न कभी मेरी मृत्यु हो सकती है। मैं अनन्त, सर्वव्यापी और सर्वज्ञ हूँ। क्या तुम मुझको मारोगे? निरे वच्चे हो तुम।" यही सच्चा तेज है, यही सच्चा वीर्य है। हे बन्धुगण, हे स्वदेशवासियो, मैं जितना ही उपनिषदो को पढता हूँ, उतना ही मैं तुम्हारे लिए आँसू बहाता हूँ, क्योंकि उपनिषदो मे वर्णित इसी तेजस्विता को ही हमको विशेष रूप से जीवन मे चरितार्थ करना आवश्यक हो गया है। शक्ति, शक्ति—यही हमको चाहिए, हमको शक्ति की बड़ी आवश्यकता है। कौन प्रदान करेगा हमको शक्ति? हमको दुर्बल करने के लिए सहस्रो विषय है, कहानियाँ भी बहुत हैं। हमारे प्रत्येक पुराण मे इतनी कहानियाँ हैं कि जिससे ससार मे जितने पुस्तकालय हैं, उनका तीन चौथाई भाग पूर्ण हो सकता है, जो हमारी जाति को शक्तिहीन कर सकती हैं, ऐसी दुर्बलताओ का प्रवेश हममे विगत एक हज़ार वर्ष से ही हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है, मानो विगत एक हज़ार वर्ष से हमारे जातीय जीवन का यही एकमात्र लक्ष्य था कि किस प्रकार हम अपने को दुर्बल से दुर्बलतर बना सकेंगे। अन्त मे हम वास्तव मे हर एक के पैर के पास रेंगनेवाले ऐसे केचुओ के समान हो गये हैं कि इस समय जो चाहे वही हमको कुचल सकता है। हे बन्धुगण, तुम्हारी और मेरी नसो मे एक ही रक्त का प्रवाह हो रहा है, तुम्हारा जीवन-मरण मेरा भी जीवन-मरण है। मैं तुमसे पूर्वोक्त कारणो से कहता हूँ कि हमको शक्ति, केवल शक्ति ही चाहिए। और उपनिषद् शक्ति की विशाल खान हैं। उपनिषदो मे ऐसी प्रचुर शक्ति विद्यमान है कि वे समस्त ससार को तेजस्वी बना सकते हैं। उनके द्वारा समस्त ससार पुनरुज्जीवित, सशक्त और वीर्यसम्पन्न हो सकता है। समस्त जातियो को, सकल मतो को, भिन्न भिन्न सम्प्र-

दाय के दुर्बल बुद्धी पदबलिष्ठ लोभा को स्वयं अपन पैरों गड़ हाकर मुक्त होने के लिए वे उच्च स्वर में उद्घोष कर रहे हैं। मुक्ति अथवा स्वार्थानता—ईहिक स्वार्थानता मानसिक स्वार्थानता आप्यात्मिक स्वार्थानता यही उपनिषदों के मूल मंत्र है।

संसार भर में ही एकमात्र शास्त्र है जिनमें उद्धार (salvation) का वर्णन नहीं किन्तु मुक्ति का वर्णन है। प्रकृति का बन्धन संमुख हो जाओ बुद्धता से मुक्त हो जाओ। और उपनिषद् तुमको यह भी बतलाते हैं कि यह मुक्ति तुममें पहले से ही विद्यमान है। उपनिषदों के उपदेश की यह और भी एक विशेषता है। तुम ईतवारि हो—बुद्ध चिन्ता नहीं किन्तु तुमको यह स्वीकार करना ही होगा कि आत्मा स्वभाव ही से पूर्णस्वल्प है केवल किन्तु ही ज्ञानों के द्वारा वह घट्टुचित हो गयी है। आपुनिक विकासवादी (evolutionist) विचारको क्रमविकास (evolution) और कमसकोष (atavism) कहते हैं रामानुज का संकोष और विकास का सिद्धान्त भी ठीक ऐसा ही है। आत्मा स्वामादिक पूर्णता से भ्रष्ट होकर मानो संकोष को प्राप्त होती है, उसकी शक्ति अभ्यन्त भाव धारक करती है संकर्म और अज्ञे विचारों द्वारा वह पुन विकास को प्राप्त होती है और उसी समय उसको स्वामादिक पूर्णता प्रकट हो जाती है। अईतवादी के साथ अईतवादी का मतमेव है कि अईतवादी आत्मा का विकास को नहीं किन्तु प्रकृति के विकास को स्वीकार करता है। उदाहरणार्थ एक परवा है और इस परवे में एक छोटा घूरास। मैं इस परवे के भीतर से इस भारी अनसपुबाय को देख रहा हूँ। मैं प्रथम केवल बोड़े से मनुष्यों को देख सकूँगा। मान लो खेद बड़ने लया किन्तु जितना ही बड़ा होगा उतना ही मैं इस एकत्र म्भितियों में से अधिकार को देख सकूँगा। अन्त में किन्तु बड़ते बड़ते परवा और किन्तु एक ही जर्मि तब इस स्थिति से तुम्हारे और मेरे बीच कुछ भी नहीं रह जायगा। वहाँ तुममें और मुझमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ। जो कुछ परिवर्तन हुआ वह परवे में ही हुआ। तुम आरम्भ से अन्त तक एक से वे कबल परवे में ही परिवर्तन हुआ था। विकास के सम्बन्ध में अईतवादीयों का नहीं मत है—प्रकृति का विकास और आत्मा की आम्पत्तर अभिभ्यक्ति। आत्मा किसी प्रकार भी संकोष को प्राप्त नहीं हो सकती। यह अपरिवर्तनशील और अनन्त है। वह मानो माबादपी परवे से डैली हुई है—जितना ही यह मायात्मी परवा बीम होता जाता है उतनी ही आत्मा की स्वसिद्ध स्वामादिक महिमा अभिभ्यक्त होती है और कमस वह अधिकारिक प्रकासमान होती है। मयार इसी एक महान् उच्च को मारत से सीबने की अपेक्षा कर रहा है। वे जाहे जो कहें व कितना ही अहकार करने की चेष्टा करे, पर वे कमस बिल प्रतिबिल जान लेने

कि बिना इस तत्त्व को स्वीकार किये कोई समाज टिक नहीं सकता। क्या तुम नहीं देख रहे हो कि समस्त पदार्थों में कैसा भीषण परिवर्तन हो रहा है? क्या तुम नहीं जानते कि पहले यह प्रथा थी कि जब तक कोई वस्तु अच्छी कहकर प्रमाणित न हो जाय तब तक उसे निश्चित रूप से बुरी माना जाय? शिक्षाप्रणाली में, अपराधियों की दण्ड-व्यवस्था में, पागलो की चिकित्सा में, यहाँ तक कि साधारण रोग की चिकित्सा पर्यन्त सबमें इसी प्राचीन नियम को लागू किया जाता था। आधुनिक नियम क्या है? आधुनिक नियम के अनुसार शरीर स्वभाव ही से स्वस्थ है, वह अपनी प्रकृति से ही रोगों को दूर करता है। औषधि अधिक से अधिक शरीर में सार पदार्थों के सचय में सहायता कर सकती है। अपराधियों के सम्बन्ध में यह आधुनिक नियम क्या कहता है? आधुनिक नियम यह स्वीकार करता है कि कोई अपराधी, वह कितना ही हीन क्यों न हो, उसमें भी ईश्वरत्व है, जिसका कभी परिवर्तन नहीं होता है और इसलिए अपराधियों के प्रति हमको तदनु रूप व्यवहार करना चाहिए। अब पहले के ये सब भाव बदल रहे हैं और अब सुधारालय तथा प्रायश्चित्त-गृहों की स्थापना की जा रही है। ऐसा ही सर्वत्र है। जान कर कहो अथवा बिना जाने, यह भारतीय भाव कि प्रत्येक व्यक्ति के भीतर ईश्वरत्व वर्तमान है, नाना भावों से व्यक्त हो रहा है। और तुम्हारे शास्त्रों में ही इसकी व्याख्या है, उनको यह स्वीकार करना पड़ेगा। मनुष्य के प्रति मनुष्य के व्यवहार में महान् परिवर्तन हो जायगा और मनुष्य की दुर्बलताओं को बतलानेवाले ये प्राचीन विचार नहीं रहेगे। इसी शताब्दी में इन भावों का लोप हो जायगा। इस समय लोग हमारे विरोध में खड़े होकर हमारी आलोचना कर सकते हैं। 'ससार में पाप नहीं है', इस घोर पैशाचिक सिद्धान्त के प्रचारक के रूप में ससार के प्रत्येक भाग में मेरी आलोचना की गयी है। बहुत अच्छा, किन्तु इस समय जिन्होंने मुझको बुरा भला कहा है, उनके ही वंशज मुझको अधर्म का प्रचारक नहीं, किन्तु धर्म का प्रचारक कहकर आशीर्वाद देंगे। मैं धर्म का प्रचारक हूँ, अधर्म का नहीं। मैंने अज्ञानान्धकार का प्रचार नहीं किया, किन्तु ज्ञान प्रकाश के विस्तार की चेष्टा की है, इसे मैं अपना गौरव समझता हूँ।

समग्र ससार का अखण्डत्व, जिसको ग्रहण करने के लिए ससार प्रतीक्षा कर रहा है, हमारे उपनिषदों का दूसरा महान् भाव है। प्राचीन काल की हृदयबन्दी और पार्थक्य इस समय तेजी से कम होते जा रहे हैं। बिजली और भाप की शक्ति, यातायात तथा संचार की सुविधाएँ बढ़ाकर ससार के विभिन्न देशों का परस्पर परिचय करा रही है। इसके फलस्वरूप, हम हिन्दू इस समय अपने देश के अतिरिक्त अन्य सब देशों को केवल भूत-प्रेत, राक्षस, पिशाचों से पूर्ण नहीं देख रहे हैं और

दाय के दुबल दृष्टी परबलित लोगों को स्वयं अपने पैरों खड़ा होकर मुक्त होने के लिए वे उच्च स्तर में उद्बोध कर रहे हैं। मुक्ति अथवा स्वाधीनता—वैदिक स्वाधीनता सामाजिक स्वाधीनता आध्यात्मिक स्वाधीनता यही उपनिषदों के मूल मंत्र हैं।

उधार भर म ये ही एकमात्र साधन है जिसमें उधार (salvation) का वर्णन नहीं किन्तु मुक्ति का वर्णन है। प्रकृति के बन्धन से मुक्त हो जाओ दुर्बलता से मुक्त हो जाओ। और उपनिषद् तुमका यह भी बतलाये है कि यह मुक्ति तुममें पहले से ही विद्यमान है। उपनिषदों के उपदेश की यह और भी एक विशेषता है। तुम ईतबारी हो—कुछ बिल्ला नहीं किन्तु तुमको यह स्वीकार करना ही होगा कि आत्मा स्वभाव ही से पूर्णस्वरूप है, केवल क्लेश ही कार्यों के द्वारा वह सङ्कुचित हो गयी है। आधुनिक विकासवादी (evolutionist) जिसको कमविकास (evolution) और कमसंकोच (atavism) कहते हैं, रामानुज का संकोच और विकास का सिद्धांत भी ठीक ऐसा ही है। आत्मा स्वाभाविक पूर्णता में भ्रष्ट होकर मानो संकोच को प्राप्त होती है जगदी गति अव्यक्त भाव धारण करती है। संकर्म और अच्छे विचारों द्वारा वह पुनः विकास का प्राप्त होती है और उभी समय जगदी स्वाभाविक पूर्णता प्रकट हो जाती है। अद्वैतवादी के साथ द्वैतवादी का इतना ही मतभेद है कि अद्वैतवादी आत्मा के विनाश को नहीं किन्तु प्रकृति के विकास को स्वीकार करता है। उदाहरणार्थ एक पक्षी है और इन परदे में एक छोटा मूख। मैं इस परदे के भीतर में इस भारी जनममुशय को रोग रहा हूँ। मैं प्रथम केवल चोड़े से मनुष्यों को रोग सर्पण। मान को छेद करने तथा छिद्रजितना ही बढ़ा होया उतना ही मैं इन एकत्र स्थितियों में ल अभिवासा का रोग मरूँया। अन्त में छिद्र बढ़ने बड़न परदा और छिद्र एक हो जायँय तब इन स्थिति में तुम्हारे और मेरे बीच कुछ भी नहीं रह जायगा। पराँ तुममें और मुझमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ। जो कुछ परिवर्तन हुआ वह परदे में ही हुआ। तुम आरम्भ से अन्त तक एक ल में केवल परदे में ही परिवर्तन हुआ था। विनाश के सम्बन्ध में अद्वैतवादियों का यही मत है—मूर्ति का विनाश और आत्मा की आध्यात्मिक अभिव्यक्ति। आत्मा किसी प्रकार भी मर्त्यता को प्राप्त नहीं हो सकती। यह आविर्बर्तमान और अनाम है। वह मानो मायावती परदे में बँधी हुई है—विनाश ही यह मायावती परदा छीन देता जाता है उतनी ही आत्मा की स्वयंस्वरूप स्वाभाविक महिमा अभिव्यक्त होती है और तब वह अपिचरित प्रकाशमान होती है। गतार हमी एक महान् तन्त्र को मान्य में लाने की कोशा कर रहा है। वे जो वे बनें वे विनाश ही अन्तार करने की कोशा करें, पर वे कबल दिन प्रतिदिन जान लेंगे

कि बिना इस तत्त्व को स्वीकार किये कोई समाज टिक नहीं सकता। क्या तुम नहीं देख रहे हो कि ममस्त पदार्थों में कैसा भीषण परिवर्तन हो रहा है? क्या तुम नहीं जानते कि पहले यह प्रथा थी कि जब तक कोई वस्तु अच्छी कहकर प्रमाणित न हो जाय तब तक उसे निश्चित रूप से बुरी माना जाय? शिक्षाप्रणाली में, अपराधियों की दण्ड-व्यवस्था में, पागलो की चिकित्सा में, यहाँ तक कि साधारण रोग की चिकित्सा पर्यन्त सबमें इसी प्राचीन नियम को लागू किया जाता था। आधुनिक नियम क्या है? आधुनिक नियम के अनुसार शरीर स्वभाव ही से स्वस्थ है, वह अपनी प्रकृति में ही रोगों को दूर करता है। औषधि अधिक से अधिक शरीर में सार पदार्थों के सचय में सहायता कर सकती है। अपराधियों के सम्बन्ध में यह आधुनिक नियम क्या कहता है? आधुनिक नियम यह स्वीकार करता है कि कोई अपराधी, वह कितना ही हीन क्यों न हो, उसमें भी ईश्वरत्व है, जिसका कभी परिवर्तन नहीं होता है और इसलिए अपराधियों के प्रति हमको तदनु रूप व्यवहार करना चाहिए। अब पहले के ये सब भाव बदल रहे हैं और अब सुधारालय तथा प्रायश्चित्त-गृहों की स्थापना की जा रही है। ऐसा ही सर्वत्र है। जान कर कहो अथवा बिना जाने, यह भारतीय भाव कि प्रत्येक व्यक्ति के भीतर ईश्वरत्व वर्तमान है, नाना भावों से व्यक्त हो रहा है। और तुम्हारे शास्त्रों में ही इसकी व्याख्या है, उनको यह स्वीकार करना पड़ेगा। मनुष्य के प्रति मनुष्य के व्यवहार में महान् परिवर्तन हो जायगा और मनुष्य की दुर्बलताओं को बतलानेवाले ये प्राचीन विचार नहीं रहेंगे। इसी शताब्दी में इन भावों का लोप हो जायगा। इस समय लोग हमारे विरोध में खड़े होकर हमारी आलोचना कर सकते हैं। 'ससार में पाप नहीं है', इस घोर पैशाचिक सिद्धान्त के प्रचारक के रूप में ससार के प्रत्येक भाग में मेरी आलोचना की गयी है। बहुत अच्छा, किन्तु इस समय जिन्होंने मुझको बुरा भला कहा है, उनके ही वंशज मुझको अधर्म का प्रचारक नहीं, किन्तु धर्म का प्रचारक कहकर आशीर्वाद देंगे। मैं धर्म का प्रचारक हूँ, अधर्म का नहीं। मैंने अज्ञानान्धकार का प्रचार नहीं किया, किन्तु ज्ञान प्रकाश के विस्तार की चेष्टा की है, इसे मैं अपना गौरव समझता हूँ।

समग्र ससार का अखण्डत्व, जिसको ग्रहण करने के लिए ससार प्रतीक्षा कर रहा है, हमारे उपनिषदों का दूसरा महान् भाव है। प्राचीन काल की हृदयबन्दी और पार्थक्य इस समय तेजी से कम होते जा रहे हैं। विजली और भाप की शक्ति, यातायात तथा संचार की सुविधाएँ बढ़ाकर ससार के विभिन्न देशों का परस्पर परिचय करा रही है। इसके फलस्वरूप, हम हिन्दू इस समय अपने देश के अतिरिक्त अन्य सब देशों को केवल भूत-प्रेत, राक्षस, पिशाचों से पूर्ण नहीं देख रहे हैं और



ईसाई धर्म-प्रधान देशों के लोग भी नहीं कहते कि भारत में केवल गरमांसभोजी और असभ्य लोग रहते हैं। अपने देश से बाहर जाकर हम देखते हैं कि वही बन्दु मानव सहायता के लिए अपना वही शक्तिशाली हाथ बढ़ा रहा है और उसी मुख से उल्लासित कर रहा है। जिस देश में हमने जन्म लिया है उसकी अपेक्षा कभी कभी अन्य देशों में अधिक अच्छे लोग मिल जाते हैं। जब वे मर्दा जाते हैं वे भी यहाँ ईसा ही भावनाओं उल्लास और सहानुभूति पाते हैं। हमारे उपनिषदों ने ठीक ही कहा है, अज्ञान ही सर्व प्रकार के दुःखों का कारण है। धार्मिक अथवा आध्यात्मिक अपने जीवन को चाहे जिस अवस्था में देखो यह बिल्कुल सही उतरता है। अज्ञान से ही हम परस्पर घृणा करते हैं अज्ञान से ही हम एक दूसरे को जानते नहीं और इसीलिए प्यार नहीं करते। जब हम एक दूसरे को जान लेंगे प्रेम का उदय होगा। प्रेम का उदय निश्चित है क्योंकि क्या हम सब एक नहीं हैं? इसलिए हम देखते हैं कि भेद न करने पर भी हम सबका एकत्वभाव स्वभाव ही से आ जाता है। यहाँ तक कि राजनीति और समाजनीति के क्षेत्रों में भी जो समस्याएँ बीस वर्ष पहले केवल राष्ट्रीय थीं इस समय उनकी सीमाएँ केवल राष्ट्रीयता के आकार पर ही नहीं की जा सकती। सत्त समस्याएँ क्रमशः कठिन हो रही हैं और विशाल आकार धारण कर रही हैं। केवल अन्तराष्ट्रीय आकार पर उदार दृष्टि से विचार करने पर ही उनकी हल किया जा सकता है। अन्तराष्ट्रीय संगठन अन्तराष्ट्रीय संघ अन्तराष्ट्रीय विधान ये ही आवश्यक के मूलमन्त्रस्वरूप हैं। सब लोगों के भीतर एकत्वभाव किस प्रकार विस्तृत हो रहा है यही उसका प्रमाण है। विज्ञान में भी अज्ञान के सम्बन्ध में ऐसे ही धार्मिक भाव ही इस समय आविष्कृत हो रहे हैं। इस समय तुम समस्त अज्ञान को समस्त सत्ता को एक अज्ञान वस्तुत्व में बृहत् अज्ञान-समुद्र का वर्णन करते हो जिसमें तुम में अन्ध सूर्य और रोष सब कुछ घसी विभिन्न शक्ति भँवर मान हैं, और कुछ नहीं। मानसिक दृष्टि से देखने पर यह एक अज्ञान विचार-समुद्र प्रतीत होता है तुम और मैं उस विचार-समुद्र के अत्यन्त छोटे छोटे भँवरों के सदृश हैं। आत्मपरक दृष्टि से देखने पर समस्त जगत् एक अज्ञान अपरिचरितनीय सत्ता अर्थात् आत्मा प्रतीत होता है। नैतिकता का स्वर भी आ रहा है और यह भी हमारे धर्मों में विद्यमान है। नैतिकता की व्याख्या और आचार-शास्त्र के मूलमन्त्र के लिए भी सत्ता व्याप्त है यह भी हमारे शास्त्रों से ही मिलेगा।

हम भारत में क्या चाहते हैं? यदि विदेशियों की इन पराधीन आध्यात्मिकता है तो हमकी इनकी आवश्यकता भीम युवा अधिक है। क्योंकि हमारे उपनिषद् चिन्तने ही महत्त्वपूर्ण क्यों न हो, अत्याय आदिप्रा के साथ तुम्हारे में हम अपने

पूर्वपुण्य ऋषिगणों पर कितना ही गत्र क्यों न बने, मैं तुम लोगों में स्पष्ट भाषा में कहे देता हूँ कि हम दुर्बल हैं, अत्यन्त दुर्बल हैं। प्रथम तो है हमारी शारीरिक दुर्बलता। यह शारीरिक दुर्बलता कम से कम हमारे एक तिहाई दुर्बलों का कारण है। हम आलसी हैं, हम काय नहीं कर सकते, हम पाठ्यपत्र एकता स्थापित नहीं कर सकते, हम एक दूसरे में प्रेम नहीं करते, हम बड़े स्वार्थी हैं, हम तीन मनुष्य एकत्र होते ही एक दूसरे में घृणा करते हैं, ईर्ष्या करते हैं। हमारी इस समय ऐसी अवस्था है कि हम पूण रूप में अमरगठिन हैं, घोर स्वार्थी हो गये हैं, मैकडो शताब्दियों में इसीलिए जगदत्ते हैं कि तिलक इस तरह प्राण करना चाहिए या उम तरह। अमुक व्यक्ति को नजर पडने में हमारा भोजन दूषित होगा या नहीं, ऐसी गुह्यतर समस्याओं के ऊपर हम बड़े बड़े ग्रन्थ लिखते हैं। पिछली कई शताब्दियों में हमारा यही कारनामा रहा है। जिम जानि के मस्तिष्क की समस्त शक्ति ऐसी अपूर्व सुन्दर समस्याओं और गवेषणाओं में लगी है, उसमें किसी उच्च कोटि की सफलता की क्या आशा की जाय ! और क्या हमको अपने पर शर्म भी नहीं आती ? हाँ, कभी कभी शर्मिन्दा होते भी हैं। यद्यपि हम उनकी निस्सारता को समझते हैं, पर उनका परित्याग नहीं कर पाते। हम अनेक बातें सोचते हैं, किन्तु उनके अनुसार कार्य नहीं कर सकते। इस प्रकार तोते के समान बातें करना हमारा अभ्यास हो गया है—आचरण में हम बहुत पिछड़े हुए हैं। इसका कारण क्या है ? शारीरिक दौर्बल्य। दुर्बल मस्तिष्क कुछ नहीं कर सकता, हमको अपने मस्तिष्क को बलवान बनाना होगा। प्रथम तो हमारे युवकों को बलवान बनना होगा। धर्म पीछे आयेगा। हे मेरे युवक वन्द्यु, तुम बलवान बनो—यही तुम्हारे लिए मेरा उपदेश है। गीता-पाठ करने की अपेक्षा तुम्हें फुटबाल खेलने से स्वर्ग-सुख अधिक सुलभ होगा। मैंने अत्यन्त साहसपूर्वक ये बातें कही हैं, और इनको कहना अत्यावश्यक है, कारण मैं तुमको प्यार करता हूँ। मैं जानता हूँ कि ककड कहाँ चुभता है। मैंने कुछ अनुभव प्राप्त किया है। बलवान शरीर से अथवा मजबूत पुट्टों से तुम गीता को अधिक समझ सकोगे। शरीर में ताजा रक्त होने से तुम कृष्ण की महती प्रतिभा और महान् तेजस्विता को अच्छी तरह समझ सकोगे। जिस समय तुम्हारा शरीर तुम्हारे पैरों के बल दृढ भाव से खडा होगा, जब तुम अपने को मनुष्य समझोगे, तब तुम उपनिषद् और आत्मा की महिमा भली भाँति समझोगे। इस तरह वेदान्त को अपनी आवश्यकताओं के अनुसार काम में लगाना होगा।

लोग मेरे अद्वैतवाद के प्रचार से बहुधा विरक्त हो जाते हैं। अद्वैतवाद, द्वैतवाद अथवा अन्य किसी वाद का प्रचार करना मेरा उद्देश्य नहीं है। हमें इस समय आवश्यकता है केवल आत्मा की—उसके अपूर्व तत्त्व, उसकी अनन्त शक्ति,

ईसाई धर्म-प्रधान देशों के लोग भी नहीं कहते कि भारत में केवल नरमांसभोजी और असभ्य लोग रहते हैं। अपने देश से बाहर जाकर हम देखते हैं कि वही कन्वु मानव सहायता के लिए अपना बही क्षमिदसाही हाथ बढ़ा रहा है और उसी मुल से उत्साहित कर रहा है। जिस देश में हमने जन्म लिया है उसकी अपेक्षा कभी कभी अन्य देशों में अधिक अच्छे लोग मिल जाते हैं। जब वे यहाँ आते हैं, वे भी यहाँ बँसा ही भातृनाथ उत्साह और सहानुमूति पाते हैं। हमारे उपनिषदों ने ठीक ही कहा है अज्ञान ही सर्व प्रकार के दुःखों का कारण है। सामाजिक अथवा आध्यात्मिक अपने जीवन को चाहे जिस अवस्था में देखो यह विस्तृत सही उत्तरता है। अज्ञान से ही हम परस्पर नृणा करते हैं, अज्ञान से ही हम एक दूसरे को जानते नहीं और इसीलिए प्यार नहीं करते। जब हम एक दूसरे को जान सेंगे प्रेम का उदय होया। प्रेम का उदय निश्चित है क्योंकि क्या हम सब एक नहीं हैं? इसलिए हम देखते हैं कि चेष्टा न करने पर भी हम सबका एकत्वभाव स्वभाव ही से आ जाता है। यहाँ तक कि राजनीति और समाजनीति के क्षेत्रों में भी जो समस्याएँ बीच बर्य पहले केवल राष्ट्रीय थीं इस समय उनकी मीमांसा केवल राष्ट्रीयता के आधार पर ही नहीं की जा सकती। उक्त समस्याएँ कमया कठिन हो रही हैं और विशाल आकार धारण कर रही हैं। केवल अन्तर्राष्ट्रीय आधार पर उबार दृष्टि से विचार करने पर ही उनको हल किया जा सकता है। अन्तर्राष्ट्रीय संगठन अन्तर्राष्ट्रीय सब अन्तर्राष्ट्रीय विधान ये ही आवश्यक के मूलमन्त्रस्वरूप है। सब लोगों के मीठर एकत्वभाव किस प्रकार विस्तृत हो रहा है यही उसका प्रमाण है। विज्ञान में भी अक तत्व के सम्बन्ध में ऐसे ही सार्वभौम भाव ही इस समय आविष्कृत हो रहे हैं। इस समय तुम समग्र अक वस्तु को समस्त ससार को एक अखण्ड वस्तु रूप में नृहत् अक-समुद्र सा वर्णन करते हो जिसमें तुम में अन्न सूर्य और वेप सब कुछ सभी विभिन्न लुह मँधर भाव है, और कुछ नहीं। मानसिक दृष्टि से देखने पर वह एक अनन्त विचार-समुद्र प्रतीत होता है तुम और मैं उस विचार-समुद्र के अत्यन्त छोटे छोटे मँधरों के सदृश हैं। आत्मपरक दृष्टि से देखने पर समग्र जगत् एक अखण्ड अपरिभर्तनीय सत्ता अर्थात् आत्मा प्रतीत होता है। नैतिकता का स्वर भी आ रहा है और वह भी हमारे जन्मों में विद्यमान है। नैतिकता की ध्यास्या और आचार-शास्त्र के मूल लोच के लिए भी सधार व्याकुल है यह भी हमारे शास्त्रों से ही मिलेया।

हम भारत में क्या चाहते हैं? यदि विवेचनों को इन पदाओं की आवश्यकता है तो हमको इनकी आवश्यकता बीच नृणा अधिक है। क्योंकि हमारे उपनिषद् धितने ही महत्त्वपूर्ण क्यों न हों अत्याम्य जातियों के साथ लक्ष्मा में हम अपने

पूर्वपुरुष ऋषिगणों पर कितना ही। गर्व क्यों न करे, मैं तुम लोगो से स्पष्ट भाषा मे कहे देता हूँ कि हम दुर्बल हैं, अत्यन्त दुर्बल हैं। प्रथम तो है हमारी शारीरिक दुर्बलता। यह शारीरिक दुर्बलता कम से कम हमारे एक तिहाई दुर्बलो का कारण है। हम आलसी हैं, हम कार्य नहीं कर सकते, हम पागस्परिक एकता स्थापित नहीं कर सकते, हम एक दूसरे से प्रेम नहीं करते, हम बड़े स्वार्थी हैं, हम तीन मनुष्य एकत्र होते ही एक दूसरे से घृणा करते हैं, ईर्ष्या करते हैं। हमारी इस समय ऐसी अवस्था है कि हम पूर्ण रूप से अमगठिन हैं, घोर स्वार्थी हो गये हैं, सैकड़ो शताब्दियों से इसीलिए झगड़ते हैं कि तिलक इस तरह धारण करना चाहिए या उस तरह। अमुक व्यक्ति की नजर पढ़ने से हमारा भोजन दूषित होगा या नहीं, ऐसी गुश्तर समस्याओ के ऊपर हम बड़े बड़े ग्रन्थ लिखते हैं। पिछली कई शताब्दियों से हमारा यही कारनामा रहा है। जिस जाति के मस्तिष्क की समस्त शक्ति ऐसी अपूर्व सुन्दर समस्याओ और गवेषणाओ मे लगी है, उससे किसी उच्च कोटि की सफलता की क्या आशा की जाय। और क्या हमको अपने पर शर्म भी नहीं आती? हाँ, कभी कभी शर्मिन्दा होते भी हैं। यद्यपि हम उनकी निस्सारता को समझते हैं, पर उनका परित्याग नहीं कर पाते। हम अनेक बातें सोचते हैं, किन्तु उनके अनुसार कार्य नहीं कर सकते। इस प्रकार तोते के समान बातें करना हमारा अभ्यास हो गया है—आचरण मे हम बहुत पिछड़े हुए हैं। इसका कारण क्या है? शारीरिक दौर्बल्य। दुर्बल मस्तिष्क कुछ नहीं कर सकता, हमको अपने मस्तिष्क को बलवान बनाना होगा। प्रथम तो हमारे युवको को बलवान बनना होगा। धर्म पीछे आयेगा। हे मेरे युवक बन्धु, तुम बलवान बनो—यही तुम्हारे लिए मेरा उपदेश है। गीता-पाठ करने की अपेक्षा तुम्हे फुटबाल खेलने से स्वर्ग-सुख अधिक सुलभ होगा। मैंने अत्यन्त साहसपूर्वक ये बातें कही हैं, और इनको कहना अत्यावश्यक है, कारण मैं तुमको प्यार करता हूँ। मैं जानता हूँ कि ककड़ कहाँ चुमता है। मैंने कुछ अनुभव प्राप्त किया है। बलवान शरीर से अथवा मजबूत पुष्टो से तुम गीता को अधिक समझ सकोगे। शरीर मे ताजा रक्त होने से तुम कृष्ण की महती प्रतिभा और महान् तेजस्विता को अच्छी तरह समझ सकोगे। जिस समय तुम्हारा शरीर तुम्हारे पैरो के बल दृढ़ भाव से खड़ा होगा, जब तुम अपने को मनुष्य समझोगे, तब तुम उपनिषद् और आत्मा की महिमा भली भाँति समझोगे। इस तरह वेदान्त को अपनी आवश्यकताओ के अनुसार काम मे लगाना होगा।

लोग मेरे अद्वैतवाद के प्रचार से बहुधा विरक्त हो जाते हैं। अद्वैतवाद, द्वैतवाद अथवा अन्य किसी वाद का प्रचार करना मेरा उद्देश्य नहीं है। हमे इस समय आवश्यकता है केवल आत्मा की—उसके अपूर्व तत्त्व, उसकी अनन्त शक्ति,

अनन्त वीर्य अनन्त सुखता और अनन्त पूर्णता के तत्त्व को जानने की। यदि मेरे कोई सन्तान होती तो मैं उसे जन्म के समय से ही सुनाता 'लक्ष्मि निरंजन'। तुमने अवश्य ही पुराण में रानी मदासदा की वह सुन्दर कहानी पढ़ी होगी। उसके सम्मान होते ही वह उसको अपने हाथ से झूले पर रखकर सुजाते हुए उसके निकट गाती थी 'तुम हो मेरे साठ निरंजन अतिपावन निध्याप तुम हो सर्वशक्तिशाली तेष है अमित प्रताप। इस कहानी में महान् सत्य छिपा हुआ है। अपने को महान् समझो और तुम सचमुच महान् हो जाओगे। सभी लोग पूछते हैं आपने समग्र संसार में भ्रमण करके क्या अनुभव प्राप्त किया? अंग्रेज लोग पापियों की बातें करते हैं पर वास्तव में यदि सभी अंग्रेज अपने को पापी समझते तो वे अर्द्धाका के मध्य भाग के रहनेवाके हथ्थी जैसे हो जाते। ईस्वर की कृपा से इस बात पर वे विश्वास नहीं करते। इसके विपरीत अंग्रेज तो यह विश्वास करता है कि संसार के अधीश्वर होकर उसने जन्म धारण किया है। वह अपनी भेष्यता पर पूरा विश्वास रखता है। उसकी धारणा है कि वह सब कुछ कर सकता है, इच्छा होने पर सूर्य लोक और चन्द्रलोक की भी सैर कर सकता है। इसी इच्छा के बल से वह बड़ा हुआ है। यदि वह अपने पुरोहितों के इन वाक्यों पर कि मनुष्य शूद्र है इतनाम्य और पापी है अनन्तकाल तक वह गरकागि में दग्ध होगा विश्वास करता तो वह आज नहीं अंग्रेज न होता वैसे यह वाक्य है। यही बात मैं अंग्रेज जाति के भीतर देखता हूँ। उनके पुरोहित लोग चाहे जो कुछ कहें और वे कितने ही कुसंस्कारपूर्ण क्यों न हों किन्तु उनके अन्वय का ब्रह्मभाव स्पष्ट नहीं होता उसका विकास अवश्य होता है। हम सबको जो बँधे हैं। क्या तुम मेरे इस कथन पर विश्वास करोगे कि हम अंग्रेजों की अपेक्षा कम आरम्भदा रखते हैं—सहस्रानुस कम आत्म श्रद्धा रखते हैं? मैं साफ-साफ कह रहा हूँ। बिना कहे बूझता उपाय भी मैं नहीं देखता। तुम देखते नहीं?—अंग्रेज जब हमारे धर्मतत्त्व को कुछ कुछ समझते लगते हैं तब वे मानो उखीकी केकर उन्मत्त हो जाते हैं। यद्यपि वे साधक हैं, तथापि अपने बेलबासियों की हँसी और उपहास की अपेक्षा करके भारत में हमारे ही धर्म का प्रचार करने के लिए वे आते हैं। तुम लोगों में से कितने ऐसे हैं जो ऐसा काम कर सकते हैं? तुम क्यों ऐसा नहीं कर सकते? क्या तुम जानते नहीं इसलिये नहीं कर सकते? उनकी अपेक्षा तुम अधिक ही जानते हो। इसीसे तो ज्ञान के अनुसार तुम काम नहीं कर सकते। जितना जानने से कस्यान होना उसने तुम स्थायी करके हो सही आशय है। तुम्हारा रक्त शरीर मँडल हो गया है, मस्तिष्क मुर्धार और शरीर दुर्बल। इस शरीर को बरकना होगा। साटीरिक दुर्बलता ही सब अगिष्टी की शत्रु है और कुछ नहीं। गत कई सदियों से तुम

नाना प्रकार के मुद्यार, आदर्श आदि की वाते कर रहे हो और जब काम करने का समय आता है तब तुम्हारा पता ही नहीं मिलता। अतः तुम्हारे आचरणों से सारा समार क्रमशः हताश हो रहा है और समाज-मुद्यार का नाम तक समस्त ससार के उपहास की वस्तु हो गयी है। इसका कारण क्या है? क्या तुम जानते नहीं हो? तुम अच्छी तरह जानते हो। ज्ञान की कमी तो तुम में है ही नहीं। सब अनर्थों का मूल कारण यही है कि तुम दुर्बल हो, अत्यन्त दुर्बल हो, तुम्हारा शरीर दुर्बल है, मन दुर्बल है, और अपने पर आत्मश्रद्धा भी विलकुल नहीं है। सैकड़ों सदियों से ऊँची जातियों, राजाओं और विद्वेगियों ने तुम्हारे ऊपर अत्याचार करके, तुमको चकनाचूर कर डाला है। भाइयो! तुम्हारे ही स्वजनो ने तुम्हारा सब बल हर लिया है। तुम इस समय मेरुदण्डहीन और पददलित कीडों के समान हो। इस समय तुमको शक्ति कौन देगा? मैं तुमसे कहता हूँ, इसी समय हमको बल और वीर्य की आवश्यकता है। इस शक्ति को प्राप्त करने का पहला उपाय है—उपनिषदों पर विश्वास करना और यह विश्वास करना कि 'मैं आत्मा हूँ।' 'मुझे न तो तलवार काट सकती है, न वरछी छेद सकती है, न आग जला सकती है और न हवा सुखा सकती है, मैं सर्वशक्तिमान हूँ, सर्वज्ञ हूँ।' इन आशाप्रद और परित्राणपद वाक्यों का सर्वदा उच्चारण करो। मत कहो—हम दुर्बल हैं। हम सब कुछ कर सकते हैं। हम क्या नहीं कर सकते? हमसे सब कुछ हो सकता है। हम सबके भीतर एक ही महिमामय आत्मा है। हमें इस पर विश्वास करना होगा। नचिकेता के समान श्रद्धाशील बनो। नचिकेता के पिता ने जब यज्ञ किया था, उसी समय नचिकेता के भीतर श्रद्धा का प्रवेश हुआ। मेरी इच्छा है—तुम लोगो के भीतर इसी श्रद्धा का आविर्भाव हो, तुममें से हर एक आदमी खड़ा होकर इशारे से ससार को हिला देनेवाला प्रतिभासम्पन्न महापुरुष हो, हर प्रकार से अनन्त ईश्वरतुल्य हो। मैं तुम लोगो को ऐसा ही देखना चाहता हूँ। उपनिषदों से तुमको ऐसी ही शक्ति प्राप्त होगी और वहीं से तुमको ऐसा विश्वास प्राप्त होगा।

प्राचीन काल में केवल अरण्यवासी सन्यासी ही उपनिषदों की चर्चा करते थे। वे रहस्य के विषय बन गये थे। उपनिषद् सन्यासियों तक ही सीमित थे। शंकर ने कुछ सदय हो कहा है, 'गृही मनुष्य भी उपनिषदों का अध्ययन कर सकते हैं, इससे उनका कल्याण ही होगा, कोई अनिष्ट न होगा।' परन्तु अभी तक यह सरकार कि उपनिषदों में वन, जंगल अथवा एकान्तवास का ही वर्णन है, मनुष्यों के मन से

१ नैन छिन्दन्ति शस्त्राणि नैन वहति पावकः ।

न चैन वलेद्यन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥गीता ॥२॥२३॥

नहीं हटा। मैंने तुम लोगों से उस दिन कहा था कि जो स्वयं वेदों के प्रकाशक हैं  
 उन्हीं की कृपण के द्वारा वेदों की एकमात्र प्रामाणिक टीका सीठा एक ही बार फिर  
 काश के लिए बनी है यह सबके लिए और जीवन की सभी अवस्थाओं के लिए  
 उपयोगी है। तुम कोई भी काम करो तुम्हारे लिए भवान्त की आवश्यकता है।  
 वेदान्त के इन सब महान् तत्त्वों का प्रचार आवश्यक है ये केवल अरभ्य में अथवा  
 भिरिगुहाओं में आवश्यक नहीं उन्हे बकीलों और न्यायाधीशों में प्रार्थना-मन्दिरों  
 में शिखों की कुटियों में मछुमों के घरों में छात्रों के अध्ययन-स्थानों में—सर्वत्र  
 ही इन तत्त्वों की पर्चा होनी और ये काम में लाये जायें। हर एक व्यक्ति हर एक  
 सन्तान चाहे जो काम करे, चाहे जिस अवस्था में हो—उसकी पुकार सबके लिए  
 है। भय का अब कोई कारण नहीं है। उपनिषदों के सिद्धान्तों को मछुए जाहि  
 साधारण जन किस प्रकार काम में लायेंगे? इसका उपाय शास्त्रों में बताया  
 गया है। मार्ग अनन्त है, धर्म अनन्त है, कोई इसकी सीमा के बाहर नहीं जा सकता।  
 तुम निष्कपट भाव से जो कुछ करते हो तुम्हारे लिए वही अच्छा है। अल्पत  
 छोटा कर्म भी यदि अच्छे भाव से किया जाय तो उससे अमृत फल की प्राप्ति  
 होती है। अतएव जो वहाँ तक अच्छे भाव से काम कर सके, करे। मछुवा यदि  
 अपने को आत्मा समझकर चिन्तन करे, तो वह एक उत्तम मछुवा होगा। विद्यार्थी  
 यदि अपने को आत्मा विचारे, तो वह एक श्रेष्ठ विद्यार्थी होगा। बकील यदि अपने  
 को आत्मा समझे तो वह एक अच्छा बकील होगा। बीरों के नियम में भी वही समझी।  
 इसका फल यह होगा कि जातिविभाग अनन्त काल तक रह जायगा क्योंकि विभिन्न  
 श्रेणियों में विभक्त होना ही समाज का स्वभाव है। पर रहेगा क्या नहीं? विशेष  
 अधिकारों का अस्तित्व न रह जायगा। जातिविभाग प्राकृतिक नियम है। सामा-  
 जिक जीवन में एक विशेष काम में कर सकता हूँ तो दूसरा काम तुम कर सकते हो।  
 तुम एक वेद का शासन कर सकते हो तो मैं एक पुतले जूते की मरम्मत कर सकता  
 हूँ किन्तु इस कारण तुम मुझसे बड़े नहीं हो सकते। क्या तुम मेरे जूते की मरम्मत  
 कर सकते हो? मैं क्या वेद का शासन कर सकता हूँ? यह कार्यविभाय स्वाभाविक  
 है। मैं जूते की सिलाई करने में चतुर हूँ तुम बेदपाठ में निपुण हो। यह कोई  
 कारण नहीं कि तुम इस विशेषता के लिए मेरे सिर पर पाँव रखो। तुम यदि हल्का  
 भी करो तो तुम्हारी प्रशंसा और मुझे एक मेघ चुराने पर ही फ़ानी पर छटकना  
 हो ऐसा नहीं हो सकता। हमको समाप्त करना ही इत्ना। जातिविभाग अच्छा  
 है। जीवन-समस्या के समाधान के लिए वही एकमात्र स्वाभाविक उपाय है।  
 मनुष्य अलग अलग वर्गों में विभक्त हूँ यह अतिव्याप्य है। तुम जहाँ भी जाओ  
 जातिविभाय से घुटकाट न निकेया किन्तु इनका अर्थ यह नहीं है कि इन प्रकार

का विशेषाधिकार भी रहेगा। इनको जड से उखाड़ फेंकना होगा। यदि मछुआ को तुम वेदान्त सिखलाओगे तो वह कहेगा, हम और तुम दोनों बराबर हैं। तुम दार्शनिक हो, मैं मछुआ, पर इससे क्या? तुम्हारे भीतर जो ईश्वर है, वही मुझमें भी है। हम यही चाहते हैं कि किसीको कोई विशेष अधिकार प्राप्त न हो, और प्रत्येक मनुष्य की उन्नति के लिए समान सुभीते हो। सब लोगो को उनके भीतर स्थित ब्रह्मतत्त्व सम्बन्धी शिक्षा दो। प्रत्येक व्यक्ति अपनी मुक्ति के लिए स्वयं चेष्टा करेगा।

उन्नति के लिए सबसे पहले स्वाधीनता की आवश्यकता है। यदि तुम लोगो मे से कोई यह कहने का साहस करे कि मैं अमुक स्त्री अथवा अमुक लड़के की मुक्ति के लिए काम करूँगा, तो यह गलत है, हजार बार गलत होगा। मुझसे बार-बार यह पूछा जाता है कि विधवाओ की समस्या के बारे में और स्त्रियों के प्रश्न के विषय मे आप क्या सोचते हैं? मैं इस प्रश्न का अन्तिम उत्तर यह देता हूँ— क्या मैं विधवा हूँ, जो तुम ऐसा निरर्थक प्रश्न मुझसे पूछते हो? क्या मैं स्त्री हूँ, जो तुम बारबार मुझसे यही प्रश्न करते हो? स्त्री जाति के प्रश्न को हल करने के लिए आगे बढ़नेवाले तुम हो कौन? क्या तुम हर एक विधवा और हर एक स्त्री के भाग्यविधाता भगवान् हो? दूर रहो! अपनी समस्याओ का समाधान वे स्वयं कर लेंगी। अरे अत्याचारियो, क्या तुम समझते हो कि तुम सबके लिए सब कुछ कर सकते हो? हट जाओ, दूर रहो! ईश्वर सबकी चिन्ता करेंगे। अपने को सर्वज्ञ समझनेवाले तुम हो कौन? नास्तिको, तुम यह सोचने का दुस्साहस कैसे करते हो कि तुम्हारा ईश्वर पर अधिकार है? क्या तुम जानते नहीं कि प्रत्येक आत्मा ईश्वर ही का स्वरूप है? तुम अपना ही कर्म करो, तुम्हारे लिए तुम्हारे सिर पर बहुत से कर्मों का भार है। नास्तिको! तुम्हारी जाति तुमको आसमान पर चढा दे, तुम्हारा समाज तुम्हारी प्रशंसा के पुल बाँध दे, मूर्ख लोग तुम्हारी तारीफ करें, किन्तु ईश्वर सो नहीं रहे हैं, इस लोक मे या परलोक मे इसका दण्ड तुम्हें अवश्य मिलेगा।

अतएव हर एक स्त्री को, हर एक पुरुष को और सभी को ईश्वर के ही समान देखो। तुम किसी की सहायता नहीं कर सकते, तुम्हें केवल सेवा करने का अधिकार है। प्रभु की सन्तान की, यदि भाग्यवान हो तो, स्वयं प्रभु की ही सेवा करो। यदि ईश्वर के अनुग्रह से उसकी किसी सन्तान की सेवा कर सकोगे, तो तुम धन्य हो जाओगे, अपने ही को बहुत बड़ा मत समझो। तुम धन्य हो, क्योंकि सेवा करने का तुमको अधिकार मिला और दूसरो को नहीं मिला। केवल ईश्वर-पूजा के  
 १ भगवान् को देखना चाहिए, अपनी



नहीं होता। मैंने तुम लोगों से उम दिन कहा था कि जो स्वयं वेदों के प्रकाशक हैं, उन्हीं की दृष्टि के द्वारा वेदों की एकमात्र प्रामाणिक टीका गीता एक ही बार फिर काम के लिए बनी है। यह सबके लिए और जीवन की सभी अवस्थाओं के लिए उपयोगी है। तुम कोई भी काम करो तुम्हारे लिए बरान्त की आवश्यकता है। वेदान्त के इन सब महान् तत्त्वों का प्रचार आवश्यक है, ये केवल अरभ्य में बबरा गिरियुवाओं में बाबू नहीं रहने बकीलों और व्यावाचीयों में प्रार्थना-मन्त्रियों में दरिद्रों की कुटियों में मछुओं के घरों में छात्रों के अध्ययन-स्थानों में—उर्ध्व ही इन तत्त्वों की जन्म होनी और ये काम में काम लायके। हर एक व्यक्ति हर एक संस्थान चाहे जो काम करे, चाहे किस अवस्था में हो—उनकी पुकार सबके लिए है। भय का अब कोई कारण नहीं है। उपनिषदों के सिद्धांतों को मसूर यदि साधारण जन किस प्रकार काम में लायके? इसका उपाय शास्त्रों में बताया गया है। मार्ग अनन्त है धर्म अनन्त है, कोई इसकी सीमा के बाहर नहीं जा सकता। तुम मिष्कट भाव से जो कुछ करते हो तुम्हारे लिए वही अच्छा है। अल्प छोटा कर्म भी यदि अच्छे भाव से किया जाय तो उससे बहुमुत फल की प्राप्ति होती है। अतएव जो जहाँ तक अच्छे भाव से काम कर सके करे। मसूजा यदि अपने को आत्मा समझकर चिन्तन करे, तो वह एक उत्तम मसूजा होया। विद्यार्थी यदि अपने को आत्मा विचारे, तो वह एक श्रेष्ठ विद्यार्थी होना। बकीस यदि अपने को आत्मा समझे तो वह एक अच्छा बकीस होगा। औरों के नियम में भी यही समझो। इसका फल यह होगा कि जातिविभाग अनन्त काब तक रह जायगा क्योंकि विधिधर्म श्रेणियों में विभक्त होना ही समाज का स्वभाव है। पर रहेगा क्या नहीं? विशेष अधिकारों का अस्तित्व न रह जायगा। जातिविभाग प्राकृतिक नियम है। सामाजिक जीवन में एक विशेष काम में कर सकता हूँ तो दूसरा काम तुम कर सकते हो। तुम एक बेश का साधन कर सकते हो तो मैं एक चुपने जूते की मरम्मत कर सकता हूँ किन्तु इस कारण तुम मुझसे बड़े नहीं हो सकते। क्या तुम मेरे जूते की मरम्मत कर सकते हो? मैं क्या बेश का साधन कर सकता हूँ? यह कार्यविभाग स्वाभाविक है। मैं जूते की सिलाई करने में बतुर हूँ तुम बेरपाठ में निपुण हो। यह कोई कारण नहीं कि तुम इस विशेषता के लिए मेरे सिर पर पाँव रखो। तुम यदि हत्या भी करो तो तुम्हारी प्रशंसा और मुझ एक पैर चुपने पर ही फाँसी पर लटकना हो ऐसा नहीं हो सकता। इसको समाप्त करना ही होना। जातिविभाग अच्छा है। अविनाश-अनन्त के अन्तर्गत के लिए नहीं एकमात्र स्वाभाविक उपाय है। मनुष्य अल्प अल्प बनों में विभक्त होगा यह अनिवार्य है। तुम जहाँ भी जाओ जातिविभाग से बचकार न मिलेगा किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि

का विशेषाधिकार भी रहेगा। इनको जड़ से उखाड़ फेंकना होगा। यदि मछुआ को तुम वेदान्त सिखलाओगे तो वह कहेगा, हम और तुम दोनों बराबर हैं। तुम दार्शनिक हो, मैं मछुआ, पर इससे क्या? तुम्हारे भीतर जो ईश्वर है, वही मुझमें भी है। हम यही चाहते हैं कि किसीको कोई विशेष अधिकार प्राप्त न हो, और प्रत्येक मनुष्य की उन्नति के लिए समान सुभीते हो। सब लोगो को उनके भीतर स्थित ब्रह्मतत्त्व सम्बन्धी शिक्षा दो। प्रत्येक व्यक्ति अपनी मुक्ति के लिए स्वयं चेष्टा करेगा।

उन्नति के लिए सबसे पहले स्वाधीनता की आवश्यकता है। यदि तुम लोगो में से कोई यह कहने का साहस करे कि मैं अमुक स्त्री अथवा अमुक लड़के की मुक्ति के लिए काम करूँगा, तो यह गलत है, हजार बार गलत होगा। मुझसे बार-बार यह पूछा जाता है कि विधवाओ की समस्या के बारे में और स्त्रियों के प्रश्न के विषय में आप क्या सोचते हैं? मैं इस प्रश्न का अन्तिम उत्तर यह देता हूँ— क्या मैं विधवा हूँ, जो तुम ऐसा निरर्थक प्रश्न मुझसे पूछते हो? क्या मैं स्त्री हूँ, जो तुम बारबार मुझसे यही प्रश्न करते हो? स्त्री जाति के प्रश्न को हल करने के लिए आगे बढ़नेवाले तुम ही कौन? क्या तुम हर एक विधवा और हर एक स्त्री के भाग्यविधाता भगवान् हो? दूर रहो! अपनी समस्याओ का समाधान वे स्वयं कर लेंगी। अरे अत्याचारियों, क्या तुम समझते हो कि तुम सबके लिए सब कुछ कर सकते हो? हट जाओ, दूर रहो! ईश्वर सबकी चिन्ता करेंगे। अपने को सर्वज्ञ समझनेवाले तुम ही कौन? नास्तिको, तुम यह सोचने का दुस्साहस कैसे करते हो कि तुम्हारा ईश्वर पर अधिकार है? क्या तुम जानते नहीं कि प्रत्येक आत्मा ईश्वर ही का स्वरूप है? तुम अपना ही कर्म करो, तुम्हारे लिए तुम्हारे सिर पर बहुत से कर्मों का भार है। नास्तिको! तुम्हारी जाति तुमको आसमान पर चढा दे, तुम्हारा समाज तुम्हारी प्रशंसा के पुल बाँध दे, मूर्ख लोग तुम्हारी तारीफ करें, किन्तु ईश्वर सो नहीं रहे हैं, इस लोक में या परलोक में इसका दण्ड तुम्हें अवश्य मिलेगा।

अतएव हर एक स्त्री को, हर एक पुरुष को और सभी को ईश्वर के ही समान देखो। तुम किसी की सहायता नहीं कर सकते, तुम्हें केवल सेवा करने का अधिकार है। प्रभु की सन्तान की, यदि भाग्यवान् हो तो, स्वयं प्रभु की ही सेवा करो। यदि ईश्वर के अनुग्रह से उसकी किसी सन्तान की सेवा कर सकोगे, तो तुम धन्य हो जाओगे, अपने ही को बहुत बड़ा मत समझो। तुम धन्य हो, क्योंकि सेवा करने का तुमको अधिकार मिला और दूसरो को नहीं मिला। केवल ईश्वर-पूजा के भाव से सेवा करो। दरिद्र व्यक्तियों में हमको भगवान् को देखना चाहिए, अपनी

ही मुक्ति के लिए उनके निकट जाकर हमें उनकी पूजा करनी चाहिए। अनेक दुःखी और क्लेश प्राणी हमारी मुक्ति के माध्यम हैं, ताकि हम रोगी पागल कोड़ी पापी आदि स्वस्वों में बिचरते हुए प्रभु की सेवा करके अपना उद्धार करें। मेरे सब बड़े गम्भीर हैं और मैं उन्हें फिर दुःखता हूँ कि हम लोगों के जीवन का सर्व-देख सौभाग्य यही है कि हम इन भिन्न भिन्न रूपों में विराजमान भगवान् की सेवा कर सकते हैं। प्रभुत्व से किसीका कल्याण कर सकने की चारणा त्याग दो। जिस प्रकार पीछे के बढ़ने के लिए बस मिट्टी बामु आदि पदार्थों का संवह कर देने पर फिर वह पीछा अपनी प्रकृति के नियमानुसार आवश्यक पदार्थों का ग्रहण माप ही कर लेता है और अपने स्वभाव के अनुसार बढ़ता जाता है उसी प्रकार दूसरों की उन्नति के साधन एकत्र करके उत्तका हित करो।

संसार में ज्ञान के प्रकाश का विस्तार करो प्रकाश सिद्ध प्रकाश लालो। प्रत्येक व्यक्ति ज्ञान के प्रकाश को प्राप्त करे। जब तक सब ज्ञान भगवान् के निकट न पहुँच जायें तब तक तुम्हारा काम सेप नहीं हुआ है। उरीषों में ज्ञान का विस्तार करो धनियों पर और भी अधिक प्रकाश लालो क्योंकि बच्चों की अपेक्षा धनियों को अधिक प्रकाश की आवश्यकता है। भण्ड लोगों को भी प्रकाश दिखाओ। शिक्षित मनुष्यों के लिए और अधिक प्रकाश चाहिए, क्योंकि आवश्यक शिक्षा का मिथ्याभिमान खूब प्रचल ही रहा है। इसी तरह सबके निकट प्रकाश का विस्तार करो। और सेप सब भगवान् पर छोड़ दो क्योंकि स्वयं भगवान् के शब्दों में—

कर्मभोवाधिकारस्ते मा कलेषु कदाचन।

मा कर्मकस्तहेतुर्मूर्ता ते सर्वोत्पत्त्यकर्मणि॥

(गीता २।४७)

—'कर्म में ही तुम्हारा अधिकार है, फल में नहीं तुम इस भाव से कर्म मत करो जिससे तुम्हें फल-भोग करना पड़े। तुम्हारी प्रवृत्ति कर्म त्याग करने की और न हो।

सकड़ो पुन पूर्व हमारे पूर्वपुंसों को जिस प्रभु ने ऐसे उदात्त सिद्धान्त सिद्धसाये हैं, वे हमें उन आदर्शों को काम में आने की सक्ति दें और हमारी सहायता करें।

## भारत के महापुरुष

[मद्रास में दिया हुआ भाषण]

भारतीय महापुरुषों के विषय में कुछ कहने के पहले मुझे उस समय का स्मरण होता है, जिस समय का पता इतिहास को नहीं मिला, जिस अतीत के अन्धकार में पैठकर भेद खोलने का पौराणिक परम्पराएँ वृथा प्रयत्न करती हैं। भारत में इतने महापुरुष पैदा हुए हैं कि उनकी गणना नहीं हो सकती, और महापुरुष पैदा करना छोड़ हज़ारों वर्षों से इस हिन्दू जाति ने और किया ही क्या? अतः इन महर्षियों में से युगान्तर करनेवाले कुछ सर्वश्रेष्ठ आचार्यों का वर्णन अर्थात् उनके चरित्र की आलोचना करके जो कुछ मैंने समझा है, वही तुम्हारे समक्ष प्रस्तुत करूँगा।

पहले अपने शास्त्रों के सम्बन्ध में हमें कुछ जान लेना चाहिए। हमारे शास्त्रों में सत्य के दो आदर्श हैं। पहला वह है, जिसे हम सनातन सत्य कहते हैं, और दूसरा वह, जो पहले की तरह प्रामाणिक न होने पर भी, विशेष विशेष देश, काल और पात्र पर प्रयुज्य है। श्रुति अथवा वेदों में जीवात्मा और परमात्मा के स्वरूप का पारस्परिक सम्बन्ध वर्णित है। मन्वादि स्मृतियों में, याज्ञवल्क्यादि संहिताओं में, पुराणों और तन्त्रों में दूसरे प्रकार का सत्य है। ये दूसरी कोटि के ग्रन्थ और शिक्षाएँ श्रुति के अधीन हैं, क्योंकि स्मृति और श्रुति में यदि विरोध हो तो श्रुति को ही प्रमाणस्वरूप ग्रहण करना होगा। शास्त्रसम्मति यही है। अभिप्राय यह कि श्रुति में जीवात्मा की नियति और उसके चरम लक्ष्यविषयक मुख्य सिद्धान्तों का वर्णन है, और इनकी व्याख्या तथा विस्तार का काम स्मृतियों और पुराणों पर छोड़ दिया गया है—वे प्रथमोक्त सत्य के ही सविस्तर वर्णन हैं। साधारणतया मार्ग-निर्देश के लिए श्रुति ही पर्याप्त है। धार्मिक जीवन बिताने के लिए सारतत्त्व के विषय में श्रुति के कहे उपदेशों से अधिक न और कुछ कहा जा सकता है, और न कुछ जानने की आवश्यकता ही है। इस विषय में जो कुछ आवश्यक है, वह श्रुति में है, जीवात्मा की सिद्धि-प्राप्ति के लिए जो जो उपदेश चाहिए, उनका सम्पूर्ण वर्णन श्रुति में है। केवल विशेष अवस्थाओं के विधान श्रुति में नहीं है। समय समय पर स्मृतियों ने इनकी व्यवस्था दी है।

श्रुति की एक अन्य विशेषता यह है कि अनेक महर्षियों ने श्रुति में विभिन्न सत्य सकलित किये हैं, इनमें पुरुष अधिक हैं, किन्तु कुछ महिलाएँ भी हैं। उनके

ही मुक्ति के लिए उनके निकट जाएँ हमें उनकी पूजा करनी चाहिए। अनेक पुत्री और कंगाल प्राणी हमारी मुक्ति के माध्यम हैं, ताकि हम रोमी पागल कोड़ी पापी आदि स्वर्णों में विचरते हुए प्रभु की सेवा करके अपना उद्धार करें। मेरे शब्द बड़े मन्गीर हैं और मैं उन्हें फिर ब्रह्मता हूँ कि हम लोगों के जीवन का सर्व श्रेष्ठ सौभाग्य यही है कि हम इन मित्र मित्र स्पर्णों में विराजमान भगवान् की सेवा कर सकते हैं। प्रभुत्व से किसीका कल्याण कर सकते की धारणा त्याग दो। जिस प्रकार पीने के बदन के लिए जल मिट्टी वायु आदि पदार्थों का संकलन कर देने पर फिर वह पीना अपनी प्रकृति के नियमानुसार आवश्यक पदार्थों का ग्रहण आप ही कर लेता है और अपने स्वभाव के अनुसार बढ़ता जाता है उसी प्रकार बूझों की उत्पत्ति का साधन एकत्र करके उनका हित करो।

संसार में ज्ञान के प्रकाश का विस्तार करो प्रकाश सिद्धि प्रकाश लालो। प्रत्येक व्यक्ति ज्ञान के प्रकाश को प्राप्त करे। जब तक सब लोग भगवान् के निकट न पहुँच जायें तब तक तुम्हारा कार्य शेष नहीं हुआ है। अज्ञानों में ज्ञान का विस्तार करो धर्मियों पर और भी अधिक प्रकाश लालो क्योंकि बच्चों की अपेक्षा बच्चियों को अधिक प्रकाश की आवश्यकता है। अज्ञानों को भी प्रकाश दिखाओ। शिक्षित मनुष्यों के लिए और अधिक प्रकाश चाहिए, क्योंकि आजकल धिक्का का मिथ्याभिमान बुरा प्रबल हो रहा है। इसी तरह सबके निकट प्रकाश का विस्तार करो। और देव सब भगवान् पर छोड़ दो क्योंकि स्वयं भगवान् के शब्दों में—

कर्मव्योवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

मा कर्मफलमनुर्ता तै सर्वोऽस्त्यकर्मणि॥

(गीता २।४७)

—‘कर्म में ही तुम्हारा अधिकार है, फल में नहीं तुम इस भाव से कर्म मत करो जिससे तुम्हें फल-भोग करना पड़े। तुम्हारी प्रकृति कर्म त्याग करने की ओर न हो।

सकड़ों दुःख पूर्व हमारे पूर्वपुरुषों को जिस प्रभु ने ऐसे उदात्त सिद्धान्त सिखाये हैं, वे हमें उन आदर्शों को काम में आने की शक्ति हैं और हमारी सहायता करें।

## भारत के महापुरुष

[मद्रास में दिया हुआ भाषण]

भारतीय महापुरुषों के विषय में कुछ कहने के पहले मुझे उस समय का स्मरण होता है, जिस समय का पता इतिहास को नहीं मिला, जिस अतीत के अन्वकार में पैठकर भेद खोलने का पौराणिक परम्पराएँ वृथा प्रयत्न करती हैं। भारत में इतने महापुरुष पैदा हुए हैं कि उनकी गणना नहीं हो सकती, और महापुरुष पैदा करना छोड़ हज़ारों वर्षों से इस हिन्दू जाति ने और किया ही क्या? अतः इन महर्षियों में से युगान्तर करनेवाले कुछ सर्वश्रेष्ठ आचार्यों का वर्णन अर्थात् उनके चरित्र की आलोचना करके जो कुछ मैंने समझा है, वही तुम्हारे समक्ष प्रस्तुत करूँगा।

पहले अपने शास्त्रों के सम्बन्ध में हमें कुछ जान लेना चाहिए। हमारे शास्त्रों में सत्य के दो आदर्श हैं। पहला वह है, जिसे हम सनातन सत्य कहते हैं, और दूसरा वह, जो पहले की तरह प्रामाणिक न होने पर भी, विशेष विशेष देश, काल और पात्र पर प्रयुज्य है। श्रुति अथवा वेदों में जीवात्मा और परमात्मा के स्वरूप का पारस्परिक सम्बन्ध वर्णित है। मन्वादि स्मृतियों में, याज्ञवल्क्यादि संहिताओं में, पुराणों और तन्त्रों में दूसरे प्रकार का सत्य है। ये दूसरी कोटि के ग्रन्थ और शिक्षाएँ श्रुति के अधीन हैं, क्योंकि स्मृति और श्रुति में यदि विरोध हो तो श्रुति को ही प्रमाणस्वरूप ग्रहण करना होगा। शास्त्रसम्मत यही है। अभिप्राय यह कि श्रुति में जीवात्मा की नियति और उसके चरम लक्ष्यविषयक मुख्य सिद्धान्तों का वर्णन है, और इनकी व्याख्या तथा विस्तार का काम स्मृतियों और पुराणों पर छोड़ दिया गया है—वे प्रथमोक्त सत्य के ही सविस्तर वर्णन हैं। साधारणतया मार्ग-निर्देश के लिए श्रुति ही पर्याप्त है। धार्मिक जीवन बिताने के लिए सारतत्त्व के विषय में श्रुति के कहे उपदेशों से अधिक न और कुछ कहा जा सकता है, और न कुछ जानने की आवश्यकता ही है। इस विषय में जो कुछ आवश्यक है, वह श्रुति में है, जीवात्मा की सिद्धि-प्राप्ति के लिए जो जो उपदेश चाहिए, उनका सम्पूर्ण वर्णन श्रुति में है। केवल विशेष अवस्थाओं के विधान श्रुति में नहीं है। समय समय पर स्मृतियों ने इनकी व्यवस्था दी है।

श्रुति की एक अन्य विशेषता यह है कि अनेक महर्षियों ने श्रुति में विभिन्न सत्य सकलित किये हैं, इनमें पुरुष अधिक हैं, किन्तु कुछ महिलाएँ भी हैं। उनके

व्यक्तिगत जीवन के सम्बन्ध में अथवा उनके जन्म-काल आदि के विषय में हमें बहुत कम ज्ञान है, किन्तु उनके सर्बोत्कृष्ट विचार जिन्हें श्रेष्ठ आधिष्कार कहना ही उपयुक्त होगा हमारे देश के धर्म-साहित्य क्षेत्रों में लेखन और रचित हैं। पर स्मृतियों में ऋषियों की जीवनी और प्रायः उनके कार्यकाल विशेष रूप से देखने को मिलते हैं स्मृतियों में ही हम अद्भुत महाशक्तिवाली प्रभावोत्पादक और संसार को संघामित करनेवाले व्यक्तियों का सर्वप्रथम परिचय प्राप्त करते हैं। कमी कमी उनके समुद्र और जगज्जल चरित्र उनके उपदेशों से भी अधिक उल्लेख्य जान पड़ते हैं।

हमारे धर्म में निर्गुण सगुण ईश्वर की शिक्षा है यह उसकी एक विशेषता है, जिस हमें समझना चाहिए। उसमें व्यक्तिगत सम्बन्धों से रहित अनन्त समाप्त सिद्धान्तों के साथ साथ असंख्य व्यक्तियों अर्थात् अवतारों के भी उपदेश हैं परन्तु मुक्ति अथवा वेद ही हमारे धर्म के मुख्य स्रोत हैं जो पूर्णतः अपौरुषेय हैं। बड़े बड़े आचार्यों बड़े बड़े अवतारों और महर्षियों का उल्लेख स्मृतियों और पुराणों में है। और ध्यान देने योग्य एक बात यह भी है कि केवल हमारे धर्म को छोड़कर संसार में प्रत्येक अन्य धर्म किसी धर्म-प्रवर्तक अथवा धर्म-प्रवर्तकों के जीवन से ही अविच्छिन्न रूप से सम्बद्ध है। ईसाई धर्म ईसा के, इस्लाम धर्म मुहम्मद के बौद्ध धर्म बुद्ध के जैन धर्म जिनों के और अग्याय्य धर्म अग्याय्य व्यक्तियों के जीवन के ऊपर प्रतिष्ठित हैं। इसलिए इन महापुरुषों के जीवन के ऐतिहासिक प्रमाणों को लेकर उन धर्मों में जो संश्लेष वाद-विवाद होता है, वह स्वामाजिक है। यदि कभी इन प्राचीन महापुरुषों के अस्तित्वविषयक ऐतिहासिक प्रमाण दुर्लभ होते हैं तो उनकी धर्मस्त्री अट्टाक्षिका गिरकर चूर चूर हो जाती है। हमारा धर्म व्यक्तिविशेष पर प्रतिष्ठित न होकर समाप्त सिद्धान्तों पर प्रतिष्ठित है, अतः हम उस विपत्ति से मुक्त हैं। किसी महापुरुष यहाँ तक कि किसी अवतार के कथन को ही तुम अपना धर्म मानते हो ऐसा नहीं है। कृष्ण के बचनों से वेदों की प्रामाणिकता सिद्ध नहीं होती किन्तु वे वेदों के अनुगामी हैं, इसीसे कृष्ण के वे वाक्य प्रामाण्यस्वरूप हैं। कृष्ण वेदों के प्रमाण नहीं हैं, किन्तु वेद ही कृष्ण के प्रमाण हैं। कृष्ण की महानता इस बात में है कि वेदों के जितने प्रचारक हुए हैं, उनमें सर्वश्रेष्ठ वे ही हैं। अग्याय्य अवतार और समस्त महर्षियों के सम्बन्ध में भी ऐसा ही समझो। हमारा प्रथम सिद्धान्त है कि मनुष्य की पूर्णता-माप्ति के लिए, उसकी मुक्ति के लिए, जो कुछ आवश्यक है उसका वर्णन वेदों में है। कोई और नया आधिष्कार नहीं हो सकता। समस्त ज्ञान के चरम अन्त्यस्वरूप पूर्ण एकरूप के जाने तुम कभी बढ़ नहीं सकते। इस पूर्ण एकरूप का आधिष्कार बहुत पहले ही वेदों में किया है इसके अधिक अर्थ

होना असम्भव है। 'तत्त्वमसि' का आविष्कार हुआ कि आध्यात्मिक ज्ञान सम्पूर्ण हो गया। यह 'तत्त्वमसि' वेदो में ही है। विभिन्न देश, काल, पात्र के अनुसार समय समय की केवल लोकशिक्षा शेष रह गयी। इस प्राचीन सनातन मार्ग में मनुष्यो का चलना ही शेष रह गया, इसीलिए समय समय पर विभिन्न महापुरुषो और आचार्यों का अम्युदय होता है। गीता में श्री कृष्ण की इस प्रसिद्ध वाणी के अतिरिक्त उस तत्त्व का वर्णन ऐसे सुन्दर और स्पष्ट रूप से कही नहीं हुआ है

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।

अम्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

(गीता ४।७)

—हे भारत, जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब मैं धर्म की रक्षा और अधर्म के नाश के लिए समय समय पर अवतार ग्रहण करता हूँ। यही भारतीय धारणा है।

इससे निष्कर्ष क्या निकलता है? एक ओर ये सनातन तत्त्व हैं, जो स्वतः प्रमाण हैं, जो किसी प्रकार की युक्ति के ऊपर नहीं टिके हैं, जो बड़े से बड़े ऋषियों के अथवा तेजस्वी से तेजस्वी अवतारों के वाक्यों के ऊपर नहीं ठहरे हैं। यहाँ हमारा कहना है कि भारतीय विचारों की उक्त विशेषता के कारण हम वेदान्त को ही ससार का एकमात्र सार्वभौम धर्म कहने का दावा कर सकते हैं और यह ससार का एकमात्र वर्तमान सार्वभौम धर्म है, क्योंकि यह व्यक्तिविशेष के स्थान पर सिद्धान्त की शिक्षा देता है। व्यक्तिविशेष के चलाये हुए धर्म को ससार की समग्र मानव जाति ग्रहण नहीं कर सकती। अपने ही देश में हम देखते हैं कि यहाँ कितने महापुरुष हो गये हैं। हम एक छोटे से शहर में देखते हैं कि उस शहर के लोग अनेक व्यक्तियों को अपना आदर्श चुनते हैं। अतः समस्त ससार का एकमात्र आदर्श मुहम्मद, बुद्ध अथवा ईसा मसीह ऐसा कोई एक व्यक्ति किस प्रकार हो सकता है? अथवा समस्त नैतिकता, आचरण, आध्यात्मिकता तथा धर्म का सत्य एक व्यक्ति, केवल एक व्यक्ति की आज्ञापति पर किस प्रकार आधारित हो सकता है? वेदान्त धर्म में इस प्रकार किसी व्यक्तिविशेष के वाक्यों को प्रमाण मान लेने की आवश्यकता नहीं। मनुष्य की सनातन प्रकृति ही इसका प्रमाण है, इसका आचार-शास्त्र मानव के सनातन आध्यात्मिक एकत्व पर प्रतिष्ठित है, जो चेष्टा द्वारा प्राप्त नहीं होता, किन्तु पहले ही से लब्ध है। दूसरी ओर हमारे ऋषियों ने अत्यन्त प्राचीन काल से ही समझ लिया था कि मानव जाति का अधिकांश किसी व्यक्तित्व पर निर्भर करता है। उनको किसी न किसी रूप में व्यक्तिविशेष ईश्वर अवश्य चाहिए।



जिन बुद्धदेव ने व्यक्तिविशेष ईश्वर के विद्वत् प्रचार किया या उनके बेहूत्याग के पदचात् पचास वर्ष में ही उनका शिष्यो में उनको ईश्वर मान लिया। किन्तु व्यक्ति-विशेष ईश्वर की भी आवश्यकता है और हम जानते हैं कि किसी व्यक्तिविशेष ईश्वर की कृपा कल्पना से बढ़कर जीवित ईश्वर इस लोक में समय समय पर उत्पन्न होकर हम लोगों के साथ रहते भी हैं। जब कि काल्पनिक व्यक्तिविशेष ईश्वर ही सी में निगमान्त प्रतिपात उपासना ने अयोग्य ही होते हैं। किसी प्रकार के काल्पनिक ईश्वर की अपेक्षा अपनी काल्पनिक रचना की अपेक्षा अर्थात् ईश्वर सम्बन्धी जो भी धारणा हम बना सकते हैं उसकी अपेक्षा ने पूजा के अधिक योग्य हैं। ईश्वर के सम्बन्ध में हम सोच जो भी धारणा रख सकते हैं उसकी अपेक्षा की कल्प्य बहुत बढ़े हैं। हम अपने मन में जितने उच्च आदर्श का विचार कर सकते हैं उसकी अपेक्षा बुद्धदेव अधिक उच्च आदर्श हैं जीवित आदर्श हैं। इसीलिए सब प्रकार के काल्पनिक देवताओं को परम्पुत करके वे फिर काल से मनुष्यों द्वारा पूजे जा रहे हैं।

हमारे ऋषि यह जानते थे इसीलिए उन्होंने समस्त भारतवासियों के लिए इन महापुरुषों की इन अवतारों की पूजा करने का मार्ग खोला है। इतना ही नहीं जो हमारे सर्वश्रेष्ठ अवतार हैं, उन्होंने और भी आगे बढ़कर कहा है

यद्यत् विभूतिस्तु सर्वं श्रीमद्भितमेव वा ।  
तत्तदेवावयञ्च त्वं मम तेर्षोऽसम्भवम् ॥  
(गीता १. १४१)

— मनुष्यों ने जहाँ अद्भुत आध्यात्मिक शक्ति का प्रकाश होता है समस्त वहाँ में वर्तमान हैं। मुझसे ही इस आध्यात्मिक शक्ति का प्रकाश होता है।

मह हिन्दुओं के लिए समस्त देशों के समस्त अवतारों की उपासना करने का द्वार खोल देता है। हिन्दू किसी भी देश के किसी भी शत्रु-महात्मा की पूजा कर सकते हैं। हम बहुधा ईसाइयों के गिरणों और मुसलमानों की मस्जिदों में जाकर उपासना भी करते हैं। यह अच्छा है। हम इस तरह उपासना क्यों न करें? मैंने पहले ही कहा है हमारा धर्म सर्वमौम है। यह इतना उदार, इतना प्रबल है कि यह सब प्रकार के आदर्शों को आदर्शपूर्वक ग्रहण कर सकता है। संसार में धर्मों के जितने आदर्श हैं उनको इसी समग्र ग्रहण किया जा सकता है और भविष्य में जो समस्त विभिन्न आदर्श होंगे उनके लिए हम धर्म के साथ प्रतीक्षा कर सकते हैं। उनको भी इसी प्रकार ग्रहण करना होना बेबान्त धर्म ही अपनी विशाल भुजाओं को फैलाकर सबको हृदय से जपा लेगा।

ईश्वर के अवतारस्वरूप महान् ऋषियों के सम्बन्ध में हमारी सम्मन्य श्री

धारणा है। इनकी अपेक्षा एक प्रकार के नीचे दर्जे के महापुरुष और हैं। वेदों में ऋषि शब्द का उल्लेख बारम्बार पाया जाता है और आजकल तो यह एक प्रचलित शब्द हो गया है। आर्ष वाक्य विशेष प्रमाण माने जाते हैं। हमें इसका भाव समझना चाहिए। ऋषि का अर्थ है मन्त्रद्रष्टा अर्थात् जिमने किमी तत्त्व का दर्शन किया हो। अत्यन्त प्राचीन काल से ही प्रश्न पूछा जाता है कि धर्म का प्रमाण क्या है? बाह्य इन्द्रियो में धर्म की सत्यता प्रमाणित नहीं होती, यह अत्यन्त प्राचीन काल से ही ऋषियों ने कहा है यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह। — 'मन के सहित वाणी जिमको न पाकर जहाँ से लौट आती है।' न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनः । — 'जहाँ आँवों की पहुँच नहीं, जहाँ वाणी भी नहीं जा सकती और मन भी नहीं जा सकता।' युग युग में यही घोषणा रही है। आत्मा का अस्तित्व, ईश्वर का अस्तित्व, अनन्त जीवन, मनुष्यों का चरम लक्ष्य आदि प्रश्नों का उत्तर बाह्य प्रकृति नहीं दे सकेगी। यह मन सदा परिवर्तनशील है, मानो यह मदा बहता जा रहा है। यह परिमित है, मानो इसके छोटे छोटे टुकड़े कर दिये गये हैं। यह प्रकृति किस प्रकार उस अनन्त, अपरिवर्तनशील, अखंड, अविभाज्य सनातन के विषय में कुछ कह सकती है? यह कदापि सम्भव नहीं। इतिहास इसका साक्षी है कि चैतन्यहीन जड पदार्थ से इन प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करने की मनुष्य जाति ने जब कभी वृथा चेष्टा की है, परिणाम कितना भयानक हुआ है। फिर यह वेदोक्त ज्ञान कहाँ से आया? ऋषि होने में यह ज्ञान प्राप्त होता है। यह ज्ञान इन्द्रियो में नहीं है। पर क्या इन्द्रियाँ ही मनुष्यों के लिए सब कुछ हैं? यह कहने का किसे साहस है कि इन्द्रियाँ ही सारसर्वस्व हैं? हमारे जीवन में, हममें से प्रत्येक के जीवन में, सम्भवतः जब हमारे सामने ही किसी प्रियजन की मृत्यु हो जाती है, जब हमको कोई आघात पहुँचता है अथवा जब अत्यधिक आनन्द हमको प्राप्त होता है, उसमें शान्ति के क्षण आते हैं। अनेक दूसरे अवसरों पर ऐसा भी होता है कि मन स्थिर होकर क्षण भर के लिए अपने सच्चे स्वरूप का अनुभव करता है, उस अनन्त की झलक पा जाता है, जहाँ न मन की पहुँच है और न शब्दों की। साधारण जनो के भी जीवन में ऐसा होता है, पर इसको अभ्यास के द्वारा प्रगाढ़, स्थिर और पूर्ण रूप देना होगा। युगो पहले ऋषियों ने आविष्कार किया था कि आत्मा न तो इन्द्रियो द्वारा ही बद्ध है और न किसी सीमा से ही घिर सकती है, केवल इतना ही नहीं, वह इन्द्रियग्राह्य ज्ञान के द्वारा भी सीमाबद्ध नहीं हो सकती। हमें समझना होगा कि ज्ञान उस आत्मारूपी अनन्त शृंखला का एक क्षुद्र अंश-मात्र है। सत्ता ज्ञान से अभिन्न नहीं है, ज्ञान उसी सत्ता का एक अंश है। ऋषियों ने ज्ञान की अतीत भूमि में निर्भय होकर

जिन बुद्धदेव ने व्यक्तिविशेष ईश्वर के बिना प्रचार किया था उनके देहत्याग के पश्चात् पचास वर्षों में ही उनके शिष्यों ने उनको ईश्वर मान लिया। किन्तु व्यक्ति-विशेष ईश्वर की भी आवश्यकता है और हम जानते हैं कि किसी व्यक्तिविशेष ईश्वर की पूजा कल्पना से बढकर जीवित ईश्वर इस लोक में समय समय पर उत्पन्न होकर हम लोगों के साथ रहते भी हैं जब कि कास्मिक व्यक्तिविशेष ईश्वर तो ही में नियमानुसारे प्रतिघट उपासना के अयोग्य ही होते हैं। किसी प्रकार के कास्मिक ईश्वर की अपेक्षा अपनी कास्मिक रचना की अपेक्षा अर्थात् ईश्वर सम्बन्धी जो भी धारणा हम बना सकते हैं, उसकी अपेक्षा के पूजा के अधिक योग्य हैं। ईश्वर के सम्बन्ध में हम सोच जो भी धारणा रख सकते हैं, उसकी अपेक्षा भी कृप्य बहुत बड़े हैं। हम अपने मन में जितने उच्च आदर्श का विचार कर सकते हैं, उसकी अपेक्षा बुद्धदेव अधिक उच्च आदर्श हैं, जीवित आदर्श हैं। इसीलिए सब प्रकार के कास्मिक देवताओं को पराश्रित करके वे चिर काल से मनुष्यों द्वारा पूज जा रहे हैं।

हमारे ऋषि यह जानते थे इसीलिए उन्होंने समस्त मारुतवासियों के लिए इन महापुरुषों की इन अक्षरों की पूजा करने का मार्ग खोला है। इतना ही नहीं जो हमारे सर्वश्रेष्ठ अवतार हैं उन्होंने और भी आगे बढकर कहा है

यच्छु विभूतिम् सत्त्वं श्रीमद्भितमेव वा ।  
 तत्तदेवावाञ्छ त्वं मम तेर्षोऽसम्ममम् ॥  
 (गीता १ । ४१)

—‘मनुष्यों में जहाँ अद्भुत आध्यात्मिक शक्ति का प्रकाश होता है समझो वहाँ मैं वर्तमान हूँ मुझसे ही इस आध्यात्मिक शक्ति का प्रकाश होता है।

यह हिन्दुओं के लिए समस्त देवों के समस्त अवतारों की उपासना करने का द्वार खोल देता है। हिन्दू किसी भी देव के किसी भी साधु-महात्मा की पूजा कर सकते हैं। हम बहुधा ईसाइयों के विरजों और मुसलमानों की मस्जिदों में जाकर उपासना भी करते हैं। यह अच्छा है। हम इस तरह उपासना क्यों न करें ? मने पहले ही कहा है, हमारा धर्म सार्वभौम है। यह इतना उदार, इतना प्रगल्भ है कि यह सब प्रकार के आदर्शों को आदर्शपूर्वक ग्रहण कर सकता है। संसार में धर्मों के जितने आदर्श हैं उनको इसी समय ग्रहण किया जा सकता है और भविष्य में जो समस्त विभिन्न आदर्श होंगे उनके लिए हम धर्म के साथ प्रतीक्षा कर सकते हैं। उनको भी इसी प्रकार ग्रहण करना होना बेदान्त धर्म ही अपनी विज्ञान मूर्तियों की रक्षाकर सबको हृदय से लया लेना।

ईश्वर के अवताररक्षण महान् ऋषियों के सम्बन्ध में हमारी समझ यही

धारणा है। इनकी अपेक्षा एक प्रकार के नीचे दर्जे के महापुरुष और हैं। वेदों में ऋषि शब्द का उल्लेख बारम्बार पाया जाता है और आजकल तो यह एक प्रचलित शब्द हो गया है। आर्ष वाक्य विरोध प्रमाण माने जाते हैं। हमें इसका भाव समझना चाहिए। ऋषि का अर्थ है मनद्रष्टा अर्थात् जिमने किमी तत्त्व का दर्शन किया हो। अत्यन्त प्राचीन काल में ही प्रश्न पूछा जाता है कि वर्म का प्रमाण क्या है? वाह्य इन्द्रियों में वर्म की मत्पता प्रमाणित नहीं होती, यह अत्यन्त प्राचीन काल से ही ऋषियों ने कहा है यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह। — 'मन के महित वाणी जिमको न पाकर जहाँ से लौट आती है।' न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मन । — 'जहाँ आँखों की पहुँच नहीं, जहाँ वाणी भी नहीं जा सकती और मन भी नहीं जा सकता।' युग युग से यही घोषणा रही है। आत्मा का अस्तित्व, ईश्वर का अस्तित्व, अनन्त जीवन, मनुष्यों का चरम लक्ष्य आदि प्रश्नों का उत्तर वाह्य प्रकृति नहीं दे सकेगी। यह मन सदा परिवर्तनशील है, मानो यह सदा बहता जा रहा है। यह परिमित है, मानो इसके छोटे छोटे टुकड़े कर दिये गये हैं। यह प्रकृति किस प्रकार उस अनन्त, अपरिवर्तनशील, अखड, अविभाज्य सनातन के विषय में कुछ कह सकती है? यह कदापि सम्भव नहीं। इतिहास इसका साक्षी है कि चैतन्यहीन जड पदार्थ से इन प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करने की मनुष्य जाति ने जब कभी वृथा चेष्टा की है, परिणाम कितना भयानक हुआ है। फिर यह वेदोक्त ज्ञान कहाँ से आया? ऋषि होने में यह ज्ञान प्राप्त होता है। यह ज्ञान इन्द्रियों में नहीं है। पर क्या इन्द्रियाँ ही मनुष्यों के लिए सब कुछ हैं? यह कहने का किसे साहस है कि इन्द्रियाँ ही सारसर्वस्व हैं? हमारे जीवन में, हममें से प्रत्येक के जीवन में, सम्भवतः जब हमारे सामने ही किसी प्रियजन की मृत्यु हो जाती है, जब हमको कोई आघात पहुँचता है अथवा जब अत्यधिक आनन्द हमको प्राप्त होता है, उसमें शान्ति के क्षण आते हैं। अनेक दूसरे अवसरों पर ऐसा भी होता है कि मन स्थिर होकर क्षण भर के लिए अपने सच्चे स्वरूप का अनुभव करता है, उस अनन्त की झलक पा जाता है, जहाँ न मन की पहुँच है और न शब्दों की। साधारण जनो के भी जीवन में ऐसा होता है, पर इसको अम्याम के द्वारा प्रगाढ, स्थिर और पूर्ण रूप देना होगा। युगों पहले ऋषियों ने आविष्कार किया था कि आत्मा न तो इन्द्रियों द्वारा ही बद्ध है और न किसी सीमा से ही घिर सकती है, केवल इतना ही नहीं, वह इन्द्रियग्राह्य ज्ञान के द्वारा भी सीमाबद्ध नहीं हो सकती। हमें समझना होगा कि ज्ञान उस आत्मारूपी अनन्त शृङ्खला का एक क्षुद्र अंश-मात्र है। सत्ता ज्ञान से अभिन्न नहीं है, ज्ञान उसी सत्ता का एक अंश है। ऋषियों ने ज्ञान की अतीत भूमि में निर्भय होकर

आत्मा का अनुसन्धान किया था। ज्ञान पंचेन्द्रियों द्वारा सीमाबद्ध है। आध्यात्मिक सत्य के सत्य को प्राप्त करने के लिए मनुष्यों को ज्ञान की अतीत भूमि में इन्द्रियों के परे जाना होगा। और इस समय भी ऐसे मनुष्य हैं, जो पंचेन्द्रियों की सीमा के परे जा सकते हैं। वे ही ऋषि कहलाते हैं क्योंकि उन्होंने आध्यात्मिक सत्यों का साक्षात्कार किया है।

अपने सामने की इस मेधा को जिस प्रकार हम प्रत्यक्ष प्रमाण से जानते हैं उसी तरह वेदोक्त सत्यों का प्रमाण भी प्रत्यक्ष अनुभव है। यह हम इन्द्रियों से बेस रहे है और आध्यात्मिक सत्यों का भी हम जीवात्मा की जानातीत अवस्था में साक्षात् करते हैं। ऐसा ऋषित्व प्राप्त करना वेद काष्ठ सिंग अथवा जातिविधेय के ऊपर निर्भर नहीं करता। वास्तव्यपन निर्भयतापूर्वक बोधना करते हैं कि यह ऋषित्व ऋषियों की सत्तानों आर्य-अनायीं यहाँ तक कि म्लेच्छों की भी साधारण सम्पत्ति है।

यही वेदा का ऋषित्व है। हमको भारतीय धर्म के इस आवर्ष को सर्वथा स्मरण रखना होगा और मेरी इच्छा है कि संसार की अन्य जातियाँ भी इस आवर्ष को समझकर भाव रखें क्योंकि इससे धार्मिक लड़ाई-झगड़े कम हो पायेंगे। धास्व धर्मों में धर्म नहीं होता अथवा सिद्धान्तों मूलधारों धर्मियों तथा ठाकिक उचितियों में भी धर्म की प्राप्ति नहीं होती। धर्म तो स्वयं साक्षात्कार करने की वस्तु है। ऋषि होना होगा। ऐ मेरे मित्रो जब तक तुम ऋषि नहीं बनोगे जब तक आध्यात्मिक सत्य के धाय साक्षात् नहीं होगा निश्चय है कि जब तक तुम्हारा धार्मिक जीवन आरम्भ नहीं हुआ। जब तक तुम्हारी यह अतिवैधन (जागरूकता) अवस्था आरम्भ नहीं होती जब तक धर्म केवल कहने ही की बात है, जब तक यह केवल धर्म-प्राप्ति के लिए तैयार होना ही है। तुम केवल दूसरों से सुनी सुनायी बातों को बुझाते दिखाते नर हो और यहाँ बुद्ध का कुछ ब्राह्मणों से बाद-विवाद करते धर्म का मुन्दर कपल कापू होता है। ब्राह्मणों ने बुद्धदेव के पास जाकर ब्रह्म के स्वरूप पर प्रश्न किये। उक्त महापुरुष ने उन्हींसे प्रश्न किया "आपने क्या ब्रह्म को देखा है? उन्होंने कहा "नहीं हमने ब्रह्म को नहीं देखा। बुद्धदेव ने पुनः उनसे प्रश्न किया "आपके पिता न क्या उसको देखा है? — 'नहीं उन्होंने भी नहीं देखा। "क्या आपके पितामह ने उसको देखा है? — हम समझते हैं कि उन्होंने भी उसको नहीं देखा। जब बुद्धदेव ने कहा 'मित्रो आपके पिता पितामहों ने भी जिसकी नहीं देखा, येर पुरर के विषय पर आप किस प्रकार विचार करते हैं? बुद्धों को पता लगने की चेष्टा कर रहे हैं? नमस्त तगार यही कर रहा है। वेदात्म की भाषा में हम कहेंगे—नायनभवा प्रबचनेन लब्धो न वैषया न बहृना भूतेन।

—‘यह आत्मा वागाडम्बर से प्राप्त नहीं की जा सकती, प्रखर बुद्धि से भी नहीं, यहाँ तक कि बहुत वेदपाठ से भी उसकी प्राप्ति करना सम्भव नहीं।’

ससार की समस्त जातियों से वेदों की भाषा में हमको कहना होगा तुम्हारा लड़ना और झगडना वृथा है, तुम जिस ईश्वर का प्रचार करना चाहते हो, क्या तुमने उसको देखा है? यदि तुमने उसको नहीं देखा तो तुम्हारा प्रचार वृथा है, जो तुम कहते हो, वह स्वयं नहीं जानते, और यदि तुम ईश्वर को देख लोगे तो तुम झगडा नहीं करोगे, तुम्हारा चेहरा चमकने लगेगा। उपनिषदों के एक प्राचीन ऋषि ने अपने पुत्र को ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने के लिए गुरु के पास भेजा था। जब लडका वापस आया, तो पिता ने पूछा, “तुमने क्या सीखा?” पुत्र ने उत्तर दिया, “अनेक विद्याएँ सीखी हैं।” पिता ने कहा, “यह कुछ नहीं है, जाओ, फिर वापस जाओ।” पुत्र गुरु के पास गया, लडके के लौट आने पर पिता ने फिर वही प्रश्न पूछा और लडके ने फिर वही उत्तर दिया। उसको एक बार और वापस जाना पडा। इस बार जब वह लौटकर आया तो उसका चेहरा चमक रहा था। तब पिता ने कहा, “बेटा, आज तुम्हारा चेहरा ब्रह्मज्ञानी के समान चमक रहा है।” जब तुम ईश्वर को जान लोगे तो तुम्हारा मुख, स्वर, सारी आकृति बदल जायगी। तब तुम मानव जाति के लिए महाकल्याणस्वरूप हो जाओगे। ऋषि की शक्ति को कोई नहीं रोक सकेगा। यहीं ऋषित्व है और यहीं हमारे धर्म का आदर्श। और शेष जो कुछ है—ये सब वाग्विलास, युक्ति-विचार, दर्शन, द्वैतवाद, अद्वैतवाद, यहाँ तक कि वेद भी—यही ऋषित्व प्राप्त करने के सोपान मात्र हैं, गौण हैं। ऋषित्व प्राप्त करना ही मुख्य है। वेद, व्याकरण, ज्योतिषादि सब गौण हैं। जिसके द्वारा हम उस अव्यय ईश्वर की प्रत्यक्ष अनुभूति प्राप्त करते हैं, वही चरम ज्ञान है। जिन्होंने यह प्राप्त किया है, वे ही वैदिक ऋषि हैं। हम समझते हैं कि यह ऋषि एक कोटि, एक वर्ग का नाम है, जिस ऋषित्व को यथार्थ हिन्दू होते हुए हमें अपने जीवन की किसी न किसी अवस्था में प्राप्त करना ही होगा, और ऋषित्व प्राप्त करना ही हिन्दुओं के लिए मुक्ति है। कुछ सिद्धान्तों में ही विश्वास करने से, सहस्रों मन्दिरों के दर्शन से अथवा समारंभर की कुल नदियों में स्नान करने से, हिन्दू मत के अनुसार मुक्ति नहीं होगी। ऋषि होने पर, मन्त्रद्रष्टा होने पर ही मुक्ति प्राप्त होगी।

वाद के युगों पर विचार करने पर हम देखते हैं कि उम समय मारे ससार को आलोकित करनेवाले अनेक महापुरुषों तथा श्रेष्ठ अवतारों ने जन्म ग्रहण किया है। अवतारों की मर्यादा बहुत है। भागवत के अनुमार भी अवतारों की मर्यादा अमन्य है, इनमें से राम और कृष्ण ही भारत में विशेष भाव में पूजे जाते हैं। प्राचीन वंश युगों के आदर्शस्वरूप, सत्यपरायणता और नम्र नैतिकता के साकार मूर्ति-

स्वरूप आधार तनय आधार पति आधार पिता सर्वोपरि आधार राजा राम का चरित्र हमारे सम्मुख महात् आर्यि बाल्मीकि के द्वारा प्रस्तुत किया गया है। महाकवि ने जिस भाषा में रामचरित का वर्णन किया है, उसकी अपेक्षा अधिक पावन प्रांचल मधुर अथवा सरस भाषा ही नहीं सकती। और सीता के विषय में क्या कहा जाय। तुम संसार के समस्त प्राचीन साहित्य को छान डालो और मैं तुमसे निःसंकाश कहूँ कि तुम संसार के सभी साहित्य का भी मंचन कर सकते हो किन्तु उसमें से तुम सीता के समान दूसरा चरित्र नहीं निकाल सकोगे। सीता-चरित्र अद्वितीय है। यह चरित्र सदा के लिए एक ही बार चित्रित हुआ है। राम तो कदाचित् अनेक हो सके ह, किन्तु सीता और नहीं हुईं। भारतीय स्त्रियों को बैठा होना चाहिए, सीता उनके लिए आदर्श हैं। स्त्री-चरित्र के बिना भारतीय आदर्श है वे सब सीता के ही चरित्र से उत्पन्न हुए हैं और समस्त आर्यवर्त भूमि में सहस्रा वर्षों से वे स्त्री-मुख्य-बालक की पूजा पा रही हैं। महामहिमामयी सीता स्वयं सृष्टता से भी सुदृढ, वैयं तथा सहिष्णुता का सर्वोच्च आधार सीता सदा इसी भाव से पूजी आयेगी। जिन्होंने अधिककित गाव से ऐसे महादुःख का जीवन झोत किया वही नित्य माध्मी सदा बुद्धस्वभाव सीता आदर्श पत्नी सीता मनुष्य लोक की आदर्श देवलोक की भी आदर्श गायी पुण्य चरित्र सीता सदा हमारी राष्ट्रीय देवी बनी रहेंगी। हम सभी उनके चरित्र को मनी भाँति जानते हैं, इसलिए उनका विदेय वर्णन करने की आवश्यकता नहीं। चाहे हमारे सब पुराण गण्ट हो चायें यहाँ तक कि हमारे वेद भी कण्ट हो जायें हमारी संस्कृत भाषा सदा के लिए काण्ड झोत में विकण्ट हो जाय किन्तु सरी बात ध्यानपूर्वक सुनो जब तक भारत में अतिघम्य घाम्य भाषा बोलनेवाके पाँच भी हिनू रहेंगे तब तक सीता की कथा विद्यमान रहेगी। सीता का प्रवेश हमारी जाति की अस्ति-मज्जा में हो चुका है प्रत्येक हिनू नर-नारी के रक्त में सीता विद्यमान है। हम सभी सीता की संतान हैं। हमारी नारियों को आधुनिक मार्गों में रंगने की जो चेष्टाएँ हो रही हैं यदि उन सब प्रयत्नों में उनको सीता चरित्र के आदर्श से भ्रष्ट करने की चेष्टा होगी तो वे सब असफल होंगे वैसे कि हम प्रतिदिन देखते हैं। भारतीय नारियों से सीता के चरित्र-चिह्नों का अनुसरण करके अपनी उत्तति की चेष्टा करनी होगी यही एकमात्र पय है।

जसके पदबाद् हैं मगवान् धीहृण्ण जो नाना भाव से पूजे जाते हैं ओर जो पुरण के समान ही स्त्री के बन्धो के समान ही बुद्ध के परम प्रिय इष्ट देवता है। मेरा अभिप्राय जस है जिह्ने मागबनकार अथवा नरुके की तुष्ट नहीं हीते अकि कहते हैं—

“अन्यान्य अवतार उस भगवान् के अग्र और फलस्वरूप हैं, किन्तु कृष्ण तो स्वयं भगवान् हैं।”

और जब हम उनके विविध भाव-समन्वित चरित्र का अवलोकन करते हैं, तब उनके प्रति प्रयुक्त ऐसे विशेषणों से हमको आश्चर्य नहीं होता। वे एक ही स्वरूप में अपूर्व सन्यासी और अद्भुत गृहस्थ थे, उनमें अत्यन्त अद्भुत रजोगुण तथा शक्ति का विकास था और साथ ही वे अत्यन्त अद्भुत त्याग का जीवन बिताते थे। विना गीता का अध्ययन किये कृष्ण-चरित्र कभी समझ में नहीं आ सकता, क्योंकि अपने उपदेशों के वे आकारस्वरूप थे। प्रत्येक अवतार, जिसका प्रचार करने वे आये थे, उसके जीवित उदाहरण के रूप में अवतरित हुए। गीता के प्रचारक कृष्ण सदा भगवद्गीता के उपदेशों की साकार मूर्ति थे, वे अनाशक्ति के उज्ज्वल उदाहरण थे। उन्होंने अपना सिंहासन त्याग दिया और कभी उसकी चिन्ता नहीं की। जिनके कहने ही से राजा अपने सिंहासनो को छोड़ देते थे, ऐसे समग्र भारत के नेता ने स्वयं राजा होना नहीं चाहा। उन्होंने बाल्यकाल में जिस सरल भाव से गोपियों के साथ क्रीड़ा की, जीवन की अन्य अवस्थाओं में भी उनका वह सरल स्वभाव नहीं छूटा। उनके जीवन की उस चिरस्मरणीय घटना की याद आती है, जिसका समझना अत्यन्त कठिन है। जब तक कोई पूर्ण ब्रह्मचारी और पवित्र स्वभाव का नहीं बनता, तब तक उसे इसके समझने की चेष्टा करना उचित नहीं। उम्र प्रेम के अत्यन्त अद्भुत विकास को, जो उस वृन्दावन की मयूर लीला में रूपक भाव से वर्णित हुआ है, प्रेमरूपी मदिरा के पान से जो उन्मत्त हुआ हो, उसको छोड़कर और कोई नहीं ममज्ञ सकता। कौन उन गोपियों को प्रेम से उत्पन्न विरह-यत्रणा के भाव को समझ सकता है, जो प्रेम आदर्शस्वरूप है, जो प्रेम प्रेम के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहता, जो प्रेम स्वर्ग की भी आकांक्षा नहीं करता, जो प्रेम इहलोक और परलोक की किसी भी वस्तु की कामना नहीं करता? और हे मित्रो, इसी गोपी-प्रेम के माध्यम से सगुण और निर्गुण ईश्वरवाद के सघर्ष का एकमात्र समाधान मिल सका है। हम जानते हैं, सगुण ईश्वर मनुष्य की उच्चतम धारणा है। हम यह भी जानते हैं कि दार्शनिक दृष्टि से समग्र जगद्व्यापी, समस्त ससार जिसकी अभिव्यक्ति है, उस निर्गुण ईश्वर में विश्वास ही स्वाभाविक है। पर साथ ही हम साकार वस्तु की कामना करते हैं, ऐसी वस्तु चाहते हैं, जिसको हम पकड़ सकें, जिसके चरणों पर अपने हृदय को उत्सर्ग कर सकें। इसलिए सगुण ईश्वर ही मनुष्य स्वभाव की उच्चतम धारणा है। किन्तु युक्ति इस धारणा से विस्मित रह



स्वल्प आदर्श जन्य आदर्श पति आदर्श पिता सर्वोपरि आदर्श राजा राम का चरित्र हमारे सम्मुख महान् ऋषि वास्वीकि के द्वारा प्रस्तुत किया गया है। महाकवि ने जिस माया में रामचरित्र का वर्णन किया है, उसकी अपेक्षा अधिक पावन प्रायः मधुर वचन सरल भाषा ही नहीं सकती। और सीता के विषय में क्या कहा जाय! तुम संसार के समस्त प्राचीन साहित्य को छान डालो और मैं तुमसे निःसंकोच कहता हूँ कि तुम संसार के सभी साहित्य का भी मंथन कर सकते हो किन्तु उसमें से तुम सीता के समान दूसरा चरित्र नहीं निकाल सकते। सीता चरित्र अद्वितीय है। यह चरित्र रत्न के लिए एक ही बार चिनिता हुआ है। राम तो कदाचित् अनेक हो गये हैं किन्तु सीता और नहीं हुईं। भारतीय स्त्रियों को बँसा होना चाहिए, सीता उनके लिए आदर्श है। स्त्री चरित्र के जितने भारतीय आदर्श हैं वे सब सीता के ही चरित्र से उत्पन्न हुए हैं और समस्त आर्यावर्त भूमि में सहस्रों वर्षों से वे स्त्री-पुंस्य-बालक की पूजा पा रही हैं। महामहिमायसी सीता स्वर्ग दुःखता से भी दुःख पीयं तथा सहिष्णुता का सर्वोच्च आदर्श सीता सदा इसी भाव से पूजी जायेंगी। जिन्होंने अविचलित भाव से ऐसे महादुःख का जीवन व्यतीत किया वहीं नित्य शांती सदा दुःखस्वभाव सीता आदर्श पत्नी सीता मनुष्य लोक की आदर्श देवकीक की भी आदर्श नारी पुंस्य-चरित्र सीता सदा हमारी राष्ट्रीय देवी बनी रहेंगी। हम सभी उनके चरित्र को मनी मति जानते हैं, इसलिए उनका विशेष वर्णन करने की आवश्यकता नहीं। भाइे हमारे सब पुराण गद्य हो कार्य यहाँ तक कि हमारे बह भी लुप्त हो जायें हमारी संस्कृत भाषा सदा के लिए काल स्रोत में विमुक्त हो जाय किन्तु मेरी बात क्यापूर्वक सुनो जब तक भारत में अतिघम्य साम्य भाषा बोलनेवाले पाँच भी हिलू रहेंगे तब तक सीता की कथा विद्यमान रहेगी। सीता का प्रवेश हमारी जाति की अस्ति-मग्ना में हो चुका है प्रत्यक्ष हिलू नर-नारी के रक्त में सीता विराजमान है हम सभी सीता की सन्तान हैं। हमारी नारियों को आधुनिक भाषा में रंगने की जो चेष्टाएँ हो रही हैं यदि उन सब प्रयत्नों में उनको सीता-चरित्र के आदर्श से भ्रष्ट करने की चेष्टा होगी तो वे सब अमफल होंगे वैसे कि हम प्रतिदिन देखते हैं। भारतीय नारियाँ स सीता के चरण-चिह्नों का अनुकरण करके अपनी उपाधि की चेष्टा करनी होगी यही एकमात्र पथ है।

उनके पदचात् है मयवान् धीशुच्य जागता मास ये पूजे जाते हैं और जो पुरुष के समान ही स्त्री के बन्धो व समान ही बृद्ध के परम प्रिय इत्येवैवता है। मेरा अभिप्राय उक्त है जिन्हें माधयनकार अवनार बह के भी लुप्त नहीं होते बकि कहने हैं—

“अन्यान्य अवतार उस भगवान् के अग्र और फलस्वरूप है, किन्तु कृष्ण तो स्वयं भगवान् हैं।”

और जब हम उनके विविध भाव-समन्वित चरित्र का अवलोकन करते हैं, तब उनके प्रति प्रयुक्त ऐसे विरोधों से हमको आश्चर्य नहीं होता। वे एक ही स्वरूप में अपूर्व सन्यासी और अद्भुत गृहस्थ थे, उनमें अत्यन्त अद्भुत रजोगुण तथा शक्ति का विकास था और साथ ही वे अत्यन्त अद्भुत त्याग का जीवन वितारते थे। विना गीता का अध्ययन किये कृष्ण-चरित्र कभी समझ में नहीं आ सकता, क्योंकि अपने उपदेशों के वे आकारस्वरूप थे। प्रत्येक अवतार, जिसका प्रचार करने वे आये थे, उसके जीवित उदाहरण के रूप में अवतरित हुए। गीता के प्रचारक कृष्ण सदा भगवद्गीता के उपदेशों की साकार मूर्ति थे, वे अनासक्ति के उज्ज्वल उदाहरण थे। उन्होंने अपना सिंहासन त्याग दिया और कभी उसकी चिन्ता नहीं की। जिनके कहने ही से राजा अपने सिंहासनो को छोड़ देते थे, ऐसे समग्र भारत के नेता ने स्वयं राजा होना नहीं चाहा। उन्होंने बाल्यकाल में जिस सरल भाव से गोपियों के साथ क्रीडा की, जीवन की अन्य अवस्थाओं में भी उनका वह सरल स्वभाव नहीं छूटा। उनके जीवन की उस चिरस्मरणीय घटना की याद आती है, जिसका समझना अत्यन्त कठिन है। जब तक कोई पूर्ण ब्रह्मचारी और पवित्र स्वभाव का नहीं बनता, तब तक उसे इसके समझने की चेष्टा करना उचित नहीं। उस प्रेम के अत्यन्त अद्भुत विकास को, जो उस वृन्दावन की मधुर लीला में रूपक भाव से वर्णित हुआ है, प्रेमरूपी मदिरा के पान से जो उन्मत्त हुआ हो, उसको छोड़कर और कोई नहीं समझ सकता। कौन उन गोपियों को प्रेम से उत्पन्न विरह-यत्रणा के भाव को समझ सकता है, जो प्रेम आदर्शस्वरूप है, जो प्रेम प्रेम के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहता, जो प्रेम स्वर्ग की भी आकांक्षा नहीं करता, जो प्रेम इहलोक और परलोक की किसी भी वस्तु की कामना नहीं करता? और हे मित्रो, इसी गोपी-प्रेम के माध्यम से सगुण और निर्गुण ईश्वरवाद के संघर्ष का एकमात्र समाधान मिल सका है। हम जानते हैं, सगुण ईश्वर मनुष्य की उच्चतम धारणा है। हम यह भी जानते हैं कि दार्शनिक दृष्टि से समग्र जगद्व्यापी, समस्त ससार जिसकी अभिव्यक्ति है, उस निर्गुण ईश्वर में विश्वास ही स्वाभाविक है। पर साथ ही हम साकार वस्तु की कामना करते हैं, ऐसी वस्तु चाहते हैं, जिसको हम पकड़ सकें, जिसके चरणों पर अपने हृदय को उत्सर्ग कर सकें। इसलिए सगुण ईश्वर ही मनुष्य स्वभाव की उच्चतम धारणा है। किन्तु युक्ति इस धारणा से विस्मित रह

जाती है। यह बही अति प्राचीन प्राचीनतम समस्या है जिसका बहसूत्रों में विचार किया गया है। जनबाध के समय युधिष्ठिर के साथ द्रौपदी में जिसका विचार किया है। यदि एक समुग सम्पूर्ण पमानय सर्वसम्पत्तमान ईश्वर है तो इस नारकीय सघार का अस्तित्व क्यों है? उसने उसकी सृष्टि क्यों की? उस ईश्वर को महापक्षपाती कहना ही उचित है। इसकी किसी प्रकार मीमांसा नहीं होती। इसकी मीमांसा गोपियों के प्रेम के सम्बन्ध में जो तुम पढ़ते हो मात्र उससे ही सकती है। वे कृष्ण के प्रति प्रबुधत किसी विशेषण को भूषा करती हैं वे यह जानने की चिन्ता नहीं करती कि कृष्ण सृष्टिकर्ता है, वे यह जानने की चिन्ता नहीं करती कि वह सर्वसम्पत्तमान है, वे यह जानने की भी चिन्ता नहीं करती कि वह सर्वसम्पत्तमान है। वे केवल यही समझती हैं कि कृष्ण प्रेममय है यही उनके लिए सबेष्ट है। गोपियाँ कृष्ण को केवल नृत्तारण का कृष्ण समझती हैं। बहुत सेनाओं के नेता राजाधिराज कृष्ण उनके निकट सदा गोप ही थे।

न चरं न चरं न च सुन्दरी कविता वा जगदीश कामदे ।  
मम जन्मनि जन्मनीश्वरे मक्तावन्मिताख्ये तुषी त्वमि ॥

—हे जगदीश मैं बन बन कविता अपवा सुन्दरी—कुछ भी नहीं चाहता है ईश्वर, आपके प्रति जगज्जन्मान्तरों में मेरी अहँतुषी भक्ति हो। यह अहँतुषी भक्ति यह निष्काम कर्म यह निरपेक्ष कर्तव्य-निष्ठा का आदर्श कर्म के इतिहास में एक नया अध्याय है। मानव-इतिहास में प्रथम बार भारतभूमि पर सर्वमेष्ठ अवतार श्री कृष्ण के मुँह से पहले पहल यह तत्व निकला था। मम और प्रभोमनों के कर्म सदा के लिए बिदा हो गये और मनुष्य-हृदय में नरक-जय और स्वर्ग-सुख-योग के प्रभोमन होते हुए भी ऐसे सर्वोत्तम आदर्श का अमृदय हुआ जैसे प्रेम प्रेम के निमित्त कर्तव्य कर्तव्य के निमित्त कर्म कर्म के निमित्त।

और यह प्रेम कैसा है? मैंने तुम लोगों से कहा है कि गोपी-प्रेम को समझना बड़ा कठिन है। हमारे बीच भी ऐसे मूर्खों का अभाव नहीं है जो श्री कृष्ण के जीवन के ऐस अति अपूर्व अघ के अद्भुत तात्पर्य को समझने में असमर्थ है। मैं पुनः कहता हूँ कि हमारे ही रक्त से उत्पन्न अनेक अपवित्र मूर्ख हैं जो गोपी-प्रेम का नाम सुनते ही मानो उसको अत्यन्त अपावन समझकर मम से दूर भाग जाते हैं। उनसे मैं सिर्फ इतना ही कहना चाहता हूँ कि पहले अपने मन को मूढ़ करो और तुमको यह भी स्मरण रगना चाहिए कि जिस इतिहासकार ने गोपियों के इस अद्भुत प्रेम का वर्णन किया है, वह आश्चर्य पवित्र निग्य मूढ़ व्यासपुत्र मुकुरेव है। जब तद्रूप में स्वर्गगता रङ्गी तब तत्र मनवप्रेम अक्षम्य है। यह केवल इन्द्रावली

है कि 'मैं आपको कुछ देता हूँ, भगवान् आप भी मुझको कुछ दीजिए।' और भगवान् कहते हैं, "यदि तुम ऐसा न भी करोगे, तो तुम्हारे मरने पर मैं तुम्हें देख लूँगा—चिरकाल तक तुम्हें जलाकर मारूँगा।" सकाम व्यक्ति की ईश्वर-धारणा ऐसी ही होती है। जब तक मस्तिष्क में ऐसे भाव रहेगे, तब तक गोपियों की प्रेमजनित विरह की उन्मत्तता मनुष्य किस प्रकार समझेंगे। 'एक बार, केवल एक ही बार यदि उन मधुर अधरो का चुम्बन प्राप्त हो। जिसका तुमने एक बार चुम्बन किया है, चिरकाल तक तुम्हारे लिए उसकी पिपासा बढ़ती जाती है, उसके सकल दुःख दूर हो जाते हैं, तब अन्यान्य विषयों की आसक्ति दूर हो जाती है, केवल तुम्हीं उस समय प्रीति की वस्तु हो जाते हो।'"

पहले काचन, नाम तथा यश और क्षुद्र मिथ्या ससार के प्रति आसक्ति को छोड़ो। तभी, केवल तभी तुम गोपी-प्रेम को समझोगे। यह इतना विशुद्ध है कि बिना सब कुछ छोड़े इसको समझने की चेष्टा करना ही अनुचित है। जब तक अन्तःकरण पूर्ण रूप से पवित्र नहीं होता, तब तक इसको समझने की चेष्टा करना वृथा है। हर समय जिनके हृदय में काम, घन, यशोलिप्सा के बुलबुले उठते हैं, ऐसे लोग गोपी-प्रेम की आलोचना करने तथा समझने का साहस करते हैं। कृष्ण-अवतार का मुख्य उद्देश्य यही गोपी-प्रेम की शिक्षा है, यहाँ तक कि गीता का महान् दर्शन भी उस प्रेमोन्मत्तता की बराबरी नहीं कर सकता। क्योंकि गीता में साधक को घीरे घीरे उसी चरम लक्ष्य मुक्ति के साधन का उपदेश दिया गया है, किन्तु इसमें रसास्वाद की उन्मत्तता, प्रेम की मदोन्मत्तता विद्यमान है, यहाँ गुरु और शिष्य, शास्त्र और उपदेश, ईश्वर और स्वर्ग सब एकाकार हैं, भय के भाव का चिह्न-मात्र नहीं है, सब बह गया है—शेष रह गयी है केवल प्रेमोन्मत्तता। उस समय ससार का कुछ भी स्मरण नहीं रहता, भक्त उस समय ससार में उसी कृष्ण, एकमात्र उसी कृष्ण के अतिरिक्त और कुछ नहीं देखता, उस समय वह समस्त प्राणियों में कृष्ण के ही दर्शन करता है, उसका मुँह भी उस समय कृष्ण के ही समान दीखता है, उसकी आत्मा उस समय कृष्णमय हो जाती है। यह है कृष्ण की महिमा।

छोटी छोटी बातों में समय वृथा मत गँवाओ, उनके जीवन के जो मुख्य चरित्र हैं, जो तात्त्विक अंश हैं, उन्हींका सहारा लेना चाहिए। कृष्ण के जीवन-चरित्र में बहुत से ऐतिहासिक अन्तर्विरोध मिल सकते हैं, कृष्ण के चरित्र में बहुत से प्रक्षेप हो सकते हैं। ये सभी सत्य हो सकते हैं, किन्तु फिर भी उस समय समाज में जो एक

१ सुरतवर्धन शोकनाशन स्वरितवेणुना सुष्ठु चुम्बितम्।

इतररागविस्मरण नृणा वितर वीर नस्तेऽधरामृतम् ॥ श्रीमद्भागवत ॥

अपूर्व तबे भाव का उदय हुआ था उसका कुछ आभास अबस्य था। अन्य किसी भी महापुरुष या पैगम्बर के जीवन पर विचार करत पर यह जान पड़ता है कि वह पैगम्बर अपने पूर्ववर्ती कितने ही भावों का विकास मात्र है। हम देखते हैं कि उसने अपने देश में यहाँ तक कि उस समय वैसी शिक्षा प्रचलित थी केवल उसीका प्रचार किया है। यहाँ तक कि उस महापुरुष के अस्तित्व पर भी सन्देह हो सकता है, किन्तु मैं चुनौती देता हूँ कि कोई यह साबित कर दे कि इज्ज के निष्काम कर्म निरपेक्ष कर्तव्य निष्काम और निष्काम प्रेम-तत्त्व के ये उपदेश संसार में मौलिक आविष्कार नहीं है। यदि ऐसा नहीं कर सकते तो यह अबस्य स्वीकार करना पड़ेगा कि किसी एक व्यक्ति ने निश्चय ही इन तत्त्वों को प्रस्तुत किया है। यह स्वीकार नहीं किया जा सकता कि ये तत्त्व किसी दूसरे मनुष्य से किये गये हैं। कारण यह कि इज्ज के उत्पन्न होने के समय सर्वसाधारण में इन तत्त्वों का प्रचार नहीं था। भगवान् श्री इज्ज ही इनके प्रथम प्रचारक हैं उनके दिव्य वेदव्यास ने पूर्वोक्त तत्त्वों का साधारण जनों में प्रचार किया। ऐसा श्रेष्ठ आदर्श और कभी विभित नहीं हुआ। हम उनके ग्रन्थ में गोपीजनलक्ष्मण कृष्णान-विहारी से और कोई उच्च तर आदर्श नहीं पाते। जब तुम्हारे हृदय में इस सम्मत्ता का प्रवेश होमा जब तुम भगवन्की गोपियों के मात्र को समझोगे तभी तुम जानोगे कि प्रेम क्या वस्तु है। जब समस्त संसार तुम्हारी दृष्टि से अन्तर्गत हो जायेगा जब तुम्हारे हृदय में और कोई कामना नहीं रहेगी जब तुम्हारा चित्त पूर्णरूप से झुठ हो जायेगा अन्य कोई कर्म न होमा यहाँ तक कि जब तुममें सत्यानुसन्धान की वासना भी नहीं रहेगी तभी तुम्हारे हृदय में उस प्रेमोन्मत्ता का आविर्भाव होमा तभी तुम गोपियों की जनत अहैतुकी प्रेम-भक्ति की महिमा समझोगे। यही कर्म्य है। यदि तुमको यह प्रेम मिळा तो सब कुछ मिल गया।

इस बार हम नीचे की तर्हों में प्रवेश करते हुए पीता-प्रचारक इज्ज की विशेषना करोगे। भारत में इस समय कितने ही लोगों में ऐसी बेवटा विश्वासी पड़ती है, जो जोड़े के आगे पाड़ी जोतनेवालों की सी होती है। हममें से बहुतों की यह धारणा है कि श्री इज्ज का गोपियों के साथ प्रेमकीछा करना बड़ी ही अटकनेवाली बात है। यूरोप के लोग भी इसे पसन्द नहीं करते। अनूक पठित इस गोपी-प्रेम को अच्छा नहीं समझते अतएव अबस्य गोपियों को बहा हो। बिना यूरोप के छाहों के अनुमोदन के इज्ज कैसे टिक सकते हैं? क्वापि नहीं टिक सकते। महाभारत में वो-एक स्वार्थों को छोड़कर, वे भी जैसे उत्प्रेक्षणीय नहीं गोपियों का प्रसंग तो है ही नहीं। केवल त्रैलोक्य की प्रार्थना में और सिद्धुपाक-वच के समय सिद्धुपाक की वस्तुता में कृष्णान का वर्णन आया है। ये सब प्रक्षेप अर्थ हैं।

यूरोप के साहब लोग जिसको नहीं चाहते, वह सब फेंक देना चाहिए। गोपियों का वर्णन, यहाँ तक कि कृष्ण का वर्णन भी प्रक्षिप्त है। जो लोग ऐसी घोर वाणिज्य-वृत्ति के हैं, जिनके धर्म का आदर्श भी व्यवसाय ही से उत्पन्न हुआ है, उनका विचार यही है कि वे इस ससार में कुछ करके स्वर्ग प्राप्त करेंगे। व्यवसायी सूद दर सूद चाहते हैं, वे यहाँ ऐसा कुछ पुण्य-सचय करना चाहते हैं, जिसके फल से स्वर्ग में जाकर सुख-भोग करेंगे। इनके धर्ममत में गोपियों के लिए अवश्य स्थान नहीं है। अब हम उस आदर्श-प्रेमी श्री कृष्ण का वर्णन छोड़कर और भी नीचे की तह में प्रवेश करके गीता-प्रचारक श्री कृष्ण की विवेचना करेंगे। यहाँ भी हम देखते हैं कि गीता के समान वेदों का भाष्य कभी नहीं बना है और बनेगा भी नहीं। श्रुति अथवा उपनिषदों का तात्पर्य समझना बड़ा कठिन है, क्योंकि नाना भाष्यकारों ने अपने अपने मतानुसार उनकी व्याख्या करने की चेष्टा की है। अन्त में जो स्वयं श्रुति के प्रेरक हैं, उन्हीं भगवान् ने आविर्भूत होकर गीता के प्रचारक रूप से श्रुति का अर्थ समझाया और आज भारत में उस व्याख्या-प्रणाली की जैसी आवश्यकता है, सारे ससार में इसकी जैसी आवश्यकता है, वैसी किसी और वस्तु की नहीं। यह बड़े ही आश्चर्य की बात है कि परवर्ती शास्त्र-व्याख्याता गीता तक की व्याख्या करने में बहुधा भगवान् के वाक्यों का अर्थ और भाव-प्रवाह नहीं समझ सके। गीता में क्या है और आधुनिक भाष्यकारों में हम क्या देखते हैं? एक अद्वैतवादी भाष्यकार ने किसी उपनिषद् की व्याख्या की, जिसमें बहुत से द्वैतभाव के वाक्य हैं। उसने उनको तोड़-मरोड़कर कुछ अर्थ ग्रहण किया और उन सबका अपनी व्याख्या के अनुरूप मनमाना अर्थ लगा लिया। फिर द्वैतवादी भाष्यकार ने भी व्याख्या करनी चाही, उसमें अनेक अद्वैतमूलक अर्थ हैं, जिनकी खींचतान उसने उनसे द्वैतमूलक अर्थ ग्रहण करने के लिए की। परन्तु गीता में इस प्रकार के किसी अर्थ के विगाड़ने की चेष्टा तुमको नहीं मिलेगी। भगवान् कहते हैं, ये सब सत्य हैं, जीवात्मा वीरे वीरे स्थूल से सूक्ष्म, सूक्ष्म से अति सूक्ष्म सीदियों पर चढ़ती जाती है, इस प्रकार क्रमशः वह उस चरम लक्ष्य अनन्त पूर्णस्वरूप को प्राप्त होती है। गीता में इसी भाव को समझाया गया है, यहाँ तक कि कर्मकांड भी गीता में स्वीकृत हुआ है और यह दिखलाया गया है कि यद्यपि कर्मकांड साक्षात् मुक्ति का साधन नहीं है, किन्तु गौण भाव से मुक्ति का साधन है, तथापि वह सत्य है, मूर्ति-पूजा भी सत्य है, मव प्रकार के अनुष्ठान और क्रिया-कर्म भी सत्य हैं, केवल एक विषय पर ध्यान रखना होगा—वह है चित्त की शुद्धि। यदि हृदय शुद्ध और निष्कपट हो, तभी उपासना ठीक उतरती है और हमें चरम लक्ष्य तक पहुँचा देती है। ये विभिन्न

अपूर्व नये भाव का उदय हुआ था उसका कुछ आधार अबस्य था। अग्य किसी भी महापुरुष या पैगम्बर के जीवन पर विचार करने पर यह ज्ञान पड़ता है कि वह पैगम्बर अपने पूर्ववर्ती कितने ही भावों का विकास भाव है। हम देखते हैं कि उसने अपने देश में वहाँ तक कि उस समय जैसी शिक्षा प्रचलित थी केवल उसीका प्रचार किया है। यहाँ तक कि उस महापुरुष के अस्तित्व पर भी सन्देह ही सकता है, किन्तु मैं चुनौती देता हूँ कि कोई यह साबित कर दे कि कृष्ण के निष्काम कर्म निरपेक्ष कर्तव्य-निष्ठा और निष्काम प्रेम-उत्सव के ये उपवेद सत्तार में मौलिक आविष्कार नहीं है। यदि ऐसा नहीं कर सकते तो यह अबस्य स्वीकार करना पड़ेगा कि किसी एक व्यक्ति ने निश्चय ही इन तत्त्वों को प्रस्तुत किया है। यह स्वीकार नहीं किया जा सकता कि ये तत्त्व किसी दूसरे मनुष्य से छिपे गये हैं। कारण यह कि कृष्ण के उत्पन्न होने के समय सर्वसाधारण में इन तत्त्वों का प्रचार नहीं था। मयवान् भी कृष्ण ही इनके प्रथम प्रचारक है। उनके शिष्य वेदव्यास ने पूर्वोक्त तत्त्वों का साधारण जनों में प्रचार किया। ऐसा स्पष्ट आदर्श और कभी चिन्तित नहीं हुआ। हम उनके प्रथम में गोपीजनवल्लभ बृन्बावन-विहारी से और कोई उच्चतर आदर्श नहीं पाते। जब तुम्हारे हृदय में इस उन्मत्तता का प्रवेश होमा जब तुम मायवर्ती गोपियों के भाव को समझोये तभी तुम जानोगे कि प्रेम क्या वस्तु है। जब समस्त सत्तार तुम्हारी दृष्टि से अन्तर्धान हो जायेगा जब तुम्हारे हृदय में और कोई कामना नहीं रहेगी जब तुम्हारा चित्त पूर्णरूप से शुद्ध हो जायेगा अन्य कोई कथ्य न होपा यहाँ तक कि जब तुममें सत्यानुसन्धान की वाचना भी नहीं रहेगी तभी तुम्हारे हृदय में उस प्रेमोन्मत्तता का आविर्भाव होया तभी तुम गोपियों की अनन्त अहंशुकी प्रेम-भक्ति की महिमा समझोगे। यही कथ्य है। यदि तुमको यह प्रेम मिला तो सब कुछ मिस गया।

इस बार हम नीचे की तरफ़ें में प्रवेश करते हुए गीत-अन्वयक कृष्ण की विवेचना करेंगे। भारत में इस समय कितने ही लोगों में ऐसी भ्रष्टा दिक्कामी पड़ती है, जो बोगे के भावे बाड़ी जीतनेवालों की ही होती है। हममें से बहुतों की यह धारणा है कि श्री कृष्ण का गोपियों के साथ प्रेमसंघा करना बड़ी ही लजकनेवाली बात है। यूरोप के लोग भी इसे पसन्द नहीं करते। अमुक पंडित इस गोपी-प्रेम को मन्थन नहीं समझते अतएव अबस्य गोपियो को बहा हो। किना यूरोप के गार्हवा के अनुमोदन के कृष्ण कैसे टिक सकते हैं? कथापि नहीं टिक सकते। महाभारत में श्री-कृष्ण स्वर्गों को छोड़कर, वे भी बँध उल्लासनीय नहीं। गोपियों का प्रेम तो है ही नहीं। वैश्व हीरारी की प्रार्थना से और शिषुपाल-वप के समय शिषुपाल की बन्धुता में बृन्बावन का वर्णन आया है। ये सब प्रयोग अर्थ हैं।

हमारे शाक्यमुनि गीतम है। उनके उपदेशों और प्रचार-कार्य से तुम सभी अवगत हो। हम उनको ईश्वरावतार समझकर उनकी पूजा करते हैं, नैतिकता का इतना बड़ा निर्भीक प्रचारक समार मे और उत्पन्न नहीं हुआ, कर्मयोगियों मे सर्वश्रेष्ठ स्वयं कृष्ण ही मानो शिष्यरूप से अपने उपदेशों को कार्यरूप मे परिणत करने के लिए उत्पन्न हुए। पुन वही वाणी सुनाई दी, जिसने गीता मे शिक्षा दी थी, स्वल्पमप्यस्य घर्मस्य त्रायते महतो भयात्। (गीता २।४०) — 'इस घर्म का थोड़ा सा अनुष्ठान करने पर भी महाभय से रक्षा होती है।' स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परा गतिम्। (गीता ९।३२) — 'स्त्री, वैश्य और शूद्र तक परमगति को प्राप्त होते हैं। गीता के वाक्य, श्री कृष्ण की वज्र के समान गम्भीर और महती वाणी, सबके बन्धन, सबकी शृंखला तोड़ देती है और सभी को उस परम पद पाने का अधिकारी कर देती है।

इहैव तैर्जित सर्गो येषा साम्ये स्थित मनः।

निर्दोष हि सम ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिता ॥

(गीता ५।१९)

—'जिनका मन साम्य भाव मे अवस्थित है, उन्होंने यही सारे ससार को जीत लिया है। ब्रह्म समस्वभाव और निर्दोष है, इसलिए वे ब्रह्म मे ही अवस्थित हैं।'

सम पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्।

न हिनस्त्यात्मनात्मान ततो याति परा गतिम् ॥

(गीता १३।२८)

—'परमेश्वर को सर्वत्र तुल्य रूप से अवस्थित देखकर ज्ञानी आत्मा से आत्मा की हिंसा नहीं करता, इसलिए वह परम गति को प्राप्त होता है।'

गीता के उपदेशों के जीते-जागते उदाहरणस्वरूप, गीता के उपदेशक दूसरे रूप मे पुन इस मर्त्य लोक मे पधारे, जिससे जनता द्वारा उसका एक कण भी कार्य-रूप मे परिणत हो सके। ये ही शाक्यमुनि हैं। ये दीन-दु खियों को उपदेश देने लगे। सर्वसाधारण के हृदय तक पहुँचने के लिए देवभाषा संस्कृत को भी छोड़ ये लोकभाषा मे उपदेश देने लगे। राजसिंहासन को त्यागकर ये दु खी, गरीब, पतित, भिखमगो के साथ रहने लगे। इन्होंने दूसरे राम के समान चाडाल को भी छाती से लगा लिया।

तुम सभी उनके महान् चरित्र और अद्भुत प्रचार-कार्य को जानते हो। किन्तु इस प्रचार-कार्य मे एक भारी त्रुटि थी, जिसके लिए हम आज तक दु ख



उपासना-प्रथाधियाँ सत्य हैं, क्योंकि यदि वे सत्य न होतीं तो उनकी सृष्टि ही क्यों हुई? विभिन्न धर्म और सम्प्रदाय कुछ पाबडी एव दुष्ट लोगों द्वारा नहीं बनाये गये हैं, और न उन्होंने धन के मोह से इन धर्मों और सम्प्रदायों की सृष्टि की है, बल्कि कि कुछ आधुनिक लोगों का भय है। वास्तविकता से उनकी व्याख्या किन्तु ही मुक्तियुक्त क्यों न प्रतीत हो पर यह बात सत्य नहीं है, इनकी सृष्टि इस तरह नहीं हुई। जीवात्मा की स्वाभाविक आवश्यकता के लिए इन सबका अन्वय हुआ है। विभिन्न धर्मियों के मनुष्यों की धर्म-विपासा को परिष्कृत करने के लिए इनका अन्वय हुआ है। इसलिए तुम्हें इनके विरुद्ध विज्ञान देने की आवश्यकता नहीं। जिस दिन इनकी आवश्यकता नहीं रहेगी उस दिन उस आवश्यकता के समाप्त के साथ साथ इनका भी मोह हो जायगा। पर जब तक उनकी आवश्यकता रहेगी तब तक तुम्हारी आलोचना और तुम्हारी विज्ञान के बावजूद ये अवश्य विद्यमान रहेंगे। तस्मात् और बन्धु के खोर से तुम संसार को धून में बहा दे सकते हो किन्तु जब तक मूर्तियों की आवश्यकता रहेगी तब तक मूर्ति-पूजा अवश्य रहेगी। ये विभिन्न अनुष्ठान-नृत्यियाँ और धर्म के विभिन्न सोपान अवश्य रहेये और हम भगवान् की कृष्ण के उपदेश से समझ सकते हैं कि इनकी क्या आवश्यकता है।

इसके बाद ही भारतीय इतिहास का एक शोकजनक अध्याय शुरू होता है। हम पीछे से भी विभिन्न विभिन्न सम्प्रदायों के विरोध के कोलाहल की दूर से आती हुई आवाज सुन पाते हैं और देखते हैं कि समन्वय के वे अद्भुत प्रचारक भगवान् की कृष्ण बीच में पकड़कर विरोध को हटा रहे हैं। वे कहते हैं, "साय जगत् मुझमें उठी तरह मुँहा हुआ है, जिस तरह ताने में यदि गुँथी रहती है।" साम्प्रदायिक झगडों की दूर से सुनानी देनेवाली बीबी आवाज हम सभी से सुन रहे हैं। सम्भव है कि भगवान् के उपदेश से ये झगडे कुछ देर के लिए दफ्न मये हों तथा समन्वय और शान्ति का संचार हुआ हो किन्तु यह विरोध फिर उत्पन्न हुआ। केवल धर्ममत्त ही पर नहीं सम्भवतः धर्म के व्यापार पर भी यह विवाद चलता रहा—हमारे समाज के दो प्रबल अंग ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों राजाओं तथा पुरोहितों के बीच विवाद आरम्भ हुआ था। और एक हजार वर्ष तक जिस विज्ञान तरंग ने समस्त भारत को सज्जीव कर दिया था उसके सर्वोच्च सिद्ध पर हम एक और महाबहिम मूर्ति को देखते हैं और वे

१ अतः परतरं नाम्यस्तिचिदस्ति धर्मजयः ।

अथि सर्वमिदं प्रोक्तं सूत्रे अजिगया इव ॥ मीता ७।७ ॥

हमारे शाक्यमुनि गौतम हैं। उनके उपदेशों और प्रचार-कार्य से तुम सभी अवगत हो। हम उनको ईश्वरावतार समझकर उनकी पूजा करते हैं, नैतिकता का इतना बड़ा निर्भीक प्रचारक ससार में और उत्पन्न नहीं हुआ, कर्मयोगियों में सर्वश्रेष्ठ स्वयं कृष्ण ही मानो शिष्यरूप से अपने उपदेशों को कार्यरूप में परिणत करने के लिए उत्पन्न हुए। पुनः वही वाणी सुनाई दी, जिसने गीता में शिक्षा दी थी, स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्। (गीता २।४०) — 'इस धर्म का थोड़ा सा अनुष्ठान करने पर भी महाभय से रक्षा होती है।' स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परा गतिम्। (गीता १।३२) — 'स्त्री, वैश्य और शूद्र तक परमगति को प्राप्त होते हैं। गीता के वाक्य, श्री कृष्ण की वज्र के समान गम्भीर और महती वाणी, सबके वन्दन, सबकी शृंखला तोड़ देती है और सभी को उस परम पद पाने का अधिकारी कर देती है।

इहैव तैजित सर्गो येषा साम्ये स्थित मन ।

निर्दोष हि सम ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिता ॥

(गीता ५।१९)

— 'जिनका मन साम्य भाव में अवस्थित है, उन्होंने यही सारे ससार को जीत लिया है। ब्रह्म समस्वभाव और निर्दोष है, इसलिए वे ब्रह्म में ही अवस्थित हैं।'

सम पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम् ।

न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम् ॥

(गीता १३।२८)

— 'परमेश्वर को सर्वत्र तुल्य रूप से अवस्थित देखकर ज्ञानी आत्मा से आत्मा की हिंसा नहीं करता, इसलिए वह परम गति को प्राप्त होता है।'

गीता के उपदेशों के जीते-जागते उदाहरणस्वरूप, गीता के उपदेशक दूसरे रूप में पुनः इस मर्त्य लोक में पधारें, जिससे जनता द्वारा उसका एक कण भी कार्य-रूप में परिणत हो सके। ये ही शाक्यमुनि हैं। ये दीन-दुःखियों को उपदेश देने लगे। सर्वसाधारण के हृदय तक पहुँचने के लिए देवभाषा संस्कृत को भी छोड़ ये लोकभाषा में उपदेश देने लगे। राजसिंहासन को त्यागकर ये दुःखी, गरीब, पतित, भिखमगों के साथ रहने लगे। इन्होंने दूसरे राम के समान चाडाल को भी छाती से लगा लिया।

तुम सभी उनके महान् चरित्र और अद्भुत प्रचार-कार्य को जानते हो। किन्तु इस प्रचार-कार्य में एक भारी त्रुटि थी, जिसके लिए हम आज तक दृख

भोग रहे हैं। भगवान् बुद्ध का कुछ बोध नहीं है। उनका धरित परम विपुल और उज्ज्वल है। बौद्ध का विषय है कि बौद्ध धर्म के प्रचार से जो विभिन्न असम्भवी और अविहित जातियाँ धर्म में भुमने लगी व बुद्धवच के उच्च भावनों का ठीक अनुसरण न कर सकीं। इन जातियों में नागा प्रकार के कुसुंस्कार और वीमलस उपामना-पद्धतियाँ भी उनके झुंड के झुंड भाषों के समाज में घुसने लगे। कुछ समय के लिए ऐसा प्रतीत हुआ कि वे सम्य बन गये किन्तु एक ही पताथी व उन्होंने अपने सर्व भूत प्रेत आदि निवास स्थानों की उपासना उनके पूर्वज क्रिया करते से और इस प्रकार सारा भारत कुसुंस्कारों का लीलाजोष बनकर और धनवति को पहुँचा। पहले बौद्ध प्राणिहिंसा की निम्ना करते हुए वैदिक यज्ञों के बोर विरोधी हो गये थे। उस समय धर धर इन यज्ञों का अनुष्ठान होता था। हर एक धर पर यज्ञ के लिए जाग जलती थी—बस उपासना के लिए और कुछ ठाट-बाग न था। बौद्ध धर्म के प्रचार से इन यज्ञों का कोप हो गया। उनकी बगह बड़े बड़े ऐस्वयमुक्त मन्दिर, मडकीकी अनुष्ठान-पद्धतियाँ धानवार पुणेहित तथा वर्तमान काक में भारत में और जो कुछ बिलामी देता है सबका आधिर्भाव हुआ। किन्तु ही ऐसे आधुनिक पंडितों ने जिनमें अधिक ज्ञान की अपेक्षा की जाता है धर्मा को पढ़ने से यह विदित होता है कि बुद्ध से ब्राह्मणों की मूर्ति-पूजा उठा ही थी। मुझे यह पडकर हुईसी आ जाती है। वे नहीं जानते कि बौद्ध धर्म ही ने भारत में ब्राह्मण-धर्म और मूर्ति-पूजा की सृष्टि की थी।

एक ही दो वर्ष हुए, स्य-निर्वास एक प्रतिष्ठित पुराण व एक पुस्तक प्रकाशित की। उसमें उन्होंने लिखा कि उन्हें ईसा मनीह के एक अनुभूत जीवन धरित का पता मया है। उसी पुस्तक में एक स्थान पर उन्होंने लिखा है कि ईसा धर्म निवास्य ब्राह्मण के पास जगभाष की के मन्दिर में बसे थे किन्तु उनकी संकीर्णता और मूर्ति-पूजा से तग आकर वे वहाँ से निष्पन्न के कामाओं के पास गये और वहाँ से निड हाकर स्वदेश लौटे। जिन्हें भारत के इतिहास का बोझा न जान है व इधी विवरण से जान सकते हैं कि पुस्तक में आघोपान्त कैमा कस्त-प्रवच भरा हुआ है। क्याकि जगभाष की का मन्दिर तो एक प्राचीन बौद्ध मन्दिर है। हमने हमका एव कस्याथ्य बौद्ध मन्दिरों को हिन्दू मन्दिर बना लिया। इस प्रकार के कार्य हम इन समय भी बहुत करते पन्ने। मही जगभाष का इतिहास है और उस मन्दिर वहाँ एक भी ब्राह्मण न था किन्तु भी कहा जा रहा है कि ईसा मनीह वहाँ ब्राह्मणों में उपदेश देने के लिए गये व। हमारे दिग्गज कवी पुराणत्ववेत्ता की मेरी ही राय है।

इस प्रकार प्राणिभाव के प्रति क्या न मिला। बसुं आचारविष्ठ धर्म और

नित्य आत्मा के अस्तित्व या अनस्तित्व सम्बन्धी बाल की खाल निकालनेवाले विचारो के होते हुए भी समग्र बौद्ध धर्मरूपी प्रासाद चूर चूर होकर गिर गया और उसका खँडहर बड़ा ही वीभत्स है। बौद्ध धर्म की अवनति से जिन घृणित आचारो का आविर्भाव हुआ, उनका वर्णन करने के लिए मेरे पास न समय है, न इच्छा ही। अति कुत्सित अनुष्ठान-पद्धतियाँ, अत्यन्त भयानक और अश्लील ग्रन्थ—जो मनुष्यो द्वारा न तो कभी लिखे गये थे, और न मनुष्य ने जिनकी कभी कल्पना तक की थी, अत्यन्त भीषण पाशव अनुष्ठान-पद्धतियाँ, जो और कभी धर्म के नाम से प्रचलित नहीं हुई थी—ये सभी गिरे हुए बौद्ध धर्म की सृष्टि हैं।

परन्तु भारत को जीवित रहना ही था, इसीलिए पुन भगवान् का आविर्भाव हुआ। जिन्होंने कहा था, “जब कभी धर्म की हानि होती है, तभी मैं आता हूँ”—वे फिर से आये। इस बार दक्षिण देश में भगवान् का आविर्भाव हुआ। उस ब्राह्मण युवक का, जिसके बारे में कहा गया है कि उसने सोलह वर्ष की उम्र में ही अपनी सारी ग्रन्थ-रचना समाप्त की थी, उसी अद्भुत प्रतिभाशाली शकराचार्य का अभ्युदय हुआ। इस सोलह वर्ष के बालक के लेखो से आधुनिक सम्य ससार विस्मित हो रहा है, वह अद्भुत बालक था। उसने सकल्प किया था कि समग्र भारत को उसके प्राचीन विशुद्ध मार्ग में ले जाऊँगा। पर यह कार्य कितना कठिन और विशाल था, इसका विचार भी करो। उस समय भारत की जैसी अवस्था थी, इसका भी तुम लोगो को दिग्दर्शन कराता हूँ। जिन भीषण आचारो का सुधार करने को तुम लोग अग्रसर हो रहे हो, वे उसी अध पतन के युग के फल हैं। तातार, वलूची आदि भयानक जातियो के लोग भारत में आकर बौद्ध बने और हमारे साथ मिल गये। अपने राष्ट्रीय आचारो की भी वे साथ लाये। इस तरह हमारा राष्ट्रीय जीवन अत्यन्त भयानक पाशव आचारो से भर गया। उक्त ब्राह्मण युवक को बौद्धो से विरासत में यही मिला था और उसी समय से अब तक भारत भर में इसी अध पतित बौद्ध धर्म पर वेदान्त की पुनर्विजय का कार्य सम्पन्न हो रहा है। अब भी यही काम जारी है, अब भी उसका अन्त नहीं हुआ। महा-दार्शनिक शकर ने आकर दिखलाया कि बौद्ध धर्म और वेदान्त के साराग में विशेष अन्तर नहीं है। किन्तु उनके शिष्य अपने आचार्य के उपदेशो का मर्म न समझ हीन हो गये और आत्मा तथा ईश्वर का अस्तित्व अस्वीकार करके नास्तिक हो गये। शकर ने यही दिखलाया और तब सभी बौद्ध अपने प्राचीन धर्म का अवलम्बन करने लगे। पर वे उन अनुष्ठानो के आदी बन गये थे। इन अनुष्ठानो के लिए क्या किया जाय, यह कठिन समस्या उठ खड़ी हुई।

उस मठिमान रामानुज का सम्पुण्य हुआ। संकर की प्रतिमा प्रसार की किन्तु उनका हृदय रामानुज के समान उदार नहीं था। रामानुज का हृदय संकर की अपेक्षा अधिक विद्यासक्त था। उन्होंने पदवस्त्रियों की पीड़ा का अनुभव किया और उनसे सहानुभूति की। उस समय की प्रचलित अनुष्ठान-पद्धतियों में उन्होंने मयासक्ति सुधार किया और नयी अनुष्ठान-पद्धतियों नयी उपासना-प्रणालियों की सृष्टि उन लोगों के लिए की जिनके लिए ये अत्यावश्यक थी। इसीके साथ साथ उन्होंने शास्त्र से लेकर चाम्पडाल तक सबके लिए सर्वोच्च आध्यात्मिक उपासना का द्वार खोल दिया। यह था रामानुज का कार्य! उनके कार्य का प्रभाव चारों ओर फैलने लगा उत्तर भारत तक उसका प्रसार हुआ वहाँ भी कई आचार्य इसी तरह कार्य करने लगे किन्तु यह बहुत देर में मुसलमानों के शासन-काल में हुआ। उत्तर भारत के इन अपेक्षाकृत आधुनिक आचार्यों में से शैतन्य सर्वश्रेष्ठ हुए। रामानुज के समय से धर्म-प्रचार की एक विशेषता की ओर ध्यान दो—उस से धर्म का द्वार सर्वसाधारण के लिए खुला रहा। संकर के पूर्ववर्ती आचार्यों का यह वैसा मूल मन्त्र था रामानुज के परवर्ती आचार्यों का भी यह वैसा ही मूल मन्त्र रहा। मैं नहीं जानता कि छोटे संकर को अनुहार मत के पोषक क्यों कहते हैं। उनके सिद्धे ग्रन्थों में ऐसा कुछ भी नहीं मिलता जो उनकी संकीर्णता का परिचय दे। जिस तरह भगवान् बुद्धदेव के उपदेश उनके शिष्यों के हाथ बिगाड़ गये हैं, उसी तरह शंकराचार्य के उपदेशों पर संकीर्णता का जो बोध व्याप्य जाता है, सम्भवतः वह उनकी शिक्षा के कारण नहीं बल्कि उनके शिष्यों की जड़ता के कारण है। उत्तर भारत के महान् सत शैतन्य गोपियों के प्रेमोन्मत्त भाव के प्रतिनिधि थे। शैतन्यदेव स्वयं एक शास्त्रज्ञ थे उस समय के एक प्रसिद्ध नैयायिक बंध में उनका जन्म हुआ था। वे न्याय के अध्यापक थे तर्क हाथ सबकी परास्त करते थे—यही उन्होंने बचपन से जीवन का उन्मत्त आदर्श समझ रखा था। किसी महापुरुष की कृपा से इनका सम्पूर्ण जीवन बदल गया। उस इन्हीमे बाद विद्या तर्क न्याय का अध्यापन सब कुछ छोड़ दिया। संसार में भक्ति के जितने बड़े बड़े आचार्य हुए हैं प्रेमोन्मत्त शैतन्य उनमें से एक श्रेष्ठ आचार्य हैं। उनकी भक्ति-तरंग सारे बगाल में फैल गयी जिससे सबके हृदय को शान्ति मिली। उनके प्रेम की सीमा न थी। ताबू, बघासु, हिन्दू, मुसलमान पवित्र अपवित्र वेसा पवित्र—सभी उनके प्रेम के सामी थे वे सब पर दया रखते थे। यद्यपि काल के प्रभाव से सभी बचनति को प्राप्त होते हैं और उनका जन्मा हुआ सम्प्रदाय और बचनति की रक्षा की पूर्वज गया है। फिर भी आज तक वह बलिष्ठ दुर्बल प्वातिष्कृत पवित्र किसी भी हानाज में जिनका स्वान नहीं है ऐसे लोगों का

आश्रयस्थान है। परन्तु माय ही सत्य के लिए मुझे स्वीकार करना ही होगा कि दार्शनिक सम्प्रदायो मे ही हम अद्भुत उदार भाव देखते हैं। शंकर-मतावलम्बी कोई भी यह बात स्वीकार नहीं करेगा कि भारत के विभिन्न सम्प्रदायो मे वास्तव मे कोई भेद है, किन्तु जाति-भेद के विषय मे शंकर अत्यन्त सकीर्णता का भाव रखते थे। इसके विपरीत, प्रत्येक वैष्णवाचार्य मे हम जातिविषयक प्रश्नो की शिक्षा के वारे मे अद्भुत उदारता देखते हैं, जब कि उनमे धार्मिक प्रश्नो के विषय मे अत्यन्त सकीर्णता पाते हैं।

एक का था अद्भुत मस्तिष्क, दूसरे का था विशाल हृदय। अब एक ऐसे अद्भुत पुरुष के जन्म लेने का समय आ गया था, जिसमे ऐसा ही हृदय और मस्तिष्क दोनों एक साथ विराजमान हो, जो शंकर के प्रतिभा-सम्पन्न मस्तिष्क एवं चैतन्य के अद्भुत, विशाल, अनन्त हृदय का एक ही साथ अधिकारी हो, जो देखे कि सब सम्प्रदाय एक ही आत्मा, एक ही ईश्वर की शक्ति से चालित हो रहे हैं और प्रत्येक प्राणी मे वही ईश्वर विद्यमान है, जिसका हृदय भारत मे अथवा भारत के बाहर दरिद्र, दुर्बल, पतित सबके लिए द्रवित हो, लेकिन साथ ही जिसकी विशाल बुद्धि ऐसे महान् तत्त्वो की परिकल्पना करे, जिनसे भारत मे अथवा भारत के बाहर सब विरोधी सम्प्रदायो मे समन्वय साधित हो और इस अद्भुत समन्वय द्वारा वह एक हृदय और मस्तिष्क के सार्वभौम धर्म को प्रकट करे। एक ऐसे ही पुरुष ने जन्म ग्रहण किया और मीने वर्षों तक उनके चरणों तले बैठकर शिक्षा-लाभ का सौभाग्य प्राप्त किया। ऐसे एक पुरुष के जन्म लेने का समय आ गया था, इसकी आवश्यकता पडी थी, और वह उत्पन्न हुआ। सबसे अधिक आश्चर्य की बात यह थी कि उसका समग्र जीवन एक ऐसे शहर के पास व्यतीत हुआ, जो पाश्चात्य भावो से उन्मत्त हो रहा था, जो भारत के सब शहरो की अपेक्षा विदेशी भावो से अधिक भरा हुआ था। वहाँ पुस्तकीय ज्ञान से हर प्रकार से अनभिज्ञ वह रहता था, यह महाप्रतिभासम्पन्न व्यक्ति अपना नाम तक लिखना नहीं जानता था। किन्तु हमारे विश्वविद्यालय के बड़े बड़े अत्यन्त प्रतिभावान स्नातको ने उसको एक महान् बौद्धिक प्रतिभा के रूप मे स्वीकार किया। वे अद्भुत महा-पुरुष थे—श्री रामकृष्ण परमहंस। यह तो एक बडी लम्बी कहानी है, आज रात को तुम्हे उनके विषय मे कुछ भी बताने का समय नहीं है। इसलिए मुझे भारतीय

---

१ सामान्यत यह प्रचलित है कि वे बिल्कुल निरक्षर थे, पर बाद मे अनुसंधान से पता चला कि वे थोड़ा बहुत लिखना-पढ़ना भी जानते थे।—सपावक।

तब मनिमान रामानुज का अन्वेष हुआ। संन्यस की प्रथमा प्रणय थी, किन्तु उसका हृदय रामानुज का समान उगा नही था। रामानुज का हृदय पार की ओरसा अतिक्रिया था। उन्होंने गणितियों की पीढ़ा का अनुभव किया और उनसे गहनानुभूति की। उस समय की प्रचलित अनुष्ठान-गणितियों में उन्होंने यथाशक्ति सुधार किया और नयी अनुष्ठान-गणितियों की उद्घाटन-प्रवर्तियों की सृष्टि उन लोगों के लिए की। उनके लिए वे अथावश्यक थी। उनके माथ माथ उन्होंने ब्राह्मण से लेकर ब्राह्मण तक गहरा लिए गणितों का व्यापारिक उपासना का द्वार खोल दिया। यह था रामानुज का कार्य। उनके कार्य का प्रभाव चारों ओर फैलने लगा उत्तर भाग तक उगा प्रसार हुआ। वहाँ भी कई आचार्य इसी तरह कार्य करने लगे। किन्तु यह बहुत देर में सुनसमानों के सामान-काम में हुआ। उत्तर भारत के इन आशाहत आपुनिक आचार्यों में से शैतन्य नर्भधेष्ठ हुए। रामानुज के समय से धर्म प्रचार की एक विनयता की और ध्यान था—उस से धर्म का द्वार सबगामारण के लिए खुला रहा। धरु के पूर्ववर्ती आचार्यों का यह देगा मूल मन्त्र था रामानुज के परवर्ती आचार्यों का भी यह बीसा ही मूल मन्त्र रहा। मैं नहीं जानता कि लोग संकर को अनुष्ठान मन्त्र के पोषक क्यों करते हैं। उनसे सिवा प्रथा में एसा कुछ भी नहीं मिलता जो उनकी संकीर्णता का परिचय दे। जिस तरह भगवान् बुद्ध के उपदेश उनके शिष्यों के हाथ बियड़ गये हैं। उनी तरह संकराचार्य के उपदेशों पर संकीर्णता का जो दोष छपाया जाता है सम्भवतः वह उनकी शिक्षा के कारण नहीं बरन् उनके शिष्यों की अपोष्यता के कारण है। उत्तर भारत के महान् सन्त शैतन्य गोपियों का प्रेमोन्मत्त भाव के प्रतिनिधि थे। शैतन्यदेव स्वयं एक ब्राह्मण थे उस समय के एक प्रसिद्ध शैतन्यिक गद्य में उनका जन्म हुआ था। वे स्वयं के अन्वेषक थे तर्क द्वारा सबको परास्त करने थे—यही उन्होंने ब्रह्मण से जीवन का उच्चतम आदर्श समझ रखा था। किसी महापुरुष की कृपा से इनका सम्पूर्ण जीवन बदल गया। तब इन्होंने ब्रह्म विचार, तर्क न्याय का अन्वेषण सब कुछ छोड़ दिया। संसार में भक्ति के बिलने बड़े बड़े आचार्य हुए हैं। प्रेमोन्मत्त शैतन्य उनमें से एक श्रेष्ठ आचार्य हैं। उनकी भक्ति-तरंग सारे ब्रह्मण से फैल गयी जिससे सबके हृदय को शान्ति मिली। उनके प्रेम की सीमा न थी। सामु, असाधु, हिन्दू, मुसलमान पवित्र अपवित्र शैतन्य पठित—सभी उनके प्रेम के मापी थे वे सब पर क्या रखते थे। यद्यपि काक के प्रमान से सभी अवनति की प्राप्ति होते हैं और उनका बलाया हुआ उन्मत्त और अवनति की रक्षा को पहुँच गया है। फिर भी आज तक यह बलि, दुर्बल आदिभूत पठित किसी भी समाज में बिनका स्थान नहीं है, ऐसे लोगों का

आश्रयम्यान है। परन्तु नाथ ही सत्य के लिए मुझे स्वीकार करना ही होगा कि दार्शनिक सम्प्रदायों में ही हम अद्भुत उदार भाव देखते हैं। शक्य-मतावलम्बी कोई भी यह बात स्वीकार नहीं करेगा कि भारत के विभिन्न सम्प्रदायों में वास्तव में कोई भेद है, किन्तु जाति-भेद के विषय में शक्य अत्यन्त सकीणता का भाव रखते थे। इसके विपरीत, प्रत्येक वैष्णवाचार्य में हम जातिविषयक प्रश्नों की शिक्षा के बारे में अद्भुत उदारता देखते हैं, जब कि उनमें धार्मिक प्रश्नों के विषय में अत्यन्त सकीणता पाते हैं।

एक का था अद्भुत मस्तिष्क, दूसरे का था विशाल हृदय। अब एक ऐसे अद्भुत पुरुष के जन्म लेने का समय आ गया था, जिसमें ऐसा ही हृदय और मस्तिष्क दोनों एक साथ विराजमान हों, जो शक्य के प्रतिभा-सम्पन्न मस्तिष्क एवं चैतन्य के अद्भुत, विशाल, अनन्त हृदय का एक ही भाग अविकारी हों, जो देखे कि सब सम्प्रदाय एक ही आत्मा, एक ही ईश्वर की शक्ति से चालित हो रहे हैं और प्रत्येक प्राणी में वही ईश्वर विद्यमान है, जिनका हृदय भारत में अथवा भारत के बाहर दरिद्र, दुर्बल, पतित सबके लिए द्रवित हों, लेकिन साथ ही जिसकी विशाल बुद्धि ऐसे महान् तत्त्वों की परिकल्पना करे, जिनसे भारत में अथवा भारत के बाहर सब विरोधी सम्प्रदायों में समन्वय साधित हो और इस अद्भुत समन्वय द्वारा वह एक हृदय और मस्तिष्क के सार्वभौम धर्म को प्रकट करे। एक ऐसे ही पुरुष ने जन्म ग्रहण किया और मैंने वर्षों तक उनके चरणों तले बैठकर शिक्षालाभ का सौभाग्य प्राप्त किया। ऐसे एक पुरुष के जन्म लेने का समय आ गया था, इसकी आवश्यकता पड़ी थी, और वह उत्पन्न हुआ। सबसे अधिक आश्चर्य की बात यह थी कि उसका समग्र जीवन एक ऐसे शहर के पास व्यतीत हुआ, जो पाश्चात्य भावों से उन्मत्त हो रहा था, जो भारत के सब शहरों की अपेक्षा विदेशी भावों से अधिक भरा हुआ था। वहाँ पुस्तकीय ज्ञान से हर प्रकार से अनभिज्ञ वह रहता था, यह महाप्रतिभासम्पन्न व्यक्ति अपना नाम तक लिखना नहीं जानता था।<sup>१</sup> किन्तु हमारे विश्वविद्यालय के बड़े बड़े अत्यन्त प्रतिभावान स्नातकों ने उसको एक महान् बौद्धिक प्रतिभा के रूप में स्वीकार किया। वे अद्भुत महा-पुरुष थे—श्री रामकृष्ण परमहंस। यह तो एक बड़ी लम्बी कहानी है, आज रात को तुम्हें उनके विषय में कुछ भी बताने का समय नहीं है। इसलिए मुझे भारतीय

१ सामान्यत यह प्रचलित है कि वे बिल्कुल निरक्षर थे, पर बाद में अनुसंधान से पता चला कि वे थोड़ा बहुत लिखना-पढ़ना भी जानते थे।—संपादक।



एक महापुरुषों के पूर्णप्रकाशास्वरूप युवाचार्य श्री रामकृष्ण का उल्लेख भर करके आज समाप्त करना होगा। उनके उपदेश आजकल हमारे लिए विषय बस्यार काठी हैं। उनके भीतर जो ईश्वरीय शक्ति थी उस पर विशेष ध्यान हो। वे एक दरिद्र ब्राह्मण के लड़के थे। उनका जन्म बंगाल के मुदुर, अज्ञात अपठित किसी एक गाँव में हुआ था। आज यूरोप अमेरिका के सहस्रों व्यक्ति वास्तव में उनकी पूजा कर रहे हैं भविष्य में और भी सहस्रों मनुष्य उनकी पूजा करेंगे। ईश्वर की कौनसी कौन समझ सकता है ?

भाइयो तुम यदि इसमें निश्चयता का ह्रास नहीं देखते तो अग्ने ही, सबमुख जगन्नाथ हो। यदि समय मिला यदि दूसरा अवसर मिला सका तो इनके सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक कहूँगा। इस समय केवल इतना ही कहना चाहता हूँ कि यदि मैंने जीवन भर में एक भी शरण वाक्य कहा है तो वह उन्हीका केवल उनका ही वाक्य है पर यदि मैंने ऐसे वाक्य कहे हैं जो अशरण भ्रमपूर्ण अथवा मानव जाति के लिए हितकारी न हों तो वे सब मेरे ही वाक्य हैं और उनके लिए पूरा उत्तरदायी मैं ही हूँ।

## हमारा प्रस्तुत कार्य

यह व्याख्यान ट्रिप्लिकेन, मद्रास की साहित्य-समिति में दिया गया था। अमेरिका जाने के पहले स्वामी विवेकानन्द जी का इस समिति के सदस्यों से परिचय हुआ था। इन सदस्यों के साथ स्वामी जी ने अनेक विषयों पर चर्चा की थी। इनमें वे सदस्यगण तथा मद्रास की जनता बहुत ही प्रभावित हुई थी। अन्त में इन सज्जनों के विशेष आग्रह एवं प्रयत्न में ही वे अमेरिका की शिकागो धर्म-महासभा में हिन्दू धर्म के प्रतिनिधि के रूप में भेजे गये थे। अतएव इस व्याख्यान का एक विशेष महत्त्व है।

### स्वामी जी का भाषण

ससार ज्यो ज्यो आगे बढ़ रहा है, त्यो त्यो जीवन-समस्या गहरी और व्यापक हो रही है। उस पुराने ज़माने में जब कि समस्त जगत् के अखड्करूप वेदान्ती सत्य का प्रथम आविष्कार हुआ था, तभी से उन्नति के मूल मंत्रों और सार तत्त्वों का प्रचार होता आ रहा है। विश्वब्रह्मांड का एक परमाणु सारे ससार को अपने साथ बिना घसीटे तिल भर भी नहीं हिल सकता। जब तक सारे ससार को साथ साथ उन्नति के पथ पर आगे नहीं बढ़ाया जायगा, तब तक ससार के किसी भी भाग में किसी भी प्रकार की उन्नति सम्भव नहीं है। और दिन प्रति दिन यह और भी स्पष्ट हो रहा है कि किसी प्रश्न की भीमासा सिर्फ जातीय, राष्ट्रीय या किन्हीं सकीर्ण भूमियों पर नहीं टिक सकती। हर एक विषय को तथा हर एक भाव को तब तक बढ़ाना चाहिए, जब तक उसमें सारा ससार न आ जाय, हर एक आकांक्षा को तब तक बढ़ाते रहना चाहिए, जब तक वह समस्त मनुष्य जाति को ही नहीं, चरन् समस्त प्राणिजगत् को आत्मसात् न कर ले। इससे विदित होगा कि क्यों हमारा देश गत कई सदियों से वैसा महान् नहीं रह गया है, जैसा वह प्राचीन काल में था। हम देखते हैं कि जिन कारणों से वह गिर गया है, उनमें से एक कारण है, दृष्टि की सकीर्णता तथा कार्यक्षेत्र का सकोच।

जगत् में ऐसे दो आश्चर्यजनक राष्ट्र हो गये हैं, जो एक ही जाति से प्रस्फुटित हुए हैं, परन्तु भिन्न परिस्थितियों और घटनाओं में स्थापित रहकर हर एक ने जीवन की समस्याओं को अपने ही निराले ढंग से हल कर लिया है—मेरा मतलब

प्राचीन हिन्दू और प्राचीन यूनानी आठियों से है। भारतीय आठियों की उत्तरी सीमा हिमालय की उम बड़ीकी चोटियों से घिरी हुई है। जिनके तक से हम मूमि पर समुद्र की स्वच्छतोया सरिताएँ हिमोरेँ मार रही हैं और वहीं वे अनंत अरभ्य वर्तमान हैं, जो आठियों को संसार के अन्तिम छोर से प्रवृत्त हुए। इन सब मनोरम दृश्यों को देखकर आठियों का मन सहज ही अतर्मुह हो उठा। आठियों का मस्तिष्क सूक्ष्म भावप्राही था और चारों ओर घिरी हुई महान् दुःस्वाभसी बेसुने का यह स्वाभाविक फल हुआ कि आठिय मन्तस्तत्र के अनुसंधान में लग गये। चित्त का विस्लेषण भारतीय आठियों का मुख्य ध्येय हो गया। ब्रह्म की धोर, यूनानी आठि संसार के एक दूसरे भाग में पहुँची जो उवात्त की अपेक्षा मुख्य अधिक था। यूनानी टाण्डो के भीतर क वे मुख्य दृश्य उनके चारों ओर की वह हास्यमयी किन्तु निराभरण प्रकृति देखकर यूनानियों का मन स्वभावतः अहिंसुल हुआ और उसने बाह्य संसार का विस्लेषण करना चाहा। परिणामतः हम देखते हैं कि समस्त विस्लेषात्मक विज्ञानों का विकास भारत से हुआ और धामाप्सीकरण के विज्ञानों का विकास यूनान से। हिन्दुओं का मानस अपनी ही कार्य-विधा में अग्रसर हुआ और उसने अद्भुत परिणाम प्राप्त किये हैं। यहाँ तक कि वर्तमान समय में भी हिन्दुओं की वह विचार-शक्ति—वह अपूर्व शक्ति जिसे भारतीय मस्तिष्क अब तक धारण करता है बेजोड़ है। हम सभी जानते हैं कि हमारे लड़के ब्रह्म के लड़कों से प्रतियोगिता में सदा ही विजय प्राप्त करते हैं। परन्तु साथ ही धायक मुसलमानों के विजय प्राप्त करने के दो घाताब्दी पहले ही जब हमारी अतीव शक्ति शीन हुई, उस समय हमारी यह जातीय प्रतिभा ऐसी अतिरजित हुई कि वह रथ ही अच-पतन की ओर अग्रसर हुई थी और वहीं अच-पतन अब भारतीय शिल्प शगिल विज्ञान आदि हर विषय में बिकायी दे रहा है। शिल्प म अब वह व्यापक परिष्कृतता नहीं रही मयी भाषों की वह उदात्तता तथा शपाकार के सीप्य की वह श्रेष्ठा अब और नहीं रह गयी किन्तु उसकी जगह अत्यधिक अलक्ष्य तथा भङ्गीलेपन का समामेस हो गया। आठि की शारी शौक्षिकता लुप्त हो गयी। सर्गित म चित्त को मस्त कर देनेवाले वे गम्भीर भाव जो प्राचीन संस्कृत म पाये जाते हैं अब नहीं रहे—यहूँ की तरह उनमें से प्रत्येक स्वर अब अपने पैर नहीं मटा हो सकता वह अपूर्व एततामता नहीं छेड सकता। इन एक स्वर अपनी विशिष्टता पा बैठा। हमारे समय आधुनिक मवीन म माना प्रकार क स्वर-मानो की शिखरी हो गयी है। उमकी बहुत ही बुरी दशा हो गयी है। मगति की अवनति का यही चिह्न है। रनी प्रकार यदि तुम अपनी भाषात्मक परिष्कृतता की विरक्ष्यता करके देखो तो तुमको बड़ी अतिरजता और अलक्ष्य की ही श्रेष्ठा और शौक्षिकता का भाग मिलेगा। और, वहीं तक कि

तुम्हारे विशेष क्षेत्र धर्म में भी, वही भयानक अवनति हुई है। उम जाति में तुम क्या आशा कर सकते हो, जो सैकड़ों वर्ष तक यह जटिल प्रश्न हल करती रह गयी कि पानी भरा लोटा दाहिने हाथ से पीना चाहिए या बाएँ हाथ में। इसमें और अधिक अवनति क्या हो सकती है कि देश के बड़े बड़े मेधावी मनुष्य भोजन के प्रश्न को लेकर तर्क करते हुए सैकड़ों वर्ष विता दे, इस बात पर वाद-विवाद करते हुए कि तुम हमें छूने लायक हो या हम तुम्हें, और इस छूने-अछूने के कारण कौन सा प्रायश्चित्त करना पड़ेगा? वेदान्त के वे तत्त्व, ईश्वर और आत्मा सम्बन्धी सबसे उदात्त तथा महान् निदान्त, जिनका मारे ससार में प्रचार हुआ था, प्रायः नष्ट हो गये, निविड अरण्यनिवासियों द्वारा रक्षित होकर वे छिपे रहे और शेष सब लोग केवल छूते-अछूते, ग्राह्य-अग्राह्य और वेशभूषा जैसे गुरुतर प्रश्नों को हल करने में व्यस्त रहे। हमें मुसलमानों से कई अच्छे विषय मिले, इसमें कुछ सन्देह नहीं। ममार में हीनतम मनुष्य भी श्रेष्ठ मनुष्यों को कुछ न कुछ शिक्षा अवश्य दे सकते हैं, किन्तु वे हमारी जाति में शक्ति-संचार नहीं कर सके।

इसके पश्चात् शुभ के लिए हो, चाहे अशुभ के लिए, भारत में अग्रेजों की विजय हुई। किसी जाति के लिए विजित होना निःसंदेह बुरी चीज है, विदेशियों का शासन कभी भी कल्याणकारी नहीं होता। किन्तु तो भी, अशुभ के माध्यम से कभी कभी शुभ का आगमन होता है। अतएव अग्रेजों की विजय का शुभ फल यह है इंग्लैण्ड तथा समग्र यूरोप को सम्यक्ता के लिए यूनान के प्रति ऋणी होना चाहिए, क्योंकि यूरोप के सभी भावों में मानो यूनान की ही प्रतिध्वनि सुनाई दे रही है, यहाँ तक कि उसके हर एक मकान में, मकान के हर एक फरनीचर में यूनान की ही छाप दीख पड़ती है। यूरोप के विज्ञान, शिल्प आदि सभी यूनान ही के प्रतिबिम्ब हैं। आज वही प्राचीन यूनान तथा प्राचीन हिन्दू भारतभूमि पर मिल रहे हैं। इस प्रकार धीरे धीरे निःस्तब्ध भाव से एक परिवर्तन आ रहा है और आज हमारे चारों ओर जो उदार, जीवनप्रद पुनश्चयान का आन्दोलन दिखाई दे रहा है, वह सब इन दोनों विभिन्न भागों के सम्मिलन का ही फल है। अब मानव जीवन सम्बन्धी अधिक व्यापक और उदार धारणाएँ हमारे सम्मुख हैं। यद्यपि हम पहले कुछ भ्रम में पड़ गये थे और भावों को सकीर्ण करना चाहते थे, पर अब हम देखते हैं कि आजकल ये जो महान् भाव और जीवन की उँची धारणाएँ काम कर रही हैं, हमारे प्राचीन ग्रन्थों में लिखे हुए तत्त्वों की स्वाभाविक परिणति ही है। ये उन बातों का यथार्थ न्यायसंगत कार्यान्वय मात्र हैं, जिनका हमारे पूर्वजों ने पहले ही प्रचार किया था। विशाल बनना, उदार बनना, क्रमशः सार्वभौम भाव में उपनीत होना—यही

हमारा स्वयं है। परन्तु हम ध्यान न देकर अपने छात्रोपदेशों के विरुद्ध किनों पिन अपने को संकीर्ण से संकीर्णतर करते जा रहे हैं।

हमारी उन्नति के मार्ग में कुछ बिन्दु हैं और उनमें प्रधान है हमारी यह धारणा कि संसार में हम प्रमुख जाति के हैं। मैं हृदय से भारत को प्यार करता हूँ स्वदेश के हितार्थ मैं सदा कमर कसे तैयार रहता हूँ पूर्वजों पर मेरी आन्तरिक भ्रष्टा और भक्ति है फिर भी मैं अपना यह विचार नहीं त्याग सकता कि संसार से हमें भी बहुत कुछ शिक्षा प्राप्त करनी है। शिक्षाग्रहणार्थ हमें सबके पैरों ससे बैठना चाहिए, क्योंकि ध्यान इस बात पर देना आवश्यक है कि सभी हम महान् शिक्षा दे सकते हैं। हमारे महान् श्रेष्ठ स्मृतिकार मनु महाराज की उक्ति है 'भीष जातियों से भी भ्रष्टा के साथ हितकारी शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए, और निम्नतम अल्पज ही क्यों न हो सेवा द्वारा उससे भी श्रेष्ठ धर्म की शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए।'<sup>१</sup>

अतएव यदि हम मनु की सच्ची सन्तान हैं तो हमें उनके आदेशों का अग्रस्य ही प्रतिपादन करना चाहिए और जो कोई हमें शिक्षा देने के योग्य है, उसीसे ऐहिक या पारमायिक विषयों में शिक्षा ग्रहण करने के लिए हमें सदा तैयार रहना चाहिए। किन्तु साथ ही यह भी न भूलना चाहिए कि संसार को हम मी, कोई विशेष शिक्षा दे सकते हैं। भारत का बाहर के देशों से सम्बन्ध जोड़े बिना हमारा काम नहीं चल सकता। किसी समय हम लोगों ने जो इसके विपरीत सोचा था वह हमारी मूर्खता मात्र थी और उसीकी सजा का फल है कि हजारों वर्षों से हम वास्तव के बन्धनों में बंध मये हैं। हम लोग दूसरी जातियों से अपनी तुलना करने के लिए विशेष नहीं मने और हमने संसार की गति पर ध्यान रखकर चलना नहीं सीखा। यही है भारतीय जन की अवनति का प्रधान कारण। हमें यथेष्ट सेवा मिल चुकी अब हम ऐसा नहीं करना चाहिए। भारत से बाहर जाना भारतीयों के लिए अनुचित है—इस प्रकार की बाहिर्वात बातें बच्चों की ही हैं। उन्हें विमान से विरह्णुक्त निकाल फेंकनी चाहिए। जितना ही तुम भारत से बाहर अग्र्याय देशों में भ्रमोमे उठना ही तुम्हारा और तुम्हारे देश का कर्मान होमा। यदि तुम पहले ही से—कई सदियों के पहले ही से—ऐसा करते तो तुम आज उन राष्ट्रों से पराक्रम्य न होते जिन्होंने तुम्हें बचाने की कोशिश की। जीवन का पहला और स्पष्ट सञ्जय है विस्तार। अगर तुम जीवित रहना चाहते हो, तो तुम्हें विस्तार करना ही होगा। जिस क्षण से तुम्हारे जीवन का विस्तार बन्द हो जायेगा उही

१ अहमदाली घुमां विश्वामयवैतावरारवि ।  
अम्यावपि परं धर्मं स्त्रीरत्नं दुष्कृतवपि ॥

क्षण से जान लेना कि मृत्यु ने तुम्हें घेर लिया है, विपत्तियाँ तुम्हारे सामने हैं। मैं यूरोप और अमेरिका गया था, इसका तुम लोगो ने सहृदयतापूर्ण उल्लेख किया है। मुझे वहाँ जाना पडा, क्योंकि यही विस्तार या राष्ट्रीय जीवन के पुनर्जागरण का पहला चिह्न है। इस फिर से जगनेवाले राष्ट्रीय जीवन ने भीतर ही भीतर विस्तार प्राप्त करके मुझे मानो दूर फेंक दिया था और इस तरह और भी हजारो लोग फेंके जायेंगे। मेरी बात ध्यान से सुनो। यदि राष्ट्र को जीवित रहना है, तो ऐसा होना आवश्यक है। अतएव यह विस्तार राष्ट्रीय जीवन के पुनरन्मुदय का सर्वप्रधान लक्षण है और मनुष्य की सारी ज्ञानसमष्टि तथा समग्र जगत् की उन्नति के लिए हमारा जो कुछ योगदान होना चाहिए, वह भी इस विस्तार के साथ भारत से बाहर दूसरे देशो को जा रहा है। परन्तु यह कोई नया काम नहीं। तुम लोगो मे से जिनकी यह धारणा है कि हिन्दू अपने देश की चहारदीवारी के भीतर ही चिर काल से पडे हैं, वे बडी ही भूल करते है। तुमने अपने प्राचीन शास्त्र पढे नहीं, तुमने अपने जातीय इतिहास का ठीक ठीक अध्ययन नहीं किया। हर एक जाति को अपनी प्राण-रक्षा के लिए दूसरी जातियो को कुछ देना ही पडेगा। प्राण देने पर ही प्राणो की प्राप्ति होती है, दूसरो से कुछ लेना होगा तो बदले मे मूल्य के रूप मे उन्हें कुछ देना ही होगा। हम जो हजारो वर्षो से जीवित हैं, यह हमको विस्मित करता है, और इसका समाधान यही है कि हम ससार के दूसरे देशो को सदा देते रहे हैं, अनजान लोग भले ही जो सोचें।

भारत का दान है धर्म, दार्शनिक ज्ञान और आध्यात्मिकता। धर्म-प्रचार के लिए यह आवश्यक नहीं कि सेना उसके आगे आगे मार्ग निष्कटक करती हुई चले। ज्ञान और दार्शनिक तत्त्व को शोणित-प्रवाह पर से ढोने की आवश्यकता नहीं। ज्ञान और दार्शनिक तत्त्व खून से भरे जख्मी आदमियो के ऊपर से सदर्प विचरण नहीं करते। वे शान्ति और प्रेम के पखो से उडकर शान्तिपूर्वक आया करते हैं, और सदा हुआ भी यही। अतएव ससार के लिए भारत को सदा कुछ देना पडा है। लन्दन मे किसी युवती ने मुझसे पूछा, "तुम हिन्दुओ ने क्या किया ? तुमने कभी किसी भी जाति को नहीं जीत पाया है।" अग्रेज जाति की दृष्टि मे—वीर साहसी, क्षत्रियप्रकृति अग्रेज जाति की दृष्टि मे—दूसरे व्यक्ति पर विजय प्राप्त करना ही एक व्यक्ति के लिए सर्वश्रेष्ठ गौरव की बात समझी जाती है। यह उनके दृष्टिविन्दु से सत्य भले ही हो, किन्तु हमारी दृष्टि इसके बिल्कुल विपरीत है। जब मैं अपने मन से यह प्रश्न करता हूँ कि भारत के श्रेष्ठत्व का क्या कारण है, तब मुझे यह उत्तर मिलता है कि हमने कभी दूसरी जाति पर विजय प्राप्त नहीं की, यही हमारा महान् गौरव है। तुम लोग आजकल सदा यह निन्दा सुन रहे हो

कि हिन्दुओं का धर्म दूसरों के धर्म को जीत लेना में सचेष्ट नहीं और मैं बड़े दुःख से कहता हूँ कि यह बात ऐसे ऐसे व्यक्तियों के मूँह की होती है जिन्हें हम अधिकतर ज्ञान की अपेक्षा करते हैं। मुझे यह आग पड़ता है कि हमारा धर्म दूसरे धर्मों की अपेक्षा सत्य के अधिक निकट है। इस तथ्य के समर्पण की प्रधान युक्ति यही है कि हमारे धर्म में कमी दूसरे धर्मों पर विजय प्राप्त नहीं की उसमें कमी खून की गन्धि नहीं बहानी उसने सदा आमीर्बाह और दान्ति के दाग कहे सबको उसने प्रेम और सहानुभूति की कृपा गुनायी। यहीं केवल यही दूसरे धर्म से छेप न रखन के भाव सबसे पहले प्रचारित हुए, केवल यहीं परधर्म-साहिष्णुता तथा सहानुभूति के ये भाव कार्यन्वय में परिणत हुए। अन्य देशों में यह केवल सिद्धान्त-वर्षा मात्र है। यही केवल यही यह देखने में आता है कि हिन्दू मुसलमानों के लिए मस्जिदों और ईसाइयों के लिए गिरजे बनवाते हैं।

अतएव भाइयो तुम समझ गये होग कि किस तरह हमारे भाव धीरे धीरे दान्त और अज्ञात रूप से दूसरे देशों में गये हैं। भारत के सब दिपनों में यही बात है। भारतीय विचार का सबसे बड़ा कदाचन है उसका दान्त स्वभाव और उसकी नीरवता। जो प्रभुत्व सक्ति इसके पीछे है, उसका प्रकाश बबरकन्टी से नहीं होता। भारतीय विचार सदा जाड़ सा बसर करता है। जब कोई विदेशी हमारे साहित्य का अध्ययन करता है तो पहले वह उसे अस्मिपूर्ण प्रतीत होता है, क्योंकि इसमें उसके निज के साहित्य वैसे उद्दीपना नहीं दीव गति नहीं जिससे उसका हृदय सहज ही उल्लस पड़े। यूरोप के बुजान्त नाटकों की हमारे कश्म नाटकों से तुलना करो पश्चिमी नाटक कार्य-प्रधान हैं वे कुछ बेर के लिए उद्दीप्त हो कर बंटे हैं किन्तु समाप्त होते ही तुरन्त प्रतिक्लिमा शुरू हो जाती है और तुम्हारे मस्तिष्क से उसका सम्पूर्ण प्रभाव निकल जाता है। भारत के कश्म नाटकों में मानो सम्मोहन की शक्ति बरी हुई है। वे मन्वजति से पुपचाप अपना काम करते हैं, किन्तु तुम व्यो व्यो उनका अध्ययन करते हो त्यों त्यों तुम्हें मुग्ध करने समते है। फिर तुम टय से मय नहीं हो सकते तुम बैब बाटे हो हमारे साहित्य में जिस किसीने प्रवेश किया उसे उसका बन्धन बबस्य ही स्वीकार करना पड़ा और बिर काल के लिए हमारे साहित्य से उसका अनुयाग हो गया। अनदेखे और अनसुने पिरनेवाला कोमक जोस कब जिस प्रकार सुन्दरतम पुलाव की ककियों को खिसा देता है, वैसे ही बसर भारत के बान का सघार की विचारचार पर पड़ता रहता है। भाव अज्ञेय किन्तु महासक्ति के अक्षय बस से उसने सारे जगत् की विचार-राधि में अमिठ मचा बी है—एक गया ही मुग बड़ा कर दिया है किन्तु तो भी कोई नहीं जानता कब ऐसा हुआ। किसी ने प्रसंगवशात् मुझसे कहा था 'भारत के किसी

प्राचीन ग्रन्थकार का नाम ढूँढ निकालना कितना कठिन काम है।" इसपर मैंने यह उत्तर दिया कि यही भारतीयों का स्वभाव है। भारत के लेखक आजकल के लेखकों जैसे नहीं थे, जो ग्रन्थों का ९० फीसदी भाव दूसरे लेखकों से साफ उडा लेते हैं और जिनका अपना केवल दशमांश होता है, किन्तु तो भी जो ग्रन्थारम्भ में भूमिका लिखते हुए यह कहते नहीं चूकते कि इन मत-मतान्तरों का पूरा उत्तर-दायित्व मुझ पर है। मनुष्य जाति के हृदय में उच्च भाव भरनेवाले वे महामनीषी उन ग्रन्थों की रचना करके ही सन्तुष्ट थे, उन्होंने ग्रन्थों में अपना नाम तक नहीं दिया, और अपने ग्रन्थ भावी पीढ़ियों को सौंपकर वे शान्तिपूर्वक इस ससार से चल बसे। हमारे दर्शनकारों या पुराणकारों के नाम कौन जानता है? वे सभी व्यास, कपिल आदि उपाधियों ही से परिचित हैं, वे ही श्री कृष्ण के योग्य सपूत हैं, वे ही गीता के यथार्थ अनुयायी हैं, उन्होंने ही श्रीकृष्ण के इस महान उपदेश—'कर्म में ही तुम्हारा अधिकार है, फल में कदापि नहीं'—का पालन कर दिखाया।

मित्रों, इस प्रकार भारत ने ससार में अपना कर्म किया, परन्तु इसके लिए भी एक बात अत्यन्त आवश्यक है। वाणिज्य-द्रव्य की भाँति, विचारों का समूह भी किसीके बनाये हुए मार्ग से ही चलता है। विचार-राशि के एक देश से दूसरे देश को जाने के पहले, उसके जाने का मार्ग तैयार होना चाहिए। ससार के इतिहास में, जब कभी किसी बड़े दिग्विजयी राष्ट्र ने ससार के भिन्न भिन्न देशों को एक सूत्र में बाँधा है, तब उसके बनाये हुए मार्ग से भारत की विचारधारा वह चली है और प्रत्येक जाति की नस नस में समा गयी है। आये दिन इस प्रकार के प्रमाण जुटते जा रहे हैं कि बुद्ध के जन्म के पहले ही भारत के विचार सारे ससार में फैल चुके थे। बौद्ध धर्म के उदय के पहले ही चीन, फारस और पूर्वी द्वीप-समूहों में वेदान्त का प्रवेश हो चुका था। फिर जब यूनान की प्रबल शक्ति ने पूर्वी भूखण्डों को एक ही सूत्र में बाँधा था, तब वहाँ भारत की विचार धारा प्रवाहित हुई थी, और ईसाई धर्मावलम्बी जिस सम्यता की डींग हाँक रहे हैं, वह भी भारतीय विचारों के छोटे छोटे कणों के सग्रह के सिवा और कुछ नहीं। बौद्ध धर्म, अपनी समस्त महानता के साथ जिसकी विद्रोही सन्तान है और ईसाई धर्म जिसकी नगण्य नकल मात्र है, वही हमारा धर्म है। युगचक्र फिर घूमा है, वैसा ही समय फिर आया है, इंग्लैण्ड की प्रचंड शक्ति ने भूमण्डल के भिन्न भिन्न भागों को फिर एक दूसरे से जोड़ दिया है। अग्रेजों के मार्ग रोमन जाति के मार्गों की तरह केवल स्थल भाग में ही

१. कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ॥ गीता २।४७ ॥

२. सुमात्रा, जावा, चीनियों आदि।



नहीं अतः महासागरों के सब भागों में भी बीड़ रहे हैं। संसार के सभी भाग एक दूसरे से जुड़ गये हैं और विद्युत् शक्ति सब संदिग्ध-वाहक की भाँति अपना ज्वलित नाटक कर रही हैं। इन अनुकूल अवस्थाओं को प्राप्त कर भारत फिर जाग रहा है और संसार की उन्नति तथा धारी सम्मता को अपने योगदान के लिए बहूँ तैयार हो रहा है। इसीके फलस्वरूप प्रकृति ने मानो जबरदस्ती मुझे बर्म का प्रचार करने के लिए इन्कैण्ड और अमेरिका भेजा। हममें से हर एक को यह अनुभव करना चाहिए कि प्रचार का समय आ गया है। चारों ओर सुभ लक्षण बीक रहे हैं और भारतीय साम्प्रदायिक और वास्तविक विचारों की फिर से धारे ससार पर विजय होनी। अतएव हमारे सामने समस्या दिन दिन बृहत्तर आकार धारण कर रही है। क्या हमें केवल अपने ही देश को अपना हागा? नहीं यह तो एक तुच्छ बात है, मैं एक कल्पनाशील मनुष्य हूँ—भरी यह भावना है कि हिन्दू जाति धारे ससार पर विजय प्राप्त करेगी।

जगत् में बड़ी बड़ी विजयी जातियाँ हो चुकी हैं हम भी महान् विजेता रह चुके हैं। हमारी विजय की कथा को भारत के महान् सम्राट् अशोक ने बर्म और साम्प्रदायिकता ही की विजय बताया है। फिर से भारत को जगत् पर विजय प्राप्त करना होगा। यही मेरे जीवन का स्वप्न है और मैं चाहता हूँ कि तुममें से प्रत्येक जो कि मेरी बात सुन रहा है अपने अपने मन में उसी स्वप्न का पोषण करे, और उसे कार्य रूप में परिणत किये बिना न छोड़े। लोग हर रोज तुमसे कहेंगे कि पहले अपने घर को संभालो बाद में विदेशों में प्रचार करना। पर मैं तुम लोगों से स्पष्ट शब्दों में कह देता हूँ कि तुम सबसे अच्छा काम तभी करते हो जब दूसरे के सिद्ध करते हो। अपने लिए सबसे अच्छा काम तुमने तभी किया जब कि तुमने औरों के लिए काम किया। अपने विचारों का समुद्रों के उस पार विदेशी भाषाओं में प्रचार करने का प्रयत्न किया और यह समा ही इस बात का प्रमाण है कि तुम्हारा साम्प्रदायिक देशों को अपने विचारों से शिक्षित करने का प्रयत्न तुम्हारे अपने देश को भी लाभ पहुँचा रहा है। यदि मैं अपने विचारों को भारत ही में सीमाबद्ध रखता तो उस प्रभाव का एक बीजाई भी न हो पाता जो कि मेरे इन्कैण्ड और अमेरिका नामों से इस देश में हुआ। हमारे सामने यही एक महान् आवर्ष है, और हर एक को इसके लिए तैयार रहना चाहिए—बहु आवर्ष है भारत की विजय पर विजय—उससे छोटा कोई आवर्ष न आयेगा और हम सभी को इसके लिए तैयार होना चाहिए और मरसक कोसिस करने चाहिए। अगर विदेशी आकर इस देश को अपनी सेनाओं से प्लाविष्ठ कर दें तो कुछ परबाह नहीं। उठी भारत तुम अपनी साम्प्रदायिकता द्वारा जगत् पर विजय प्राप्त करो। वैसे कि इसी देश में पहले पहल

प्रचार किया गया है, प्रेम ही घृणा पर विजय प्राप्त करेगा, घृणा घृणा को नहीं जीत सकती, हमें भी वैसा ही करना पड़ेगा। भौतिकवाद और उससे उत्पन्न क्लेश भौतिकवाद से कभी दूर नहीं हो सकते। जब एक सेना दूसरी सेना पर विजय प्राप्त करने की चेष्टा करती है तो वह मानव जाति को पशु बना देती है और इस प्रकार वह पशुओं की सख्या बढ़ा देती है। आध्यात्मिकता पाश्चात्य देशों पर अवश्य विजय प्राप्त करेगी। धीरे धीरे पाश्चात्यवासी यह अनुभव कर रहे हैं कि उन्हें राष्ट्र के रूप में बने रहने के लिए आध्यात्मिकता की आवश्यकता है। वे इसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं, चाव से इसकी बाट जोह रहे हैं। उसकी पूर्ति कहाँ से होगी ? वे आदमी कहाँ हैं, जो भारतीय महर्षियों का उपदेश जगत् के सब देशों में पहुँचाने के लिए तैयार हो ? कहाँ है वे लोग, जो इसलिए सब कुछ छोड़ने को तैयार हो कि ये कल्याणकर उपदेश ससार के कोने कोने तक फैल जायँ ? सत्य के प्रचार के लिए ऐसे ही वीर हृदय लोगों की आवश्यकता है। वेदान्त के महासत्यो को फैलाने के लिए ऐसे वीर कर्मियों को बाहर जाना चाहिए। जगत् को इसकी चाहना है, इसके बिना जगत् विनष्ट हो जायगा। सारा पाश्चात्य जगत् मानो एक ज्वालामुखी पर स्थित है, जो कल ही फूटकर उसे चूर चूर कर सकता है। उन्होंने सारी दुनियाँ छान डाली, पर उन्हें तनिक भी शान्ति नहीं मिली। उन्होंने इन्द्रिय-सुख का प्याला पीकर खाली कर डाला, पर फिर भी उससे उन्हें तृप्ति नहीं मिली। भारत के धार्मिक विचारों को पाश्चात्य देशों की नस नस में भर देने का यही समय है। इसलिए मद्रासी नवयुवकों, मैं विशेषकर तुम्हींको इसे याद रखने को कहता हूँ। हमें बाहर जाना ही पड़ेगा, अपनी आध्यात्मिकता तथा दार्शनिकता से हमें जगत् को जीतना होगा। दूसरा कोई उपाय ही नहीं है, अवश्यमेव इसे करो, या मरो। राष्ट्रीय जीवन, सतेज और प्रबुद्ध राष्ट्रीय जीवन के लिए बस यही एक शर्त है कि भारतीय विचार विश्व पर विजय प्राप्त करें।

साथ ही हमें न भूलना चाहिए कि आध्यात्मिक विचारों की विश्व-विजय से मेरा मतलब है उन सिद्धान्तों के प्रचार से, जिनसे जीवन-संचार हो, न कि उन सैकड़ों कुम्हारों से, जिन्हें हम सदियों से अपनी छाती से लगाते आये हैं। इनको तो इस भारत-भूमि से भी उखाड़कर दूर फेंक देना चाहिए, जिससे वे सदा के लिए नष्ट हो जायँ। इस जाति के अन्न पतन के ये ही कारण हैं और ये दिमाग को कमजोर बना देते हैं। हमें उम दिमाग में वचना चाहिए, जो उच्च और महान् चिन्तन नहीं कर सकती, जो निस्तेज होकर मौलिक चिन्तन की सारी शक्तियाँ खो बैठना है, और जो धर्म के नाम पर चने आनेवाले नव प्रकार के छोटे-छोटे कुम्हारों के विष से अपने को जजरित कर रहा है। हमारी दृष्टि में भारत के लिए कई आपदाएँ

राही है। इनमें से दो स्काइला और चरीबाइडिस से और भीतिकबाइ और इसकी प्रतिश्रिया से वेदा हुए और कुसंस्कार से अबदय बचना चाहिए। आज हमें एक ठरछ बह मनुष्य दिखायो पड़ता है, जो पादचार्य आज कपी मदिउ-मान से मत्त होकर अपने को सर्वस समझता है। वह प्राचीन ऋषियों की हूँसी उड़ाया करता है। उसके सिद्धि हिन्दुओं के सब विचार बिस्तुक्त बाहियाठ बीज है, हिन्दू दर्शन-शास्त्र बच्चों का कसरत मात्र है और हिन्दू धर्म मुत्तों का मात्र बंधविश्वास। दूसरी ठरछ बह आदमी है जो विदित ता है पर त्रिष्ठ पर किसी एक चीज की सनक सवार है और वह उस्ती राह सेकर हर एक छोटी सी बात का असीबिक अर्थ निकालने की कोशिश करता है। अपनी विषय जाति या बेक-बेवियों या गाँव से सम्बन्ध रखनेवाले त्रिष्ठने कुसंस्कार है उनको उचित सिद्ध करन के लिए दार्शनिक भाष्यात्मिक तथा बच्चों को मुहानबाक न जाने क्या क्या अर्थ उसके पास सभंदा ही मौजूद है। उसके लिए प्रत्येक प्राम्य कुसंस्कार बेहों की आज्ञा है और उसकी समझ में उसे कार्य रूप में परिणत करने पर ही जातीय जीवन निर्भर है। तुम्हें इन सबसे बचना चाहिए।

तुममें से प्रत्येक मनुष्य कुसंस्कारपूर्ण मूर्ख होन के बरके यदि और नास्तिक भी हो जाय तो मुझे पसन्द है क्याकि नास्तिक तो जीवन है तुम उसे किसी ठरछ परिवर्तित कर सकते हो। परन्तु यदि कुसंस्कार घुस जायें तो मस्तिष्क बिगड़ जायगा बमबोर ही जायगा और मनुष्य बिनाम की ओर अग्रसर होने लगेगा। तो इन दो सजटी न बचो। हमे निर्भीक माहनी मनुष्यों का ही प्रयोजन है। हम मून में ठेडी और स्नायुओं में बम की आवश्यकता है—मह के पुट्टे और प्रोलाइ व स्नायु चाटिए, न कि दुर्बलता कानेवाले बाहियाठ विचार। इन सबको त्याग दो सब प्रकार के रहस्या से बचो। धर्म में कोई कजा छिपी नहीं है। क्या बेदारुण बेर गहिना अथवा पुरातन न कोई ऐसी रहस्य की बात है? प्राचीन ऋषियों ने जाने धर्म प्रचार के लिए कौन सी योगनीय मयितियाँ रचापिन की थी? क्या एसा कोई जेगा है कि जाने मगाम् गण्यो को मालम जानि व प्रचारित करने के लिए उहूँति एगे एग जादूमरा के में हबराहा का उपाय किया जा? हर बात की रहस्यमय बनाना और कुसंस्कार—ये मरा दुर्बलता क ही चिह्न हंते हैं। ये अजर्ना और मूय के ही चिह्न हैं। इनलिण उनगे बच रहो बमबान् बलो और आज वेरो पर गये ही जाओ। गगार न अनेक अहमून एव आन्धर्यजनन बमूर्त हैं। अहूँति के बार में आज हबारी या पारुषाणें हैं उनही मूनना में हम उहें अर्था प्राशुति बत करने हैं परन्तु उनमें से एक भी रहस्यमय नहीं है। इन आन्धर्यमय बमयत बभी प्रचारित नहीं हुआ कि धर्म के गण्य गौतनीय विषय हैं अथवा यह कि वे विवेकमन्द की बर्तीकी बर्तीकी बत बमनेवाली मूल गमितीया की ही विवेक सगर्गिन

हैं। मैं हिमालय में गया था, तुम लोग वहाँ पर नहीं गये होगे, वह स्थान तुम्हारे घरों से कई सौ मील दूर है। मैं सन्यासी हूँ और गत चौदह वर्षों से मैं पैदल घूम रहा हूँ। ये गुप्त समितियाँ कहीं भी नहीं हैं। इन अवविश्वासों के पीछे मत दौड़ो। तुम्हारे और जाति के लिए बेहतर होगा कि तुम धीरे-धीरे नास्तिक बन जाओ—क्योंकि कम से कम उससे तुम्हारा कुछ बल बना रहेगा, पर इस प्रकार कुसस्कारपूर्ण होना तो अवनति तथा मृत्यु है। मानव जाति को विक्रम है कि शक्तिशाली लोग इन अवविश्वासों पर अपना समय गँवा रहे हैं, दुनिया के सड़े से सड़े कुसस्कारों की व्याख्या के लिए रूपकों के आविष्कार करने में अपना सारा समय नष्ट कर रहे हैं। साहसी बनो, सब विषयों की उस तरह व्याख्या करने की कोशिश मत करो। बात यह है कि हमारे बहुतेरे कुसस्कार हैं, हमारी देह पर बहुत से घुरे घब्वे तथा घाव हैं—इनको काट और चीर-फाड़कर एकदम निकाल देना होगा—नष्ट कर देना होगा। इनके नष्ट होने से हमारा धर्म, हमारा जातीय जीवन हमारी आध्यात्मिकता नष्ट नहीं होगी। प्रत्येक धर्म का मूल तत्त्व सुरक्षित है और जितनी जल्दी ये घब्वे मिटाये जायेंगे, उतने ही अधिक ये मूल तत्त्व चमकेंगे। इन्हीं पर डटे रहो।

तुम लोग सुनते हो कि हर एक धर्म जगत् का सार्वभौम धर्म होने का दावा करता है। मैं तुमसे पहले ही कह देता हूँ कि शायद कभी भी ऐसी कोई चीज़ नहीं हो सकेगी, पर यदि कोई धर्म यह दावा कर सके तो वह तुम्हारा ही धर्म है—दूसरा कोई नहीं, क्योंकि दूसरा हर एक धर्म किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह पर निर्भर है। अन्यान्य सभी धर्म किन्हीं व्यक्तियों के जीवन पर अवलम्बित होकर बने हैं, जिन्हें उनके अनुयायी ऐतिहासिक पुरुष समझते हैं, और जिसको वे धर्म की शक्ति समझते हैं, वह वास्तव में उनकी निर्बलता है, क्योंकि यदि इन पुरुषों की ऐतिहासिकता का खडन किया जाय तो उनके धर्मरूपी प्रासाद गिरकर धूल में मिल जायेंगे। इन महान् धर्म-संस्थापकों के जीवन-चरित्रों में से आधा अंश तो उड़ा दिया गया है और बाकी आधे के विषय में धीरे-धीरे उपस्थित किया गया है। अतएव हर एक सत्य, जिसकी प्रामाणिकता इन्हींके शब्दों पर निर्भर थी, हवा में मिला जा रहा है। पर हमारे धर्म के सत्य किसी व्यक्ति विशेष पर निर्भर नहीं हैं, यद्यपि हमारे धर्म में महापुरुषों की सख्या यथेष्ट है। कृष्ण की महिमा यह नहीं है कि वे कृष्ण थे, पर यह कि वे वेदान्त के महान् आचार्य थे। यदि ऐसा न होता तो उनका नाम भी भारत से उसी तरह उठ जाता जैसे कि बुद्ध का नाम उठ गया है।

अतः चिर काल से हमारी निष्ठा धर्म के तत्त्वों के प्रति ही रही है, न कि व्यक्तियों के प्रति। व्यक्ति केवल तत्त्वों के प्रकट रूप हैं—उनके उदाहरणस्वरूप हैं। यदि

तत्त्व बने रहे तो व्यक्ति एक नहीं हज़ारों और लाखों की संख्या में पैदा होंगे। यदि तत्त्व बचा रहा तो कुछ जैसे संकड़ों और हज़ारों पुरुष पैदा होंगे परन्तु यदि तत्त्व का नाश हुआ और वह मुक्ता किया गया एवं सारी जाति का जीवन तथाकथित ऐतिहासिक व्यक्ति पर ही निर्भर रहने में प्रयत्नशील रहे तो उस धर्म के सामने आपदाएँ और खतरे हैं। हमारा धर्म ही एकमात्र ऐसा है, जो किसी व्यक्ति या व्यक्तियों पर निर्भर नहीं बल्कि तत्त्वों पर प्रतिष्ठित है। पर साच ही उसमें कालों के लिए स्थान है। नव लोगों को स्थान देने के लिए उसमें काफी गुंजायमान है पर उनमें से प्रत्येक को उन तत्त्वों का एक उदाहरणस्वरूप होना चाहिए। हमें यह न भूलना चाहिए। हमारे धर्म के ये तत्त्व अब तक सुरक्षित हैं और हममें से प्रत्येक का जीवन-प्रवृत्त यही हुला चाहिए कि हम उन्हें ही रखा करें, उन्हें सुन-सुमान्तर से बना होने-वाले मूल और मूल से बचावें। यह एक अद्भुत चिन्ता है कि हमारी जाति के बारंबार अवसति के दर्त में गिरने पर भी वेदान्त के ये तत्त्व कभी मरिण नहीं हुए। किसीने बह किन्तना ही दुष्ट क्यों न हो उन्हें दूषित करने का साहस नहीं किया। समार मर में अन्य सब शास्त्रों की अपेक्षा हमारे शास्त्र सर्वाधिक सुरक्षित रहे हैं। अन्योन्य शास्त्रों की तुलना में इनमें कोई भी प्रक्षिप्त अंश नहीं दूष पाया है पाठों की तोड़मरोड़ नहीं हुई है उनके विचारों का सारभाग नष्ट नहीं हो पाया है। वह ज्यो का त्यों बना रहा है और मानव समता मन को आदर्श लक्ष्य की ओर परिचालित करता रहा है।

तुम देखते हो कि इन धर्मों के माप्य भिन्न भिन्न भाष्यकारों ने किये समका प्रचार बड़े बड़े भाषायों ने किया और उन्हें पर सम्प्रदायों की नींव डाली गयी और तुम देखते हो कि इन वेद धर्मों में ऐसे अनेक तत्त्व हैं जो आयातत परस्पर विरोधी प्रतीत होते हैं। कुछ ऐसे पाठों हैं जो सम्पूर्ण ईतभाव के हैं और किन्तने ही विस्तृत अर्थात् भाव के। ईतभाव के माप्यकार ईतभाव छोड़कर और कुछ समझ नहीं पाते अतएव वे अर्थात् भाव के पाठों पर बुरी तरह धार करने की कोशिश करते हैं। सभी ईतवादी धर्मोपाय तथा पुरोहितपण उन्हें ईतत्मक धर्म देना चाहते हैं। अर्थात् भाव के माप्यकार ईतभाव के सूत्रों की बड़ी बचा करते हैं, परन्तु यह वेदों का दोष नहीं। यह चेष्टा करना कोटी मूर्खता है कि सम्पूर्ण वेद ईत भावात्मक हैं। उसी प्रकार समग्र वेदों को अर्थात् भाव समर्थक प्रमाणित करने की चेष्टा भी निरी मूर्खता है। वेदों में ईतभाव अर्थात् भाव दोनों ही हैं। आबन्ध के नये धर्मों के प्रकाश में हम उन्हें पहले से कुछ अच्छी तरह समझ सकते हैं। ये विभिन्न धारणाएँ बिनकी गति ईतभाव और अर्थात् भाव दोनों ओर हैं मन की क्रमोपति के लिए आवश्यक हैं, और इसी कारण वेद उनका प्रचार करते हैं। समग्र मनुष्य

जाति पर कृपा करके वेद उच्चतम लक्ष्य के भिन्न भिन्न सोपानों का निर्देश करते हैं। यह नहीं कि वे एक दूसरे के विरोधी हों। बच्चे जैसे अबोध मनुष्यों को मोहने के लिए वेदों ने वृथा वाक्यों का प्रयोग नहीं किया है। उनकी अरुत है और वह केवल बच्चों के लिए नहीं, वरन् प्रौढ बुद्धिवालों के लिए भी। जब तक शरीर है और जब तक हम इस शरीर से ही अपनी तद्रूपता स्थापित करने के विभ्रम में पड़े रहेंगे, जब तक हमारी पाँच इन्द्रियाँ हैं और जब तक हम इस स्थूल जगत् को देखते हैं, हमारे लिए व्यक्तिविशेष ईश्वर या सगुण ईश्वर आवश्यक है। यदि हमारे ये सभी भाव हैं, तो जैसा कि महामनीषी रामानुज ने प्रमाणित किया है, हमको ईश्वर, जीव और जगत् इनमें से एक को स्वीकार करने पर शेष सबको स्वीकार करना ही पड़ेगा। अतएव जब तक हम बाहरी ससार देख रहे हैं, तब तक सगुण ईश्वर और जीवात्मा को स्वीकार न करना निरा पागलपन है। परन्तु महापुरुषों के जीवन में वह समय आ सकता है, जब जीवात्मा अपने सब बन्धनों से अतीत होकर, प्रकृति के परे, उस सर्वातीत प्रदेश में चला जाता है, जिसके बारे में श्रुति कहती है :

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ।<sup>१</sup>

न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मन ।<sup>२</sup>

नाह मन्ये सुवेदेति नो न वेदेति वेद च ।<sup>३</sup>

—‘मन के साथ वाणी जिसे न पाकर लौट आती है।’ ‘वहाँ न नेत्र पहुँचते हैं, न वाक्य, न मन।’ ‘मैं उसे जानता हूँ, न यही कह सकता हूँ। और नहीं जानता, न यही।’ तभी जीवात्मा सारे बन्धनों को पार कर जाता है, तभी, केवल तभी उसके हृदय में अद्वैतवाद का यह मूल तत्त्व प्रकाशित होता है कि समस्त ससार और मैं एक हूँ, मैं और ब्रह्म एक हूँ। और तुम देखोगे कि यह सिद्धान्त न केवल शुद्ध ज्ञान और दर्शन ही से प्राप्त हुआ है, किन्तु प्रेम के द्वारा भी उसकी कुछ झलक पायी गयी है। तुमने भागवत में पढ़ा होगा कि जब श्री कृष्ण अन्तर्धान हो गये और गोपियाँ उनके वियोग से विकल हो गयी, तो अन्त तक श्री कृष्ण की भावना का गोपियों के चित्त पर इतना प्रभाव पड़ा कि हर एक गोपी अपनी देह को भूल गयी और सोचने लगी कि वही श्री कृष्ण है, और अपने को उसी तरह सज्जित करके क्रीडा करने लगी, जिस तरह श्री कृष्ण करते थे। अतएव हमने यह समझ लिया कि यह एकत्व का अनुभव प्रेम से भी होता है। फारस के एक पुराने सूफी कवि अपनी

१ तैत्तिरीयोपनिषद् ॥ २।९ ॥

२ केनोपनिषद् ॥ १।३ ॥

३ कठोपनिषद् ॥ २।२ ॥

एक कविता में कहते हैं— 'मैं अपने प्यारे के पास गया और देखा तो द्वार बन्द था मैंने दरवाजे पर धक्का मगाया तो भीतर से आवाज आयी 'कौन है? मैंने उत्तर दिया—'मैं हूँ। द्वार न खुला। मैंने दूसरी बार धक्का मगाया तो दरवाजा खुल गया तो उसी स्वर ने फिर पूछा कि कौन है, मैंने उत्तर दिया—'मैं जमुक हूँ। फिर भी द्वार न खुला। तीसरी बार मैं गया और वही ध्वनि हुई—'कौन है? मैंने कहा 'मैं तुम हूँ मेरे प्यारे। द्वार खुल गया।'

अतएव हमें समझना चाहिए कि ब्रह्म प्राप्ति के अनेक सोपान हैं और यद्यपि पुराने माध्यमकारों में जिन्हें हम अज्ञान की दृष्टि से देखना चाहिए, एक दूसरे से विचार होता रहा हमें विचार न करना चाहिए क्योंकि ज्ञान की कोई सीमा नहीं है। क्या प्राचीन काल में क्या वर्तमान समय में सर्वज्ञत्व पर किसी एक का सर्वाधिकार नहीं है। यदि अतीत काल में अनेक ऋषि महापुरुष हो गये हैं, तो निश्चय जाना कि वर्तमान समय में भी अनेक होंगे। यदि व्यास वास्मीकि और संकराचार्य आदि पुराने जमाने में ही गये हैं तो क्या कारण है कि अब भी तुममें हर एक संकराचार्य न हो सकेगा? हमारे बर्म में एक विशेषता और है, जिसे तुम्हें याद रखना चाहिए। अस्थान्य शास्त्रों में भी ईश्वरी प्रेरणा को प्रमाणस्वरूप बतलाया जाता है। परन्तु इन प्रेरितों की संख्या उनके मठ में एक दो बचवा बहुत ही अल्प व्यक्तिवों तक सीमित है। उन्हींके माध्यम से सर्व साधारण जनता में इस सत्य का प्रचार हुआ और हम सभी को उनकी बात माननी ही पड़ेगी। नाशरूप के ईसा में सत्य का प्रकाश हुआ था और हम सभी को उसे मान लेना होगा। परन्तु भारत के संन्यासियों के हृदय में उसी सत्य का आविर्भाव हुआ था। और सभी ऋषियों में उस सत्य का अक्षिप्त में भी आविर्भाव हुआ किन्तु वह न वाचुनियों में होता न पुस्तकें पढ़नेवालों में न बड़े विद्वानों में न साधुवेत्तानों में वह केवल तत्त्व-बोधियों में ही संभव है।

'आत्मा क्या बातें बड़ने से नहीं प्राप्त होती न वह बड़ी बुद्धिमत्ता से ही सुधम है और न वह बेबो के पठन से ही मिल सकती है।' वेद स्वयं यह बात कहते हैं। क्या तुम किसी दूसरे शास्त्रों में इस प्रकार की भिन्निक भाषी पाते हो कि शास्त्र पठे द्वारा भी आत्मा की प्राप्ति नहीं हो सकती? तुम्हारे लिए हृदय को मुक्त करना आवश्यक है। बर्म का बर्म न बिरजे में जाना है, न कलट रचना है न विभिन्न अंग का भेग करना है। इन्द्रजन्म के सब रंगों से तुम अपने को बाहे बड़े ही रैव

लो, किन्तु यदि तुम्हारा हृदय उन्मुक्त नहीं हुआ है, यदि तुमने ईश्वर का साक्षात्कार नहीं किया है, तब यह सब व्यर्थ है। जिसने हृदय को रँग लिया है, उसके लिए दूसरे रंग की आवश्यकता नहीं। यही धर्म का सच्चा अनुभव है। परन्तु हमें यह न भूलना चाहिए कि रंग और ऊपर कही गयी कुल बातें अच्छी तब तक मानी जा सकती हैं, जब तक वे हमें धर्ममार्ग में सहायता दें, तभी तक उनका हम स्वागत करते हैं। परन्तु वे प्रायः अधःपतित कर देती हैं और सहायता की जगह विघ्न ही खड़ा करती हैं, क्योंकि इन्हीं बाह्योपचारों को मनुष्य धर्म समझ लेता है। फिर मन्दिर का जाना आध्यात्मिक जीवन और पुरोहित को कुछ देना ही धर्मजीवन माना जाने लगता है। ये बातें बड़ी भयानक और हानिकारक हैं, इन्हें दूर करना चाहिए। हमारे शास्त्रों में बार बार कहा गया है कि बहिरिन्द्रियो के ज्ञान के द्वारा धर्म कभी प्राप्त नहीं हो सकता। धर्म वही है, जो हमें उस अक्षर पुरुष का साक्षात्कार कराता है, और हर एक के लिए धर्म यही है। जिसने इस इन्द्रियातीत सत्ता का साक्षात्कार कर लिया, जिसने आत्मा का स्वरूप उपलब्ध कर लिया, जिसने भगवान् को प्रत्यक्ष देखा—हर वस्तु में देखा, वही ऋषि हो गया। और तब तक तुम्हारा जीवन धर्मजीवन नहीं, जब तक तुम ऋषि नहीं हो जाते। तभी तुम्हारे प्रकृत धर्म का आरम्भ होगा और अभी तो ये सब तैयारियाँ ही हैं। तभी तुम्हारे भीतर धर्म का प्रकाश फैलेगा, अभी तो तुम केवल मानसिक व्यायाम कर रहे हो और शारीरिक कष्ट झेल रहे हो।

अतएव हमें अवश्य स्मरण रखना चाहिए कि हमारा धर्म स्पष्ट रूप से यह कह रहा है कि जो कोई मुक्ति-प्राप्ति की इच्छा रखे, उसे ही इस ऋषित्व का लाभ करना होगा, मन्त्रद्रष्टा होना होगा, ईश्वर-साक्षात्कार करना होगा। यही मुक्ति है और यही हमारे शास्त्रों के द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त। इसके बाद अपने शास्त्रों का अपने आप अवलोकन करना आसान हो जाता है, हम स्वयं ही अपने शास्त्रों का अर्थ समझ सकते हैं। उनमें से हमारे लिए जितना आवश्यक है, उतना ग्रहण कर सकते हैं तथा स्वयं ही सत्य को समझ सकते हैं। साथ ही हमें उन प्राचीन ऋषियों के प्रति, उनके कार्य के लिए, पूर्ण सम्मान प्रदर्शित करना चाहिए। वे प्राचीन ऋषिगण महान् थे, परन्तु हमें और भी महान् होना है। अतीत काल में उन्होंने बड़े बड़े काम किये, परन्तु हमें उनसे भी बड़ा काम कर दिखाना है। प्राचीन भारत में सैकड़ों ऋषि थे, और अब हमारे बीच लाखों होंगे—निश्चय ही होंगे। इस बात पर तुममें से हर एक जितनी जल्दी विश्वास करेगा, भारत का और समग्र ससार का चतना ही अधिक हित होगा। तुम जो कुछ विश्वास करोगे, तुम वही हो जाओगे। यदि तुम अपने को महापुरुष समझोगे तो कल ही तुम महापुरुष हो जाओगे। तुम्हें



रोक दे ऐसी कोई चीज नहीं है। आपातविरोधी सम्प्रदायों के बीच यदि कोई साधारण मठ है, तो वह यही है कि आत्मा में पहले से ही महिमा ठेक और पवित्रता वर्तमान है। केवल रामानुज के मत में आत्मा कमी कमी संकृषित हो जाती है और कमी कमी विकसित परन्तु संकराचार्य के मतानुसार संकोच-विकास भ्रम मात्र है। इस मतभेद पर ध्यान मत दो। सनी तो यह स्वीकार करते हैं कि व्यक्त या अव्यक्त चाहे किस भाव में रहे वह शक्ति है चरकर। और बितनी शीघ्रता से उस पर विश्वास कर सकोगे उतना ही तुम्हारा कल्याण होगा। समस्त शक्ति तुम्हारे भीतर है तुम कुछ भी कर सकते हो और सब कुछ कर सकते हो, यह विश्वास करो। मत विश्वास करो कि तुम दुर्बल हो। आजकल हममें से अधिकांश बीसे अपने को अबपायस समझते हैं तुम अपने को बीसा मत समझो। इतना ही नहीं तुम कुछ भी और हर एक काम बिना किसी की सहायता के ही कर सकते हो। तुमसे सब शक्ति है। तत्पर हो जाओ। तुममें जो देवत्व छिपा हुआ है उसे प्रकट करो।

## भारत का भविष्य

मद्रास का यह अन्तिम व्याख्यान एक विगाल मडप में लगभग चार हजार श्रोताओं के सम्मुख दिया गया था

### स्वामी जी का भाषण

यह वही प्राचीन भूमि है, जहाँ दूसरे देशों को जाने से पहले तत्त्व ज्ञान ने आकर अपनी वासभूमि बनायी थी, यह वही भारत है, जहाँ के आध्यात्मिक प्रवाह का स्थूल प्रतिरूप उसके बहनेवाले समुद्राकार नद है, जहाँ चिरन्तन हिमालय श्रेणीवद्ध उठा हुआ अपने हिमशिखरो द्वारा मानो स्वर्गराज्य के रहस्यों की ओर निहार रहा है। यह वही भारत है, जिसकी भूमि पर ससार के सर्वश्रेष्ठ ऋषियों की चरण-रज पड़ चुकी है। यही सबसे पहले मनुष्य-प्रकृति तथा अन्तर्जगत् के रहस्योद्घाटन की जिज्ञासाओं के अकुर उगे थे। आत्मा का अमरत्व, अन्तर्यामी ईश्वर एवं जगत्प्रपञ्च तथा मनुष्य के भीतर सर्वव्यापी परमात्मा विषयक मतवादों का पहले पहल यही उद्भव हुआ था। और यही धर्म और दर्शन के आदर्शों ने अपनी चरम उन्नति प्राप्त की थी। यह वही भूमि है, जहाँ से उमड़ती हुई वाद की तरह धर्म तथा दार्शनिक तत्त्वों ने समग्र ससार को बार बार प्लावित कर दिया, और यही भूमि है, जहाँ से पुन ऐसी ही तरंगे उठकर निस्तेज जातियों में शक्ति और जीवन का संचार कर देंगी। यह वही भारत है जो शताब्दियों के आघात, विदेशियों के शत शत आक्रमण और सैकड़ों आचार व्यवहारों के विपर्यय सहकर भी अक्षय बना हुआ है। यह वही भारत है जो अपने अविनाशी वीर्य और जीवन के साथ अब तक पर्वत से भी दृढतर भाव से खड़ा है। आत्मा जैसे अनादि, अनन्त और अमृतस्वरूप है, वैसे ही हमारी भारतभूमि का जीवन है, और हम इसी देश की सन्तान हैं।

भारत की सतानों, तुमसे आज मैं यहाँ कुछ व्यावहारिक बातें कहूँगा, और तुम्हें तुम्हारे पूर्व गौरव की याद दिलाने का उद्देश्य केवल इतना ही है कि तनी ही बार मुझसे कहा गया है कि अतीत की ओर नज़र डालने से सिर्फ मन की अवनति ही होती है और इससे कोई फल नहीं होता, अतः हमें भविष्य की ओर दृष्टि रखनी चाहिए। यह सच है। परन्तु अतीत में ही अन्विष्ट का निर्माण होता है। अतः

रौक वे ऐसी कोई चीज नहीं है। आपातविरोधी सम्प्रदायों के बीच यदि कोई साधारण मठ है, तो वह यही है कि आत्मा में पहले से ही महिमा तेज और पवित्रता वर्तमान हैं। केवल रामानुज के मठ में आत्मा कभी कभी संकुचित हो जाती है और कभी कभी विकसित परन्तु शंकराचार्य के मतानुसार संकोच-विकास भ्रम मात्र है। इस मतमें पर ध्यान मठ दो। सभी तो यह स्वीकार करते हैं कि व्यक्त या अव्यक्त चाह जिस मात्र में रहे वह शक्ति है शक्ति। और शक्ति की शीघ्रता से उस पर विश्वास कर सकोगे उतना ही तुम्हारा कल्याण होगा। समस्त शक्ति तुम्हारे भीतर है तुम कुछ भी कर सकते हो और सब कुछ कर सकते हो यह विश्वास करो। मत विश्वास करो कि तुम दुर्बल हो। वाचकस हममें से अधिकतर जैसे अपने को अव्यक्त समझते हैं तुम अपने को वैसा मत समझो। इतना ही नहीं तुम कुछ भी और हर एक काम बिना किसी की सहायता के ही कर सकते हो। तुममें सब शक्ति है। तत्पर हो जाओ। तुममें जो देवत्व छिपा हुआ है उसे प्रकट करो।

## भारत का भविष्य

मद्रास का यह अन्तिम व्याख्यान एक विशाल मंडप में लगभग चार हज़ार श्रोताओं के सम्मुख दिया गया था

### स्वामी जी का भाषण

यह वही प्राचीन भूमि है, जहाँ दूसरे देशों को जाने से पहले तत्त्वज्ञान ने आकर अपनी वासभूमि बनायी थी, यह वही भारत है, जहाँ के आध्यात्मिक प्रवाह का स्थूल प्रतिरूप उसके वहनेवाले समुद्राकार नद है, जहाँ चिरन्तन हिमालय श्रेणीवद्ध उठा हुआ अपने हिमशिखरों द्वारा मानो स्वर्गराज्य के रहस्यों की ओर निहार रहा है। यह वही भारत है, जिसकी भूमि पर ससार के सर्वश्रेष्ठ ऋषियों की चरण-रज पड़ चुकी है। यही सबसे पहले मनुष्य-प्रकृति तथा अन्तर्जगत् के रहस्योंघाटन की जिज्ञासाओं के अकुर उगे थे। आत्मा का अमरत्व, अन्तर्यामी ईश्वर एवं जगत्प्रपञ्च तथा मनुष्य के भीतर सर्वव्यापी परमात्मा विषयक मतवादों का पहले पहल यही उद्भव हुआ था। और यही धर्म और दर्शन के आदर्शों ने अपनी चरम उन्नति प्राप्त की थी। यह वही भूमि है, जहाँ से उमड़ती हुई बाढ़ की तरह धर्म तथा दार्शनिक तत्त्वों ने समग्र ससार को बार बार प्लावित कर दिया, और यही भूमि है, जहाँ से पुन ऐसी ही तरंगे उठकर निस्तेज जातियों में शक्ति और जीवन का संचार कर देंगी। यह वही भारत है जो शताब्दियों के आघात, विदेशियों के शत शत आक्रमण और सैकड़ों आचार व्यवहारों के विपर्यय सहकर भी अक्षय बना हुआ है। यह वही भारत है जो अपने अविनाशी वीर्य और जीवन के साथ अब तक पर्वत से भी दृढतर भाव से खड़ा है। आत्मा जैसे अनादि, अनन्त और अमृतस्वरूप है, वैसे ही हमारी भारतभूमि का जीवन है, और हम इसी देश की सन्तान हैं।

भारत की सतानों, तुमसे आज मैं यहाँ कुछ व्यावहारिक बातें कहूँगा, और तुम्हें तुम्हारे पूर्व गौरव की याद दिलाने का उद्देश्य केवल इतना ही है कि तनी ही बार मुझसे कहा गया है कि अतीत की ओर नज़र डालने से सिर्फ मन की अवनति ही होती है और इससे कोई फल नहीं होता, अतः हमें भविष्य की ओर दृष्टि रखनी चाहिए। यह सच है। परन्तु अतीत से ही भविष्य का निर्माण होता है। अतः

यहाँ तक हो उनके अतीत की ओर देखो पीछे जो चिरस्थग निर्भर बह रहा है बाकूठ उसका जस पियो और उसके बाद सामने देखो और भारत को उज्ज्वलतर, महत्तर और पहले से और भी ऊँचा उठाओ। हमारे पूर्वज महान् थे। पहले यह बात हमें याद करनी होगी। हमें समझना होगा कि हम जिन उपादानों से बने हैं, कौन सा खून हमारी नसों में बह रहा है। उस खून पर हमें विश्वास करना होगा। और अतीत के उसके कृतित्व पर भी इस विश्वास और अतीत गौरव के ज्ञान से हम अबस्य एक ऐसे भारत की नींव डालेंगे जो पहले से खेप्ट होगा। अबस्य ही यहाँ बीच बीच में दुर्बला और अबनति के युग भी रहे हैं पर उनको मैं अधिक महत्त्व नहीं देता। हम सभी उसके विषय में जानते हैं। ऐसे युगों का होना आवश्यक था। किसी विद्यालय बूझ से एक सुन्दर फल हुआ फल पैदा हुआ फल जमीन पर गिरा सुखाया और सड़ा इस विनाश से जो अंकुर उगा सम्भव है वह पहले के बूझ से बड़ा ही जाय। अबनति के जिस युग के भीतर से हमें गुजरना पड़ा वे सभी आवश्यक थे। इसी अबनति के भीतर से भविष्य का भारत आ रहा है वह अंकुरित हो चुका है, उसके मने पक्कब निकल चुके हैं और उस अकितबर विद्यालयमय ऊर्ध्वमूक बूझ का निकम्ना धुक हो चुका है। और उसीके सम्बन्ध में मैं तुमसे कहने जा रहा हूँ।

किसी न बूसरे देश की अपेक्षा भारत की समस्याएँ अधिक अटिल और बुझतर हैं। जाति धर्म भावा घासन-मनाली—ये ही एक साथ मिलकर एक राष्ट्र की सृष्टि करते हैं। यदि एक एक जाति को छेकर हमारे राष्ट्र से तुलना की जाय तो हम देखेंगे कि जिन उपादानों से सघार के बूसरे राष्ट्र समथित हुए हैं वे संप्या में यहाँ के उपादानों से कम हैं। यहाँ मार्य हैं अधिक हैं तातार हैं तुर्क हैं गुणक हैं यूरोपीय हैं, —मनो सघार की सभी जातियाँ इस भूमि में अपना अपना खून मिला रही हैं। माया का यहाँ एक विचित्र ढंग का समावड़ा है आचार-म्यवहारों के सम्बन्ध में जो भारतीय जातियों में अितना अन्तर है, उतना पूर्वी और यूरोपीय जातियों में नहीं।

हमारे पास एकमात्र सम्मिलन भूमि है हमारी पवित्र परम्परा हमारा धर्म। एकमात्र सामान्य आचार बही है और उसी पर हमें संयत्न करना होगा। यूरोप में राजनीतिक विचार ही राष्ट्रीय एकता का कारण है। किन्तु एशिया में राष्ट्रीय एक्य का आचार धर्म ही है अतः भारत के भविष्य सबलन की पहली धर्य के तीर पर उसी धार्मिक एकता की ही आबरवकता है। इस भर में एक ही धर्म सबकी स्वीकार करना होगा। एक ही धर्म से मेरा क्या मतलब है? यह उस लख का एक ही धर्म नहीं अिसका ईमादयों, मुसलमानों या बौद्धों में प्रचार है। हम जानते

है, हमारे विभिन्न सम्प्रदायो के सिद्धान्त तथा दावे चाहे कितने ही विभिन्न क्यों न हो, हमारे धर्म में कुछ सिद्धान्त ऐसे हैं जो सभी सम्प्रदायो द्वारा मान्य हैं। इस तरह हमारे सम्प्रदायो के ऐसे कुछ सामान्य आचार अवश्य हैं, उनको स्वीकार करने पर हमारे धर्म में अद्भुत विविधता के लिए गुंजाइश हो जाती है, और साथ ही विचार और अपनी रूचि के अनुसार जीवन निर्वाह के लिए हमें सम्पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त हो जाती है। हम लोग, कम से कम वे जिन्होंने इस पर विचार किया है, यह बात जानते हैं। और अपने धर्म के ये जीवनप्रद सामान्य तत्त्व हम सबके सामने लाये और देश के सभी स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध, उन्हें जाने-समझें तथा जीवन में उतारें—यही हमारे लिए आवश्यक है। सर्वप्रथम यही हमारा कार्य है।

अतः हम देखते हैं कि एशिया में और विशेषतः भारत में जाति, भाषा, समाज सम्बन्धी सभी बाधाएँ धर्म की इस एकीकरण शक्ति के सामने उड़ जाती हैं। हम जानते हैं कि भारतीय मन के लिए धार्मिक आदर्श से बड़ा और कुछ भी नहीं है। धर्म ही भारतीय जीवन का मूल मंत्र है, और हम केवल सबसे कम बाधावाले मार्ग का अनुसरण करके ही कार्य में अग्रसर हो सकते हैं। यह केवल सत्य ही नहीं कि धार्मिक आदर्श यहाँ सबसे बड़ा आदर्श है, किन्तु भारत के लिए कार्य करने का एकमात्र सम्भाव्य उपाय यही है। पहले उस पथ को सुदृढ़ किये बिना, दूसरे मार्ग से कार्य करने पर उसका फल घातक होगा। इसीलिए भविष्य के भारत निर्माण का पहला कार्य, वह पहला सोपान, जिसे युगों के उस महाचल पर खोद कर बनाना होगा, भारत की यह धार्मिक एकता ही है। यह शिक्षा हम सबको मिलनी चाहिए कि हम हिन्दू—द्वैतवादी, विशिष्टाद्वैतवादी या अद्वैतवादी, अथवा दूसरे सम्प्रदाय के लोग, जैसे शैव, वैष्णव, पाशुपत आदि भिन्न भिन्न मतों के होते हुए भी आपस में कुछ सामान्य भाव भी रखते हैं, और अब वह समय आ गया है कि अपने हित के लिए, अपनी जाति के हित के लिए हम इन तुच्छ भेदों और विवादों को त्याग दें। सचमुच ये झगड़े बिल्कुल वाहियात हैं, हमारे शास्त्र इनकी निन्दा करते हैं, हमारे पूर्वपुरुषों ने इनके बहिष्कार का उपदेश दिया है, और वे महापुरुष गण, जिनके वंशज हम अपने को बताते हैं और जिनका खून हमारी नसों में बह रहा है, अपनी सतानों को छोटे छोटे भेदों के लिए झगड़ते हुए देखकर उनको घोर घृणा की दृष्टि से देखते हैं।

लड़ाई झगड़े छोड़ने के साथ ही अन्य विषयों की उन्नति अवश्य होगी, यदि जीवन का रक्त सशक्त एवं शुद्ध है तो शरीर में विषैले कीटाणु नहीं रह सकते। हमारी आध्यात्मिकता ही हमारा जीवन-रक्त है। यदि यह साफ बहता रहे,

यदि यह शुद्ध एवं सघन बना रहे तो सब कुछ ठीक है। राजनीतिक सामाजिक चाहे जिस किसी तरह की एहिक नुटियाँ हों चाहे देश की निर्बलता ही क्यों न हो, यदि खून शुद्ध है तो सब सुखर आयेंगे। क्योंकि यदि रोमवाले कीटाणु धरीर से निकाल दिये जायें तो फिर दूसरी कोई बुराई खून में नहीं घमा सकती। उदाहरणार्थ आधुनिक चिकित्सा शास्त्र की एक उपमा को। हम जानते हैं कि किसी बीमारी के फैलने के दो कारण होते हैं—एक तो बाहर से कुछ बिबैके कीटाणुओं का प्रवेश दूसरा धरीर की अवस्था विशेष। यदि धरीर की अवस्था ऐसी न हो जाय कि वह कीटाणुओं को बुराने दे यदि धरीर की बीबनी सक्ति इतनी शीघ्र न हो जाय कि कीटाणु धरीर में बुरकर बढते रहें तो संसार में किसी भी कीटाणु में इतनी शक्ति नहीं जो धरीर में पैठकर बीमारी पैदा कर सके। वास्तव में प्रत्येक मनुष्य के धरीर के भीतर सदा करोड़ों कीटाणु प्रवेश करते रहते हैं परन्तु जब तक धरीर बलवान् है हमें उनकी कोई खबर नहीं रहती। जब धरीर कमजोर हो जाता है, तभी ये बिबैके कीटाणु उस पर अधिकार कर लेते हैं और रोग पैदा करते हैं। राष्ट्रीय जीवन के बारे में भी यही बात है। जब राष्ट्रीय जीवन कमजोर हो जाता है, तब हर तरह के रोग के कीटाणु उसके धरीर में इकट्ठे जमकर उसकी राजनीति समाज चिन्ता और बुद्धि को बल बना देते हैं। अतएव उसकी चिकित्सा के लिए हमें इस बीमारी की जड़ तक पहुँचकर रक्त से कुछ बीबों को निकाल देना चाहिए। तब उद्देश्य यह होगा कि मनुष्य बलवान् हो खून शुद्ध हो और धरीर तेजस्वी जिससे वह सब बाहरी बिबों को बना और हटा देने कायद हो सके।

हमने देखा है कि हमारा धर्म ही हमारे तेज हमारे बल यही नहीं हमारे जातीय जीवन की भी मूल मिति है। इस समय भी यह तक चिन्तक करने नहीं जा रहा हूँ कि धर्म उचित है या नहीं सही है या नहीं और अन्त तक यह काम कायक है या नहीं। किन्तु अच्छा हो या बुरा धर्म ही हमारे जातीय जीवन का प्राण है तुम उससे निकल नहीं सकते। अभी और फिर काल के लिए भी तुम्हें उमीदा अबलम्ब इत्य करना होगा और तुम्हें उसीके आधार पर लड़ा होना चाहे तुम्हें इस पर उठना बिदबाव हो या न हो जो मुझे है। तुम इसी धर्म में बँधे हुए हो और अगर तुम न्ने छोड़ दो तो खुर खुर हो जाओगे। वही हमारी जानि वा जीवन है और उसे अबल्य ही सघन बनाता होगा। तुम जो मुर्गों के पक्षे महार भी अग्रय ही दमना कारण बलस यही है कि धर्म के लिए तुमने बहुत कुछ प्रयत्न किया वा उग पर सब कुछ निछावर किया वा। तुम्हारे पूर्वजों के धर्म-यत्ता के लिए सब कुछ माहापूर्वक सहन किया वा मृत्यु को भी उग्रहि हत्य

से लगाया था। विदेशी विजेताओं द्वारा मन्दिर के बाद मन्दिर तोड़े गये, परन्तु उस बाद के बह जाने में देर नहीं हुई कि मन्दिर के कलश फिर खड़े हो गये। दक्षिण के ये ही कुछ पुराने मन्दिर और गुजरात के सोमनाथ के जैसे मन्दिर तुम्हें राशि राशि ज्ञान प्रदान करेंगे। वे जाति के इतिहास के भीतर वह गहरी अन्तर्दृष्टि देंगे, जो ढेरों पुस्तकों से भी नहीं मिल सकती। देखो कि किस तरह ये मन्दिर सैकड़ों आक्रमणों और सैकड़ों पुनरुत्थानों के चिह्न धारण किये हुए हैं, ये बार बार नष्ट हुए और बार बार ध्वसावशेष से उठकर नया जीवन प्राप्त करते हुए अब पहले ही की तरह अटल भाव से खड़े हैं। इसलिए इस धर्म में ही हमारा जातीय मन है, हमारा जातीय जीवन प्रवाह है। इसका अनुसरण करोगे तो यह तुम्हें गौरव की ओर ले जायगा। इसे छोड़ोगे तो मृत्यु निश्चित है। अगर तुम उस जीवन प्रवाह से बाहर निकल आये तो मृत्यु ही एकमात्र परिणाम होगा और पूर्ण नाश ही एकमात्र परिणति। मेरे कहने का यह मतलब नहीं कि दूसरी चीज की आवश्यकता ही नहीं। मेरे कहने का यह अर्थ नहीं कि राजनीतिक या सामाजिक उन्नति अनावश्यक है, किन्तु मेरा तात्पर्य यही है और मैं तुम्हें सदा इसकी याद दिलाना चाहता हूँ कि ये सब यहाँ गौण विषय हैं, मुख्य विषय धर्म है। भारतीय मन पहले धार्मिक है, फिर कुछ और। अतः धर्म को ही संशक्त बनाना होगा। पर यह किया किस तरह जाय ? मैं तुम्हारे सामने अपने विचार रखता हूँ। बहुत दिनों से, यहाँ तक कि अमेरिका के लिए मद्रास का समुद्री तट छोड़ने के वर्षों पहले से ये मेरे मन में थे और उन्हींको प्रचारित करने के लिए मैं अमेरिका और इंग्लैण्ड गया था। धर्म-महासभा या किसी और वस्तु की मुझे बिल्कुल परवाह नहीं थी, वह तो एक सुयोग मात्र था। वस्तुतः मेरे ये संकल्प ही थे जो सारे ससार में मुझे लिये फिरते रहे।

मेरा विचार है, पहले हमारे शास्त्र ग्रन्थों में भरे पड़े आध्यात्मिकता के रत्नों को, जो कुछ ही मनुष्यों के अधिकार में मठों और अरण्यों में छिपे हुए हैं, बाहर लाना है। जिन लोगों के अधिकार में ये छिपे हुए हैं, केवल उन्हींसे इस ज्ञान का उद्धार करना नहीं, वरन् उससे भी दुर्भेद्य पेटिका अर्थात् जिस भाषा में ये सुरक्षित हैं, उन शताब्दियों के पतन खाये हुए संस्कृत शब्दों से उन्हें निकालना होगा। तात्पर्य यह है कि मैं उन्हें सबके लिए सुलभ कर देना चाहता हूँ। मैं इन तत्त्वों को निकालकर सबकी, भारत के प्रत्येक मनुष्य की, सामान्य सम्पत्ति बनाना चाहता हूँ, चाहे वह संस्कृत जानता हो या नहीं। इस मार्ग की बहुत बड़ी कठिनाई हमारी गौरवशाली भाषा संस्कृत ही है, यह कठिनाई तब तक दूर नहीं हो सकती, जब तक यदि सम्भव हो तो हमारी जाति के सभी मनुष्य संस्कृत के अच्छे विद्वान् न हो जायें। यह कठिनाई



यदि यह घुड़ एवं सघन बना रहे तो सब कुछ ठीक है। राजनीतिक सामाजिक चाहे जिस किसी तरह की एहिक नुटियाँ हों चाहे वेष्ट की निर्बलता ही क्यों न हो यदि बून घुड़ है तो सब सुन्दर आवेये। क्योंकि यदि रोगवाले कौटानु शरीर से निकाल दिये जायें तो फिर बूसरी कोई बुराई बून में नहीं समा सकती। उदाहरणार्थ आपुनिक चिकित्सा शास्त्र की एक उपमा सो। हम जानते हैं कि किसी बीमारी के घुंसने के दो कारण होते हैं—एक तो बाहर से कुछ विपैले कौटानुओं का प्रवेश बूसरा शरीर की अवस्था विशेष। यदि शरीर की अवस्था ऐसी न हो चाय कि वह कौटानुओं को घुंसने दे यदि शरीर की बीबनी घक्ति इतनी बीब न हो चाय कि कौटानु शरीर में बूसकर बढ़ते रहें तो संसार में किसी भी कौटानु में इतनी घक्ति नहीं जो शरीर में पीठकर बीमारी पैदा कर सके। बास्तब में प्रत्येक मनुष्य के शरीर के भीतर सवा करोड़ों कौटानु प्रवेश करते रहते हैं परन्तु जब तक शरीर बलवान् है हमें उनकी कोई खबर नहीं रहती। जब शरीर कमबोर हो जाता है, तभी ये विपैले कौटानु उस पर अधिकार कर लेते हैं और रोग पैदा करते हैं। राष्ट्रीय जीवन के बारे में भी यही बात है। जब राष्ट्रीय जीवन कमबोर हो जाता है तब हर तरह के रोग के कौटानु उसके शरीर में इकट्ठे जमकर उसकी राजनीति समाज शिक्षा और बुद्धि को बल बना देते हैं। अतएव उसकी चिकित्सा के लिए हम इस बीमारी की जड़ तक पहुँचकर रक्त से कुछ बीवों को निकाल देना चाहिए। तब उद्देश्य यह होगा कि मनुष्य बलवान् हो बून घुड़ हो और शरीर तेजस्वी। जिससे वह सब बाहरी विपों को बचा और हटा देने लायक हो सके।

हमने देखा है कि हमारा बर्म ही हमारे तेज हमारे बल यही नहीं हमारे जातीय जीवन की भी मूल मिति है। इस समय मैं यह तर्क क्लिर्क करने नहीं जा रहा हूँ कि बर्म जचित है या नहीं सही है या नहीं और अन्त तक यह काम कामक है या नहीं। किन्तु बलवा ही या बुरा बर्म ही हमारे जातीय जीवन का प्राण है तुम उनसे निकल नहीं सकते। अभी और फिर काल के लिए भी तुम्हें उनीका अवसम्भ बहण करना होगा और तुम्हें उसीके आचार पर लड़ा हाना होना चाहे तुम्हें इन पर उनका बिबाल हो या न हो जो मुझे है। तुम अभी बर्म में बँध हुए हो और अगर तुम इसे छोड़ दो तो बूर बूर ही जाओगे। बही हमारी जानि का जीवन है और उसे अवश्य ही सघन बनाता होगा। तुम जो मुपों के चरत महार भी अत्रय ही दमना कारण बेषय यही है कि घबै के लिए तुमने बहुत कुछ प्रयत्न किया बा उस पर सब कुछ निछावर दिया बा। तुम्हारे पूर्वजों ने घर्म-गता व लिए सब कुछ माहबपूर्वक सहन किया बा मृत्यु को भी उन्होंने हरब

से लगाया था। विदेशी विजेताओं द्वारा मन्दिर के बाद मन्दिर तोड़े गये, परन्तु उस बाढ़ के बह जाने में देर नहीं हुई कि मन्दिर के कलश फिर खड़े हो गये। दक्षिण के ये ही कुछ पुराने मन्दिर और गुजरात के सोमनाथ के जैसे मन्दिर तुम्हें राशि राशि ज्ञान प्रदान करेंगे। वे जाति के इतिहास के भीतर वह गहरी अन्तर्दृष्टि देंगे, जो ढेरो पुस्तको से भी नहीं मिल सकती। देखो कि किस तरह ये मन्दिर सैकड़ों आक्रमणों और सैकड़ों पुनरुत्थानों के चिह्न धारण किये हुए हैं, ये बार चार नष्ट हुए और बार बार ध्वसावशेष से उठकर नया जीवन प्राप्त करते हुए अब पहले ही की तरह अटल भाव से खड़े हैं। इसलिए इस धर्म में ही हमारा जातीय मन है, हमारा जातीय जीवन प्रवाह है। इसका अनुसरण करोगे तो यह तुम्हें गौरव की ओर ले जायगा। इसे छोड़ोगे तो मृत्यु निश्चित है। अगर तुम उस जीवन प्रवाह से बाहर निकल आये तो मृत्यु ही एकमात्र परिणाम होगा और पूर्ण नाश ही एकमात्र परिणति। मेरे कहने का यह मतलब नहीं कि दूसरी चीज की आवश्यकता ही नहीं। मेरे कहने का यह अर्थ नहीं कि राजनीतिक या सामाजिक उन्नति अनावश्यक है, किन्तु मेरा तात्पर्य यही है और मैं तुम्हें सदा इसकी याद दिलाना चाहता हूँ कि ये सब यहाँ गौण विषय हैं, मुख्य विषय धर्म है। भारतीय मन पहले धार्मिक है, फिर कुछ और। अतः धर्म को ही संशक्त बनाना होगा। पर यह किया किस तरह जाय ? मैं तुम्हारे सामने अपने विचार रखता हूँ। बहुत दिनों से, यहाँ तक कि अमेरिका के लिए मद्रास का समुद्री तट छोड़ने के वर्षों पहले से ये मेरे मन में थे और उन्हींको प्रचारित करने के लिए मैं अमेरिका और इंग्लैण्ड गया था। धर्म-महासभा या किसी और वस्तु की मुझे बिल्कुल परवाह नहीं थी, वह तो एक सुयोग मात्र था। वस्तुतः मेरे ये सकल्प ही थे जो सारे ससार में मुझे लिये फिरते रहे।

मेरा विचार है, पहले हमारे शास्त्र ग्रन्थों में भरे पड़े आध्यात्मिकता के रत्नों को, जो कुछ ही मनुष्यों के अधिकार में मठों और अरण्यों में छिपे हुए हैं, बाहर लाना है। जिन लोगों के अधिकार में ये छिपे हुए हैं, केवल उन्हींसे इस ज्ञान का उद्धार करना नहीं, वरन् उससे भी दुर्भेद्य पेटिका अर्थात् जिस भाषा में ये सुरक्षित हैं, उन शताब्दियों के पर्तें खायें हुए संस्कृत शब्दों से उन्हें निकालना होगा। तात्पर्य यह है कि मैं उन्हें सबके लिए सुलभ कर देना चाहता हूँ। मैं इन तत्त्वों को निकालकर नवकी, भारत के प्रत्येक मनुष्य की, सामान्य सम्पत्ति बनाना चाहता हूँ, चाहे वह संस्कृत जानता हो या नहीं। इस मार्ग की बहुत बड़ी कठिनाई हमारी गौरवशाली भाषा संस्कृत ही है, यह कठिनाई तब तक दूर नहीं हो सकती, जब तक यदि सम्भव हो तो हमारी जाति के सभी मनुष्य संस्कृत के अच्छे विद्वान् न हो जायें। यह कठिनाई

तुम्हारी समझ में आ जायगी जब मैं कहूँगा कि वाचीय  
 का अध्ययन करने पर भी जब मैं इसकी कोई नयी पुस्तक उठाऊँ तो  
 विस्मृत नयी बात पकड़ती है। जब सोचो कि कितने लोगों ने कभी विश्वकालम् की  
 भाषा का अध्ययन करने का समय नहीं पाया उनके लिए यह भाषा कितनी  
 विस्मृत होती। अतः मनुष्यों की बोलीचाल की भाषा में उन विचारों को  
 देनी होती। साथ ही संस्कृत की भी किताब बचपन होती रहनी चाहिए।  
 संस्कृत शब्दों की ध्वनि मात्र से ही वाचि को एक प्रकार का नीरव, कवि और  
 बक प्राप्त हो जाता है। महान् रामानुज नीरव और कबीर ने वाचि की कवि  
 वाचियों को उठाने का जो प्रयत्न किया था उसमें उन महान् कवीश्वरों को  
 ही पीरन-काक में अद्भुत सफलता मिली थी। किन्तु फिर उनके बाद उन कवी  
 का जो शोचनीय परिणाम हुआ उसकी व्याख्या होनी चाहिए, और फिर प्रत्यक्ष  
 उन बड़े बड़े बर्माचार्यों के शिरोनाथ के प्रायः एक ही कताली के नीरव यह कवि  
 बन गयी उसकी भी व्याख्या करनी होती। इसका रहस्य यह है—उन्होंने कवि  
 वाचियों को उठवाया था। वे सब चाहते थे कि वे वाचि के सर्वोच्च निरव पर  
 हो पायें परन्तु उन्होंने जनता में संस्कृत का प्रचार करने में अपनी कवि नहीं  
 लगायी। यहाँ तक कि मधुबान् बुद्ध ने भी यह मूक की कि उन्होंने जनता में संस्कृत  
 सिखा का अध्ययन बंद कर दिया। वे तुरन्त फल वाले के इच्छुक थे इच्छित  
 उस समय की भाषा पाकी में संस्कृत से अनुवाद कर उन्होंने उन विचारों का प्रचार  
 किया। यह बहुत ही दुस्वर हुआ था जनता ने उनका अभिप्राय समझा, क्योंकि  
 वे जनता की बोलीचाल की भाषा में उपदेश देते थे। यह बहुत ही अच्छा हुआ पर  
 इसके उनके भाव बहुत ही कम किये और बहुत दूर दूर तक नहीं। किन्तु इसके साथ  
 साथ संस्कृत का भी प्रचार होना चाहिए था। ज्ञान का विस्तार हुआ नहीं, पर  
 इसके साथ साथ प्रतिष्ठा नहीं बनी संस्कार नहीं बना। संस्कृति ही दुन के व्यापकों  
 को बहान कर सकती है, मात्र ज्ञान-राशि नहीं। दुन संस्कार के सामने प्रकृत ज्ञान  
 रख सकती हो परन्तु इसके उतका विशेष उपकार न होना। संस्कार की रस  
 के व्याप्त हो जना चाहिए। वर्तमान समय में हम किसने ही राज्यों के अध्ययन  
 में जाते हैं, जिनके पास विद्यालय ज्ञान का आधार है, परन्तु इसके क्या? वे ज्ञान  
 की तरह मुंबई हैं वे बरतों के बहुत हैं क्योंकि उनका ज्ञान संस्कार में परिणत  
 नहीं हुआ है। अध्ययन की तरह ज्ञान भी चमड़े की ऊपरी कपड़ तक ही सीमित  
 है किताब है और एक शरीर लपेटे ही यह पुरानी मुंबईता बच जाती है।  
 देवी परमाणु हुआ करती है। नहीं भय है। जनता को उनकी बोलीचाल की  
 भाषा में सिखा दो उनकी भाव दो यह बहुत कुछ ज्ञान वाचनी परन्तु साथ ही

कुछ और भी जरूरी है उसको सस्कृति का बोध दो। जब तक तुम यह नहीं कर सकते, तब तक उनकी उन्नत दशा कदापि स्थायी नहीं हो सकती। एक ऐसे नवीन वर्ण की सृष्टि होगी, जो सस्कृत भाषा सीखकर शीघ्र ही दूसरे वर्णों के ऊपर उठेगी और पहले की तरह उनपर अपना प्रभुत्व फैलायेगी। ऐं पिछड़ी जाति के लोगो, मैं तुम्हें बतलाता हूँ कि तुम्हारे वचाव का, तुम्हारी अपनी दशा को उन्नत करने का एकमात्र उपाय सस्कृत पढना है, और यह लडना-झगडना और उच्च वर्णों के विरोध मे लेख लिखना व्यर्थ है। इससे कोई उपकार न होगा, इससे लडाई-झगडे और बढ़ेंगे, और यह जाति, दुर्भाग्यवश पहले ही से जिसके टुकडे टुकडे हो चुके हैं, और भी टुकडो मे बँटती रहेगी। जातियो मे समता लाने के लिए एक-मात्र उपाय उस सस्कार और शिक्षा का अर्जन करना है, जो उच्च वर्णों का बल और गौरव है। यदि यह तुम कर सको तो जो कुछ तुम चाहते हो, वह तुम्हें मिल जायगा।

इसके साथ मैं एक और प्रश्न पर विचार करना चाहता हूँ, जो खासकर मद्रास से सम्बन्ध रखता है। एक मत है कि दक्षिण भारत मे द्राविड नाम की एक जाति के मनुष्य थे, जो उत्तर भारत की आर्य नामक जाति से बिल्कुल भिन्न थे और दक्षिण भारत के ब्राह्मण ही उत्तर भारत से आये हुए आर्य हैं, अन्य जातियाँ दक्षिणी ब्राह्मणों से बिल्कुल ही पृथक् जाति की हैं। भाषा-वैज्ञानिक महाशय, मुझे क्षमा कीजिएगा, यह मत बिल्कुल निराधार है। इसका एकमात्र प्रमाण यह है कि उत्तर और दक्षिण की भाषा मे भेद है। दूसरा भेद मेरी नजर मे नहीं आता। हम यहाँ उत्तर भारत के इतने लोग हैं, मैं अपने यूरोपीय मित्रों से कहता हूँ कि वे इस सभा के उत्तरी भारत और दक्षिणी भारत के लोगो को चुनकर अलग कर दें। भेद कहाँ है? जरा सा भेद भाषा मे है। पूर्वोक्त मतवादी कहते है कि दक्षिणी ब्राह्मण जब उत्तर से आये थे, तब वे सस्कृत बोलते थे, अभी यहाँ आकर द्राविड भाषा बोलते बोलते सस्कृत भूल गये। यदि ब्राह्मणों के सम्बन्ध मे ऐसी बात है तो फिर दूसरी जातियो के सम्बन्ध मे भी यही बात क्यो न होगी? क्यो न कहा जाय कि दूसरी जातियाँ भी एक एक करके उत्तर भारत से आयी हैं, उन्होंने द्राविड भाषा को अपनाया और सस्कृत भूल गयी? यह युक्ति तो दोनों ओर लग सकती है। ऐसी वाहियात वातो पर विश्वास न करो। यहाँ ऐसी कोई द्राविड जाति रही होगी, जो यहाँ से लुप्त हो गयी है, और उनमे से जो कुछ थोडे से रह गये थे, वे जगलो और दूसरे दूसरे स्थानो मे वस गये। यह बिल्कुल सम्भव है कि सस्कृत के बदले वह द्राविड भाषा ले ली गयी हो, परन्तु ये सब आर्य ही हैं, जो उत्तर से आये। सारे भारत के मनुष्य आर्यों के सिवा और कोई नहीं।

इसके बाद एक दृष्टि विचार है कि ब्रह्म कोन विस्तृत ही या अत्यंत है। क्या वे क्या है ? वे ब्रह्मान्त हैं। विद्यात् कहे हैं-को को बुझता है। अमरीकी अनेक उभ नीर पूर्णवाणी बेचारे फकड़ जेते वे अब तक वे भीक्षित रहते जन्ते नीर परिमज बरती है, मिमित संतामें भी वास्तता में स्वयं होकर फिर काक एक वाक्यता में थी। इस अनुभूत उवाहरण से मन हृद्यारों कर्म पीछे वाकर नहीं की बठनाओं की कल्पना करता है, नीर हमारे पुरतत्त्वमेता बाबा के कर्मों में स्वयं देखते है कि भारत काकी बाँधोंवाके बाकिवाकियों के अंत हृद्यारों नीर उम्जल कार्य बाहर से जाने—परमात्मा जाने नहीं वे कर्मों के मत से वे मन्व तिष्ठत से जाने बुरे कहे है वे मन्व एकिवा के स्वयं स्वयंसेप्रेमी अनेक है जो सोचते है कि कार्य काक वाक्याके वे। अन्ती अन्ती अनुसार बुरे सोचते है कि वे सब काके वाक्याके वे। अगर केवल कुछ वाक वाक मनुष्य हुआ तो सभी कार्य काके वाक्याके वे। कुछ विद्वद् कहे कि करने का प्रसन्न किना नवा वा कि कार्य स्विकारकेवा की हीकों के विचारकेवे वे। मुझे वाप भी कुछ न होता अगर वे सबके सब इन सब विद्यार्थों के कर्म नहीं ब्रह्म मरते। वाक्यक कोई कोई कहे है कि वे उतरी ब्रह्म में रहते वे। हीनर जायों नीर उनके निवाच स्वयों पर ज्ञान बुध्ति रहे। इन विद्यार्थों की कर्मों के बारे में नहीं कहा है कि हमारे वाक्यों में एक भी कर्म नहीं है, जो स्वयं के लके कि कार्य भारत के बाहर से फिटी बेच से जाने। ही प्राचीन वाक्य के अफझाकिस्ताम की वाकिल वा क्त इतना ही। नीर यह विद्यार्थ भी कि ब्रह्म कर्मों नीर अत्यंत वे किन्तु अताकिम नीर अन्तिका है। उन विद्वों यह कल्प ही नहीं वा कि मुद्दी भर कार्य नहीं वाकर लक्षों अन्तों पर वाकिधर अन्तक क्त मने हों। अन्ती वे अन्तर् कर्मों वा वाते पांच ही निम्न में ऊन्ती कन्ती क्त वाक्ये।

इत तत्त्वा की एकमात्र व्याख्या महाभारत में मिलती है। उनमें किता है कि लक्ष्य के आरम्भ में एक ही प्राति वाद्यय की नीर फिर केके के केके है वह निज निज वाकियों में बैठती कवी। क्त नहीं एकमात्र व्याख्या सब नीर बुध्तिपूर्ण है। अन्तिय में जो लक्ष्युम आ रहा है उसमे वाद्ययैतर कर्म वाकिल कि वाद्यय क्त में परिणत होंगी।

प्राचीनक वाद्ययैतर, अन्तिय, अन्तिय, नीर नीरवाक्य, एदी, अन्तिय, एदी, है कि कल्प कर्मों को विरामा नहीं होना वाद्ययों का अन्तिय नीर करना नहीं होना। भारत के वाद्ययैतर ही अनुक्त्य का चरम अन्तर् है। इसे अन्तरात्मा के नीर के वाक्यारम्भ

मे वडे ही सुन्दर ढग से पेश किया है, जहाँ कि उन्होंने ब्राह्मणत्व की रक्षा के लिए प्रचारक के रूप में कृष्ण के आने का कारण बतलाया है। यही उनके अवतरण का महान् उद्देश्य था। इस ब्राह्मण का, इस ब्रह्मज पुरुष का, इस आदर्श और सिद्ध पुरुष का रहना परमावश्यक है, इसका लोप कदापि नहीं होना चाहिए। और इस समय इस जाति-भेद की प्रथा में जितने दोष हैं, उनके रहते हुए भी, हम जानते हैं कि हमें ब्राह्मणों को यह श्रेय देने के लिए तैयार रहना होगा कि दूसरी जातियों की अपेक्षा उन्हींमें से अधिसंख्यक मनुष्य यथार्थ ब्राह्मणत्व को लेकर आये हैं। यह सच है। दूसरी जातियों को उन्हें यह श्रेय देना ही होगा, यह उनका प्राप्य है। हमें बहुत स्पष्टवादी होकर साहस के साथ उनके दोषों की आलोचना करनी चाहिए। पर साथ ही उनका प्राप्य श्रेय भी उन्हें देना चाहिए। अंग्रेजी की पुरानी कहावत याद रखो—‘हर एक मनुष्य को उसका प्राप्य दो।’ अतः मित्रों, जातियों का आपस में झगडना बेकार है। इससे क्या लाभ होगा? इससे हम और भी बंट जायेंगे, और भी कमजोर हो जायेंगे, और भी गिर जायेंगे। एकाधिकार तथा उसके दावे के दिन लड़ गये, भारतभूमि से वे चिर काल के लिए अन्तर्हित हो गये और यह भारत में ब्रिटिश शासन का एक सुफल है। यहाँ तक कि मुसलमानों के शासन से भी हमारा उपकार हुआ था, उन्होंने भी इस एकाधिकार को तोड़ा था। सब कुछ होने पर भी वह शासन सर्वाशत बुरा नहीं था, कोई भी वस्तु सर्वाशत न बुरी होती है और न अच्छी ही। मुसलमानों की भारत-विजय पददलितों और गरीबों का मानो उद्धार करने के लिए हुई थी। यही कारण है कि हमारी एक पंचमाश जनता मुसलमान हो गयी। यह सारा काम तलवार से ही नहीं हुआ। यह सोचना कि यह सभी तलवार और आग का काम था, बेहद पागलपन होगा। अगर तुम सचेत न होगे तो मद्रास के तुम्हारे एक पंचमाश—नहीं, अर्धाश लोग ईसाई हो जायेंगे। जैसा मैंने मलाबार प्रदेश में देखा, क्या वैसी बाहियात बातें ससार में पहले भी कभी थीं? जिस रास्ते से उच्च वर्ण के लोग चलते हैं, गरीब पैरिया उससे नहीं चलने पाता। परन्तु ज्यों ही उसने कोई ब्रेडब अंग्रेजी नाम या कोई मुसलमानी नाम रख लिया कि बस, सारी बातें सुधर जाती हैं। यह सब देखकर इसके सिवा तुम और क्या निष्कर्ष निकाल सकते हो कि सब मलाबारी पागल हैं, और उनके घर पागलखाने हैं? और जब तक वे होश सँभाल कर अपनी प्रथाओं का सशोषण न कर लें, तब तक भारत की सभी जातियों को उनकी खिल्ली उड़ानी चाहिए। ऐसी बुरी और नृशंस प्रथाओं को आज भी जारी रखना क्या उनके लिए लज्जा का विषय नहीं? उनके अपने बच्चे तो भूखों मरते हैं, परन्तु ज्यों ही उन्होंने किसी दूसरे धर्म का आश्रय लिया कि फिर उन्हें

अच्छा भाजन मिल पाया है। अब जातिवर्गों में बाधनी चाहिए।

उच्च वर्गों को नीचे उतारकर इस समता की नींव रखनी चाहिए। जातिवर्गों को उच्च जातिवर्गों के बराबर उठाना होना। और कहीं कुछ-कुछ भी जिनका अपन बातों का ज्ञान और अपने पूर्वजों के महान् उपदेशों के अनुसार ही भक्ति भूमि से अधिक नहीं तुम कुछ का कुछ करते हुए तुम्हें ही-जिनकी ही जा कुछ कहा है हमारे जातिवर्गों में व्यक्ति कार्य-व्यवस्था नहीं है। वे नहीं-जातिवर्गों-समस्त वे हैं जिनके मस्तिष्क हैं तथा पूर्वजों के कार्यों का ज्ञान प्राप्त करने-समस्त मन की क्षमता रखते हैं। वे तटस्थ होकर नून-बुधालतों से बुराई नून-जातिवर्गों-पंचन की विविध गति को सम्यक् करते हैं। वे नये और नूतने सभी जातिवर्गों में समस्त इसकी परम्परा देख पाते हैं। अच्छा, तो यह बोधना-यह-जातिवर्गों क्या है? उच्च जातिवर्गों का एक ओर बाधना है और दूसरा ओर बाधना-और सम्पूर्ण कार्य-बाधना को उठकर बाधना करना है। जातिवर्गों में और और-सुन रख पाते हो कि नीची जातिवर्गों को अस्मिताधिक अस्मिताधिक दिने बाधे हैं। कुछ धन्य भी हैं जिनमें तुम्हें ऐसे कठोर बाधना करने को मिलते हैं—'अपर सुन वेद सुन के तो उसके कार्यों में सीधा बलात्कर घर हो और अगर यह वेद ही एक ही पक्षि बाध कर के तो उसकी जीव काट डालो यदि यह किसी जातिवर्गों को 'दि बाधना' कह दे तो भी उसकी जीव काट डालो। यह नूतने करने ही नूतन करीबता है, इसमें बाध भी कन्हेह नहीं परन्तु स्मृतिवर्गों को बाध न ही-क्योंकि उन्होंने समाज के किसी बंध में प्रचलित व्यवस्थाओं को ही किन्हीं किन्हीं किन्हीं किन्हीं है। ऐसे जातिवर्गों प्रकृति के जोग प्राचीन काल में कभी कभी पैदा हो जाते थे। ऐसे अशुभ लोग कमोबेश सभी मुकों में होते जाते हैं। इसलिए बाध के समय में इन वेदोंमें कि इस स्वर में बोधी नरमी जा नवी है, जैसे 'जुओं को ठंठ न करो, परन्तु उन्हें उच्च शिक्षा भी न दो। फिर और और हम कुछ ही स्मृतिवर्गों में—बाधकर उन स्मृतिवर्गों में जिनका बाधकक पूरा प्रभाव है, यह शिक्षा पाते हैं कि अगर सुन जातिवर्गों के बाधना-व्यवहारों का अनुकरण करें तो वे अच्छा करते हैं, उन्हें उत्साहित करना चाहिए। इस प्रकार यह सब होता था रहा है। तुम्हारे सामने इन सब कार्य-व्यवस्थाओं का विस्तृत वर्णन करने का मुझे समय नहीं है और न ही इतना कि इनका विस्तृत विवरण जैसे प्राप्त किन्ना था सकता है। किन्तु अस्मिता-व्यवस्थाओं का विचार करने से हम देखते हैं सभी जातिवर्गों और और-जैसी। बाध जो हुआ ही जातिवर्गों है, जन्में से कुछ ही जातिवर्गों में बाधिका ही हो रही है। कोई जाति अगर अपने को बाधना करने लगे तो इस पर कोई क्या कर सकता है

जाति-भेद कितना भी कठोर क्यों न हो, वह इसी रूप में ही सृष्ट हुआ है। कल्पना करो कि यहाँ कुछ जातियाँ हैं, जिनमें हर एक की जन-संख्या दस हज़ार है। अगर ये सब इकट्ठी होकर अपने को ब्राह्मण कहने लगे तो इन्हें कौन रोक सकता है? ऐसा मैंने अपने ही जीवन में देखा है। कुछ जातियाँ जोरदार हो गयी, और ज्योंही उन सब की एक राय हुई, फिर उनसे 'नहीं' भला कौन कह सकता है? — क्योंकि और कुछ भी हो, हर एक जाति दूसरी जाति से सम्पूर्ण पृथक् है। कोई जाति किसी दूसरी जाति के कामों में, यहाँ तक कि एक ही जाति की भिन्न भिन्न शाखाएँ भी एक दूसरे के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करती। और शकराचार्य आदि शक्तिशाली युग-प्रवर्तक ही बड़े बड़े वर्ण-निर्माता थे। उन लोगों ने जिन अद्भुत बातों का आविष्कार किया था, वे सब मैं तुमसे नहीं कह सकता, और सम्भव है कि तुममें से कोई कोई उससे अपना रोष प्रकट करे। किन्तु अपने भ्रमण और अनुभव से मैंने उनके सिद्धांत ढूँढ निकाले, और इससे मुझे अद्भुत परिणाम प्राप्त हुए। कभी कभी उन्होंने दल के दल वलूचियों को लेकर क्षण भर में उन्हें क्षत्रिय बना डाला, दल के दल घीवरो को लेकर क्षण भर में ब्राह्मण बना दिया। वे सब ऋषि-मुनि थे और हमें उनकी स्मृति के सामने सिर झुकाना होगा। तुम्हें भी ऋषि-मुनि बनना होगा, कृतकार्य होने का यही गूढ़ रहस्य है। न्यूनाधिक सबको ही ऋषि होना होगा। ऋषि के क्या अर्थ हैं? ऋषि का अर्थ है पवित्र आत्मा। पहले पवित्र बनो, तभी तुम शक्ति पाओगे। 'मैं ऋषि हूँ', कहने मात्र ही से न होगा, किन्तु जब तुम यथार्थ ऋषित्व लाभ करोगे तो देखोगे, दूसरे आप ही आप तुम्हारी आज्ञा मानते हैं। तुम्हारे भीतर से कुछ रहस्यमय वस्तु निःसृत होती है, जो दूसरों को तुम्हारा अनुसरण करने को बाध्य करती है, जिससे वे तुम्हारी आज्ञा का पालन करते हैं। यहाँ तक कि अपनी इच्छा के विरुद्ध अज्ञात भाव से वे तुम्हारी योजनाओं की कार्यसिद्धि में सहायक होते हैं। यही ऋषित्व है।

विस्तृत कार्यप्रणाली के बारे में यही कहना है कि पीढ़ियों तक उसका अनुसरण करना होगा। मैंने तुमसे जो कुछ कहा है, वह एक सुझाव मात्र है। जिसका उद्देश्य यह दिखाना है कि ये लड़ाई-झगड़े बन्द हो जाने चाहिए। मुझे विशेष दुःख इस बात पर होता है कि वर्तमान समय में भी जातियों के बीच में इतना मतभेद चलता रहता है। इसका अन्त हो जाना चाहिए। यह दोनों ही पक्षों के लिए व्यर्थ है, खासकर ब्राह्मणों के लिए, क्योंकि इस तरह के एकाधिकार और विशेष दावों के दिन लड़ गये। हर एक अभिजात वर्ग का कर्तव्य है कि अपने कुलीन तंत्र की कन्न वह आप ही खोदे, और जितना शीघ्र इसे कर सके, उतना ही अच्छा है। जितनी ही वह देर करेगा, उतनी ही वह सबेगी और उसकी मृत्यु भी



अच्छा भावना मिल जाता है। अब जातियों में अपनी उपाय विस्तृत नहीं होने चाहिए।

उच्च वर्गों को नीचे उतारकर इस समस्या की सीमांका न होनी किन्तु नीचे जातियों को ऊँची जातियों के बराबर उठाना हीना। और यद्यपि कुछ उच्च वर्गों के, जिनका अपने शास्त्रों का ज्ञान और अपने पूर्वजों के ज्ञान् उच्च वर्गों के समझने की शक्ति क्षम से अधिक नहीं तुम कुछ का कुछ कहते हुए सुनते हो, फिर भी वे जो कुछ कहा है हमारे शास्त्रों में वर्णित कार्य-प्रणाली नहीं है। वे नहीं समझते, समझते वे हैं जिनके मस्तिष्क है तथा पूर्वजों के कार्यों का समस्त प्रयोजन समझ करने की क्षमता रखते हैं। वे उद्वेग होकर मुन-मुनापत्तों से बुराते हुए जातीय जीवन की विविध मति को नष्ट करते हैं। वे नये और पुराने सभी शास्त्रों में समझ इतनी परम्परा देख पाते हैं। अच्छा तो यह बीजना—यह प्रणाली क्या है? उच्च वर्गों का एक और शास्त्र है और दूसरा और चाँदा और सम्पूर्ण कार्य चाँदा को उठाकर शास्त्र बनाया है। शास्त्रों में बीरे बीरे पुन देख पाते हो कि नीचे जातियों को अधिकतम अधिकार देने जाते हैं। कुछ जन्म भी हैं जिनमें तुम्हें ऐसे कठोर भाव्य पढ़ने को मिलते हैं—'अगर बुर बेव तुम से तो उसके कार्यों में सीधा पलाकर भर दो और अगर वह बेव की एक भी पलित बाव कर ले तो उसकी जीव काट डालो यदि वह किसी शास्त्र को 'ए शास्त्र' कह दे तो भी उसकी जीव काट लो। यह दुपाने समाने की गुणवत्ता नहीं है, इसमें बरा भी लगेह नहीं परन्तु स्मृतिकारों को दोष न दो क्योंकि उन्होंने समाज के किसी बंध में प्रचलित प्रणाली को ही विश्व विविध किया है। ऐसे शास्त्री प्रकृति के जोग प्राचीन काल में कभी कभी पैदा हो नये थे। ऐसे अनुर जीव कर्मोत्प्रेष सभी मुँहों में होते जाये हैं। इतकिये बाव के समय में तुम देखोने कि इस स्वर में बोड़ी गरमी या नमी है, जैसे 'शुद्धों की संघ न करो परन्तु उन्हें जन्म विद्या भी न दो। फिर बीरे बीरे हम दूसरी स्मृतिमें से—जातकर उन स्मृतिमें से जिनका वाचकक पूरा प्रभाव है वह किया पाते हैं कि अगर बुर शास्त्रों के वाचार-व्यवहारों का अनुकरण करें तो वे अच्छा करते हैं उन्हें उत्पाहित करना चाहिए। इस प्रकार यह सब होता था रहा है। तुम्हारे सामने इन सब कार्य-प्रणालियों का विस्तृत वर्णन करने का मुझे समय नहीं है और न ही इतका कि इनका विस्तृत विवरण की प्रार्थना किया जा सकता है। किन्तु प्रत्येक बटनारों का विचार करने से इन देखते हैं, सभी जातियाँ बीरे बीरे उठेंगी। बाव जो हथारों जातियाँ हैं, उनसे वे कुछ ही शास्त्रों में शामिल की हो रही हैं। कोई जाति अगर अपने की शास्त्र नहीं जन्मे जन्मे ही इस पर कोई कदम कर सकता है।'

साधारण जनता के लिए वह खजाना खोल नहीं दिया। हम इसीलिए अवनत हो गये। और हमारा पहला कार्य यही है कि हम अपने पूर्वजों के बटोरे हुए धर्मरूपी अमोल रत्न जिन तहखानों में छिपे हुए हैं, उन्हें तोड़कर बाहर निकालें और उन्हें सबको दें। यह कार्य सबसे पहले ब्राह्मणों को ही करना होगा। बगल में एक पुराना अधविश्वास है कि जिस गोकुरे साँप ने काटा हो, यदि वह खुद अपना विष खींच ले तो रोगी जरूर बच जायगा। अतएव ब्राह्मणों को ही अपना विष खींच लेना होगा। ब्राह्मणोंतर जातियों से मैं कहता हूँ, ठहरो, जल्दी मत करो, ब्राह्मणों से लड़ने का मौका मिलते ही उसका उपयोग न करो, क्योंकि मैं पहले दिखा चुका हूँ कि तुम अपने ही दोष से कष्ट पा रहे हो। तुम्हें आध्यात्मिकता का उपार्जन करने और संस्कृत सीखने से किसने मना किया था? इतने दिनों तक तुम क्या करते रहे? क्यों तुम इतने दिनों तक उदासीन रहे? और दूसरों ने तुमसे बढकर मस्तिष्क, वीर्य, साहस और क्रिया-शक्ति का परिचय दिया, इस पर अब चिढ़ क्यों रहे हो? समाचार पत्रों में इन सब व्यर्थ वाद-विवादों और झगड़ों में शक्ति क्षय न करके, अपने ही घरों में इस तरह लड़ते-झगड़ते न रहकर—जो कि पाप है—ब्राह्मणों के समान ही संस्कार प्राप्त करने के लिए अपनी सारी शक्ति लगा दो। बस तभी तुम्हारा उद्देश्य सिद्ध होगा। तुम क्यों संस्कृत के पंडित नहीं होते? भारत की सभी जातियों में संस्कृत शिक्षा का प्रचार करने के लिए तुम क्यों नहीं करोड़ों रुपये खर्च करते? मेरा प्रश्न तो यही है। जिस समय तुम यह कार्य करोगे, उसी क्षण तुम ब्राह्मणों के बराबर हो जाओगे। भारत में शक्तिलाभ का रहस्य यही है।

संस्कृत में पांडित्य होने से ही भारत में सम्मान प्राप्त होता है। संस्कृत भाषा का ज्ञान होने से ही कोई भी तुम्हारे विरुद्ध कुछ कहने का साहस न करेगा। यही एकमात्र रहस्य है, अतः इसे जान लो और संस्कृत पढो। अद्वैतवादी की प्राचीन उपमा दी जाय तो कहना होगा कि समस्त जगत् अपनी माया से आप ही सम्मोहित हो रहा है। इच्छाशक्ति ही जगत् में अमोघ शक्ति है। प्रबल इच्छाशक्ति का अधिकारी मनुष्य एक ऐसी ज्योतिर्मयी प्रभा अपने चारों ओर फैला देता है कि दूसरे लोग स्वतः उस प्रभा से प्रभावित होकर उसके भाव से भावित हो जाते हैं। ऐसे महापुरुष अवश्य ही प्रकट हुआ करते हैं। और इसके पीछे भावना क्या है? जब वे आविर्भूत होते हैं, तब उनके विचार हम लोगों के मस्तिष्क में प्रवेश करते हैं और हममें से कितने ही आदमी उनके विचारों तथा भावों को अपना लेते हैं और शक्तिशाली बन जाते हैं। किसी सगठन या सघ में इतनी शक्ति क्यों होती है? सगठन को केवल भौतिक या जड़ शक्ति मत मानो। इसका क्या कारण है, अथवा

जानी ही बनकर होनी। यह वह वाङ्मय वाङ्मय का  
 नव वाङ्मयों के उद्धार की चेष्टा करे। यह वह देश  
 ऐसा करती है, तभी तक वह वाङ्मय है,  
 है तो वह वाङ्मय नहीं है। इसर तुम्हें भी उचित है कि  
 करो। इसर तुम्हें स्वयं मिलेगा। पर यह तुम क्याव भी  
 फल स्वयं न होकर उनके विपरीत होना—हमारे कर्मों का  
 विषय मे तुम्हें सावधान हो जाना चाहिए। कर्मात् वाङ्मय  
 कोई कर्म नहीं करते। सांसारिक कर्म दूसरी वाङ्मयों के लिए है,  
 नहीं। वाङ्मयों से मेरा वह निवेदन है कि वे जो कुछ वाङ्मय है,  
 और तस्वियों से उन्होंने जिह बाल एवं कल्पित का संभव किया है,  
 भारतीय जनता को उन्नत करने के लिए बलवत् प्रयत्न करें।  
 क्या है इसका स्वयं करना राष्ट्रीय वाङ्मयों का स्वयं  
 है 'वाङ्मयों को जो इलाहा अम्मान और विशेष अधिकार मिले जाते  
 वह है कि उनके पास बर्न का अधिकार है।' उन्हें वह अधिकार जोरकर  
 बनार न बाँट देने चाहिए। यह सब है कि वाङ्मयों में ही  
 जालियों में बर्न का अधिकार किया और उन्होंने ही उन्हें नहीं, उन  
 दूसरी जालियों में स्वयं के साथ का उन्मेष ही नहीं हुआ था, धर्म  
 के लिए सब कुछ छोड़ा। यह वाङ्मयों का दोष नहीं कि वे  
 अन्य जालियों में जाने लगे। दूसरी जालियों में जो वाङ्मयों की उत्पत्ति  
 करने की चेष्टा नहीं की? क्यों उन्होंने कुल की रहकर वाङ्मयों की  
 मार केन दिया?

प्रायः दूसरी की अपेक्षा अधिक अधिक होना तक सुविचार्य अन्य उन्नत  
 बाल है और पुनर्जीव के लिए उन्हें बनाने रखना दूसरी सब। अतिस सब को  
 बुरे उद्देश्य के हेतु बनायी गयी है तो वह जालुटी हो गयी है, उनका उन्मेष  
 के लिए ही होना चाहिए। उन कुली की सब अधिकार तथा संसार, जिन  
 वाङ्मय बलवत् होने जाते है अब वाचाराज्य जनता की केन नहीं, और  
 उन्मेष वाचाराज्य जनता को वह कल्पित नहीं ही इतिहास्य मुकामवालों का उन्नत  
 बलवत् हो गया था। इस को उद्धारो क्यों तक कारण पर उन्नत जोरकर  
 विवेक हीरे बने दुःखने अन्य रहे उन्नत वाचराज्य नहीं है कि वाङ्मयों में कुल के ही

१ वाङ्मयों का उन्नत है सुविचार्यवादी।  
 (उन्नत) उन्नतवादी उन्नतवादी सुवर्ण = उन्नतवादी सुवर्ण

इसके सिवा हमारे भीतर एक और बड़ा भारी दोष है। महिलाएँ मुझे क्षमा करेंगी, पर असल बात यह है कि सदियों से गुलामी करते करते हम औरतो के राष्ट्र के समान बन गये हैं। चाहे इस देश में हो या किसी अन्य देश में, कहीं भी तुम तीन स्त्रियों को शायद ही कभी एक साथ पाँच मिनट से अधिक देर तक झगडा किये बिना देख पाओगे। यूरोपीय देशों में स्त्रियाँ बहुत बड़ी बड़ी सभा-समितियाँ स्थापित करती हैं और अपनी शक्ति की बड़ी बड़ी घोषणाएँ करती हैं। इसके बाद वे आपस में झगडा करने लग जाती हैं। इसी बीच कोई पुरुष आता है और उन पर अपना प्रभुत्व जमा लेता है। सारे सप्ताह में उन पर शासन करने के लिए अब भी पुरुषों की आवश्यकता होती है। हमारी भी ठीक वही हालत है। हम भी स्त्रियों के समान हो गये हैं। यदि कोई स्त्री स्त्रियों का नेतृत्व करने चलती है, तो सब मिलकर फौरन उसकी खरी आलोचना करना शुरू कर देती हैं—उसकी खिल्लियाँ उड़ाने लग जाती हैं, और अन्त में उसे नेतृत्व से हटाकर, उसे बैठाकर ही दम लेती हैं। यदि कोई पुरुष आता है और उनके साथ ज़रा सख्त वर्ताव करता है और बीच बीच में डाँट फटकार सुना देता है, तो बस ठीक हो जाती हैं, इस प्रकार के वशीकरण की वे अम्यस्त हो गयी हैं। सारा सप्ताह ही इस प्रकार के वशीकरण एव सम्मोहन करनेवालों से भरा है। ठीक इसी तरह यदि हम लोगों में से किसीने आगे बढ़ना चाहा, हमें रास्ता दिखाने की कोशिश की, तो हम फौरन उसकी टाँग पकडकर पीछे खींचेंगे और उसे विठा देंगे। परन्तु यदि कोई विदेशी हमारे बीच में कूद पड़े और हमें पैरों से ठोकर मारे, तो हम बड़ी खुशी से उसके पैर सहलाने लग जायेंगे। हम लोग इसके अम्यस्त हो गये हैं। क्या ऐसी बात नहीं है? और कहीं गुलाम स्वामी बन सकता है, इसलिए गुलाम बनना छोड़ो।

आगामी पचास वर्ष के लिए यह जननी जन्मभूमि भारतमाता ही मानो आराध्य देवी बन जाय। तब तक के लिए हमारे मस्तिष्क से व्यर्थ के देवी-देवताओं के हट जाने में कुछ भी हानि नहीं है। अपना सारा ध्यान इसी एक ईश्वर पर लगाओ, हमारा देश ही हमारा जाग्रत देवता है। सर्वत्र उसके हाथ हैं, सर्वत्र उसके पैर हैं और सर्वत्र उसके कान हैं। समझ लो कि दूसरे देवी-देवता सो रहे हैं। जिन व्यर्थ के देवी-देवताओं को हम देख नहीं पाते, उनके पीछे तो हम बेकार दौड़ें और जिस विराट् देवता को हम अपने चारों ओर देख रहे हैं, उसकी पूजा ही न करे? जब हम इस प्रत्यक्ष देवता की पूजा कर लेंगे, तभी हम दूसरे देव-देवियों की पूजा करने योग्य होंगे, अन्यथा नहीं। आध मील चलने की हमें शक्ति ही नहीं और हम हनुमान जी की तरह एक ही छलाँग में समुद्र पार करने की इच्छा करें, ऐसा नहीं हो सकता। जिसे देखो वही योगी बनने की धुन में है, जिसे देखो वही समाधि

बहु कौन सी वस्तु है, जिसके द्वारा कुछ बार करोड़ अंग्रेज पुरे तीस करोड़ माण्ड-बासियों पर शासन करते हैं? इस प्रश्न का मनोवैज्ञानिक समाधान क्या है? यही कि वे बार करोड़ मनुष्य अपनी अपनी इच्छाशक्ति को समन्वित कर देते हैं अर्थात् शक्ति का अनन्त माँबार बना लेते हैं और तुम तीस करोड़ मनुष्य अपनी अपनी इच्छाओं को एक वृत्तरे से पृथक् किये रहते हो। बस यही इसका रहस्य है कि वे कम होकर भी तुम्हारे ऊपर शासन करते हैं। अतः यदि भारत को महान् बनाया है उसका भविष्य उज्ज्वल बनाना है, तो इसके लिए आवश्यकता है सबल की शक्ति-समूह की और बिजारी हुई इच्छाशक्ति को एकत्र कर उसमें समन्वय आने की।

अधर्षवेद संहिता की एक विस्मयमय श्रुति याद आ यमी जिसमें कहा गया है 'तुम सब लोग एक मन हो जाओ सब लोग एक ही विचार के बन जाओ क्योंकि प्राचीन काल में एक मन होने के कारण ही देवताओं में बलि पायी है।' देवता मनुष्य द्वारा इसीलिए पूजे गये कि वे एकचित्त वे एक मन हो जाया ही समाज गठन का रहस्य है। और यदि तुम 'आर्य' और 'ब्राह्मिण' 'ब्राह्मण' और 'अब्राह्मण' जैसे तुच्छ विषयों को लेकर 'तू तू मैं मैं' करोगे—झगड़े और पारस्परिक विरोध मात्र को बढ़ाओगे—तो धनञ्जय भी कि तुम उस शक्ति-समूह से दूर हटते जाओगे जिसके द्वारा भारत का भविष्य बनने जा रहा है। इस बात को याद रखो कि भारत का भविष्य सम्पूर्णतः उसी पर निर्भर करता है। बस इच्छा-शक्ति का सञ्चय और उनका समन्वय कर उन्हें एकमुखी करना ही वह धारा रहस्य है। प्रत्येक जीवी अपनी शक्तियों को निम्न निम्न भागों से परिचायित करता है तथा मृदुली भर जायगी अपनी इच्छा-शक्ति एक ही मार्ग से परिचायित करते हैं, और उसका फल क्या हुआ है यह तुम लोगों से किया नहीं है। इसी तरह की बात धारे सधारे में देखने में आती है। यदि तुम संघान के इतिहास पर दृष्टि डाली तो तुम देखोगे कि धर्षव छोटे छोटे सुगठित राष्ट्र बड़े बड़े असंगठित राष्ट्रों पर शासन कर रहे हैं। ऐसा होना स्वाभाविक है, क्योंकि छोटे संगठित राष्ट्र अपने भागों को जायगी के साथ केन्द्रीभूत कर सकते हैं। और इस प्रकार वे अपनी शक्ति को विकसित करने में समर्थ होते हैं। बूझरी ओर जितना बड़ा राष्ट्र होगा उतना ही संगठित करना कठिन होगा। वे मानो अनिर्दिष्ट लोगों की भीड़ मात्र हैं वे कभी परस्पर सम्बद्ध नहीं हो सकते। इसलिए वे सब सत्त्वमेव के समूह पुरुषम बन्ध ही जाने चाहिए।

१ संगणकस्यं सर्वस्यं स भो मनसि आत्मतम् ।

इया भागं यथा पुनं संजानामा ज्वासते ॥ ६।६४।१॥

इसके सिवा हमारे भीतर एक और बड़ा भारी दोष है। महिलाएँ मुझे क्षमा करेंगी, पर असल बात यह है कि सदियों से गुलामी करते करते हम औरतो के राष्ट्र के समान बन गये हैं। चाहे इस देश में हो या किसी अन्य देश में, कहीं भी तुम तीन स्त्रियों को शायद ही कभी एक साथ पाँच मिनट से अधिक देर तक झगडा किये बिना देख पाओगे। यूरोपीय देशों में स्त्रियाँ बहुत बड़ी बड़ी सभा-समितियाँ स्थापित करती हैं और अपनी शक्ति की बड़ी बड़ी घोषणाएँ करती हैं। इसके बाद वे आपस में झगडा करने लग जाती हैं। इसी बीच कोई पुरुष आता है और उन पर अपना प्रभुत्व जमा लेता है। सारे सप्ताह में उन पर शासन करने के लिए अब भी पुरुषों की आवश्यकता होती है। हमारी भी ठीक वही हालत है। हम भी स्त्रियों के समान हो गये हैं। यदि कोई स्त्री स्त्रियों का नेतृत्व करने चलती है, तो सब मिलकर फौरन उसकी खरी आलोचना करना शुरू कर देती हैं—उसकी खिल्लियाँ उड़ाने लग जाती हैं, और अन्त में उसे नेतृत्व से हटाकर, उसे बैठाकर ही दम लेती है। यदि कोई पुरुष आता है और उनके साथ ज़रा सख्त बर्ताव करता है और बीच बीच में डाँट फटकार सुना देता है, तो बस ठीक हो जाती है, इस प्रकार के बर्ताव की वे अम्यस्त हो गयी हैं। सारा सप्ताह ही इस प्रकार के बर्ताव एव सम्मोहन करनेवालों से भरा है। ठीक इसी तरह यदि हम लोगों में से किसीने आगे बढ़ना चाहा, हमें रास्ता दिखाने की कोशिश की, तो हम फौरन उसकी टाँग पकड़कर पीछे खींचेंगे और उसे बिठा देंगे। परन्तु यदि कोई विदेशी हमारे बीच में कूद पड़े और हमें पैरों से ठोकर मारे, तो हम बड़ी खुशी से उसके पैर सहलाने लग जायेंगे। हम लोग इसके अम्यस्त हो गये हैं। क्या ऐसी बात नहीं है? और कहीं गुलाम स्वामी बन सकता है, इसलिए गुलाम बनना छोड़ो।

आगामी पचास वर्ष के लिए यह जननी जन्मभूमि भारतमाता ही मानो आराध्य देवी बन जाय। तब तक के लिए हमारे मस्तिष्क से व्यर्थ के देवी-देवताओं के हट जाने में कुछ भी हानि नहीं है। अपना सारा ध्यान इसी एक ईश्वर पर लगाओ, हमारा देश ही हमारा जाग्रत देवता है। सर्वत्र उसके हाथ हैं, सर्वत्र उसके पैर हैं और सर्वत्र उसके कान हैं। समझ लो कि दूसरे देवी-देवता सो रहे हैं। जिन व्यर्थ के देवी-देवताओं को हम देख नहीं पाते, उनके पीछे तो हम बेकार दौड़ें और जिस विराट् देवता को हम अपने चारों ओर देख रहे हैं, उसकी पूजा ही न करें? जब हम इस प्रत्यक्ष देवता की पूजा कर लेंगे, तभी हम दूसरे देव-देवियों की पूजा करने योग्य होंगे, अन्यथा नहीं। आघ मील चलने की हमें शक्ति ही नहीं और हम हनुमान जी की तरह एक ही छलाँग में समुद्र पार करने की इच्छा करें, ऐसा नहीं हो सकता। जिसे देखो वही योगी बनने की धुन में है, जिसे देखो वही समाधि

संगाने या रहा है! ऐसा नहीं होने का। दिन भर तो दुनिया के सैकड़ों प्रपञ्चों में खिप्त रहोगे कर्मकांड में व्यस्त रहोगे और शाम को जाँच मूँहकर, माक दबाकर साँस चढ़ाओ-उतारोके। क्या योग की सिद्धि और समाधि को इतना सहज समझ रखा है कि श्रुति लोग तुम्हारे चीन बार माक फड़फड़ाने और साँस चढ़ाने से हवा में मिरुकर तुम्हारे पेट में घुस चार्ये? क्या इसे तुमने कोई हूँसी मजाक मान लिया है? ये सब विचार बाह्यगत हैं। जिसे ग्रहण करने या अपनान की आवश्यकता है, वह है अित्तशुद्धि। और उसकी प्राप्ति कैसे होती है? इसका उत्तर यह है कि सबसे पहले उस विषय की पूजा करो जिसे तुम अपने चारों ओर देख रहे हो—'उसकी पूजा करो। 'बधिप' ही इस संस्कृत शब्द का ठीक समानार्थक है, अंग्रेजी के किसी अन्य शब्द से काम नहीं चलेगा। ये मनुष्य और पशु, जिन्हें हम खास-खास और आये-पीछे देख रहे हैं ये ही हमारे ईश्वर हैं। इनमें सबसे पहले पूज्य हैं हमारे अपने देवबासी! परस्पर ईर्ष्या-द्वेष करने और झगड़ने के बजाय हमें उनकी पूजा करनी चाहिए। यह अत्यन्त मयाबह कर्म है, अित्तके सिद्ध हुए कसेस श्रेय रहे हैं। फिर भी हमारी बाँसे नहीं बुझती।

अस्तु यह विषय इतना विस्तृत है कि मेरी समझ में ही नहीं आता कि मैं कहाँ पर अपना बक्तव्य समाप्त करूँ। इसलिये मजास में मैं किस प्रकार काम करना चाहता हूँ इस विषय में सबसे मैं अपना मत व्यक्त कर व्याप्तमान समाप्त करता हूँ। सबसे पहले हमें अपनी जाति की आध्यात्मिक और मौकिक शिक्षा का धार ग्रहण करना होगा। क्या तुम इस बात की सार्थकता को समझ रहे हो? तुम्हें इस विषय पर सोचना विचारना होगा इस पर तर्क बितर्क और आपस में परामर्श करना होना विमान स्नाना होना और अन्त में उसे कार्य रूप में परिणत करना होगा। जब तक तुम यह काम पूरा नहीं करते हो तब तक तुम्हारी जाति का उद्धार होना असम्भव है। जो शिक्षा तुम अभी पा रहे हो, उसमें कुछ अच्छा अंग भी है और बुराईयाँ बहुत हैं। इसलिये ये बुराईयाँ उसके भले अंग को बचा देती हैं। सबसे पहली बात तो यह है कि यह शिक्षा मनुष्य बनानेवासी नहीं कही जा सकती। यह शिक्षा केवल तथा सम्पूर्णतः निपचारमक है। निपेचारमक शिक्षा या निपेच की बुनियाद पर आधारित शिक्षा मनुष्य में भी अयानक है। कामल मति यारुद्र पाठशाळा में मर्ती होना है और सबसे पहली बात जो उसे सिखायी जाती है, वह यह कि तुम्हारा बाप भूर्त्त है। दूसरी बात जो वह सीपता है वह यह है कि

१ अब माँ तर्षभूतेषु भूनात्पानं वृतात्पयम् ।

अहंविहायमानाम्यां मीम्यानिग्रह अस्तया ॥ श्रीमद्भागवत १।२९।२७॥

तुम्हारा दादा पागल है। तीसरी बात है कि तुम्हारे जितने शिक्षक और आचार्य हैं, वे पाखंडी हैं। और चौथी बात है कि तुम्हारे जितने पवित्र धर्म ग्रन्थ हैं, उनमें झूठी और कपोलकल्पित बातें भरी हुई हैं। इस प्रकार की निपेघात्मक बातें सीखते सीखते जब बालक सोलह वर्ष की अवस्था को पहुँचता है, तब वह निपेघो की खान चन जाता है—उसमें न जान रहती है और न रीढ़। अतः इसका जैसा परिणाम होना चाहिए था, वैसा ही हुआ है। पिछले पचास वर्षों से दी जानेवाली इस शिक्षा ने तीनों प्रान्तों में एक भी स्वतंत्र विचारो का मनुष्य पैदा नहीं किया, और जो स्वतंत्र विचार के लोग हैं, उन्हें यहाँ शिक्षा नहीं पायी है, विदेशों में पायी है, अथवा अपने भ्रममूलक कुसंस्कारों का निवारण करने के लिए पुनः अपने पुराने शिक्षालयों में जाकर अध्ययन किया है। शिक्षा का मतलब यह नहीं है कि तुम्हारे दिमाग में ऐसी बहुत सी बातें इस तरह ठूस दी जायँ कि अन्तर्द्वन्द्व होने लगे और तुम्हारा दिमाग उन्हें जीवन भर पचा न सके। जिस शिक्षा से हम अपना जीवन निर्माण कर सकें, मनुष्य बन सकें, चरित्र गठन कर सकें और विचारों का सामंजस्य कर सकें, वही वास्तव में शिक्षा कहलाने योग्य है। यदि तुम पाँच ही भावों को पचा कर तदनुसार जीवन और चरित्र गठित कर सके हो, तो तुम्हारी शिक्षा उस आदमी की अपेक्षा बहुत अधिक है, जिसने एक पूरे पुस्तकालय को कठस्थ कर रखा है। कहा भी है—  
**यथा खरश्चन्दनभारवाही भारस्य वेत्ता न तु चन्दनस्य।** अर्थात्—‘वह गधा, जिसके ऊपर चन्दन की लकड़ियों का बोझ लाद दिया गया हो, बोझ की ही बात जान सकता है, चन्दन के मूल्य को वह नहीं समझ सकता।’ यदि बहुत तरह की खबरों का सचय करना ही शिक्षा है, तब तो ये पुस्तकालय ससार में सर्वश्रेष्ठ मुनि और विश्वकोश ही ऋषि हैं। इसलिए हमारा आदर्श यह होना चाहिए कि अपने देश की समग्र आध्यात्मिक और लौकिक शिक्षा के प्रचार का भार अपने हाथों में ले लें और जहाँ तक सम्भव हो, राष्ट्रीय रीति से राष्ट्रीय सिद्धान्तों के आधार पर शिक्षा का विस्तार करें। हाँ, यह ठीक है कि यह एक बहुत बड़ी योजना है। मैं नहीं कह सकता कि यह कभी भी कार्य रूप में परिणत होगी या नहीं, पर इसका विचार छोड़कर हमें यह काम फौरन शुरू कर देना चाहिए। लेकिन कैसे? किस तरह से काम में हाथ लगाया जाय? उदाहरण के लिए मद्रास का ही काम लें। सबसे पहले हमें एक मन्दिर की आवश्यकता है, क्योंकि सभी कार्यों में प्रथम स्थान हिन्दू लोग धर्म को ही देते हैं। तुम कहोगे कि ऐसा होने से हिन्दुओं के विभिन्न मतावलम्बियों में परस्पर झगड़े होने लगेंगे। पर मैं तुमको किसी मत विशेष के अनुसार वह मन्दिर बनाने को नहीं कहता। वह इन साम्प्रदायिक भेद भावों के परे होगा। उसका एकमात्र प्रतीक होगा ॐ, जो कि हमारे किसी भी धर्म सम्प्रदाय के





अपने आप पर विश्वास रखो। यह विश्वास रखो कि प्रत्येक की आत्मा में अनन्त शक्ति विद्यमान है। तभी तुम सारे भारतवर्ष को पुनरुज्जीवित कर सकोगे। फिर तो हम दुनिया के सभी देशों में खुले आम जायेंगे और आगामी दस वर्षों में हमारे भाव उन सब विभिन्न शक्तियों के एक अशस्वरूप हो जायेंगे, जिनके द्वारा ससार का प्रत्येक राष्ट्र सगठित हो रहा है। हमें भारत में बसनेवाली और भारत के बाहर बसनेवाली सभी जातियों के अन्दर प्रवेश करना होगा। इसके लिए हमें कर्म करना होगा। और इस काम के लिए मुझे युवक चाहिए। वेदों में कहा है, 'युवक, बलशाली, स्वस्थ, तीव्र मेधावाले और उत्साहयुक्त मनुष्य ही ईश्वर के पास पहुँच सकते हैं।' तुम्हारे भविष्य को निश्चित करने का यही समय है। इसीलिए मैं कहता हूँ कि अभी इस भरी जवानी में, इस नये जोश के जमाने में ही काम करो, जीर्ण शीर्ण हो जाने पर काम नहीं होगा। काम करो, क्योंकि काम करने का यही समय है। सबसे अधिक ताजे, बिना स्पर्श किये हुए और बिना सूँघे फूल ही भगवान् के चरणों पर चढ़ाये जाते हैं और वे उसे ही ग्रहण करते हैं। अपने पैरों आप खड़े हो जाओ, देर न करो, क्योंकि जीवन क्षणस्थायी है। वकील बनने की अभिलाषा आदि से कहीं अधिक महत्वपूर्ण कार्य करने हैं। तथा इससे भी ऊँची अभिलाषा रखो और अपनी जाति, देश, राष्ट्र और समग्र मानव समाज के कल्याण के लिए आत्मोत्सर्ग करना सीखो। इस जीवन में क्या है? तुम हिन्दू हो और इसलिए तुम्हारा यह सहज विश्वास है कि तुम अनन्त काल तक रहनेवाले हो। कभी कभी मेरे पास नास्तिकता के विषय पर वार्तालाप करने के लिए कुछ युवक आया करते हैं। पर मेरा विश्वास है कि कोई हिन्दू नास्तिक नहीं हो सकता। सम्भव है कि किसीने पाश्चात्य ग्रन्थ पढ़े हो और अपने को भौतिकवादी समझने लग गया हो। पर ऐसा केवल कुछ समय के लिए होता है। यह बात तुम्हारे खून के भीतर नहीं है। जो बात तुम्हारी रंग रंग में रमी हुई है, उसे तुम निकाल नहीं सकते और न उसकी जगह और किसी धारणा पर तुम्हारा विश्वास ही हो सकता है। इसीलिए वैसी चेष्टा करना व्यर्थ होगा। मैंने भी बाल्यावस्था में ऐसी चेष्टा की थी, पर वैसा नहीं हो सकता। जीवन की अवधि अल्प है, पर आत्मा अमर और अनन्त है, और मृत्यु अनिवार्य है। इसलिए आओ, हम अपने आगे एक महान् आदर्श खड़ा करें और उसके लिए अपना जीवन उत्सर्ग कर दें। यही हमारा निश्चय हो और वे भगवान्, जो हमारे शास्त्रों के अनुसार साधुओं के परित्राण के लिए ससार में बार बार आविर्भूत होते हैं, वे ही महान् कृष्ण हमको आशीर्वाद दें एवं हमारे उद्देश्य की मिट्टि में सहायक हो।

## दान

जब स्वामी जी मद्रास में थे उस समय एक बार उनके सम्पादित्व में 'विप्रापुटी अधिदान समाजम्' नामक एक दार्शनिक संस्था का वार्षिक समारोह मनाया गया। उस अवसर पर उन्होंने एक संक्षिप्त भाषण दिया जिसमें उन्होंने उसी समारोह के एक पूर्व वक्ता महोदय के विचारों पर कुछ प्रकाश डाला। इन वक्ता महोदय ने कहा था कि यह अनुचित है कि अन्य सब जातियों की अपेक्षा केवल ब्राह्मण को ही विशेष दान दिया जाता है। इसी प्रसंग में स्वामी जी ने कहा कि इस बात के दो पहलू हैं—एक अच्छा दूसरा बुरा। यदि हम ध्यानपूर्वक देखें तो प्रतीत होता कि राष्ट्र की समस्त शिक्षा एवं सम्पत्ता अधिकतर ब्राह्मणों में ही पायी जाती है। साथ ही ब्राह्मण ही समाज के विचारशील तथा मननशील व्यक्ति रहे हैं। यदि बोझी ढेर के सिद्ध मान लें कि तुम उनके वे साधन छीन लो जिनके सहारे वे चिन्तन मनन करते हैं तो परिणाम यह होगा कि सारे राष्ट्र को मरका मरेगा। इसके बाद स्वामी जी ने यह बतलाया कि यदि हम भारत के दान की सीमा की जो बिना विचार अबका मेवमात्र के होती है तुम्हारा दूसरे राष्ट्रों की उस सीमा से करें जिसका एक प्रकार से कानूनी रूप होता है, तो हमें यह प्रतीत होगा कि हमारे यहाँ एक मिलमंगा भी बस उतने से उत्पन्न हो जाता है जो उसे सुरक्षित रखा जाय और उतने में ही यह अपनी सब की बिनागी बसर करता है। परन्तु इसके विपरीत पारश्चात्य देशों में पहली बात तो यह है कि कानून मिलमंगों की सेवाभ्रम में जाने के लिए बाध्य करता है। परन्तु मनुष्य मोजन की अपेक्षा स्वतन्त्रता अधिक पसन्द करता है, इसलिए वह सेवाभ्रम में न जाकर समाज का दुश्मन बान बन जाता है। और फिर इसी कारण होने इस बात की बकरत पड़ती है कि हम बबालुत पुकिस जेज तथा अन्य सामनो का निर्माण कर। यह निश्चित है कि समाज के दरौर में जब तक 'सम्पत्ता' नामक बीमारी बनी रहेगी तब तक उसके साथ साथ गटीबी रहेगी और इसीलिए इटीबों की सहायता देने की आवश्यकता भी रहेगी। यही कारण है कि भारत बासियों की बिना मेवमात्र की दान सीमा और पारश्चात्य देशों की बिनेदमूसक दान सीमा में उतको बुतना पड़ेगा। भारतीय दान सीमा में बहाँ तक संन्यासियों की बात है उतका तो यह हाल है कि मके ही उभमे से कोई सच्चे संन्यासी न हों परन्तु फिर भी उन्हें मिषाष्टन करने के लिए अपने सास्त्रों के कम से कम कुछ अंशों को

आपका कार्य बड़ा। अनेक राज्यों के भिन्न भिन्न शहरों से आपके पास निमंत्रण पर निमंत्रण आते रहे और उन्हें भी आपको स्वीकार करना पड़ता था, कितने ही प्रकार की शकाओं का समाधान करना होता था, प्रश्नों का उत्तर देना पड़ता था, लोगों की अनेक समस्याओं को हल करना पड़ता था और हम जानते हैं कि यह सारा कार्य आपने बड़े उत्साह एवं योग्यता तथा सन्चाई के साथ किया। इस सबका फल भी चिरस्थायी ही निकला। आपकी शिक्षाओं का अमरीकी राष्ट्रमंडल के अनेक प्रबुद्ध क्षेत्रों पर बड़ा गहरा असर पड़ा और उसीके कारण उन लोगों में अनेक दिशाओं में विचार विनिमय, मनन तथा अन्वेषण का भी बीजारोपण हुआ। अनेक लोगों की हिन्दू धर्म के प्रति जो प्राचीन गलत धारणाएँ थी, वे भी बदल गयीं और हिन्दू धर्म के प्रति उनकी श्रद्धा एवं भक्ति बढ गयी। उसके बाद शीघ्र ही धर्म सम्बन्धी तुलनात्मक अध्ययन तथा आध्यात्मिक तत्त्वों के अन्वेषण के लिए जो अनेक नये नये क्लब तथा समितियाँ स्थापित हुईं, वे इस बात की स्पष्ट द्योतक हैं कि दूर पाश्चात्य देशों में आपके प्रयत्नों का फल क्या हुआ तथा कैसा हुआ। आप तो लन्दन में वेदान्त-दर्शन की शिक्षा प्रदान करनेवाले विद्यालय के संस्थापक कहे जा सकते हैं। आपके नियमित रूप से व्याख्यान होते रहे, जनता भी उन्हें ठीक समय पर सुनने आयी तथा उनकी व्यापक रूप से प्रशंसा हुई। निश्चय ही उनका प्रभाव व्याख्यान-भवन तक ही सीमित नहीं रहा, वरन् उसके बाहर भी हुआ। आपकी शिक्षाओं द्वारा जनता में जिस प्रीति तथा श्रद्धा का उद्रेक हुआ, उसका द्योतक वह भावनापूर्ण मान-पत्र है, जो आपको लन्दन छोड़ते समय वहाँ के वेदान्त-दर्शन के विद्यार्थियों ने दिया था।

वेदान्ताचार्य के नाते आपको जो सफलता प्राप्त हुई, उसका कारण केवल यही नहीं रहा है कि आप आर्य धर्म के सत्य सिद्धान्तों से गहन रूप से परिचित हैं, और न यही कि आपके भाषण तथा लेख इतने सुन्दर तथा जोशीले होते हैं, वरन् इसका कारण मुख्यतः स्वयं आपका व्यक्तित्व ही रहा है। आपके भाषण, निबन्ध तथा पुस्तकों में आध्यात्मिकता तथा साहित्यिक दोनों प्रकार की विशेषताएँ हैं और इसलिए अपना पूरा असर किये बिना वे कभी रह ही नहीं सकते। यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि इनका प्रभाव यदि और भी अधिक पड़ा है तो उसका कारण है, आपका सादा, परोपकारी तथा निस्वार्थ जीवन, आपकी नम्रता, आपकी भक्ति तथा आपकी लगन।

यहाँ पर जब हम आपकी उन सेवाओं का उल्लेख कर रहे हैं जो आपने हिन्दू धर्म के उदात्त सत्य सिद्धान्तों के आचार्य होने के नाते की हैं, तो हम अपना यह परम कर्तव्य समझते हैं कि हम आपके पूज्य गुरुदेव तथा पयप्रदर्शक श्री रामकृष्ण परमहंस

## कलकत्ता-श्रमिनन्दन का उत्तर

स्वामी जी जब कलकत्ता पहुँचे तो लीपों ने उनका स्वागत बड़े जोर से रोग के साथ किया। बाहर के अनेक सत्रे सत्रायें रास्तों से उनका बड़ा भारी जुमूम निकला और रास्ते के चारों ओर जनता की जबरदस्त भीड़ ली जा उनका दर्शन पाने के लिए उत्सुक ली। उनका मौर्यचारिक स्वागत एक सप्ताह बाद सोमा बाजार के स्व राजा रामकान्तदेव बहादुर के निवासस्थान पर हुआ जिसका समापतिरव राजा विनयकृष्ण देव बहादुर ने किया। समापति द्वारा कुछ संक्षिप्त परिचय के साथ स्वामी जी की सेवा में निम्नलिखित मान-मान एक सुन्दर काँची की मंजूपा में रखकर भेंट किया गया—

सेवा में

श्रीमत् स्वामी विवेकानन्द जी

प्रिय बन्धु,

हम कलकत्ता तथा बंगाल के अल्प स्वामी के हिन्दू निवासी आज आपके अपनी पश्चिमभूमि में आपसे जाने के अवसर पर आपका हृदय से स्वागत करते हैं। महाराज आपका स्वागत करते समय हम अत्यन्त गर्व तथा हृत्प्रसन्नता का अनुभव करते हैं क्योंकि आपने महान् कर्म तथा आदर्श द्वारा संसार के मित्र विना भागों में केवल हमारे बर्म की ही नीरवान्धित नहीं किया है, परन्तु हमारे बेस और विशेषतः हमारे बंगाल प्रान्त का सिर ऊँचा किया है।

एवम् १८९३ ई में सिकामो सहर में जो विषय-मेला हुआ था उसकी संभवतः बर्म-महासभा के अवसर पर आपने आर्य बर्म के उत्तमों का विशेष रूप से वर्णन किया। आपके मापक का धार अधिकतर भोलाओं के लिए बड़ा शिक्षाप्रद तथा रहस्योद्घाटन करनेवाला था और जोर तथा माधुर्य के कारण वह उसी प्रकार हृदयप्रसन्नी भी था। सम्भव है कि आपके उस मापक को कुछ लोगों ने अन्धेह की दृष्टि से सुना हो तथा कुछ ने उस पर तर्क वितर्क भी किया हो परन्तु इसका सामान्य प्रभाव तो बड़ी हुआ कि उसके द्वारा अधिकांश धिभित समीचीन अज्ञान के धार्मिक विचारों में अग्रित हो गयी। उनके मन में जो एक नया प्रकाश पड़ा उसका उन्होंने अपनी स्वाभाविक निष्कण्टकता तथा सत्य के प्रति अनुपमा के बल हो अधिक से अधिक काम उठाने का निश्चय किया। फलतः आपको विस्तृत सुयोग प्राप्त हुआ और

स्वामी जी ने इसका निम्नलिखित उत्तर दिया

### स्वामी जी का भाषण

मनुष्य अपनी व्यक्ति-चेतना को सार्वभौम चेतना में लीन कर देना चाहता है, वह जगत् प्रपञ्च का कुल सम्बन्ध छोड़ देना चाहता है, वह अपने समस्त सम्बन्धों की माया काटकर ससार से दूर भाग जाना चाहता है। वह सम्पूर्ण दैहिक पुराने सस्कारों को छोड़ने की चेष्टा करता है। यहाँ तक कि वह एक देहधारी मनुष्य है, इसे भी भूलने का भरसक प्रयत्न करता है। परन्तु अपने अन्तर के अन्तर में सदा ही एक मृदु अस्फुट ध्वनि उसे सुनायी पड़ती है, उसके कानों में सदा ही एक स्वर वज्रता रहता है, न जाने कौन दिन रात उसके कानों में मधुर स्वर से कहता रहता है, पूर्व में हो या पश्चिम में, **जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।** भारत साम्राज्य की राजधानी के अधिवासियों, तुम्हारे पास मैं सन्यासी के रूप में नहीं, धर्मप्रचारक की हैसियत से भी नहीं, बल्कि पहले की तरह कलकत्ते के उसी बालक के रूप में बातचीत करने के लिए आया हुआ हूँ। हाँ, मेरी इच्छा होती है कि आज इस नगर के रास्ते की धूल पर बैठकर बालक की तरह सरल अन्तःकरण से तुमसे अपने मन की सब बातें खोल कर कहूँ। तुम लोगों ने मुझे अनुपम शब्द 'भाई' सम्बोधित किया है, इसके लिए तुम्हें हृदय से धन्यवाद देता हूँ। हाँ, मैं तुम्हारा भाई हूँ, तुम भी मेरे भाई हो। पश्चिमी देशों से लौटने के कुछ ही समय पहले एक अग्रज मित्र ने मुझसे पूछा था, 'स्वामी जी, चार वर्षों तक विलास की लीलाभूमि गौरवशाली महाशक्तिमान् पश्चिमी भूमि पर भ्रमण कर चुकने पर आपकी मातृभूमि अब आपको कैसी लगेगी? मैं बस यही कह सका, 'पश्चिम में आने से पहले भारत को मैं प्यार ही करता था, अब तो भारत की धूल ही मेरे लिए पवित्र है, भारत की हवा अब मेरे लिए पावन है, भारत अब मेरे लिए तीर्थ है।'

कलकत्तावासियों, मेरे भाइयों, तुम लोगों ने मेरे प्रति जो अनुग्रह दिखाया है, उसके लिए तुम्हारे प्रति कृतज्ञता प्रकट करने में मैं असमर्थ हूँ। अथवा तुम्हें धन्यवाद ही क्या दूँ, क्योंकि तुम मेरे भाई हो—तुमने भाई का, एक हिन्दू भाई का ही कर्तव्य निभाया है, क्योंकि ऐसा पारिवारिक बन्धन, ऐसा सम्बन्ध, ऐसा प्रेम हमारी मातृभूमि की सीमा के बाहर और कहीं नहीं है।

शिकागो की धर्म-महासभा निस्सन्देह एक विराट् समारोह थी। भारत के कितने ही नगरों से हम लोगों ने इस सभा के आयोजक महानुभावों को धन्यवाद दिया है। हम लोगों के प्रति उन्होंने जैसी अनुकम्पा प्रदर्शित की है, उसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं, परन्तु इस धर्म-महासभा का यथार्थ इतिहास मैं तुम्हें सुना

को भी अपनी शब्दावलि अर्पित करें। मुख्यतः उन्हींके कारण हमें आपकी प्राप्ति हुई है। अपनी अद्वितीय रहस्यमयी अन्तर्दृष्टि द्वारा उन्होंने आपमें उस ही प्रकृति का अंश ही पहचान लिया था और आपके लिए उस उच्च जीवन की मन्त्रिणी बानी कर दी थी जिसे आज हम हर्यपूर्वक सञ्चल होते देख रहे हैं। यह वे ही थे जिन्होंने आपकी जिन्दी हुई ही प्रकृति तथा दिव्य दृष्टि को आपके लिए लोक विद्या आपके विचारों एवं जीवन के उद्देश्यों को ही मुकाब दे दिया तथा उस अदुस्य राज्य के उल्लो के अन्वेषण में आपको सहायता प्रदान की। भावी पीढ़ियों के लिए उनकी अमूर्त्य विरासत आप ही हैं।

हे महात्मन् बुद्धा और बहादुरी के साथ उसी मार्ग पर बढ़े बलिय, वा आपने अपने कार्य के लिए चुना है। आपके सम्मूल सारा संसार जीतने को है। आपको हिन्दू धर्म की व्याख्या करनी है और उसका सर्वेस अन्तर्निष्ठ से लेकर नास्तिक तथा आनन्दकर बने अंश तक पहुँचाना है। जिस उत्साह से आपने कार्य आरम्भ किया उससे हम मुग्ध हो गये हैं और आपने जो सञ्चलता प्राप्त कर ली है, वह कितने ही देशों को बाध है। परन्तु अभी भी कार्य का काफी अंश शेष है और उसके लिए हमारा श्रेष्ठ बलिक हम कह सकते हैं आपका ही श्रेष्ठ आपकी और निहार रहा है। हिन्दू धर्म के सिद्धान्तों का प्रतिपादन तथा प्रचार अभी कितने ही हिन्दुओं के लिए आपको करना है। अतएव आप इस महान् कार्य में संलग्न हों। हमें आपमें तथा अपने इस सत्कार्य के अर्थ में पूर्ण विश्वास है। हमारा राष्ट्रीय धर्म इस बात का इच्छुक नहीं है कि उसे कोई मौखिक विजय प्राप्त हो। इसका अर्थ्य सर्वत्र आस्था लिखता रहा है, और इसका साधन सर्वत्र सत्त्व रहा है, जो इन धर्मचक्रुओं से परे है तथा जो केवल ज्ञान-दृष्टि से ही देखा जा सकता है। आप समग्र संसार को और जहाँ आवश्यक हो हिन्दुओं को भी जगा दीजिए, ताकि वे अपने ज्ञान वस्तुओं के अन्वेषण से परे ही आत्मिक अन्वेषण का उचित रूप से अध्ययन करें, परम सत्त्व का साक्षात्कार करें और मनुष्य होने के नाते अपने कर्तव्य तथा स्वान का अनुभव करें। इस प्रकार की आप्रति कराने या उद्बोधन के लिए आपसे बढ़कर अधिक योग्य कोई नहीं है। अपनी ओर से हम आपको यह सर्वत्र ही पूर्ण विश्वास दिलाते हैं कि आपके इस सत्कार्य में जिसका भीका आपने स्पष्टतः ही प्रेरणा से उठाया है हमारा सर्वत्र ही हार्दिक भक्तिपूर्ण तथा सेवात्म्य में बिनम्र सहयोग रहेगा।

परम प्रिय वन्दु

हम हैं,

आपके प्रिय मित्र तथा मन्तव्य

स्वामी जी ने इसका निम्नलिखित उत्तर दिया .

### स्वामी जी का भाषण

मनुष्य अपनी व्यक्ति-चेतना को सार्वभौम चेतना में लीन कर देना चाहता है, वह जगत् प्रपञ्च का कुल सम्बन्ध छोड़ देना चाहता है, वह अपने समस्त सम्बन्धों की माया काटकर ससार से दूर भाग जाना चाहता है। वह सम्पूर्ण दैहिक पुराने सस्कारों को छोड़ने की चेष्टा करता है। यहाँ तक कि वह एक देहवारी मनुष्य है, इसे भी भूलने का भरसक प्रयत्न करता है। परन्तु अपने अन्तर के अन्तर में सदा ही एक मृदु अस्फुट ध्वनि उसे सुनायी पड़ती है, उसके कानों में सदा ही एक स्वर वज्रता रहता है, न जाने कौन दिन रात उसके कानों में मधुर स्वर से कहता रहता है, पूर्व में हो या पश्चिम में, जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी। भारत साम्राज्य की राजधानी के अधिवासियों, तुम्हारे पास मैं सन्यासी के रूप में नहीं, धर्मप्रचारक की हैसियत से भी नहीं, बल्कि पहले की तरह कलकत्ते के उसी बालक के रूप में बातचीत करने के लिए आया हुआ हूँ। हाँ, मेरी इच्छा होती है कि आज इस नगर के रास्ते की धूल पर बैठकर बालक की तरह सरल अन्तःकरण से तुमसे अपने मन की सब बातें खोल कर कहूँ। तुम लोगो ने मुझे अनुपम शब्द 'भाई' सम्बोधित किया है, इसके लिए तुम्हें हृदय से धन्यवाद देता हूँ। हाँ, मैं तुम्हारा भाई हूँ, तुम भी मेरे भाई हो। पश्चिमी देशों से लौटने के कुछ ही समय पहले एक अग्रज मित्र ने मुझसे पूछा था, 'स्वामी जी, चार वर्षों तक विलास की लीलाभूमि गौरवशाली महाशक्तिमान् पश्चिमी भूमि पर भ्रमण कर चुकने पर आपकी मातृभूमि अब आपको कैसी लगेगी ? मैं बस यही कह सका, 'पश्चिम में आने से पहले भारत को मैं प्यार ही करता था, अब तो भारत की धूल ही मेरे लिए पवित्र है, भारत की हवा अब मेरे लिए पावन है, भारत अब मेरे लिए तीर्थ है।'

कलकत्तावासियों, मेरे भाइयों, तुम लोगो ने मेरे प्रति जो अनुग्रह दिखाया है, उसके लिए तुम्हारे प्रति कृतज्ञता प्रकट करने में मैं असमर्थ हूँ। अथवा तुम्हें धन्यवाद ही क्या दूँ, क्योंकि तुम मेरे भाई हो—तुमने भाई का, एक हिन्दू भाई का ही कर्तव्य निभाया है, क्योंकि ऐसा पारिवारिक बन्धन, ऐसा सम्बन्ध, ऐसा प्रेम हमारी मातृभूमि की सीमा के बाहर और कहीं नहीं है।

शिकागो की धर्म-महासभा निस्सन्देह एक विराट् समारोह थी। भारत के कितने ही नगरों से हम लोगो ने इस सभा के आयोजक महानुभावों को धन्यवाद दिया है। हम लोगो के प्रति उन्होंने जैसी अनुकम्पा प्रदर्शित की है, उसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं, परन्तु इस धर्म-महासभा का यथार्थ इतिहास मैं तुम्हें सुना-



यना चाहता हूँ। उनकी इच्छा थी कि वे अपनी प्रभुता की प्रतिष्ठा करें। महामत्स्य क कुछ व्यक्तियों की इच्छा थी कि ईसाई धर्म की प्रतिष्ठा करें और दूसरे धर्मों को हास्यास्पद सिद्ध करें। परन्तु फल कुछ धीरे ही हुआ। विधाता के विधान में बैठा ही हाना था। मेरे प्रति अनेक लोगों ने सदैव व्यवहार किया था। उन्हें सपष्ट सम्बोधन दिया जा चुका है।

एक ही बात यह है कि मैं धर्म-महामत्स्य का उद्देश्य लेकर अमरिका नहीं गया। बल्कि मैं तो मेरे लिए एक गौतम बन्धु की उमने हमारा रास्ता बहुत कुछ साफ हो गया और मार्ग चरन की बहुत कुछ सुविधा हो गयी इसमें सन्देह नहीं। इसके लिए हम महामत्स्य क मत्स्यी क विषय रूप से कुतूहल हैं। परन्तु वास्तव में हमारा सम्बन्ध सपुत्र राज्य अमरिका के निवासी सहाय्य आतिथ्य महान् ब्रह्मीकी जाति को मिलना चाहिए, जिसमें दूसरी जातियों की अपेक्षा अनुमान का अधिक विधान हुआ है। रसगोड़ी पर पाँच मिनट फिनी अमेरिका के गाव बाउचीत करन में था मुम्बारा मिन हा जायया दूसरे ही सग मुम्ब जाने पर पर अतिथि के रूप में निमन्त्रित बनेगा और आज हृदय की मारी बात गाफर रम देगा। यही ब्रह्मीकी जाति का चरित्र है और हम इसे सूत्र पसर करते हैं। मेरे प्रति उन्होंने जो अनुग्रह दिया जाय उगका धर्मन नहीं हो मरगा। मेरे साथ उन्होंने कैना अगुई स्नेहपूर्वक व्यवहार किया उग प्रकट करते में मुझे कई कई सग जायये। इसी तरह अन्तर्निष्ठ मन्गापर के दूसरे पार रहने वाली अथवा जाति को भी हम सम्बोधन देना चाहिये। ब्रिटिश भूमि पर अथवा क प्रति मुम्बो अधिक गुणा का माव निरर बनी निर्माण वैन न रगा हागा हम मथ पर जो अर्थव्यवस्था है वै ही हम का गाव रहे। परन्तु विधान ही मैं उन लोगों के साथ रहने लगा विधान ही उनका न क विधान लगा विधान ही ब्रिटिश जाति के जीवन-साध की गति माव करने लगा— उग जाति का हृदय-साधन विम अगत हो रहा है मथ विधान ही गमाने लगा उनका ही उग प्यार करने लगा। अब मेरे भाइयो यहाँ लेगा कोई न हाता या गुणा उग अथवा का प्यार करना हो। उरक मन्वस म बचारी जाति जाति चरन के लिए यह जाति आरम्भ है कि कर्न कन कन ही रगा है और माव ही उग उरक मन्व रगा भी रगा। हमारे जातीय धर्मनान्त के— १ में विम मन्व मन्वुई गुण का अर्थव्यवस्था बचारी विधान विधान विधान है यही उरक अर्थव्यवस्था और उरक माव का विम मन्व की मन्व अर्थव्यवस्था है—यही उरक मन्व मन्वुई गुण का अर्थव्यवस्था बचारी विधान विधान विधान है।

दुर्भाग्यवश मैंने उरक मन्वुई गुण का अर्थव्यवस्था बचारी विधान विधान विधान है। यही उरक मन्व मन्वुई गुण का अर्थव्यवस्था बचारी विधान विधान विधान है।

अंग्रेज या कोई दूसरे पश्चिमी महाशय भारत आते हैं और यहाँ दुःख और दारिद्र्य का अबाध राज्य देखते हैं तो वे तुरन्त इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इस देश में धर्म नहीं टिक सकता, नैतिकता नहीं टिक सकती। उनका अपना अनुभव निस्सन्देह सत्य है। यूरोप की निष्ठुर जलवायु और दूसरे अनेक कारणों से वहाँ दारिद्र्य और पाप एक जगह रहते देखे जाते हैं, परन्तु भारत में ऐसा नहीं है। मेरा अनुभव है कि भारत में जो जितना दरिद्र है वह उतना ही अधिक साधु है। परन्तु इसको जानने के लिए समय की जरूरत है। भारत के राष्ट्रीय जीवन का यह रहस्य समझने के लिए कितने विदेशी दीर्घ काल तक भारत में रहकर प्रतीक्षा करने के लिए तैयार हैं? इस राष्ट्र के चरित्र का धर्म के साथ अध्ययन करें और समझें ऐसे मनुष्य थोड़े ही हैं। यही, केवल यही ऐसी जाति का वास है, जिसके निकट गरीबी का मतलब अपराध और पाप नहीं है। यही एक ऐसी जाति है, जहाँ न केवल गरीबी का मतलब अपराध नहीं लगाया जाता, बल्कि उसे यहाँ बड़ा ऊँचा आसन दिया जाता है। यहाँ दरिद्र सन्यासी के वेश को ही सबसे ऊँचा स्थान मिलता है। इसी तरह हमें भी पश्चिमी सामाजिक रीति रिवाजों का अध्ययन बड़े धैर्य के साथ करना होगा। उनके सम्बन्ध में एकाएक कोई उन्मत्त धारणा बना लेना ठीक न होगा। उनके स्त्री-पुरुषों का आपस में हेलमेल और उनके आचार व्यवहार सब एक खास अर्थ रखते हैं, सबमें एक पहलू अच्छा भी होता है। तुम्हें केवल यत्नपूर्वक धैर्य के साथ उसका अध्ययन करना होगा। मेरे इस कथन का यह अर्थ नहीं कि हमें उनके आचार व्यवहारों का अनुकरण करना है, अथवा वे हमारे आचारों का अनुकरण करेंगे। सभी जातियों के आचार व्यवहार शताब्दियों के मन्द गति से होनेवाले क्रमविकास के फलस्वरूप हैं, और सभी में एक गम्भीर अर्थ रहता है। इसलिए न हमें उनके आचार व्यवहारों का उपहास करना चाहिए और न उन्हें हमारे आचार व्यवहारों का।

मैं इस सभा के समक्ष एक और बात कहना चाहता हूँ। अमेरिका की अपेक्षा इंग्लैंड में मेरा काम अधिक सतोषजनक हुआ है। निर्भीक, साहसी एवं अध्यवसायी अंग्रेज जाति के मस्तिष्क में यदि किसी तरह एक बार कोई भाव संचारित किया जा सके—यद्यपि उसकी खोपड़ी दूसरी जातियों की अपेक्षा स्थूल है, उसमें कोई भाव सहज ही नहीं समाता—नो फिर वह वही दृढ़ हो जाता है, कभी बाहर नहीं होता। उस जाति की असीम व्यावहारिकता और शक्ति के कारण वीजरूप से समायें हुए उस भाव से अकुर का उद्गम होता है और बहुत शीघ्र फल देता है। ऐसा किसी दूसरे देश में नहीं है। इस जाति की जैसी असीम व्यावहारिकता और जीवनी शक्ति है, वैसी तुम अन्य किसी जाति में न देखोगे। इस जाति में कल्पना

कम है और कर्मभ्रष्टा अधिक। और कौन जान सकता है कि इस अशुभ भाति के भावों का मूल स्रोत कहाँ है! उसके हृदय के गहन प्रवेष्ट में कौन समझ सकता है किशोरी कल्पनाएँ और भावोच्छ्वास छिपे हुए हैं! वह बोरो की भाति है वे मयार्थ क्षणिक है भाव छिपाना—उन्हें कभी प्रकट न करना उनको सिखा है, बचपन से उन्हें यही शिक्षा मिली है। बहुत कम अशुभ देखने को मिलेंगे जिन्होंने कभी अपने हृदय का भाव प्रकट किया होगा। पुरुषों की तो बात ही क्या अशुभ स्त्रियों भी कभी हृदय के उच्छ्वास को बाहिर नहीं जाने देती। मैंने अशुभ महिलाओं को ऐसे भी कार्य करते हुए देखा है जिन्हें करने में अत्यन्त साहसी बहादुरी भी लड़कड़ा जायेगी। किन्तु बहादुरी के इस टाटबाज के साथ ही इस क्षणिकोचित कबच के भीतर अशुभ हृदय की भावनाओं का सम्पूर्ण प्रकलन छिपा हुआ है। यदि एक बार भी अशुभों के साथ तुम्हारी बसिष्ठता हो जाय यदि उनके साथ तुम कुछ मिल गये यदि उनसे एक बार भी अपने सम्मुख उनके हृदय की बात स्पष्ट करवा सके तो वे तुम्हारे परम मित्र हो जायेंगे सब के लिए तुम्हारे बाध हो जायेंगे। इसलिये मेरी राय में दूसरे स्थानों की अपेक्षा इंग्लैंड में मेरा प्रचार-कार्य अधिक उत्तमफल हुआ है। मेरा दुःख निश्चाय है कि अगर कब मेरा शरीर छूट जाय तो मेरा प्रचार कार्य इन्हीं में सम्पूर्ण रहेगा और क्लमट विस्तृत होता जायगा।

माइमी तुम लोगों में मेरे हृदय के एक दूसरे तार—सबसे अधिक कोमल तार को स्पर्श किया है—वह है मेरे गुह्य मेरे आचार्य मेरे जीवनदर्श मेरे इष्ट मेरे प्राणों के बेबता को रामहृदय परमहंस का उल्लेख। यदि मनुष्य बाधा कर्मका मैंने कोई उत्कार्य किया हो यदि मेरे मुँह से कोई ऐसी बात निकली हो जिससे समाज के किसी भी मनुष्य का कुछ उपकार हुआ हो तो उसमें मेरा कुछ भी शील नहीं वह उनका है। परन्तु यदि मेरी जिज्ञा ने कभी अभिप्राय की वर्षा की हो यदि मुझसे कभी किसीके प्रति गुना का भाव निकला हो तो वे मेरे हैं, उनके नहीं। जो कुछ दुर्बल है, वह सब मेरा है पर जो कुछ भी जीवनप्रद है, बसप्रद है, पवित्र है वह सब जन्मीकी सक्ति का प्रेक्ष है, जन्मीकी बाणी है और वे स्वयं हैं। मित्रो यह भाव है कि समाज अभी तक उन महापुरुष से परिचित नहीं हुआ। हम लोग समाज के इतिहास में पाठ पाठ महापुरुषों की जीवनी पढ़ते हैं। इसमें उनके सिद्धों के सेवन एवं कार्य-संचालन का ह्रास रहा है। हजारों वर्ष तक समाज उन लोगों ने उन प्राचीन महापुरुषों के जीवन-चरितों को काट-छांटकर संभार है। परन्तु इनके पर भी जो जीवन मैंने अपनी आँखों से देखा है जिसकी छाया में मैं रह चुका हूँ जिनके चरनों में मैं बैठकर मैंने सब गीता है, उन भी रामहृदय परमहंस का जीवन ईशा अत्यन्त और परिमार्जन है, ईशा मेरे विचार में और किसी महापुरुष का नहीं।

भाइयो, तुम सभी गीता की वह प्रसिद्ध वाणी जानते हो —

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।  
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥  
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्टताम् ।  
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥

—‘जब जब धर्म की ग्लानि और अधर्म का अभ्युत्थान होता है, तब तब मैं शरीर धारण करता हूँ। साधुओं का परित्राण करने, असाधुओं का नाश करने और धर्म की स्थापना करने के लिए विभिन्न युगों में मैं आया करता हूँ।’

इसके साथ एक और बात तुम्हें समझनी होगी, वह यह कि आज ऐसी ही वस्तु हमारे सामने मौजूद है। इस तरह को एक आध्यात्मिकता की वाढ के प्रबल वेग से आने के पहले समाज में कुछ छोटी छोटी तरंगें उठती दीख पड़ती हैं। इन्हींमें से एक अज्ञात, अनजान, अकल्पित तरंग आती है, क्रमशः प्रबल होती जाती है, दूसरी छोटी छोटी तरंगों को मानो निगल कर वह अपने में मिला लेती है। और इस तरह अत्यन्त विपुलाकार और प्रबल होकर वह एक बहुत बड़ी वाढ के रूप में समाज पर वेग से गिरती है कि कोई उसकी गति को रोक नहीं सकता। इस समय भी वैसे ही हो रहा है। यदि तुम्हारे पास आँखें हैं तो तुम उसे अवश्य देखोगे। यदि तुम्हारा हृदय-द्वार खुला है तो तुम उसको अवश्य ग्रहण करोगे। यदि तुममें सत्यान्वेषण की प्रवृत्ति है तो तुम उसे अवश्य प्राप्त करोगे। अवा, विल्कुल अवा है वह, जो समय के चिह्न नहीं देख रहा है, नहीं समझ रहा है। क्या तुम नहीं देखते हो, वह दरिद्र ब्राह्मण बालक जो एक दूर गाँव में—जिसके बारे में तुममें से बहुत कम ही लोगों ने सुना होगा—जन्मा था, इस समय सम्पूर्ण ससार में पूजा जा रहा है, और उसे वे पूजते हैं, जो शताब्दियों से मूर्ति-पूजा के विरोध में आवाज उठाते आये हैं? यह किसकी शक्ति है? यह तुम्हारी शक्ति है या मेरी? नहीं, यह और किसीकी शक्ति नहीं। जो शक्ति यहाँ श्री रामकृष्ण परमहंस के रूप में आविर्भूत हुई थी, यह वही शक्ति है, और मैं, तुम, साधु, महापुरुष, यहाँ तक कि अवतार और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड भी उसी न्यूनाधिक रूप में पुजीभूत शक्ति की लीला मात्र हैं। इस समय हम लोग उस महाशक्ति की लीला का आरम्भ मात्र देख रहे हैं। वर्तमान युग का अन्त होने के पहले ही तुम लोग इसकी अधिकाधिक आश्चर्यमयी लीलाएँ देख पाओगे। भारत के पुनरुत्थान के लिए इस शक्ति का आविर्भाव ठीक ही समय पर हुआ है। क्योंकि जो मूल जीवनी शक्ति भारत को सदा स्फूर्ति प्रदान करेगी, उसकी बात कभी कभी हम लोग भूल जाते हैं।

प्रत्येक जाति के लिए उद्देश्य-साधन की अलग अलग कार्यप्रणालियाँ हैं। कोई राजनीति कोई समाज-सुधार और कोई किसी दूसरे विषय को अपना प्रबल आधार बनाकर कार्य करती है। हमारे लिए धर्म की पृष्ठभूमि लेकर कार्य करने के सिवा दूसरा उपाय नहीं है। अंग्रेज राजनीति के माध्यम से धर्म भी समझ सकते हैं। अमरीकी शायद समाज-सुधार के माध्यम से भी धर्म समझ सकते हैं। परन्तु हिन्दू राजनीति समाज-विज्ञान और दूसरा जो कुछ है सबको धर्म के माध्यम से ही समझ सकते हैं। भारतीय जीवन-संघीत का मानो यही प्रबल स्वर है, दूसरे तो उसीमें कुछ परिवर्तित किये हुए माना गीब स्वर है और उसी प्रबल स्वर के गूट होने की शंका हो रही थी। ऐसा समझा या मानो हम लोग अपने भारतीय जीवन के इस मूल भाव को हटाकर उसकी जगह एक दूसरा भाव स्थापित करने जा रहे थे हम लोग जिस मेरुस्थल के बल से खड़े हुए हैं, मानो उसकी जगह दूसरा कुछ स्थापित करने जा रहे थे अपने भारतीय जीवन के धर्मरूप मेरु-स्थल की जगह राजनीति का मेरुस्थल स्थापित करने जा रहे थे। यदि इसमें हमें सफलता मिलती तो इसका फल पूर्ण विनाश होता परन्तु ऐसा होनेवाला नहीं था। यही कारण है कि इस महाकथित का अविनाश हुआ। मुझे इस बात की चिन्ता नहीं है कि तुम इस महापुरुष को किस अर्थ में ग्रहण करते हो और उसके प्रति कितना आदर रखते हो किन्तु मैं तुम्हें यह चुनौती के रूप में अब सब बता देना चाहता हूँ कि अनेक अज्ञानियों से भारत में विद्यमान अव्युक्त शक्ति का यह प्रकट रूप है और एक हिन्दू के नाते तुम्हारा यह कर्तव्य है कि तुम इस शक्ति का अभ्ययन करो तथा भारत के कल्याण उसके पुनरुत्थान और समस्त मानव जाति के हित के लिए इस शक्ति के द्वारा क्या कार्य किये गये हैं इसका पता लगाओ। मैं तुमको विश्वास दिलाता हूँ कि संसार के किसी भी देश में सार्वभौम धर्म और विभिन्न सम्प्रदायों में आस्था के उत्पादित और पर्यालोचित होने के बहुत पहले ही इस तमर के पास एक ऐसे महापुरुष थे जिनका सम्पूर्ण जीवन एक आदर्श धर्म-महासभा का स्वल्प था।

हमारे धारणा में सबसे बड़ा आदर्श निर्बुज ब्रह्म है, और ईश्वर की इच्छा से यदि सभी निर्बुज ब्रह्म को प्राप्त कर सकते थे तो बात ही कुछ और भी परन्तु चूँकि ऐसा नहीं हो सकता इसलिए संयुज आदर्श का रहना मनुष्य जाति के बहु संभवक वर्ग के लिए बहुत आवश्यक है। इस तरह के किसी महान् आदर्श दुष्प-पर हार्थिक अनुपलब्ध रहते हुए उनकी पताका के नीचे आश्रय किये बिना न कोई जाति उठ सकती है न बढ़ सकती है, न कुछ कर सकती है। राजनीतिक महा-तक कि सामाजिक या व्यापारिक आदर्शों का प्रतिनिधित्व करनेवाले कोई भी

पुरुष सर्वसाधारण भारतवासियों के ऊपर कभी भी अपना प्रभाव नहीं जमा सकते। हमें चाहिए आध्यात्मिक आदर्श। आध्यात्मिक महापुरुषों के नाम पर हमें सोत्साह एक हो जाना चाहिए। हमारे आदर्श पुरुष आध्यात्मिक होने चाहिए। श्री रामकृष्ण परमहंस हमें एक ऐसा ही आदर्श पुरुष मिला है। यदि यह जाति उठना चाहती है, तो मैं निश्चयपूर्वक कहूँगा कि इस नाम के चारों ओर उत्साह के साथ एकत्र हो जाना चाहिए। श्री रामकृष्ण परमहंस का प्रचार हम, तुम या चाहे जो कोई करे, इससे प्रयोजन नहीं। तुम्हारे सामने मैं इस महान् आदर्श पुरुष को रखता हूँ, और अब इस पर विचार करने का भार तुम पर है। इस महान् आदर्श पुरुष को लेकर क्या करोगे, इसका निश्चय तुम्हें अपनी जाति, अपने राष्ट्र के कल्याण के लिए अभी कर डालना चाहिए। एक बात हमें याद रखनी चाहिए कि तुम लोगों ने जितने महापुरुष देखे हैं और मैं स्पष्ट रूप से कहूँगा कि जितने भी महापुरुषों के जीवन-चरित पढ़े हैं, उनमें इनका जीवन सबसे पवित्र था, और तुम्हारे सामने यह तो स्पष्ट ही है कि आध्यात्मिक शक्ति का ऐसा अद्भुत आविर्भाव तुम्हारे देखने की तो बात ही अलग, इसके बारे में तुमने कभी पढ़ा भी न होगा। उनके तिरोभाव के दस वर्ष के भीतर ही इस शक्ति ने सम्पूर्ण ससार को घेर लिया है, यह तुम प्रत्यक्ष देख रहे हो। अतएव कर्तव्य की प्रेरणा से अपनी जाति और धर्म की भलाई के लिए मैं यह महान् आध्यात्मिक आदर्श तुम्हारे सामने प्रस्तुत करता हूँ। मुझे देखकर उसकी कल्पना न करना। मैं एक बहुत ही दुर्बल माध्यम मात्र हूँ। उनके चरित्र का निर्णय मुझे देखकर न करना। वे इतने बड़े थे कि मैं या उनके शिष्यों में से कोई दूसरा सैकड़ों जीवन तक चेष्टा करते रहने के बावजूद भी उनके यथार्थ स्वरूप के एक करोड़वें अंश के तुल्य भी न हो सकेगा। तुम लोग स्वयं ही अनुमान करो। तुम्हारे हृदय के अन्तस्तल में वे 'सनातन साक्षी' वर्तमान हैं, और मैं हृदय से प्रार्थना करता हूँ कि हमारी जाति के कल्याण के लिए, हमारे देश की उन्नति के लिए तथा समग्र मानव जाति के हित के लिए वही श्री रामकृष्ण परमहंस तुम्हारा हृदय खोल दें, और इच्छा-अनिच्छा के बावजूद भी जो महायुगान्तर अवश्यम्भावी है, उसे कार्यान्वित करने के लिए वे तुम्हें सच्चा और दृढ़ बनावे। तुम्हें और हमें रुचे या न रुचे, इससे प्रभु का कार्य रुक नहीं सकता, अपने कार्य के लिए वे घूल से भी सैकड़ों और हजारों कर्मों पैदा कर सकते हैं। उनकी अधीनता में कार्य करने का अवसर मिलना ही हमारे परम सौभाग्य और गौरव की बात है। इससे आदर्श का विस्तार होता है। जैसा तुम लोगों ने कहा है, हमें सम्पूर्ण ससार जीतना है। हाँ, यह हमें करना ही होगा। भारत को अवश्य ही ससार पर विजय प्राप्त करनी है। इसकी अपेक्षा किसी छोटे आदर्श से मुझे कभी

भी सन्तोष न होगा। यह आदर्श सम्भव है बहुत बड़ा हो और तुममें से अनेक को इसे सुनकर आपर्ण होगा किन्तु हमें इसे ही अपना आदर्श बनाना है। या तो हम सम्पूर्ण सत्कार पर विजय प्राप्त करेंगे या मिट जायेंगे। इसके सिवा और कोई विकल्प नहीं है। जीवन का चिह्न है विस्तार। हमें सर्कीर्य सीमा के बाहर जाना होगा हृदय का प्रसार करना होगा और यह दिखाता होगा कि हम जीवित हैं अन्यथा हमें इसी पतन की बसा में सड़कर मरना होगा इसके सिवा दूसरा कोई रास्ता नहीं है। इन दोनों में एक चुन लो फिर जिओ या मरो। छोटी छोटी बातों को लेकर हमारे देश में जोड़ें और कलह हुआ करता है, वह हम सोचों में समी को मास्य है। परन्तु मेरी बात मानो ऐसा समी देशों में है। जिन सब राष्ट्रों के जीवन का मेसबंड राजनीति है, वे सब राष्ट्र आत्मरक्षा के लिए वैदेशिक नीति का सहारा लिमा करते हैं। जब उनके अपने देश में आपस में बहुत अधिक झगड़-झगड़ा आरम्भ हो जाता है तब वे किसी विदेशी राष्ट्र से सहायता मांग लेते हैं इस तरह तत्काल बरेडू झगड़ बन्द हो जाती है, हमारे नीतर भी नृहदिबाह है, परन्तु उसे रोकने के लिए कोई वैदेशिक नीति नहीं है। सत्कार के सभी राष्ट्रों में अपने शास्त्रों का सत्य प्रचार ही हमारी सनातन वैदेशिक नीति होनी चाहिए, यह हमें एक सबड जाति के रूप में संमठित करेगी। तुम राजनीति में विशेष ध्यान देनेवालों से भिरा प्रप्त है कि क्या इसके लिए तुम कोई और प्रमाण चाहते हो? आध की इस समा से ही मेरी बात का सबेष्ट प्रमाण मिल रहा है।

दूसरे, इन सब स्वार्थपूर्ण विचारों को छोड़ देने पर भी हमारे पीछे नि स्वार्थ महान् और सजीव बुष्टान्त पाये जाते हैं। भारत के पतन और बाधिप-दुख का प्रमाण कारण यह है कि बॉने की तरह अपना सर्वांग समेटकर अपने अपना कार्यसाध समुचित कर लिमा या तथा आर्मेतर दूसरी मानव जातियों के लिए, जिन्हें सत्य की तुष्या भी अपने जीवनप्रद सत्य-रत्नों का सांभार नहीं होता था। हमारे पतन का एक और प्रमाण कारण यह भी है कि हम लोगों ने बाहर जाकर दूसरे राष्ट्रों से अपनी तुष्यता मही की और तुम लोग जानते हो जिस दिन से राजा राममोहन राय ने सकीर्णता की यह बीबार छोड़ी उसी दिन से भारत में बोड़ा सा जीवन दिक्कामी देने लगा जिसे आज तुम देख रहे हो। उसी दिन से भारत के इतिहास में एक दूमरा मोड़ लिमा और इस समय यह कर्मच उपति के पक्ष पर अघर हो रहा है। मनीठ कास में यदि छोटी छोटी गदियाँ ही यहाँ बालों ने बेर्यो हों तो समझना कि अब बहुत बड़ी बाड़ जा रही है और कोई भी उसकी गति रोक न सकेगा। अब तुम्हें विरम जाना हीना आदान-अदान ही अम्बुदय का रहस्य है। क्या हम दूमरों से सदा सेते ही रहेंगे? क्या हम लोग सदा ही परिचमजायिगी

के पद-प्रान्त मे बैठकर ही सब वाते, यहाँ तक कि धर्म भी सीखेंगे ? हाँ, हम उन लोगो से कल-कारखाने के काम सीख सकते हैं, और भी दूसरी बहुत सी वाते उनसे सीख सकते है, परन्तु हमे भी उन्हें कुछ सिखाना होगा। और वह है हमारा धर्म, हमारी आध्यात्मिकता। ससार सर्वांगीण सम्यता की अपेक्षा कर रहा है। गत शत शताब्दियो की अवनति, दुःख और दुर्भाग्य के आवर्त मे पडकर भी हिन्दू जाति उत्तराधिकार मे प्राप्त धर्मरूपी जिन अमूल्य रत्नो को यत्नपूर्वक अपने हृदय मे लगाय हुए है, उन्ही रत्नो की आशा से ससार उसकी ओर आग्रहभरी दृष्टि से निहार रहा है। तुम्हारे पूर्वजो के उन्ही अपूर्व रत्नो के लिए भारत से बाहर के मनुष्य किस तरह उद्ग्रीव हो रहे हैं, यह मैं तुम्हें कैसे समझाऊँ ? यहाँ हम अनर्गल चक्रवास किया करते हैं, आपस मे झगडते रहते हैं, श्रद्धा के जितने गभीर विषय हैं उन्हें हँसकर उडा देते है, यहाँ तक कि इस समय प्रत्येक पवित्र वस्तु को हँसकर उडा देने की प्रवृत्ति एक जातीय दुर्गुण हो गयी है। इसी भारत मे हमारे पूर्वज जो सजीवक अमृत रख गये हैं, उसका एक कण मात्र पाने के लिए भी भारत से बाहर के लाखो मनुष्य कितने आग्रह के साथ हाथ फैलाये हुए हैं, यह हमारी समझ मे भला कैसे आ सकता है ! इसलिए हमे भारत के बाहर जाना ही होगा। हमारी आध्यात्मिकता के बदले मे वे जो कुछ दें, वही हमे लेना होगा। चैतन्यराज्य के अपूर्व तत्त्वसमूहो के बदले हम जड राज्य के अद्भुत तत्त्वो को प्राप्त करेंगे। चिर काल तक शिष्य रहने से हमारा काम न होगा, हमे आचार्य भी होना होगा। समभाव के न रहने पर मित्रता सभव नहीं। और जब एक पक्ष सदा ही आचार्य का आसन पाता रहता है और दूसरा पक्ष सदा ही उसके पदप्रान्त मे बैठकर शिक्षा ग्रहण किया करता है, तब दोनो मे कभी भी समभाव की स्थापना नहीं हो सकती। यदि अंग्रेज और अमरीकी जाति से समभाव रखने की तुम्हारी इच्छा हो, तो जिस तरह तुम्हें उनसे शिक्षा प्राप्त करनी है, उसी तरह उन्हें शिक्षा देनी भी होगी, और अब भी कितनी ही शताब्दियो तक ससार को शिक्षा देने की सामग्री तुम्हारे पास यथेष्ट है। इस समय यही करना होगा। उत्साह की आग हमारे हृदय मे जलनी चाहिए। हम बगालियों को कल्पना शक्ति के लिए प्रसिद्धि मिल चुकी है और मुझे विश्वास है कि यह शक्ति हममे है भी। कल्पनाप्रिय भावुक जाति कहकर हमारा उपहास भी किया गया है। परन्तु, मित्रो ! मैं तुमसे कहना चाहूँगा कि निस्सदेह बुद्धि का आसन ऊँचा है, परन्तु यह अपनी परिमित सीमा के बाहर नहीं बढ सकती। हृदय—केवल हृदय के भीतर से ही दैवी प्ररणा का स्फुरण होता है, और उसकी अनुभव शक्ति से ही उच्चतम जटिल रहस्यो की मीमासा होती है, और इसीलिए 'भावुक' बगालियो को ही यह काम करना होगा। उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरा-



मिथीयत। — उठो जागो जब तक अमीप्तिन वस्तु को प्राप्त नहीं कर लेते तब तक बराबर उसकी ओर बढ़ते जाओ। 'कलकत्ता निवासी मुबको! उठो जागो शुभ मुहूर्त आ गया है। सब चीजें अपने आप तुम्हारे सामने खुलती जा रही हैं। हिम्मत करो और डरो मत। केवल हमारे ही आश्रितों में ईश्वर के लिए 'अमी विघ्नपन का प्रयोग किया गया है। हमें 'अमी निर्णय होना होगा तभी हम अपने कार्य में सिद्धि प्राप्त करेंगे। उठो जागो तुम्हारी मातृभूमि को इस महावसि की आवश्यकता है। इस कार्य की सिद्धि युवकों से ही हो सकती है। 'मुबा आदिपठ इतिपठ वसिपठ, मेधावी' उन्हींके लिए यह कार्य है। और ऐसे संकटों—हजारों युवक कलकत्ता में हैं। बीसा कि तुम सोच कहते हो यदि मैंने कुछ किया है, तो माय रचना में वही एक जगत्प बासक हूँ जो किसी समय कलकत्ते को संकटों पर लेका करता था। अगर मैंने इतना किया तो इधरे कितना अधिक तुम कर सकोगे। उठो—जागो संसार तुम्हें पुकार रहा है। भारत के अन्य भागों में बुद्धि है बल भी है, परन्तु उत्साह की आग केवल हमारी ही अन्नभूमि में है। उसे बाहर आना ही होगा इसलिए कलकत्ते के युवको अपने रक्त में उत्साह भरकर जाओ। मत सोचो कि तुम सही हो मत सोचो कि तुम्हारे मित्र नहीं हैं। जरे, क्या कभी तुमने देखा है कि स्वयं मनुष्य का निर्माण करता है? नहीं मनुष्य ही सदा स्वयं का निर्माण करता है। यह सम्पूर्ण संसार मनुष्य की शक्ति से उत्साह की शक्ति से विश्वास की शक्ति से निर्मित हुआ है।

तुमसे ये जिन लोगों ने उपनिषदों में सबसे अधिक सुन्दर कठोपनिषद् का अध्ययन किया है उन्हें स्मरण होगा कि किस तरह वे राजा एक महायज्ञ का अनुष्ठान करने लगे वे और दक्षिणा में मन्थी मन्थी चीजें ल देकर अनुपयोगी धार्य और थोड़े से रखे वे और कला के अनुसार उसी समय उनके पुत्र शक्तिता क हृदय में भद्रा का आविर्भाव हुआ। मैं तुम्हारे लिए इस भद्रा' शब्द का अर्थ ही अनुवाद न करूँगा क्योंकि यह शक्य होगा। समझने के लिए शब्द की दृष्टि से यह एक अनुभूत शब्द है और बहुत कुछ तो हमने समझने पर निर्भर करता है। हम देखें कि यह किस तरह शीघ्र ही कल देनेवाली है। भद्रा के आविर्भाव के साथ ही हम शक्तिता को आप ही आप इस तरह आतपीठ करते हुए देखते हैं 'मैं बहुत ही शक्य हूँ कुछ लोगों से छोटा भी हूँ परन्तु नहीं भी ऐसा नहीं हूँ कि सबने छोटा

१ कठोपनिषद् १।१।१४॥

२ मुबा श्यातापुमुबाध्यापकः। आसिप्यो इतिप्यो वसिप्यः।

तायेयं वसिप्यो तर्वा वित्तस्य पूर्वा श्यात् ॥ तैत्तिरीयोपनिषद् ॥ २।७॥

होजें, अत मैं भी कुछ कर सकता हूँ।' उसका यह आत्मविश्वास और साहस बढ़ता गया और जो समस्या उसके मन में थी, उस बालक ने उसे हल करना चाहा, —वह समस्या मृत्यु की समस्या थी। इसकी मीमासा यम के घर जाने पर ही हो सकती थी, अत वह बालक वही गया। निर्भीक नचिकेता यम के घर जाकर तीन दिन तक प्रतीक्षा करता रहा, और तुम जानते हो कि किस तरह उसने अपना अर्भीप्सित प्राप्त किया। हमें जिस चीज की आवश्यकता है, वह यह श्रद्धा ही है। दुर्भाग्यवश भारत से इसका प्राय लोप हो गया है, और हमारी वर्तमान दुर्दशा का कारण भी यही है। एकमात्र इस श्रद्धा के भेद से ही मनुष्य मनुष्य में अन्तर पाया जाता है? इसका और दूसरा कारण नहीं। यह श्रद्धा ही है, जो एक मनुष्य को बड़ा और दूसरे को कमजोर और छोटा बनाती है। हमारे गुरुदेव कहा करते थे, जो अपने को दुर्बल सोचता है, वह दुर्बल ही हो जाता है, और यह बिल्कुल ठीक ही है। इस श्रद्धा को तुम्हें पाना ही होगा। पश्चिमी जातियों द्वारा प्राप्त की हुई जो भौतिक शक्ति तुम देख रहे हो, वह इस श्रद्धा का ही फल है, क्योंकि वे अपने दैहिक बल के विश्वासी हैं, और यदि तुम अपनी आत्मा पर विश्वास करो तो वह और कितना अधिक कारगर होगा? उस अनन्त आत्मा, उस अनन्त शक्ति पर विश्वास करो, तुम्हारे शास्त्र और तुम्हारे ऋषि एक स्वर से उसका प्रचार कर रहे हैं। वह आत्मा अनन्त शक्ति का आधार है, कोई उसका नाश नहीं कर सकता, उसकी वह अनन्त शक्ति प्रकट होने के लिए केवल आह्वान की प्रतीक्षा कर रही है। यहाँ दूसरे दर्शनों और भारत के दर्शनों में महान् अन्तर पाया जाता है। द्वैतवादी हो, चाहे त्रिशिष्टद्वैतवादी या अद्वैतवादी हो, सभी को यह दृढ विश्वास है कि आत्मा में सम्पूर्ण शक्ति अवस्थित है, केवल उसे व्यक्त करना होता है। इसके लिए हमें श्रद्धा की ही जरूरत है, हमें, यहाँ जितने भी मनुष्य हैं, सभी को इसकी आवश्यकता है। इसी श्रद्धा को प्राप्त करने का महान् कार्य तुम्हारे सामने पड़ा हुआ है। हमारे जातीय खून में एक प्रकार के भयानक रोग का बीज समा रहा है, और वह है प्रत्येक विषय को हँसकर उड़ा देना, गाम्भीर्य का अभाव, इस दोष का सम्पूर्ण रूप से त्याग करो। वीर बनो, श्रद्धा सम्पन्न होओ, और सब कुछ तो इसके बाद आ ही जायगा।

अब तक मैंने कुछ भी नहीं किया, यह कार्य तुम्हें करना होगा। अगर कल मैं मर जाऊँ तो इस कार्य का अन्त नहीं होगा। मुझे दृढ विश्वास है, सर्वसाधारण जनता के भीतर से हजारों मनुष्य आकर इस व्रत को ग्रहण करेंगे और इस कार्य की इतनी उन्नति तथा विस्तार करेंगे, जिसकी आशा मैंने कभी कल्पना में भी नहीं की होगी। मुझ अपने देश पर विश्वास है—विशेषत अपने देश के युवकों पर।

बंगाल के मुबकों पर सबसे बड़ा मार है। इतना बड़ा मार किसी दूसरे प्रांत के मुबकों पर कभी नहीं आया। पिछले वस बरसों तक मैंने सम्पूर्ण भारत का भ्रमण किया। इससे मेरी कुछ धारणा हो गयी है कि बंगाल के मुबकों के भीतर से ही उद्योग शक्ति का प्रकाश हुआ जो भारत को उसके आध्यात्मिक अधिकार पर फिर से प्रतिष्ठित करेगी। मैं गिरधरपुरक कहता हूँ इन हृदयवाग् उत्साही बंगाली मुबकों के भीतर से ही सीकड़ों की उठने जो हमारे पूर्वजों द्वारा प्रचारित सनातन आध्यात्मिक धर्मों का प्रचार करने और सिखा देने के लिए संसार के एक छोर से दूसरे छोर तक भ्रमण करें। और तुम्हारे सामने यही महान् कर्तव्य है। अतएव एक बार और तुम्हें उस उत्तिष्ठत जागत प्राप्य बरासिबोधन रूपी महान् आदर्श वाक्य का स्मरण दिलाकर मैं अपना वक्तव्य समाप्त करता हूँ। करना यही क्योंकि मनुष्य जाति के इतिहास में देखा जाता है कि जितनी शक्तियों का विकास हुआ है सभी साम्राज्य मनुष्यों के भीतर से ही हुआ है। संसार में बड़े बड़े जितने प्रतिभावाली मनुष्य हुए हैं, सभी साम्राज्य मनुष्यों के भीतर से ही हुए हैं और इतिहास की घटनाओं की पुनरावृत्ति होगी ही। किसी बात से मत करो। तुम अश्रुत कार्य करोये। जिस क्षण तुम उर जाओगे उसी क्षण तुम विस्तृत शक्ति प्राप्त हो जाओगे। संसार में युद्ध का मुख्य कारण मय ही है, यही सबसे बड़ा दुःखकार है, यह भय हमारे दुःखों का कारण है और यह निर्मीकता है जिससे क्षण भर में स्वयं प्राप्त होता है। अतएव उत्तिष्ठत जागत प्राप्य बरासिबोधन।

महानुभावों मेरे प्रति आप लोगों ने जो अनुग्रह प्रकट किया है, उसके लिए आप लोगों को मैं फिर से धन्यवाद देता हूँ। मैं आप लोगों से इतना ही कह सकता हूँ कि मेरी इच्छा मेरी प्रवृत्ति और आन्तरिक इच्छा यह है कि मैं संसार की और सर्वोपरि अपने देव और देववासियों की चोड़ी सी भी सेवा कर सकूँ।

## सर्वाङ्ग वेदान्त

[स्टार थिएटर, कलकत्ता में दिया हुआ भाषण]

### स्वामी जी का भाषण

बहुत दूर—जहाँ न तो लिपिबद्ध इतिहास और न परम्पराओं का मन्द प्रकाश ही प्रवेश कर पाता है, अनन्त काल से वह स्थिर उजाला हो रहा है, जो बाह्य परिस्थितिवश कभी तो कुछ धीमा पड़ जाता है और कभी अत्यन्त उज्ज्वल, किन्तु वह सदा शाश्वत और स्थिर रहकर अपना पवित्र प्रकाश केवल भारत में ही नहीं, वल्कि सम्पूर्ण विचार-जगत् में अपनी मौन अननुभाव्य, शान्त फिर भी सर्वसक्षम शक्ति से उसी प्रकार भरता रहा है, जिस प्रकार प्रातःकाल के शिशिरकण लोगो की दृष्टि बचाकर चुपचाप गुलाब की सुन्दर कलियों को खिला देते हैं—यह प्रकाश उपनिषदों के तत्त्वों का, वेदान्त दर्शन का रहा है। कोई नहीं जानता कि इसका पहले पहल भारतभूमि में कब उद्भव हुआ। इसका निर्णय अनुमान के बल से कभी नहीं हो सका। विशेषतः, इस विषय के पश्चिमी लेखकों के अनुमान एक दूसरे के इतने विरोधी हैं कि उनकी सहायता से इन उपनिषदों के समय का निश्चय नहीं किया जा सकता। हम हिन्दू आध्यात्मिक दृष्टि से उनकी उत्पत्ति नहीं स्वीकार करते। मैं बिना किसी सकोच के कहता हूँ कि यह वेदान्त, उपनिषद्-प्रतिपाद्य दर्शन अध्यात्म राज्य का प्रथम और अन्तिम विचार है, जो मनुष्य को अनुग्रह के रूप में प्राप्त हुआ है।

इस वेदान्तरूपी महासमुद्र से ज्ञान की प्रकाश-तरंगें उठ उठकर समय समय पर पश्चिम और पूर्व की ओर फैलती रही हैं। पुराकाल में वे पश्चिम में प्रवाहित हुईं और एथेन्स, सिकन्दरिया और अन्तियोक जाकर उन्होंने यूनानियों के विचारों को बल प्रदान किया। इसमें कोई मन्देह नहीं कि प्राचीन यूनानियों को परमात्म्य दर्शन की विशेष छाप पड़ी थी। और माग्य तथा भारत के अन्यान्य मत्र दार्शनिक मत, उपनिषद् या वेदान्त पर ही प्रतिष्ठित हैं। भारत में भी प्राचीन काल में और आज भी किन्तु ही विरोधी सम्प्रदायों के रहने पर भी सभी उपनिषद् या वेदान्त रूप एतन्मात्र प्रमाण पर ही प्रतिष्ठित हैं। तुम द्वैतवादी हो, चाहे त्रिमिष्टा-द्वैतवादी, गुद्रद्वैतवादी हो, चाहे अद्वैतवादी जयन्त चाहे और जिस प्रकार के अद्वैत-

बायी या दैतबायी हो या तुम अपने को चाहे जिस नाम से पुकारो तुम्हें अपने धार्मिक उपनिषदों का प्रामाण्य स्वीकार करना ही होगा। यदि भारत का कोई सम्प्रदाय उपनिषदों का प्रामाण्य न माने तो वह 'समातन' मत का अनुयायी नहीं कहा जा सकता। और दोनों-बीड़ों के मत भी उपनिषदों का प्रामाण्य न स्वीकार करने के कारण ही भारतभूमि से हटा दिये गये थे। इसलिए चाहे हम जानें या न जाने वेदान्त भारत के सब सम्प्रदायों में प्रविष्ट है और हम जिसे हिन्दू धर्म कहते हैं—यह अनभिज्ञताी धासाजोबासा महान् बट ब्रह्म के समान हिन्दू धर्म—वेदान्त का ही प्रमाण से सजा है। चाहे हम जानें चाहे न जानें परन्तु हम वेदान्त का ही विचार करते हैं वेदान्त ही हमारा जीवन है वेदान्त ही हमारी राई है, मृत्यु तक हम वेदान्त ही के उपासक हैं और प्रत्येक हिन्दू का यही हाक है। अतः भारत भूमि में भारतीय श्रोताजो के सामने वेदान्त का प्रचार करना मानो एक अतन्वति है। परन्तु यदि किसी का प्रचार करना है तो वह इसी वेदान्त का विद्योपत इस युग में इसका प्रचार अत्यन्त आवश्यक हो गया है। क्योंकि हमने तुमसे अभी अभी कहा है कि भारत के सब सम्प्रदायों को उपनिषदों का प्रामाण्य मानकर चलना चाहिए, परन्तु इन सब सम्प्रदायों में हमें ऊपर ऊपर अनेक विरोध देखने को मिलते हैं। बहुत बार प्राचीन बड़े बड़े ऋषि भी उपनिषदों में निहित अपूर्व समन्वय को नहीं समझ सके। बहुधा मुनियों ने भी आपस के मतभेद के कारण विवाद किया है। यह मतविरोध किसी समय इतना बढ़ गया था कि यह एक कहावत हो गयी थी कि जिसका मत दूसरे से भिन्न न हो वह मुनि ही नहीं—नास्तो मुनिर्वस्य नतं न निद्रम्। परन्तु अब ऐसा विरोध नहीं चल सकता। अब उपनिषदों के मंत्रों में गुड़ रूप से जो समन्वय छिपा हुआ है, उसकी विस्तार व्याख्या और प्रचार की आवश्यकता सभी के लिए आज पड़ी है, फिर चाहे कोई दैतबायी हो विधिष्ठार्थिबायी हो या अर्थात्बायी उसे सधार के सामने स्पष्ट रूप से रखना चाहिए। और यह काम सिर्फ भारत में ही नहीं उसके बाहर भी होना चाहिए। मुझे ईश्वर की कृपा से इस प्रकार के एक महापुस्तक के पैरों तले बैठकर शिक्षा प्रवृत्त करने का महासीमाय मिठा या जिनका सम्पूर्ण जीवन ही उपनिषदों का महासमन्वयस्वरूप था—जिनका जीवन उनके उपदेशों की अपेक्षा हजार गुना बढ़कर उपनिषदों का जीवन प्राम्य स्वरूप था। उन्हें देखने पर मातूम होठा या मार्गो उपनिषद् के धाम वास्तव में मानवकूप धारण करके प्रकट हुए हों। उद्य समन्वय का कुछ बट सम्यक् मुझे भी मिठा है। मैं नहीं जानता कि इसको प्रकट करने में मैं समर्थ हो सकूँगा या नहीं। परन्तु मेरा प्रयत्न यही है। अपने जीवन में मैं यह सिखाने की कीर्षिण करूँगा कि वैदिक सम्प्रदाय एक बूधरे के विदीवी नहीं वे एक बूधरे के अवस्थाम्बायी

परिणाम हैं, एक दूसरे के पूरक हैं, वे एक से दूसरे पर चढ़ने के सोपान हैं, जब तक कि वह अद्वैत—तत्त्वमसि—लक्ष्य प्राप्त न हो जाय।

भारत में एक वह समय था जब कर्मकांड का बोलबाला था। वेदों के इस अंश में अनेक ऊँचे आदर्श हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं। हमारी वर्तमान नित्य पूजाओं में से कुछ यद्यपि अभी भी वैदिक कर्मकांड के अनुसार ही की जाती हैं, इतना होते हुए भी भारत में वैदिक कर्मकांड का प्रायः लोप हो गया है। अब हमारा जीवन वेदों के कर्मकांड के अनुसार बहुत ही कम नियमित और अनुशासित होता है। अपने दैनिक जीवन में हम प्रायः पौराणिक अथवा तांत्रिक हैं, यहाँ तक कि जहाँ कहीं भारत के ब्राह्मण वैदिक मंत्रों को काम में लाते हैं, वहाँ अविकाशत उनका विचार वेदों के अनुसार नहीं, किन्तु तंत्रों या पुराणों के अनुसार होता है। अतएव वेदों के कर्मकांड के विचार से अपने को वैदिक बताना हमारी समझ में युक्तिपूर्ण नहीं जँचता, परन्तु यह असदिग्ध है कि हम सभी वेदान्ती हैं। जो लोग अपने को हिन्दू कहते हैं, अच्छा होता यदि वे अपने को वेदान्ती कहते। और जैसा कि हमने तुम्हें पहले ही बतलाया है कि उसी वेदान्ती नाम के भीतर सब सम्प्रदाय—द्वैतवादी हो, चाहे अद्वैतवादी—आ जाते हैं।

वर्तमान समय में भारत में जितने सम्प्रदाय हैं, उनके मुख्यतः दो भाग किये जा सकते हैं—द्वैतवादी और अद्वैतवादी। इनमें से कुछ सम्प्रदाय जिन छोटे छोटे मतभेदों पर अधिक बल देते हैं और जिनकी सहायता से वे विशुद्धाद्वैतवादी और विशिष्टाद्वैतवादी आदि नये नये नाम लेना चाहते हैं, उनसे विशेष कुछ बनता विगडता नहीं। उन्हें या तो द्वैतवादियों की श्रेणी में शामिल किया जा सकता है अथवा अद्वैतवादियों की श्रेणी में। और जो सम्प्रदाय वर्तमान समय के हैं, उनमें से कुछ तो विल्कुल नये हैं और दूसरे पुराने सम्प्रदायों के नवीन संस्करण जान पड़ते हैं। पहली श्रेणी के प्रतिनिधि स्वरूप में रामानुजाचार्य का जीवन और दर्शन प्रस्तुत करूँगा और दूसरी के प्रतिनिधि रूप में शंकराचार्य का जीवन और दर्शन।

रामानुज उत्तरकालीन भारत के प्रथम द्वैतवादी दार्शनिक हैं। अन्य द्वैतवादियों ने प्रत्यक्षतः या परोक्षतः अपने तत्त्व-प्रचार में और अपने सम्प्रदायों के संगठन में, यहाँ तक कि अपने संगठन की छोटी छोटी बातों में भी उन्हींका अनुसरण किया है। रामानुज और उनके प्रचार-कार्य के साथ भारत के दूसरे द्वैतवादी वैष्णव सम्प्रदायों की तुलना करो तो आश्चर्य होगा, कि उनके आपस के उपदेशों, भावना-प्रणालियों और साम्प्रदायिक नियमों में बड़ा नादृश्य है। अन्यान्य वैष्णवाचार्यों में दक्षिणान्य आचार्य मध्व मुनि और उनके बाद हमारे वगदेश के महाप्रभु श्री चैतन्य का नाम उल्लेख योग्य है, जिन्होंने मध्वाचार्य के दर्शन का वगाल

में प्रचार किया जा। दक्षिण में कई सम्प्रदाय और हैं जैसे विशिष्टाद्वैतवादी भैव। सब प्रायः अद्वैतवादी होते हैं। सिंहस और दक्षिण के कुछ स्वार्थों का छोड़कर भारत में सर्वत्र ही अद्वैतवादी हैं। विशिष्टाद्वैतवादी धर्मों ने 'विष्णु' नाम की जगह सिर्फ 'शिवा' नाम रीठाया है और आत्मा विषयक सिद्धान्त का छाड़ अन्यान्य सब विषयों में रामानुज के ही मत को ग्रहण किया है। रामानुज के अनुयायी आत्मा को लक्ष्मी अर्थात् अल्पमत्त छोटा करते हैं, परन्तु संकराचार्य के मतानुयायी उसे विष्णु अर्थात् सर्वव्यापी स्वीकार करते हैं। प्राचीन काल में अद्वैत मत के कई सम्प्रदाय थे। ऐसा समझा है कि प्राचीन समय में ऐसे अनेक सम्प्रदाय थे जिन्हें संकराचार्य के सम्प्रदाय ने पूर्णतया आत्मसात् कर अपने में मिला लिया था। वेदान्त के किसी किसी भाष्य में विशेषतः विज्ञानभिक्षु के भाष्य में संकर पर बीच बीच में बड़ा बड़ा किया गया दिखामी देता है। विज्ञानभिक्षु मद्यपि अद्वैतवादी थे फिर भी उन्होंने संकर के मायावाद को उड़ा देना ही कोशिश की थी। अतः साफ जाण पड़ता है कि ऐसे अनेक सम्प्रदाय थे जिनका मायावाद पर विश्वास न था यहाँ तक कि उन्होंने संकर को 'प्रच्छन्न बौद्ध' कहने में भी संकोच नहीं किया। उनकी यह धारणा थी कि मायावाद को बौद्धों से लेकर संकर ने वेदान्त के भीतर रखा है। जो कुछ भी हो वर्तमान समय में सभी अद्वैतवादी संकराचार्य के अनुयायी हैं और संकराचार्य तथा उनके शिष्य उत्तर भारत और दक्षिण भारत दोनों जगहों में अद्वैतवाद के विशेष प्रचारक रहे हैं। संकराचार्य का प्रभाव हमारे बंगाल में और पंजाब तथा काश्मीर में ब्यादा नहीं फैला परन्तु दक्षिण के सभी स्मार्त संकराचार्य के अनुयायी हैं और भारतीय अद्वैतवाद का एक केन्द्र होने के कारण उत्तर भारत के अनेक स्वार्थों में उनका प्रभाव बहुत ब्यादा है।

परन्तु मौक्तिक ठाक के आविष्कार करने का श्रावण न संकराचार्य ने किया है और न रामानुज ने। रामानुज ने ही साफ कहा है कि हमने बोधायन के भाष्य का अनुसरण करके उपनृसार ही वेदान्त सूत्रों की व्याख्या की है। अथर्ववेदा-पनृसृता विल्लीर्वा ब्रह्मसूत्रवृत्ति पुष्पाचार्यः संक्षिप्तं तन्मत्तानुसारेण सूत्रा-रादि व्याख्यास्यन्ते।—'मगवान् बोधायन ने ब्रह्मसूत्र पर विस्तारपूर्वक भाष्य किया था जिसे पूर्व भाषायों ने संक्षिप्त कर दिया। उनके मतानुसार मैं सूत्र के सन्तों की व्याख्या कर रहा हूँ। अपने ही भाष्य के आरम्भ में ही रामानुज ने ये बातें लिख दी हैं। उन्होंने बोधायनकृत ब्रह्मसूत्र भाष्य को किया और उसे संक्षिप्त कर दिया और वही संक्षिप्त रूप आजकल हमें उपलब्ध है। बोधायन भाष्य देखने का अवसर मुझे कभी नहीं मिला। उसे अभी तक देख नहीं सका हूँ। पर-

लोकगत स्वामी दयानन्द मरस्वती व्याससूत्रों के बोधायन भाष्य के सिवा अन्य सभी भाष्यों को अस्वीकार कर देना चाहते थे, और यद्यपि वे अवसर मिलने पर रामानुज के ऊपर कटाक्ष किये बिना न रहते थे, वे भी कभी बोधायन भाष्य को सर्वसाधारण के सामने नहीं रख सके। परन्तु रामानुज ने स्पष्टतः कहा है कि बोधायन के विचार, और कही कही तो उसके अग्र तक, लेकर हमने अपने वेदान्त-भाष्य की रचना की है। यह अनुमान किया जा सकता है कि शकाराचार्य ने भी प्राचीन भाष्यकारों के ग्रंथों का अवलम्बन कर अपने भाष्य का प्रणयन किया होगा। उनके भाष्य में कई जगह प्राचीन भाष्यों के नाम आये हैं। और जब कि उनके गुरु और गुरु के गुरु स्वयं उन्हींके जैसे एक ही अद्वैत मत के प्रवर्तक और वेदान्ती थे—और कभी कभी किसी विषय में वे शकर की अपेक्षा अद्वैत तत्त्व के प्रकाशन में अधिक अग्रसर एवं साहसी थे—तब यह साफ समझ में आ जाता है कि शकर ने भी किसी नये भाव तत्त्व का प्रचार नहीं किया। रामानुज ने जिस प्रकार बोधायन भाष्य के सहारे अपना भाष्य लिखा था, अपनी भाष्य-रचना में शकर ने भी वैसा ही किया। परन्तु अभी तक यह निर्णय नहीं किया जा सका है कि शकर ने किस भाष्य को आधार मानकर भाष्य लिखा।

जिन दर्शनो को तुमने पढ़ा है या जिनके नाम सुने हैं, वे सब के सब उपनिषद् के प्रमाण पर आधारित हैं। जब भी उन्होंने श्रुति की दुहाई दी है, तब उपनिषदों को ही लक्ष्य किया है। जब वे श्रुति को उद्धृत करते हैं, उनका मतलब उपनिषदों से रहता है। भारत में उपनिषदों के बाद अन्य कई दर्शनो का जन्म हुआ, परन्तु व्यास द्वारा लिखे गये वेदान्त दर्शन की तरह किसी दूसरे दर्शन की प्रतिष्ठा भारत में नहीं हो सकी। पर वेदान्त दर्शन भी प्राचीन साख्य दर्शन का ही विकसित रूप है। और सारे भारत के, यहाँ तक कि सारे ससार के सभी दर्शन और सभी मत कपिल के विशेष रूप से ऋणी हैं। मनस्तात्त्विक और दार्शनिक विषयों का कपिल जैसा महान् व्याख्याता भारत के इतिहास में शायद ही दूसरा हुआ हो। ससार में सर्वत्र ही कपिल का प्रभाव दीख पड़ता है। जहाँ कोई मान्यताप्राप्त दार्शनिक मत विद्यमान है, वही उनका प्रभाव खोजा जा सकता है। वह हज़ार वर्ष पहले का चाहे भले ही हो, किन्तु वहाँ वे ही कपिल—वे ही तेजस्वी, गौरवयुक्त, अपूर्व प्रतिभाशाली कपिल दृष्टिगोचर होते हैं। उनके मनस्तत्त्व और दर्शन के अधिकांश को थोड़ा सा फेर-फार करके भारत के भिन्न भिन्न सभी सम्प्रदायों ने ग्रहण किया है। हमारी जन्मभूमि बंगाल के नैयायिक भारत के दार्शनिक क्षेत्र में विशेष प्रभाव फैलाने में समर्थ नहीं हो सके। वे सामान्य, विशेष, जाति, द्रव्य, गुण आदि बौद्धिक पारिभाषिक क्षुद्र शब्दों में उलझ गये, जिन्हें कोई अच्छी तरह समझना



चाहे तो सारी उन्नत भीत आम। वे दर्शनालोचन का भार बेबाक्तियों पर छोड़कर स्वयं 'व्यास' लेकर बैठे। परन्तु आधुनिक काल में भारत के सभी दार्शनिक सम्प्रदायों ने बंग देश के नैयायिकों की तरह सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दावली ग्रहण की है। जगदीश यथापर और शिरोमणि के नाम मछाबार देश में कहीं कहीं उसी प्रकार प्रसिद्ध हैं त्रिष प्रकार नविया में। किन्तु व्यास का दर्शन बेवान्तसुत्र भारत में सब जगह बृहत्प्रतिष्ठ है, और दर्शन में बेवान्त-अतिपाद्य ब्रह्म को (मुक्तिपूर्वक डग से) मनुष्य के लिए व्यक्त करने का उद्यम जो उद्देश्य रहा है उसे साधित करके उसने स्पामित्व प्राप्त किया। इस बेवान्त दर्शन में मुक्ति को पूर्वतया भूति के अतीत रखा गया है, संकराचार्य ने भी एक जगह घोषित किया है कि व्यास ने मुक्ति-विचार का यत्न नहीं किया। उनके सूत्रप्रथमन का एकमात्र उद्देश्य यह था कि बेवान्त मंत्रकामी पुण्यों को एक ही सूत्र में गूँथकर एक मासा तैयार करें। उनके सूत्र वहीं तक मान्य हैं जहाँ तक वे उपनिषदों के अतीत हैं, इसके जाने नहीं।

इस समय भारत के सभी सम्प्रदाय व्याससूत्रों को प्रामाणिक ग्रन्थों में श्रेष्ठ स्वीकार करते हैं। और जब यहाँ कोई नवीन सम्प्रदाय प्रारम्भ होता है तो वह व्याससूत्रों पर अपने ज्ञानानुसृत तथा भाष्य लिखकर अपनी बड़ जमाता है। कभी कभी इन भाष्यकारों के मन में बहुत ऊर्क आता बीच पड़ता है। कभी कभी तो मूल सूत्रों की अर्धविकृति देखकर भी ऊब जाता है। अन्तु। व्याससूत्रों को इस समय भारत में सबसे अच्छे प्रमाण ग्रन्थ का मान्य मिल गया है और व्याससूत्रों पर एक नया भाष्य बिना किसी भारत में कोई सम्प्रदाय संस्थापन की आज्ञा नहीं कर सकता।

व्याससूत्रों के बाद ही विश्वप्रसिद्ध गीता का प्रामाण्य है। संकराचार्य का यीरव गीता के प्रचार से ही बड़ा। इस महापुरख ने अपने महान् जीवन में जो बड़े बड़े कर्म किये गीता का प्रचार और उसकी एक सुन्दर भाष्य रचना भी उन्हींमें है। और भारत के सनातनमार्गी सम्प्रदाय-संस्थापकों में से हर एक ने उनका अनुगमन किया और तबनुसार गीता पर एक एक भाष्य की रचना की।

उपनिषद् अनेक हैं। कोई कोई यह कहते हैं कि उनकी संख्या एक ही आठ है और कोई कोई और भी अधिक कहते हैं। उनमें से कुछ स्पष्ट ही आधुनिक हैं यथा अस्त्रोपनिषद्। उसमें अस्त्राह की स्तुति है और मुहम्मद को स्तुतना कहा गया है। मैंने सुना है कि यह अस्त्र के राज्यकाल में हिन्दू और मुसलमानों में मेल कराने के लिए रचा गया था। कभी कभी संहिता विभाय में अस्त्रा इस्त्रा जैसे किसी शब्द को बरबस ग्रहण कर, उसके आधार पर उपनिषद् रच लिया

गया है। इस प्रकार इम अल्लोपनिषद् मे मुहम्मद रसूलल्ला हुए। इसका तात्पर्य चाहे जो कुछ हो, किन्तु इस प्रकार के और भी अनेक साम्प्रदायिक उपनिषद् हैं। यह स्पष्ट समझ मे आ जाता है कि वे विल्कुल आधुनिक हैं और उपनिषदों की ऐसी रचना बहुत कठिन भी नहीं थी, क्योंकि वेदों के सहिता भाग की भाषा इतनी पुरानी है कि उसमे व्याकरण के नियम नहीं माने गये। कई साल हुए, वैदिक व्याकरण पढने की मेरी इच्छा हुई और मैंने बड़े आग्रह से पाणिनि और महाभाष्य पढना आरम्भ किया। परन्तु मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ, जब मैंने देखा कि वैदिक व्याकरण के प्रधान भाग केवल साधारण नियमों के अपवाद ही है। व्याकरण मे एक साधारण विधान माना गया, परन्तु इसके बाद ही यह बतलाया गया कि वेदों मे यह नियम अपवादस्वरूप होगा। अतः हम देखते हैं कि वचाव के लिए यास्क की निरुक्ति का उपयोग कर कोई भी मनुष्य चाहे जो कुछ लिखकर बड़ी आसानी से उसे वेद कहकर प्रचार कर सकता है। साथ ही इसके अधिकांश भाग मे बहुसंख्यक पर्याय शब्द रखे गये हैं। जहाँ इतने सुभीते है, वहाँ तुम जितना चाही उपनिषद् लिख सकते हो। यदि संस्कृत का कुछ ज्ञान हो तो प्राचीन वैदिक शब्दों की तरह कुछ शब्द गढ़ लेने ही से काम हो जायगा, व्याकरण का तो कुछ भय रहा ही नहीं। फिर तो रसूलल्ला हो, चाहे जो सुल्ला हो, उसे अपने ग्रन्थ मे तुम अनायास रख सकते हो। इस प्रकार अनेक उपनिषदों की रचना हो गयी है और सुनते हैं कि अब भी होती है। मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि भारत के कुछ भागों मे भिन्न भिन्न सम्प्रदायों के लोग अब भी ऐसे उपनिषदों का प्रणयन करते है, परन्तु इन उपनिषदों मे कुछ ऐसे हैं, जो स्पष्टतः अपनी प्रामाणिकता की गवाही देते हैं, और इन्हींको शकर, बाद मे रामानुज और दूसरे बड़े बड़े भाष्यकारों ने स्वीकार किया है तथा इनका भाष्य किया है।

उपनिषदों के और भी दो एक तत्त्वों की ओर मैं तुम्हारा ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ, क्योंकि ये उपनिषद् ज्ञानसमुद्र है और मुझ जैसा अयोग्य मनुष्य यदि उनके सम्पूर्ण तत्त्वों की व्याख्या करना चाहे तो वर्षों बीत जायेंगे, एक व्याख्यान मे कुछ न होगा। अतएव उपनिषदों के अध्ययन के प्रसंग मे मेरे मन मे जो दो एक बातें आयी हैं, उनकी ओर तुम्हारा ध्यान दिलाना चाहता हूँ। पहले तो ससार मे इनकी तरह अपूर्व काव्य और नहीं हैं। वेदों के सहिता भाग को पढते समय उसमे भी जगह जगह अपूर्व काव्य-सौन्दर्य का परिचय मिलता है। उदाहरण के लिए ऋग्वेद सहिता के नासदीय सूक्तों को पढो। उममे प्रलय के गम्भीर अन्वकार के वर्णन मे है—**तम आसीत् तमसा गूढमग्रे** इत्यादि—‘जब अन्वकार से अन्वकार ढँका हुआ था।’ इसके पाठ ही से यह जान पडता है कि कवित्व का अपूर्व गाम्भीर्य

इसमें मरा है। तुमने क्या इस ओर दृष्टि डाली है कि भारत के बाहर के देशों में तथा भारत में भी मन्मीर भावों के चित्र खींचने के अनेक प्रयत्न किये गये हैं? भारत के बाहरी देशों में यह प्रयत्न उदात्त बड़ प्रकृति के अमन्त भावों के वर्णन में ही हुआ है—केवल अमन्त बहिःप्रकृति अमन्त बड़ अमन्त देश का वर्णन हुआ है। जब भी मिस्टन या शक्ति या किसी दूसरे प्राचीन अथवा आधुनिक यूरोपीय बड़े कवि ने अमन्त के चित्र खींचने की कोशिश की है तभी उन्होंने कवित्व-दर्शकों के सहारे अपने बाहर दूर आकाश में बिखरते हुए, बाह्य अमन्त प्रकृति का कुछ कुछ आभास देने की चेष्टा की है। यह चेष्टा यहाँ भी हुई है। बाह्य प्रकृति का अमन्त विस्तार जिस प्रकार वेद संहिता में चित्रित होकर पाठकों के सामने रखा गया है वैसे अन्यत्र कहीं भी देखने को नहीं मिलता। संहिता के इस 'तम आसीत् तमसा गूढम्' वाक्य को माय रखकर तीन भिन्न भिन्न कवियों के अन्वकार वर्णन के साथ इसकी तुलना करके देखो। हमारे काकिल्यास ने कहा है—'सूचीमेव अन्वकार' उदात्त मिस्टन कहते हैं 'जगत्ता नहीं है वृक्षमात्र अन्वकार है। परन्तु अन्वकार संहिता में है—अन्वकार से अन्वकार बँका हुआ है, अन्वकार के भीतर अन्वकार छिपा हुआ है। हम उज्ज्वल कटिबन्ध के रखनेवाले सहज ही में समझ सकते हैं कि जब सहजा गभीर वर्णन होता है, तब सम्पूर्ण दिग्दर्शन अन्वकाराच्छन्न हो जाता है और उमड़ती हुई काली बटाएँ दूसरे वाद्यों को बेर लेती हैं। इसी प्रकार कविता बल्की है, परन्तु संहिता के इस अंश में भी बाहरी प्रकृति का वर्णन किया गया है। बाहरी प्रकृति का विश्लेषण करके मानव-जीवन की महान् समस्याएँ अन्वकार जैसे हल की गयी हैं, वैसे ही यहाँ भी। जिस प्रकार प्राचीन मूलान अथवा आधुनिक यूरोप जीवन-समस्या का समाधान पाने के लिए उदात्त अन्वकारण सम्बन्धी पारमायिक तत्त्वों की खोज के लिए बाह्य प्रकृति के अन्वेषण में संलग्न हुए, उसी प्रकार हमारे पूर्वजों ने भी क्रिया और पाश्चात्यों के समान वे भी असफल हुए। परन्तु परिचयी जातियों ने इस विषय में और कोई प्रयत्न नहीं किया वहाँ वे भी बड़ी पड़ी रहीं। बहिर्बन्ध में जीवन और मृत्यु की महान् समस्याओं के समाधान में व्यर्थ प्रयास होने पर वे जाने नहीं सड़ीं। हमारे पूर्वजों ने भी इसे असम्भव समझा था परन्तु उन्होंने इस समाधान की प्राप्ति में इन्द्रियों की पूरी अक्षमता अन्वकार के सामने निर्भय होकर घोषित की। उपनिषद् से अच्छा उत्तर कहीं नहीं मिलेगा।

पत्नी बाधो निर्वर्तते अन्वकार्य धनता सह।

'मन के साथ बाधो जिसे न पाकर वहाँ से लौट जाती है।

न तत्र अन्वकार्यतति न बाधव्यवृत्ति नो मनः।

‘वहाँ न आँखों की पहुँच है, न वाणी की।’

ऐसे अनेक वाक्य हैं, जिन्होंने इन्द्रियों को इस महासमस्या के समाधान के लिए सर्वथा अक्षम बताया है, किन्तु वे पूर्वज इतना ही कहकर रुक नहीं गये। बाह्य प्रकृति से लौटकर वे मनुष्य की अन्त प्रकृति की ओर प्रवृत्त हुए। इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिए वे स्वयं अपनी आत्मा के निकट गये, वे अन्तर्मुख हुए। वे समझ गये थे कि प्राणहीन जड से कभी सत्य की प्राप्ति न होगी। उन्होंने देखा कि वहि प्रकृति से प्रश्न करने पर कोई उत्तर नहीं मिलता, न उससे कोई आशा की जा सकती है, अतएव बाहर सत्य की खोज की चेष्टा वृथा जानकर वहि प्रकृति का त्याग करके वे उसी ज्योतिर्मय जीवात्मा की ओर मुड़े और वहाँ उन्हें उत्तर भी मिला तमेवैक जानय आत्मान अन्या वाचो विमुच्य।—‘एकमात्र उसी आत्मा का ज्ञान प्राप्त करो और दूसरे वृथा वाक्य छोड़ो।’ उन्होंने आत्मा में ही सारी समस्याओं का समाधान पाया। वही उन्होंने विश्वेश्वर परमात्मा को जाना और जीवात्मा के साथ उसका सम्बन्ध, उसके प्रति हमारा कर्तव्य और उसके आधार पर हमारा पारस्परिक सम्बन्ध—आदि ज्ञान प्राप्त किया। और इस आत्मतत्त्व के वर्णन के सदृश उदात्त ससार में और दूसरी कविता नहीं है। जड के वर्णन की भाषा में इस आत्मा को चित्रित करने की चेष्टा न रही, यहाँ तक कि आत्मा के वर्णन में उन्होंने गुणों का निर्देश करना विल्कुल छोड़ दिया। तब अनन्त की धारणा के लिए इन्द्रियों की सहायता की आवश्यकता नहीं रही। बाह्य इन्द्रिय-ग्राह्य, अचेतन, मृत, जड स्वभाव, अवकाशरूपी अनन्त का वर्णन लुप्त हो गया। वरन् इसके स्थान पर आत्मतत्त्व का ऐसा वर्णन मिलता है, जो इतना सूक्ष्म है, जैसा कि इस कथन में निर्दिष्ट है

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारक नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽप्यमग्निः।

तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्यभासा सर्वमिदं विभाति ॥’

ससार में और कौन सी कविता इसकी अपेक्षा अधिक उदात्त होगी? ‘वहाँ न सूर्य का प्रकाश है, न चन्द्रतारकाओं का, यह विजली उसे प्रकाशित नहीं कर सकती, तो मृत्युलोक की इस अग्नि की बात ही क्या? उसीके प्रकाश से सब कुछ प्रकाशित होता है।’

ऐसी कविता तुमको कही नहीं मिल सकती और कही न पाओगे। उस अपूर्व कठोपनिषद् को लो। इस काव्य का रचना-चमत्कार कैसा सर्वांग मुन्दर है। किस

मनोहर रीति से यह आरम्भ किया गया है। उस छोटे से बाह्य नक्षत्रों के हृदय में अज्ञान का आविर्भाव उसकी यमदर्सन की अभिरूपा और सबसे बड़े आश्चर्य की बात तो यह है कि यम स्वयं उसे जीवन और मृत्यु का महान् पाठ पढ़ा रहे हैं। और वह बाह्य उनसे क्या जानना चाहता है?—मृत्यु-रहस्य।

उपनिषदों के सम्बन्ध की जिस बुरी बात पर तुम्हें ध्यान देना चाहिए, वह है उनका अपौरुषेयत्व। यद्यपि उनमें हमें अनेक आचार्यों और ब्रह्मज्ञानियों के नाम मिलते हैं पर उनमें से एक भी उपनिषदों के प्रभावस्वरूप नहीं गिने जाते। उपनिषदों का एक भी मंत्र उनमें से किसीके जीवन के ऊपर निर्भर नहीं है। ये सब आचार्य और ब्रह्मज्ञानियों का ध्यानमूर्ति की प्रति रंजित के पीछे अवस्थित हैं। उन्हें मानो कोई स्पष्टतया नहीं देखा जाता उनका ध्यान मानो साफ समझ में नहीं आती। यद्यपि पवित्र उपनिषदों के उन अपूर्व महिमामय उपोत्थितम त्रेत्रोत्थित मंत्रों के भीतर निहित है जो बिल्कुल व्यक्तिनिरपेक्ष हैं। बीसियों यात्रावस्थाय आये रहें और जैसे आये इच्छते कोई हानि नहीं मत्र तो बने ही रहेंगे। किन्तु फिर भी वे किसी व्यक्तिविषय के विरोधी नहीं हैं। वे इतने विद्याक और उदार हैं कि संसार में अब तक कितने महापुरुष या आचार्य पैदा हुए और भविष्य में कितने आयेगे उन सबको समाहित कर सकते हैं। उपनिषद् अन्तर्गतों या महापुरुषों की उपासना के विरोधी नहीं हैं बल्कि उसका समर्थन करते हैं। किन्तु साव ही के सम्पूर्ण रूप से व्यक्तिनिरपेक्ष है। उपनिषद् का ईश्वर जिस प्रकार निर्गम अर्थात् व्यक्तिनिरपेक्ष है, उसी प्रकार समस्त उपनिषद् व्यक्तिनिरपेक्षता-रूप अपूर्व तरह के ऊपर प्रतिष्ठित है। ज्ञानी विद्वान्मनसिक वैज्ञानिक यथा मुक्तिवादी उतमें इनकी व्यक्तिनिरपेक्षता पाते हैं जिनका कोई आपुनिक विज्ञानवेत्ता जाह सकता है।

और ये ही हमारे धारण हैं। तुम्हें याद रखना चाहिए कि ईशानियों के लिए जैसे आश्चर्य है मुसलमानों के लिए कुरान की बातों के लिए विविध पाठशालों के लिए अन्त-अध्याय जैसे ही हमारे लिए उपनिषद् हैं। ये ही हमारे धारण हैं हमारे नहीं। पुराण तन्त्र और अस्याय सब यही तन्त्र कि व्यासगुरु भी पौरव हैं हमारे मुख्य प्रमाण हैं वेद। मन्त्रादि स्मृतियाँ और पुराणों का जिनका अर्थ उपनिषदों में मंत्र गाना है उनका ही अर्थ पौरव है यदि अन्तर्गत प्रकट करें ता उन्हें निर्गमपूर्वक धारण देना चाहिए। इन सब मन्त्र अन्तर्गत गाना हीना परन्तु भारत के दुर्भाग्य से वर्तमान समय में हम या बिल्कुल भूल गये हैं। इन समय छोटे छोटे धार्मिक आचार्यों को ज्ञानी उपनिषदों के उपदेशों के स्वरूप पर प्रामाण्य धारण हो गया है। ब्रह्मण के गुरु देवताओं में अब जो आचार्य प्रचलित हैं वे मानो वेद-वाचन ही नहीं उनका भी नहीं बखबर है। और 'मन्त्रान्त-अन्तर्गत' इन

शब्द का प्रभाव भी कितना विचित्र है! एक देहाती की निगाह में वही सच्चा हिन्दू है, जो कर्मकांड की हर एक छोटी छोटी बात का पालन करता है और जो नहीं करता, उसे अहिन्दू कहकर दुत्कार दिया जाता है। दुर्भाग्य से हमारी मातृभूमि में ऐसे अनेक लोग हैं, जो किसी तत्रविशेष का अवलम्बन कर सर्वसाधारण जनता को उसी तत्र-मत का अनुसरण करने का उपदेश देते हैं। जो वैसा नहीं करते, वे उनके मत में सच्चे हिन्दू नहीं हैं। अतः हमारे लिए यह स्मरण रखना अत्यन्त आवश्यक है कि उपनिषद् ही मुख्य प्रमाण हैं। गृह्य और श्रौत सूत्र भी वेदों के प्रमाणाधीन हैं। यही उपनिषद् हमारे पूर्वपुरुष ऋषियों के वाक्य हैं और यदि तुम हिन्दू होना चाहो तो तुम्हें यह विश्वास करना ही होगा। तुम ईश्वर के बारे में जैसा चाहो विश्वास कर सकते हो, परन्तु वेदों का प्रामाण्य यदि नहीं मानते तो तुम घोर नास्तिक हो। ईसाई, बौद्ध या दूसरे शास्त्रों तथा हमारे शास्त्रों में यही अन्तर है। उन्हें शास्त्र न कहकर पुराण कहना चाहिए, क्योंकि उनमें जलप्लावन का इतिहास, राजाओं और राजवशधरों का इतिहास, महापुरुषों के जीवन-चरित आदि विषय लेखबद्ध हैं। ये सब पुराणों के लक्षण हैं, अतः इनका जितना अंश वेदों से मेल खाता हो, उतना ही ग्रहणीय है, परन्तु जो अंश नहीं मेल खाता, उसके मानने की आवश्यकता नहीं। बाइबिल और दूसरी जातियों के शास्त्र भी जहाँ तक वेदों से सहमत हैं, वही तक अच्छे हैं, लेकिन जहाँ ऐसा नहीं है, वे हमारे लिए अस्वीकार्य हैं। कुरान के सम्बन्ध में भी यही बात है। इन ग्रन्थों में अनेक नीति-उपदेश हैं, अतः वेदों के साथ उनका जहाँ तक ऐक्य हो, वही तक, पुराणों के समान, उनका प्रामाण्य है, इससे अधिक नहीं। वेदों के सम्बन्ध में मेरा यह विश्वास है कि वेद कभी लिखे नहीं गये, वेदों की उत्पत्ति नहीं हुई। एक ईसाई मिशनरी ने मुझसे किसी समय कहा था, हमारी बाइबिल ऐतिहासिक नींव पर स्थापित है और इसीलिए सत्य है, इस पर मैंने जवाब दिया था, “हमारे शास्त्र इसीलिए सत्य हैं कि उनकी कोई ऐतिहासिक भित्ति नहीं है, तुम्हारे शास्त्र जब कि ऐतिहासिक हैं, तब अवश्य ही वे कुछ दिन पहले किसी मनुष्य द्वारा रचे गये थे, तुम्हारे शास्त्र मनुष्यप्रणीत हैं, हमारे नहीं। हमारे शास्त्रों की अनैतिहासिकता ही उनकी सत्यता का प्रमाण है।” वेदों के साथ आजकल दूसरे शास्त्रों का यही सम्बन्ध है।

अब हम उपनिषदों की शिक्षा की पर्यालोचना करेंगे। उनमें अनेक भावों के श्लोक हैं। कोई कोई सम्पूर्ण द्वैत भावात्मक हैं और अन्य अद्वैत भावात्मक हैं। किन्तु उनमें कई बातें हैं, जिन पर भारत के सभी सम्प्रदाय एकमत हैं। पहले तो सभी सम्प्रदाय ससारवाद या पुनर्जन्मवाद स्वीकार करते हैं। दूसरे, सब

सम्प्रदायों का मनोविज्ञान भी एक ही प्रकार का है। पहले यह स्पष्ट बतौर, इसके पीछे सूक्ष्म बतौर या मन है और इसके भी परे बीबात्मा है। पश्चिमी और भारतीय मनोविज्ञान में यह विशेष भेद है कि पश्चिमी मनोविज्ञान में मन और आत्मा में कोई अन्तर नहीं माना गया है, परन्तु हमारे यहाँ ऐसा नहीं। भारतीय मनोविज्ञान के अनुसार मन जबका अन्तःकरण मानो बीबात्मा के हाथों का यन्त्र-मात्र है। इसीकी सहायता से वह बतौर जबका बाह्यी संसार में काम करता है। इस विषय में धनी का मत एक है। और सभी सम्प्रदाय एक स्वर से यह स्वीकार करते हैं कि बीबात्मा अनादि और अनन्त है। जब तक उसे सम्पूर्ण मुक्ति नहीं मिलती तब तक उसे बार बार जन्म लेना होगा। इस विषय में सब सहमत हैं। एक और मुख्य विषय में सबकी एक राय है, और यही भारतीय और पश्चिमी विज्ञान प्रणाली में विशेष मौलिक तथा अत्यन्त जीवन्त एवं महत्त्वपूर्ण अन्तर है, यहाँवाले बीबात्मा में सब शक्तियों की अवस्थिति स्वीकार करते हैं। यहाँ शक्ति और प्रेरणा के बाह्य आवाहन के स्वाम पर उनका आन्तरिक स्फुरण स्वीकार किया गया है। हमारे धार्मिकों के अनुसार सब शक्तियाँ सब प्रकार की महत्ता और पवित्रता आत्मा में ही विद्यमान हैं। योगी तुमसे कहेंगे कि अग्निमा अग्निमा अग्नि सिद्धियाँ जिन्हें वे प्राप्त करना चाहते हैं, वास्तव में प्राप्त करने की नहीं वे पहले से ही आत्मा में मौजूद हैं सिर्फ उन्हें व्यक्त करना हीमा। पतञ्जलि के मत में तुम्हारे पीरों तकें चक्रेवाले छोटे से छोटे कीड़ों तकें में योगी की अष्ट सिद्धियाँ वर्तमान हैं केवल अपने देहकी आकार की अनुपसुक्तता के कारण ही वे प्रकाशित नहीं हो पाती। जब भी उन्हें उत्कृष्टतर बतौर प्राप्त होमा वे शक्तियाँ अभिव्यक्त हो जायेंगी परन्तु होती हैं वे पहले से ही विद्यमान। उन्होंने अपने सूत्रों में एक जगह कहा है निमित्तप्रयोजकं प्रकृतौता वरजनेवस्तु ततः शोचिकवत् । — 'धुमाधुम कर्म प्रकृति के परिचाम (परिवर्तन) के प्रत्यक्ष कारण नहीं हैं, वरन् वे प्रकृति के विकास की बाधाओं को दूर करनेवाले निमित्त कारण हैं। जैसे किचान को यदि अपने जेठ में पानी लाना है तो सिर्फ जेठ की मेंड़ काटकर पाठ के भरे ताकाव से जल का मोग कर देता है और पानी अपने स्वामाधिक प्रवाह से बाहर जेठ को भर देता है। यहाँ पतञ्जलि ने किसी बड़े ताकाव से किचान द्वारा अपने जेठ में जल लाने का प्रसिद्ध उपाहरण दिया है। ताकाव खालव भरत है और एक धब म उसका पानी किचान के पूरे जेठ को भर सनता है, परन्तु ताकाव तथा जेठ के बीच में मिट्टी की एक मेंड़ है। ज्यों ही ताकाव पैदा करते

वाली यह मेड तोड़ दी जाती है, त्यों ही तालाब का पानी अपनी ताकत और वेग से खेत में पहुँच जाता है। ठीक उसी प्रकार जीवात्मा में सारी शक्ति, पूर्णता और पवित्रता पहले ही से भरी है, केवल माया का परदा पड़ा हुआ है, जिससे वे प्रकट नहीं होने पाती। एक वार आवरण को हटा देने से आत्मा अपनी स्वाभाविक पवित्रता प्राप्त करती है—उसकी सारी शक्ति व्यक्त हो जाती है। तुम्हें याद रखना चाहिए कि प्राच्य और पाश्चात्य चिन्तन-प्रणाली में यह बड़ा भेद है। पश्चिम-वाले यह भयानक मत सिखाते हैं कि हम जन्म से ही महापापी हैं और जो लोग यह भयावह मत नहीं मानते, उन्हें वे जन्मजात दुष्ट कहते हैं। वे यह कभी नहीं सोचते कि अगर हम स्वभाव से ही बुरे हों तो हमारे भले होने की आशा नहीं, क्योंकि मनुष्य की प्रकृति कभी बदल नहीं सकती। 'प्रकृति का परिवर्तन'—यह वाक्य स्व-विरोधी है। जिसका परिवर्तन होता है, उसे प्रकृति नहीं कहना चाहिए। यह विषय हमें स्मरण रखना चाहिए। इस पर भारत के द्वैतवादी, अद्वैतवादी और सभी सम्प्रदाय एकमत हैं।

भारत के सब सम्प्रदाय एक अन्य विषय पर भी एकमत हैं, वह है ईश्वर का अस्तित्व। इसमें सन्देह नहीं कि ईश्वर के बारे में सभी सम्प्रदायों की धारणा भिन्न भिन्न है। द्वैतवादी सगुण, केवल सगुण ईश्वर पर ही विश्वास करते हैं। मैं यह सगुण शब्द तुम्हें कुछ और भी अच्छी तरह समझाना चाहता हूँ। इस सगुण के अर्थ से देहवारी, सिंहासन पर बैठे हुए, ससार का शासन करनेवाले किसी पुरुष-विशेष से मतलब नहीं। सगुण अर्थ से गुणयुक्त समझना चाहिए। इस सगुण ईश्वर का वर्णन शास्त्रों में अनेक स्थलों में देखने को मिलता है, और सभी सम्प्रदाय इस ससार का शासक, स्रष्टा, पालक और सहर्ता सगुण ईश्वर मानते हैं। अद्वैतवादी इस सगुण ईश्वर के सम्बन्ध में और भी कुछ ज्यादा मानते हैं। वे इस सगुण ईश्वर की एक उच्चतर अवस्था के विश्वासी हैं, जिसे सगुण-निर्गुण नाम दिया जा सकता है। जिसके कोई गुण नहीं है, उसका किसी विशेषण द्वारा वर्णन करना असम्भव है। और अद्वैतवादी उसे 'सत्-चित्-आनन्द' के सिवा कोई और विशेषण नहीं देना चाहते। शंकर ने ईश्वर को सच्चिदानन्द विशेषण से पुकारा है, परन्तु उपनिषदों में ऋषियों ने इससे भी आगे बढ़कर कहा है, 'नेति नेति' अर्थात् 'यह नहीं, यह नहीं।' इस विषय में सभी सम्प्रदाय एकमत हैं। अब मैं द्वैतवादियों के मत के पक्ष में कुछ कहूँगा। जैसा कि मैंने कहा है, रामानुज को मैं भारत का प्रसिद्ध द्वैतवादी तथा वर्तमान समय के द्वैतवादी सम्प्रदायों का सबसे बड़ा प्रतिनिधि मानता हूँ। खेद की बात है कि हमारे बंगाल के लोग भारत के उन बड़े बड़े धर्माचार्यों के विषय में जिनका जन्म दूसरे प्रान्तों में हुआ था, बहुत ही थोड़ा ज्ञान रखते



हैं। मुसलमानों के राज्यकाल में एक भैरव्य को छोड़कर बड़े बड़े और सभी धार्मिक नेता बलिष्ठ भारत में पैदा हुए थे और इस समय साक्षिचार्यों का ही मस्तिष्क वास्तव में भारत भर का शासन कर रहा है। यहाँ तक कि भैरव्य भी इन्हीं सम्प्रदायों में से एक के मध्याध्याय के सम्प्रदाय के अनुयायी थे। अस्तु, रामानुज के मतानुसार नित्य पदार्थ तीन हैं—ईश्वर, जीवात्मा और प्रकृति। सभी जीवात्माएँ नित्य हैं परमात्मा के साथ उनका भेद सर्वत्र बना रहेगा और उनकी स्वतंत्र सत्ता का कभी लोप नहीं होगा। रामानुज कहते हैं, तुम्हारी आत्मा हमारी आत्मा से अनन्त काल के लिए पुषक रहेगी और यह प्रकृति भी फिर काल तक पुषक रूप में विद्यमान रहेगी क्योंकि उसका अस्तित्व बीते ही सत्य है, जैसे कि जीवात्मा और ईश्वर का अस्तित्व। परमात्मा सर्वत्र अन्तर्निहित और आत्मा का सार तत्व है। ईश्वर अन्तर्पामी है और इसी अर्थ को लेकर रामानुज नहीं नहीं परमात्मा को जीवात्मा से अभिन्न—जीवात्मा का सारमूत्र पदार्थ बताते हैं, और वे जीवात्माएँ प्रलय के समय जब कि उनके मतानुसार सारी प्रकृति संकुचित अवस्था को प्राप्त होती है, संकुचित हो जाती है और कुछ काल तक सभी संकुचित तथा शुभ्र अवस्था में रहती हैं। और दूसरे रूप के आरम्भ में वे अपने पिछले कर्मों के अनुसार फिर विकसित होती हैं और अपना कर्मफल भोगती हैं। रामानुज का मत है कि जिस कम से आत्मा की स्वाभाविक पवित्रता और पूर्णता का संकोच हो रही अमूम है, और जिससे उसका विकास ही वह शुभ्र कर्म। जो कुछ आत्मा के विकास में महापता पहुँचाये वह अच्छा है और जो कुछ उसे संकुचित करे, वह बुरा। और इसी तरह आत्मा की प्रगति ही रही है कभी तो वह संकुचित ही रही है और कभी विरहित। अल्प में ईश्वर के अनुपम स उच्च मुक्ति मिलती है। रामानुज कहते हैं जो कुछ स्वभाव है और अनुपम के लिए प्रयत्नशील है, वे ही उभे पाते हैं।

धृति में एक प्रसिद्ध वाक्य है अह्मरशुद्धी सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धी भ्रूया स्मृतिः। —जब आहार शुद्ध होता है तब धर्म भी शुद्ध हो जाता है और धर्म शुद्ध होने पर स्मृति अर्थात् ईश्वर-स्मरण (अद्वैतधारियों के लिए स्वर्गीय पूर्णता की स्मृति) भ्रूय अर्थात् स्थायी हो जाता है। इस वाक्य को लेकर भाष्यकारों में घनघोर विवाद हुआ है। पहली बात तो यह है कि इस 'मत्त्व' शब्द का क्या अर्थ है? इस भोग जानने हैं नाश्वर के अनुसार—और इस विषय की हमारे सभी दर्शन-ग्रन्थकारों में स्वीकार किया है कि—'मत्त्व' शब्द का निर्माण तीन प्रकार के उपादानों में हुआ है—गुणों में नहीं। आयातन मनुष्यों की यह आत्मा है कि मत्त्व एक और तम नीची गुण है परन्तु वास्तव में वे शुद्ध नहीं के तमारे के उपादान-वाक्य

स्वरूप है। और आहार शुद्ध होने पर यह सत्त्व-पदार्थ निर्मल हो जाता है। शुद्ध मत्त्व को प्राप्त करना ही वेदान्त का एकमात्र उपदेश है। मैंने तुमसे पहले भी कहा है कि जीवात्मा स्वभावतः पूर्ण और शुद्धस्वरूप है और वेदान्त के मत में वह रज और तम दो पदार्थों में ढँका हुआ है। सत्त्व पदार्थ अत्यन्त प्रकाशस्वभाव है और उसके भीतर से आत्मा की ज्योति जगमगाती हुई स्वच्छन्दतापूर्वक उसी प्रकार निकलती है, जिस प्रकार शीशे के भीतर से आलोक। अतएव यदि रज और तम पदार्थ दूर हो जायें तो केवल सत्त्व रह जाय, तो आत्मा की शक्ति और पवित्रता प्रकाशित हो जायगी, और वह अपने को पहले से अधिक व्यक्त कर सकेगी।

अतः यह सत्त्वप्राप्ति अत्यन्त आवश्यक है और श्रुति कहती है, 'आहार शुद्ध होने पर सत्त्व शुद्ध होता है।' रामानुज ने 'आहार' शब्द को भोज्य पदार्थ के अर्थ में ग्रहण किया है और उन्होंने इसे अपने दर्शन के अगो मे से एक मुख्य अंग माना है। इतना ही नहीं, इसका प्रभाव सम्पूर्ण भारत पर और भिन्न भिन्न सम्प्रदायों पर पड़ा है। अतएव हमारे लिए इसका अर्थ समझ लेना अत्यावश्यक है, क्योंकि रामानुज के मत से यह आहार-शुद्धि हमारे जीवन का एक मुख्य अवलम्ब है। आहार किन कारणों से दूषित होता है? रामानुज का कथन है कि तीन प्रकार के दोषों से खाद्य पदार्थ दूषित हो जाता है। प्रथम है जाति दोष अर्थात् भोज्य पदार्थों की जाति में प्रकृतिगत दोष जैसे कि लहसुन, प्याज और इसी प्रकार के अन्यान्य पदार्थों की गन्ध। दूसरा है आश्रय दोष अर्थात् जिस पदार्थ को कोई दूसरा छू लेता है अर्थात् जो पदार्थ किसी दूसरे के हाथ से मिलता है, वह छूनेवाले के दोषों से दूषित हो जाता है, दुष्ट मनुष्य के हाथ का भोजन तुम्हें भी दुष्ट कर देगा। मैंने स्वयं भारत के बड़े बड़े अनेक महात्माओं को उनके जीवन-काल में दृढतापूर्वक इस नियम का पालन करते हुए देखा है। और हाँ, भोजन देनेवाले के—यहाँ तक कि यदि किसीने कमी भोजन छुआ हो, तो उसके भी गुण-दोषों के समझ लेने की उनमें यथेष्ट शक्ति थी, और यह मैंने अपने जीवन में एक बार नहीं, सैकड़ों बार प्रत्यक्ष अनुभव किया है। तीसरा है निमित्त दोष, भोज्य पदार्थों में बाल, कीड़े या धूल पड़ जाने से निमित्त दोष होता है। हमें इस समय इस शेषोक्त दोष से बचने की विशेष चेष्टा करनी चाहिए। भारत पर इसका अत्यधिक प्रभाव है। यदि वह भोजन किया जाय, जो इन तीनों प्रकार के दोषों से मुक्त है, तो अवश्य ही सत्त्वशुद्धि होगी। अगर ऐसा ही है तो घर्म तो बायें हाथ का खेल हो गया। अगर पाक-साफ भोजन ही से घर्म होता हो तो फिर हर एक मनुष्य घर्मात्मा बन सकता है। जहाँ तक मेरा ख्याल है, इस ससार में ऐसा कमजोर या असमर्थ कोई भी न होगा, जो अपने को इन वुराइयों से न बचा सके। अस्तु। शंकराचार्य

कहते हैं 'आहार' शब्द का अर्थ है इन्द्रियोंद्वारा मन में विचारों का समावेश, आहारक होना या खाना जब मन निर्मल होता है, तब शब्द भी निर्मल हो जाता है, किन्तु इसके पहले नहीं। तुम्हें जो रूप नहीं भोजन कर सकते हो। अगर केवल साध पदार्थ ही शब्द को मममुक्त करता है तो बिछाबो बन्दर को बिन्दवी भर दूध-भात बेहो तो वह एक बड़ा योगी होता है या नहीं। अगर ऐसा ही होता तो गायें और हिरण परम योगी हो गये होते। यह उक्ति प्रसिद्ध है

मित गहाने सै हरि मिले तो जब जन्तु होई।

फल फूस लाने हरि मिले तो बाँसुड़ बाँसुराई।

शिरन भक्षण से हरि मिले तो बहुत मूवी भजा।

परन्तु इस समस्या का समाधान क्या है? आवश्यक बोनो ही हैं। इसमें सन्देह नहीं कि आहार के सम्बन्ध में संकराचार्य का सिद्धान्त मुख्य है। परन्तु यह भी सत्य है कि कुछ भोजन से कुछ विचार होने में सहायता मिलती है। दोनों का एक सूत्र से समिष्ट सम्बन्ध है। दोनों आवश्यक हैं परन्तु नुटि यही है कि आजकल हम भारतवासी संकराचार्य का उपदेश मूछ गये हैं। हम लोगों ने आहार का अर्थ कुछ भोजन मान लिया है। यही कारण है कि जब लोग मुझे यह कहते हुए सुनते हैं कि धर्म अब रसाई में घुस गया है, तब वे मुझ पर बिमड़ उठते हैं परन्तु यदि मेरे साथ तुम मद्रास बढते तो मेरे वाक्यों को स्वीकार कर लेते। बंगाली उनसे अच्छे हैं। मद्रास में किसी उच्च वर्ण के मनुष्य के भोजन पर यदि किसी नीच जाति की दृष्टि पड़ गयी तो वह भोजन फेंक दिया जाता है। परन्तु इतने पर भी मैंने नहीं देखा कि वहाँ के लोग उन्नत हो गये। यदि केवल इस प्रकार या उस प्रकार का भोजन करने ही से और उसे इसकी उसकी दृष्टि से बचाने ही से लोग सिद्ध हो जाते तो तुम देखते कि सभी मद्रासी सिद्ध-महात्मा ही गये होते परन्तु वे बैसे नहीं हैं।

इस प्रकार, यद्यपि दोनों मत एकत्र करने एक सम्पूर्ण सिद्धान्त बनाना है, किन्तु जोड़े ने जाये गाड़ी न जोड़ो। आजकल भोजन और वर्णाश्रम धर्म के सम्बन्ध में बड़ा खोरमुक्त उठ रहा है और बंगाली तो इन्हें लेकर और भी घसा फाड़ रहे हैं। तुममें से हर एक से मरा प्रश्न है कि तुम वर्णाश्रम के सम्बन्ध में क्या जानते हो? इन समय इन बेस में आनुवंशिक विभाग नहीं है? मेरे प्रश्नों का उत्तर भी दो। मैं तो वर्णव्युत्पत्त्य नहीं देता। जित प्रचार हमारे बंगालियों की कहता है कि 'बिना धर के धरबर्न होता है' उगी प्रकार वहाँ तुम वर्णाश्रम विभाग की चर्चा करना चाहते हो। यहाँ जब चार जातियों का नाम नहीं है। मैं केवल

ब्राह्मण और शूद्र देखता हूँ। यदि क्षत्रिय और वैश्य हैं, तो वे कहाँ हैं? और ऐ ब्राह्मणो, क्यों तुम उन्हें हिन्दू धर्म के नियमानुसार यज्ञोपवीत धारण करने की आज्ञा नहीं देते?—क्यों तुम उन्हें वेद नहीं पढाते, जो हर एक हिन्दू को पढना चाहिए?—और यदि वैश्य और क्षत्रिय न रहे, किन्तु केवल ब्राह्मण और शूद्र ही रहें तो शास्त्रानुसार ब्राह्मणो को उस देश में कदापि न रहना चाहिए, जहाँ केवल शूद्र ही, अतएव अपना बोरिया-बंधना लेकर यहाँ से कूच कर जाओ। क्या तुम जानते हो, जो लोग म्लेच्छ-भोजन खाते हैं और म्लेच्छो के राज्य में बसते हैं, जैसे कि तुम गत हज़ार वर्षों से बस रहे हो, उनके लिए शास्त्रो में क्या आज्ञा है? क्या उसका प्रायश्चित्त तुम्हें मालूम है? प्रायश्चित्त है तुषानल—अपने ही हाथो अपनी देह जला देना। तुम आचार्य के आसन पर बैठना चाहते हो, परन्तु कपटाचरण नहीं छोड़ते। यदि तुम्हें अपने शास्त्रो पर विश्वास है तो अपने को उसी प्रकार जला दो, जिस प्रकार उन एक ख्यातनामा ब्राह्मण ने, जो महावीर सिकन्दर के साथ यूनान गये थे, म्लेच्छ का भोजन खा लेने के कारण तुषानल में अपना शरीर जला दिया था। यदि तुम ऐसा कर सके तो देखोगे, सारी जाति तुम्हारा चरण चूमेगी। स्वयं तो तुम अपने शास्त्रो पर विश्वास नहीं करते और दूसरो का उन पर विश्वास कराना चाहते हो। अगर तुम समझते हो कि इस जमाने में वैसा नहीं कर सकते, तो अपनी दुर्बलता स्वीकार करके दूसरो की भी दुर्बलता क्षमा करो, दूसरी जातियो को उन्नत करो, उनकी सहायता करो, उन्हें वेद पढ़ने दो, ससार के अन्य किन्हीं भी आर्यों के समकक्ष उन्हें भी आर्य बनने दो, और ऐ बगाल के ब्राह्मणो, तुम भी वैसे ही सदाशय आर्य बनो।

यह घृण्य वामाचार छोड़ो, जो देश का नाश कर रहा है। तुमने भारत के अन्यान्य भाग नहीं देखे। जब मैं देखता हूँ कि हमारे समाज में कितना वामाचार फैला हुआ है, तब अपनी सस्कृति के समस्त अहंकार के साथ यह (समाज) मेरी नज़रो में अत्यन्त गिरा हुआ स्थान मालूम होता है। इन वामाचार सम्प्रदायो ने मधुमक्खियो की तरह हमारे बगाल के समाज को छा लिया है। वे ही जो दिन में गरज कर आचार के सम्बन्ध में प्रचार करते हैं, रात को घोर पैशाचिक कृत्य करने से वाञ्छ नहीं आते, और अति भयानक ग्रन्थसमूह उनके कर्म के समर्थक हैं। घोर दुष्कर्म करने का आदेश उन्हें ये शास्त्र देते हैं। तुम बगालियो को यह विदित है। बगालियो के शास्त्र वामाचार-तत्र हैं। ये ग्रन्थ ढेरो प्रकाशित होते हैं, जिन्हे लेकर तुम अपनी सन्तानो के मन को विपाक्त करते हो, किन्तु उन्हें श्रुतियो की शिक्षा नहीं देते। ऐ कलकत्तावासियो, क्या तुम्हें लज्जा नहीं आती कि अनुवादसहित वामाचार-तत्रो का यह वीभत्स सग्रह तुम्हारे बालको और बालिकाओ के हाथ रखा जाय, उनका चित्त



विपनिह्वरु हो और वे चरम से खड़ी चारवा केकर क्यों कि हिन्दुओं के अज्ञान के नामाचार हान्य है ? यदि तुम लक्षित हो तो अपने कर्णों से उन्हें समझाओ, और उन्हें नकार सात्म वेच पीठा उपनिषद् मन्ने रो।

भारत के ईतबासी सम्प्रदायों के अनुसार खनी बीवालायें खनी बीवालाय ही रहेंगी। ईस्वर जन्म का निमित्त कारण है और उनसे पहले ही से कर्णिकारण कारण से संसार की सृष्टि की। उबर खीतबासियों के मत से ईस्वर संसार का निमित्त और उत्पादन दोनों कारण है। यह केवल संसार का सत्य ही नहीं, किन्तु उसने अपने ही से संसार का सर्वत्र किया। खी खीतबासियों का विश्वास है। कुछ बचकपरे ईतबासी सम्प्रदाय हैं बिनका यह विश्वास है कि ईस्वर वे अपनेही ईस्वर से संसार की सृष्टि की और साथ ही यह विश्वास से वास्तव पुण्य की है, एक हर एक वस्तु फिर काठ के लिए उस बननिमन्ता के वास्तव मनीन है। ईश की कल्पना है, जो यह मानते हैं कि ईस्वर ने अपने को उत्पादन बनाकर इस जन्म का उत्पादन किया और बीच अन्त में सान्त भाव छोड़कर अनन्त होते हुए निर्वाण प्राप्त करें, परन्तु वे सम्प्रदाय सप्त हो चुके हैं। खीतबासियों का एक यह सम्प्रदाय विश्वे कि कुछ वर्तमान भारत में देखते ही संकर का अनुवासी है। संकर का मत यह है कि जन्म के माध्यम से देखने के कारण ही ईस्वर संसार का निमित्त और उत्पादन दोनों कारण है, किन्तु वास्तव में नहीं। ईस्वर वह जन्म नहीं बना बल्कि यह जन्म है ही नहीं, केवल ईस्वर ही है—अज्ञेय अज्ञेय। खीत वेदान्त का यह माननाय कर्णिकारण अत्यन्त कमिण है। हमारे धार्मिक विषय का यह बहुत ही कमिण मंत्र है, खनी पर्वानोचना करने के लिए अब समय नहीं है। तुममें जो परिवर्णी वर्णों से परिचित है, वे जानते हैं, इसका कुछ कुछ अर्थ काण्ट के दर्शन से मेक जाता है परन्तु निम्नलिखित वर विश्वे हुए प्रोफेसर मैक्समूलर के निबन्ध पढ़े हैं उन्हें में सावधान कष्टा है कि उनके निबन्धों में एक बड़ी भारी भूल है। प्रोफेसर महीनब के मत में जो वेद काठ और निमित्त हमारे ज्ञान के प्रतिबन्धक हैं उन्हें पहले काण्ट ने आविष्कृत किया परन्तु वास्तव में उनके प्रथम आविष्कर्ता संकर हैं। संकर ने वेद काठ और निमित्त को अन्त के साथ अतिम रूपकर उनका वर्णन किया है। तीजान्य से संकर के कर्णों में ईश हो एक स्वतन्त्र मुने मिल गये। उन्हें मैंने अपने मित्र प्रोफेसर महीनब के पत्र पेश किया। जग काण्ट के पहले की यह उल्लेख भारत में अज्ञात नहीं था। वस्तु, खीत वेदान्तियों का यह मानाचार विचित्र विश्वास है। उनके मत में सत्ता केवल सदा ही की है, यह भी वेद दृष्टिकोण ही सदा है, यह केवल सत्ता के कारण। यह एकात्म यह कर्णिकारणिकताय सदा ही हमारा धर्म सत्य है और खी वर चारखीय और वास्तव्य विचारों का फिर हान्य भी सत्य है। इकारों क्यों के भारत के

मायावाद की घोषणा करते हुए ससार को चुनौती दी है और ससार की विभिन्न जातियों ने यह चुनौती स्वीकार भी की, जिसका फल यह हुआ कि वे पराभूत हो गयी हैं और तुम जीवित हो। भारत की घोषणा यह है कि ससार भ्रम है, इन्द्रजाल है, माया है, अर्थात् चाहे तुम मिट्टी से एक एक दाना बीनकर भोजन करो या चाहे तुम्हारे लिए सोने की थाली में भोजन परोसा जाय, चाहे तुम महलो में रहो, चाहे कोई महाशक्तिशाली महाराजाधिराज हो अथवा चाहे द्वार-द्वार का भिक्षुक, किन्तु परिणाम सभी का एक है और वह है मृत्यु, गति सभी की एक है, सभी माया है। यही भारत की प्राचीन सूक्ति है। वारम्बार भिन्न भिन्न जातियाँ सिर उठाती और इसके खडन करने की चेष्टा करती हैं, वे बढ़ती हैं, भोगसाधन को वे अपना ध्येय बनाती हैं, उनके हाथ में शक्ति आती है, पूर्णतया शक्ति का प्रयोग करती है, भोग की चरम सीमा को पहुँचती हैं और दूसरे ही क्षण वे विलुप्त हो जाती हैं। हम चिर काल से खडे हैं, क्योंकि हम देखते हैं कि हर एक वस्तु माया है। महामाया के बच्चे सदा बचे रहते हैं, परन्तु भोग रूपी अविद्या के लाडले देखते ही देखते कूच कर जाते हैं।

यहाँ एक दूसरे विषय में भी प्राच्य और पाश्चात्य विचार-प्रणाली में भेद है। जिस तरह तुम जर्मन दर्शन में हेगेल और शॉपेनहॉवर के मत देखते हो, बिल्कुल उसी तरह के विचार प्राचीन भारत में भी मिलते हैं। परन्तु हमारे सौभाग्य से हेगेलीय मतवाद का उन्मूलन उसकी अकुर-दशा में ही हो गया था, हमारी जन्मभूमि में उसे बढ़ने और उसकी विषाक्त शाखा-प्रशाखाओं को फैलने नहीं दिया गया। हेगेल का एक मत यह है कि एकमात्र परम सत्ता अन्वकारमय और विश्रुखल है, और साकार व्यष्टि उसकी अपेक्षा श्रेष्ठ है अर्थात् अ-जगत् से (जगत् नहीं है, इस भाव में) जगत् (जगत् है यह भाव) श्रेष्ठ है, मुक्ति से ससार श्रेष्ठ है। हेगेल का यही मूल भाव है, अतएव उनके मत में तुम ससार में जितना ही अवगाहन करोगे, जितनी ही तुम्हारी आत्मा जीवन के कर्मजालों से आवृत होगी, उतना ही तुम उन्नत होगे। पश्चिमवाले कहते हैं—क्या तुम देखते नहीं, हम कौसी बड़ी बड़ी इमारतें उठाते हैं, सड़कें साफ रखते हैं, हर तरह के सुख भोगते हैं? इसके पीछे—प्रत्येक इन्द्रिय-भोग के पीछे—दुःख, वेदना, पैशाचिकता और घृणा-विद्वेष चाहे भले ही छिपे हो, किन्तु उससे कोई हानि नहीं।

दूसरी ओर हमारे देश के दार्शनिक पहले ही से यह घोषणा कर रहे हैं कि हर एक अभिव्यक्ति, जिसे तुम विकास कहते हो, उस अव्यक्त की अपने को व्यक्त करने की निरर्थक चेष्टा मात्र है। हे ससार के सर्वशक्तिशाली कारणस्वरूप, तुम छोटी छोटी गडहियों में अपना स्वरूप देखने का वृथा प्रयत्न करते हो! कुछ दिनों के लिए यह प्रयत्न करके तुम समझोगे कि यह व्यर्थ था, और जहाँ से तुम आये हो, वही

कीटा बनने की ठालने। यही वीरप्य है, और यही है कर्म का  
 किना त्वात्त या वीरप्य के बर्म का नैतिकता का उत्पन्न  
 ही से बर्म का कारण होता है और त्वात्त ही में  
 'त्वात्त करो, त्वात्त करो—इसके बिना वीर वृत्त का न यही है।'  
 न केवल त्वात्तकेवल अन्तर्गतता।

'मूल्य न कल्पनों से होती है, न कर्म से न कर्म से न  
 से निकला है।'

यही भारत के सब शास्त्रों का भाव है। यह सब है कि किसी भी  
 महापुरुषों न विहास्य पर बैठे हुए भी संसार के बड़े बड़े त्वात्तों के  
 निर्वाह किया है, परन्तु कर्म जैसे अष्ट त्वात्तों को भी कुछ कर्म के लिए  
 सम्बन्ध छोड़ना पड़ा था। उनके बड़ा त्वात्त क्या वीर कोई था? परन्तु  
 हम सभी कर्मक महत्तमा चाहते हैं? हाँ वे कर्मक हैं—नरे, नृते, कर्मों  
 के कर्मक। कर्मक सब उनके लिए केवल इती बर्म में वा कर्मक है। नृते  
 कर्मक के समाप्त जर्में अद्वैतता नहीं है। वे हमारे भावकर्म के कर्मक हैं।  
 कर्मकर्म की मात्रा बाध कर्म करके हीने एतते पर बाधो। यदि तुम  
 सको तो तुम्हें बर्म मिल सकता है। यदि तुम त्वात्त नहीं कर  
 से लेकर पश्चिम तक बारे संसार में कितनी पुस्तकें हैं उन्हें कर्मक, कर्मक  
 पुस्तकालयों को निकलकर बुराबर पंक्ति ही कर्मके ही परन्तु यदि तुम केवल  
 कर्मकांड में लगे रहो तो यह कुछ नहीं है इसमें भाव्यता नहीं नहीं है। केवल  
 त्वात्त के द्वारा ही इस अन्तर्गत की प्राप्ति होती है। त्वात्त ही अन्तर्गत है।  
 कर्मके बिना इस महापुरुष का भाविकता होता है, यह वीर की ही कर्म है  
 क्या कर्म की वीर कर्म उद्वार नहीं केला। सभी बाध कर्मके कर्मके  
 नाव के लिए वे बनाये हुए हैं के समान कर्मक जाता है—अन्तर्गत कर्मक।

त्वात्त ही भारत की कला है। इती कला को कर्म कर्म में कर्मक, कर्म  
 हुई सभी भाविकों को भारत यही एक कर्मक विचार बांधार के लिए कर, उन्हें  
 कर्म कर्म के कलाकारों एवं कलाकारों के विषय कर्मक कर रहा है। यह कर्म  
 कर्मक कर कर्मक यह है, 'कर्मक त्वात्त के कर्म का भाविक के कर्म का कर्मक  
 करो नहीं ही न कर्मके। वे हिन्दुओं, इस त्वात्त की कला को न छोड़ना—इसमें  
 वीर अंधा उद्वारो। यदि तुम कर्मक बर्म ही हो और त्वात्त कर्मके ही न कर्म कर्म,  
 परन्तु कर्मक को छोड़ना न करो। इन कर्मक है—इस संसार का कर्मक कर्मक,  
 परन्तु कर्मक के द्वारा में कर्म रही, कर्मों का कर्म कर्मक कर्म, कर्मके  
 कर्म कर्मों की कर्मों में कर्म कर्मके। केवल कर्म कर्मके कर्मके ही है

दुर्बल हैं? कारण, यह त्याग का आदर्श अत्यन्त महान् है। क्या हानि है, यदि लडाईं मे लाखो गिर जायें, पर दस सिपाही या केवल दो एक ही वीर विजयी होकर लौटें ! युद्ध मे जिन लाखो लोगो को वीरगति मिलती है, वे सचमुच घन्य हैं।—क्योकि उनके शोणितरूपी मूल्य से विजय-लाभ होता है, एक को छोडकर सारे वैदिक सम्प्रदायो ने इस त्याग ही को अपना एकमात्र आदर्श बनाया है। केवल बम्बई प्रान्त के वल्लभाचार्य सम्प्रदाय ने वैसा नही किया, और तुममे से अनेक को विदित है कि जहाँ त्याग नही, वहाँ अन्त मे क्या दशा होती है। इस त्याग के आदर्श की रक्षा के लिए यदि हमे कट्टरता और निरी कट्टरता स्वीकार करनी पडे, भस्ममडित ऊर्ध्वबाहु जटाजूटधारियो को स्थान देना पडे, तो वह भी अच्छा है। कारण, यद्यपि वे अस्वाभाविक हो सकते हैं तथापि पुरुषत्व का लोप करनेवाली जो विलासिता भारत मे घुसकर हमारा खून पी रही है, सारी जाति को कपटाचरण की शिक्षा दे रही है, उस विलासिता के स्थान मे त्याग का आदर्श रखकर ममग्र जाति को सावधान करने के लिए वे हमारे लिए वाछनीय हैं। अतएव हमे थोडी त्याग-तपस्या चाहिए। प्राचीन काल मे भारत मे त्याग ही की विजय थी, अब भी भारत मे इसे विजय प्राप्त करना है। यह त्याग भारत के आदर्शों मे अब भी सर्वश्रेष्ठ और सर्वोच्च है। यह बुद्ध की भूमि, रामानुज की भूमि, रामकृष्ण परमहंस की भूमि, त्याग की भूमि, वह भूमि, जहाँ प्राचीन काल से कर्मकांड के विरुद्ध प्रतिवाद किया गया और जहाँ आज भी ऐसे सैकडो महापुरुष हैं जिन्होने सब विषयो का त्याग कर दिया और जीवन्मुक्त बने बैठे हैं, क्या वह भूमि अपने आदर्श को छोड देगी ? कदापि नही। यहाँ ऐसे मनुष्य रह सकते हैं, जिनका मस्तिष्क पश्चिमी विलासिता के आदर्श से विकृत हो गया है, यहाँ ऐसे हज्जारो नही, लाखो मनुष्य रह सकते हैं, जो विलास मद मे चूर हो रहे हैं, जो पश्चिम के शाप मे—इन्द्रिय-परतत्रता मे—ससार के शाप मे डूबे हुए हैं, किन्तु इतने पर भी हमारी मातृभूमि मे हज्जारो ऐसे भी होंगे, धर्म जिनके लिए शाश्वत सत्य है और जो ज़रूरत पडने पर फलाफल का विचार किये बिना ही सब कुछ त्याग देने के लिए सदा तैयार हो जायेंगे।

हमारे इन सब सम्प्रदायो मे एक और सामान्य आदर्श है। उसको भी मैं तुम्हारे सम्मुख रखना चाहता हूँ। यह भी एक व्यापक विषय है। यह अद्वितीय विचार केवल भारत ही मे विशेष रूप से पाया जाता है कि धर्म का साक्षात्कार करना चाहिए। नाथमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेघया न बहुना श्रुतेन।—‘इस आत्मा को न कोई वाग्बल से प्राप्त कर सकता है, न बुद्धि-कौशल से और न अधिक शास्त्राध्ययन से।’ इतना ही नही, ससार मे केवल हमारे ही शास्त्र ऐसे हैं, जो घोषणा करते हैं कि आत्मा को कोई न तो शास्त्रों का पाठ करके प्राप्त कर सकता है, न वार्ता



कोटा बनने की ठगोने। यही वैराग्य है, और यही है  
बिना त्याग या वैराग्य के बर्म या नैतिकता का उदय  
ही से बर्म का आरम्भ होता है और त्याग ही में उदयी  
'त्याग करो त्याग करो—इसके सिवा और कुछ पत्र नहीं है।  
न वैराग्य त्यागैकेन अनृतत्वात्कदाचन।

'मुक्ति न सन्तानों से होती है, न वन से न कब से कब  
से मिलता है।

यही भारत के सब शास्त्रों का आदेश है। यह स्पष्ट है कि निम्नलिखित  
महाशक्तियों ने सिंहासन पर बैठे हुए भी संसार के बड़े बड़े त्वागियों के  
निर्वाह किया है परन्तु बलक जैसे श्रेष्ठ त्वागी की भी कुछ मात्र के लिए  
सम्बन्ध छोड़ना पड़ा था। सबसे बड़ा त्वागी क्या और कोई था? परन्तु  
हम सभी जनक कहना चाहते हैं? हाँ वे जनक हैं—नये बूढ़े, बालक  
के जनक। जनक सब उनके लिए केवल इसी बर्म में आ सकता है।  
जनक के समान उनमें ब्रह्मनिष्ठा नहीं है। वे हमारे बापकाक के जनक हैं।  
जनकत्व की भाषा बराब कम करके सीधे रास्ते पर आओ। यदि तुम  
सको तो तुम्हें बर्म मिल सकता है। यदि तुम त्याग नहीं कर सकते तो तुम  
से लेकर बहिष्कृत तक बड़े संसार में बिलगी दुत्तर्क हैं उन्हें जनक, जनक  
पुस्तकाकारों को गिनकर बुराबर वंजित ही सकते हो परन्तु यदि तुम केवल बर्मी  
कर्मकांड में लगे रहे तो वह कुछ नहीं है, इसमें बाष्पातिकता नहीं नहीं है। केवल  
त्याग के द्वारा ही इस अनृतत्व की शक्ति होती है। त्याग ही महाशक्ति है।  
बिनाके भीतर इस महाशक्ति का आधिपत्य होता है, वह और की ही शक्त है  
क्या विश्व की और कब उदर नहीं देखता। सभी बाप ब्रह्मिष्ठ उनके विश्व  
बाप के कुर से बनाये हुए बड़े के बर्मान कब आता है—ब्रह्मण्य लोकात्कदाचन।

त्याग ही भारत की पताका है। इसी पताका को जनक कर्तु में कर्तव्य, नशी  
हुई सभी शक्तियों की भारत यही एक शक्त विचार बांधार डेविड कर, उन्हें  
इस प्रकार के अत्याचारों एवं अत्याचारों के विरुद्ध आचरण कर रहा है। वह सभी  
अकार कर उनके कह रहा है, आचरण त्याग के सब का शक्ति के सब का अकारण  
करो नहीं तो नर आओगे। वे हिन्दुओं इस त्याग की पताका को न लीकता—इसकी  
और उंचा उठाओ। पाई तुम दुर्बल बने ही हो, और त्याग पाई बने ही न कर लो,  
परन्तु अकार को छोड़ न करो। हम दुर्बल हैं—हम संसार का कब नहीं कर लो,  
परन्तु डोंग रकने के इरादे में मत रहो, शक्तों का कब भीकता की शक्तियों से  
हुए अज्ञानी लोगों की शक्तों में नुक कर लो। केवल यह शक्ति ही है जो कि हम

दुर्बल हैं? कारण, यह त्याग का आदर्श अत्यन्त महान् है। क्या हानि है, यदि लड़ाई में लाखों गिर जायँ, पर दस सिपाही या केवल दो एक ही वीर विजयी होकर लौटें। युद्ध में जिन लाखों लोगो को वीरगति मिलती है, वे सचमुच धन्य हैं।— क्योंकि उनके शोणितरूपी मूल्य से विजय-लाभ होता है, एक को छोड़कर सारे वैदिक सम्प्रदायो ने इस त्याग ही को अपना एकमात्र आदर्श बनाया है। केवल बम्बई प्रान्त के वल्लभाचार्य सम्प्रदाय ने वैसा नहीं किया, और तुमसे अनेक को विदित है कि जहाँ त्याग नहीं, वहाँ अन्त में क्या दशा होती है। इस त्याग के आदर्श की रक्षा के लिए यदि हमें कट्टरता और निरी कट्टरता स्वीकार करनी पड़े, भस्ममण्डित ऊर्ध्वबाहु जटाजूटधारियों को स्थान देना पड़े, तो वह भी अच्छा है। कारण, यद्यपि वे अस्वाभाविक हो सकते हैं तथापि पुरुषत्व का लोप करनेवाली जो विलासिता भारत में घुसकर हमारा खून पी रही है, सारी जाति को कपटाचरण की शिक्षा दे रही है, उस विलासिता के स्थान में त्याग का आदर्श रखकर समग्र जाति को सावधान करने के लिए वे हमारे लिए वाञ्छनीय हैं। अतएव हमें थोड़ी त्याग-तपस्या चाहिए। प्राचीन काल में भारत में त्याग ही की विजय थी, अब भी भारत में इसे विजय प्राप्त करना है। यह त्याग भारत के आदर्शों में अब भी सर्वश्रेष्ठ और सर्वोच्च है। यह बुद्ध की भूमि, रामानुज की भूमि, रामकृष्ण परमहंस की भूमि, त्याग की भूमि, वह भूमि, जहाँ प्राचीन काल से कर्मकांड के विरुद्ध प्रतिवाद किया गया और जहाँ आज भी ऐसे सैकड़ों महापुरुष हैं जिन्होंने सब विषयो का त्याग कर दिया और जीवनमुक्त बने बैठे हैं, क्या वह भूमि अपने आदर्श को छोड़ देगी? कदापि नहीं। यहाँ ऐसे मनुष्य रह सकते हैं, जिनका मस्तिष्क पश्चिमी विलासिता के आदर्श से विकृत हो गया है, यहाँ ऐसे हज़ारों नहीं, लाखों मनुष्य रह सकते हैं, जो विलास मद में चूर हो रहे हैं, जो पश्चिम के शाप में—इन्द्रिय-परतत्रता में—संसार के शाप में डूबे हुए हैं, किन्तु इतने पर भी हमारी मातृभूमि में हज़ारों ऐसे भी होंगे, धर्म जिनके लिए शाश्वत सत्य है और जो ज़रूरत पड़ने पर फलाफल का विचार किये बिना ही सब कुछ त्याग देने के लिए सदा तैयार हो जायँगे।

हमारे इन सब सम्प्रदायो में एक और सामान्य आदर्श है। उसको भी मैं तुम्हारे सम्मुख रखना चाहता हूँ। यह भी एक व्यापक विषय है। यह अद्वितीय विचार केवल भारत ही में विशेष रूप से पाया जाता है कि धर्म का साक्षात्कार करना चाहिए। नाथमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेघया न वह्नुना श्रुतेन।—‘इस आत्मा को न कोई वाग्बल में प्राप्त कर सकता है, न बुद्धि-कौशल से और न अद्विक शास्त्राध्ययन से।’ इतना ही नहीं, समार में केवल हमारे ही शास्त्र ऐसे हैं, जो घोषणा करते हैं कि आत्मा को कोई न तो शास्त्रों का पाठ करके प्राप्त कर सकता है, न वाता

से और न व्याख्यान ही की बर्षीकत किन्तु इतना  
 नृप से विषय को मिथ्या है। जब विषय में अन्तर्बुद्धि होती है  
 का स्पष्ट बोध हो जाता है और इस तरह वह प्रत्यक्ष  
 होता है।

एक बात और है। संसार में एक अत्युत्तरीय का  
 कुम्भमुह प्रथा। वह यह कि मेरा बाप तुम्हारा नृप या जब  
 मेरा बाप तुम्हारे बाप का नृप या इसलिये मैं तुम्हारा नृप हूँ।  
 कहना चाहिए, इस सम्बन्ध में अतिरिक्तत बर्ष यह है—नृप  
 का रहस्य समझते हैं कोई किताबी बीड़ा नहीं ब्याखरण  
 नहीं किन्तु वे विन्हीं वेदों के ब्याखर्ष प्राप्त का ज्ञान है। पवित्रों  
 तो इस प्रकार है क्या अत्यन्तकालापरवही चापल्य वेदों से  
 —'विश्व प्रकार बन्धन का नार होनेबाधन तथा केवल बन्धन के नार  
 है, परन्तु उसके मूर्खबान्धु नृपों को नहीं। ऐसे नृपों की हर्षे  
 यदि उन्होंने स्वयं बर्षोपसम्भि नहीं की तो वे हर्षे कील बरी  
 जब मैं इस कम्पकता सहर में एक बालक या तब बर्ष की विन्हीं  
 यहाँ यहाँ जाया करछा या और एक सम्भा व्याख्यान कुलकर  
 पूछता या क्या आपने परमात्मा को देखा है। ईश्वर-बर्षन के नाल ही  
 आत्सर्व का ठिकाना न रहता और एकमात्र ही पानकल्प पर  
 विन्हीं मुझसे कहा 'हाँ हमने ईश्वर को देखा है। उन्होंने केवल  
 किन्तु यह भी कहा 'हम तुम्हें भी ईश्वर-बर्षन के नाल पर  
 चात्सर्वों के पाठ को ठीक-भरीकर अष्ट बर्ष कर के ही वे कोई नृप  
 ही जाता।

बाल्यवरी अन्तवरी अत्यन्तकालापरवही।

केतुर्ब विन्हीं तन्वत् नृपत्वे व नृपत्वे।

(विश्वकाम्य ५८)

—'हर तरह से चात्सर्वों की व्याख्या कर लेने का कीलक केवल पवित्रों के  
 मनोरथन के लिए है मुक्ति के लिए नहीं?

जो 'भोधिब' है—वेदों का रहस्य समझते हैं, और जो 'अन्वित' है—विन्हीं  
 है जो अन्वित है—विन्हीं काम नृपों नहीं क्या है, जो तुम्हें विन्हीं केवल कुली  
 अन्वित की आधा नहीं रखते वे ही अन्वित है, वे ही अन्वित हैं। विन्हीं अन्वित  
 बाकर हर एक वेद-बीदे को पवित्रों और अन्वितों के

पन्थ

पौधे से प्रतिदान नहीं मांगता, क्योंकि भलाई करना उसका स्वाभाविक धर्म है, उसी प्रकार वह आता है ।

तीर्णा स्वय भीमभवार्षव जना अहेतुनान्यानपि तारयन्त ।—वि इस भीषण भवसागर के उस पार स्वय भी चले गये हैं और बिना किसी लाभ की आशा किये दूसरो को भी पार करते हैं । 'ऐसे ही मनुष्य गुरु हैं, और ध्यान रखो दूसरा कोई गुरु नहीं कहा जा सकता । क्योंकि—

अविद्यायामन्तरे वर्तमाना स्वय घीरा पडितम्मन्यमाना ।

जड्वन्यमाना परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धा ॥'

—'अविद्या के अन्वकार मे डूबे हुए भी अपनेको अहकारवश सुधी और महापडित समझनेवाले ये मूर्ख दूसरो की सहायता करना चाहते हैं, परन्तु ये कुटिल मार्ग मे ही भ्रमण किया करते हैं। अन्धे का हाथ पकडकर चलनेवाले अन्धे की तरह ये गुरु और शिष्य दोनो ही गड्ढे मे गिरते हैं।' यही वेदो की उक्ति है। इस उक्ति को अपनी वर्तमान प्रथा से मिलाओ। तुम वेदान्ती हो, तुम सच्चे हिन्दू हो, तुम परम्परानिष्ठ धर्म के माननेवाले हो। मैं तुम्हे और भी सच्चा परम्परानिष्ठ धर्मो बनाना चाहता हूँ। तुम सनातन मार्ग का जितना ही अवलम्बन करोगे, उतने ही बुद्धिमान बनोगे, और जितना ही तुम आजकल की कट्टरता के फेर मे पडोगे, उतने ही तुम मूर्ख बनोगे। तुम अपने उसी अति प्राचीन सनातन पथ से चलो, क्योंकि उस समय के शास्त्रो के हर एक शब्द मे सबल, स्थिर और निष्कपट हृदय की छाप लगी हुई है, उसका हर एक स्वर अमोघ है। इसके बाद राष्ट्र का पतन शुरू हुआ—शिल्प मे, विज्ञान मे, धर्म मे, हर एक विषय मे राष्ट्रीय अवनति का आरम्भ हो गया। उसके कारणो पर विचार-विमर्श करने का अब अवकाश नहीं है, परन्तु अवनति के काल मे जो पुस्तके लिखी गयी हैं, उन सबमे इसी व्याधि और राष्ट्रीय पतन के प्रमाण मिलते हैं—राष्ट्रीय ओज के बदले उनसे केवल रोने की आवाज सुनायी पडती है। जाओ, जाओ—उस प्राचीन समय के भाव लाओ जब राष्ट्रीय शरीर मे वीर्य और जीवन था। तुम फिर वीर्यवान बनो, उसी प्राचीन शरने का पानी पियो—भारत को पुनर्जीवित करने का एकमात्र उपाय अब यही है।

अद्वैतवादियो के मत मे हम लोगो का व्यक्तित्व, जो इस समय विद्यमान है, भ्रम मात्र है। समग्र मसार के लिए इस बात को ग्रहण कर पाना बहुत ही कठिन रहा है। जैसे ही तुम किसी से कहो कि वह 'व्यक्ति' नहीं है, वह इतना डर जाता है

कि उसका अपना व्यक्तित्व चाहे वह कौन ही क्यों  
काँटवाची कहते हैं कि व्यक्तित्व नीची वस्तु कभी रहती ही

पक्ष परिवर्तित हो रहे हो। कभी तुम बाबू के लक्ष्य हुए  
इस समस्य तुम मुक हो अब दूसरी तरह के विचार करते

बाबू के अब दूसरी ही तरह चौबने। हर एक व्यक्ति

यह सच है तो तुम्हारा निजी व्यक्तित्व कहाँ रह क्या ?  
व्यक्तित्व न शरीर के सम्बन्ध में रह जाता है, न मन के सम्बन्ध में  
के सम्बन्ध में। इनके परे वह आत्मा ही है। नीर काँटवाची कहे  
स्वयं कहा है वो अनन्त क्यापि नहीं रह सकते।

स्वयं है। सच तो यह है कि हम विचारहीन प्राणी है, क्या  
केना चाहते हैं। अच्छे तो लक्ष्य का व्यक्ति है क्या बीच ?

पराधी को कमजोर ठीकी से ठीकी बेबी में अनुरोध कर अनन्त में किसी  
पहुँचाना जिसके ऊपर फिर उसकी प्रति न हो।

उनी मिल सकता है, जब यह अतीत की बेबी तक पहुँचानी जाननी। किसी को  
को लेकर तुम उसका विशेषण करते रहो परन्तु अब तक उनी पररव को को को को  
अनन्त तक नहीं पहुँचते तब तक तुम्हें बाधित नहीं निकल सकती नीर काँटवाची  
कहते हैं अस्तित्व के एक इरी अनन्त का है नीर एक माना है, किसी को को को को को  
सत्ता नहीं। कोई भी जो वस्तु नहीं न हो उतमें जो अपाच्य बता है, यह नहीं कहा है  
हम नहीं कहा है नीर नामक्य बाधि जितने हैं सब माना है। शाय नीर एक ही  
तो तुम नीर हम सब एक हो जानने। तुम्हें इस 'अहम्' (मैं) शब्द को अपनी तरह चर्च  
बना चाहिए। शाय सोच कहते हैं 'यदि मैं कहा हूँ तो जो मेरे जो मैं मान्य, नीर  
में नहीं कर सकता ?' यहाँ इस शब्द का व्यवहार सूखे ही चर्च में निराल का  
रहा है। जब तुम अपने को यह समझ रहे हो तब तुम वास्तविक रूप में, नीर  
कोई अमान्य नहीं जो अनन्तोंति है, नहीं रह बने। यह अनन्तर्णय है, अनन्तर्णय  
है, यह कुछ भी नहीं बाह्य उतमें कोई कामना नहीं है, यह अनन्तर्णय नीर  
सम्पूर्ण स्वाधीन है। नहीं कहा है। उनी वास्तविकता में हम सभी एक है।

अन्त ईतबाधियों नीर काँटवाधियों ने यह वडा अनन्त शक्ति होता है। तुम  
देखोने चक्रवार्थ्य जैठे बड़े बड़े राज्यकारों के जो अपने मत की बुद्धि के लिए,  
अब यह अब पर वास्तवों का ऐंसा चर्च किया है जो नेरी अनन्त में अनन्तर्णय नहीं  
गमानुव ने नीर काँटवाधियों का देखे उन के चर्च किया है कि यह अनन्त अनन्त  
ने नहीं आता। हमारे बलिटी तक की यह वारणा है कि सब  
त एक ही सम्मन्ध सत्य है, बाकी सब झूठे है।

एक सद्धिप्रा बहुधा वदन्ति—‘सत्ता एक ही है, परन्तु मुनियो ने भिन्न भिन्न नामो से उसका वर्णन किया है।’ और इस अत्यन्त अद्भुत भाव को हमे अब भी दुनिया को देना है। हमारे जातीय जीवन का मूल मंत्र यही है, और एक सद्धिप्रा बहुधा वदन्ति—इस मूल मंत्र को चरितार्थ करने मे ही हमारी जाति की समग्र जीवन-समस्या का समाधान है। भारत मे कुछ थोडे से ज्ञानियो के अतिरिक्त, मेरा मतलब है, बहुत कम आध्यात्मिक व्यक्तियो को छोडकर हम सब सर्वदा ही इस तत्त्व को भूल जाते हैं। हम इस महान् तत्त्व को सदा भूल जाते हैं और तुम देखोगे, अधिकाश पडित, लगभग ९८ फी सदी, इस मत के पोषक हैं कि या तो अद्वैतवाद सत्य है, अथवा विशिष्टाद्वैतवाद अथवा द्वैतवाद, और यदि तुम पांच मिनट के लिए वाराणसी घाम के किसी घाट पर जाकर बैठो, तो तुम्हे मेरी बात का प्रत्यक्ष प्रमाण मिल जायगा। तुम देखोगे कि इन भिन्न भिन्न सम्प्रदायो का मत लेकर लोग निरन्तर लड-झगड रहे हैं।

हमारे समाज और पडितो की ऐसी ही दशा है। इस परिस्थिति मे एक ऐसे महापुरुष का आविर्भाव हुआ जिनका जीवन उस सामजस्य की व्याख्या था, जो भारत के सभी सम्प्रदायो का आधारस्वरूप था और जिसको उन्होंने कार्यरूप मे परिणत कर दिखाया। इस महापुरुष से मेरा मतलब श्री रामकृष्ण परमहंस से है। उनके जीवन से ही यह बात स्पष्ट हो जाती है कि ये दोनों मत आवश्यक हैं। ये गणितज्योतिष के भूकेन्द्रिक और सूर्यकेन्द्रिक मतो की तरह है। जब बालक को ज्योतिष की शिक्षा दी जाती है, तब उसे भूकेन्द्रिक मत ही पहले सिखलाया जाता है और वह ज्योतिर्विज्ञान के प्रश्नो को भूकेन्द्रिक सिद्धान्त पर घटित करता है। परन्तु जब वह ज्योतिष के सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्त्वो का अध्ययन करता है, तब सूर्यकेन्द्रिक मत की शिक्षा उसके लिए आवश्यक हो जाती है। एव वह पहले से और अच्छा समझता है। पचेन्द्रियो मे फँसा हुआ जीव स्वभावत द्वैतवादी होता है। जब तक हम पचेन्द्रियो मे पडे हैं, तब तक हम सगुण ईश्वर ही देख सकते हैं—सगुण ईश्वर के सिवा और दूसरा भाव हम नही देख सकते। हम ससार को ठीक इसी रूप मे देखेंगे। रामानुज कहते हैं, “जब तक तुम अपने को देह, मन या जीव सोचोगे तब तक तुम्हारे ज्ञान की हर एक क्रिया मे जीव, जगत् और इन दोनों के कारणस्वरूप वस्तुविशेष का ज्ञान रहेगा।” परन्तु मनुष्य के जीवन मे ऐसा भी समय आता है, जब शरीर-ज्ञान विल्कुल चला जाता है, जब मन भी क्रमशः सूक्ष्मानुसूक्ष्म होता हुआ प्रायः अन्तर्हित हो जाता है, जब देहबुद्धि मे डाल देनेवाली भावना, भीति और दुर्बलता सभी मिट जाते हैं। तभी—केवल तभी उस प्राचीन महान् उपदेश की मत्यता ममझ मे आती है। वह उपदेश क्या है ?

इहैव तैश्चित्तः सर्वो देवां कालये  
 निर्दोषं हि सर्वं ब्रह्म तन्मात्रं ब्रह्मणि वै

(

—'दिलका मन साम्यमान में अवस्थित है, जहाँसे यहाँ  
 सब को जीत लिया है। चूँकि ब्रह्म निर्दोष और सर्वत्र सम है  
 में अवस्थित है।

सर्वं पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितसर्ववीक्षणम् ।  
 न ह्यन्यत्प्राप्त्यन्तत्प्राप्तं ततो वासि नरां पश्यात् ॥  
 (गीता ११।१८)

—'सर्वत्र ईश्वर को सम मात्र से सर्वत्र अवस्थित देखते हुए वे ब्रह्म  
 की हिंसा नहीं करते अतः परम भक्ति को प्राप्त होते हैं।

## अल्मोडा-अभिनन्दन का उत्तर

स्वामी जी के अल्मोडा पहुँचने पर वहाँ की जनता ने उन्हें निम्नलिखित मान-पत्र भेंट किया

महात्मन्,

जिस समय से हम अल्मोडा-निवासियों ने यह सुना कि पाश्चात्य देशों में आध्यात्मिक दिग्विजय के पश्चात् आप इंग्लैण्ड से अपनी मातृभूमि भारत फिर वापस आ रहे हैं, उस समय से हम सब आपके दर्शन करने को स्वभावतः बड़े लालायित थे, और सर्वशक्तिमान परमेश्वर की कृपा से आखिर आज वह शुभ घड़ी आ गयी। भक्तशिरोमणि कविसम्राट् तुलसीदास ने कहा भी है, जापर जाकर सत्य सनेहू, सो तेहि मिलहि न कछु सन्देहू। और वही आज चरितार्थ भी हो गया। आज हम सब परम श्रद्धा तथा भक्ति से आपका स्वागत करने को यहाँ एकत्र हुए हैं और हमें हर्ष है कि इस नगर में अनेक कष्ट उठाकर एक वार<sup>१</sup> फिर पधारकर आपने हम सब पर बड़ी कृपा की है। आपकी इस कृपा के लिए धन्यवाद देने को हमारे पास शब्द भी नहीं हैं। महाराज, आप धन्य हैं और आपके वे पूज्य गुरुदेव भी धन्य हैं, जिन्होंने आपको योगमार्ग की दीक्षा दी। यह भारत-भूमि धन्य है, जहाँ इस भयावह कलियुग में भी आप जैसे आर्यवशियों के नेता विद्यमान हैं। आपने अति अल्पावस्था में ही अपनी सरलता, निष्कपटता, महन्चरित्र, सर्वभूतानुकम्पा, कठोर साधना, आचरण और ज्ञानोपदेश की चेष्टा द्वारा समस्त ससार में अक्षय यश लाभ किया है और उस पर हमें गर्व है।

यदि सच पूछा जाय तो आपने वह कठिन कार्य कर दिखाया है, जिसका बीडा इस देश में श्री शंकराचार्य के समय से फिर किसीने नहीं उठाया। क्या हम में से किसीने कभी यह स्वप्न में भी आशा की थी कि प्राचीन भारतीय आर्यों की एक सन्तान केवल अपनी तपस्या के बल पर इंग्लैण्ड तथा अमेरिका के विद्वान् लोगों को यह सिद्ध कर दिखायेगी कि प्राचीन हिन्दू धर्म अन्य सब धर्मों की अपेक्षा श्रेष्ठ है। शिकागो की विश्व-धर्म-महासभा में ससार के विभिन्न धर्म-प्रतिनिधियों के

---

१ पाश्चात्य देशों में जाने से अनेक वर्ष पहले हिमालय-भ्रमणकाल में स्वामी जी यहाँ पधारे थे।



सम्मुख हो वहाँ एकत्र वे आपने भारतीय जनता को बर्न से सिद्ध कर दिखाया कि उन सबकी भाँति कुछ नहीं। उन विद्वानों ने अपने अपने बर्न की ओर देखा अपने अपने देश के लिए आप उन सबसे आपसे निकल गये। आपने वह पूर्व बर्न से निकल बर्न का मुझाबका संसार का कोई भी बर्न नहीं कर सका वरन् उपर्युक्त महाद्वीपों के निज निज स्वार्थों पर वैदिक ज्ञान आपने वहाँ के बहुत से विद्वानों का ध्यान प्राचीन भारत-बर्न उलट आकर्षित कर दिया। इन्हीं में भी आपने प्राचीन हिन्दू बर्न का कर दिया है जिसका अब वहाँ से हटना असम्भव है।

आज तक यूरोप तथा अमेरिका के आधुनिक राज्य राज्य हकीकत रूप से मिश्रित जगत् के परन्तु आपने अपनी आध्यात्मिकता को समझी भाँति छोड़ दी और उन्हें आज यह मान्य हो गया है कि वे बर्न जिसे वे अज्ञानवस 'पाश्चिमीयों की रूढ़ियों का बर्न अपना केवल पोषों का डेर' ही समझा करते थे अतः हीरों की धाम है। वरन्

वरनेकी पुत्री पुत्री न च मूर्खजन्यनि ।

एकजन्यजन्यो ह्यसि न च ज्ञानयोऽसि च ॥

—'ती मूर्ख पुत्रों की अपेक्षा एक ही पुत्री पुत्र अच्छा है एक ही कर्मका बंधन का विनाश करता है तात्पर्य नहीं। अतः मैं आप जैसे धार्मिकता धार्मिकता का जीवन ही संसार के लिए कल्याणकर है और आपका ज्ञान ही उल्टी ही है। वहाँ के आपने ही अपनी पुष्पात्वा लक्ष्मणों से ही ज्ञानला निकली है। वहाँ के आज तक मिलने ही तीन समुद्र के इस पार से सब पार गठके हैं, वरन् केवल आपने ही अपनी पूर्व मुक्ति के बल से हमारे इस प्राचीन हिन्दू बर्न की अज्ञानता समुद्र के पार अन्य देशों में सिद्ध कर दिखाया। जगत् का धर्म आपने मान्य जाति को आध्यात्मिकता का ज्ञान कराना ही अपने जीवन का जीवन का ज्ञान है और धार्मिक ज्ञान का उपदेश देने के लिए आप ही प्रसन्न हैं।

हमें यह सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि वहाँ हिमाचल की ओर मैं आपका विचार एक मठ स्थापित करने का है और हमारी ईश्वर से प्रार्थना है कि आपका यह जीवन सफल हो। अकराचार्य ने भी अपनी आध्यात्मिक विधिधर्म के लक्ष्य प्राप्त के प्राचीन हिन्दू बर्न के रक्षणार्थ हिमाचल में अरुणाचल में एक मठ स्थापित किया था। इसी प्रकार यदि आपकी भी इच्छा पूर्व हो चाहे तो उसके उत्तरार्थ का बड़ा हित होता। इस मठ के स्थापित हो जाने से हम पुनः विद्वानों की बड़ा

आध्यात्मिक लाभ होगा और फिर हम इस बात का पूरा यत्न करेंगे कि हमारा प्राचीन धर्म हमारे बीच में से धीरे धीरे लुप्त न हो जाय।

आदि काल से भारतवर्ष का यह प्रदेश तपस्या की भूमि रहा है। भारतवर्ष के बड़े बड़े ऋषियों ने अपना समय इसी स्थान पर तपस्या तथा साधना में बिताया है, परन्तु वह तो अब पुरानी बात हो गयी और हमें पूर्ण विश्वास है कि यहाँ मठ की स्थापना करके कृपया आप हमें उसका फिर अनुभव करा देंगे। यही वह पुण्य-भूमि है जो भारतवर्ष भर में पवित्र मानी जाती थी तथा यही सच्चे धर्म, कर्म, साधना तथा सत्य का क्षेत्र था, यद्यपि आज समय के प्रभाव से वे सब बातें नष्ट होती जा रही हैं। और हमें विश्वास है कि आपके शुभ प्रयत्नों द्वारा यह प्रदेश फिर प्राचीन धार्मिक क्षेत्र में परिणत हो जायगा।

महाराज, हम शब्दों द्वारा प्रकट नहीं कर सकते कि आपके यहाँ पधारने से हमको कितना हर्ष हुआ है। ईश्वर आपको चिरजीवी करे, आपको पूर्ण स्वास्थ्य प्रदान करे तथा आपका जीवन परोपकारी हो। आपकी आध्यात्मिक शक्तियों की उत्तरोत्तर उन्नति हो, जिससे आपके प्रयत्नों द्वारा भारतवर्ष की इस दुरवस्था का शीघ्र ही अन्त हो जाय।

लाला बदरी शा की ओर से पंडित हरिनाम पांडे ने और एक मानपत्र पढा। एक अन्य पंडित जी ने भी इस अवसर पर एक संस्कृत मानपत्र पढा। जितने दिन स्वामी जी अल्मोडे में थे, उतने दिन वे शा जी के यहाँ अतिथि के रूप में रहे थे।

स्वामी जी ने मानपत्रों का निम्नलिखित उत्तर दिया

### स्वामी जी का भाषण

यह स्थान हमारे पूर्वजों के स्वप्न का देश है, जिसमें भारत जननी श्री पार्वती जी ने जन्म लिया था। यह वही पवित्र स्थान है, जहाँ भारतवर्ष का प्रत्येक यथार्थ सत्य-पिपासु व्यक्ति अपने जीवन-काल के अन्तिम दिन व्यतीत करना चाहता है। इसी दिव्य स्थान के पहाड़ों की चोटियों पर, इसकी गुफाओं के भीतर तथा इसके कल-कल बहनेवाले झरनों के तट पर महर्षियों ने अनेकानेक गूढ़ भावों तथा विचारों को सोच निकाला है, उनका मनन किया है। और आज हम देखते हैं कि उन विचारों का केवल एक अंश ही इतना महान् है कि उस पर विदेशी तक मुग्ध हैं तथा समार के घुरघुर विद्वानों एवं मनीषियों ने उसे अतुलनीय कहा है। यह वही स्थान है, जहाँ मैं बचपन से ही अपना जीवन व्यतीत करने की सोच रहा हूँ और जैसा तुम सब जानते हो मैंने कितनी ही बार इस बात की चेष्टा की है कि मैं यहाँ रह सकूँ। परन्तु उपयुक्त समय के न आने से, तथा मेरे सम्मुख बहुत सा कार्य

होने के कारण मैं इस पवित्र स्वाम के अधिक  
 कि मैं अपने जीवन के क्षेत्र में इसी विचारों में  
 मग्न रह चुके हूँ, यहाँ जीवन का कर्म कर्म  
 मैं यह सब उस क्षेत्र के अन्तर्गत कर  
 मेरी किताबी इच्छा है कि मैं पूर्ण शान्ति में तथा निरा  
 रहूँ—लेकिन ही इतनी आशा करूँ है तथा मैं प्रार्थना  
 भी करता हूँ कि संसार के कर्म सब स्वामी को छोड़  
 नहीं जाती होंगे।

इस पवित्र प्रवेश के निवासी कर्मजो, तुम लोगों के मेरे  
 हुए छोटे से काम के लिए कृपापूर्वक भी अर्थात्पूर्वक कर्म  
 तुम्हें अनेकानेक कर्मदाय देता हूँ। परन्तु इस कर्म मेरा सब  
 किताबी क्षेत्र के कर्म के अन्तर्गत मैं कुछ भी करना नहीं चाहता। यहाँ  
 जैसे विचारों की एक बोली के बाद दूसरी बोली मेरी इच्छा के  
 मेरी काम करने की समस्त इच्छाएँ तथा भाव भी मेरे  
 हुए थे और और शान्ति से होने लगे और इस निम्न पर  
 कि क्या कर्म हुआ है तथा भविष्य में क्या कर्म होना मेरा सब  
 शास्त्र भाव भी और शिव तथा विष्णु की विद्या हों विचारों के अन्तर्गत  
 से देता रहा है, जो इस स्वाम के वातावरण में भी प्रतिबिम्बित ही रहे हैं, यहाँ  
 विद्या निवासी मैं भाव भी नहीं की कर्मकर्मदायिणी धरिताओं में तुम्हारे ही  
 यह भाव है—स्वाम।

तब कस्तु भवामिन्त बुद्धि नृपति वीराम्भेवात्मन्—इस संसार में अनेक  
 कस्तु में अर्थ भरा है यह सब कर्म वीराम्भे से ही दूर हो जाता है, अनेक कस्तु  
 निर्भय हो सकता है। अथवा यह वीराम्भे का ही स्वाम है। निम्न, सब कर्म  
 मग्न भी कम है तथा परिस्थिति भी ऐसी नहीं है कि मैं तुम्हारे अन्तर्गत कर्म  
 कर सकूँ। अन्तर्गत मैं नहीं कहकर अपना भाव्य अन्तर्गत करता हूँ कि विचारों  
 हिमालय वीराम्भे एवं स्वाम के मूलक है तथा यह अर्थोन्मत्त विद्या, जो हम कर्मजो  
 को नहीं देने गये स्वाम ही है। जिस प्रकार हमारे पूर्वज अपने जीवन के अन्तर्गत  
 में इस हिमालय पर शिव हुए अर्थ ज्ञान के अन्तर्गत भविष्य में नृपति पर ही  
 अन्तर्गामी आत्माएँ इस विचारों की और अन्तर्गत होकर सभी अन्तर्गत  
 यह सब मग्न होना अब कि जिस विचार मन्त्रियों के अन्तर्गत के अन्तर्गत  
 नहीं किने यहाँ अब धार्मिक अन्तर्गत के अन्तर्गत का वीराम्भे  
 सब हमारे और तुम्हारे सब मन्त्रियों अन्तर्गत विचारों

मनुष्य मात्र यह समझ लेगा कि केवल एक ही चिरन्तन धर्म है और वह है स्वयं में परमेश्वर की अनुभूति, और शेष जो कुछ है वह सब व्यर्थ है। यह जानकर अनेक व्यग्र आत्माएँ यहाँ आयेंगी कि यह ससार एक महा धोखे की टट्टी है, यहाँ सब कुछ मिथ्या है और यदि कुछ सत्य है तो वह है ईश्वर की उपासना—केवल ईश्वर की उपासनाएँ।

मित्रो, यह तुम्हारी कृपा है कि तुमने मेरे एक विचार का जिक्र किया है और मेरा वह विचार इस स्थान पर एक आश्रम स्थापित करने का है। मैंने शायद तुम लोगों को यह बात काफी स्पष्ट रूप से समझा दी है कि यहाँ पर आश्रम की स्थापना क्यों की जाय तथा ससार में अन्य सब स्थानों को छोड़कर मैंने इसी स्थान को क्यों चुना है, जहाँ से इस विश्वधर्म की शिक्षा का प्रसार हो सके। कारण स्पष्ट ही है कि इन पर्वतश्रेणियों के साथ हमारी हिन्दू जाति की सर्वोत्तम स्मृतियाँ सबद्ध हैं। यदि यह हिमालय धार्मिक भारत के इतिहास से पृथक् कर दिया जाय तो शेष बहुत कम रह जायगा। अतएव यही पर एक केन्द्र होना चाहिए—जो कर्मप्रधान न हो, वरन् शान्ति का हो, ध्यान-वारण का हो, और मुझे पूर्ण आशा है कि एक न एक दिन ऐसा अवश्य होगा। मैं यह भी आशा करता हूँ कि तुम लोगों से फिर और कभी मिलूंगा जब तुमसे वार्तालाप का इससे अच्छा अवसर होगा। अभी मैं इतना ही कहता हूँ कि तुमने मेरे प्रति जो प्रेमभाव दिखलाया है, उसके लिए मैं बड़ा कृतज्ञ हूँ और मैं यह मानता हूँ कि तुमने यह प्रेम तथा कृपा मुझ व्यक्ति के प्रति नहीं दिखायी है, वरन् एक ऐसे के प्रति दिखायी है जो हमारे प्राचीन हिन्दू धर्म का प्रतिनिधि है। हमारे इस धर्म की भावना हमारे हृदयों में सदैव बनी रहे। ईश्वर करे, हम सब सदैव ऐसे ही शुद्ध बने रहें, जैसे हम इस समय हैं तथा हमारे हृदयों में आध्यात्मिकता के लिए उत्साह भी सदैव इतना ही तीव्र रहे।

## वैदिक उपदेश तार्किक और

जब स्वामी जी के मन्त्रोद्देश में ठहरने की अवधि

उनके वहाँ के मित्रों ने उनसे प्रार्थना की कि आप कृपया एक स्वामी जी ने उनकी प्रार्थना वर विचार कर उन्हें अपनी भाषा में व्याख्यान देने का उनका यह वृत्त ही व्यक्त करे। धीरे धीरे बातचीत शुरू किया परन्तु बीच ही अपने विषय पर ही वेर में उन्होंने यह अनुभव किया कि जैसे जैसे वे बोलते जाते उपसृष्ट शब्द तथा वाक्य निकलते जाते थे। वहाँ पर कुछ क्षण यह अनुमान करते थे कि हिन्दी भाषा में व्याख्यान देने की कठिनाई पड़ती है कहने लगे कि इस व्याख्यान में स्वामी जी की पूर्ण और सम्मत्त यह अपने बंध का अधिकारी था। उनके व्याख्यान में अविच्छिन्न प्रयोग से यह भी सिद्ध हो गया कि कल्पित-कथा की विद्या में स्वामी जी स्वजातीय सम्भावनाएँ हैं।

स्वामी जी ने और एक वाक्य इतना मध्य में बोली में भी लिख कर। समा के अध्यक्ष ने गुरबा रेजिमेंट के कर्नल पुनी। उस वाक्य का विषय 'वैदिक उपदेश तार्किक और व्यावहारिक कितना सारंग इस प्रकार है: पहले स्वामी जी ने इस बात का ऐतिहासिक वर्णन किया कि किसी व्यक्ति की ज्ञान की उत्पत्ति की उत्पत्ति किन्तु प्रकार पड़ती है तथा वह ज्ञान जहाँ जहाँ जन्म जातिमें ही जीवती जाती है, उस ईश्वर की उत्पत्ति की पड़ती जाती है। इसके बाद उन्होंने वेदों के रूप विशेषताओं तथा उनकी विचारों का संक्षेप में वर्णन किया और फिर आत्मा के विषय पर कुछ प्रकाश डाला। इस विषय में वे पाश्चात्य प्रभावी से तुलना करते हुए उन्होंने बताया कि वह प्रभावी वैदिक तथा मौखिक महत्त्व के रूढ़ियों का उत्तर बाह्य जगत् में होने की चेष्टा करती है जब कि प्राच्य प्रभावी इन सब बातों का समाधान बाह्य प्रकृति में न पाकर उसे अपनी अन्तरात्मा में ही ढूँढ निकालने की चेष्टा करती है। उन्होंने इस बात का ठीक ही भाषा किया है कि हिन्दू जाति को ही इस बात का वीर्य है कि वे सब चीजों में अंत निरीक्षण प्रभावी की शोच निकाला और वह उनका यह ज्ञान की अपनी चीज तथा विशेषता है। उची जाति ने मन्त्र

की अमूल्य निधि भी दी है जो उसी प्रणाली का फल है। स्वभावतः इस विषय के वाद, जो किसी भी हिन्दू को अत्यन्त प्रिय है, स्वामी जी आध्यात्मिक गुरु होने के नाते उस समय मानो आध्यात्मिकता के शिखर पर ही पहुँच गये, जब वे आत्मा तथा ईश्वर के सम्बन्ध की चर्चा करने लगे, जब यह दर्शाने लगे कि आत्मा ईश्वर से एकरूप हो जाने के लिए कितनी लालायित रहती है तथा अन्त में किस प्रकार ईश्वर के साथ एकरूप हो जाती है। और कुछ समय के लिए सचमुच ऐसा ही भास हुआ कि वक्ता, वे शब्द, श्रोतागण तथा सभी को अभिभूत करनेवाली भावना मानो सब एकरूप हो गये हो। ऐसा कुछ भान ही नहीं रह गया कि 'मैं' या 'तू' अथवा 'मेरा' या 'तेरा' कोई चीज़ है। छोटी छोटी टोलियाँ जो उस समय वहाँ एकत्र हुई थी, कुछ समय के लिए अपने अलग अलग अस्तित्व को भूल गयीं तथा उस महान् आचार्य के श्रीमुख से निकले हुए शब्दों द्वारा प्रचंड आध्यात्मिक तेज में एकरूप हो गयीं, वे सब मानो मन्त्रमुग्ध से रह गये।

जिन लोगों को स्वामी जी के भाषण सुनने का बहुधा अवसर प्राप्त हुआ है, उन्हें इस प्रकार के अन्य कई अवसरों का भी स्मरण ही आयेगा, जब वे वास्तव में जिज्ञासु तथा ध्यानमग्न श्रोताओं के सम्मुख भाषण देने वाले स्वयं स्वामी विवेकानन्द नहीं रह जाते थे, श्रोताओं के सब प्रकार के भेद-भाव तथा व्यक्तित्व विलुप्त हो जाते थे, नाम और रूप नष्ट हो जाते थे तथा केवल वह सर्वव्यापी आत्म-तत्त्व रह जाता था, जिसमें श्रोता, वक्ता तथा उच्चारित शब्द सब एकरूप होकर रह जाते थे।

## भक्ति

(सियालकोट में बिना हुआ वास्तव)

पंजाब तथा काश्मीर से निर्गम्य भिखारी घर स्वामी की यात्रा की। काश्मीर में वे एक जूने के कान्हा लकड़वा रहे गेस तथा उनके भाइयों में स्वामी की के कान्हा की कड़ी उपासना में कुछ दिनों तक गरीब राजकपिड़ी और बन्धु में रहे, कहीं कहीं जूने के कान्हा के आश्रय लिया। फिर वह सियालकोट बसे और कहीं कहीं भी जूने के कान्हा का आश्रय लेने लगे। एक आश्रय लेने की वे वा और एक हिन्दी में। हिन्दी आश्रय लेने का 'भक्ति' विचार संश्लेष विवरण नीचे दिया जा रहा है।

संसार में कितने धर्म हैं उनकी उपासना प्रथाओं में विभिन्न होते हुए भी वे वस्तुतः एक ही हैं। किसी किसी स्थान पर जो लोग भिखारियों का निर्वासन करने में उपासना करते हैं, कुछ लोग भक्ति की उपासना करते हैं। किसी किसी स्थान में लोग मूर्ति-पूजा करते हैं तथा कितने ही वास्तव ईश्वर के अस्तित्व में ही विश्वास नहीं करते। ये सब ठीक हैं। इन सबमें प्रथम विभिन्नता विद्यमान है, किन्तु की प्रत्येक धर्म के सार, उनके मूल तथ्य उनके वास्तविक ज्ञान के अन्तर्गत एक वे हैं तो वे सर्वथा अभिन्न हैं। इस प्रकार के भी धर्म हैं जो ईश्वर-पूजा की आवश्यकता ही नहीं स्वीकार करते। यही धर्म वे ईश्वर का अस्तित्व ही नहीं मानते। किन्तु तुम देखोगे वे सभी धर्मोन्मुखी साधु-महात्माओं की ईश्वर की कर्म उपासना करते हैं। बौद्ध धर्म इस बात का उल्लेखनीय उदाहरण है। भक्ति सभी धर्मों में है, कहीं ईश्वर भक्ति है तो कहीं महात्माओं के प्रति भक्ति का बोध है। सभी का यह एक भक्ति-रूप उपासना का सर्वोपरि प्रमाण देखा जाता है। ज्ञान-साधन की अपेक्षा भक्ति-साधन करना सहज है। ज्ञान-साधन करने में कठिन ज्ञानार्थ और अनुकूल परिस्थितियों की आवश्यकता होती है। कठिन उपासना स्वयं एवं रोचक न होने से तथा मन सर्वथा विषयो से अनालस्य न होने से मन का आश्रय नहीं किया जा सकता किन्तु सभी धर्मोन्मुखी के जो लोग कड़ी उपासना के अर्थ प्राप्त कर सकते हैं। भक्तिमार्ग के आचार्य सांख्यिक भाषा में कहा है कि ईश्वर के प्रति अतिशय अनुराग को भक्ति कहते हैं। प्रज्ञान के भी यही अर्थ है कि भक्ति किसी व्यक्ति को एक दिन मोक्ष न मिले तो उसे उपासना शुरू कर लेना ही मूल्य होने पर उसको कड़ी उपासना होती है। जो

उनके भी प्राण भगवान् के विरह में इसी प्रकार छटपटाते हैं। भक्ति में यह बड़ा गुण है कि उसके द्वारा चित्त शुद्ध हो जाता है और परमेश्वर के प्रति दृढ़ भक्ति होने से केवल उसीके द्वारा चित्त शुद्ध हो जाता है। नाम्नामकारि बहुधा निजसर्व-शक्ति '—'हे भगवन् तुम्हारे असख्य नाम हैं और तुम्हारे प्रत्येक नाम में तुम्हारी अनन्त शक्ति वर्तमान है।' और प्रत्येक नाम में गम्भीर अर्थ गभित है। तुम्हारे नाम उच्चारण करने के लिए स्थान, काल आदि किसी भी चीज का विचार करना आवश्यक नहीं। हमें सदा मन में ईश्वर का चिन्तन करना चाहिए और इसके लिए स्थान, काल का विचार नहीं करना चाहिए।

ईश्वर विभिन्न साधकों के द्वारा विभिन्न नामों से उपासित होते हैं, किन्तु यह भेद केवल दृष्टिमात्र का है, वास्तव में कोई भेद नहीं है। कुछ लोग सोचते हैं कि हमारी ही साधना-प्रणाली अधिक कार्यकारी है, और दूसरे अपनी साधना-प्रणाली को ही मुक्ति पाने का अधिक सक्षम उपाय बताते हैं। किन्तु यदि दोनों की ही मूल भक्ति का अनुसन्धान किया जाय तो पता चलेगा कि दोनों ही एक हैं। शैव शिव को ही मन्त्रपिशा अधिक शक्तिशाली समझते हैं। वैष्णव विष्णु को ही सर्वशक्तिमान मानते हैं, देवी के उपासकों के लिए देवी ही जगत् में सबसे अधिक शक्तिशालिनी हैं। प्रत्येक उपासक अपने सिद्धान्त की अपेक्षा और किसी बात का विश्वास ही नहीं करता, किन्तु यदि मनुष्य को स्थायी भक्ति की उपलब्धि करनी है तो उसे यह द्वेष-बुद्धि छोड़नी ही होगी। द्वेष भक्ति-पथ में बड़ा बाधक है—जो मनुष्य उसे छोड़ सकेगा, वही ईश्वर को पा सकेगा। तब भी इष्ट-निष्ठा विशेष रूप से आवश्यक है। भक्तश्रेष्ठ हनुमान ने कहा है

श्रीनाथे जानकीनाथे अभेद परमात्मनि ।

तथापि मम सर्वस्व राम कमललोचन ॥

—'मैं जानता हूँ, जो परमात्मा लक्ष्मीपति हैं, वे ही जानकीपति हैं, तथापि कमललोचन राम ही मेरे सर्वस्व हैं।' प्रत्येक मनुष्य का स्वभाव जन्म से ही औरों से भिन्न होता है और वह तो उसके साथ बना ही रहेगा। समस्त ससार किसी समय एक धर्मावलम्बी नहीं हो सकता, इसका मुख्य कारण यही भावों में विभिन्नता है। ईश्वर करे, ससार कभी भी एक धर्मावलम्बी न हो। यदि कभी ऐसा हो जाय तो ससार का सामजस्य नष्ट होकर विशृङ्खलता आ जायगी। अस्तु, मनुष्य को अपनी ही प्रकृति का अनुसरण करना चाहिए। यदि मनुष्य को ऐसे गुरु मिल



जानें जो उसको जसीके भावतुल्य मार्ग पर बख्तर मनुष्य उन्नति करने में समर्थ होया। उसको ऊर्ध्वी धारणी करनी होगी। जो व्यक्ति विश्व एव पर बख्तर की बख्तर देना चाहिए किन्तु यदि इन उसे दूसरे मार्ग पर वह उसके पास जो कुछ है, उसे भी छोड़ देना वह किसी विश्व मति एक मनुष्य का बेहरा दूसरे के बेहरे से विश्व होता मनुष्य की प्रकृति दूसरे की प्रकृति से भिन्न होती है। किसी प्रकृति के ही अनुसार बख्तर देने में क्या आपत्ति है? एक बख्तर है—यदि उसके बहाव को ठीक कर ली को लगी बारा अधिक तेज हो पायमी और मेव बड़ बावना। किन्तु यदि की विद्या को बख्तर कर उसे दूसरी विद्या में प्रवाहित करनी का तो तुम यह परिणाम देखो कि उसका परिमाण बीच हो बावना नी कम हो बावना। यह बीच एक बड़े महत्त्व की चीज है। उक्त बख्तर बाव के अनुसार ही बख्तरा चाहिए। भारत में विविध बर्गों के बख्तरा नहीं था बरन् प्रत्येक बर्ग स्वाधीन बाव से बख्तरा काम करता था। यहाँ अभी तक प्रकृत बर्गनाथ बना है। इस स्थान पर यह बात भी बख्तरा होगी कि विभिन्न बर्गों में तब विरोध उत्पन्न होता है, जब मनुष्य वह विचारों के सेवा है कि सत्य का मूल मंत्र मेरे ही पास है और जो मनुष्य मूल सेवा करता वह मूर्ख है और दूसरा व्यक्ति सोचता है कि मनुष्य व्यक्ति ही है, बख्तरा बगर वह ऐसा न होता तो मेरा अनुभव करता।

यदि ईस्वर की यह इच्छा होती कि सभी लोग एक ही बर्ग का बख्तरा करे तो इतने विभिन्न बर्गों की उत्पत्ति क्यों होती? जब लोगों की एक बख्तरा बनाने के लिए बनेक प्रकार के बख्तरा और बख्तरा हुई किन्तु इससे कोई लाभ नहीं हुआ। तबबार के खोर से किस स्थान पर लोगों की एक बख्तरा बनाने की बख्तरा की लगी यहाँ भी एक की जबह बख्तरा की उत्पत्ति हो लगी—इसलिए इस बात का प्रमाण है। समस्त संसार में सबके अनुकूल एक बर्ग नहीं हो सकता। किन्ता तथा प्रतिक्रिया इन दो बख्तराओं के मनुष्य नगणनीय हुआ है। यदि एक बख्तराओं का प्रयोग मन पर न होता तो मनुष्य कुछ सोच ही न करता। सत्य ही क्यों वह मनुष्य ही न कहा जा सकता। मनुष्य नगणनीय प्राणी है, वह मनुष्य है। मनु मनु के मनुष्य बख्तरा है मनुष्य बख्तरा का बर्ग है नगणनीय। बख्तरा-बख्तरा की बख्तरा के साथ ही धामे पर मनुष्य और एक बावतल्य वह में कोई बख्तरा न रह बावना। ऐसे व्यक्ति को देखकर सबके हृत्त में पूजा का उदक होता।

ईश्वर करे, भारतवर्ष में कभी ऐसी अवस्था न उत्पन्न हो। अतः मनुष्यत्व कायम रखने के लिए एकत्व में अनेकत्व की आवश्यकता है। सभी विषयों में इस अनेकत्व या विविधता की आवश्यकता है, कारण जितने दिन यह अनेकत्व रहेगा, उतने ही दिन जगत् का अस्तित्व भी रहेगा। अवश्य ही अनेकत्व या विविधता कहने से केवल यह अर्थ नहीं समझना चाहिए कि उनमें छोटे-बड़े का अन्तर है। परन्तु यदि सब जीवन के अपने अपने कार्य को समान अच्छाई के साथ करते रहें, तब भी विविधता वैसे ही बनी रहेगी। सभी धर्मों में अच्छे अच्छे लोग हैं, इसलिए सभी धर्म लोगों की श्रद्धा को अपनी ओर आकर्षित करते हैं, अतएव किसी भी धर्म से घृणा करना उचित नहीं।

यहाँ पर यह प्रश्न उठ सकता है—जो धर्म अन्याय की पुष्टि करे, क्या उस धर्म के प्रति भी सम्मान दिखाना होगा? अवश्य ही इस प्रश्न का उत्तर 'नहीं' के सिवा दूसरा क्या हो सकता है? ऐसे धर्म को जितनी जल्दी दूर किया जा सके उतना ही अच्छा है, कारण उससे लोगों का अमंगल ही होगा। नैतिकता के ऊपर ही सब धर्मों की भित्ति प्रतिष्ठित है, सदाचार को धर्म की अपेक्षा भी उच्च स्थान देना होगा। यहाँ पर यह भी समझ लेना चाहिए कि आचार का अर्थ बाह्य और आन्तरिक दोनों प्रकार की शुद्धि से है। जल तथा अन्यान्य शास्त्रोक्त वस्तुओं के प्रयोग से शरीर-शुद्धि हो सकती है, आन्तरिक शुद्धि के लिए मिथ्या भाषण, सुरापान एवं अन्य गीहित कार्यों का त्याग करना होगा। साथ ही परोपकार भी करना होगा। केवल भ्रष्टपान, चोरी, जुआ, झूठ बोलना आदि असत् कार्यों के त्याग से ही काम न चलेगा। इतना तो प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है। इतना करने से मनुष्य किसी प्रशंसा का पात्र न हो सकेगा। अपने कर्तव्य-पालन के साथ साथ दूसरों की कुछ सेवा भी करनी चाहिए। जैसे तुम आत्मकल्याण करते हो, वैसे दूसरों का भी अवश्य कल्याण करो।

अब मैं भोजन के नियम के सम्बन्ध में कुछ कहना चाहता हूँ। इस समय भोजन की समस्त प्राचीन विधियों का लोप हो गया है। लोगों में एक यही चारणा विद्यमान है कि 'इनके साथ मत खाओ, उनके साथ मत खाओ।' सैंकड़ों वर्ष पूर्व भोजन सम्बन्धी जो सुन्दर नियम थे, उनमें आज केवल छुआछूत का नियम ही बचा है। शास्त्र में भोजन के तीन प्रकार के दोष लिखे हैं—(१) जाति दोष—जो खाद्य पदार्थ स्वभाव से ही अशुद्ध है, जैसे प्याज, लहसुन आदि। यह जाति-दुष्ट पाद्य हुआ। जो व्यक्ति इन चीजों को अधिक मात्रा में खाता है, उनमें काम-वासना बढ़ती है और वह अनैतिक कार्यों में प्रवृत्त हो सकता है, जो ईश्वर तथा मनुष्य की दृष्टि में बुरा प्रवृत्ति में घृणित है। (२) गन्ध तथा कीड़े-मकोड़ों में

रूपित आहार को विमितलबोव के कृत कहे है। इस  
 लिए ऐसे स्थान में भोजन करना होना भी कुछ  
 दोष — दुष्ट व्यक्ति से जुड़ा हुआ चाब पचाने की लक्षण  
 का जब सामे से मन में अपवित्र भाव पैदा होते हैं।  
 यदि वह व्यक्ति सम्पत् एवं कुकर्मी हो तो उसके हृदय का  
 इस समय इन सब बातों

तो विषय इसी बात का हृदय नीच है कि जैसी है जैसी  
 हान का जुमा न चाहे नह व्यक्ति किटना ही व्यक्ति  
 आचरण का क्यों न हो। इन सब नियमों की किताब जितनी जितनी है, उतनी ही  
 प्रमाण किती हस्ताई की दुकान पर बाहर देखने के लिए जानना। किताबों में  
 कि मस्तिष्क तब और नग्नगती हुई सब चीजों पर बैठती है, जहाँ-जहाँ  
 उड़कर मिठाई के ऊपर पकती है और हस्ताई के कपड़े कपड़े लटकते हैं  
 हैं। क्यों नहीं सब खरीदनेवाले मिलकर कहते कि दुकान में बीता-बिना-बिना  
 हम सोप मिठाई न खरीदेंगे। ऐसा करने से मस्तिष्क चाब पचाने पर न  
 एवं अपने सामे हीना तथा अन्त्या लक्षणमक बीमारियों के बीमार न  
 भोजन के नियमों में हमें सुधार करना चाहिए, किन्तु हम उद्योग व कर्म  
 के मार्ग की ही और कमजोर बचकर हुए हैं। मनुस्मृति में लिखा है, जब मैं भुक्त  
 न चाहिए, किन्तु हम नरिणों में हर प्रकार का मैका फैलते हैं। इन सब बातों की  
 विवेचना करने पर स्पष्ट प्रतीत होता है कि बाह्य चीज की विशेष बातकर्मण्य  
 है। आस्तिकार भी इस बात को जली मति चाहते थे। किन्तु हम समय का  
 पवित्र-अपवित्र विचारों का प्रकृत उद्देश्य कृत ही नवा है इस समय उद्योग  
 आश्चर्य भाव है। चोरी कर्मों मरवाली अपराधियों को हम जोब जने  
 आदि-बन्धु स्वीकार कर लेते किन्तु यदि एक उद्योग वादीय मनुष्य किसी चीज  
 वादीय व्यक्ति के साथ जो उद्योग के समान सम्माननीय है, ईश्वर जाने,  
 तो वह जाति भुक्त कर दिया जायगा और फिर नह सब के लिए लीज  
 मान किया जायगा। यह प्रथा हमारे देश के लिए विनाशकारी किताब है  
 अस्तु, यह स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि पापी के लक्षण से पाप और लज्जा के  
 लक्षण से साबुठा जाती है और अज्ञेय लक्षण का हृदय के परिष्कार कर्म ही कर्म  
 चीज है।

आध्यात्मिक धृति नहीं अधिक उत्तर करने है। आध्यात्मिक धृति के  
 लिए सब बातें निर्भर निराल और अभावकृत व्यक्तियों की  
 आवश्यकता है। किन्तु क्या हम सर्वथा लज्जा नहीं हैं? क्यों  
नहीं

कि कोई मनुष्य अपने किसी काम के लिए किसी बनी व्यक्ति के मकान पर जाता है और उसे 'गरीब परवर,' 'दीनवन्दु' आदि बड़े बड़े विशेषणों से विभूषित करता है, चाहे वह धनी व्यक्ति अपने मकान पर आये हुए किसी गरीब व्यक्ति का गला ही क्यों न काटता हो। अतः ऐसे धनी व्यक्ति को गरीब परवर, दीनवन्दु कहना स्पष्ट झूठ है और हम ऐसी बातें कहकर ही अपने मन को मलिन करते हैं। इसीलिए शास्त्रों में लिखा है कि यदि कोई व्यक्ति बारह वर्ष तक सत्य भाषणादि के द्वारा चित्तशुद्धि करे और बारह वर्ष तक यदि उसके मन में कोई खराब विचार न आये तो वह जो कहेगा, वही सत्य निकलेगा। सत्य में ऐसी ही अमोघ शक्ति है, और जिसने बाह्य और आभ्यन्तरिक शुद्धि की है वही भक्ति का अधिकारी है। पर भक्ति की विशेषता इस बात में है कि वह स्वयं मन को बहुत शुद्ध कर देती है। यद्यपि यहूदी, मुसलमान तथा ईसाई बाह्य शौच को हिन्दुओं की तरह इतना विशेष महत्त्व नहीं देते, तथापि वे भी किसी न किसी प्रकार से बाह्य शौच का अवलम्बन करते ही हैं—उन्हे भी मालूम हो गया है कि बाह्य शौच की किमी न किसी परिमाण में आवश्यकता है। यद्यपि यहूदियों में मूर्ति-पूजा निषिद्ध थी, पर उनका भी एक मन्दिर था। उस मन्दिर में 'आर्क' नामक एक सन्दूक रखी हुई थी और उस सन्दूक के भीतर 'मूसा के दस ईश्वरादेश' सुरक्षित रखे हुए थे। इस सन्दूक के ऊपर विस्तारित पक्षयुक्त दो स्वर्गीय द्वारों की मूर्तियाँ बनी थी, और उनके ठीक बीच में वे वादल के रूप में ईश्वर के आविर्भाव का दर्शन करते थे। बहुत दिन हुए, यहूदियों का वह प्राचीन मन्दिर नष्ट हो गया, किन्तु उनके नये मन्दिरों की रचना ठीक इसी पुराने ढंग पर हुई है, और इन मन्दिरों में सन्दूक के भीतर बर्म-पुस्तकें रखी हुई हैं। रोमन कैथोलिक और यूनानी ईसाइयों में कुछ रूपों में मूर्ति-पूजा प्रचलित है। वे ईसा की मूर्ति और उनके माता-पिता की मूर्तियों की पूजा करते हैं। प्रोटेस्टेन्टों में मूर्ति-पूजा नहीं है, किन्तु वे भी ईश्वर को व्यक्तिविशेष समझकर उपासना करते हैं। यह भी मूर्ति-पूजा का रूपान्तर मात्र है। पारसियों और ईरानियों में अग्नि-पूजा खूब प्रचलित है। मुसलमान अच्छे अच्छे पीरो-फकीरों की पूजा करते हैं और नमाज के समय कावे की ओर मुंह करते हैं। यह सब देखकर जान पड़ता है कि धर्म-साधना की प्रथमावस्था में मनुष्यों को कुछ बाह्य अवलम्बनों की आवश्यकता पड़ती है। जिस समय मन खूब शुद्ध हो जाता है, उस समय सूक्ष्म से सूक्ष्म विषयों में चित्त एकाग्र करना सम्भव हो सकता है।

'जब जीव ब्रह्म से एकत्व का प्रयत्न करता है, यह सर्वोत्तम है, जब ध्यान का अभ्यास किया जाता है, यह मध्यम कोटि है, जब नाम का

दूषित बाजार को निमित्तबोध से मुक्त क्यूँ है। इस

लिए ऐसे स्वाम में भोजन करना होना जो स्व

बोध —दुष्ट व्यक्ति से दूना हुआ बाव पचाने

का अन्न जाने से मन में अपवित्र भाव पैदा होते हैं।

यदि वह व्यक्ति कम्पट एवं कुकर्मि हो तो उसके हान का

इस समय इन सब बातों

तो सिर्फ़ इसी बात का हठ मौजूब है कि जैसी से जैसी बाति का न होने-किसी-बाति

हान का दूना न सार्वेयि चाहे वह व्यक्ति कितना ही अधिक कर्म-कर्म-कर्म-कर्म

बाधरन का क्यों न हो। इन सब तिकमों की कित्त बाति जेका होखी है, एउकी-काम-काम

प्रमाण किधी हकनार्द की दुकान पर बाकर केवने से मित्र पालन। विद्वानों-कर्म-कर्म

कि मफिखिया सब और भनमनाती हुई सब चीजों पर बैठी है, एउकी-कर्म-कर्म

उककर मिठाई के ऊपर पकती है और हकनार्द के कपड़े खाने-काम-काम-काम-काम

है। क्यों नहीं सब खरीदनेवाले मिलकर कहते कि दुकान में खाना किना-काम-काम

हम सोच मिठाई न खरीदेंगे। ऐसा करने से मफिखिया बाव पचाने पर न के-कर्म-कर्म

एवं अपने साव होना तथा अस्यान्प संश्रमनक बीमारियों के बीडानु व ख-कर्म-कर्म

भोजन के नियमों में हम मुबार करना चाहिए, किन्तु हम उचित न कर-काम-काम

के मार्ग की ही ओर कम्पट अपठर हुए हैं। मनुस्मृति में लिखा है, जब में पुकन

न चाहिए, किन्तु हम नदियों में हर प्रकार का मूला डेकते हैं। इन सब बातों की

विशेषना करने पर स्पष्ट प्रतीत होता है कि बाह्य बाध की विशेष बाध-काम-काम

है। सास्वकार भी इस बात को मची बाति जानते थे। किन्तु इस समय इन सब

पवित्र-अपवित्र विचारों का प्रकृत जहेसम क्यूँ हो गया है, इस समय उकन

बाइम्बर माव शेष है। चोरों सम्पटीं मठवालों अपराधियों को हम जोब कर्म

पाठि-कर्म स्वीकार कर लेते किन्तु यदि एक उकन बाटीम मनुष्य किधी बाध

बाटीम व्यक्ति के साथ जो उठीके समान सम्माननीय है, बैडकर चाहे,

तो वह बाति क्यूँ कर बिना जानना और फिर वह तथा के लिए पकित

मान किना जानना। यह प्रमा हमारे देश के लिए किना-काम-काम-काम-काम

अस्तु, यह स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि पापी के लसर्न के पाप और ताबु के

संसर्ग से ताबुता बाती है और अछू संसर्ग का दूर से परिहार करना ही बाह्य

बाध है।

आध्यात्मिक बुद्धि कही अधिक दुस्तर कार्य है। आध्यात्मिक बुद्धि के

लिए सब बाधन निर्धन विपन्न और बाधाकलसत व्यक्तियों को केव बाति की

बाध-काम-काम है। किन्तु क्या इन सबका उकन बीडनी है? अकाम-काम-काम-काम-काम

कि कोई मनुष्य अपने किसी काम के लिए किसी धनी व्यक्ति के मकान पर जाता है और उसे 'गरीब परवर,' 'दीनवन्वु' आदि बड़े बड़े विशेषणों से विभूषित करता है, चाहे वह धनी व्यक्ति अपने मकान पर आये हुए किसी गरीब व्यक्ति का गला ही क्यों न काटता हो। अतः ऐसे धनी व्यक्ति को गरीब परवर, दीनवन्वु कहना स्पष्ट झूठ है और हम ऐसी बातें कहकर ही अपने मन को मलिन करते हैं। इसीलिए शास्त्रों में लिखा है कि यदि कोई व्यक्ति बारह वर्ष तक सत्य भाषणादि के द्वारा चित्तशुद्धि करे और बारह वर्ष तक यदि उसके मन में कोई खराब विचार न आये तो वह जो कहेगा, वही मृत्यु निकलेगा। सत्य में ऐसी ही अमोघ शक्ति है, और जिसने बाह्य और आन्तरिक शुद्धि की है वही भक्ति का अधिकारी है। पर भक्ति की विशेषता इस बात में है कि वह स्वयं मन को बहुत शुद्ध कर देती है। यद्यपि यहूदी, मुसलमान तथा ईसाई बाह्य शौच को हिन्दुओं की तरह इतना विशेष महत्त्व नहीं देते, तथापि वे भी किसी न किसी प्रकार से बाह्य शौच का अवलम्बन करते ही हैं—उन्हे भी मालूम हो गया है कि बाह्य शौच की किमी न किसी परिमाण में आवश्यकता है। यद्यपि यहूदियों में मूर्ति-पूजा निषिद्ध थी, पर उनका भी एक मन्दिर था। उस मन्दिर में 'आर्क' नामक एक सन्दूक रखी हुई थी और उस सन्दूक के भीतर 'मूसा के दस ईश्वरादेश' सुरक्षित रखे हुए थे। इस सन्दूक के ऊपर विस्तारित पक्षयुक्त दो स्वर्गीय द्वारों की मूर्तियाँ बनी थी, और उनके ठीक बीच में वे बादल के रूप में ईश्वर के आविर्भाव का दर्शन करते थे। बहुत दिन हुए, यहूदियों का वह प्राचीन मन्दिर नष्ट हो गया, किन्तु उनके नये मन्दिरों की रचना ठीक इसी पुराने ढंग पर हुई है, और इन मन्दिरों में सन्दूक के भीतर धर्म-पुस्तकें रखी हुई हैं। रोमन कैथोलिक और यूनानी ईसाइयों में कुछ रूपों में मूर्ति-पूजा प्रचलित है। वे ईसा की मूर्ति और उनके माता-पिता की मूर्तियों की पूजा करते हैं। प्रोटेस्टेन्टों में मूर्ति-पूजा नहीं है, किन्तु वे भी ईश्वर को व्यक्तिविशेष ममज्ञकर उपासना करते हैं। यह भी मूर्ति-पूजा का रूपान्तर मात्र है। पारसियों और ईरानियों में अग्नि-पूजा खूब प्रचलित है। मुसलमान अच्छे अच्छे पीरों-फकीरों की पूजा करते हैं और नमाज के समय कावे की ओर मुंह करते हैं। यह सब देखकर जान पड़ता है कि धर्म-साधना की प्रथमावस्था में मनुष्यों को कुछ बाह्य अवलम्बनों की आवश्यकता पड़ती है। जिस समय मन खूब शुद्ध हो जाता है, उस समय सूक्ष्म से सूक्ष्म विषयों में चित्त एकाग्र करना सम्भव हो सकता है।

'जब जीव ब्रह्म से एकत्व का प्रयत्न करता है, यह सर्वोत्तम है, जब ध्यान का अभ्यास किया जाता है, यह मध्यम कोटि है, जब नाम का

पप किया जाता है, यह निम्न कोटि है और बाह्य पूजा निम्नातिनिम्न है।<sup>१</sup>

किन्तु इस स्थान पर यह अच्छी तरह समझ लेना होगा कि बाह्य पूजा के निम्नातिनिम्न होने पर भी उसमें कोई पाप नहीं है। जो व्यक्ति जैसी उपासना कर सकता है, उसके लिए वही ठीक है। यदि उसे अपने पप से निवृत्त किया गया तो वह अपने कल्याण के लिए, अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए दूसरे किसी मार्ग का अवलम्बन करेगा। इसलिए जो मूर्ति-पूजा करते हैं, उनकी निन्दा करना उचित नहीं। वे उपासि की बिध सीढ़ी तक बढ़ चुके हैं, उनके लिए वही आवश्यक है। ज्ञानी बनों को इन सब व्यक्तियों को व्यग्रसर होने में सहायता करने का प्रयत्न करना चाहिए किन्तु उपासना प्रणाली को केकर धराड़ा करने की आवश्यकता नहीं है। कुछ भोग मन और कोई पुत्र की प्राप्ति के लिए ईश्वर की उपासना करते हैं और अपने को बड़े भागवत समझते हैं किन्तु यह वास्तविक भक्ति नहीं है—वे लोग भी अपने भागवत नहीं हैं। अगर वे सुम हैं कि समुद्र स्थान पर एक साधु आया है और वह तपि का सेना बनाता है तो वे बल के एक बड़ी एकत्र हो आर्योगे तिस पर भी वे अपने को भागवत कहने में झिझक नहीं होते। पुत्र प्राप्ति के लिए ईश्वरोपासना को भक्ति नहीं कह सकते बनी होने के लिए ईश्वरोपासना को भक्ति नहीं कह सकते स्वर्ग-काम के लिए ईश्वरोपासना को भक्ति नहीं कह सकते यहाँ तक कि गरक की यंत्रणा से छूटने के लिए की बनी ईश्वरोपासना का भी भक्ति नहीं कह सकते। भय वा लोभ से कभी भक्ति की उत्पत्ति नहीं हो सकती। वे ही अपने भागवत हैं, जो कह सकते हैं—'हे भगवतीश्वर ! मैं मन मन परम सुन्दरी स्त्री अबका पतित्य कुछ भी नहीं चाहता। हे ईश्वर ! मैं प्रत्येक जन्म में आपकी बहुपुत्री भक्ति चाहता हूँ।' जिस समय यह अवस्था प्राप्त होती है, उस समय मनुष्य सब चीजों में ईश्वर को तथा ईश्वर में सब चीजों को देखने लगता है। उसी समय उसे पूर्ण भक्ति प्राप्त होती है। उसी समय वह ब्रह्मा से लेकर कीटाणु तक सभी वस्तुओं में दिव्य के दर्शन करता है। तभी वह पूरी तरह समझ सकता है कि ईश्वर के अतिरिक्त सत्ता में और कुछ नहीं है और केवल तभी वह अपने को हीन से हीन समझकर मयार्थ भक्त की भाँति ईश्वर

१ कतमो ब्रह्मतर्भावो ध्यानभावस्तु मध्यमः ।

स्तुतिर्बपोऽप्यमो भावो बाह्यपूजाभावमात्मता ॥ महाभारत १४।१२२॥

२ न चर्त न चर्त न च सुन्दरी क्विती वा अवशील कामये ।

मन अग्नि अग्नीश्वरे भवतावभित्तर्हृत्तुकी त्वयि ॥

की उपासना करता है। उस समय उसे बाह्य अनुष्ठान एव तीर्थ-यात्रा आदि की प्रवृत्ति नहीं रह जाती—वह प्रत्येक मनुष्य को ही यथार्थ देवमन्दिरस्वरूप समझता है।

शास्त्रो मे भक्ति का नाना प्रकार से वर्णन किया गया है। हम ईश्वर को अपना पिता कहते हैं, इसी प्रकार हम उसे माता आदि भी कहते हैं। हम लोगो मे भक्ति की दृढ स्थापना के लिए इन सम्बन्धो की कल्पना की गयी है, जिससे हम ईश्वर के अधिक सान्निध्य और प्रेम का अनुभव कर सकें। ये शब्द अत्यन्त प्रेमपूर्ण हैं। सच्चे धार्मिक ईश्वर को अपने प्राणो से भी अधिक प्यार करते हैं, इसलिए वे उसे माता-पिता कहे बिना नहीं रह सकते। रासलीला मे राधा और कृष्ण की कथा को लो। यह कथा भक्त के यथार्थ भाव को व्यक्त करती है, क्योंकि ससार मे स्त्री-पुरुष के प्रेम से अधिक प्रबल कोई दूसरा प्रेम नहीं हो सकता। जहाँ इस प्रकार का प्रबल अनुराग होगा, वहाँ कोई भय, कोई वासना या कोई आसक्ति नहीं रह सकती—केवल एक अच्छे बन्धन दोनो को तन्मय कर देता है। माता-पिता के प्रति सन्तान का जो प्रेम है वह भयमिश्रित है, कारण उनके प्रति उसका श्रद्धा-भाव रहता है। ईश्वर सृष्टि करता है या नहीं, वह हमारी रक्षा करता है या नहीं, इस सबसे हमारा क्या मतलब है और इसकी हम क्यो चिन्ता करें? वह हम लोगो का प्रियतम, आराध्य देवता है, अतः भय के भाव को छोडकर हमे उसकी उपासना करनी चाहिए। जिस समय मनुष्य की सब वासनाएँ मिट जाती हैं, जिस समय वह और किसी विषय का चिन्तन नहीं करता, जिस समय वह ईश्वर के लिए पागल हो जाता है, उसी समय मनुष्य ईश्वर से वस्तुतः प्रेम करता है। सासारिक प्रेमी जिस भाँति अपने प्रियतम से प्रेम करते हैं, उसी प्रकार हमें ईश्वर से भी प्रेम करना होगा। कृष्ण स्वयं ईश्वर थे, राधा उनके प्रेम मे पागल थी। जिन ग्रन्थो मे राधा-कृष्ण की प्रेमकथाएँ वर्णित हैं, उन्हें पढो तो पता चलेगा कि ईश्वर से कैसे प्रेम करना चाहिए। किन्तु इस अपूर्व प्रेम के तत्त्व को कितने लोग समझते हैं? ब्रह्म से ऐसे मनुष्य है जिनका हृदय पाप से परिपूर्ण है, वे नहीं जानते कि पवित्रता या नैतिकता किसे कहते हैं। वे क्या इन तत्त्वो को समझ सकते हैं? वे किसी भाँति इन तत्त्वो को समझ ही नहीं सकते। जिस समय मन से सारे सासारिक वासनापूर्ण विचार दूर हो जाते हैं और जब निर्मल नैतिक तथा आध्यात्मिक भाव-जगत् मे मन की अवस्थिति हो जाती है, उस समय वे अशिक्षित होने पर भी शास्त्र की अति जटिल समस्याओ के रहस्य को समझने मे समर्थ होते हैं। किन्तु इस प्रकार के मनुष्य ससार मे कितने हैं या हो सकते हैं? ऐसा कोई धर्म नहीं है जिसे लोग विकृत न कर दें। उदाहरणार्थ ज्ञान की



दुहाई देकर लोभ बनायाच ही कह सकते हैं कि आत्मा जब देह से सम्पूर्णतया युक्त है, तो देह चाहे जो पाप करे, आत्मा उस कार्य में स्थित नहीं हो सकती। यदि वे ठीक तरह से धर्म का अनुसरण करते तो हिन्दू, मुसलमान ईसाई सबका कोई भी बुराच बर्माबस्म्भी क्यों न हो सभी पवित्रता के बरतारस्वरूप होते। किन्तु मनुष्य अपनी अपनी अच्छी या बुरी प्रकृति के अनुसार परिचाकित होते हैं, यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता। किन्तु संसार में सदा कुछ मनुष्य ऐसे भी होते हैं जो ईश्वर का नाम सुनते ही उत्पन्न हो जाते हैं ईश्वर का मुनगान करत करते त्रिनकी आँखों से प्रेमाभू की प्रबल वारा बहने लगती है। इसी प्रकार के लोभ सच्चे मकठ हैं।

भक्ति की प्रथम अवस्था में भक्त ईश्वर को प्रभु और अपने को दास समझता है। अपनी वैभक्ति आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वह ईश्वर के प्रति इतना अनुमन करता है इत्यादि। इस प्रकार के भावों को एकवच छोड़ देना चाहिए। केवल एक ही आकर्षक शक्ति है और वह है ईश्वर। उसी आकर्षक शक्ति के कारण सूर्य चन्द्र एव अन्याय्य सभी चीजें यथिमान होती हैं। इस संसार की अच्छी या बुरी सभी चीजें ईश्वरप्रभिमुक्त बच रही हैं। हमारे जीवन की सारी बटनाएँ, अच्छी या बुरी हमें उसीकी ओर ले जाती हैं। एक मनुष्य ने दूसरे का अपने स्वार्थ के लिए हून किया। जो कुछ भी हो अपने किए हो या दूसरों के लिए हो प्रेम ही इस कार्य का मूल है। खराब हो या अच्छा हो प्रेम ही सब चीजों का प्रेरक है। घेर जब मँस को मारता है तब वह अपनी या अपने यन्त्रों की मूल मिटाने के लिए ऐसा करता है।

ईश्वर प्रेम का मूर्त रूप है। सदा सब अपराधों को क्षमा करने के लिए प्रस्तुत बनादि जगत् ईश्वर प्रत्येक वस्तु में विद्यमान है। लोभ जालें या न जालें वे उसकी ओर आइष्ट हो रहे हैं। पति की परमानुचिनी स्त्री नहीं जानती कि उमके पति न भी बड़ी महान् दिव्य आकर्षक शक्ति है जो उसको अपने स्वामी की ओर ले जाती है। हमारा उपास्य है—वैबल यही प्रेम का ईश्वर। जब तक हम उमे सप्टा पाकनकटाँ आदि समझते हैं तब तक उसकी बाह्य पूजा आदि की आवश्यकता है किन्तु त्रिस समय इन सारी भावनाओं का परिव्याय कर उस प्रेम का अवतारस्वरूप समझते हैं एवं सब वस्तुओं में उसे और उसमें सब वस्तुओं को देखते हैं, उसी समय हम परा भक्ति प्राप्त हुनी है।

## हिन्दू धर्म के सामान्य आधार

लाहौर पहुँचने पर आर्य समाज और सनातन धर्मसभा दोनों के नेताओं ने स्वामी जी का भव्य स्वागत किया। स्वामी जी ने अपने अल्पकालीन लाहौर-प्रवास के दौरान में तीन भाषण दिये। पहला 'हिन्दू धर्म के सामान्य आधार' पर, दूसरा 'भक्ति' पर और तीसरा विख्यात भाषण 'वेदान्त' पर था। उनका पहला भाषण निम्नलिखित है

### स्वामी जी का भाषण

यह वही भूमि है, जो पवित्र आर्यावर्त में पवित्रतम मानी जाती है, यह वही ब्रह्मावर्त है, जिसका उल्लेख हमारे महर्षि मनु ने किया है। यह वही भूमि है, जहाँ से आत्म-तत्त्व की उच्चाकाक्षा का वह प्रबल स्रोत प्रवाहित हुआ है, जो आनेवाले युगों में, जैसा कि इतिहास से प्रकट है, ससार को अपनी वाढ से आप्लावित करनेवाला है। यह वही भूमि है, जहाँ से उसकी वेगवती नद-नदियों के समान आध्यात्मिक महत्त्वाकाक्षाएँ उत्पन्न हुईं और धीरे धीरे एक धारा में सम्मिलित होकर शक्तिसम्पन्न हुईं और अन्त में ससार की चारों दिशाओं में फैल गयी तथा वज्र-नाम्भीर ध्वनि से उन्होंने अपनी महान् शक्ति की घोषणा समस्त जगत् में कर दी। यह वही वीर भूमि है, जिसे भारत पर चढाई करनेवाले शत्रुओं के सभी आक्रमणों तथा अतिक्रमणों का आघात सबसे पहले सहना पडा था। आर्यावर्त में घुसनेवाली बाहरी बर्बर जातियों के प्रत्येक हमले का सामना इसी वीर भूमि को अपनी छाती खोलकर करना पडा था। यह वही भूमि है, जिसने इतनी आपत्तियाँ झेलने के बाद भी अब तक अपने गौरव और शक्ति को एकदम नहीं खोया। यही भूमि है, जहाँ बाद में दयालु नानक ने अपने अद्भुत विश्व-प्रेम का उपदेश दिया, जहाँ उन्होंने अपना विशाल हृदय खोलकर सारे ससार को—केवल हिन्दुओं को नहीं, वरन् मुसलमानों को भी—गले लगाने के लिए अपने हाथ फैलाये। यही पर हमारी जाति के सबसे बाद के तथा महान् तेजस्वी वीरों में से एक, गुरु गोविन्द सिंह ने धर्म की रक्षा के लिए अपना एव अपने प्राण-प्रिय कुटुम्बियों का रक्त बहा दिया, और जिनके लिए यह खून की नदी बहायी गयी, उन लोगों ने भी जब उनका साथ छोड

दिया तब वे भर्माहित सिंह की माँति चुपचाप दक्षिण दिशा में निर्जन-बास के लिए चले गये और अपने देश-भाइयों के प्रति खपटों पर एक भी कट्ट बचन न लाकर, तनिक भी बसन्तोप प्रकट न कर, सास्त भाव से इहलोक छोड़ कर चले गये।

हे पञ्चमर देशवासी भाइयो ! यहाँ अपनी इस प्राचीन पवित्र भूमि में तुम लोगों के सामने मैं आचार्य के रूप में नहीं खड़ा हुआ हूँ कारण तुम्हें धिंसा देने योग्य ज्ञान मेरे पास बहुत ही थोड़ा है। मैं तो पूर्वी प्रान्त से अपने पश्चिमी प्रान्त के भाइयों के पास इधीकिए आया हूँ कि उनके साथ हृदय खोलकर बर्तावाप करूँ, उन्हें अपने अनुभव बताऊँ और उनके अनुभव से स्वयं लाभ उठाऊँ। मैं यहाँ यह देखने नहीं आया कि हमारे बीच क्या क्या मतभेद है, बरन् मैं तो यह खोजने आया हूँ कि हम लोगों की भिन्न-भूमि कौन सी है। यहाँ मैं यह जानने का प्रयत्न कर रहा हूँ कि वह कौन सा आधार है, जिस पर हम लोग आपस में सदा भाई बने रह सकत हैं किन्तु भीषण पर प्रतिष्ठित होने से वह वाली जो खलकाल से सुगामी है रही है, उत्तरीतर अधिक प्रबल होती रहेगी। मैं यहाँ तुम्हारे सामने कुछ रचनात्मक कार्यक्रम रखने आया हूँ अन्ततमक नहीं। कारण आलोचना के दिन अब चले गये और आज हम रचनात्मक कार्य करने के लिए उत्सुह हैं। यह सत्य है कि ससार को समय समय पर आलोचना की जरूरत हुआ करती है, यहाँ तक कि कठोर आलोचना की भी पर वह केवल अल्पकाल के लिए ही होती है। हमसा के लिए तो उत्पत्तिकारी और रचनात्मक कार्य ही बाधित होते हैं आलोचनात्मक या अन्ततमक नहीं। अगमग पिछके ती बर्ष से हमारे इस देश में सर्वत्र आलोचना की बाड़ सी आ गयी है, उबर सभी अन्धकारमय प्रदेशों पर वा-वालय विज्ञान का तीव्र प्रकाश डाला गया है, जिससे लोगों की दृष्टि अन्य स्थानों की अपेक्षा कानों और गली-कूचों की ओर ही अधिक खिच गयी है। स्वभावतः इस देश में सर्वत्र महान् और ऐजस्वी मियासम्पन्न पुरुषों का जन्म हुआ जिनके हृदय में मर्य और म्याय के प्रति प्रबल अनुराग या जिनके अन्त करण में अपने देश के लिए और सबसे बढ़कर ईश्वर तथा अपने धर्म के लिए अथाप प्रेम था। क्योंकि ये महापुरुष अत्यन्त सविदमतीक थे उनमें देश के प्रति इतना गहरा प्रेम था इगलिए उन्होंने प्रत्येक पशु की जिंसे बुरा समझा तीव्र आलोचना की। अनीतकालीन इन महापुरुषों की जय हो ! उन्होंने देश का बहुत ही बस्याण किया है। पर आज हम एक महावाणी सुगामी दे रही है, 'बल बने बग बरो ! निष्ठा पर्यन्त हा चुकी बार-बर्तन बाँट ही चुका ! अब तो पुनर्निर्माण का फिर से संयत्न करने का समय आ गया है। अब अपनी समस्त

विखरी हुई शक्तियों को एकत्र करने का, उन सबको एक ही केन्द्र में लाने का और उस सम्मिलित शक्ति द्वारा देश को प्रायः सदियों से रुकी हुई उन्नति के मार्ग में अग्रसर करने का समय आ गया है। घर की सफाई हो चुकी है। अब आवश्यकता है उसे नये सिरे से आवाद करने की। रास्ता साफ कर दिया गया है। आर्य सन्तानों, अब आगे बढ़ो।

सज्जनों! इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर मैं आपके सामने आया हूँ और आरम्भ में ही यह प्रकट कर देना चाहता हूँ कि मैं किसी दल या विशिष्ट सम्प्रदाय का नहीं हूँ। सभी दल और सभी सम्प्रदाय मेरे लिए महान् और महिमामय हैं। मैं उन सबसे प्रेम करता हूँ, और अपने जीवन भर मैं यही ढूँढने का प्रयत्न करता रहा कि उनमें कौन कौन सी बातें अच्छी और सच्ची है। इसीलिए आज मैंने सकल्प किया है कि तुम लोगों के सामने उन बातों को पेश करूँ, जिनमें हम एकमत हैं, जिससे कि हमें एकता की सम्मिलन-भूमि प्राप्त हो जाय, और यदि ईश्वर के अनुग्रह से यह सम्भव हो तो आओ, हम उसे ग्रहण करें और उसे सिद्धान्त की सीमाओं से बाहर निकालकर कार्यरूप में परिणत करें। हम लोग हिन्दू हैं। मैं 'हिन्दू' शब्द का प्रयोग किसी बुरे अर्थ में नहीं कर रहा हूँ, और मैं उन लोगों से कदापि सहमत नहीं, जो उससे कोई बुरा अर्थ समझते हैं। प्राचीन काल में उस शब्द का अर्थ था—सिन्धु नदी के दूसरी ओर बसनेवाले लोग। हमसे घृणा करनेवाले बहुतेरे लोग आज उस शब्द का कुत्सित अर्थ भले ही लगाते हैं, पर केवल नाम में क्या घरा है? यह तो हम पर ही पूर्णतया निर्भर है कि 'हिन्दू' नाम ऐसी प्रत्येक वस्तु का द्योतक रहे, जो महिमामय हो, आध्यात्मिक हो, अथवा वह ऐसी वस्तु का द्योतक रहे जो कलक का समानार्थी हो, जो एक पददलित, निकम्मी और धर्म-भ्रष्ट जाति का सूचक हो। यदि आज 'हिन्दू' शब्द का कोई बुरा अर्थ है तो उसकी परवाह मत करो। आओ, अपने कार्यों और आचरणों द्वारा यह दिखाने को तैयार हो जाओ कि समग्र ससार की कोई भी भाषा इससे ऊँचा, इससे महान् शब्द का आविष्कार नहीं कर सकी है। मेरे जीवन के सिद्धान्तों में से एक यह भी सिद्धान्त रहा है कि मैं अपने पूर्वजों की सन्तान कहलाने में लज्जित नहीं होता। मुझे जैसा गर्वोला मानव इस ससार में शायद ही हो, पर मैं यह स्पष्ट रूप से बता देना चाहता हूँ कि यह गर्व मुझे अपने स्वयं के गुण या शक्ति के कारण नहीं, बरन् अपने पूर्वजों के गौरव के कारण है। जितना ही मैंने अतीत का अध्ययन किया है, जितनी ही मैंने भूत काल की ओर दृष्टि डाली है, उतना ही यह गर्व मुझमें अधिक आता गया है। उससे मुझे श्रद्धा की उतनी ही दृढता और साहम प्राप्त हुआ है, जिसने मुझे घरती की घूल से ऊपर उठाया है और मैं अपने उन

महान् पूर्वजों के निरिच्छत किये हुए कार्यक्रम के अनुसार कार्य करने को प्रेरित हुआ हूँ। ऐसी ही प्राचीन आर्य की संस्थानो! ईश्वर करे, तुम लोगों के हृदय में भी बड़ी गर्व आबिभूत हो जाय अपने पूर्वजों के प्रति बड़ी विश्वास तुम लोगों के रक्त में भी बीजने लगे वह तुम्हारे जीवन से मिसकर एक हो जाय और संसार के उदार के लिए कार्यशील हो।

भाइयो! यह पता लगाने के पहले कि हम ठीक किस बात में एकमत हैं तथा हमारे आर्य जीवन का सामान्य आधार क्या है, हमें एक बात स्मरण रखनी होगी। जैसे प्रत्येक मनुष्य का एक व्यक्तित्व होता है, ठीक उसी तरह प्रत्येक जाति का भी अपना एक व्यक्तित्व होता है। जिस प्रकार एक व्यक्ति कुछ विशिष्ट बातों में अपने विशिष्ट लक्षणों में अन्य व्यक्तियों से भिन्न होता है, उसी प्रकार एक जाति भी कुछ विशिष्ट लक्षणों में दूसरी जाति से भिन्न हुआ करती है। और जिस प्रकार प्रकृति की व्यवस्था में किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति करना हर एक मनुष्य का जीवनोद्देश्य होता है, जिस प्रकार अपने पूर्व कर्म द्वारा निर्धारित विशिष्ट मार्ग से उस मनुष्य को चलना पड़ता है, ठीक ऐसा ही जातियों के जीवन में भी है। प्रत्येक जाति को किसी न किसी वैशिष्ट्य उद्देश्य को पूरा करना पड़ता है प्रत्येक जाति को संसार में एक उन्मुख बना पड़ता है तथा प्रत्येक जाति को एक प्रतियोगिता का उद्घाटन करना होता है। जब आरम्भ से ही हमें यह समझ लेना चाहिए कि हमारी जाति का यह उद्देश्य क्या है, बिनाशा न उसे भविष्य के किस निश्चित उद्देश्य के लिए नियुक्त किया है, विभिन्न राष्ट्रों की पुनः-पुनः उत्पत्ति और अधिकार में हमें कौन सा स्थान प्रदत्त करना है, विभिन्न जातीय स्वतंत्रता के समरसता में हमें कौन सा स्वर अदायता है। हम अपने देश में वर्चस्व में यह किस्सा सुना करते हैं कि कुछ राष्ट्रों के पक्ष में मणि होती है और जब तक मणि बहा है, तब तक तुम राष्ट्रों को मारने का कोई भी उपाय करो वह नहीं मर सकता। हम लोगों में क्रिस्ते-कड़ानियों में रैप्यों और राज्यों की बातें पडी हैं। उनके प्राण 'हीरामन तोते' के कमेजे में बन्द रहते हैं और जब तक उस 'हीरामन तोते' की जान में जान रहती, तब तक उस जानब का बाल भी बाँका न होवा जाहे तुम उसके टुकड़े टुकड़े ही नहीं न कर आलो। यह बात राष्ट्रों के सम्बन्ध में भी सत्य है। राष्ट्रविरोध का जीवन भी ठीक उसी प्रकार मानो किसी विन्दु में केन्द्रित रहता है, बही उस राष्ट्र की राष्ट्रीयता रहती है और जब तक उस मर्मस्थान पर चोट नहीं पड़ती तब तक वह राष्ट्र मर नहीं सकता। इस तथ्य के प्रकाश में हम संसार के इतिहास की एक अद्वितीय एवं सबसे अपूर्व घटना को समझ सकते हैं। हमारी इन अज्ञातपर मातृभूमि पर बारम्बार बर्बर जातियों

के आक्रमणों के दौर आते रहे हैं। 'अल्लाहो अकबर' के गगनभेदी नारों से भारत-गगन सदियों तक गूँजता रहा है और मृत्यु की अनिश्चित छाया प्रत्येक हिन्दू के सिर पर मँडराती रही है। ऐंम, कोई हिन्दू न रहा होगा, जिसे पल पल पर मृत्यु की आशंका न होती रही हो। मसार के इतिहास में इस देश में अधिक दुःख पानेवाला तथा अधिक पराधीनता भोगनेवाला और कौन देश है? पर तो भी हम जैसे पहले थे, आज भी लगभग वैसे ही बने हुए हैं, आज भी हम आवश्यकता पड़ने पर वारम्बार विपत्तियों का सामना करने को तैयार हैं, और इतना ही नहीं, हाल में ऐंम भी लक्षण दिखायी दिये हैं कि हम केवल अविनाशमान ही नहीं, वरन् बाहर जाकर दूसरों को अपने विचार देने के लिए भी उद्यत हैं, कारण, विस्तार ही जीवन का लक्षण है।

हम आज देखते हैं कि हमारे भाव और विचार भारत की सरहदों के पिंजड़े में ही बन्द नहीं हैं, बल्कि वे तो, हम चाहे या न चाहे, भारत के बाहर बढ रहे हैं, अन्य देशों के साहित्य में प्रविष्ट हो रहे हैं, उन देशों में अपना स्थान प्राप्त कर रहे हैं और इतना ही नहीं, कहीं कहीं तो वे आदेशदाता गुरु के आसन तक पहुँच गये हैं। इसका कारण यही है कि ससार की सम्पूर्ण उन्नति में भारत का दान सबसे श्रेष्ठ रहा है, क्योंकि उसने ससार को ऐसे दर्शन और धर्म का दान दिया है, जो मानव-मन को सलग्न रखनेवाला सबसे अधिक महान्, सबसे अधिक उदात्त और सबसे श्रेष्ठ विषय है। हमारे पूर्वजों ने बहुतेरे अन्य प्रयोग किये। हम सब यह जानते हैं कि अन्य जातियों के समान, वे भी पहले बहिर्जगत् के रहस्य के अन्वेषण में लग गये, और अपनी विशाल प्रतिभा से वह महान् जाति, प्रयत्न करने पर, उस दिशा में ऐंम ऐसे अद्भुत आविष्कार कर दिखाती, जिन पर समस्त ससार को सदैव अभिमान रहता। पर उन्होंने इस पथ को किसी उच्चतर ध्येय की प्राप्ति के लिए छोड़ दिया। वेद के पृष्ठों से उसी महान् ध्येय की प्रतिध्वनि सुनायी देती है—अथ परा, यथा तदक्षरमधिगम्यते—'वही परा विद्या है, जिससे हमें उस अविनाशी पुरुष की प्राप्ति होती है।' इस परिवर्तनशील, नश्वर प्रकृति सम्बन्धी विद्या—मृत्यु, दुःख और शोक से भरे इस जगत् से सम्बन्धित विद्या बहुत बड़ी भले ही हो, एव सचमुच ही वह बड़ी है, परन्तु जो अपरिणामी और आनन्दमय है, जो चिर शान्ति का निधान है, जो शाश्वत जीवन और पूर्णत्व का एकमात्र आश्रय-स्थान है, एकमात्र जहाँ ही सारे दुःखों का अवसान होता है, उस ईश्वर से सम्बन्ध रखनेवाली विद्या ही हमारे पूर्वजों की राय में सबसे श्रेष्ठ और उदात्त है। हमारे पूर्वज यदि चाहते, तो ऐसे विज्ञानों का अन्वेषण सहज ही कर सकते थे, जो हमें केवल अन्न, वस्त्र और अपने साथियों पर आविपत्य

वे सकते हैं जो हमें कबल दूसरों पर विजय प्राप्त करना और उन पर प्रभुत्व करना सिखाते हैं जो बली को निर्बल पर हुकूमत करने की धिम्मा देते हैं। पर उस परमेस्वर की अपार दया से हमारे पूर्वजों ने उस आर बिल्कुल ध्यान न देकर एकजम दूधरी बिछा पकड़ी जो पूर्वोक्त मार्ग से अनन्त गुनी श्रेष्ठ और महान् की जिसमें पूर्वोक्त पथ की अपेक्षा अनन्त युगा मान्य था। इस मार्ग को अपनाकर वे ऐसी अनन्त निष्ठा के साथ उस पर अग्रसर हुए कि आज वह हमारा जातीय विशेषत्व बन गया। सहस्रों वर्ष से पिता-मुत्र की उत्तराधिकार-परम्परा से आता हुआ आज वह हमारे जीवन से घुस-मिल गया है। हमारी र्यों में बहनेवाले रक्त की रूढ़ रूढ़ से मिश्रकर एक हो गया है। वह मानो हमारा दूसरा स्वभाव ही बन गया है। यहाँ तक कि आज 'बर्म' और 'हिन्दू' ये दो शब्द समानार्थी हो गये हैं। यही हमारी जाति का वैशिष्ट्य है और इस पर कोई आपात नहीं कर सकता। बर्बर जातियों ने यही आकर तमझारों और टीपों के बल पर अपने बर्बर धर्मों का प्रचार किया पर उनमें से एक भी हमारे मर्मस्वस्व को स्पर्श न कर सका। सर्प की तरह 'गभि' को न चू सका। जातीय जीवन के प्राणस्वरूप उस 'हीरामन तोते' को न मार सका। अतः यही हमारी जाति की जीवनी शक्ति है और जब तक यह अम्प्राइट है, तब तक संसार में ऐसी कोई शक्ति नहीं जो इस जाति का विनाश कर सके। यदि हम अपनी इस सर्वश्रेष्ठ विरासत आध्यात्मिकता को न छोड़ें तो संसार के सारे अरमाचार-उत्पीड़न और दुःख हमें बिना चोट पहुँचाये ही निकल जायेंगे और हम लोग पुनः-उत्थान की उम्र आकाशमें से प्रह्लाद के समान बिना जसे बाहर निकल आयेगे। यदि कोई हिन्दू धार्मिक नहीं है तो मैं उसे हिन्दू ही नहीं कहूँगा। दूसरे देशों में मझे ही मनुष्य पहले राजनीतिक हो और फिर धर्म से बौद्धा सा अगाध रहे पर यहाँ भारत में तो हमारे जीवन का सबसे बड़ा और प्रबल कर्तव्य धर्म का अनुष्ठान है और फिर उसके बाद यदि अवकाश मिले तो दूसरे विषय मझे ही आ जायें। इस तथ्य को ध्यान में रखने से हम यह बात अधिक अच्छी तरह समझ सकेंगे कि अपने जातीय हित के लिए धर्म आज क्यों सबसे पहले अपनी जाति की समस्त आध्यात्मिक शक्तियों को बूँद निकालना होगा। जैसा कि अतीत काल में किया गया था और फिर काक तक किया जायगा। अपनी किमती हुई आध्यात्मिक शक्तियों का एकत्र करना ही भारत में जातीय एकता स्थापित करने का एकमात्र उपाय है। जिनकी हस्तनी एक ही आध्यात्मिक स्वर में बँधी है, उन सबके सम्मिलन से ही भारत में जाति का संयोजन होगा।

इस देश में पर्याप्त पन्थ था सम्प्रदाय हुए हैं। आज भी वे पन्थ पर्याप्त संख्या

मे हैं और भविष्य में भी पर्याप्त सख्या में रहेंगे, क्योंकि हमारे धर्म की यह विशेषता रही है कि उसमें व्यापक तत्त्वों की दृष्टि से इतनी उदारता है कि यद्यपि वाद में उनमें से अनेक सम्प्रदाय फैले हैं और उनकी बहुविध शाखा-प्रशाखाएँ फूटी हैं तो भी उनके तत्त्व हमारे सिर पर फैले हुए इस अनन्त आकाश के समान विशाल हैं, स्वयं प्रकृति की भाँति नित्य और सनातन हैं। अतः सम्प्रदायों का होना तो स्वाभाविक ही है, परन्तु जिसका होना आवश्यक नहीं है, वह है इन सम्प्रदायों के बीच के झगड़े-झमेले। सम्प्रदाय अवश्य रहे, पर साम्प्रदायिकता दूर हो जाय। साम्प्रदायिकता से ससार की कोई उन्नति नहीं होगी, पर सम्प्रदायों के न रहने से ससार का काम नहीं चल सकता। एक ही साम्प्रदायिक विचार के लोग सब काम नहीं कर सकते। ससार की यह अनन्त शक्ति कुछ थोड़े से लोगों से परिचालित नहीं हो सकती। यह बात समझ लेने पर हमारी समझ में यह भी आ जायगा कि हमारे भीतर किसलिए यह सम्प्रदाय-भेदरूपी श्रमविभाग अनिवार्य रूप से आ गया है। भिन्न भिन्न आध्यात्मिक शक्ति-समूहों का परिचालन करने के लिए सम्प्रदाय कायम रहे। परन्तु जब हम देखते हैं कि हमारे प्राचीनतम शास्त्र इस बात की घोषणा कर रहे हैं कि यह सब भेद-भाव केवल ऊपर का है, देखने भर का है, और इन सारी विभिन्नताओं के बावजूद इनको एक साथ बाँधे रहनेवाला परम मनोहर स्वर्ण सूत्र इनके भीतर परोया हुआ है, तब इसके लिए हमें एक दूसरे के साथ लड़ने-झगड़ने की कोई आवश्यकता नहीं दिखायी देती। हमारे प्राचीनतम शास्त्रों ने घोषणा की है कि एक सद्धिप्रा बहुधा वदन्ति—“विश्व में एक ही सद्धस्तु विद्यमान है, ऋषियों ने उसी एक का भिन्न भिन्न नामों से वर्णन किया है।’ अतः ऐसे भारत में, जहाँ सदा से सभी सम्प्रदाय समान रूप से सम्मानित होते आये हैं, यदि अब भी सम्प्रदायों के बीच ईर्ष्या-द्वेष और लड़ाई-झगड़े बने रहे तो धिक्कार है हमें, जो हम अपने को उन महिमान्वित पूर्वजों के वंशधर वताने का दुःसाहस करें।

मेरा विश्वास है कि कुछ ऐसे महान् तत्त्व हैं, जिन पर हम सब सहमत हैं, जिन्हें हम सभी मानते हैं—चाहे हम वैष्णव हो या शैव, शाक्त हो या गाणपत्य, चाहे प्राचीन वेदान्ती सिद्धान्तों को मानते हो या अर्वाचीनों के ही अनुयायी हो, पुरानी लकीर के फकीर हो अथवा नवीन सुधारवादी हो—और जो भी अपने को हिन्दू कहता है, वह इन तत्त्वों में विश्वास रखता है। सम्भव है कि इन तत्त्वों की व्याख्याओं में भेद हो—और वैसा होना भी चाहिए, क्योंकि हमारा यह मानदंड रहा है कि हम सबको जबरदस्ती अपने साँचे में न ढालें। हम जिस तरह की व्याख्या करें, सबको वही व्याख्या माननी पड़ेगी अथवा हमारी ही प्रणाली का अनुसरण



करना होगा—इतरबस्ती ऐसी बेटा करना पाप है। आज यहाँ पर जो लोग एकत्र हुए हैं चाय के समी एक स्वर से यह स्वीकार करते कि हम लोग यहाँ को अपना धर्म-सहस्री का सनातन उपदेश मानते हैं। हम सभी यह विश्वास करते हैं कि वेदों की यह पवित्र शब्द राशि अनादि और अमृत है। जिस प्रकार प्रकृति का न अनादि है न अमृत उसी प्रकार इसका भी अनादि-अमृत नहीं है। और जब यही हम इस पवित्र ग्रन्थ के प्रकाश में आते हैं तब हमारे धर्म-सम्बन्धी सारे भेद भाव और झगड़ें मिट जाते हैं। इसमें हम सभी सहमत हैं कि हमारे धर्म विषयक चिन्तने भी भेद हैं, उनकी अन्तिम मीमांसा करनेवाला यही भेद है। भेद कम है, इस पर हम लोगों में मतभेद हो सकता है। कोई सम्प्रदाय भेद के किसी एक भय को दूर से दृष्टि से अधिक पवित्र समझ सकता है। पर इससे तब तक कुछ बगता विपत्ति नहीं जब तक हम यह विश्वास करते हैं कि वेदों के प्रति श्रद्धा होने के कारण हम सभी आपस में भाई भाई हैं तथा उन सनातन पवित्र और अपूर्व ग्रन्थों से ही ऐसी प्रत्येक पवित्र महान् और उत्तम वस्तु का उद्भव हुआ है जिसके हम आज भविष्यक हैं। कच्छा यदि हमारा ऐसा ही विश्वास है तो फिर सबसे पहले हमी तत्त्व का भारत में सर्वत्र प्रचार किया जाय। यदि यही सत्य है तो फिर वेद सर्वदा ही त्रिम प्रकाश के अविच्छादी हैं तथा जिसमें हम सभी विश्वास करते हैं वह प्रमाणता वेदों को ही जाय। अतः हम सबको प्रथम मिलन मुमि है भेद।

दूसरी बात यह है कि हम सब ईश्वर में विश्वास करते हैं जो संसार की सृष्टि-स्थिति-सद-व्यवस्था सृष्टि है जिसमें यह सारा चराचर ब्रह्माण्ड में सप होकर हमारे ब्रह्म के आत्म में पुनः अद्भुत जगत् प्रबंध रूप से बाहर निकल आता एक अभिप्रेत हाता है। हमारी ईश्वर विषयक ब्रह्माण्ड भिन्न भिन्न प्रकार की हो सकती है—कुछ लोग ईश्वर का सम्पूर्ण समुच्च रूप में कुछ उन्हें समुच्च पर मानते मानात्म रूप में नहीं और कुछ उन्हें सम्पूर्ण विपुल रूप में ही मान सकते हैं और सभी अपनी अपनी धारणा की गुण में वेद के प्रमाण भी ले सकते हैं। पर इन सब विभिन्नताओं के होते हुए भी हम सभी ईश्वर में विश्वास करते हैं। सभी बात को हमारे धर्मों में लेना भी बन सकते हैं कि जिसका यह सबका चराचर उत्पन्न हुआ है जिसके अन्तर्गत में यह जीवित है और अन्त में जिसका यह सृष्टि का अन्त है। अतः उन अद्भुत अन्तर्गत पर जो विश्वास नहीं करना बनाने को सिद्ध नहीं बन सकता। यदि लेगी बात है तो इन सब को भी सत्य मानने में श्रेष्ठाने को बनाने करनी होगी। तुम इन ईश्वर का जाने त्रिम भाव से प्रचार करो ईश्वर सत्यता सुप्रमाण मानने की बातें धार में सिद्ध हूँ, पर इन हमारे त्रिम भाव में सत्यता नहीं करिये। इन बाह्य हैं ईश्वर का प्रचार फिर

वह किसी भी रूप में क्यों न हो। हो सकता है, ईश्वर सम्बन्धी इन विभिन्न धारणाओं में कोई अधिक श्रेष्ठ हो, पर याद रखना, उनमें कोई भी धारणा बुरी नहीं है। उन धारणाओं में कोई उत्कृष्ट, कोई उत्कृष्टतर और कोई उत्कृष्टतम हो सकती है, पर हमारे धर्म-तत्त्व की पारिभाषिक शब्दावली में 'बुरा' नाम का कोई शब्द नहीं है। अतः, ईश्वर के नाम का चाहे जो कोई जिस भाव से प्रचार करे, वह निश्चय ही ईश्वर के आशीर्वाद का भाजन होगा। उसके नाम का जितना ही अधिक प्रचार होगा, देश का उतना ही कल्याण होगा। हमारे बच्चे बचपन से ही इस भाव को हृदय में धारण करना सीखें—अत्यन्त दरिद्र और नीचातिनीच मनुष्य के घर से लेकर बड़े से बड़े धनी-मानी और उच्चतम मनुष्य के घर में भी ईश्वर के शुभ नाम का प्रवेश हो !

अब तीसरा तत्त्व मैं तुम लोगों के सामने प्रकट करना चाहता हूँ। हम लोग औरों की तरह यह विश्वास नहीं करते कि इस जगत् की सृष्टि केवल कई हजार वर्ष पहले हुई है और एक दिन इसका सदा के लिए ध्वंस हो जायगा। साथ ही, हम यह भी विश्वास नहीं करते कि इसी जगत् के साथ शून्य से जीवात्मा की भी सृष्टि हुई है। मैं समझता हूँ कि इस विषय में भी हम सब सहमत हो सकते हैं। हमारा विश्वास है कि प्रकृति अनादि और अनन्त है, पर हाँ, कल्पान्त में यह स्थूल बाह्य जगत् अपनी सूक्ष्म अवस्था को प्राप्त होता है, और कुछ काल तक उस सूक्ष्मावस्था में रहने के बाद पुनः उसका प्रक्षेपण होता है तथा प्रकृति नामक इस अनन्त प्रपञ्च की अभिव्यक्ति होती है। यह तरगाकार गति अनन्त काल से—जब स्वयं काल का ही आरम्भ नहीं हुआ था तभी से—चल रही है और अनन्त काल तक चलती रहेगी।

पुनः हिन्दू मात्र का यह विश्वास है कि मनुष्य केवल यह स्थूल जड़ शरीर ही नहीं है, न ही उसके अन्तर्स्थ यह 'मन' नामक सूक्ष्म शरीर ही प्रकृत मनुष्य है, वरन् प्रकृत मनुष्य तो इन दोनों से अतीत एव श्रेष्ठ है। कारण, स्थूल शरीर परिणामी है और मन का भी वही हाल है, परन्तु इन दोनों से परे 'आत्मा' नामक अनिर्वर्चनीय वस्तु है जिसका न आदि है, न अन्त। मैं इस 'आत्मा' शब्द का अग्रैज्ञी में अनुवाद नहीं कर सकता, क्योंकि इसका कोई भी पर्याय गलत होगा। यह आत्मा 'मृत्यु' नामक अवस्था से परिचित नहीं। इसके सिवाय एक और विशिष्ट बात है, जिसने हमारे साथ अन्यान्य जातियों का विलकुल मतभेद है। वह यह है कि आत्मा एक देह का अन्त होने पर दूसरी देह धारण करती है, ऐसा करते करते वह एक ऐसी अवस्था में पहुँचती है, जब उसे फिर शरीर धारण करने की कोई इच्छा या आवश्यकता नहीं रह जाती, तब वह मुक्त हो जाती है

और फिर स कभी जन्म नहीं लेती। यहाँ मेरा तात्पर्य अपने छात्रों के संसार बाध या पुनर्जन्मबाध तथा आत्मा के नित्यत्वबाध से है। हम चाहे बिना सम्प्रवाय के हों पर इस विषय में हम सभी सहमत हैं। इस आत्मा-परमात्मा के पारस्परिक सम्बन्ध के बारे में हमारे मत भिन्न हो सकते हैं। एक सम्प्रवाय आत्मा को परमात्मा से अनन्त काल तक ब्रह्म मान सकता है, दूसरे के मत से आत्मा उसी अनन्त ज्वलन की एक चिनमायी ही सकती है और फिर अन्यों के मतानुसार वह उस अनन्त से एकस्य और अभिन्न हो सकती है। पर जब तक हम सब कोय इस मौलिक तत्त्व की मानते हैं कि आत्मा अनन्त है उसकी सृष्टि कभी नहीं हुई और इसलिए उसका नाश भी कभी नहीं हो सकता उस तो भिन्न भिन्न धरीरों से क्रमशः उत्पत्ति करते करते अन्त में मनुष्य धारीर धारण कर पूर्णत्व प्राप्त करना होगा—तब तक हम आत्मा एक परमात्मा के इस सम्बन्ध के विषय में चाहे कौसी व्याख्या क्यों न करें, उससे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। इसके विषय में हम सभी सहमत हैं। और इसके बाद आध्यात्मिकता के क्षेत्र में सबसे उपात्त सर्वाधिक विवेक को व्यक्त करनेवाले और आज तक के सबसे अपूर्व आविष्कार की बात जाती है। तुम लोगों में से बिन्होंने पाश्चात्य चिन्तन प्रजापति का अध्ययन किया होना उन्होंने सम्भवतः यह कथन किया होना कि एक ऐसा मौलिक प्रवेद है, जो पाश्चात्य विचारों को एक ही आकाश में पौरात्य विचारों से पूरक कर देता है। वह यह है कि भारत में हम सभी चाहे हम छात्र हों या शीर या वैष्णव भक्त या बौद्ध या जैन ही क्यों न हों—हम सब के सब यही विश्वास करते हैं कि आत्मा स्वभावतः शुद्ध पूर्ण अनन्त सकृत्सम्पन्न और आनन्दमय है। अन्तर केबल इतना है कि ईश्वरविदों के मत से आत्मा का वह स्वाभाविक आनन्दस्वभाव सिद्धे बुरे कर्मों के कारण संकुचित हो गया है एवं ईश्वर के अनुग्रह से वह फिर विकसित हो जायगा और आत्मा पुनः अपने पूर्ण स्वभाव को प्राप्त हो जायगी। पर अईश्वारी कहते हैं कि आत्मा के संकुचित होने की यह धारणा भी अद्वैत भ्रमात्मक है—हम तो माया के आदर्य के कारण ही ऐसा समझते हैं कि आत्मा अपनी धारीर संकित पैसा बैठी है, जब कि वास्तव में उसकी समस्त सकृत्तब भी पूर्ण रूप से अभिव्यक्त रहती है। जो भी अन्तर हो पर हम एक ही केन्द्रीय तत्त्व पर पहुँचते हैं कि आत्मा स्वभावतः ही पूर्ण है और यही प्राण्य और पाश्चात्य भाषों के बीच एक ऐसा अन्तर डाल देता है जिसमें कहीं समझौता नहीं है। जो कुछ महामु है, जो कुछ धुम है, पौरात्य उसका अन्वेषण आनन्दतर में करता है। जब हम पूजा-उपासना करते हैं तब भाँसें नन्द कर ईश्वर को अन्तर ईश्वर का प्रकलन करते हैं, और पाश्चात्य अपने बाहर ही ईश्वर को ईश्वरता फिरता है। पाश्चात्यों

के धर्मग्रन्थ प्रेरित (inspired) हैं, जब कि हमारे धर्मग्रन्थ अन्त प्रेरित (expired) हैं, निश्वास की तरह वे निकले हैं, ईश्वरनिश्चित हैं, मन्त्रद्रष्टा ऋषियों के हृदयों में निकले हैं।<sup>१</sup>

यह एक प्रधान बात है, जिसे अच्छी तरह समझ लेने की आवश्यकता है। प्यारे भाइयो! मैं तुम लोगों को यह बताये देता हूँ कि यही बात भविष्य में हमें विशेष रूप से बार बार बतलानी और समझानी पड़ेगी। क्योंकि यह मेरा दृढ़ विश्वास है और मैं तुम लोगों से भी यह बात अच्छी तरह समझ लेने को कहता हूँ कि जो व्यक्ति दिन-रात अपने को दीन-हीन या अयोग्य समझे हुए बैठा रहेगा, उसके द्वारा कुछ भी नहीं हो सकता। वास्तव में अगर दिन-रात वह अपने को दीन, नीच एवं 'कुछ नहीं' समझता है तो वह 'कुछ नहीं' ही बन जाता है। यदि तुम कहो कि 'मेरे अन्दर शक्ति है' तो तुममें शक्ति जाग उठेगी। और यदि तुम सोचो कि 'मैं 'कुछ नहीं हूँ,' दिन-रात यही सोचा करो, तो तुम सचमुच ही 'कुछ नहीं' हो जाओगे। तुम्हें यह महान् तत्त्व सदा स्मरण रखना चाहिए। हम तो उसी सर्व शक्तिमान् परम पिता की सन्तान हैं, उसी अनन्त ब्रह्माग्नि की चिनगारियाँ हैं—भला हम 'कुछ नहीं' क्योंकर हो सकते हैं? हम सब कुछ हैं, हम सब कुछ कर सकते हैं, और मनुष्य को सब कुछ करना ही होगा, हमारे पूर्वजों में ऐसा ही दृढ़ आत्मविश्वास था। इसी आत्मविश्वास रूपी प्रेरणा-शक्ति ने उन्हें सम्यक्ता की उच्च से उच्चतर सीढ़ी पर चढाया था। और, अब यदि हमारी अवनति हुई हो, हममें दोष आया हो तो मैं तुमसे सच कहता हूँ, जिस दिन हमारे पूर्वजों ने अपना यह आत्मविश्वास गँवाया, उसी दिन से हमारी यह अवनति, यह दुरवस्था आरम्भ हो गयी। आत्मविश्वास-हीनता का मतलब है ईश्वर में अविश्वास। क्या तुम्हें विश्वास है कि वही अनन्त मंगलमय विधाता तुम्हारे भीतर से काम कर रहा है? यदि तुम ऐसा विश्वास करो कि वही सर्वव्यापी अन्तर्यामी प्रत्येक अणु-भ्रमाणु में—तुम्हारे शरीर, मन और आत्मा में ओत-प्रोत है, तो फिर क्या तुम कभी उत्साह से वचित रह सकते हो? मैं पानी का एक छोटा सा बुलबुला हो सकता हूँ, और तुम एक पर्वताकार तरंग, तो इससे क्या? वह अनन्त समुद्र जैसा तुम्हारे लिए, वैसा ही मेरे लिए भी आश्रय है। उस जीवन, शक्ति और आव्यात्मिकता के असीम सागर पर जैसा तुम्हारा, वैसा ही मेरा भी अधिकार है। मेरे जन्म से ही, मुझमें जीवन होने से ही, यह प्रमाणित हो रहा है कि तुम्हारे समान, चाहे तुम पर्वताकार तरंग ही क्यों न हो, मैं भी उसी

१ Inspire का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ है—श्वास का बाहर से अन्दर जाना और Expire का—श्वास का भीतर से बाहर निकलना।

अनन्त जीवन अनन्त सिद्ध और अनन्त शक्ति के साथ नित्यसंयुक्त है। अतएव माइमी ! तुम अपनी मन्ताना को उनके जन्म-काल से ही इस महान्, जीवनप्रद, उच्च और उदात्त तत्त्व की मिला देना शुरू कर दो। उन्हें अद्वैतवाद की ही धिता देन की आवश्यकता नहीं तुम चाह ईतबार को धिया हो या जिस किती 'बाब' की जा भी तुम्हें बच। परन्तु हम पहले ही बेल चुके हैं कि यही सर्वमान्य 'बाब' भारत में सर्वत्र स्वीकृत है। आत्मा की पूर्णता के इस अपूर्ण सिद्धान्त को सभी सम्प्रदायवाले समान रूप से मानते हैं। हमारा महान् दार्शनिक कपिल महर्षि ने कहा है कि पवित्रता यदि आत्मा की प्रकृति न हो तो आत्मा बाह में कभी भी पवित्रता को प्राप्त नहीं हो सकती क्योंकि जो स्वभावतः पूर्ण नहीं है, वह यदि किसी प्रकार पूर्णता पा भी सके तो वह पूर्णता उसमें स्थिर मात्र ही नहीं रहे सकती उससे पुनः लगी जायगी। यदि अपवित्रता ही मनुष्य का स्वभाव ही तो भले ही वह कुछ समय के लिए पवित्रता प्राप्त कर सके पर वह सब कुछ के लिए अपवित्र ही बना रहेगा। कभी न कभी ऐसा समय आयगा जब वह पवित्रता कुछ जामगी दूर हो जायगी और फिर वही पुनः स्वभाविक अपवित्रता अपना सिकका जमा करेगी। अतएव हमारे सभी दार्शनिक कहते हैं कि पवित्रता ही हमारा स्वभाव है, अपवित्रता नहीं। पूर्णता ही हमारा स्वभाव है, अपूर्णता नहीं। इस बात को तुम सब स्मरण रखो। जब महर्षि के मुखर वृत्तान्त को सबै स्मरण रखो जो सरीर त्याग करते समय अपने मन से अपने किए हुए उच्छृष्ट कार्यों और उच्च विचारों का स्मरण करने के लिए कहते हैं। देखो उन्होंने अपने मन से अपने दोषों और दुर्बलताओं की याद करने के लिए नहीं कहा है। यह सब है कि मनुष्य में दोष हैं, दुर्बलताएँ हैं पर तुम सबका अपने वास्तविक स्वरूप का स्मरण करो। सब यही इन बाबा और दुर्बलताओं के दूर करने का बमोश उपाय है।

मैं समझता हूँ कि ये कठिनपण तब आरम्भ के सभी निम्न निम्न सम्प्रदायवाले स्वीकार करते हैं और सम्मानन भविष्य में इसी सर्वस्वीकृत आधार पर सबसे सम्प्रदायों के लोग—वे उदार ही मा कट्टर, पुरानी कट्टर के कट्टर ही या नयी राखनीवाले—सभी के सभी आपस में निककर रहेंगे। पर सबसे बढ़कर एक बच बात भी हम याद रखनी चाहिए, वह है कि इसे हम प्रायः भूल जाते हैं। वह यह है कि भारत में धर्म का तात्पर्य है 'प्रत्यभानुभूति' इससे कम कदापि नहीं। हम ऐसी बात कोई नहीं सिखा सकते कि 'यदि तुम इस मत को स्वीकार करो तो तुम्हारा उदार हो जायगा' क्योंकि हम उस बात पर विश्वास करते ही नहीं।

तुम अपने को जैसा बनाओगे, अपने को जैसे साँचे में ढालोगे, वैसे ही बनोगे। तुम जो कुछ हो, जैसे हो, वह ईश्वर की कृपा और अपने प्रयत्न से बने हो। किसी मतामत में विश्वास मात्र से तुम्हारा कोई विशेष उपकार नहीं होगा। 'अनुभूति', 'अनुभूति' की यह महती शक्तिमयी वाणी भारत के ही आध्यात्मिक गगनमंडल से आविर्भूत हुई है, और एकमात्र हमारे ही शास्त्रों ने यह बारम्बार कहा है कि 'ईश्वर के दर्शन' करने होंगे। यह बात बड़े साहस की है, इसमें सन्देह नहीं, पर इसका लेशमात्र भी मिथ्या नहीं है, यह अक्षरशः सत्य है। धर्म की प्रत्यक्ष अनुभूति करनी होगी, केवल सुनने से काम नहीं चलेगा, तोते की तरह कुछ थोड़े से शब्द और धर्म विषयक बातें रट लेने से काम नहीं चलेगा, केवल बुद्धि द्वारा स्वीकार कर लेने से भी काम न चलेगा—आवश्यकता है हमारे अन्दर धर्म के प्रवेश करने की। अतः ईश्वर के अस्तित्व पर विश्वास रखने का सबसे बड़ा प्रमाण यह नहीं है कि तर्क से सिद्ध है, वरन् ईश्वर के अस्तित्व का सर्वोच्च प्रमाण तो यह है कि हमारे यहाँ के प्राचीन तथा अर्वाचीन सभी पहुँचे हुए लोगो ने ईश्वर का साक्षात्कार किया है। आत्मा के अस्तित्व पर हम केवल इसलिए विश्वास नहीं करते कि हमारे पास उसके प्रमाण में उत्कृष्ट युक्तियाँ हैं, वरन् इसलिए कि प्राचीन काल में भारतवर्ष के सहस्रो व्यक्तियों ने आत्मा के प्रत्यक्ष दर्शन किये हैं, आज भी ऐसे बहुत से हैं, जिन्होंने आत्मोपलब्धि की है, और भविष्य में भी ऐसे हज़ारों लोग होंगे, जिन्हें आत्मा की प्रत्यक्ष अनुभूति होगी। और जब तक मनुष्य ईश्वर के दर्शन न कर लेगा, आत्मा की उपलब्धि न कर लेगा, तब तक उसकी मुक्ति असम्भव है। अतएव, आओ, सबसे पहले हम इस बात को भली भाँति समझ लें, और हम इसे जितना ही अधिक समझेंगे, उतना ही भारत में साम्प्रदायिकता का ह्रास होगा, क्योंकि यथार्थ धार्मिक वही है, जिसने ईश्वर के दर्शन पाये हैं, जिसने अन्तर में उसकी प्रत्यक्ष उपलब्धि की है। तब तो, 'जिसने उसे देख लिया, जो हमारे निकट से भी निकट और फिर दूर से भी दूर है, उसके हृदय की गाँठें खुल जाती हैं, उसके सारे सशय दूर हो जाते हैं और वह कर्मफल के समस्त बन्वनों से छुटकारा पा जाता है।'<sup>१</sup>

हा हन्त ! हम लोग बहुधा अर्थहीन वागाडम्बर को ही आध्यात्मिक सत्य ममज्ञ बैठते हैं, पांडित्य से भरी सुललित वाक्य-रचना को ही गम्भीर धर्मानुभूति समझ लेते हैं। इसीमें यह सारी साम्प्रदायिकता आती है, सारा विरोध-भाव उत्पन्न होता है। यदि हम एक बार इस बात को भली भाँति समझ लें कि

१ भिद्यते हृदयप्रन्यिशिद्यन्ते सर्वसशया ।

क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ॥ मुडकोपनियद् २।२।८॥

प्रत्यक्षानुभूति ही प्रकृत धर्म है तो हम अपने ही हृदय को टटोछेने और यह समझने का प्रयत्न करेंगे कि हम धर्म-त्याग्य के सपनों की उपछात्रि की ओर कहीं तक अग्रसर हुए हैं। और तब हम यह समझ जायेंगे कि हम स्वयं मन्वकार में भटक रहे हैं और अपने साथ दूसरों को भी उसी मन्वकार में भटका रहे हैं। बस इतना समझने पर हमारी साम्प्रदायिकता और झड़ई मिट जायगी। यदि कोई तुमसे साम्प्रदायिक झगड़ा करने को तैयार हो तो उससे पूछो "तुमने क्या ईश्वर के दर्शन किये हैं? क्या तुम्हें कभी आत्म-दर्शन प्राप्त हुआ है? यदि नहीं तो तुम्हें ईश्वर के नाम का प्रचार करने का क्या अधिकार है? तुम तो स्वयं अंधेरे में भटक रहे हो और मुझे भी उसी अंधेरे में बसीटने की कोशिश कर रहे हो? 'अन्ना बन्ने को राह दिखावे' के अनुसार तुम मुझे भी नई में से विरोगे। अतएव किसी दूसरे के दोष निकालने के पहले तुमको अधिक विचार कर लेना चाहिए। सबको अपनी अपनी राह से चलने दो—'प्रत्यक्ष अनुभूति' की ओर अग्रसर होने दो। सभी अपने अपने हृदय में उस सत्यस्वरूप आत्मा के दर्शन करने का प्रयत्न करें। और जब वे उस भूमा के उस अनादृत सत्य के दर्शन कर लेंगे तभी उससे प्राप्त होनेवाले अपूर्व ज्ञानम्ब का अनुभव कर सकेंगे। आत्मोपलब्धि से प्रसूत होनेवाला यह अपूर्व ज्ञानम्ब कपील-कल्पित नहीं है बल्कि भारत के प्रत्येक ऋषि ने प्रत्येक सत्य द्रष्टा पुरुष ने इसका प्रत्यक्ष अनुभव किया है। और तब उस आत्मदर्शी हृदय से आप ही आप प्रेम की बाणी फूट निकलेगी क्योंकि उसे ऐसे परम पुरुष का स्पर्श प्राप्त हुआ है जो स्वयं प्रेमस्वरूप है। बस तभी हमारे सारे साम्प्रदायिक झड़ई झगड़े दूर होंगे और तभी हम 'हिन्दू' शब्द को तथा प्रत्येक हिन्दू-नामवादी व्यक्ति को यथार्थ समझने हृदय में धारण करने तथा मन्मीर रूप से प्रेम करने व आतिथन करने में समर्थ होंगे। मेरी बात पर ध्यान दो केवल तभी तुम वास्तव में हिन्दू कहलाने योग्य होंगे जब 'हिन्दू' शब्द को मुनते ही तुम्हारे अन्तर बिजली बीड़ने लग जायगी। केवल तभी तुम सच्चे हिन्दू कहला सकोगे जब तुम किसी भी प्राण के कोई भी भाषा बोलनेवाले प्रत्येक हिन्दू-सम्बन्ध व्यक्ति को एकदम अपना तथा और स्नेही समझने लगोगे। केवल तभी तुम सच्चे हिन्दू माने जाओगे जब किसी भी हिन्दू कहलानेवाले का दुःख तुम्हारे हृदय में तीर की तरह आकर चुभेगा मानो तुम्हारा अपना लड़का ही विपत्ति में पड़ गया हो! केवल तभी तुम यथार्थ 'हिन्दू' नाम के योग्य होंगे जब तुम उनके लिए समस्त अत्याचार और उल्कीड़न सहने के लिए तैयार रहोगे। इसके ज्वलन्त दृष्टान्त हैं—तुम्हारे ही बुध पोषिन्द सिंह त्रिजली बर्षा में आरम्भ म ही कर चुका है। इन महात्मा ने देश के समुद्रों के विरुद्ध लड़ा किया हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए अपने हृदय का रक्त बहाया अपने पुत्रों को

अपनी आँखों के सामने मौत के घाट उतरते देसा—पर जिनके लिए इन्होंने अपना और अपने प्राणों से बढ़कर प्यारे पुत्रों का खून वहाया, उन्हीं लोगों ने, इनकी सहायता करना तो दूर रहा, उल्टे इन्हे त्याग दिया। —यहाँ तक कि उन्हे इस प्रदेश से भी हटना पडा। अन्त मे मरान्तक चोट खाये हुए सिंह की भाँति यह नरकेसरी शान्तिपूर्वक अपने जन्म-स्थान को छोड दक्षिण भारत मे जाकर मृत्यु की राह देखने लगा, परन्तु अपने जीवन के अन्तिम मुहूर्त तक उसने अपने उन कृतघ्न देशवासियों के प्रति कभी अभिशाप का एक शब्द भी मुँह से नहीं निकाला। मेरी बात पर ध्यान दो। यदि तुम देश की भलाई करना चाहते हो तो तुममे से प्रत्येक को गुरु गोविन्द सिंह बनना पडेगा। तुम्हें अपने देशवासियों मे भले ही हजारो दोष दिखायी दे, पर तुम उनकी रग रग मे वहनेवाले हिन्दू रक्त की ओर ध्यान दो। तुम्हे पहले अपने इन स्वजातीय नर-रूप देवताओं की पूजा करनी होगी, भले ही वे तुम्हारी वुराई के लिए लाख चेष्टा किया करे। इनमे से प्रत्येक व्यक्ति यदि तुम पर अभिशाप और निन्दा की बौछार करे तो भी तुम इनके प्रति प्रेमपूर्ण वाणी का ही प्रयोग करो। यदि ये तुम्हे त्याग दे, पैरों से ठुकरा दें तो तुम उसी वीरकेसरी गोविन्द सिंह की भाँति समाज से दूर जाकर नीरव भाव से मौत की राह देखो। जो ऐसा कर सकता है, वही सच्चा हिन्दू कहलाने का अधिकारी है। हमे अपने सामने सदा इसी प्रकार का आदर्श उपस्थित रखना होगा। पारस्परिक विरोध-भाव को भूलकर चारों ओर प्रेम का प्रवाह बहाना होगा।

लोग भारत के पुनरुद्धार के लिए जो जी मे आये, कहे। मैं जीवन भर काम करता रहा हूँ, कम से कम काम करने का प्रयत्न करता रहा हूँ, मैं अपने अनुभव के बल पर तुमसे कहता हूँ कि जब तक तुम सच्चे अर्थों मे धार्मिक नहीं होते, तब तक भारत का उद्धार होना असम्भव है। केवल भारत ही क्यों, सारे ससार का कल्याण इसी पर निर्भर है। क्योंकि, मैं तुम्हें स्पष्टतया बताये देता हूँ कि इस समय पाश्चात्य सभ्यता अपनी नीव तक हिल गयी है। भौतिकवाद की कच्ची रेतीली नीव पर खड़ी होनेवाली बडी से बडी इमारतें भी एक न एक दिन अवश्य ही आपद्ग्रस्त होगी, ढह जायेंगी। इस विषय मे ससार का इतिहास ही सबसे बडा साक्षी है। जाति पर जाति उठी हैं और भौतिकवाद की नीव पर उन्होंने अपने गौरव का प्रासाद खडा किया है। उन्होंने ससार के समक्ष यह घोषणा की है कि जड के सिवा मनुष्य और कुछ नहीं है। ध्यान दो, पाश्चात्य भाषा मे 'मनुष्य आत्मा छोडता है' (A man gives up the ghost), पर हमारी भाषा मे 'मनुष्य शरीर छोडता है।' पाश्चात्य मनुष्य अपने सम्बन्ध मे पहले देह को ही लक्ष्य करता है, उसके बाद उसके एक आत्मा है। पर हम लोगो के अनुसार मनुष्य पहले आत्मा ही है, और फिर उसके एक देह



भी है। इन को विभिन्न भाष्यों की छानबीन करने पर तुम देखोगे कि प्राच्य और पारश्चात्य विचार-प्रवाही में आकाश पाताळ का अन्तर है। इसीलिए ब्रितानी सम्प्रदाय मौरिक सुख-स्वच्छन्दता की ऐसीसी नींव पर क्रायम हुई थीं वे सभी बोड़े ही समय के लिए जीवित रहकर एक एक करके सत्तार से लुप्त हो गयीं परन्तु भारत की सम्प्रदाय और भारत के चरणों के पास बैठकर शिक्षा ग्रहण करनेवाले चीन और जापान की सम्प्रदाय आज भी जीवित है और इतना ही नहीं बल्कि उनमें पुनरुत्थान के लक्षण भी दिखायी दे रहे हैं। 'क्रिनिक्स' के समान हजारों बार मट्ट होने पर भी वे पुनः अधिक ठेकासी होकर प्रस्फुरित होने को तैयार हैं। पर मौरिक वाद के आधार पर जो सम्प्रदायें स्थापित हैं वे यदि एक बार मट्ट हो गयीं तो फिर उठ नहीं सकतीं—एक बार यदि महसूस बह पड़ा तो बस सब के लिए बुरा में मिल गया। अतएव धर्म के साथ रह देखते रहो हम लोगों का भविष्य उज्ज्वल है।

उठावके मत बनो किसी बूझरे का अनुकरण करने की जेष्टा मत करो। बूझरे का अनुकरण करना सम्प्रदाय की निघानी नहीं है यह एक महान् पाठ है जो हमें याद रखना है। मैं यदि आपही राजा की सी पोशाक पहनूँ तो क्या इतने ही से मैं राजा बन जाऊँगा ? घेर की खास ओढ़कर क्या कभी घेर नहीं बन सकता। अनुकरण करना हीन और डरपोक की तरह अनुकरण करना कभी उन्नति के पथ पर जागे नहीं बढ़ा सकता। यह तो मनुष्य के अक्षय-पतन का लक्षण है। जब मनुष्य अपने आप पर नृप्या करने लग जाता है, जब समझना चाहिए कि उस पर अन्तिम चोट बैठ चुकी है। जब वह अपने पूर्वजों को मानने में लज्जित होला है तो समझ लो कि उसका विनाश निकट है। यद्यपि मैं हिन्दू जाति में एक लक्ष्य व्यक्ति हूँ तथापि अपनी जाति और अपने पूर्वजों के वीर्य से मैं अपना वीर्य मानता हूँ। अपने को हिन्दू बघाते हुए, हिन्दू नहकर अपना परिचय देते हुए, मुझे एक प्रकार का गर्व सा होता है। मैं तुम लोगों का एक सुख्य सेवक होने में अपना वीर्य समझता हूँ। तुम लोग अपने ऋषियों के बधवर हो—उन ऋषियों के ब्रिजकी महत्ता की तुम्हारा नहीं हो सकती। मुझे इसका गर्व है कि मैं तुम्हारे देश का एक लक्ष्य नागरिक हूँ। अतएव भाइयो आत्मनिश्चिन्ता बनो। पूर्वजों के नाम से अपने को लज्जित नहीं गौरवान्वित समझो। याद रहे किसीका अनुकरण कदापि न करो। कदापि नहीं। जब कभी तुम औरों के विचारों का अनुकरण करते हो तुम अपनी स्वाधीनता पैदा बैठने हो। यहाँ तक कि आध्यात्मिक विषय में भी यदि बूझरों के

१ यूनानी दन्तकथाओं के अनुसार क्रिनिक्स (Phoenix) एक चिड़िया है जो अकेली ५ वर्ष तक जीती है और पुनः अपने भस्म में से ही उठती है।

आज्ञाधीन हो कार्य करोगे, तो अपनी सारी शक्ति, यहाँ तक कि विचार की शक्ति भी खो बैठोगे। अपने स्वयं के प्रयत्नो द्वारा अपने अन्दर की शक्तियों का विकास करो। पर देखो, दूसरे का अनुकरण न करो। हाँ, दूसरो के पास जो कुछ अच्छाई हो, उसे अवश्य ग्रहण करो। हमे दूसरो से अवश्य सीखना होगा। जमीन में बीज बो दो, उसके लिए पर्याप्त मिट्टी, हवा और पानी की व्यवस्था करो, जब वह बीज अकुरित होकर कालान्तर में एक विशाल वृक्ष के रूप में फल जाता है, तब क्या वह मिट्टी बन जाता है, या हवा या पानी? नहीं, वह तो विशाल वृक्ष ही बनता है—मिट्टी, हवा और पानी से रस खींचकर वह अपनी प्रकृति के अनुसार एक महीरूह का रूप ही धारण करता है। उसी प्रकार तुम भी करो—औरो से उत्तम बातें सीखकर उन्नत बनो। जो सीखना नहीं चाहता, वह तो पहले ही मर चुका है। महर्षि मनु ने कहा है

आददीत परा विद्या प्रयत्नादवरादपि ।  
अन्त्यादपि पर धर्मं स्त्रीरत्न दुष्कुलादपि ॥

—‘स्त्री-रत्न को, भले ही वह कुलीन न हो, अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार करो और नीच व्यक्ति की सेवा करके उससे भी श्रेष्ठ विद्या सीखने का प्रयत्न करो। चाडाल द्वारा भी श्रेष्ठ धर्म की शिक्षा ग्रहण करो।’ औरो के पास जो कुछ भी अच्छा पाओ, सीख लो, पर उसे अपने भाव के साँचे में ढालकर लेना होगा। दूसरे की शिक्षा ग्रहण करते समय उसके ऐसे अनुगामी न बनो कि अपनी स्वतन्त्रता गँवा बैठो। भारत के इस जातीय जीवन को भूल मत जाना। पल भर के लिए भी ऐसा न सोचना कि भारतवर्ष के सभी अधिवासी यदि अमुक जाति की वेश-भूषा धारण कर लेते या अमुक जाति के आचार-व्यवहारादि के अनुयायी बन जाते तो बड़ा अच्छा होता। यह तो तुम भली भाँति जानते हो कि कुछ ही वर्षों का अभ्यास छोड़ देना कितना कठिन होता है! फिर यह ईश्वर ही जानता है कि तुम्हारे रक्त में कितने सहस्र वर्षों का सस्कार जमा हुआ है, कितने सहस्र वर्षों से यह प्रबल जातीय जीवन-स्रोत एक विशेष दिशा की ओर प्रवाहित हो रहा है। और क्या तुम यह समझते हो कि वह प्रबल धारा, जो प्रायः अपने समुद्र के समीप पहुँच चुकी है, पुनः उलटकर हिमालय की हिमाच्छादित चोटियों पर वापस जा सकती है? यह असम्भव है! यदि ऐसी चेष्टा करोगे तो जाति ही नष्ट हो जायगी। अतः, इस जातीय जीवन-स्रोत को पूर्ववत् प्रवाहित होने दो। हाँ, जो बाँध इसके रास्ते में रुकावट डाल रहे हैं, उन्हें काट दो, इसका रास्ता साफ़ करके प्रवाह को मुक्त कर दो, देखोगे, यह जातीय जीवन-स्रोत अपनी स्वाभाविक प्रेरणा से फूट कर आगे बढ़ निकलेगा और

यह जाति अपनी सर्वांगीण उन्नति करते करते अपने चरम सञ्चय की ओर अग्रसर होती जायगी।

माइयो ! यही कार्य-प्रणाली है, जो हमें भारत में धर्म के क्षेत्र में अपनाती होगी। इसके सिवा और भी कई महती समस्याएँ हैं, जिनकी चर्चा समयानाम के कारण इस पत्र में नहीं कर सकता। उदाहरण के लिए जाति-भेद सम्बन्धी अद्भुत समस्या को ही ले लो। मैं जीवन भर इस समस्या पर हर एक पल्लू से विचार करता रहा हूँ। भारत के प्रायः प्रत्येक प्रान्त में जाकर मैंने इस समस्या का अध्ययन किया है। इस देश के कमसे कम हर एक भाग की विभिन्न जातियों से मैं मिला-जुटा हूँ। पर जितना ही मैं इस विषय पर विचार करता हूँ मेरे सामने उठती ही कठिनाइयाँ आ पड़ती हैं और मैं इसके उद्देश्य अपना तात्पर्य के विषय में किनर्तव्यनिमूड सा हो जाता हूँ। अन्त में जब मेरी जानों के सामने एक धीम आलोक-रैसा विस्वासी बने लगी है, इपर कुछ ही समय से इसका मूल उद्देश्य मेरी समझ में आने लगा है।

इसके बाद फिर ज्ञान-दान की समस्या भी बड़ी विषय है। वास्तव में यह एक बड़ी जटिल समस्या है। साधारणतः हम लोग इसे जितना अनावश्यक समझते हैं, उतना ही यह उठनी अनावश्यक नहीं है। मैं तो इस विद्यालय पर आ पहुँच हूँ कि आदर्शक ज्ञान-दान के बारे में हम लोग जिस बात पर खोर बैठे हैं वह एक बड़ी विचित्र बात है—वह शास्त्रानुमोदित नहीं है। तात्पर्य यह कि ज्ञान-दान ; वास्तविक पवित्रता की अन्वेषणा करने की हम लोग बन्ट पा रहे हैं। हाँ शास्त्रानुमोदित आहार प्रथा के वास्तविक समिन्ध्र को बिन्दुल मूल गये है।

इसी प्रकार, और भी कई समस्याएँ हैं जिन्हें मैं तुम लोगों के समक्ष रखना चाहता हूँ और गाँव ही यह बतलाना चाहता हूँ कि इन समस्याओं के समाधान क्या है तथा किस प्रकार इन समाधानों को कार्यरत में परिणत किया जा सकता है पर तुम हैं, समा के व्यवस्थित रूप में आरम्भ होने में देर हो गयी और अब मैं तुम लोगों को और अधिक नहीं रोचना चाहता। अत्र जाति भेद तथा अत्याय समस्याओं पर मैं फिर भविष्य में कभी कुछ नूँगा।

अपने विचार एवं बात और बहुरूप में आप्तिमिक तत्व विषयक आना बतलाना समाप्त कर देता। भारत में धर्म बना जातियों में गीर्दीन बना हुआ है। हम चाहते हैं कि जगत् सदा जगत् हो। मैं चाहता हूँ कि प्रत्येक मनुष्य के जीवन में धर्म प्रतिष्ठित हो। मैं चाहता हूँ कि प्राचीन भारत की तन्त्र शास्त्रज्ञान में अन्वेषण के शोधन एवं सर्वत्र समाप्त आदि में धर्म का प्रवेश हो। धर्म को धर्म ही हम जाति का साक्षात्कृत उन्नतविचार एवं उन्नतगण्य रूप है। हम धर्म को हर एक भारतीय के हृदय में तब निर्यात चाहते हैं जहाँ तक हो सके। ईश्वर के राज्य में जिन प्रकार

वायु सबके लिए समान रूप से प्राप्त होती है, उसी प्रकार भारतवर्ष में धर्म को सुलभ बनाना होगा। भारत में इसी प्रकार का कार्य करना होगा। पर छोटे छोटे दल बाँध आपसी मतभेदों पर विवाद करते रहने से नहीं बनेगा, हमें तो उन बातों का प्रचार करना होगा, जिनमें हम सब सहमत हैं और तब आपसी मतभेद आप ही आप दूर हो जायेंगे। मैंने भारतवासियों से बारम्बार कहा है और अब भी कह रहा हूँ कि कमरे में यदि सैकड़ों वर्षों से अन्धकार फैला हुआ है, तो क्या 'घोर अन्धकार', 'भयकर अन्धकार' कहकर चिल्लाने से अन्धकार दूर हो जायगा? नहीं, रोशनी जला दो, फिर देखो कि अँधेरा आप ही आप दूर हो जाता है या नहीं। मनुष्य के सुधार का, उसके सस्कार का यही रहस्य है। उसके समक्ष उच्चतर बातें, उच्चतर प्रेरणाएँ रखो, पहले मनुष्य में, उसकी मनुष्यता में विश्वास रखो। ऐसा विश्वास लेकर क्यों प्रारम्भ करें कि मानव हीन और पतित है? मैं आज तक मनुष्य पर, बुरे से बुरे मनुष्य पर भी, विश्वास करके कभी विफल नहीं हुआ हूँ। जहाँ कहीं भी मैंने मानव में विश्वास किया, वहाँ मुझे इच्छित फल ही प्राप्त हुआ है—सर्वत्र सफलता ही मिली है, यद्यपि प्रारम्भ में सफलता के अच्छे लक्षण नहीं दिखायी देते थे। अतः, मनुष्य में विश्वास रखो, चाहे वह पंडित हो या घोर मूर्ख, साक्षात् देवता जान पड़े या मूर्तिमान शैतान, सबसे पहले मनुष्य में विश्वास रखो, और तदुपरान्त यह विश्वास लाने का प्रयत्न करो कि यदि उसमें दोष हैं, यदि वह गलतियाँ करता है, यदि वह अत्यन्त घृणित और असार सिद्धान्तों को अपनाता है तो वह अपने यथार्थ स्वभाव के कारण ऐसा नहीं करता, वरन् उच्चतर आदर्शों के अभाव में वैसा करता है। यदि कोई व्यक्ति अमृत्य की ओर जाता है, तो उसका कारण यही समझो कि वह सत्य को ग्रहण नहीं कर पाता। अतः, मिथ्या को दूर करने का एकमात्र उपाय यही है कि उसे सत्य का ज्ञान कराया जाय। उसे सत्य का ज्ञान दे दो और उसके साथ अपने पूर्व मन के भाव की तुलना उसे करने दो। तुमने तो उसे सत्य का असली रूप दिखा दिया, वस यही तुम्हारा काम समाप्त हो गया। अब वह स्वयं उस सत्य के साथ अपने पूर्व भाव की तुलना करके देखे। यदि तुमने वास्तव में उसे सत्य का ज्ञान करा दिया है तो निश्चय जानो, मिथ्या भाव अवश्य दूर हो जायगा। प्रकाश कभी अन्धकार का नाश किये बिना नहीं रह सकता। सत्य अवश्य ही उसके भीतर के सद्भावों को प्रकाशित करेगा। यदि सारे देश का आध्यात्मिक सस्कार करना चाहते हो, तो उसके लिए यही रास्ता है—'नान्य पन्या'। वाद-विवाद या लड़ाई-झगड़ों में कभी अच्छा फल नहीं हो सकता। लोगों से यह भी कहने की आवश्यकता नहीं कि तुम लोग जो कुछ कर रहे हो, वह ठीक नहीं है, खराब है। जो कुछ अच्छा है, उसे उनके सामने रख दो, फिर देखो, वे कितने आग्रह के साथ उसे ग्रहण करते

हैं और फिर देखोगे कि मनुष्य मात्र में जो अविनाशी ईश्वरीय शक्ति है, वह जाग्रत हो जाती है और जो कुछ उत्तम है, जो कुछ महिमाय है उसे प्रह्वन करने के लिए हाथ फेंका देती है।

जो हमारी समग्र जाति का स्रष्टा पाञ्चक एवं रसाक है, हमारे पूर्वजों का ईश्वर है भले ही वह विष्णु, शिव शक्ति या गणेश आदि नामों से पुकारा जाता हो सगुण या निर्गुण अथवा साकार या निराकार रूप से उसको उपासना की जाती हो जिसे जानकर हमारे पूर्वज एक सखिप्रा बहुधा बहन्ति कह गये हैं वह अपनी अनन्त प्रेम-शक्ति के साथ हममें प्रवेश कर, अपने सुमार्गीयों की हम पर बर्पा करे, हमें एक बूँदरे को समझने की सामर्थ्य दे जिससे हम यथार्थ प्रेम के साथ सत्य के प्रति तीव्र अनुराग के साथ एक बूँदरे के हित के लिए कार्य कर सके जिससे भारत के आध्यात्मिक पुनर्निर्माण के इस महत्कार्य में हमारे अन्तर अपने व्यक्तिगत नाम यद्यपि व्यक्तिगत स्वार्थ व्यक्तिगत बहुप्यन की वासना के अङ्कुर न फूटें।

## भक्ति

[लाहौर में ९ नवम्बर, १८९७ को दिया हुआ भाषण]

समस्त उपनिषदों के गम्भीर निनादी प्रवाह के अतराल से, बड़ी दूर से आने-वाली प्रतिध्वनि की तरह, एक शब्द हमारे कानों तक पहुँचता है। यद्यपि उसके आयतन और उच्चता में उसकी बहुत कुछ वृद्धि हुई है, पर समग्र वेदान्त साहित्य में, स्पष्ट होने पर भी वह उतना प्रबल नहीं है। उपनिषदों का प्रधान उद्देश्य हमारे आगे भूमा का भाव और चित्र अंकित करना ही जान पड़ता है। फिर भी इस अपूर्व उदात्त भाव के पीछे कहीं कहीं हमें कवित्व का भी आभास मिलता है, जैसे हम पढ़ते हैं

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकम् ।

नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः ॥

(कठोपनिषद् २।२।१५)

—‘वहाँ सूर्य प्रकाश नहीं करता, चन्द्र और सितारे भी वहाँ नहीं हैं, ये विजलियाँ भी वहाँ नहीं चमकती, फिर इस भौतिक अग्नि का तो कहना ही क्या है!’ इन दोनों अद्भुत पक्तियों का अपूर्व हृदयस्पर्शी कवित्व सुनते सुनते हम मानो इस इन्द्रियगम्य जगत् से—यहाँ तक कि बुद्धि-जगत् से भी दूर, बहुत दूर, ऐसे एक जगत् में जा पहुँचते हैं जिसे किसी काल में ज्ञान का विषय नहीं बनाया जा सकता, यद्यपि वह सदा हमारे पास ही मौजूद रहता है। इसी महान् भाव की छाया की तरह उसका अनुगामी एक और महान् भाव है, जिसको मानव जाति और भी आसानी के साथ प्राप्त कर सकती है, जो मनुष्य के दैनिक जीवन में अनुसरण करने के अधिक उपयुक्त है, और जिसे मानव जीवन के प्रत्येक विभाग में प्रविष्ट कराया जा सकता है। वह क्रमशः पुष्ट होता आया है और परवर्ती युगों में पुराणों में और भी पूर्णता के साथ, और भी स्पष्ट भाषा में व्यक्त किया गया है—और वह है भक्ति का आदर्श। भक्ति का बीज पहले से ही विद्यमान है, संहिताओं में भी इसका थोड़ा बहुत परिचय मिलता है, उससे कुछ अधिक विकास उपनिषदों में देखने में आता है, किन्तु पुराणों में उसका विस्तृत निरूपण दिखायी देता है।

अतः भक्ति को भली भाँति समझने के लिए हमें अपने पुराणों को समझना

होगा। इस बीच पुराणों की प्रामाणिकता को लेकर बहुत कुछ शक-विवाद ही चुका है, किन्तु ही अनिश्चित और असम्बद्ध अर्थों को लेकर आसोचना-भ्रमालोचना ही चुकी है, किन्तु ही समालोचकों ने कई अंशों के विषय में यह दिखाया है कि वर्तमान विज्ञान के आलोक में बैठकर नहीं सकते जावि जावि। परन्तु इन शक-विवादों को छोड़ देने पर, पौराणिक उक्तियों के वैज्ञानिक शैविक और ज्योतिषिक सत्यासत्य का निर्णय करना छोड़ देने पर, तथा प्रायः सभी पुराणों का आरम्भ से अन्त तक मधी भाँति निरीक्षण करने पर हमें एक स्पष्ट निश्चित और स्पष्ट रूप से दिखायी देता है, वह है भक्तिवाद। साधु, महात्मा और राजर्षियों के चरित का वर्णन करते हुए भक्तिवाद बारम्बार उल्लिखित उदाहृत और आसोचित हुआ है। सौन्दर्य के महान् आदर्शक—भक्ति के आदर्श के दृष्टान्तों की समझाया और वर्णना ही सब पुराणों का प्रमाण उद्देश्य जान पड़ता है। मैंने पहले ही कहा है कि यह आदर्श साधारण मनुष्यों के लिए अधिकतर उपयुगी है। ऐसे लोग बहुत कम हैं जो वेदान्तालोक की पूर्ण छटा का बीज समझ सकते हैं। अबका उसका बोधोचित आधर कर सकते हैं—उनके तत्त्वों पर अमल करना बड़ी दूर की बात है। क्योंकि वास्तविक वेदान्ती का सबसे पहला काम है जमी अर्थात् निर्मीक होना। यदि कोई वेदान्ती होने का दावा करता हो तो उसे अपने हृदय से मय को सदा के लिए निर्वासित कर देना होना। और हम जानते हैं कि ऐसा करना कितना कठिन है। जिन्होंने संसार के सब प्रकार के अंगण छोड़ दिये हैं और जिनके ऐसे अन्धन बहुत ही कम रहे पये हैं जो उन्हें दुर्बल हृदय कापुस्य बना सकते हैं वे भी मन ही मन इस बात को अनुभव करते हैं कि वे समय समय पर कितने दुर्बल और नीचे निर्वासित हो जाते हैं। जिन लोगों के चारों ओर ऐसे अन्धन हैं जो भीतर-बाहर धर्मन हृदयों विषयों में उलझे हुए हैं जीवन में प्रत्येक क्षण विषयों का बाधन जिन्हें नीचे से नीचे धिये जा रहा है वे कितने दुर्बल होते हैं क्या यह भी कहना होना? हमारे पुराण ऐसे ही लोगों को भक्ति का अत्यन्त मनोहायी उद्देश्य देते हैं।

उम लोगों के लिए ही सुकोमल और कथितमय भावों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। अथ प्रह्लाद तथा अश्वमेध वृद्धों हृदयों सत्त्वों की अशुभन और अनोन्नी जीवन-कथाएँ वर्णित की गयी हैं। इन दृष्टान्तों का उद्देश्य यही है कि लोग उसी भक्ति का अपने अपने जीवन में विकास करें और उन्हें इन दृष्टान्तों द्वारा रास्ता साफ दिलायी दे। तुम लोग पुराणों की वैज्ञानिक सत्यता पर विश्वास करो या न करो पर तुम लोगों में ऐसा कोई भी आदमी नहीं है जिस पर प्रह्लाद अथवा इन पौराणिक सत्त्वों के आख्यानों में से किसी एक का कुछ भी अन्तर न

पडा हो। और यह भी नहीं कहा जा सकता कि इन पुराणों की उपयोगिता केवल आजकल के ज़माने में ही है, पहले नहीं थी। पुराणों के प्रति हमारे कृतज्ञ रहने का एक और कारण यह भी है कि पिछले युग में अवनत बौद्ध धर्म हमें जिस राह से ले चल रहा था, पुराणों ने उसकी अपेक्षा प्रशस्ततर, उन्नततर और सर्वसाधारण के उपयुक्त धर्म-मार्ग बताया। भक्ति का सहज और सरल भाव सुबोध भाषा में व्यक्त अवश्य किया गया है, पर उतने से ही काम नहीं चलेगा। हमें अपने दैनिक जीवन में उस भाव का व्यवहार करना होगा। ऐसा करने से हम देखेंगे कि भक्ति का वही भाव क्रमशः परिस्फुट होकर अन्त में प्रेम का सारभूत बन जाता है। जब तक व्यक्तिगत और जड़ वस्तुओं के प्रति प्रीति रहेगी, तब तक कोई पुराणों के उपदेशों से आगे न बढ़ सकेगा। जब तक दूसरों की सहायता अपेक्षित रहेगी, अथवा दूसरों पर निर्भर किया जायगा, जब तक यह मानवीय दुर्बलता बनी रहेगी, तब तक ये पुराण भी किसी न किसी रूप में मौजूद रहेंगे। तुम उन पुराणों के नाम बदल सकते हो, उनकी निन्दा कर सकते हो, पर तुमको दूसरे कुछ नये पुराण बना लेने ही पड़ेंगे। अगर हम लोगों में किसी ऐसे महापुरुष का आविर्भाव हो जो इन पुराणों को ग्रहण करना अस्वीकार कर दे, तो तुम देखोगे कि उनके देहान्त हो जाने के बीस ही वर्ष बाद उनके शिष्यों ने उनके जीवन के आधार पर एक नया पुराण रच डाला है। वस यही अन्तर होगा।

मनुष्य की प्रकृति यही चाहती है, उसके लिए ये आवश्यक हैं। पुराणों की आवश्यकता केवल उन्हीं लोगों को नहीं है जो सारी मानवीय दुर्बलताओं के परे होकर परमहसोचित निर्भीकता प्राप्त कर चुके हैं, जिन्होंने माया के सारे बन्धन काट डाले हैं, यहाँ तक कि स्वाभाविक अभावों तक को भी पार कर गये हैं जो सब कुछ जीत चुके हैं और जो इस लोक में देवता हैं, केवल ऐसे महापुरुषों को ही पुराणों की आवश्यकता नहीं है। सगुण रूप में ईश्वर की उपासना किये बिना साधारण मनुष्य का काम नहीं चल सकता। यदि वह प्रकृति के मध्य स्थित भगवान् की पूजा नहीं करता, तो उसे स्त्री, पुत्र, पिता, भाई, आचार्य या किसी न किसी व्यक्ति को भगवान् के स्थान पर प्रतिष्ठित करके उसकी पूजा करनी पड़ती है। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को ऐसा करने की अधिक आवश्यकता पड़ती है। प्रकाश का स्पन्दन सर्वत्र रहता है। विल्ली या उसी श्रेणी के अन्य जानवर अँधेरे में भी देख पाते हैं। इसी बात से प्रकाश का स्पन्दन अन्धकार में होना भी सिद्ध होता है। परन्तु हम यदि किसी चीज़ को देखना चाहते हैं, तो उस चीज़ में उसी स्तर के अनुकूल स्पन्दन होना चाहिए, जिस स्तर में हम लोग मौजूद हैं। मतलब यह कि हम एक निर्गुण, निराकार सत्ता के विषय में बातचीत या चर्चा भले ही करें, पर जब तक



हम शीघ्र इस मर्त्यलोक के साधारण मनुष्य की स्थिति में खँसि तब तक हमें मनुष्यों में ही भयवान् को देखना पड़ेगा। इसीलिए हमारी भयवान् विषयक धारणा एवं उपासना स्वभावतः मानुषी है। सचमुच ही 'यह शरीर भयवान् का सबसे ठ मन्विर है। इसीसे हम देखते हैं कि यूपों से मनुष्य मनुष्य की ही उपासना करता जा रहा है। लोगों का इस मनुष्योपासना के विषय में जब कभी स्वानाधिक रूप से निकटित अमिताभार देखने में आता है, तो उनकी निम्ना या आलोचना भी होती है। फिर भी हमें यह दिखायी देता है कि इसकी रीढ़ काड़ी मजबूत है। ऊपर की शाखा-प्रशाखाएँ मझे ही खरी आलोचना के योग्य हैं पर उनकी जड़ बहुत ही गहराई तक पहुँची हुई और सुदृढ़ है। ऊपरी शाखों के होने पर भी उसमें एक धार-तत्त्व है। मैं तुमसे यह कहना नहीं चाहता कि तुम बिना समझे बूझे किन्हीं पुरानी कथाओं बचना बर्षात्मिक अनर्थक सिद्धान्तों को खबरबस्तों गछे के नीचे उतार आओ। दुर्भाग्यवश कई पुराणों में बामाचारी व्याख्याएँ प्रवेश पायी हैं। मैं यह नहीं चाहता कि तुम उन सब पर विश्वास करो। मैं ऐसा करने को नहीं कह सकता बल्कि मेरा मतलब यह है कि इन पुराणों के अस्तित्व की रक्षा का कारण एक धार-तत्त्व है जिसे छुट नहीं होने देना चाहिए। और यह धार-तत्त्व है उनमें निहित मक्ति सम्बन्धी उपदेश धर्म को मनुष्य के दैनिक जीवन में परिणत करना धर्मों के उन्मादास में विचरण करनेवासे धर्म का साधारण मनुष्यों के लिए दैनिक जीवनोपयोगी एवं व्यावहारिक बनाना।

### ट्रिब्यून' में प्रकाशित रिपोर्ट

इस घापना की जो रिपोर्ट 'ट्रिब्यून' में प्रकाशित हुई उसका विवरण निम्न लिखित है

बस्ता महोदय ने मक्ति की सापना में प्रतीक-मतिमार्थों को उपबोधिता का समर्पन किया और उन्होंने कहा कि मनुष्य इस समय जिस अवस्था में है, ईश्वरेच्छा से यदि ऐसी अवस्था न होती तो बड़ा अच्छा होता। परन्तु विद्यमान तत्त्व का प्रतिपाद ध्येय है। मनुष्य वैतन्य और आध्यात्मिकता आदि विषयों पर जाहे जितनी बातें क्यों न बनावे पर वास्तव में वह अभी जड़मायागत ही है। ऐसे जड़ मनुष्य को हाथ पकड़कर धीरे धीरे उठाना होगा—तब तक उठाना होता जब तक वह वैतन्यमय सम्पूर्ण आध्यात्मिक भाषापरत न हो जाय। आजकल के समाने मे ९९ फीसदी ऐसे आदमी हैं जिनके लिए आध्यात्मिकता को समझना कठिन है। जो प्रेरक शक्तियाँ हमें इनेतरकर आने बाड़ा रही हैं, तथा हम को कम प्रान्त करता चाहते हैं वे मनी जड़ हैं। हर्ष स्मेर के शब्दों में कहा जाता है कि हम

केवल उसी रास्ते से आगे बढ़ सकते हैं, जो अल्पतम प्रतिरोध का हो। और पुराण-प्रणेताओं को यह बात भली भाँति मालूम थी, तभी वे हमारे लिए ऐसी पद्धति बता गये हैं। इस प्रकार के कार्य में पुराणों को विस्मयजनक और बेजोड़ सफलता मिली है। भक्ति का आदर्श अवश्य ही आध्यात्मिक है, पर उसका रास्ता जड़ वस्तु के भीतर से होकर है और इस रास्ते के सिवा दूसरा रास्ता भी नहीं है। अतः, जड़ जगत् में जो कुछ ऐसा है, जो आध्यात्मिकता प्राप्त करने में हमारी सहायता कर सकता है, उसे ग्रहण करना होगा, और उसे इस तरह काम में लाना होगा कि मानव क्रमशः आगे बढ़ता हुआ पूर्ण आध्यात्मिक स्थिति में विकसित हो सके। शास्त्र आरम्भ से ही लिंग, जाति या धर्म का भेदभाव छोड़कर सबको वेद-पाठ करने का अधिकार प्रदान करते हैं। हमें भी इसी तरह उदार होना चाहिए। यदि मनुष्य जड़ मन्दिर बनाकर भगवान् में प्रीति कर सके तो अच्छा ही है। यदि भगवान् की मूर्ति बनाकर इस प्रेम के आदर्श पर पहुँचने में मनुष्य को कुछ भी सहायता मिलती है तो उसे एक की जगह बीस मूर्तियाँ पूजने दो। चाहे कोई भी काम क्यों न हो, यदि उसके द्वारा धर्म के उस उच्चतम आदर्श पर पहुँचने में सहायता मिलती हो तो उसे वह अबाध गति से करने दो, पर हाँ, वह काम नैतिकता के विरुद्ध न हो। 'नैतिकता के विरुद्ध न हो', ऐसा इसलिए कहा गया कि नैतिकता विरोधी काम हमारे धर्म-मार्ग के सहायक नहीं होते, बल्कि विघ्न ही उपस्थित किया करते हैं।

स्वामी जी ने मूर्ति-पूजा के विरोध की समीक्षा करते हुए कहा कि भारतवर्ष में सर्वप्रथम कवीर ने ही ईश्वरोपासना के लिए मूर्ति का व्यवहार करने के विरुद्ध आवाज उठायी थी। परन्तु भारत में ऐसे कितने ही बड़े बड़े दार्शनिक और धर्म-संस्थापक हुए हैं, जिन्होंने भगवान् का सगुण रूप अस्वीकार कर निर्भीकता के साथ अपने निर्गुण मत का प्रचार करने पर भी मूर्ति-पूजा की निन्दा नहीं की। हाँ, उन्होंने मूर्ति-पूजा को उच्च कोटि की उपासना नहीं माना है, और न किसी पुराण में ही मूर्ति-पूजन को ऊँचे दर्जे की उपासना ठहराया गया है।

यहूदियों के मूर्ति-पूजन के इतिहास का जिक्र करते हुए स्वामी जी ने कहा कि जिहोवा एक सन्दूक के भीतर रहते हैं, ऐसा विश्वास करनेवाले यहूदी लोग भी मूर्तिपूजक ही थे। इस ऐतिहासिक दृष्टान्त के उपस्थित रहते हमें मूर्ति-पूजा की इसलिए निन्दा नहीं करनी चाहिए कि और लोग उसे दोषपूर्ण बताते हैं। मूर्ति या किसी और भी जड़ वस्तु के प्रतीक को, जो मनुष्य को धर्म की प्राप्ति में सहायता करे, बिना सकोच ग्रहण करना चाहिए। पर हमारा कोई भी धर्मग्रन्थ ऐसा नहीं है, जो स्पष्ट शब्दों में यह नहीं कहता कि जड़ वस्तु की सहायता से अनुष्ठित होने-वाली उपासना निकृष्ट श्रेणी की है। सारे भारतवर्ष के सब लोगों को बलपूर्वक

ही प्रकाशित होते हैं, इसकिए वे सभी एक ही प्रकार या एक ही श्रेणी के हैं। जिस तरह दूर और पास से फोटोग्राफ लेने पर एक ही सूर्य का चित्र अनेक प्रकार से बीज पड़ता है और ऐसा भावमूढ होता है कि प्रत्येक चित्र भिन्न भिन्न सूर्यों का है, उसी तरह सापेक्ष सत्य के नियम में भी समझना चाहिए। सभी सापेक्ष सत्य निरपेक्ष सत्य के साथ ठीक इसी रीति से सम्बन्ध हैं; अतएव प्रत्येक सापेक्ष सत्य या धर्म उसी निरपेक्ष सत्य का आभास होने के कारण सत्य है।

‘विश्वास ही धर्म का मूल है’—मेरे इस कथन पर स्वामी जी ने मुसकुराकर कहा “उबा होने पर फिर छाने-पीने का कष्ट नहीं रहता किन्तु उबा होना ही तो कठिन है। क्या विश्वास कमी बार-बार बरती करनी से होता है? बिना अनुभव के ठीक ठीक विश्वास होना असम्भव है।

किसी प्रसंग में उनको ‘साधु’ कहने पर उन्होंने उत्तर दिया ‘हम जोय क्या साधु हैं? ऐसे अनेक साधु हैं, जिनके दर्शन या स्पर्श मात्र से ही विषय ज्ञान का उदय होता है।

‘संन्यासी इस प्रकार आच्छादी होकर क्यों समय बिताते हैं? दूसरों की सहायता के ऊपर क्यों निर्भर रहते हैं और समाज के लिए कोई हितकर काम क्यों नहीं करते? —इन सब प्रश्नों के उत्तर में स्वामी जी बोले “अच्छा बचानो तो भला तुम इतने कष्ट से अर्धोपार्जन कर रहे हो! उसका बहुत बीड़ा सा बस केवल अपने लिए व्यय करते हो। पेय में से कुछ बँस दूसरे लोगों के लिए, जिन्हें तुम अपना समझते हो, व्यय करते हो। वे लोग उसके लिए न तुम्हारा उपकार मानते हैं और न उनके लिए जितना व्यय करते हो उससे अनुष्ट ही होते हैं। रकम तुम कौड़ी कौड़ी जोड़े जा रहे हो। तुम्हारे घर जाने पर कोई धूमरा उसका मोह करेगा और हो सकता है, यह कहकर गामी भी दे कि तुम अधिक खर्च नहीं रख सके। ऐसा तो गया-मुजरा तुम्हारा हाल है। और मैं तो बेगा कुछ भी नहीं करता। भूत जन्म पर पैर पर हाथ रखकर, हाथ को मुँह के पास से पारकर लियता देता हूँ जो पाता हूँ या फिटा हूँ कुछ भी कष्ट नहीं उठाता कुछ भी संघट्ट नहीं करता। हम बंती में कौन बुद्धिमान है?—तुम या मैं!” मैं तो मुनकर बचाक रह गया। इसके पहले मैंने अपने सामने किमीको भी इस प्रकार स्पष्ट रूप से बोलने का साहस करते नहीं देगा था।

आहार आदि करके कुछ विधायक कर चुकने के बाद फिर उन्हीं बनील महात्म्य के निराग-स्नान कर गया। वहाँ अनेक प्रकार के बातालाप और पर्चा चलने लगी। लपकन भी बस राम को स्वामी जी को लेकर मैं अपने निवाग-स्नान की और

लौटा। आते आते मैंने कहा, “स्वामी जी, आपको आज तर्क-वितर्क में बहुत कष्ट हुआ।”

वे बोले, “बच्चा, तुम लोग तो ठहरे उपयोगितावादी (utilitarian)। यदि मैं चुप होकर बैठा रहूँ, तो क्या तुम लोग मुझे एक मुट्ठी भी खाने को दोगे। मैं इस प्रकार अनवरत बकता हूँ, लोगो को सुनकर आनन्द होता है, इसीलिए वे दल के दल आते हैं। किन्तु यह जान लो, जो लोग सभा में तर्क-वितर्क करते हैं, अनेक प्रश्न पूछते हैं, वे वास्तविक सत्य को समझने की इच्छा से वैसा नहीं करते। मैं भी समझ जाता हूँ, कौन किस भाव से क्या कह रहा है और उसे उसी तरह उत्तर देता हूँ।”

मैंने स्वामी जी से पूछा, “अच्छा स्वामी जी, सभी प्रश्नों के इस प्रकार उत्तम उत्तम उत्तर आप तुरन्त किस प्रकार दे लेते हैं?”

वे बोले, “ये सब प्रश्न तुम्हारे लिए नवीन हैं, किन्तु मुझसे तो कितने ही मनुष्य कितनी बार इन प्रश्नों को पूछ चुके हैं, और उनका उत्तर कितनी ही बार दे चुका हूँ।” रात में भोजन करते समय और भी अनेक बातें उन्होंने कही। पैसा न छूते हुए देश-भ्रमण करते करते कहीं कौसी कौसी घटनाएँ हुईं, यह सब वर्णन करने लगे। सुनते सुनते मेरे मन में हुआ—अहा! न जाने इन्होंने कितना कष्ट, कितनी विपत्तियाँ सही हैं। किन्तु वे तो उन सब घटनाओं को इस प्रकार हँसते हँसते सुनाने लगे, मानो वे अत्यन्त मनोरञ्जक कहानियाँ हो। कही पर उनका तीन दिन तक बिना कुछ खाये रहना, किसी स्थान में मिर्चा खाने के कारण पेट में ऐसी जलन होना, जो एक कटोरी दमली का पना पीने पर भी शान्त नहीं हुई, कही पर ‘यहाँ साधु-सन्यासियों को स्थान नहीं’—इस प्रकार झिडके जाना, और कही खुफिया पुलिस की कड़ी नज़र में रहना—आदि सब घटनाएँ, जिन्हे सुनकर हमारे शरीर का खून पानी ही जाय, उनके लिए तो मानो एक तमाशा थी।

रात अधिक हुई देखकर उनके लिए सोने का प्रबन्ध कर मैं भी सोने के लिए चला गया, किन्तु रात में नीद नहीं आयी। सोचने लगा—कौसा आश्चर्य, इतने वर्षों का दृढ़ सन्देह और अविश्वास स्वामी जी को देखकर और उनकी दो-चार बातें सुनकर ही दूर हो गया। अब और कुछ पूछने को नहीं रहा। जैसे जैसे दिन बीतने लगे, हमारी ही क्या—हमारे नौकर-चाकरों की भी उनके प्रति इतनी श्रद्धा-भक्ति हो गयी कि कभी कभी स्वामी जी उन लोगो की सेवा और आग्रह के मारे परेशान हो उठते थे।

२० अक्टूबर, १८९२ ई०। सबेरे उठकर स्वामी जी को प्रणाम किया। इस समय साहस कुछ बढ़ गया है, श्रद्धा-भक्ति भी हुई है। स्वामी जी भी मुझसे

अनेक वन नदी अरुण्य भाबि का विवरण सुनकर सन्तुष्ट हुए हैं। इस सहर में आज उगका चौथा दिन है। पाँचवें दिन उन्होंने कहा 'संन्यासियों को नगर में तीन दिन से और बाँव में एक दिन से अधिक ठहरना उचित नहीं। मैं अब अल्पी बचा जाना चाहता हूँ।' परन्तु मैं किसी प्रकार उनकी यह बात मानने को राजी न था। बिना ठरुँ द्वारा समझे मैं कैसे मानूँ! फिर अनेक बार-बिबाह के बाद वे बोले 'एक स्थान में अधिक दिन रहने पर माया-ममता बढ़ जाती है। हम लोगों ने घर और आत्मीय जनों का परिव्रयाम किया है। अतः जिन बातों से उस प्रकार की माया में गुग्ग होने की सम्भावना है उनसे दूर रहना ही हम लोगों के लिए अच्छा है।

मैंने कहा 'आप कभी भी मुग्ग होनेवाले नहीं हैं। अन्त में मेरा अतिशय आपहूँ बेसकर और नी बो-बार दिन ठहरना उन्होंने स्वीकार कर लिया। इस बीच मेरे मन में हुआ यदि स्वायी भी सर्वसाधारण के लिए व्याख्यान हैं तो हम लोग भी उनका व्याख्यान सुनने और प्रसनों का भी कस्याव होगा। मैंने इसके लिए बहुत अनुरोध किया किन्तु व्याख्यान देने पर शायद नाम-यस की स्पृहा बन उठे, ऐसा कहकर उन्होंने मेरे अनुरोध को किसी भी तरह नहीं माना। पर उन्होंने यह भी बात मुझे बतायी कि उन्हें समा में प्रसनों का उत्तर देने में कोई आपत्ति नहीं है।

एक दिन बाठचीठ के सिक्किसे में स्वामी जी 'पिकविक पेपर्स' (Pickwick Papers) के दो-तीन पृष्ठ कच्छस्य बोक गये। मैंने उस पुस्तक को अनेक बार पढ़ा है। समझ गया—उन्होंने पुस्तक के किस स्थान से आशुति की है। सुनकर मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। सीचने लगा—संन्यासी होकर सामाजिक ग्रन्थ में से इन्होंने इतना कैसे कच्छस्य किया। ही न हो इन्होंने पहले इस पुस्तक को अनेक बार पढ़ा है। पूछने पर उन्होंने कहा 'दो बार पढ़ा है। एक बार स्कूल में पढ़ने के समय और दूसरी बार बाव से पाँच-छ मास पहले।

आश्चर्यचकित होकर मैंने पूछा 'फिर आपको किस प्रकार यह स्मरण रहा? और हम लोगों को क्यों नहीं रहता?

स्वामी जी ने उत्तर दिया "एकाग्र मन से पढ़ना चाहिए और बाव के सार भाव द्वारा निर्मित बीर्य का नाश न करके उसका अधिकाधिक परिपक्व (assimilation) कर लेना चाहिए।

और एक दिन की बात है। स्वामी जी सोपहर में बिछीने पर केते हुए एक पुस्तक पढ़ रहे थे। मैं दूसरे कमरे में था। एकाएक स्वामी जी इतने और से हँस पड़े कि क्या ही क्या सीचकर मैं उनके कमरे के दरवाजे के पास आकर गया

हो गया। देखा, बात कोई विशेष नहीं है। वे जैसे पुस्तक पढ़ रहे थे, वैसे ही पढ़ रहे हैं। लगभग पन्द्रह मिनट खड़ा रहा, तो भी उनका ध्यान मेरी ओर नहीं गया। पुस्तक छोड़कर उनका ध्यान किसी दूसरी ओर नहीं था। कुछ देर बाद मुझे देखकर अन्दर आने के लिए कहा, और मैं इतनी देर से खड़ा हूँ, यह सुनकर बोले, “जब जो काम करना हो, तब उसे पूरी लगन और शक्ति के साथ करना चाहिए। गाजीपुर के पवहागी बाबा ध्यान, जप, पूजा-पाठ जिस प्रकार एकचित्त से करते थे, उसी प्रकार वे अपने पीतल के लोटे को भी एकचित्त से माँजते थे। ऐसा माँजते थे कि सोने के समान चमकने लगता था।”

एक बार मैंने स्वामी जी से पूछा, “स्वामी जी, चोरी करना पाप क्यों है? सभी धर्म चोरी करने का निषेध क्यों करते हैं? मेरे विचार में तो ‘यह मेरा है’, ‘यह दूसरे का’—ये सब भावनाएँ केवल कल्पना मात्र हैं। मुझसे बिना पूछे ही जब कोई मेरा आत्मीय बन्धु मेरी किसी वस्तु का व्यवहार करता है, तो वह चोरी क्यों नहीं कहलाती? और पशु-पक्षी आदि जब हमारी कोई वस्तु नष्ट कर देते हैं, तो हम उसे चोरी क्यों नहीं कहते?”

स्वामी जी ने कहा, “हाँ, ऐसी कोई वस्तु या कार्य नहीं है, जो सभी अवस्था में और सभी समय बुरा और पाप कहा जा सके। फिर दूसरी ओर, अवस्था-भेद से प्रत्येक वस्तु ही बुरी और प्रत्येक कार्य ही पाप कहा जा सकता है। फिर भी, जिससे दूसरे को किसी प्रकार का कष्ट हो एव जिसके आचरण से शारीरिक, मानसिक अथवा आध्यात्मिक किसी प्रकार की दुर्बलता आये, उस कर्म को नहीं करना चाहिए, वह पाप है, और उससे विपरीत कर्म ही पुण्य है। सोचो, तुम्हारी कोई वस्तु किसीने चुरा ली, तो तुम्हें दुःख होगा या नहीं? तुम्हें जैसा लगता है, वैसा ही सम्पूर्ण जगत् के बारे में भी समझो। इस दो दिन की दुनिया में जब किसी छोटी वस्तु के लिए तुम एक प्राणी को दुःख दे सकते हो, तो धीरे धीरे भविष्य में क्या बुरा काम नहीं कर सकोगे? फिर, यदि पाप-पुण्य न रहे, तो समाज ही न चले। समाज में रहने पर उसके नियम आदि पालन करने पड़ते हैं। वन में जाकर नगे होकर नाचो—कोई कुछ न कहेगा, किन्तु शहर में इस प्रकार का आचरण करने पर पुलिस द्वारा तुम्हें पकड़वाकर किसी निर्जन स्थान में बन्द रख देना ही उचित होगा।”

स्वामी जी कई बार हास-परिहास के भीतर से विशेष शिक्षा दिया करते थे। वे गुरु होते हुए भी, उनके पास बैठना मास्टर के पास बैठने के समान नहीं था। अभी खूब रंग-रस चल रहा है, बालक के समान हँसते हँसते हँसी के वहाने कितनी ही बातें कहे जा रहे हैं, सभी लोगो को हँसा रहे हैं, और दूसरे

ही क्षम ऐसे यन्मीर होकर अटिस प्रशनों की व्याख्या करना आरम्भ कर देते हैं कि उपस्थित सभी लोग विस्मित होकर सोचने लगते हैं, 'इनके भीतर इतनी शक्ति! अगि तो बेस रहे ये कि ये हमारे ही समान एक व्यक्ति हैं।'

छोप सभी समय उनके पास धिआ खेन के लिए आते। उनका द्वार सभी समय खुला रहता। दर्शनार्थियों में से अनेक भिन्न भिन्न उद्देश्य से भी आते— कोई उनकी परीक्षा लेने के लिए, तो कोई मजबूर बाघ सुनने के लिए, कोई इसलिए कि उनके पास आज से बड़े बड़े धनी लोगों से बातचीत हो सकेगी, और कोई संसार-ताप से अर्बरित होकर उनके पास शो बड़ी शीतल होने एवं ज्ञान और धर्म का काम करने के लिए। किन्तु उनकी ऐसी अद्भुत क्षमता थी कि कोई किसी भाव से क्यों न आये उसे उसी क्षण समझ आते थे और उसके साथ उसी तरह व्यवहार करते थे। उनकी गर्मभेरी दृष्टि से किसीके लिए बचना या कुछ छियाकर रखना सम्भव नहीं था। एक समय किसी प्रतिष्ठित धनी का एकमात्र पुत्र निस्वविद्यालय की परीक्षा से बचने के लिए स्वामी जी के निकट आरम्भ करने लगा और साधु होऊँगा ऐसा भाव प्रकाशित करने लगा। वह मेरे एक मित्र का पुत्र था। मैंने स्वामी जी से पूछा 'यह लड़का आपके पास किस मरुतक से इतना अधिक आता-आता है? उसे क्या आप संयासी होने का उपदेश देंगे? उरना आप मेरा मित्र है।'

स्वामी जी ने कहा 'वह केवल परीक्षा के मम से साधु हीना चाहता है। मैंने उससे कहा है एम ए पास कर चुकने के बाद साधु होने के लिए आता साधु होने की अपेक्षा एम ए पास करना कहीं सरल है।'

स्वामी जी जितने दिन मेरे यहाँ ठहरे, प्रत्येक दिन सन्ध्या समय उनका वार्तालाप सुनने के लिए इतनी अधिक संख्या में लोगों का आयमन होता था माना कोई समा लगी ही। इसी समय एक दिन मेरे निवास-रक्षाल पर, एक बन्धन के बुझ के नीचे लकिया के सहारे बैठकर उन्होंने जा बात कही थी उन्हें आश्चर्य न भूक सकेगा। उस प्रसंग की उठान में बहुत सी बातें कहनी होंगी। इसलिए उसे दूसरे समय के लिए ही रख छोड़ना युक्तिरूपण है। इस समय और एक अपनी बात कहूँगा। कुछ समय पहले से मेरी पत्नी की इच्छा किसी बुध से मन्त्र-वीद्या करने की थी। मुझे उमर्य आपत्ति नहीं थी। उस समय मैंने उससे कहा था 'ऐसे व्यक्ति को बुध बनाना शिष्यी भक्ति में भी कर गई। बुध के घर में प्रवेश करते ही यदि मुझे अन्वया भाव आ जाय तो तुम्हें किसी प्रकार का आनन्द वा उपकार नहीं होगा। यदि किसी सत्पुरुष को बुध रूप में पाऊँगा तो हम दोनों साथ ही शिष्य-गुरु के अन्वया नहीं। इस बात को उमन भी स्वीकार किया।'

स्वामी जी के आगमन के बाद मैंने उससे पूछा, “यदि ये सन्यासी तुम्हारे गुरु हो, तो तुम उनकी शिष्या हो सकती हो ?”

वह उन्कण्ठा से बोली, “क्या वे गुरु होंगे ? हाने से तो मैं कृतार्थ हो जाऊँगी ।”

स्वामी जी से एक दिन डरते डरते मैंने पूछा, “स्वामी जी, मेरी एक प्रार्थना पूर्ण करेंगे ?” स्वामी जी ने पूछा, “कहो, क्या कहना है ?” तब मैंने उनमें अनुरोध-पूर्वक कहा, “आप हम दोनों को दीक्षा दें ।”

वे बोले, “गृहस्थ के लिए गृहस्थ गुरु ही ठीक है। गुरु होना बहुत कठिन है। शिष्य का समस्त भार ग्रहण करना पड़ता है। दीक्षा के पहले गुरु के साथ शिष्य का कम से कम तीन बार साक्षात्कार होना आवश्यक है।” इस प्रकार स्वामी जी ने मुझे टालने की चेष्टा की। जब उन्होंने देखा कि मैं किसी भी तरह माननेवाला नहीं, तो अन्त में उन्हें स्वीकृति देनी ही पड़ी और २५ अक्टूबर, १८९२ ई० को उन्होंने हम दोनों को दीक्षा दी। इस समय मेरी प्रबल इच्छा हुई कि स्वामी जी का फोटो खिंचवाऊँ। परन्तु इसके लिए वे शीघ्र राजी नहीं हुए। अन्त में बहुत वाद-विवाद के बाद, मेरा तीव्र आग्रह देखकर २८ तारीख को फोटो खिंचवाने के लिए सम्मत हुए, फोटो खींचा गया। इसके पहले एक व्यक्ति के अतिशय आग्रह पर भी स्वामी जी ने फोटो नहीं खिंचवाया था, इसलिए फोटो की दो प्रतियाँ उस व्यक्ति को भी भेज देने के लिए उन्होंने मुझसे कहा। मैंने स्वामी जी की इस आज्ञा को बड़ी प्रसन्नता से स्वीकार किया। एक दिन बातचीत के सिलसिले में स्वामी जी ने कहा, “कुछ दिन तुम्हारे साथ जंगल में तम्बू डालकर रहने की मेरी इच्छा है। किन्तु शिकागो में धर्म-महासभा होगी, यदि वहाँ जाने की सुविधा हुई, तो वही जाऊँगा।” मैंने चन्दे की सूची तैयार कर धनसंग्रह करने का प्रस्ताव किया, परन्तु उन्होंने न जाने क्या सोचकर उसे स्वीकार नहीं किया। स्वामी जी का इस समय व्रत ही था—रूपये-पैसे का स्पर्श या ग्रहण न करना। मेरे अत्यधिक अनुरोध करने पर स्वामी जी मरहठी चप्पल के बदले एक जोड़ा जूता और वेत की एक छडी स्वीकार करने के लिए राजी हुए। इसके पहले कोल्हापुर की रानी ने स्वामी जी से बहुत अनुरोध किया था कि वे कुछ ग्रहण करें, पर स्वामी जी इससे महमत नहीं हुए थे। अन्त में रानी ने दो गेरुए वस्त्र स्वामी जी के लिए भेजे, स्वामी जी ने यह ग्रहण कर लिया, और पुराने वस्त्र वही छोड़ते हुए बोले, “सन्यासियों के पाम जितना कम बोझा हो, उतना ही अच्छा।”

इसके पहले मैंने भगवद्गीता पढ़ने की अनेक बार चेष्टा की थी, किन्तु समझ न सकने के कारण मैंने ऐसा सोच लिया कि उसमें समझने के लायक ऐसी कोई बड़ी बात नहीं है, और उसे पढ़ना ही छोड़ दिया। स्वामी जी एक दिन



पीता लेकर हम लोगों को समझाने लगे। तब जात हुआ कि पीता कैसा बहुत प्रबल है। पीता का मर्म समझना जिस प्रकार मैंने उनसे सीखा उसी प्रकार बुधरी और व्युत्थिष्ठ बर्मे के वैज्ञानिक उपन्यास एवं कार्यालय का सार्तोर रिजार्तस' पढ़ना भी उन्हींसे सीखा।

उस समय स्वास्थ्य के लिए मैं औषधियों का वैद्यकिक व्यवहार करता था। इस बात को जानकर वे एक दिन बोले 'जब देखो कि किसी रोग ने वैद्यकिक प्रबल होकर घम्याघायी कर दिया है उठन की शक्ति नहीं रखी तभी औषधि का सेवन करना सम्पन्न नहीं। स्नायुओं की दुर्बलता आदि रोगों में से तो ९० प्रतिशत काल्पनिक हैं। इन सब रोगों से डॉक्टर लोग बिलकुल लोगों को बचाते हैं उससे अधिक को तो मार डालते हैं। फिर इस प्रकार सर्वथा रोग रोग करते रहने से क्या होगा? बिलकुल दिन बिना आनन्द से रहो। पर जिस आनन्द से एक बार कष्ट हो चुका है, उसके पीछे फिर और कभी न डौड़ना। तुम्हारे-हमारे समान एक के मर जाने से पृथ्वी अपने केन्द्र से कोई हट तो हट न पायगी और न जगत् का किसी तरह का कोई नुकसान ही होगा। इस समय कुछ कार्यों से अपने ऊपर के अङ्गुष्ठों के साथ मेरी बमती नहीं थी। उनके सामान्य कुछ कहने से ही मेरा सिर परम हो जाता था और इस प्रकार इस लम्बी नीकरी से भी मैं एक दिन के लिए भी सुखी न हुआ। स्वामी जी से मैंने जब ये सब बातें कही तो वे बोले 'नीकरी किसलिए करते हो? बैठन के लिए ही न बैठन तो ठीक महीने के महीने नियमित रूप से पाठे ही रहते हो? फिर मन में कुछ क्यों? और यदि नीकरी छोड़ देने की इच्छा हो तो कभी भी छोड़ दे सकते हो किधीने तुम्हें बाँधकर तो रखा नहीं है फिर 'विषम बन्धन में पड़ा हूँ' सोचकर इस दुःखमय संसार में और भी दुःख क्यों बढ़ाते हो? और एक बात जब सोचो तबके लिए तुम बैठन पाठे हो आकिस के उम सब कामों को करने के अतिरिक्त तुमने अपने ऊपरवाले साहबों को सन्तुष्ट करने के लिए कभी कुछ किया भी है? कभी तो तुमने उसके लिए भेष्य नहीं की फिर भी वे सोच तुमसे सन्तुष्ट नहीं हैं ऐसा सोचकर उनके ऊपर पीसे हुए हो। क्या यह बुद्धिमानों का काम है? यह जान लो हम लोग हमरो के प्रति हृदय में वैसा भाव रखते हैं, वही कार्य में प्रकाशित होता है और प्रकाशित न होने पर भी उन लोगों के भी भीतर हमारे प्रति ठीक उसी भाव का उदय होता है। हम अपने मन के अनुकूल ही जगत् को देखते हैं— हमारे भीतर वैसा ही वैसा ही जगत् में प्रकाशित देखते हैं। 'जाग भक्त तो जब भक्त'—बहु उक्ति बिलकुल सत्य है कोई नहीं समझता। आज से किसीकी बुराई देगना एकदम छोड़ देने की शपथ करो। देगाने तुम जितना ही वैसा

कर सकोगे, उतना ही उनके भीतर का भाव और उनके कार्य तक परिवर्तित हो जायेंगे।” बस, उसी दिन से औषधि-सेवन का मेरा पागलपन दूर हो गया, और दूसरो के दोष ढूँढने की चेष्टा को त्याग देने के फलस्वरूप क्रमशः मेरे जीवन का एक नया पृष्ठ खुल गया।

एक बार स्वामी जी के सामने यह प्रश्न उपस्थित किया गया—“अच्छा क्या है और बुरा क्या है?” इस पर वे बोले, “जो अभीष्ट कार्य का साधनभूत है, वही अच्छा है और जो उसका प्रतिरोधक है, वही बुरा। अच्छे-बुरे का विचार जगह की ऊँचाई-निचाई के विचार के समान है। तुम जितने ऊपर उठोगे, उतने ही वे दोनो एक होते जायेंगे। कहा जाता है, चन्द्रमा मे पहाड़ और समतल दोनो हैं, किन्तु हम लोग सब एक देखते हैं, वैसा ही अच्छे-बुरे के सम्बन्ध मे भी समझो।” स्वामी जी मे यह एक असाधारण शक्ति थी कि कोई चाहे कैसा भी प्रश्न क्यों न पूछे, तुरन्त उनके भीतर से ऐसा सुन्दर और उपयुक्त उत्तर आता था कि मन का सन्देह एकदम दूर हो जाता था।

और एक दिन की बात है—स्वामी जी ने समाचारपत्र मे पढा कि अनाहार के कारण कलकत्ते मे एक मनुष्य मर गया। यह समाचार पढकर स्वामी जी इतने दुःखी हुए कि उसका वर्णन नही हो सकता। वे बारम्बार कहने लगे, “अब तो देश गया।” कारण पूछने पर बोले, “देखते नही, दूसरे देशो मे गरीबो की सहायता के लिए ‘पूर्व-हाउस’, ‘वकं-हाउस’, ‘चैरिटी फंड’ आदि सस्थाओ के रहने पर भी प्रतिवर्ष सैकडो मनुष्य अनाहार की ज्वाला मे समाप्त हो जाते हैं—समाचारपत्रो मे ऐसा देखने मे आता है। पर हमारे देश मे एक मुट्ठी भिक्षा की प्रथा होने से अनाहार के कारण लोगो का मरना कभी सुना नही गया। मैंने आज पहली बार अखबार मे यह समाचार पढा कि दुर्भिक्ष न होते हुए भी कलकत्ता जैसे शहर मे अन्न के बिना मनुष्य मरे।”

अंग्रेजी शिक्षा की कृपा से मैं भिखारियो को दो-चार पैसे देना अपव्यय समझता था। सोचता था, इस प्रकार जो कुछ थोडा सा दान किया जाता है, उससे उनका कोई उपकार तो होता नही, अपितु बिना परिश्रम के पैसा पाकर, उसे शराब-गाँजा आदि मे खर्च कर वे और भी अघ पतित हो जाते हैं। लाभ इतना ही है कि दाता का व्यर्थ खर्च कुछ बढ़ जाता है। इसलिए सोचता था, बहुत लोगो को कुछ कुछ देने की अपेक्षा एक को अधिक देना अच्छा है। स्वामी जी से इस विषय मे जब मैंने पूछा, तो वे बोले, “भिखारी के आने पर यदि शक्ति हो, तो कुछ देना ही अच्छा है। दोगे तो केवल दो-एक पैसा, उसके लिए, वह किसमे खर्च करेगा सद्ब्यय होगा या अपव्यय, ये सब बातें लेकर माथापच्ची

करम को क्या आवश्यकता? और यदि आवश्यक ही वह उग पैस का माँसा में उड़ा देता ही। तो भी उसे देन में समाज का काम ही है मुझगान नहीं। क्योंकि मुझारे समाज सोम यदि क्या बन्के उगे कुछ न हों तो वह मुझ लोगों के पास से मोटी करम लया। बैठा न कर बर बर। दो पैसों माँगकर माँसा पीकर चुन होकर बैठा रहता है वह क्या मुझ लोगों का ही काम नहीं है? अन्वय इस प्रकार क हान में भी लोगों का उपकार ही है अन्वय नहीं।”

मैंने पहले से ही स्वामी जी को वास्तव जिबाहू क विस्तृत विवरण देना है। वे सर्व्व समी को विशेषतः बाबाजी को हिम्मत बाँधकर समाज के इन बलन के विरोध में गान हान के लिए तथा उद्योगी और मनुष्यवृत्ति हीन के लिए उपाय देने में। स्वयं के प्रति इस प्रकार अनुग्रह भी मैं न भीर जिनीमें नहीं देना। स्वामी जी के पारचार्य देवी ग लीने के बाद जिस लोगों में उनके प्रथम दर्शन दिने हैं वे नहीं जानते कि बड़ा जाने क पूर्ण के गंगाधर-आधम के गठोर नियमों का पालन करने हुए, काचन का रणनं एक न करने हुए कितने दिनों तक मारत के समस्त प्रार्थना में प्रमत्त करने रहे। जिनीने एक बार ऐसा कहते पर कि उनके समाज पवित्रमान पुषन क लिए नियम आदि का इतना अर्थन आवश्यक नहीं है वे बोले, 'दंगो मन बड़ा पामस है बड़ा उग्रता है कभी भी मास नहीं रहता बाड़ा मीठा पाठे ही अपन रास्ते पीच से जाता है। इतलिय सभी को निर्धारित नियमों क भीतर रहना आवश्यक है। संघर्षाणी को भी मन पर अधिकार गान के लिए नियम के अनुसार चलना पड़ता है। सभी मन में सोचते हैं कि मन के ऊपर उनका पूरा अधिकार है वे तो जान-बूझकर कमी कमी मन को बाँधी छूट दे देते हैं। किन्तु मन पर किचका कितना अधिकार हुआ है, वह एक बार ध्यान करने के लिए बैठते ही मालूम ही जाता है। 'एक विषय पर विस्तार कसेना' ऐसा सोचकर बैठन पर बह मिनट भी उस विषय में मन स्थिर रखना अशक्य हो जाता है। सभी सोचते हैं कि वे पत्नी के बड़ीमूठ नहीं हैं वे तो बेचल प्रेम के कारण पत्नी को अपने ऊपर आधिपत्य करने देते हैं। मन को बड़ीमूठ कर लिया है—यह सोचना भी ठीक उची तरह है। मन पर विश्वास करके कभी निश्चिन्त न रहना।

एक दिन बाठजीव के सिद्धसिद्धे में मैंने कहा "स्वामी जी बेसठा हैं बर्म को ठीक ठीक समझने के लिए बहुत अध्ययन की आवश्यकता है।

वे बोले 'अपने बर्म समझने के लिए अध्ययन की आवश्यकता नहीं किन्तु दूसरों को समझाने के लिए उसकी विशेष आवश्यकता है। भगवान् श्री रामकृष्ण बेच तो 'समनेष्ट' नाम से इस्ताखर करते थे किन्तु बर्म का सार-सत्य उनसे अधिक भला किछने समझा है?

मेरा विश्वास था, मावु-मन्यासियों का स्थूलकाय और गर्वदा सन्तुष्टचित्त होना असम्भव है। एक दिन हँसते हँसते उनके ऊपर ऐसा कटाक्ष करने पर उन्होंने भी मजाक में कहा, “यही तो मेरा ‘अकाल रक्षाकोष’ (फैमिन इन्फ्योरेन्स फड) है। यदि मैं पाँच-सात दिन तक भोजन न पाऊँ, तो भी मेरी चर्बी मुझे जीवित रखेगी। तुम लोग तो एक दिन न खाने से ही चारों ओर अन्वकार देखने लगोगे। जो धर्म मनुष्य को सुखी नहीं बनाता, वह वास्तविक धर्म है ही नहीं, उसे मन्दाग्नि-प्रसूत रोगविशेष समझो।” स्वामी जी सगीत-विद्या में विशेष पारंगत थे। एक दिन एक गाना भी उन्होंने प्रारम्भ किया था, किन्तु मैं तो ‘सगीत में औरगजेव’ था, फिर मुझे सुनने का अवसर ही कहाँ? उनके वार्तालाप ने ही हम लोगों को मोहित कर लिया था।

आधुनिक पाश्चात्य विज्ञान के सभी विभाग, जैसे—रसायनशास्त्र, भौतिकशास्त्र, भूगर्भशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र, मिश्रित गणित आदि पर उनका विशेष अधिकार था एव उन विषयों से सम्बद्ध सभी प्रश्नों को वे बड़ी सरल भाषा में दो-चार बातों में ही समझा देते थे। फिर, पाश्चात्य विज्ञान की सहायता एव दृष्टान्त से धर्मविषयक तथ्यों को विशद रूप से समझाने तथा यह दिखाने में कि धर्म और विज्ञान का एक ही लक्ष्य है, एक ही दिशा में गति है—उनकी क्षमता अद्वितीय थी।

लाल मिर्च, काली मिर्च आदि तीखे पदार्थ उन्हें बड़े प्रिय थे। इसका कारण पूछने पर उन्होंने एक दिन कहा, “पर्यटन-काल में सन्यासियों को देश-विदेश में अनेक प्रकार का दूषित जल पीना पड़ता है, यह स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता है। इस दोष को दूर करने के लिए उनमें से बहुत से गाँजा, चरस आदि मादक द्रव्य पीते हैं। मैं भी इसीलिए इतनी मिर्च खाता हूँ।”

खेतड़ी के राजा, कोल्हापुर के छत्रपति एव दक्षिण के अनेक राजा उन पर विशेष भक्ति करते थे। उनका भी उन लोगों पर बड़ा प्रेम था। असाधारण त्यागी होकर, राजे-रजवाडों के साथ इतनी घनिष्ठता वे क्यों रखते हैं, यह बात बहुतों की समझ में नहीं आती थी। कोई कोई निर्वोध तो इस बात को लेकर उनके ऊपर आक्षेप करने में भी नहीं चकते थे।

इसका कारण पूछने पर एक दिन उन्होंने कहा, “जरा सोच तो देखो, हजार हजार दरिद्र लोगों को उपदेश देने और सत्कार्य के अनुष्ठान में तत्पर कराने से जो कार्य होगा, उसकी अपेक्षा एक राजा को इस दिशा में ला सकने पर कितना अधिक कार्य हो जायगा। निर्धन प्रजा की इच्छा करने पर भी सत्कार्य करने की क्षमता उसके पास कहाँ? किन्तु राजा के हाथ में सहस्रो प्रजाओं के मंगल-विधान की क्षमता पहले से ही है, केवल उसे करने की इच्छा भर नहीं है। वह इच्छा यदि

करन की क्या आवश्यकता? भीम भी गन्धमुख ही वह उग पैग को लीला में उड़ा देता ही तो भी उसे देन में सामान का मान ही है मुहमाज नहीं। बसोकि गुफ्तारे समान लोग यदि ऐसा बच्चे उग बच न दें तो वह तुम गीली के पास में गौरी करते होगा। बीगा न का बट न। दो पैग मौदरन लीला वीरन पुन हातर बँडा गता है वह क्या तुम लीला का ही साम नहीं है? अतएव हम प्रहार न दान में भी लीला का उत्कार ही है अतएव नहीं।”

मैंने पहले से ही स्वामी जी को ब्रह्म विवाद न विष्णु विवाद देना है। वे सर्वत्र गर्भी की विशेषता ब्राह्मणों की हिम्मत बौध्दर मन्त्र के दग बला के विरोध में गाने होने के लिए तथा उजोगी और गन्धुद्विध लीन के लिए उपाय देते थे। स्वप्न के प्रति हम प्रहार अनुपम भी मैंने भीर लिये नहीं देता। स्वामी जी के पारशराम देवों ग लीले के बाद दिन लोगों में उनके प्रथम दर्शन विषय \* बनी जाने के पूर्व के मन्त्र-आत्मन न लीले नियमों का पालन करने हुए, वाचन का लीला उद न करन हुए विष्णु लियों तक भारत के समस्त प्रांतों में प्रसन्न करते रहे। विनीत एक बार एका बच्चे पर हि उनका समान गतिमान पुत्र के लिए नियम जानि का इतना अपन मान्यक नहीं है वे बच्चे, लीला मन बड़ा पावन है बड़ा उमरा है गर्भी भी गानत नहीं चला बीगा मौका पाते ही मान रास लीला से जाना है। इसलिए गर्भी की निर्धारित नियमों के भीतर रहना आवश्यक है। मन्त्रों का भी मन पर अधिहार करने के लिए नियम के अनुसार चलना पड़ता है। सभी मन में सोचने से कि मन के ऊपर उनका पूरा अधिहार है वे तो जान-बुझकर कभी कभी मन को थोड़ी छूट दे देते हैं। किन्तु मन पर कियका कियका अधिहार हुआ है, वह एक बार प्दान करने के लिए बीजे ही मान्य ही जाता है। एक विषय पर विष्णु कहेना' ऐसा सोचकर बीजे पर बग मिनट भी उस विषय में मन स्थिर रहना अत्यन्त ही होता है। सभी सोचते हैं कि वे पत्नी के बरीभूत नहीं हैं वे तो केवल प्रेम के कारण पत्नी को अपन ऊपर आधिपत्य करने देते हैं। मन को बरीभूत कर लिया है—यह सोचना भी ठीक उसी तरह है। मन पर विस्वास करके कभी निश्चिन्त न रहना।”

एक दिन बाठबीठ के सिलसिले में मैंने कहा “स्वामी जी देखता हूँ बर्म को ठीक ठीक समझने के लिए बहुत अध्ययन की आवश्यकता है।”

वे बोले ‘अपने बर्म समझने के लिए अध्ययन की आवश्यकता नहीं किन्तु बुराई को समझने के लिए उसकी विशेष आवश्यकता है। अनन्त भी समझने के लिये ‘समकेष्ट नाम से हस्ताक्षर करते थे किन्तु बर्म का सार-रस उनसे अधिक मला किन्तु समझा है?’

अनन्त है, यह नहीं समझा। जो भी हो, एक वस्तु अनन्त है, यह बात समझ में आती है, किन्तु दो वस्तुएं यदि अनन्त हो, तो कौन कहाँ रहेगी? कुछ और आगे बढ़ो, तो देखोगे, काल जो है, देश भी वही है, फिर और अग्रसर होने पर समझोगे, सभी वस्तुएं अनन्त हैं, और वे सभी अनन्त वस्तुएं एक हैं, दो या दस नहीं।”

इस प्रकार स्वामी जी के पदापण से २६ अक्टूबर तक मेरे निवास-स्थान पर आनन्द का स्रोत बहता रहा। २७ तारीख को वे बोले, “और नहीं ठहरेगा, रामेश्वर जाने के विचार से बहुत दिन हुए इस ओर निकला हूँ। पर यदि इसी प्रकार चला, तो इस जन्म में शायद रामेश्वर पहुँचना न हो सकेगा।” मैं बहुत अनुरोध करके भी उन्हें नहीं रोक सका। २७ अक्टूबर की ‘मेल’ से उनका मरमागोआ जाना ठहरा। इस थोड़े से समय में उन्होंने कितने लोगों को मुग्ध कर लिया था, यह कहा नहीं जा सकता। टिकट खरीदकर उन्हें गाड़ी में बिठाया और साष्टांग प्रणाम कर मैंने कहा, “स्वामी जी, मैंने जीवन में आज तक किसीको भी आन्तरिक भक्ति के साथ प्रणाम नहीं किया। आज आपको प्रणाम कर मैं कृतार्थ हो गया।”

\*

\*

\*

स्वामी जी को मैंने केवल तीन बार देखा। प्रथम, उनके अमेरिका जाने से पूर्व। उस समय की बहुत सी बातें आप लोगों को सुना चुका हूँ। बेलगाँव में उनके साथ मेरा प्रथम साक्षात्कार हुआ। द्वितीय, जब उन्होंने दूसरी बार इंग्लैण्ड और अमेरिका की यात्रा की थी, उसके कुछ दिन पहले। तृतीय एव अन्तिम बार दर्शन हुआ उनके देहत्याग के छ-सात मास पहले। पर इतने ही अवसरों पर मैंने उनसे जो कुछ सीखा, उसका आद्योपान्त वर्णन करना असम्भव है। बहुत सी बातें मेरे अपने सम्बन्ध की हैं, इसलिए उन्हें कहने की आवश्यकता नहीं, और बहुत सी बातों को भूल भी गया हूँ। जो कुछ स्मरण है, उसमें से पाठकों के लिए उपयोगी विषयों को बतलाने की चेष्टा करूँगा।

इंग्लैण्ड से लौट आने के बाद उन्होंने हिन्दुओं के जाति-विचार के सम्बन्ध में और किसी किसी सम्प्रदाय के व्यवहार के ऊपर तीव्र आलोचना करते हुए मद्रास में जो व्याख्यान दिये थे, उन्हें पढ़कर मैंने सोचा, स्वामी जी की भाषा कुछ अधिक कड़ी हो गयी है। और उनके समीप मैंने अपने इस अभिप्राय को प्रकट भी किया। सुनकर वे बोले, “जो कुछ मैंने कहा है, सब सत्य कहा है। और जिनके सम्बन्ध में मैंने इस प्रकार की भाषा का व्यवहार किया है, उनके कार्यों की तुलना में वह बिन्दु मात्र भी कड़ी नहीं है। सत्य बात में सकोच का या उसे छिपाने का तो मैं कोई कारण नहीं देखता। यह न सोचना कि जिनके कार्यों पर मैंने इस प्रकार समालोचना की है, उनके ऊपर मेरा क्रोध था या है, अथवा जैसा कोई कोई सोचते हैं कि कर्तव्य

उसके भीतर किसी प्रकार व्यापित कर सकूँ तो ऐसा होने पर उसके साथ साथ उसके अधीन सारी प्रजा की अवस्था बदल सकती है और इन प्रकार बपु का कितना अधिक कल्याण हो सकता है।

धर्मवाद-विवाद में नहीं है, वह तो प्रत्यक्ष अनुभव का विषय है इसको समझाने के लिए वे बात बात में कहा करते थे 'गुड़ का स्वाद छानने में ही है। अनुभव करो बिना अनुभव किये कुछ भी न समझोगे। उन्हें डोंगी संन्यासियों से अत्यन्त बिड़की। वे कहते थे "धर में रहकर मन पर अधिकार स्थापित करके फिर बाहर निकलना अच्छा है नहीं तो जब अनुराग क्रम होने पर एते संन्यासी प्रायः यौगा छोर संन्यासियों के दल में मिल जाते हैं।

मैंने कहा किन्तु धर में रहकर बैठा होना तो अत्यन्त कठिन है। सभी प्राणियों को समान दृष्टि से देखना राम-श्रेय का स्वाम्य करना आदि जिन बातों को आप धर्मकाम में प्रबल सहायक कहते हैं उनका अनुष्ठान करना यदि मैं आज से ही आरम्भ कर दूँ तो कल से ही मेरे गीकर-बाकर और अधीनस्व कर्मचारीजब यहाँ तक कि सवे-सम्बन्धी लोग भी मुझे एक क्षण भी ध्याति से न रहने देंगे।"

उत्तर में भगवान् श्री रामकृष्ण देव की सर्प और संन्यासीबाड़ी कथा का पृष्ठान्त देकर उन्होंने कहा 'मुफकारना कभी बन्द मत करना और कर्तव्य-पाठन करने की बुद्धि से सभी काम किये जाना। कोई अपराध करे, तो दण्ड देना किन्तु दण्ड देते समय कभी भी क्रुद्ध न होना। फिर पूर्वोक्त प्रसंग को छोड़ते हुए बोले 'एक समय मैं एक तीर्थस्वाम के पुत्रिस इन्स्पेक्टर का अतिथि हुआ। वह बड़ा धार्मिक और भद्रानु था। उसका वेतन १२५ रु था किन्तु देखा उसके घर का खर्च मासिक बी-तीन सौ का रहा होता। जब अधिक परिचय हुआ तो मैंने पूछा आप की अपेक्षा आपका खर्च तो अधिक बेश रहा है—यह कैसे चलता है? वह बोड़ा हँसकर बोला 'आप ही क्यों बचाते हैं। इस तीर्थस्वाम में जो धानु-संन्यासी आते हैं वे सब आपके समान तो नहीं होते। सन्धेह होने पर उनके पास क्या है क्या नहीं इसकी तलाशी करता हूँ। बहुतों के पास प्रचुर मात्रा में स्वदा-पैसा निकलता है। जिन पर मुझे चोरी का सन्धेह होता है वे स्वदा-पैसा छोड़कर भाग जाते हैं, और मैं उन पैसों को अपने कब्जे में कर लेता हूँ। पर अन्य किसी प्रकार का बूझ आदि नहीं लेता।"

स्वामी श्री के साथ एक दिन अनन्त (infinity) वस्तु के सम्बन्ध में वादलाप हुआ। उन्होंने जो बात कही वह बड़ी ही सुन्दर एवं सत्य है। वे बोले 'जो अनन्त वस्तुएँ कभी नहीं रह सकतीं। पर मैंने कहा "काल तो अनन्त है और वेस भी अनन्त है। इस पर वे बोले "द्वेष अनन्त है वह तो समझा किन्तु काल

है, दूसरे की नहीं, इस प्रकार का भाव क्या अन्याय नहीं है?' मैं तो चुनकर दग रह गया।

“नाक और पैर की लघुता लेकर ही चीन में सौन्दर्य का विचार होता है, यह सभी जानते हैं। आहार आदि के सम्बन्ध में भी ऐसा ही है। अग्रेज हम लोगों के समान खुशबूदार चावल का भात खाना पसन्द नहीं करते। एक समय किसी जगह के एक जज साहब की अन्यत्र बदली हो जाने पर वहाँ के बहुत से वकीलों ने उनके सम्मान के लिए बढिया अनाज आदि भेजा। उसमें कुछ सेर खुशबूदार चावल भी थे। जज साहब ने उस चावल का भात खाकर मन में सोचा—यह सडा हुआ चावल है, और वकीलों से भेट होने पर कहा, ‘तुम लोगों को मेरे लिए मडा चावल भेजना उचित न था।’

“किसी समय मैं रेलगाडी में जा रहा था। उसी डब्बे में चार-पाँच साहब भी बैठे थे। बातचीत के सिलसिले में तम्बाकू के बारे में मैंने कहा, ‘सुगन्धित गुडाकू का पानी से भरे हुए हुक्के में व्यवहार करना ही तम्बाकू का श्रेष्ठ उपभोग है।’ मेरे पास खूब अच्छा तम्बाकू था। मैंने उन लोगों को देखने के लिए दिया। वे सूँघकर बोले, ‘यह तो अत्यन्त दुर्गन्धयुक्त है।’ इसे आप सुगन्धित कहते हैं।’ इस प्रकार गन्ध, आस्वाद, सौन्दर्य आदि सभी विषयों में समाज, देश और काल के भेद से भिन्न भिन्न मत हैं।”

स्वामी जी की पूर्वोक्त कथाओं को हृदयगम करते मुझे देरी नहीं लगी। मैंने सोचा, पहले मुझे शिकार करना कितना प्रिय था, किसी पशु-पक्षी को देखने पर उसे मारने के लिए मन छटपटाने लगता था। न मार सकने पर अत्यन्त कष्ट मी मालूम होता था। पर अब उस प्रकार प्राणियों का वध करना बिल्कुल ही अच्छा नहीं लगता। अतएव किसी वस्तु का अच्छा या बुरा लगना केवल अभ्यास पर निर्भर है।

अपने मत को अक्षुण्ण रखने में प्रत्येक मनुष्य का एक विशेष आग्रह देखा जाता है। धर्म के क्षेत्र में तो उसका विशेष प्रकाश दिखायी देता है। स्वामी जी इस सम्बन्ध में एक कहानी बतलाया करते थे। एक समय एक छोटे राज्य को जीतने के लिए एक दूसरे राजा ने दल-बल के साथ चढाई की। शत्रुओं के हाथ से बचाव कैसे हो, इस सम्बन्ध में विचार करने के लिए उस राज्य में एक बड़ी सभा बुलायी गयी। सभा में इजीनियर, बढई, चमार, लोहार, वकील, पुरोहित आदि सभी उपस्थित थे। इजीनियर ने कहा, “शहर के चारों ओर एक बहुत बड़ी खाई खुदवाइए।” बढई बोला, “काठ की एक दीवाल खडी कर दी जाय।” चमार बोला, “चमडे के समान मजबूत और कोई चीज नहीं है, चमडे की ही दीवाल खडी की जाय।” लोहार बोला, “इस सबकी कोई आवश्यकता नहीं है, लोहे की दीवाल



समझकर जो कुछ मैंने किया है उसके लिए जब मैं बुद्धि हूँ। इन सब बातों में कोई सार नहीं। मैंने क्रोध के कारण ऐसा नहीं किया है और जो मैंने किया है उसके लिए मैं बुद्धि नहीं हूँ। आज भी यदि उस प्रकार का कोई अप्रिय काम करना कर्तव्य मामूम होगा तो अवश्य निःसंकोच वैसा करूँगा।

बौद्ध संन्यासियों के विषय में उनका मत पहले कुछ कह चुका हूँ। किसी दूसरे दिन इस सम्बन्ध में प्रसंग उठने पर उन्होंने कहा 'हैं अबस्य बहुत से बबसाध वारण्ट के डर से बबसाध धोर बुद्धर्म करके छिपने के लिए संन्यासी के रूप में भूमते फिरते हैं किन्तु तुम लोगों का भी कुछ बोध है। तुम लोग सोपते हो संन्यासी होते ही उस ईश्वर के समान त्रियुपातीत हो जाना चाहिए। उस वेत् नर बन्धी तरह जाने में बोध बिछीन पर सोने में बोध यहाँ तक कि उसे बूता और छटा तक व्यवहार में माने की बुंभाइस नहीं। क्यों वह भी तो मनुष्य है। तुम लोगों के मूठ में जब तक कोई पूर्ण परमहंस न हो जाय तब तक उसे बैसा बरब पहनने का अधिकार नहीं। पर यह भूख है। एक समय एक संन्यासी के साथ मेरा बार्गा-काप हुआ। बन्धी पोसाक पर उनकी लूब रधि थी। तुम लोग उन्हें बैसाकर अबस्य ही धोर बिकासी समझते। किन्तु वे सचमुच यथार्थ संन्यासी थे।

स्वामी जी कहा करते थे 'बैस काळ और पात्र के भेद से मानसिक भावों और अनुभवों में काफी तांतरम्य हुआ करता है। बर्म के सम्बन्ध में भी ठीक वैसा ही है। प्रत्येक मनुष्य की भी एक न एक विषय में अधिक रधि पायी जाती है। जबतू न सभी अपन को अधिक बुद्धिमान समझते हैं। ठीक है वहाँ तक कोई विशेष हानि नहीं। किन्तु जब मनुष्य सोचने लगता है कि केवल मैं ही समझता हूँ दूसरों कोई नहीं तभी सारे बनेड़े उपस्थित हो जाते हैं। सभी चाहते हैं कि दूसरे सब लोग भी उन्हींके समान प्रत्येक बस्तु को बर्ने और समझें। प्रत्येक व्यक्ति सोचता है कि उसने जिस बात को सत्य समझा है वा बिसे जाना है उसे छोड़कर और कोई सत्य हो ही नहीं सकता। सांसारिक विषय के क्षेत्र में हो बबसाध बर्म के क्षेत्र में इस प्रकार के भाव को मन में किसी तरह न माने देना चाहिए।

'जबतू के किसी भी विषय में सब पर एक ही नियम लागू नहीं हो सकता। बैस काळ और पात्र के भेद से नीति एवं सौन्दर्य-ज्ञान भी विभिन्न देखा जाता है। तिव्वत की स्त्रियों में बहु-पति की प्रथा प्रचलित है। हिमाचल भ्रमचकाळ में मेरी इस प्रकार के एक तिव्वती परिवार से भेंट हुई थी। इस परिवार में छः पुरुष थे उन छः पुरुषों की एक ही स्त्री थी। अधिक परिचय हो जाने के बाद मैंने एक दिन उनकी इस बुप्रथा के बारे में कुछ कहा इस पर वे कुछ खीसकर बोले 'तुम सामु-संन्यासी होकर लोगों को स्वार्थपळा सिधाना चाहते हो? यह मेरी ही उपभोग्य

अपनी माँ को खाना नहीं देता, वह दूसरे की माँ का क्या पालन करेगा ?” स्वामी जी यह स्वीकार करते थे कि हमारे प्रचलित धर्म में, आचार-व्यवहार में, सामाजिक प्रथा में अनेक दोष हैं। वे कहते थे, “उन सभी का सशोधन करने की चेष्टा करना हम लोगो का मुख्य कर्तव्य है, किन्तु इसके लिए सवाद-पत्रों में अग्रजों के समीप उन दोषों को घोषित करने की क्या आवश्यकता है? घर की गलतियों को जो बाहर दिखलाता है, उसके समान गवा और कौन है? गन्दे कपड़े को लोगो की आँखों के सामने नहीं रखना चाहिए।”

ईसाई मिशनरियों के वारे में एक दिन चर्चा हुई। बातचीत के सिलसिले में मैंने कहा कि उन लोगो ने हमारे देश का कितना उपकार किया है और कर रहे हैं। सुनकर वे बोले, “किन्तु अपकार भी तो कोई कम नहीं किया। देशवासियों के मन की श्रद्धा को विल्कुल नष्ट कर देने का अद्भुत प्रवन्ध उन्होंने कर छोड़ा है। श्रद्धा के साथ साथ मनुष्यत्व का भी नाश हो जाता है। इस बात को क्या कोई समझता है? हमारे देव-देवियों और हमारे धर्म की निन्दा किये बिना वे अपने धर्म की श्रेष्ठता क्यों नहीं दिखा पाते? और एक बात है जो जिस धर्म-मत का प्रचार करना चाहते हैं, उन्हें उसमें पूर्ण विश्वास होना चाहिए और तदनुसृत कार्य करना चाहिए। अधिकांश मिशनरी कहते कुछ हैं और करते कुछ। मुझे कपट से बड़ी चिढ़ है।”

एक दिन उन्होंने धर्म और योग के सम्बन्ध में अत्यन्त सुन्दर ढंग से बहुत सी बातें कही। उनका धर्म जहाँ तक स्मरण है, उद्धृत कर रहा हूँ

“समस्त प्राणी सतत सुखी होने की चेष्टा में रत रहते हैं, किन्तु बहुत ही थोड़े लोग सुखी हो पाते हैं। काम-वाम भी सभी सतत करते रहते हैं, किन्तु उसका ईप्सित फल पाना प्रायः देखा नहीं जाता। इस प्रकार विपरीत फल उपस्थित होने का कारण क्या है, वह भी समझने की कोई चेष्टा नहीं करता। इसी-लिए मनुष्य दुःख पाता है। धर्म के सम्बन्ध में कौंसा भी विश्वास क्यों न हो, यदि कोई उस विश्वास के बल से अपने को यथार्थ सुखी अनुभव करता है, तो ऐसी स्थिति में उसके उस मत को परिवर्तित करने की चेष्टा करना किसीके लिए भी उचित नहीं है, और ऐसा करने से कोई अच्छा फल भी नहीं होगा। पर हाँ, मुँह से कोई कुछ भी क्यों न कहे, जब देखो कि किसीका केवल धर्म सम्बन्धी कथा-वार्ता सुनने में ही आग्रह है, पर उसके आचरण में नहीं, तो जानना कि उसे किसी भी विषय में दृढ़ विश्वास नहीं है।

“धर्म का मूल उद्देश्य है—मनुष्य को सुखी करना। किन्तु अगले जन्म में सुखी होने के लिए इस जन्म में दुःख-भोग करना कोई बुद्धिमानी का काम नहीं

सबसे अच्छी होपी उसे भेदकर गौरी या गोलू नहीं मा सकता। बकील बोले, "कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं है हमारा राज्य लेने का धनु को कोई अधिकार नहीं है—यही एक बात धनु को तर्क-मुक्ति द्वारा समझा दी जाय। पुरोहित बोले 'तुम जोय तो पायक जैसे बकते हो। होम-मान करो स्वस्वयम करो तुलसी से धनु कुछ भी नहीं कर सकता।" इस प्रकार उन्होंने राज्य बचाने का कोई उपाय निश्चित करने के बरफे अपने अपने मत का पक्ष लेकर पोर तर्क-वितर्क आरम्भ कर लिया। बही है मनुष्य का स्वभाव।

यह कहानी सुनकर मुझे भी मानव मन के एकतरफे झुकाव के सम्बन्ध में एक कथा याद आ गयी। स्वामी जी से मैंने कहा 'स्वामी जी मुझे कड़कपन में पागलों के साथ बातचीत करना बड़ा अच्छा लगता था। एक दिन मैंने एक पागल देखा—बासा बुद्धिमान बोड़ी-बहुत बड़ेजी भी जानता था वह केवल पानी ही चाहता था। उसके पास एक फूटा मोटा प्या। पानी की कोई नयी बमह देखते ही चाहे नाका ही हीन ही बस वहीं का पानी पीने लगता था। मैंने उससे इतना पानी पीने का कारण पूछा तो वह बोला 'Nothing like water Sir! (पानी जैसी दूसरी कोई चीज ही नहीं महाशय!) मैंने उसे एक बच्चा मोटा देने की इच्छा प्रकट की पर वह किसी प्रकार राजी नहीं हुआ। कारण पूछने पर बोला 'यह मोटा फूटा हुआ है, इसीलिए इतने दिनों तक मेरे पास टिका हुआ है। अच्छा रहता तो कब का चोरी चला गया होता।"

स्वामी जी यह कथा सुनकर बोले "वह तो बड़ा मजे का पागल रिश्ता है! ऐसे लोगों को मक्की कहते हैं। हम सभी लोगों में इस प्रकार का कोई भाव ही या मक्कीपन हुआ करता है। हम लोगों में उसे बचा रखने की क्षमता है। पापक में वह नहीं है। हम लोगों में भी पागलों में भेद केवल इतना ही है। रोप धोक बहुकार, काम जोय ईप्स्यी या अन्य कोई अत्याचार बचना अनाचार से दुर्बल होकर, मनुष्य के अपने इस संयम को जो बँडने से ही सारी यज्ञबड़ी उत्पन्न हो जाती है। मन के आवेग को वह फिर संभाल नहीं पाता। हम लोग तब कहते हैं, 'यह पायक ही पया है। बस इतना ही!

स्वामी जी का स्वदेश के प्रति अत्यन्त अनुराग था यह बात पहले ही बता चुका हूँ। एक दिन इस सम्बन्ध में बातचीत के प्रसंग में उनसे कहा गया कि संसारी लोगों का अपने अपने देश के प्रति अनुराग रहना नित्य कर्तव्य है, परन्तु सच्चा दिलों को अपने देश की माया छोड़कर, सभी देशों पर समदृष्टि रखकर, सभी देशों की कल्याण-चिन्ता हृदय में रहना अच्छा है। इसके उत्तर में स्वामी जी ने जो अत्यन्त शान्त कहीं उनको जीवन में कभी नहीं मूक सकता। वे बोले "जो

हुए कहते हैं—'काम करो, किन्तु फल मुझे अर्पण करो, अर्थात् मेरे लिए ही काम करो।'”

किमी विषय का इतिहास कहाँ तक ठीक ठीक लिखा जा सकता है, इस विषय में लेखक को बहुत मन्देह है। उसके अनेक कारण हैं। गवर्नर जनरल साहब के किमी शहर में पदार्पण से लेकर उस शहर से जाने तक की घटना अपनी आँखों से देखने और बाद में उमीका विवरण प्रसिद्ध प्रसिद्ध सवाद-पत्रों में पढ़ने की सुविधा हमारे सदृश लोगों को अधिकतर होती है। आदि से अन्त तक हम लोगों की देखी हुई घटनाओं के साथ इन सभी विवरणों की इतनी विभिन्नता देखी जाती है कि विस्मित हो जाना पड़ता है। चार दिन पहले जो घटना हुई है, उसीको लिपिवद्ध करना जब इतना कठिन है, तो चार सौ, चार हजार अथवा चार लाख वर्ष पहले जो घटना हुई है, उमका इतिहास कहाँ तक ठीक ठीक लिपिवद्ध हुआ है, इसका अनुमान सहज ही किया जा सकता है।

और एक बात है, ईसाई मिशनरियों में से बहुत से कहा करते हैं—'उनकी वाइविल की प्रत्येक घटना जिस वर्ष, जिस महीने, जिस दिन, जिस घंटे और जिस मिनट घटित हुई है, वह बिल्कुल सामने घड़ी रखकर लिपिवद्ध की गयी है।' किन्तु एक ओर conflict between religion and science (धर्म और विज्ञान में द्वन्द्व) आदि पुस्तकों में वाइविल की उत्पत्ति के सम्बन्ध में उनके ही देश के आधुनिक पण्डितों का विचार पढ़कर वाइविल की ऐतिहासिकता जिस प्रकार अच्छी तरह समझी जा सकती है, उसी प्रकार दूसरी ओर मिशनरियों द्वारा अनूदित हिन्दू धर्मशास्त्रों का अपूर्व विवरण पढ़कर उनका लिखित इतिहास भी कहाँ तक सत्य है, इसे समझने में कुछ अवशिष्ट नहीं रहता। यह सब देख-सुनकर मानव जाति के सत्यानुराग एव इतिहास में लिपिवद्ध घटनाओं के ऊपर श्रद्धा प्रायः बिल्कुल उड़ सी जाती है।

गीता, वाइविल, कुरान, पुराण प्रभृति प्राचीन ग्रन्थों में निबद्ध घटनाओं की वास्तविक ऐतिहासिकता के सम्बन्ध में इसीलिए पहले मुझे तनिक भी विश्वास नहीं होता था। एक दिन स्वामी जी से मैंने पूछा कि कुशक्षेत्र में युद्ध से थोड़ी देर पहले अर्जुन के प्रति भगवान् श्री कृष्ण का जो धर्मोपदेश भगवद्गीता में लिपिवद्ध है, वह यथार्थ ऐतिहासिक घटना है या नहीं? उत्तर में उन्होंने जो कहा, वह बड़ा ही सुन्दर है। वे बोले, "गीता एक अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थ है। प्राचीन काल में इतिहास लिखने अथवा पुस्तक आदि छापने की आजकल के समान इतनी धूम-बाम नहीं थी, इसलिए तुम्हारे सदृश लोगों के सामने भगवद्गीता की ऐतिहासिकता प्रमाणित करना कठिन है। किन्तु गीता में उक्त घटना घटी थी

है। इस जन्म में ही इसी गूहर्त से सुखी होना होगा। जिस बर्न के द्वारा यह सम्पन्न होया वही मनुष्य के लिए उपयुक्त बर्न है। इन्द्रिय-भोगजनित सुख क्षणिक है और उसके साथ अवश्यम्भावी दुःख भी अनिवार्य है। सिधु ब्रह्मती और पाश्चातिक स्वभाववासे मनुष्य ही इस क्षणस्थायी सुखमिभित सुख को वास्तविक सुख समझते हैं। यदि इस सुख को भी कोई जीवन का एकमेव उद्देश्य बनाकर चिरकाळ तक सम्पूर्ण रूप से निश्चिन्त और सुखी रह सके, तो यह भी कुछ कुछ नहीं है। किन्तु आज तक तो इस प्रकार का मनुष्य देखा नहीं गया। साधारणतः देना नहीं जाता है कि जो इन्द्रिय चरितार्थता को ही सुख समझते हैं, वे जनमान एवं बिकारी लोगों को अपने से अधिक सुखी समझकर उनसे द्वेष करते लगते हैं और बहुत व्यय से प्राप्त होनेवासे उनके उच्च श्रेणी के इन्द्रिय-भोग पदार्थों को देखकर उन्हें जाने के लिए कासापित होकर दुःखी हो जाते हैं। उन्माद् सिक्कर समस्त पृथ्वी को जीतकर यही सोचकर दुःखी हुए थे कि जब पृथ्वी में जीतने का और कोई द्वेष नहीं रह गया। इसीलिए बुद्धिमान मनीषियों ने बहुत देख-सुनकर सोच-विचारकर अन्त में सिद्धान्त स्थिर किया है कि किसी एक बर्न में यदि पूर्ण विश्वास हो सभी मनुष्य निश्चिन्त और यथार्थ सुखी हो सकता है।

“विद्या बुद्धि आदि सभी विषयों में प्रत्येक मनुष्य का स्वभाव पुनर्पुनर् देना जाता है। इसी कारण उनके उपयुक्त बर्न का भी चिन्तन होना आवश्यक है अन्यथा वह किसी भी तरह उनके लिए सन्तोषप्रद न होया वे किसी भी तरह उसका अनुष्ठान करते यथार्थ सुखी नहीं हो सकेंगे। अपने अपने स्वभाव के अनुकूल बर्न-मठ को स्वयं ही देख-माककर, सोच-विचारकर चुन लेना चाहिए। अपने अतिरिक्त कोई दूसरा उपाय नहीं। धर्मग्रन्थ का पाठ, बुद्ध का उपदेश साधु-दर्शन सत्पुरुषों का संग आदि उस इस मार्ग में अथवा सहायता मात्र देने हैं।

कर्म के सम्बन्ध में भी यह जान लेना आवश्यक है कि किसी न किसी प्रकार का कर्म किये बिना कोई भी रह नहीं सकता और अमृत में केवल अच्छा या केवल बुरा इस प्रकार का कोई कर्म नहीं है। लक्ष्मण करने में कुछ न कुछ बुरा कर्म भी करना ही पड़ता है। और इसीलिए उस कर्म के द्वारा जीते सुख होना बने ही साथ ही साथ कुछ न कुछ बुरा एवं अभाव का बोध भी होगा—यह अवश्य ज्ञानी है। अतएव यदि उम बोझ से दुःख को भी ग्रहण करने की इच्छा न हो तो फिर विषय-भोगजनित अमरी सुख की आज्ञा भी छोड़ देनी होगी अर्थात् स्वार्थ-सुख का अन्वेषण करना छोड़कर कर्तव्य-बुद्धि से सभी कार्य करने होंगे। एनीता नाम है निष्काम कर्म। अज्ञान गीता में अर्जुन को उगीता उपदेश देने

हुए कहते हैं—'काम करो, किन्तु फल मुझे अर्पण करो, अर्थात् मेरे लिए ही काम करो।'

किसी विषय का इतिहास कहाँ तक ठीक ठीक लिखा जा सकता है, इस विषय में लेखक को बहुत मन्देह है। उसके अनेक कारण हैं। गवर्नर जनरल साहब के किसी शहर में पदार्पण से लेकर उस शहर में जाने तक की घटना अपनी आँखों से देखने और बाद में उमीका विवरण प्रसिद्ध प्रसिद्ध सवाद-पत्रों में पढ़ने की सुविधा हमारे सदृश लोगों को अविकतर होती है। आदि से अन्त तक हम लोगों की देखी हुई घटनाओं के माय इन सभी विवरणों की इतनी विभिन्नता देखी जाती है कि विस्मित हो जाना पड़ता है। चार दिन पहले जो घटना हुई है, उसीको लिपिवद्ध करना जब इतना कठिन है, तो चार सौ, चार हजार अथवा चार लाख वर्ष पहले जो घटना हुई है, उमका इतिहास कहाँ तक ठीक ठीक लिपिवद्ध हुआ है, इसका अनुमान सहज ही किया जा सकता है।

और एक बात है, ईसाई मिशनरियों में से बहुत से कहा करते हैं—'उनकी बाइबिल की प्रत्येक घटना जिस वर्ष, जिस महीने, जिस दिन, जिस घटे और जिस मिनट घटित हुई है, वह विल्कुल सामने घड़ी रखकर लिपिवद्ध की गयी है।' किन्तु एक ओर conflict between religion and science (धर्म और विज्ञान में द्वन्द्व) आदि पुस्तकों में बाइबिल की उत्पत्ति के सम्बन्ध में उनके ही देश के आधुनिक पण्डितों का विचार पढ़कर बाइबिल की ऐतिहासिकता जिस प्रकार अच्छी तरह समझी जा सकती है, उसी प्रकार दूसरी ओर मिशनरियों द्वारा अनूदित हिन्दू धर्मशास्त्रों का अपूर्व विवरण पढ़कर उनका लिखित इतिहास भी कहाँ तक सत्य है, इसे समझने में कुछ अवशिष्ट नहीं रहता। यह सब देख-सुनकर मानव जाति के सत्यानुराग एव इतिहास में लिपिवद्ध घटनाओं के ऊपर श्रद्धा प्रायः विल्कुल उड़ सी जाती है।

गीता, बाइबिल, कुरान, पुराण प्रभृति प्राचीन ग्रन्थों में निबद्ध घटनाओं की वास्तविक ऐतिहासिकता के सम्बन्ध में इसीलिए पहले मुझे तनिक भी विश्वास नहीं होता था। एक दिन स्वामी जी से मैंने पूछा कि कुशक्षेत्र में युद्ध से थोड़ी देर पहले अर्जुन के प्रति भगवान् श्री कृष्ण का जो धर्मोपदेश भगवद्गीता में लिपिवद्ध है, वह यथार्थ ऐतिहासिक घटना है या नहीं? उत्तर में उन्होंने जो कहा, वह बड़ा ही सुन्दर है। वे बोले, "गीता एक अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थ है। प्राचीन काल में इतिहास लिखने अथवा पुस्तक आदि छापने की आजकल के समान इतनी घूम-वाम नहीं थी, इसलिए तुम्हारे सदृश लोगों के सामने भगवद्गीता की ऐतिहासिकता प्रमाणित करना कठिन है। किन्तु गीता में उक्त घटना घटी थी

या नहीं इसके लिए तुम भोग औ भाषापत्नी करते हो इसका कोई कारण मुझे नहीं विजता। यदि कोई अकाट्य प्रमाण से तुम्हें यह समझा सक कि मयबान् की कृष्ण ने सारथी होकर अर्जुन की गीता का उपदेश दिया था क्या कबल तभी तुम भोग गीता में बर्णित बातों पर विश्वास करोगे? जब अपने सामन साक्षात् मयबान् के मूर्तिमान होकर माने पर नी तुम छोप उतकी परीक्षा करने क लिए पीड़ते हो और उनका ईश्वरत्व प्रमाणित करने के लिए कहते हो तब गीता ऐतिहासिक है या नहीं इस व्यर्थ की समस्या को छोकर क्यों परेखाम होते हो? यदि हो सके ठी गीता के उपदेशों को जितना बने ग्रहण करो और उसे जीवन में परिणत कर कृतार्थ हो जाओ। श्री रामकृष्ण बेब कहते थे—'जाम साबो पेड़ के पत्ते मितने से क्या होगा! मेरी राम में धर्मशास्त्र में लिपिबद्ध बटना के ऊनर विश्वास या अविश्वास करना ब्यक्तिक अनुभव-मेख का विषय है—अर्थात् मनुष्य किसी एक विधेय अवस्था में पड़कर, उससे उठार पान की इच्छा स रास्ता ईड़ता और धर्मशास्त्र में लिपिबद्ध किसी बटना के साथ उसकी अवस्था का ठीक ठीक मेख होने पर वह उस बटना को ऐतिहासिक कहकर उस पर निश्चित विश्वास करता है तब धर्मशास्त्रोक्त उस अवस्था के उपयोगी उपायों को भी साग्रह ग्रहण करता है।

स्वामी जी ने एक दिन सारीरिक एवं मानसिक शक्ति को असीम कार्य के लिए संरक्षित रखना प्रत्येक के लिए कहीं तक कर्तव्य है इसे बड़े सुन्दर भाव से समझाते हुए कहा था—“अनधिकार बर्षा अथवा बूबा कार्य में औ सन्निध अय करता है वह असीम कार्य की सिद्धि के लिए पर्यन्त शक्ति कहीं स प्राप्त करेगा? The sum total of the energy which can be exhibited by an ego is a constant quantity—अर्थात् प्रत्येक जीवात्मा के भीतर विविध भाव प्रकाशित करने की औ सन्निध रहती है वह एक नियत मात्रा में होती है बतएव उस शक्ति का अतिक्रमण एक भाव में प्रकाशित होने पर उतना अंध और किसी बृद्धरे भाव में प्रकाशित नहीं हो सकता। धर्म के गम्भीर सत्य को प्रत्यक्ष करने के लिए बहुत शक्ति की आवश्यकता होती है इसीलिए धर्म-यत्र के पवित्रों के प्रति विषय-मोह आदि में सन्निध अय न कर ब्रह्मचर्य के द्वारा शक्ति संरक्षण का उपदेश सभी जातियों के धर्मग्रन्थों में पाया जाता है।

स्वामी जी बंगाल के घामों तथा वहाँ के छोरी के अनेक व्यवहारों से अनुप्लव नहीं थे। घाम के एक ही ताकाब में स्नान घीब आदि करना एवं घसीका पानी पीना यह प्रथा उन्हें विस्तुक्त पसन्द न थी। वे प्रायः कहा करते थे 'जिनका मस्तिष्क मख-मूख से भरा है, उन लोगों से आधा-भरोसा कहीं! और यह जी

ग्रामीण लोगो का अनधिकार चर्चा करना है, वह तो बड़ी सराब चीज है। शहर के लोग अनधिकार चर्चा न करते हों, ऐसी बात नहीं, परन्तु उन्हें समय कम मिलता है, क्योंकि शहर का खर्च अधिक है, इसलिए उन्हें काम भी बहुत करना पड़ता है। इतना परिश्रम करने के बाद, खाली बैठकर हुक्का पीने और परनिन्दा करने का समय नहीं मिलता। अन्यथा ये शहरी भूत इस विषय में तो ग्रामीण भूतों की गर्दन पर चढ़कर नाचते।”

स्वामी जी की प्रत्येक दिन की कथा-वार्ता यदि मगूहीत होती, तो प्रत्येक दिन की बातें एक एक मोटी पुस्तक होती। एक ही प्रश्न का बार बार एक ही भाव से उत्तर देना एव एक ही दृष्टान्त की सहायता में उसे समझाना उनकी रीति नहीं थी। एक ही प्रश्न का उत्तर जितनी बार देते, उतनी बार नये भाव और नये दृष्टान्त के द्वारा इस प्रकार देते कि वह सुननेवालो को एकदम नया मालूम होता था, और उनकी वाणी सुनते सुनते थकावट आना तो दूर की बात रही, बल्कि और अधिक सुनने का अनुराग उत्तरोत्तर बढ़ना जाता था। व्याख्यान देने की भी उनकी यही शैली थी। पहले से सोचकर व्याख्यान की रूपरेखा को लिखकर वे कभी भी व्याख्यान नहीं देते थे। व्याख्यान-प्रारम्भ से कुछ देर पहले तक वे हँसी-मजाक, साधारण भाव से बातचीत एव व्याख्यान से विलकुल सम्बन्ध न रखनेवाले विषयो को लेकर भी चर्चा करते रहते थे। व्याख्यान में क्या कहेंगे, यह उन्हें स्वयं नहीं मालूम रहता था। हम लोग जो कुछ दिन उनके सस्पर्श में रहकर धन्य हुए हैं, उन्हीं कुछ दिनों की कथा-वार्ता का विवरण जहाँ तक और भी सम्भव है, क्रमशः लिपिवद्ध कर रहा हूँ।

३

पहले ही कह चुका हूँ कि पाश्चात्य विज्ञान की सहायता से हिन्दू धर्म को समझाने एव विज्ञान और धर्म का सामजस्य प्रदर्शित करने में स्वामी जी के समान मैंने और कोई नहीं देखा। आज उसी प्रसंग में दो-चार बातें लिखने की इच्छा है। किन्तु यह जान लेना होगा, मुझे जहाँ तक स्मरण है, उतना ही लिख रहा हूँ। अतएव इसमें यदि कोई भूल रहे, तो वह मेरे समझने की भूल है, स्वामी जी की व्याख्या की नहीं।

स्वामी जी कहते थे—“चेतन-अचेतन, स्थूल-सूक्ष्म—सभी एकत्व की ओर दम साधकर दौड़ रहे हैं। पहले मनुष्य ने जिन भिन्न भिन्न पदार्थों को देखा, उनमें से प्रत्येक को भिन्न भिन्न समझकर उनको भिन्न भिन्न नाम दिये। बाद में



विचार करके मे समस्त पदार्थ ६३ मूल द्रव्यों से उत्पन्न हुए हैं, ऐसा निश्चित किया।

इन मूल द्रव्यों में अनेक मिश्रद्रव्य हैं। ऐसा इस समय बहुतों को सम्यह हो रहा है। और जब रसायनशास्त्र अतिम भीमोसा पर पहुँचिगा उस समय सभी पदार्थ एक ही पदार्थ के अवस्था-भेद मात्र समझे जायेंगे। पहले ताप आकीर्ण और विद्युत् को सभी विभिन्न समझते थे। अब प्रमाणित हो गया है। वे सब एक हैं, एक ही शक्ति के अवस्थान्तर मात्र हैं। लोगों ने पहले समस्त पदार्थों को चेतन अचेतन और उद्भिन्न इन तीन श्रेणियों में विभक्त किया था। उसके बाद देखा कि उद्भिन्न में भी दूसरे सभी चेतन प्राणियों के समान प्राण हैं, केवल मन-घणित नहीं है। इतना ही। तब बाकी रही दो श्रेणियाँ—चेतन और अचेतन। फिर कुछ दिनों बाद देखा जायागा हम लोग जिन्हें अचेतन कहते हैं उनमें भी जोड़ा-बहुत चैतन्य है।<sup>१</sup>

“पृथ्वी में जो ऊँची-नीची बनीन देखी जाती है वह भी समस्त होकर एक रूप में परिणत होने की सद्य चोप्टा कर रही है। वर्षा के जल से पर्वत आदि ऊँची बनीन कुछ जाने पर उस मिट्टी से गड्ढे भर रहे हैं। एक उच्च पदार्थ को किसी स्थान में रखने पर वह चारों ओर के द्रव्यों के साथ समान उच्च मात्रा धारण करने की चोप्टा करता है। सज्जता-शक्ति इस प्रकार संघाजन संवाहन विकिरण आदि उपायों से सर्वदा सममात्र या एकत्व की ओर ही अग्रसर हो रही है।

वृक्ष के फल फूल पत्ते और उसकी जड़ हम लोगों द्वारा विन्न मिन्न देखे जाने पर भी वे सब वस्तुएँ एक ही हैं। विज्ञान इसे प्रमाणित कर चुका है। विकीर्ण काल के भीतर से देखने पर सफ़ेद रंग इन्द्रजनुव के साथ रंग के समान पुषक पुषक विभक्त दिखायी पड़ता है। जाली आँखों से देखने पर एक ही रंग और काल या नीले बरमे से देखने पर सभी कुछ काल या नीला दिखायी देता है।

इसी प्रकार, जो सत्य है, वह ही एक ही है। माया के द्वारा हम लोग उसे पुषक पुषक देखते हैं वस इतना ही। यद्यपि रेश और काल से अतीत जो अन्तर्गत अतीत सत्य है उसीके कारण मनुष्य को सब प्रकार के मिन्न मिन्न पदार्थों का ज्ञान होता है। फिर भी वह उस सत्य को नहीं पकड़ पाता उसे नहीं देख सकता।

१ स्वामी जी के जित समय पूर्वोक्त विषयों का प्रतिपादन किया था उस समय विख्यात वैज्ञानिक जपदीयबन्धु बन्धु द्वारा प्रचारित तद्विपरवाह से कई पदार्थों का चैतन्यरूप अपूर्व तत्त्व प्रकाशित नहीं हुआ था। स

इन सब बातों को सुनकर मैंने कहा, “स्वामी जी, हम लोग आँखों से जो कुछ देखते हैं, वही क्या सब समय सत्य है? दो समानान्तर रेल की पटरियों को देखने पर प्रतीत होता है, मानो वे अन्त में एक जगह मिल गयी हैं। उसीका नाम है, ‘लुप्त विन्दु’। मृगतृष्णा, रज्जु में सर्प-भ्रम आदि (optical illusion) (दृष्टि-विभ्रम) सर्वदा ही होता रहता है। Calcspars नामक पत्थर के नीचे एक रेखा double refraction (द्वि-आवर्तन) से दो दिखायी देती है। एक पेन्सिल को आधे गिलास पानी में डुबाकर रखने पर पेन्सिल का जलमग्न भाग ऊपरी भाग की अपेक्षा मोटा दिखायी देता है। फिर सभी प्राणियों के नेत्र भिन्न भिन्न क्षमतायुक्त एक एक लेन्स मात्र हैं। हम लोग किसी वस्तु को जितनी बड़ी देखते हैं, घोडा आदि अनेक प्राणी उसको तदपेक्षा अधिक बड़ी देखते हैं, क्योंकि उनके नेत्रों का लेन्स भिन्न शक्तिवाला है। अतएव हम जिसे अपनी आँखों से देखते हैं, वही सत्य है, इसका भी तो कोई प्रमाण नहीं। जॉन स्टुअर्ट मिल ने कहा है—मनुष्य सत्य सत्य करके ही पागल है, किन्तु निरपेक्ष सत्य (absolute truth) को समझने की क्षमता उसमें नहीं है, क्योंकि, घटना-क्रम से प्रकृत सत्य के आँखों के सामने आने पर भी यही वास्तविक सत्य है, यह मनुष्य कैसे समझेगा? हम लोगों का समस्त ज्ञान सापेक्ष है, निरपेक्ष को समझने की क्षमता हममें नहीं है। अतएव निरपेक्ष (निर्गुण) भगवान् या जगत्कारण को मनुष्य कभी भी नहीं समझ सकता।”

स्वामी जी ने कहा, “हो सकता है, तुम्हें या और सब लोगों को निरपेक्ष ज्ञान न हो, पर इसीलिए किसीको भी वह ज्ञान नहीं है, यह कैसे कह सकते हो? ज्ञान और अज्ञान अथवा मिथ्या ज्ञान नामक दो प्रकार के भाव या अवस्थाएँ हैं। इस समय तुम जिसे ज्ञान कहते हो, वह तो वस्तुतः मिथ्या ज्ञान है। सत्य ज्ञान के उदित होने पर वह अन्तर्हित हो जाता है, उस समय सब एक दिखायी देता है। द्वैतज्ञान अज्ञानजनित है।”

मैंने कहा, “स्वामी जी, यह तो बड़ी भयानक बात है! यदि ज्ञान और अज्ञान, ये दो ही वस्तुएँ हैं, तो ऐसा होने पर आप जिसे सत्य ज्ञान समझते हैं, वह भी तो मिथ्या ज्ञान हो सकता है, और हम लोगों के जिस द्वैत ज्ञान को आप मिथ्या ज्ञान कहते हैं, वह भी तो सत्य ज्ञान हो सकता है?”

उन्होंने कहा, “ठीक कहते हो, इसीलिए तो वेद में विश्वास करना चाहिए। हमारे पूर्वकालीन ऋषि-मुनिगण समस्त द्वैत ज्ञान को पारकर, इस अद्वैत सत्य का अनुभव कर जो कह गये हैं, उसीको वेद कहते हैं। स्वप्न और जाग्रत अवस्थाओं में से कौन सी सत्य है और कौन सी असत्य, इसे विचारने की क्षमता हम लोगों

में नहीं है। जब तक हम भोग इन दोनों अवस्थाओं को पारकर इनकी परीक्षा नहीं कर सकेगे तब तक कैसे कह सकते हैं कि यह सत्य है और वह असत्य ? केवल दो विभिन्न अवस्थाओं का अनुभव होता है इतना ही कहा जा सकता है। जब तुम एक अवस्था में रहते ही तो दूसरी अवस्था तुम्हें मूल मामूम पड़ती है। स्वप्न में हो सकता है कश्कत्तों में तुमने क्य-बिक्रम्य किया पर दूसरे ही क्षण अपने को बिछीने पर लेटे हुए पाते हो। जब सत्य ज्ञान का उदय होना तब एक से भिन्न और कुछ नहीं देखोगे उस समय यह समझ सकोगे कि पहले का ईत ज्ञान मिथ्या था। किन्तु यह सब बहुत दूर की बात है। हाथ में सड़िया केकर बस्रारम्भ करते ही यदि कोई उमायन महाभारत पढ़ने की इच्छा करे, तो यह कैसे होगा ? धर्म अनुभव की विषय है बुद्धि के द्वारा समझने का नहीं। अनुभव के लिए प्रयत्न करना ही होना तब उसका सत्यासत्य समझा जा सकेगा। यह बात तुम सोचों के पाश्चात्य विज्ञान रसायनशास्त्र मौलिकशास्त्र भूमर्यशास्त्र आदि से भी अनुभूवित है। दो अंश Hydrogen (उद्वजन) और एक अंश Oxygen (ओपजन) केकर 'पानी कहाँ' कहने से क्या कहीं पानी होगा ? नहीं उसको एक सक्षत स्थान में रखकर उनके भीतर electric current (विद्युत्प्रवाह) चलाकर उनका combination (संयोग मिश्रण नहीं) करने पर ही पानी दिखायी देगा और ज्ञात होगा कि उद्वजन और ओपजन नामक घैस से पानी उत्पन्न हुआ है। अईत ज्ञान की उपसम्भि के लिए भी ठीक उसी तरह धर्म में विश्वास चाहिए, आग्रह चाहिए, अभ्यसनाय चाहिए और चाहिए प्राणपण से मन। तब कहीं अईत ज्ञान होता है। एक महीने की आरत छोड़ना कितना कठिन होता है फिर उस साक की आरत की वो बात ही क्या ! प्रत्येक व्यक्ति के सैकड़ों कर्मों का कर्मफल पीठ पर बैबा हुआ है। एक मुहूर्त भर समधान वैराग्य हुआ नहीं कि बस कहने लगे कहीं मुझे तो सब एक दिखानी नहीं पड़ता ?

मैने कहा 'स्वामी जी आपकी यह बात सत्य होने पर तो Fatalism (अदृष्टबाव) आ जाता है। यदि बहुत कर्मों का कर्मफल एक जन्म में जाने का नहीं तो उसके लिए फिर प्रयत्न ही क्यों ! जब सभी को मुक्ति मिलेगी तो मुझे भी मिलेगी।

वे बोले वैया नहीं है। कर्म का फल तो अवश्य भोगना होगा किन्तु जबक उपायों द्वारा ये सब कर्मफल बहुत बोड़े समय के भीतर समाप्त हो सकते हैं। मैजिक मैटर्न की पचास तस्वीरें बस मिगट के भीतर भी दिखायी जा सकती हैं और दिगाने दिगाने समस्त रात भी काटी जा सकती है। वह ही अपने बावह क ऊपर निर्भर है।

सृष्टि-रहस्य के सम्बन्ध में भी स्वामी जी की व्याख्या अति सुन्दर है,—“सृष्ट वस्तु मात्र ही चेतन और अचेतन (सुविधा के लिए) इन दो भागों में विभक्त है। मनुष्य सृष्ट वस्तु के चेतन-भाग का श्रेष्ठ प्राणीविशेष है। किसी किमी धर्म के मतानुसार ईश्वर ने अपने ही समान रूपवाली सर्वश्रेष्ठ मानव जाति का निर्माण किया है, कोई कहते हैं—मनुष्य पुच्छरहित वानरविशेष है, कोई कहते हैं—केवल मनुष्य में ही विवेचना-शक्ति है, उसका कारण यह है कि मनुष्य के मस्तिष्क में जल का अंश अधिक है। जो भी हो, मनुष्य प्राणीविशेष है और सब प्राणी सृष्ट पदार्थ के अंश मात्र है, इस विषय में मतभेद नहीं है। अब एक ओर पाश्चात्य विद्वान् ‘सृष्ट पदार्थ क्या है,’ यह समझने के लिए सश्लेषण-विश्लेषणात्मक उपायों का अवलम्बन कर ‘यह क्या,’ ‘वह क्या,’ इस प्रकार अनुसन्धान करने लगे, और दूसरी ओर हमारे पूर्वज लोग भारत की गर्म हवा और उर्वर भूमि में, शरीर-रक्षा के लिए बिल्कुल थोड़ा समय देकर, कौपीन धारण कर, टिमटिमाते दिव्य के प्रकाश में बैठकर, कमर बाँधकर विचार करने लगे—कस्मिन् विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति, अर्थात् ‘ऐसा कौन सा पदार्थ है, जिसके जान लेने पर सब कुछ जाना जा सकता है?’ उन लोगों में अनेक प्रकार के लोग थे। इसीलिए चार्वाक के, ‘जो कुछ दिखता है, वही सत्य है,’ इस मत (ultra-materialistic theory) से लेकर शंकराचार्य के अद्वैत मत तक सभी हमारे धर्म में पाये जाते हैं। ये दोनों ही दल धीरे धीरे एक स्थान में पहुँच रहे हैं और अब दोनों ने एक ही बात कहनी आरम्भ कर दी है। दोनों ही कहते हैं—इस ब्रह्माण्ड के सभी पदार्थ एक अनिर्वचनीय, अनादि, अनन्त वस्तु के प्रकाश मात्र हैं। देश एव काल भी वही हैं। काल अर्थात् युग, कल्प, वर्ष, मास, दिन और मुहूर्त आदि समयसूचक काल, जिसके अनुभव में सूर्य की गति ही हमारी प्रधान सहायक है। जरा सोचकर तो देखो, वह काल क्या मालूम होता है? सूर्य अनादि नहीं है, ऐसा समय अवश्य था, जब सूर्य की सृष्टि नहीं हुई थी। और ऐसा समय भी आयेगा, जब यह सूर्य नहीं रहेगा, यह निश्चित है। अतः अखण्ड समय एक अनिर्वचनीय भाव या वस्तु विशेष के अतिरिक्त भला और क्या है? देश या आकाश कहने पर हम लोग पृथ्वी अथवा सौर जगत् सम्बन्धी सीमाबद्ध स्थानविशेष समझते हैं, किन्तु वह तो समग्र सृष्टि का अंश मात्र छोड़ और कुछ भी नहीं है। ऐसा भी स्थान हो सकता है, जहाँ पर कोई सृष्ट वस्तु नहीं है। अतएव अनन्त देश भी काल के समान एक अनिर्वचनीय भाव या वस्तुविशेष है। अब, सौर जगत् और सृष्ट पदार्थ कहाँ से और किस तरह आये? साधारणतः हम लोग कर्ता के अभाव में क्रिया नहीं देख पाते। अतएव समझते हैं कि इस सृष्टि का अवश्य कोई कर्ता है, किन्तु ऐसा

होने पर तो सृष्टिकर्ता का भी कोई सृष्टिकर्ता आवश्यक है। किन्तु ऐसा हो नहीं सकता। अतएव यदि कारण सृष्टिकर्ता या ईश्वर भी अनादि अनिर्बन्धनीय अनन्त भाव या वस्तुविशेष है। पर अनन्त की अनेकता तो सम्भव नहीं है। अतएव ये सब अनन्त वस्तुएँ एक ही हैं एवं एक ही विविध रूपों में प्रकाशित हैं।

एक समय मैंने पूछा था “स्वामी जी मन्त्र जाति में जो सामारमण्या विश्वास प्रचलित है वह क्या सत्य है ?

उन्होंने उत्तर दिया ‘सत्य न होने का कोई कारण तो दिखता नहीं। तुमसे कोई मणि कस्य स्वर एवं मधुर भाषा में कोई बात पूछे तो तुम सन्तुष्ट होते हो पर कठोर स्वर एवं तीखी भाषा में पूछे तो तुम्हें क्रोध आ जाता है। तब फिर मन्त्रा प्रत्येक मूत्र के अविच्छाता देवता सुसंछिन्त उत्तम स्त्रोत्रों द्वारा क्यों न सन्तुष्ट होयि ?

इन सब बातों को सुनकर मैंने कहा ‘स्वामी जी मेरी बिद्या-भुक्ति की बीड़ को तो आप अच्छी तरह समझ सकते हैं। इस समय मेरा क्या कर्तव्य है, यह आप बतलाने की कृपा करें।

स्वामी जी ने कहा ‘बिना प्रकारभी हो पहले मन को बध में छाने की चेष्टा करो बाद में सब आप ही हो जायगा। ध्यान रखो अद्वैत ज्ञान अत्यन्त कठिन है वही मासब-जीवन का चरम उद्देश्य या लक्ष्य है, किन्तु उस लक्ष्य तक पहुँचने के पहले अनेक चेष्टा और आजीवन की आवश्यकता होती है। साधु-संग और यथार्थ वैराग्य को छोड़ उसके अनुभव का और कोई साधन नहीं।

## स्वामी जी की अस्पृष्ट स्मृति<sup>१</sup>

१

आज से सोलह वर्ष पहले की बात है। सन् १८९७ ईस्वी, फरवरी मास। स्वामी विवेकानन्द ने पाश्चात्य देशों को जीतकर अभी अभी भारत में पदार्पण किया है। जिस क्षण से स्वामी जी ने शिकागो धर्म-महासभा में हिन्दू धर्म की विजय-पताका फहरायी है, तब से उनके सम्बन्ध में जो भी बात सवाद-पत्रों में प्रकाशित होती है, बड़े चाव से पढ़ता हूँ। कॉलेज छोड़े अभी दो-तीन वर्ष हुए हैं, किसी प्रकार का अर्थोपार्जन आदि नहीं कर रहा हूँ। इसलिए कभी मित्रों के घर जाकर, अथवा कभी घर के समीपवर्ती धर्मतला मुहल्ले में 'इण्डियन मिरर' आफिस के बाहरी भाग में बोर्ड पर चिपकी हुई 'इण्डियन मिरर' पत्रिका में स्वामी जी से सम्बन्धित जो कोई सवाद या उनका व्याख्यान प्रकाशित होता है, उसे बड़ी उत्सुकता से पढ़ा करता हूँ। इस प्रकार, स्वामी जी के भारत में पदार्पण करने के समय से सिंहल या मद्रास में जो कुछ उन्होंने कहा है, प्रायः सभी पढ़ चुका हूँ। इसके सिवाय आलमबाजार मठ में जाकर उनके गुरुभाइयों के पास एव मठ में आने-जानेवाले मित्रों के पास उनके विषय में बहुत सी बातें सुन चुका हूँ और सुनता हूँ, तथा विभिन्न सम्प्रदायों के मुखपत्र, जैसे—वगवासी, अमृतबाजार, होप, थियोसॉफिस्ट प्रभृति, अपनी अपनी समझ के अनुसार—कोई व्यग से, कोई उपदेश देने के बहाने, तो कोई बडप्पन के ढग से—उनके बारे में जो कुछ लिखता है, वह भी लगभग सब पढ़ चुका हूँ।

आज वे ही स्वामी विवेकानन्द सियालदह स्टेशन पर अपनी जन्मभूमि कलकत्ता नगरी में पदार्पण करेंगे। अब आज उनकी श्री मूर्ति के दर्शन से आँख-कान का विवाद समाप्त हो जायगा, इस हेतु बड़े तडके ही उठकर सियालदह स्टेशन पर जा उपस्थित हुआ। इतने सबेरे से ही स्वामी जी की अम्यर्थना के लिए बहुत से लोग एकत्र हो गये हैं। अनेक परिचित व्यक्तियों से भेंट हुई। स्वामी जी

१ बंगला सन् १३२० के आषाढ़ मास के बंगला मासिक-पत्र 'उद्बोधन' में स्वामी शुद्धानन्द का यह लेख प्रकाशित हुआ था। स०

होने पर तो सृष्टिकर्ता का भी कोई सृष्टिकर्ता आवश्यक है। किन्तु वैया ही नहीं सकता। अतएव यदि कारण सृष्टिकर्ता या ईश्वर भी अनादि, अनिर्बन्धीय अनन्त आद्य या वस्तुविशेष है। पर अनन्त की अनिच्छता तो सम्भव नहीं है अतएव ये सब अनाद्य वस्तुएँ एक ही हैं एवं एक ही विविध रूपों में प्रकाशित हैं।

एक समय मैंने पूछा था 'स्वामी जी मन्त्र आदि में जो साधारणतया विश्वास प्रदर्शित है वह क्या सत्य है ?

उन्होंने उत्तर दिया 'सत्य न होने का कोई कारण तो दिखता नहीं। तुमसे कोई यदि कश्चि स्वर एवं मन्त्र माया में कोई बात पूछे तो तुम अनुपस्थित होते हो पर कठोर स्वर एवं तीक्ष्ण भाषा में पूछे तो तुम्हें कोब आ जाता है। तब फिर भला प्रत्येक मूढ के अविष्टाता देवता सुकृच्छित उत्तम लोकोपे द्वारा क्यों न अनुपस्थित होंगे ?

इन सब बातों को सुनकर मैंने कहा 'स्वामी जी मेरी विद्या-बुद्धि की सीढ़ी को तो आप बखूबी तरह समझ सकते हैं। इस समय मेरा क्या कर्तव्य है यह आप बतलाने की कृपा करें।

स्वामी जी ने कहा "बिना प्रकार भी हो पहले मन की बाध में छाने की चेष्टा करो बाध में सब आप ही हो आसपास। ध्यान रखो अद्वैत ज्ञान अत्यन्त कठिन है वही मानव-जीवन का अरम उद्देश्य या उद्देश्य है, किन्तु उस उद्देश्य तक पहुँचने के पहले अनेक चेष्टा और आयोगन की आवश्यकता होती है। साधु-संग और यत्नार्थ ईश्वर की ओर उसके अनुभव का और कोई साधन नहीं।

के इशारे से जनता को नियन्त्रित कर रहे हैं, और दूसरी गाडी में गुडविन, हैरिसन (सिंहल से स्वामी जी के साथ आये हुए बौद्ध धर्मावलम्बी एक साहव), जी० जी०, किडी और आलार्सिगा नामक तीन मद्रासी शिष्य एव स्वामी त्रिगुणातीतानन्द जी बैठे हुए हैं।

थोड़ी देर गाडी रुकने के बाद, बहुतो के अनुरोधवश स्वामी जी रिपन कॉलेज में प्रवेश कर दो-तीन मिनट अग्रेजी में थोड़ा बोले और लौटकर गाडी में आकर बैठ गये। यहाँ से जुलूस आगे नहीं गया। गाडी वागवाजार में पशुपति बाबू के घर की ओर चली। मैं भी मन ही मन स्वामी जी को प्रणाम कर अपने घर की ओर लौटा।

## २

भोजन करने के बाद मध्याह्न काल में चाँपातला मुहल्ले में खगेन (स्वामी विमलानन्द) के घर गया। वहाँ से खगेन और मैं उसके टाँगे में बैठकर पशुपति बोस के घर की ओर चले। स्वामी जी ऊपर के कमरे में विश्राम कर रहे थे, अधिक लोगो को नहीं जाने दिया जा रहा था। सौभाग्यवश हमारे परिचित, स्वामी जी के अनेक गुरुभाइयो से भेंट हो गयी। स्वामी शिवानन्द जी हम लोगो को स्वामी जी के पास ले गये और हम लोगो का परिचय देते हुए कहा, “ये सब आपके खूब admirers (प्रेमी) हैं।”

स्वामी जी और स्वामी योगानन्द पशुपति बाबू के घर की दूसरी मञ्जिल पर एक मुसज्जित बैठकखाने में पास पास दो कुर्सियों पर बैठे थे। अन्य साधुगण उज्ज्वल गैरिक वस्त्र धारण किये हुए इधर-उधर घूम रहे थे। फर्श पर दरी बिछी हुई थी। हम लोग प्रणाम करके दरी पर बैठे। स्वामी जी उस समय स्वामी योगानन्द से बातचीत कर रहे थे। अमेरिका और यूरोप में स्वामी जी ने क्या देखा, यह प्रसंग चल रहा था। स्वामी जी कह रहे थे—

“देख योगेन, क्या देखा, बताऊँ? समस्त पृथ्वी में एक महाशक्ति ही क्रीडा कर रही है। हमारे पूर्वजो ने उसको religion (धर्म) की ओर manifest (प्रकाशित) किया था, और आधुनिक पाश्चात्य देशीय लोग उसीको महा रजो-गुणात्मक क्रिया के रूप में manifest (प्रकाशित) कर रहे हैं। वस्तुतः समग्र जगत् में वही एक महाशक्ति भिन्न भिन्न रूप में क्रीडा कर रही है।”

खगेन की ओर देखकर स्वामी जी ने कहा, “इस लडके को बहुत sickly (कमजोर) देखता हूँ।”



क सम्बन्ध में बातचीत होने लगी। देखा अमेज़ी में मुद्रित वो परचे बितरित किये जा रहे हैं। पढ़कर मामूम हुआ कि इंग्लैण्ड और अमेरिकावासी उनके छात्रवृत्त ने उनके प्रस्थान के अवसर पर उनके पुर्णों का बर्पन करते हुए, उनके प्रति इतना-सुषक वो वो अभिनन्दन-पत्र अर्पित किये थे वे ही य है। धीरे धीरे स्वामी जी के बर्षतार्थी शोय शुष्क के शुष्क जाने लगे। प्लेस्टफार्म लोमों से भर गया। सभी आपस में एक दूसरे से उत्कण्ठा के साथ पूछते हैं 'स्वामी जी के जाने में और किन्ना बिसम्भ है? सुना मया वे एक 'स्पेशल ट्रेन' से भायेंगे जाने में अब और बेरी नहीं है। अरे, यह तो है,—गाड़ी का पम्प मुतामी वे रहा है। कमरा जाबाज के साथ गाड़ी ने प्लेस्टफार्म के भीतर प्रवेश किया।

स्वामी जी जिस डिब्बे में थे वह जिस जगह जाकर बका सीमाय से मैं ठीक उसीके सामने खड़ा था। गाड़ी रुकते ही देखा स्वामी जी बड़े हाथ जोड़कर सबको नमस्कार कर रहे हैं। इस एक ही नमस्कार से स्वामी जी ने मेरे हृदय को आकृष्ट कर लिया। उस समय गाड़ी में बैठ हुए स्वामी जी की मूर्ति को मैंने साधारणतः देखा किया। उसके बाद स्वागत-समिति के अध्यक्ष मरेन्द्रनाथ सेन बाबि व्यक्तिपों ने जाकर स्वामी जी की गाड़ी से उतारा और कुछ दूर बढ़ी एक गाड़ी में बिठाया। बहुत से छोटा स्वामी जी को प्रणाम करते और उनकी चरण रेखु केने के लिए अपसर हुए। उस जगह बड़ी भीड़ जमा हो गयी। इधर दर्शकों के हृदय से भाव ही 'जय स्वामी त्रिविक्रान्त जी की जय' 'जय श्री रामकृष्ण देव की जय की आनन्द-स्मृति निकलने लगी। मैं भी हृदय से उस आनन्द-स्मृति में सहयोग देकर जनता के साथ अपसर होने लगा। कमरा जब स्टेशन के बाहर निकले तो देखा बहुत से युवक स्वामी जी की गाड़ी के बोड़े सोलकर खूब ही गाड़ी सीपने के लिए अपसर हो रहे हैं। मैंने भी उन लोनों को सहयोग देना चाहा परन्तु मीड़ के कारण बीता न कर सका। इसलिये उस भेष्टा को छोड़कर कुछ दूर से स्वामी जी की गाड़ी के साथ चलने लगा। स्टेशन पर स्वामी जी के स्वागतार्थ भाये हुए एक हरिनाम-सकीर्तन-दल को देखा जा। रास्ते में एक बौद्ध बजानेवाले दल को बौद्ध बजाते हुए स्वामी जी के साथ चलते देखा। रिपन कॉलेज तक का मार्ग अनेक प्रकार की पताकाओं एवं लता पत्र और पुष्पों से सुसज्जित था। गाड़ी जाकर रिपन कॉलेज के सामने बढ़ी हुई। इस बार स्वामी जी को देखने का ब्रह्मा सुयोग मिला। देखा वे किसी परिचित व्यक्ति से कुछ कह रहे हैं। मुझ उत्पकाचनवर्षे हैं। मानो ब्योति फूटकर बाहर निकल रही है। मार्गजनित भ्रम के कारण कुछ पचीना जा रहा है। वो गाड़ियाँ हैं—एक ने स्वामी जी एवं श्रीमान और श्रीमती सेविदर बैठे हैं जिसमें बड़े हीकर माननीय चारुचन्द्र मिश्र हाथ

के इशारे से जनता को नियन्त्रित कर रहे है, और दूसरी गाडी मे गुडविन, हैरिसन (सिंहल से स्वामी जी के साथ आये हुए बौद्ध धर्मावलम्बी एक साहब), जी० जी०, किडी और आलार्सिंगा नामक तीन मद्रासी शिष्य एव स्वामी त्रिगुणातीतानन्द जी बैठे हुए हैं।

थोड़ी देर गाडी रुकने के बाद, बहुतो के अनुरोधवश स्वामी जी रिपन कॉलेज मे प्रवेश कर दो-तीन मिनट अंग्रेजी मे थोडा बोले और लौटकर गाडी मे आकर बैठ गये। यहाँ से जुलूस आगे नहीं गया। गाडी वागवाज्जार मे पशुपति बाबू के घर की ओर चली। मैं भी मन ही मन स्वामी जी को प्रणाम कर अपने घर की ओर लौटा।

## २

भोजन करने के बाद मध्याह्न काल मे चाँपातला मुहल्ले में खगेन (स्वामी विमलानन्द) के घर गया। वहाँ से खगेन और मैं उसके टाँगो मे बैठकर पशुपति चोस के घर की ओर चले। स्वामी जी ऊपर के कमरे मे विश्राम कर रहे थे, अधिक लोगो को नहीं जाने दिया जा रहा था। सौभाग्यवश हमारे परिचित, स्वामी जी के अनेक गुरुभाइयो से भेंट हो गयी। स्वामी शिवानन्द जी हम लोगो को स्वामी जी के पास ले गये और हम लोगो का परिचय देते हुए कहा, “ये सब आपके खूब admirers (प्रेमी) हैं।”

स्वामी जी और स्वामी योगानन्द पशुपति बाबू के घर की दूसरी मञ्जिल पर एक सुसज्जित बैठकखाने मे पास पास दो कुर्सियो पर बैठे थे। अन्य साधुगण उज्ज्वल गैरिक वस्त्र धारण किये हुए इधर-उधर घूम रहे थे। फर्श पर दरी बिछी हुई थी। हम लोग प्रणाम करके दरी पर बैठे। स्वामी जी उस समय स्वामी योगानन्द से बातचीत कर रहे थे। अमेरिका और यूरोप मे स्वामी जी ने क्या देखा, यह प्रसंग चल रहा था। स्वामी जी कह रहे थे—

“देख योगेन, क्या देखा, बताऊँ? समस्त पृथ्वी मे एक महाशक्ति ही क्रीडा कर रही है। हमारे पूर्वजो ने उसको religion (धर्म) की ओर manifest (प्रकाशित) किया था, और आधुनिक पाश्चात्य देशीय लोग उसीको महा रजोगुणात्मक क्रिया के रूप मे manifest (प्रकाशित) कर रहे हैं। वस्तुतः ममग्र जगत् मे वहीं एक महाशक्ति भिन्न भिन्न रूप मे क्रीडा कर रही है।”

खगेन की ओर देखकर स्वामी जी ने कहा, “इस लडके को बहुत sickly (कमजोर) देखता हूँ।”

स्वामी त्रिपालर जी ने उत्तर दिया "यह बहुत लम्बा है chronic dyspepsia (पुमान बर्बात रोम) से पीड़ित है।"

स्वामी जी न बहो हमारा बहाना देज बहत sentimental (भादुर) है न हमीलिए मनी इतना dyspepsia होता है।

कुछ देर बाद हम लोग प्रणाम करके आन आन पर लौट आये।

३

स्वामी जी और उनका पिता श्रीमान श्री श्रीमती मेवियर बायीपुर में स्व० गीताम्बाक योग्य व वैधम में निवास कर रहे हैं। स्वामी जी के श्रीमता से कभी कभी गुप्त क लिए करने बहुत से दिवा के गाय में हम स्थान पर कई बार गया था। कहीं का प्रमाण जो कुछ स्मरण है, वह इस प्रकार है

स्वामी जी के गाय मुस बागीचा का गीताम्बा सर्वप्रथम उसी योग्य के एक कमरे में हुआ। स्वामी जी आकर बैठे हैं मैं भी जाकर प्रणाम करके बैठा हूँ उस समय कहीं और कोई नहीं है। न जाने क्यों, स्वामी जी ने एकएक मुससे पूछा क्या तु सम्बाक पीता है ?

मिने कहा जी नहीं।

उस पर स्वामी जी बोल ही बहुत से काग बग है—सम्बाक पीना अच्छा नहीं।

एक दूसरे दिन स्वामी जी के पास एक रोग्य भये हुए हैं। स्वामी जी उनका साथ बागीचाप कर रहे हैं। मैं कुछ दूर पर बैठा हूँ और कोन नहीं है। स्वामी जी कह रहे हैं बाबा जी अमरिका में मैं भी इन्व के सम्बन्ध में एक बार व्याख्यान दिया। उसको सुनकर एक परम मुखरी अगाध एम्बर की अधिकारिणी मुबली सर्वस्व त्यागकर एक निर्जन द्वीप में जाकर श्री इन्व के ध्यान में उन्मत्त हो गयी। उसके बाद स्वामी जी त्याग के सम्बन्ध में कहने लगे 'द्विज सम्प्रदायी में त्याग-भाव का प्रकृत उत्तम उज्ज्वल रूप में नहीं है, उनका भीतर पीछ ही अवनति आ जाती है। जैसे—ब्रह्ममाचार्य का सम्प्रदाय।'

और एक दिन स्वामी जी के पास गया। बोलता हूँ बहुत से लोग बैठे हैं और स्वामी जी एक मुसको कस कर बागीचाप कर रहे हैं। मुसक बंयाक चिरी-साँठिकल सीसाबटी के मकन में रखा है। वह कह रहा है "मैं अनेक सम्प्रदायों में जाता हूँ किन्तु सत्य क्या है, यह निर्णय नहीं कर पा रहा हूँ।"

स्वामी जी अत्यन्त स्नेहपूर्ण स्वर में कह रहे हैं, “देखो वच्चा, मेरी भी एक दिन तुम्हारी जैसी अवस्था थी। फिर भय क्या? अच्छा, भिन्न भिन्न लोगो ने तुमसे क्या क्या कहा था, और तुमने क्या क्या किया, बताओ तो सही?”

युवक कहने लगा, “महाराज, हमारी सोसाइटी में भवानीशकर नामक एक विद्वान् प्रचारक हैं। मूर्तिपूजा के द्वारा आध्यात्मिक उन्नति में जो विशेष सहायता मिलती है, उसे उन्होंने मुझे बहुत सुन्दर ढंग से समझा दिया। मैंने भी तदनुसार कुछ दिनों तक खूब पूजा-अर्चना की, किन्तु उससे शान्ति नहीं मिली। उसी समय एक महाशय ने मुझे उपदेश दिया—‘देखो, मन को विल्कुल शून्य करने की कोशिश करो, उससे तुम्हें परम शान्ति मिलेगी।’ मैं बहुत दिनों तक उसी कोशिश में लगा रहा किन्तु उससे भी मेरा मन शान्त न हुआ। महाराज, मैं अब भी एक कोठरी में, दरवाजा बन्द कर, जब तक बन पड़ता है, बैठा रहता हूँ, किन्तु शान्ति तो किमी भी तरह नहीं मिल रही है। क्या आप दया कर यह बता सकेंगे, शान्ति किससे मिलेगी?”

स्वामी जी स्नेहभरे स्वर में कहने लगे, “वच्चा, यदि तुम मेरी बात सुनो, तो तुम्हें अब पहले अपनी कोठरी का दरवाजा खुला रखना होगा। तुम्हारे घर के पास, बस्ती के पास कितने अभावग्रस्त लोग रहते हैं, उनकी तुम्हें यथासाध्य सेवा करनी होगी। जो पीड़ित है, उसके लिए औषधि और पथ्य का प्रबन्ध करो और शरीर के द्वारा उसकी सेवा-शुश्रूषा करो। जो भूखा है, उसके लिए खाने का प्रबन्ध करो। तुमने तो इतना पढा-लिखा है, अतः जो अज्ञानी है, उसे वाणी द्वारा जहाँ तक हो सके, समझाओ। यदि तुम मेरा परामर्श मानो, तो इस प्रकार लोगो की यथासाध्य सेवा करो। यदि तुम इस प्रकार कर सकोगे, तो तुम्हारे मन को अवश्य शान्ति मिलेगी।”

युवक बोला, “अच्छा, महाराज, मान लीजिए, मैं एक रोगी की सेवा करने के लिए गया, किन्तु उसके लिए रात भर जगने से, समय पर भोजन आदि न करने तथा अधिक परिश्रम से यदि मैं स्वयं ही रोगग्रस्त हो जाऊँ तो?”

स्वामी जी अब तक उस युवक के साथ स्नेहपूर्ण स्वर में सहानुभूति के साथ बातें कर रहे थे। इस अन्तिम वाक्य से ऐसा जान पड़ा कि वे कुछ विरक्त से हो गये। वे कुछ व्यग-भाव से कह उठे, “देखो जी, रोगी की सेवा करने के लिए जाने पर तुम अपने रोग की आशंका कर रहे हो, किन्तु तुम्हारी बातचीत सुनने पर और तुम्हारा मनोभाव देखने पर मुझे तो मालूम पड़ता है—और जो यहाँ उपस्थित हैं, वे भी खूब अच्छी तरह समझ सकते हैं—कि तुम ऐसे रोगी की सेवा कभी भी नहीं करोगे, जिससे तुम्हें खुद को ही रोग हो जाय।”

मुक्क के साथ और कोई विशेष बातचीत नहीं हुई। हम सोच समझ में मह व्यक्ति 'कैची' सेगी का है। अर्थात् जैसे कैची जो कुछ भी मिसे उछीको काट देती है। उछी प्रकार एक सर्वा के मनुष्य है जो कोई अनुपवेश सुनने से ही उसमें मुक्ति निकालते है। जिनकी निगाह इन उपरिष्ट विषयों में दीप देखने के लिए बड़ी पैनी रखी है। ऐसे लोगों से चाह कितनी ही अच्छी बात क्यों न कहिए, सभी की बात वे तर्क द्वारा काट देत है।

एक दूसरे दिन मास्टर महाशय (श्री रामकृष्ण बचनानुत् के प्रणेता श्री 'म') के साथ बातचीत हो रहा है। मास्टर महाशय कह रहे है 'देखो तुम जो बड़ा परोपकार और जीव-सेवा आदि की बातें करते हो वे तो माया के राज्य की बातें हैं। जब देवास्त-मय में मानव का चरम सद्य मुक्ति-काम और माया-बन्धन का विच्छेद है तो फिर उन सब माया-व्यापारों में लिप्त होकर लोगों को बड़ा परोपकार आदि विषयों का उपवेश देने में क्या काम ?'

स्वामी जी ने तत्पश्च उत्तर दिया 'मुक्ति भी क्या माया के अन्तर्गत नहीं है? आत्मा तो नित्य मुक्त है फिर उसकी मुक्ति के लिए चेष्टा क्यों ?'

मास्टर महाशय चुप हो गये।

मैं समझ गया मास्टर महाशय बड़ा सेवा परोपकार आदि सब छोड़कर, सभी प्रकार के अधिकारियों के लिए केवल जप-तप ध्यान-धारणा या भक्ति का ही एकमात्र साधन के रूप में समर्पण कर रहे थे। किन्तु स्वामी जी के मतानुसार, एक प्रकार के अधिकारियों के लिए इन सबका अनुष्ठान जिस तरह मुक्ति-काम के लिए आवश्यक है। उसी प्रकार ऐसे भी बहुत से अधिकारी हैं जिनके लिए परोपकार, दान सेवा आदि आवश्यक है। एक को उड़ा देने से दूसरे को भी उड़ा देना हीमा। एक को स्वीकार करने पर दूसरे को भी स्वीकार करना पड़ेगा। स्वामी जी के इस प्रत्युत्तर से यह बात अच्छी तरह समझ में आ गयी कि मास्टर महाशय दया सेवा आदि की 'माया' सत्त्व से उड़ाकर और जप-ध्यान आदि की ही मुख्य रूपकर सङ्कीर्ण रास का परिपोषण कर रहे थे। परन्तु स्वामी जी का उधार हृदय और घुंरे की चारक ठमान उनकी तीक्ष्ण बुद्धि उसे सहन न कर सकी। अपनी अनुभूत मुक्ति से उन्होंने मुक्ति-काम की चेष्टा को भी माया के अन्तर्गत ही निर्धारित किया एवं बड़ा सेवा आदि के साथ उसको एक श्रेणी में लाकर उन्होंने वर्मपोष के पथिक की भी आशय दिया।

बौद्ध-य-क्रिस्चियन के 'समा-अनुकरण' (Imitation of Christ) का प्रथम उपा। बहुत से लोग जानते हैं कि स्वामी जी सतार-स्वाग करन से कुछ पहले इस ग्रन्थ की विशेष रूप से चर्चा किया करते थे और बराहमणर मठ में रहने

समय उनके सभी गुरुभाई उन्हींके समान इस ग्रन्थ को साधक-जीवन में विशेष सहायक समझकर सर्वदा इस पर विचार किया करते थे। स्वामी जी इस ग्रन्थ के इतने अनुरागी थे कि उस समय के 'साहित्य-कल्पद्रुम' नामक मासिक पत्र में उसकी एक प्रस्तावना लिखकर उन्होंने 'ईसा-अनुसरण' नाम से उसका सुन्दर अनुवाद करना भी आरम्भ कर दिया था। प्रस्तावना पढ़ने से ही यह मालूम हो जाता है कि स्वामी जी इस ग्रन्थ तथा ग्रन्थकार को कितनी गम्भीर श्रद्धा से देखते थे। वास्तव में, उसमें विवेक, वैराग्य, दीनता, दास्य, भक्ति आदि के ऐसे सैकड़ों ज्वलन्त उपदेश हैं कि जो उसे पढ़ेंगे, उनके हृदय में वे भाव कुछ न कुछ अवश्य उद्दीपित होंगे। उपस्थित व्यक्तियों में से एक सज्जन यह जानने के लिए कि स्वामी जी का इस समय उस ग्रन्थ के प्रति कैसा भाव है, उस ग्रन्थ में वर्णित दीनता के उपदेश का प्रसंग उठाते हुए बोले, "अपने को इस प्रकार अत्यन्त हीन समझे बिना आध्यात्मिक उन्नति कैसे हो सकती है?" स्वामी जी यह सुनकर कहने लगे, "हम लोग हीन कैसे? हम लोगों के लिए अन्धकार कहाँ? हम लोग तो ज्योति के राज्य में वास करते हैं, हम लोग तो ज्योति के तनय हैं।"

उनका इस प्रकार प्रत्युत्तर सुनकर मैं समझ गया कि स्वामी जी उक्त ग्रन्थ-निर्दिष्ट इन प्राथमिक साधन-सोपानों को पारकर साधना-राज्य की कितनी उच्च भूमि में पहुँच गये हैं।

हम लोग यह विशेष रूप से देखते थे कि ससार की अत्यन्त सामान्य घटनाएँ भी उनकी तीक्ष्ण दृष्टि को धोखा नहीं दे सकती थी। वे उन घटनाओं की सहायता से भी उच्च धर्मभाव का प्रचार करने की चेष्टा करते थे।

श्री रामकृष्ण देव के भतीजे श्रीयुत रामलाल चट्टोपाध्याय (मठ के पुराने साधुगण, जिन्हें रामलाल दादा कहकर पुकारते हैं) दक्षिणेश्वर से एक दिन स्वामी जी से मिलने आये। स्वामी जी ने एक कुर्सी मँगवाकर उनसे बैठने के लिए अनुरोध किया और स्वयं टहलने लगे। श्रद्धाविनम्र दादा इससे कुछ सकुचित होकर कहने लगे, "आप बैठें, आप बैठें।" पर स्वामी जी उन्हें किसी तरह छोड़नेवाले नहीं थे। बहुत कह-सुनकर दादा को कुर्सी पर बिठाया और स्वयं टहलते टहलते कहने लगे, "गुरुवत् गुरुपुत्रेषु।" (गुरु के पुत्र एवं सम्बन्धियों के साथ गुरु जैसा ही व्यवहार करना चाहिए।) मैंने देखा, इतना ऐश्वर्य, इतना मान पाकर भी हमारे स्वामी जी को थोड़ा सा भी अभिमान नहीं हुआ है। यह भी समझा, गुरुभक्ति इसी तरह की जाती है।

बहुत से छात्र आये हुए हैं। स्वामी जी एक कुर्सी पर बैठे हुए हैं। सभी उनके पास बैठकर उनकी दो-चार बातें सुनने के लिए उत्सुक हैं। वहाँ पर और

स्वामी जी के कथन का सम्पूर्ण मर्म न समझ सकने के कारण वे जब विधाम-  
 वर में प्रवेश कर रहे थे तब आगे बढ़कर उनके पास आकर खड़ी बात बोले  
 "सुन्दर लड़कों की आप क्या बात कर रहे थे?"

स्वामी जी ने कहा "जितनी मुझाकृति सुन्दर ही ऐसे लड़के मैं नहीं चाहता—  
 मैं तो चाहता हूँ जब स्वस्थ शरीर, कर्मठ एवं सत्प्रकृतिपुक्त कुछ लड़के। उन्हें  
 train करना (विद्या देना) चाहता हूँ जिससे वे अपनी मुक्ति के लिए और  
 जन्म के कल्याण के लिए प्रस्तुत हो सकें।

और एक दिन आकर देखा स्वामी जी टहक रहे हैं भीयूत सरस्वती चक्रवर्ती  
 ('स्वामी-शिष्य-संवाद' नामक पुस्तक के रचयिता) स्वामी जी के साथ जब  
 बलिष्ठ भाव से बातें कर रहे हैं। स्वामी जी से एक प्रश्न पूछने की हमें अत्यधिक  
 उत्कण्ठ हुई। प्रश्न यह था—अवतार और मुक्त या सिद्ध पुरुष में क्या अन्तर  
 है? हमने धारु बाबू से स्वामी जी के सम्मुख इस प्रश्न को उठाते के लिए विशेष  
 अनुरोध किया। अब उन्होंने स्वामी जी से यह प्रश्न पूछा। हम सोच धारु  
 बाबू के पीछे पीछे यह सुनने के लिए यथे कि देखें स्वामी जी इस प्रश्न का क्या  
 उत्तर देते हैं। स्वामी जी उस प्रश्न के सम्बन्ध में बिना कोई प्रकट उत्तर बिना  
 कहने कमे 'निदेह-मुक्त ही सर्वोच्च अवस्था है—यही मेरा सिद्धान्त है। जब  
 मैं साधनावस्था में मारु के अनेक स्वामी में भ्रमण कर रहा था उस समय  
 कितनी निर्जन गुफाओं में अकेले बैठकर कितना समय बिताया है मुक्ति प्राप्त  
 नहीं हुई, यह सोचकर कितनी बार प्राणीपनेधन हाथ देह त्याग देने का भी संकल्प  
 किया है कितना ध्यान कितना साधन-मजम किया है! किन्तु अब मुक्ति-  
 क्षम के लिए वह 'विजातीय' आप्रहू नहीं रहा। इस समय तो मन में केवल यही  
 होता है कि जब तक पृथ्वी पर एक भी मनुष्य अमुक्त है तब तक मुझे अपनी  
 मुक्ति की कोई आवश्यकता नहीं।

मैं तो स्वामी जी की उक्त बाणी सुनकर उनके हृदय की अपार कल्या की  
 बात सोचकर चिस्मिन्न हो गया और सोचने लगा इन्होंने क्या अपना दृष्टान्त देकर  
 अवतार पुरुषों का लक्षण समझाया है? क्या ये भी एक अवतार हैं? सोचा  
 स्वामी जी अब मुक्त ही गये हैं इसीलिए माकूम होता है, उन्हें अपनी मुक्ति के  
 लिए अब आप्रहू नहीं है।

और एक दिन सम्झ्या के बाद मैं और लनेन (स्वामी विश्वकालम्) स्वामी  
 जी के पास गये। हरमोहन बाबू (श्री रामहृष्य देव के भक्त) हम लोगों की  
 स्वामी जी के साथ विशेष रूप से परिचित कराने के लिए बोले "स्वामी जी  
 ये दोनों आपके नूब admirers (प्रसंगक) हैं और वेदान्त का अध्ययन भी

धर्म-साधन के लिए अत्यन्त प्रयोजनीय है, तथापि वे पूर्ण रूप से उसका अनुष्ठान नहीं कर पाते थे। वे सर्वदा लड़को को लेकर अध्यापन-कार्य में ही लगे रहते थे, इसलिए धर्म-साधन और सत्-शिक्षा के अभाव एवं कुसगति के कारण अत्यन्त अल्प अवस्था में ही उन लोगों का ब्रह्मचर्य किस तरह नष्ट हो जाता है, इसे वे अच्छी तरह जानते थे, और किस उपाय से उसे रोका जाय, इसकी शिक्षा उन बच्चों को देने के लिए वे सर्वदा प्रयत्नशील रहते थे। किन्तु स्वयमसिद्ध. कथ परान् साधयेत्—अर्थात् 'स्वयं असिद्ध होकर दूसरों को कैसे सिद्ध किया जा सकता है।' अतएव किसी भी तरह अपने या दूसरे के भीतर ब्रह्मचर्य-भाव को प्रविष्ट करने में असमर्थ हो समय समय पर वे अत्यन्त दुःखित हो जाते थे। इस समय परम ब्रह्मचारी स्वामी जी की ज्वलन्त उपदेशावली और ओजस्विनी वाणी सुनकर अकस्मात् उनके हृदय में यह भाव उदित हुआ कि ये महापुरुष एक बार इच्छा करने पर मेरे तथा बालकों के भीतर उस प्राचीन ब्रह्मचर्य भाव को निश्चित ही उद्दीप्त कर सकते हैं। पहले ही कहा जा चुका है कि ये एक भावुक व्यक्ति थे। वे एकाएक पूर्वोक्त रूप से उत्तेजित हो अंग्रेजी में चिल्लाकर बोल उठे, "Oh Great Teacher ! tear up the veil of hypocrisy and teach the world the one thing needful—how to conquer lust" अर्थात् "हे आचार्यवर, जिस कपटता के आवरण से अपने यथार्थ स्वभाव को छिपाकर हम लोग दूसरों के निकट अपने को शिष्ट, शान्त या सभ्य बतलाने की चेष्टा करते हैं, उसे आप अपनी दिव्य शक्ति के बल से छिन्न करके दूर कर दें एवं लोगों के भीतर जो घोर काम-प्रवृत्ति विद्यमान है, उसका जिससे समूल विनाश हो, वैसी शिक्षा दें।"

स्वामी जी ने चड़ी वावू को शान्त और आश्वस्त किया।

वाद में एडवर्ड कारपेन्टर का प्रसंग उपस्थित हुआ। स्वामी जी ने कहा, "लन्दन में ये बहुधा मेरे पास आते रहते थे। और भी बहुत से समाजवादी, प्रजातन्त्रवादी आदि आया करते थे। वे भव वेदान्तोक्त धर्म में अपने अपने मत की पोषकता पाकर उसके प्रति विशेष आकृष्ट होते थे।"

स्वामी जी उक्त कारपेन्टर साहब की 'एडम्स पीक टु एलिफेन्टा' नामक पुस्तक पढ़ चुके थे। इसी समय उक्त पुस्तक में दी हुई चड़ी वावू की तस्वीर उन्हें याद आयी, वे बोले, "आपका चेहरा तो पुस्तक में पहले ही देख चुका हूँ।" और भी कुछ देर बातचीत करने के बाद सन्ध्या हो जाने के कारण स्वामी जी विश्राम के लिए उठे। उठने के समय चड़ी वावू को मन्त्रोदित करके बोले, "चड़ी वावू, आप तो बहुत से लड़कों के ससर्ग में आते हैं। क्या आप मुझे कुछ नुन्दर नुन्दर लड़के दे सकते हैं?" शायद चड़ी वावू कुछ अन्यमनस्क थे।



कोई आसन नहीं है, जिस पर स्वामी जी सड़कों से बैठने को कह सकें इसलिए उन सोमों को भूमि पर बैठना पड़ा। ऐसा ज्ञात हुआ कि स्वामी जी मन में सोच रहे हैं यदि इनके बैठने के लिए कोई आसन होता तो अच्छा है। किन्तु ऐसा लगा कि दूसरे ही क्षण उनके हृदय में दूसरा भाव उत्पन्न हो गया। वे बोल उठे, "सो ठीक है, तुम सोच ठीक बैठे हो। बोड़ी-बोड़ी तपस्मा करना भी ठीक है।"

एक दिन अपने मुहूर्त्स के बंड़ीचरम बर्तन को साथ लेकर मैं स्वामी जी के पास गया। बंड़ी बाबू 'हिन्दू ध्यायेड' स्कूल' नामक एक संस्था के गणिक थे। वहाँ अंग्रेजी स्कूल की तृतीय श्रेणी तक पढ़ाया जाता था। वे पहले से ही ब्रह्म ईश्वरानुरागी थे। बाद में स्वामी जी की बक्तृता श्रावि पढ़कर उनके प्रति अत्यन्त भद्राक्ष हो गये। पहले कभी कभी बर्न-सामना के लिए ब्याकुल ही संसार परिचय करते ही भी उन्होंने चेष्टा की थी किन्तु उसमें सफल नहीं हो सके। कुछ दिन सौकर के लिए विद्येटर में अभिनय श्रावि एवं एकाध नाटक की रचना भी की थी। ये भावुक व्यक्ति थे। विख्यात प्रजातन्त्रवादी एडवर्ड कारपेटर जब भारत भ्रमण कर रहे थे उस समय उनके साथ बंड़ी बाबू का परिचय और बातचीत हुई थी। उन्होंने 'एडम्स पीक टू एक्लिफ्टेडा' नामक अपने ग्रन्थ में बंड़ी बाबू के साथ हुए वार्तालाप का संक्षिप्त विवरण और उनका एक चित्र भी दिया था।

बंड़ी बाबू आकर मन्त्रि-भाव से स्वामी जी को प्रणाम कर पूछने लगे "स्वामी जी किस प्रकार के व्यक्ति को पुत्र बनाता चाहिए ?

स्वामी जी— "जो तुम्हें तुम्हारा भूत-भविष्य बतला सके, वही तुम्हारा पुत्र है। किसी न मेरे पुत्र ने मेरा भूत-भविष्य सब बतला दिया था।

बंड़ी बाबू ने पूछा "अच्छा स्वामी जी कौपीन पहनने से क्या काम-बनान में कुछ विशेष सहायता मिलती है।

स्वामी जी— "बोड़ी-बहुत सहायता मिल सकती है। किन्तु इस वृत्ति के प्रबल ही उठने पर कौपीन भी सखा क्या करेगा ? जब तक मन मगवान् मे लग्न्य नहीं हो जाता तब तक किसी भी बाह्य उपाय से काम पूर्णतया रोक नहीं जा सकता। फिर भी बात क्या है जानते हो जब तक समुष्य उस अवस्था को पूर्णतया काम नहीं कर देता तब तक अनेक प्रकार के बाह्य उपायों के अवलम्बन की चेष्टा स्वभावतः ही क्रिया करता है।

ब्रह्मचर्य के सम्बन्ध में बंड़ी बाबू स्वामी जी से बहुत से प्रश्न पूछने लगे। स्वामी जी भी बड़े सरल ढंग से सनी प्रश्नों का उत्तर देने लगे। बंड़ी बाबू बर्न-सामना के लिए आन्तरिक भाव से प्रयत्न करते थे किन्तु पुरुस्व होने के कारण ब्रह्मचर्यानुसार नहीं कर पाते थे। यद्यपि उनकी यह बृह चारणा थी कि ब्रह्मचर्य

खूब करते हैं।” हरमोहन बाबू के वाक्य का प्रथम अंश सम्पूर्ण सत्य होने पर भी, द्वितीयांश कुछ अतिरजित था, क्योंकि हम लोगो ने उस समय केवल गीता का ही अध्ययन किया था। हम लोगों ने वेदान्त के छोटे छोटे कुछ ग्रन्थ और दो-एक उपनिषदो का अनुवाद एकाध बार देखा था, परन्तु इन सब शास्त्रो की हम लोगो ने विद्यार्थी के समान उत्तम रूप से आलोचना नहीं की थी और न मूल सस्कृत ग्रन्थो को भाष्य आदि की सहायता से पढा था। जो हो, स्वामी जी वेदान्त की बात सुनकर बोल उठे, “उपनिषद् कुछ पढा है?”

मैंने कहा, “जी हाँ, थोडा-बहुत देखा है।”

स्वामी जी ने पूछा, “कौन सा उपनिषद् पढा है?”

मैंने मन के भीतर टटोलकर और कुछ न पाकर कह डाला, “कठोपनिषद् पढा है।”

स्वामी जी ने कहा, “अच्छा, कठ ही सुनाओ, कठोपनिषद् खूब grand (सुन्दर) है—कवित्व से भरा है।”

क्या मुसीबत! स्वामी जी ने शायद समझा कि मुझे कठोपनिषद् कण्ठस्थ है, इसीलिए मुझसे सुनाने के लिए कहा। मैंने उसके सस्कृत मंत्रो को यद्यपि एकाध बार देखा था, किन्तु कभी भी अर्थानुसन्धानपूर्वक पढने और मुखारग करने की चेष्टा नहीं की थी। सो बड़ी मुश्किल मे पड गया। क्या करूँ? इसी समय एक बात स्मरण आयी। इसके कुछ वर्ष पहले से ही प्रत्यह नियमपूर्वक थोडा थोडा गीता का पाठ किया करता था। इस कारण गीता के अधिकांश श्लोक मुझे कण्ठस्थ थे। सोचा, जैसे भी हो, कुछ शास्त्रीय श्लोको की आवृत्ति यदि न करूँ, तो फिर स्वामी जी को मुँह दिखाते न बनेगा। अतएव बोल उठा, “कठ तो कण्ठस्थ नहीं है—गीता से कुछ सुनाता हूँ।”

स्वामी जी बोले, “अच्छा, वही सही।”

तब गीता के ग्यारहवें अध्याय के अन्तिम भाग से स्याने हृषीकेश! तव प्रकीर्त्या से आरम्भ करके अर्जुनकृत सपूर्ण स्तव स्वामी जी को सुना दिया। स्वामी जी उत्साह देते हुए “बहुत अच्छा, बहुत अच्छा” कहने लगे।

इसके दूसरे दिन मैं अपने मित्र राजेन्द्र घोष के पास गया। उससे मैंने कहा, “भाई, कल उपनिषद् के कारण स्वामी जी के सम्मुख बडा लज्जित हुआ। तुम्हारे पान यदि कोई उपनिषद् हो, तो जेब मे लेते चलो। यदि कल की तरह उपनिषद् की बात निकालेंगे, तो पढने से ही हो जायगा।” राजेन्द्र के पास प्रमन्नकुमार शान्तीरुन ईश-त्रेन-कठ आदि उपनिषद् और उनके वगानुवाद का एक गुटका मत्करण था। उन्हे जेब मे रखकर हम लोग स्वामी जी के दर्शनार्थ चले। आज

स्वामी जी के कपन का सम्पूर्ण मर्म न समझ सकने के कारण वे जब विमान पर में प्रवेश कर रहे थे तब जाने बड़कर उनके पास जाकर बाई बाब बोले "सुन्दर लड़कों की आप क्या बात कर रहे थे ?

स्वामी जी ने कहा बिनकी मुखाकृति सुन्दर हो ऐसे लड़के मैं नहीं चाहता— मैं तो चाहता हूँ खूब स्वस्थ धीर, कर्मठ एवं सत्प्रकृतिपुस्त कुछ लड़के। उन्हें train करना (शिक्षा देना) चाहता हूँ जिससे वे अपनी मुक्ति के लिए और बगत् के कल्याण के लिए प्रस्तुत हो सकें।

और एक दिन जाकर देखा स्वामी जी टहल रहे हैं श्रीपुत्र चरणन्द चक्रवर्ती ('स्वामी-विश्व-संसार' नामक पुस्तक के रचयिता) स्वामी जी के साथ खूब बलिष्ठ भाव से बातें कर रहे हैं। स्वामी जी से एक प्रश्न पूछने की हमें अवधि उत्कण्ठा हुई। प्रश्न यह था—बखतार और मुक्त या सिद्ध पुस्त में क्या अन्तर है ? हमने सख्त बाबू से स्वामी जी के सम्मुख इस प्रश्न को उठाने के लिए विरोध अनुरोध किया। अतः उन्होंने स्वामी जी से यह प्रश्न पूछा। हम लोग सख्त बाबू के पीछे पीछे यह मुनने के लिए मये कि देखें स्वामी जी इस प्रश्न का क्या उत्तर देते हैं। स्वामी जी उस प्रश्न के सम्बन्ध में बिना कोई प्रकट उत्तर दिये कहने लगे "बिबेह-मुक्त ही सर्वोच्च अवस्था है—यही मेरा सिद्धान्त है। जब मैं सामन्तवस्था में भारत के अनेक स्वामीों में भ्रमण कर रहा था उस समय कितनी निर्बल मुफ्तारों में अकेले बैठकर कितना समय बिताया है, मुक्ति प्राप्त नहीं हुई, यह सोचकर कितनी बार प्रायोपवेशन द्वारा देह त्याग देने का भी संकल्प किया है कितना ध्यान कितना साधन-भजन किया है। किन्तु अब मुक्ति काम के लिए वह 'विजातीय' बाध नहीं रहा। इस समय तो मन में कबल यही होता है कि अब तक पृथ्वी पर एक भी मनुष्य अमुक्त है तब तक मुझे अपनी मुक्ति की कोई आवश्यकता नहीं।

मैं तो स्वामी जी की उक्त बाबी सुनकर उनके हृदय की अपार कल्या की बात सोचकर विस्मित हो गया और सोचने लगा इन्होंने क्या अपना कृप्यान्त देकर बखतार पुस्तों का लक्षण समझाया है ? क्या वे भी एक बखतार है ? सोचा स्वामी जी अब मुक्त हो मये हैं इसीलिए गान्धू होता है उन्हें अपनी मुक्ति के लिए अब जाग्रह नहीं है।

और एक दिन सध्या के बाद मैं और बगेन (स्वामी विमलानन्द) स्वामी जी के पास मये। हरमोहन बाबू (श्री रामकृष्ण देव के भक्त) हम लोगों को स्वामी जी के साथ विशेष रूप से परिचित कराने के लिए बोले 'स्वामी जी, वे दोनों आपके खूब admirers (प्रशंसक) हैं और वेदान्त का अध्ययन भी

खूब करते हैं।" हरमोहन दाबू के वाक्य का प्रथम अंश सम्पूर्ण मृत्यु होने पर भी, द्वितीयांश कुछ अतिरजित था, क्योंकि हम लोगों ने उस समय केवल गीता का ही अध्ययन किया था। हम लोगों ने वेदान्त के छोटे छोटे कुछ ग्रन्थ और दो-एक उपनिषदों का अनुवाद एकाध बार देखा था, परन्तु इन सब शास्त्रों की हम लोगों ने विद्यार्थी के समान उत्तम रूप से आलोचना नहीं की थी और न मूल मसूदा ग्रन्थों को भाष्य आदि की म्हायता ने पढा था। जो हो, स्वामी जी वेदान्त की बात सुनकर बोल उठे, "उपनिषद् कुछ पढा है?"

मैंने कहा, "जी हाँ, थोड़ा-बहुत देखा है।"

स्वामी जी ने पूछा, "कौन सा उपनिषद् पढा है?"

मैंने मन के भीतर टटोलकर और कुछ न पाकर कह डाला, "कठोपनिषद् पढा है।"

स्वामी जी ने कहा, "अच्छा, कठ ही सुनाओ, कठोपनिषद् खूब grand (सुन्दर) है—कवित्व से भरा है।"

क्या मुसीबत! स्वामी जी ने शायद समझा कि मुझे कठोपनिषद् कण्ठस्थ है, इसीलिए मुझसे सुनाने के लिए कहा। मैंने उसके संस्कृत मंत्रों को यद्यपि एकाध बार देखा था, किन्तु कभी भी अर्थानुमन्यानपूर्वक पढ़ने और मुखारप्र करने की चेष्टा नहीं की थी। सो बड़ी मुश्किल में पड़ गया। क्या करूँ? इसी समय एक बात स्मरण आयी। इसके कुछ वर्ष पहले से ही प्रत्यह नियमपूर्वक थोड़ा थोड़ा गीता का पाठ किया करता था। इस कारण गीता के अधिकांश श्लोक मुझे कण्ठस्थ थे। सोचा, जैसे भी हो, कुछ शास्त्रीय श्लोकों की आवृत्ति यदि न करूँ, तो फिर स्वामी जी को मुँह दिखाते न बनेगा। अतएव बोल उठा, "कठ तो कण्ठस्थ नहीं है—गीता से कुछ सुनाता हूँ।"

स्वामी जी बोले, "अच्छा, वही सही।"

तब गीता के ग्यारहवें अध्याय के अन्तिम भाग से स्थाने हृषीकेश! तव प्रकीर्त्या से आरम्भ करके अर्जुनकृत सपूर्ण स्तव स्वामी जी को सुना दिया। स्वामी जी उत्साह देते हुए "बहुत अच्छा, बहुत अच्छा" कहने लगे।

इसके दूसरे दिन मैं अपने मित्र राजेन्द्र घोष के पास गया। उससे मैंने कहा, "भाई, कल उपनिषद् के कारण स्वामी जी के सम्मुख बड़ा लज्जित हुआ। तुम्हारे पास यदि कोई उपनिषद् हो, तो जेब में लेते चलो। यदि कल की तरह उपनिषद् की बात निकालेंगे, तो पढ़ने से ही हो जायगा।" राजेन्द्र के पास प्रसन्नकुमार शास्त्रीकृत ईश-केन-कठ आदि उपनिषद् और उनके वगानुवाद का एक गुटका संस्करण था। उसे जेब में रखकर हम लोग स्वामी जी के दर्शनार्थ चले। आज

अपराह्न में स्वामी जी का कमरा भोगों से भरा हुआ था। जो चीजा का बड़ी हुआ। मात्र भी यह तो ठीक स्मरण नहीं कि कैसे पर कठोपनिषद् का ही प्रसंग उठा। मैंने झट बेच से उपनिषद् निकाला और उसे शुरू से पढ़ना आरम्भ किया। पाठ के बीच में स्वामी जी नचिकेता की भट्टा की कथा—जिस यज्ञ के बल से वे निर्भीक चित्त से यम-सबन जाने के लिए भी साहसी हुए थे—कहने लगे। जब नचिकेता के द्वितीय वर स्वर्ग प्राप्ति की कथा का पाठ आरम्भ हुआ तब स्वामी जी ने उस स्थल को अधिक न पढ़कर कुछ कुछ छोड़कर तृतीय वर का प्रसंग पढ़ने के लिए कहा।

नचिकेता के प्रश्न—मृत्यु के बाद भोगों का सम्बन्ध—सरीर छूट जाने पर कुछ रहता है या नहीं—उसके बाद यम का नचिकेता को प्रलोभन विज्ञाना और नचिकेता का बुद्ध भाव से उम समी का प्रत्याख्यान—इन सब स्थलों का पाठ हो जाने के बाद स्वामी जी ने अपनी स्वभाव-सुखम भोजस्विनी भाषा में क्या क्या कहा—श्रीग स्मृति सोकह क्यों मे उसका कुछ भी चिह्न न रख सकी।

किन्तु इन दो दिनों के उपनिषद्-प्रसंग में स्वामी जी की उपनिषद् के प्रति भ्रष्टा और अनुराग का कुछ अंश मेरे अन्तःकरण में भी संचरित हो गया क्योंकि उसके वृत्तों ही दिग्ग से जब कभी गुणयोग पाठा परम भ्रष्टा के साथ उपनिषद् पढ़ने की चेष्टा करता था। और यह कार्य आज भी कर रहा हूँ। विभिन्न समय में उनके श्रीमुख से उच्चरित अपूर्व स्वर, लय और तेजस्विता के साथ पठित उपनिषद् के एक एक मन्त्र मानो आज भी मेरे कानों में गूँब रहे हैं। जब परचर्चा में मन्त्र ही आत्म-वर्षा भूक जाता हूँ तो सुन पाता हूँ—उसके उस सुपरिचित किरकण से उच्चरित उपनिषद्-वाणी की दिव्य गंभीर बोधना—

तमेईदं ज्ञानं आत्मानस्य बाधो विमुञ्चयामुत्स्यैव सेतुः—‘एकमात्र उस आत्मा को ही पहचानो अन्य सब बाधें छोड़ दीं—वही अमृत का सेतु है।

जब आकाश में जोर बटाएँ छा जाती है और शमिनी बमकने लगती है उस समय मानो सुन पाता हूँ—स्वामी जी उस आकाशस्व शीशमिनी की जोर इंगित करते हुए कह रहे हैं—

न तत्र सुप्तो भास्ति न चन्द्रतारकम् ।  
 मेमा विद्युतो भास्ति कुतोऽप्यनलिः ।  
 तमेव भास्तिमनुभास्ति सर्वं ।  
 तस्य भासा सर्वमिदं विभास्ति ॥’

—'वहाँ सूर्य भी प्रकाशित नहीं होता—चन्द्रमा और तारे भी नहीं, ये सब विद्युत् भी वहाँ प्रकाशित नहीं होती—फिर इस सामान्य अग्नि की भला वात ही क्या ? उनके प्रकाशित होने से फिर सभी प्रकाशित होते हैं, उनका प्रकाश इन सबको प्रकाशित करता है।'

पुन , जब तत्त्वज्ञान को असाध्य जान हृदय हताश हो जाता है, तब जैसे सुन पाता हूँ—स्वामी जी आनन्दोत्फुल्ल हो उपनिषद् की आश्वासन देनेवाली इस वाणी की आवृत्ति कर रहे हैं—

शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा  
 आ ये धामानि दिव्यानि तस्यु ॥  
 वेदाहमेत पुरुष महान्तम्  
 आदित्यवर्णं तमस' परस्तात् ॥  
 तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेति  
 नान्य पन्था विद्यतेऽयनाय ॥'

—'हे अमृत के पुत्रो, हे दिव्यधामनिवासियो, तुम लोग सुनो। मैंने उस महान् पुरुष को जान लिया है, जो आदित्य के समान ज्योतिर्मय और अज्ञानान्वकार से अतीत है। उसको जानने से ही लोग मृत्यु का अतिक्रमण करते हैं—मुक्ति का और दूसरा कोई मार्ग नहीं।'

अस्तु, और एक दिन की घटना का विषय यहाँ पर सक्षेप में कहूँगा। इस दिन की घटना का शरत् वाबू ने 'विवेकानन्द जी के सग मे' नामक अपने ग्रन्थ में विस्तृत रूप से वर्णन किया है।

मैं उस दिन दोपहर में ही जा उपस्थित हुआ था। देखा, कमरे में बहुत से गुजराती पण्डित बैठे हैं, स्वामी जी उनके पास बैठकर धाराप्रवाह रूप से संस्कृत भाषा में धर्मविषयक विचार कर रहे हैं। भक्ति-ज्ञान आदि अनेक विषयों की चर्चा हो रही थी। इसी बीच हल्ला हो उठा। ध्यान देने पर समझा कि स्वामी जी संस्कृत भाषा में बोलते बोलते कोई एक व्याकरण की भूल कर गये। इस पर पण्डित-गण ज्ञान-भक्ति-विवेक-वैराग्य आदि विषय की चर्चा छोड़कर इस व्याकरण की त्रुटि को लेकर, 'हमने स्वामी जी को हरा दिया' यह कहते हुए खूब शोर-गुल मचा रहे हैं और प्रसन्न हो रहे हैं। उस समय श्री रामकृष्ण देव की वह वात याद आ गयी—'गिद्ध उड़ता तो खूब ऊपर है, किन्तु उसकी दृष्टि रहती है मरे पशुओं पर।'

जो हों स्वामी जी किञ्चित् भी विचलित नहीं हुए और कहा पच्छिमतानी बालीयर्ह  
 शान्ताभ्यमेतत्सत्कृतम्। बोधी देर के बाद स्वामी जी उठ गये और पच्छिमतगंग बंग  
 जी में हाथ-मुँह धोने के लिए गये। मैं भी बपीचे में धूमते धूमते बंग जी के छट पर  
 गया। वहाँ पच्छिमतगंग स्वामी जी के सम्मुख में आकोचना कर रहे थे। मुना बे  
 कह रहे थे—“स्वामी जी उस प्रकार के पच्छिमत नहीं हैं परन्तु उनकी आँखों में एक  
 मोहिनी छिपि है। उसी शक्ति के बल से उन्होंने अनेक स्थानों में विचित्रता की है।

सोचा पच्छिमतों न तो ठीक ही समझा है। आँखों में यदि मोहिनी छिपि नही होती  
 तो क्या यहाँ ही इतने विद्वान् बनी मानी प्राण्य-यादचार्य वेद के विभिन्न मूर्ति के  
 स्त्री-पुरुष इनके पीछे पीछे हाथ के समान दौड़ते। यह तो विद्या के कारण नहीं  
 इन के कारण नहीं एतन्त्र्य के भी कारण नहीं—यह सब उगड़ी आँखों की उस  
 मोहिनी शक्ति के ही कारण है।

पाठकगण! आँखों में यह मोहिनी शक्ति स्वामी जी को वहाँ से किसी  
 इस जानने का यदि कौतूहल ही तो अपने भी मुख के साथ उनके दिव्य सम्मुख  
 एवं उनके अगूर्ध सामन-नृतान्त पर मखा के साथ एक बार मनन करो—इगटा  
 रहस्य साठ ही जायगा।

सन् १८९७ अर्द्ध मास का अन्तिम भाग। आत्मबिचार मठ। अभी चार  
 पाँच दिन ही हुए हैं पर छंडहर मठ में रह रहा हूँ। पुण्य संस्थापियों में केवल  
 स्वामी प्रेमानन्द स्वामी निर्मलानन्द और स्वामी सुदीपानन्द हैं। स्वामी जी  
 शक्तिगण से आये—जाय में स्वामी ब्रह्मानन्द स्वामी योगानन्द स्वामी जी  
 के अग्रणी गिण्य आत्मविद्या वेदमल त्रिदी और जी जी आरि हैं।

स्वामी निरपानन्द कुछ दिन हुए स्वामी जी द्वारा मण्डपगठ में ही जित हुए  
 हैं। इन्होंने स्वामी जी से कहा “इस समय बहुत से नये नये लड़क संगार छंडहर  
 मण्डपों हुए हैं उनके लिए एक निर्दिष्ट नियम से विद्या-दान की व्यवस्था करना  
 अनुमत होगा।

स्वामी जी उनका अनिवाय का अनुमोदन करते हुए बोल ही ही नियम  
 बनाना तो अच्छा ही है। बुनाजी मणी की। यह आकर बड़े समय में जका  
 हुए। यह स्वामी जी ने कहा “कोई एक शक्ति विद्या शुरू करो मैं सोचता  
 जाता हूँ। उस समय यह एक दुगर की टिककर आने करने लगे—कोई अपमर  
 की होना चाहता था अन्य में मुग इदेकर आने कर दिया। उस समय मठ में  
 निगाई-गुई के प्रति मापारण्यता एक प्रकार की उमेता थी। यही कारण  
 बनने की कि मन्त्र मन्त्र करने आवाज का मापारण्यता बनता ही एकदम मार  
 है निगाई-गुई के प्रति मन्त्र और मन्त्र की इच्छा होती है। जो आवाज के द्वारा

आदिष्ट होकर प्रचार-कार्य आदि करेंगे, उनके लिए भले वह आवश्यक हो, पर साधको के लिए तो उसका कोई प्रयोजन नहीं है, उलटे वह हानिकारक ही है। जो हो, मैं पहले ही कह चुका हूँ कि स्वभाव से मैं ज़रा forward (अग्रिम) और लापरवाह हूँ—मैं अग्रसर हो गया। स्वामी जी ने एक बार आकाश की ओर देखकर पूछा, “यह क्या रहेगा ?” (अर्थात् क्या मैं ब्रह्मचारी होकर वहाँ रहूँगा, अथवा दो-एक दिन मठ में घूमने के लिए ही आया हूँ और बाद में चला जाऊँगा।) सन्यासियों में से एक ने कहा, “हाँ।” तब मैंने कागज़-कलम आदि ठीक से लेकर गणेश का आसन ग्रहण किया। नियम लिखाने से पहले स्वामी जी कहने लगे, “देखो, हम ये सब नियम बना तो रहे हैं, किन्तु पहले हमें समझ लेना होगा कि इन नियमों के पालन का मूल लक्ष्य क्या है। हम लोगो का मूल उद्देश्य है—सभी नियमों से परे होना। तो भी, नियम बनाने का अर्थ यही है कि हममें स्वभावतः बहुत से कुनियम हैं—सुनियमों के द्वारा उन कुनियमों को दूर कर देने के बाद हमें सभी नियमों से परे जाने की चेष्टा करनी होगी। जैसे काँटे से काँटा निकालकर अन्त में दोनों ही काँटों को फेंक दिया जाता है।”

उसके बाद स्वामी जी ने नियम लिखाने प्रारम्भ किये। प्रातःकाल और सायंकाल जप-ध्यान, मध्याह्न विश्राम के बाद स्वस्थ होकर शास्त्र-ग्रन्थों का अध्ययन और अपराह्न सबको मिलकर एक अध्यापक के निकट किसी निर्दिष्ट शास्त्र-ग्रन्थ का श्रवण करना होगा—यह व्यवस्था हुई। प्रत्येक दिन प्रातः और सायं थोड़ा थोड़ा ‘डेल्सर्ट’ व्यायाम करना होगा, यह भी निश्चित हुआ। अन्त में लिखाना समाप्त कर स्वामी जी ने कहा, “देख, इन नियमों को ज़रा देख-भालकर अच्छी तरह प्रतिलिपि करके रख ले—देखना, यदि कोई नियम negative (निषेध-वाचक) भाव से लिखा गया हो, तो उसे positive (विधिवाचक) कर देना।”

इस अन्तिम आदेश का पालन करते समय हमें ज़रा कठिनाई मालूम हुई। स्वामी जी का उपदेश था कि किसीको खराब कहना, उसके विरुद्ध आलोचना करना, उसके दोष दिखाना, उससे ‘तुम ऐसा मत करो, वैसा मत करो’ कहकर negative (निषेधात्मक) उपदेश देना—इस सबसे उसकी उन्नति में विशेष सहायता नहीं होती, किन्तु उसको यदि एक आदर्श दिखा दिया जाय, तो फिर उसकी उन्नति सरलता से हो सकती है, उसके दोष अपने आप चले जाते हैं। यही स्वामी जी का अभिप्राय था।



वपुर्न घोमा चारन कर बैठे हुए हैं। अनेक प्रसंग चल रहे हैं। वहाँ हम सौगों के मित्र विजयकृष्ण बसु (भाजकक मलीपुर जवालय के विख्यात बकीक) महाशय भी उपस्थित हैं। उस समय विजय बाबू समय समय पर अनेक प्रमाणा में भीर कमी कमी काप्रिय में खड़े होकर अंग्रेजी में व्याख्यान दिया करते थे। उनही इस व्याख्यान-शक्ति का उल्लेख किसीने स्वामी जी के समक्ष किया। इस पर स्वामी जी ने कहा 'सो बहुत अच्छा है। अच्छा यहाँ पर बहुत से लोग एकत्र हैं—उठ खड़े होकर एक व्याख्यान तो सो soul (आत्मा) के सम्बन्ध में तुम्हारी जो idea (धारणा) है उसी पर कुछ कहो।' विजय बाबू अनेक प्रकार के बहाने बताने लगे। स्वामी जी एवं भीर भी बहुत से लोग उनके खूब आग्रह करते लगे। १५ मिनट तक अनुरोध करने पर भी जब कोई उनके संकोच को दूर करने में सफल नहीं हुआ तब अन्तरीयत्वा हार मानकर उन सौगों की वृष्टि विजय बाबू से हटकर मेरे ऊपर पड़ी। मैं मठ में सहयोग देने से पूर्व कमी कमी बर्म के सम्बन्ध में बंगला भाषा में व्याख्यान देता था और हम लोगों का एक 'डिबेटिंग क्लब' (बाद-विचार समिति) भी था—उसमें अंग्रेजी बोलने का अभ्यास करता था। मेरे सम्बन्ध में इन सब बातों का किसीने उल्लेख किया ही था कि बस मेरे ऊपर बाबी पड़ती। पहले ही कह चुका हूँ मैं बहुत कुछ चापरबाहू सा था। *Fools rush in where angels fear to tread.* (वहाँ वेबता भी जाने में मयमीठ होते हैं वहाँ मूर्ख चुप पड़ते हैं।) मुझसे उन्हें अधिक कहना नहीं पड़ा। मैं एकदम लड़ा हो गया और बृहदारण्यक उपनिषद् के याज्ञवल्क्य-मैत्रेयी संवाह के अन्तर्गत आत्म तत्व को लेकर आत्मा के सम्बन्ध में लगभग बाह बटे तक जो मुँह में बाया बौकटा गया। भाषा या व्याकरण की मूख हो रही है अथवा भाव का अज्ञानमय ही रहा है इस सबका मैंने विचार ही नहीं किया। क्या के सावर स्वामी जी मेरी इस अपकृता पर पीड़ा भी निरस्त न हो मुझे उत्साहित करने लगे। मेरे बाध स्वामी जी द्वारा अभी संव्यासाधन में दीक्षित स्वामी प्रकाशानन्द<sup>१</sup> कमभय इस मिनट तक आत्मतत्व के सम्बन्ध में बोले। वे स्वामी जी की व्याख्यान-शैली का अनुकरण कर बड़े गम्भीर स्वर में अपना बक्तव्य देने लगे। उनके व्याख्यान की भी स्वामी जी ने खूब प्रशंसा की।

१ ये तीन द्वांसित्की (सु एत ए ) की वेदान्त-समिति के अध्यक्ष थे। अमेरिका में इनका कार्य-काल १९६ ई से १९२७ ई तक था। ८ जुलाई, सन् १८७४ की बलकले में इनका जन्म हुआ था एवं १३ फ़रवरी, १९२७ ई की तीन द्वांसित्की की वेदान्त-समिति में इनका देहान्त हुआ। स

अहा ! स्वामी जी सचमुच ही किसीका दोष नहीं देखते थे। वे, जिसमें जो भी कुछ गुण या शक्ति देखते, उसीके अनुसार उसे उत्साह देकर, जिससे उसके भीतर की अव्यक्त शक्तियाँ प्रकाशित हो जायँ, इसीकी चेष्टा करते थे। किन्तु, पाठक, आप लोग इससे ऐसा न समझ बैठें कि वे सबको सभी कार्यों में प्रश्रय देते थे। क्योंकि अनेक बार देख चुका हूँ, लोगों के, विशेषतः अपने अनुगामी गुरु-भ्राता और शिष्यों के, दोष दिखलाने में समय समय पर वे कठोर रूप भी धारण करते थे। किन्तु वह हम लोगों के दोषों को हटाने के लिए—हम लोगों को सावधान करने के लिए ही होता था, हमें निरुत्साह करने या हम लोगों के समान केवल परिछिद्रान्वेषण वृत्ति को सार्थक करने के लिए नहीं। ऐसा उत्साह और भरोसा देनेवाला हम अब और कहाँ पायेंगे ? कहाँ पायेंगे ऐसा व्यक्ति, जो शिष्यवर्ग को लिख सके, “I want each one of my children to be a hundred times greater than I could ever be Everyone of you must be a giant—must, that is my word ”—‘मैं चाहता हूँ कि तुम लोगों में से प्रत्येक, मैं जितना हो सकूँ, तदपेक्षा सौगुना बड़ा होवे। तुम लोगों में से प्रत्येक को आध्यात्मिक दिग्गज होना पड़ेगा—होना ही होगा, न होने से नहीं बनेगा।’

## ५

इसी समय स्वामी जी द्वारा इंग्लैण्ड में दिये गये ज्ञानयोग सम्बन्धी व्याख्यानो को लन्दन से ई० टी० स्टर्डी साहब छोटी छोटी पुस्तिकाओं के आकार में प्रकाशित करने लगे। मठ में भी उनकी एक एक दो दो प्रतियाँ आने लगी। स्वामी जी उस समय दार्जिलिंग से नहीं लौटे थे। हम लोग विशेष आग्रह के साथ अद्वैत तत्त्व के अपूर्व व्याख्यारूप, उद्दीपना से भरे उन व्याख्यानो को पढ़ने लगे। वृद्ध स्वामी अद्वैतानन्द अग्नेजी अच्छी तरह नहीं जानते थे, किन्तु उनकी यह विशेष इच्छा थी कि नरेन्द्र ने वेदान्त के सम्बन्ध में विलायत में क्या कहकर लोगों को मुग्ध किया है, यह सुनें। अतः उनके अनुरोध से हम लोग उन्हें उन पुस्तिकाओं को पढ़कर, उनका अनुवाद करके सुनाने लगे। एक दिन स्वामी प्रेमानन्द नये सन्यासियों और ब्रह्मचारियों से बोले, “तुम लोग स्वामी जी के इन व्याख्यानो का बगला अनुवाद करो न।” तब हममें से कई लोगो ने अपनी अपनी इच्छानुसार उन पुस्तिकाओं में से एक एक को चुन लिया और उनका अनुवाद करना आरम्भ कर दिया। इसी बीच स्वामी जी लौट आये। एक दिन स्वामी प्रेमानन्द जी स्वामी जी से बोले, “इन लडकों ने आपके व्याख्यानो का अनुवाद करना प्रारम्भ कर दिया है।” बाद में हम लोगो को लक्ष्य करके कहा, “तुम लोगो में से कौन क्या अनुवाद कर रहा है, यह स्वामी जी

को सुनाओ। तब हम सोचों में अपना अपना अनुवाद लाकर स्वामी जी को चौड़ा चौड़ा सुनावा। स्वामी जी ने भी अनुवाद के बारे में अपने कुछ विचार प्रकट किये और अमुक पक्ष का अमुक अनुवाद ठीक रहेगा इस प्रकार दो-एक बातें भी बतवाईं। एक दिन स्वामी जी के पास केबल में ही बैठा था उन्होंने अचानक मुझसे कहा "राजयोग का अनुवाद कर न। मेरे समान अनुपयुक्त व्यक्ति को स्वामी जी ने इस प्रकार आदेश किये किन्ना ? मैं उसके बहुत दिन पहले से ही राजयोग का अभ्यास करने की चेष्टा किया करता था। इस योग के ऊपर कुछ दिन मेरा इतना अनुग्रह हुआ था कि भक्ति ज्ञान और कर्मयोग को मानो एक प्रकार से अन्तर्गत से ही देखने लगा था। सोचता था मठ के छात्र जोम योग-याग कुछ भी नहीं जानते इसीलिए वे योग-साधना में उत्साह नहीं देते। पर जब मैंने स्वामी जी का 'राजयोग' ग्रन्थ पढ़ा तो भासूम हुआ कि स्वामी जी केवल राजयोग में ही पटू नहीं बल्कि भक्ति ज्ञान प्रभृति अल्पान्य योगों के साथ उसका सम्बन्ध भी उन्होंने अत्यन्त सुन्दर ढंग से दिखलाया है। राजयोग के सम्बन्ध में मेरी जो धारणा थी उसका उत्तम स्पष्टीकरण भी मुझे उनके उस 'राजयोग' ग्रन्थ में मिला। स्वामी जी के प्रति मेरी विशेष श्रद्धा का यह भी एक कारण हुआ। तो क्या इस उद्देश्य से कि राजयोग का अनुवाद करने से उस ग्रन्थ की चर्चा उत्तम रूप से होनी और उससे मेरी भी आध्यात्मिक उन्नति में सहायता पहुँचिगी उन्होंने मुझे इस कार्य में प्रवृत्त किया ? जबका बम देश में बर्चार्थ राजयोग की चर्चा का अभाव देखकर, सर्वसाधारण के भीतर इस योग के बर्चार्थ मर्म का प्रचार करने के लिए ही उन्होंने ऐसा किया ? उन्होंने स्व प्रमदाचार मित्र को एक पत्र में लिखा था 'बंशक में राजयोग की चर्चा का विलुप्त अभाव है। जो कुछ है वह भी नाक बजाना इत्यादि छोड़ और कुछ नहीं।

जो भी हो स्वामी जी की आज्ञा या अपनी अनुपयुक्तता आदि की बात मन में न सोचकर उसका अनुवाद करने में उसी समय रूप मया।

९

एक दिन अपराह्न काक में बहुत से जोप बैठे हुए थे। स्वामी जी के मन में जाया कि गीता-पाठ होना चाहिए। गीता जायी गयी। सभी उत्तचित्त होकर मुझे लगे कि देखो स्वामी जी गीता के सम्बन्ध में क्या कहते हैं। गीता के सम्बन्ध में उस दिन उन्होंने जो कुछ भी कहा था वह सब दो-चार दिन के बाद ही स्वामी प्रेमनाथ जी की आज्ञा से मैंने स्मरण करके यथासाम्य लिपिबद्ध कर लिया। वह पहले 'गीता-वच' के नाम से 'उद्बोधन' के द्वितीय वर्ष में प्रकाशित हुआ और

वाद मे 'भारत मे विवेकानन्द' पुस्तक मे अन्तर्भूत कर दिया गया। अतएव उन बातों की पुनरावृत्ति कर प्रस्तुत लेख का कलेवर बढ़ाने की इच्छा नहीं है, किन्तु उस दिन गीता की व्याख्या के सिलसिले मे स्वामी जी ने जो एक नयी ही भावधारा बहायी थी, उसीको यहाँ लिपिबद्ध करने की इच्छा है। हम लोग महापुरुषों की वचनावली को अनेक बार यथासम्भव लिपिबद्ध तो करते हैं, किन्तु जिन भावों से अनुप्राणित होकर वे वाक्य उनके श्रीमुख से निकलते हैं, वे प्रायः लिपिबद्ध नहीं रहते। फिर ऐसे महापुरुषों के साक्षात् सस्पर्श मे आये बिना हज़ार वर्णन करने पर भी लोग उनकी बातों के भीतर का गूढ मर्म नहीं समझ सकते। तो भी, जिन्हें उन लोगों के साथ साक्षात् सम्पर्क मे आने का सौभाग्य नहीं मिला है, उनके लिए उन महापुरुषों के सम्बन्ध मे लिपिबद्ध थोड़ी सी भी बातें बहुत आदर की वस्तु होती हैं, और उनकी आलोचना एव ध्यान से उनका कल्याण होता है। पाठक-वर्ग ! उन महापुरुष की जिस आकृति को मैं मानो आज भी अपनी आँखों के सामने देख रहा हूँ, वह मेरे इस क्षुद्र प्रयास से आपके मनश्चक्षु के सामने भी उद्भासित हो। उनकी कथा का स्मरण कर मेरे मनश्चक्षु के सामने आज उन्हीं महापण्डित, महातेजस्वी, महाप्रेमी की तस्वीर आ खड़ी हुई है। आप लोग भी एक बार देश-काल के व्यवधान का उल्लघन कर मेरे साथ हमारे स्वामी जी के दर्शन करने की चेष्टा करें।

हाँ, तो जब उन्होंने व्याख्या आरम्भ की, उस समय वे एक कठोर समालोचक मालूम पड़े। कृष्ण, अर्जुन, व्यास, कुरुक्षेत्र की लड़ाई आदि को ऐतिहासिकता के वारे मे सन्देह की कारण-परम्परा का विवरण जब वे सूक्ष्मातिसूक्ष्म भाव से करने लगे, तब बीच बीच मे ऐसा बोध होने लगा कि इस व्यक्ति के सामने तो कठोर समालोचक भी हार मान जाय। यद्यपि स्वामी जी ने ऐतिहासिक तत्त्व का इस प्रकार तीव्र विश्लेषण किया, किन्तु इस विषय मे वे अपना मत विशेष रूप से प्रकाशित किये बिना ही आगे समझाने लगे कि धर्म के साथ इस ऐतिहासिक गवेषणा का कोई सम्पर्क नहीं है। ऐतिहासिक गवेषणा मे शास्त्रोल्लिखित व्यक्ति यदि काल्पनिक भी ठहरे, तो भी उससे सनातन धर्म को कोई ठेस नहीं पहुँचती। अच्छा, यदि धर्म-साधना के साथ ऐतिहासिक गवेषणा का कोई सम्पर्क न हो, तो ऐतिहासिक गवेषणा का क्या फिर कोई मूल्य नहीं है ?—इसका उत्तर देते हुए स्वामी जी ने समझाया कि निर्भीक भाव से इन सब ऐतिहासिक सत्यानु-सन्धानों का भी एक विशेष प्रयोजन है। उद्देश्य महान् होने पर भी उसके लिए मिथ्या इतिहास की रचना करने का कोई प्रयोजन नहीं। प्रत्युत यदि मनुष्य सभी विषयों मे सत्य का सम्पूर्ण रूप से आश्रय लेने के लिए प्राणपण से यत्न करे,

तो वह एक दिन सरयस्वरूप भक्तान् का भी साक्षात्कार कर सकता है। उसके बाद उन्होंने पीता क मूक तत्त्व सर्वबर्नसमाख्य और निष्काम कर्म की संक्षेप में व्याख्या करके स्लोक पढ़ना आरम्भ किया। द्वितीय अध्याय के श्लोक्य मा स्म गमः पार्य इत्यादि में युद्ध के लिए अर्जुन के प्रति श्री कृष्ण के जो उतेजनात्मक वचन हैं उन्हें पढ़कर वे स्वयं सर्वसाधारण को जिस मात से उपदेश देते थे वह उन्हें स्मरण ही आया—**मत्तत्त्वम्युपपद्यते—** यह तो तुम्हें घोना नहीं देता—**तुम सर्वशक्तिमान हो तुम ब्रह्म हो तुममें जो अनेक प्रकार के विपरीत भाव बेल रहा हूँ वह सब तो तुम्हें घोना नहीं देता।** मसीहा के समान जोबस्विनी भाषा में इन सब श्लोकों को समझाते समझाते उनके भीतर से मानो तेज निकलने लगा। स्वामी जी कहते लगे 'यब सबको ब्रह्म-दृष्टि से देखना है तो महापापी को भी भूषा-दृष्टि से देखना उचित न होगा। महापापी से भूषा मत करो' यह कहते कहते स्वामी जी के मुख पर जो भावास्तर हुआ वह कबि आज भी मेरे मानसपटल पर अंकित है—**मानो उनके श्रीमुख से प्रेम शतबारों बन यह निकला। श्रीमुख मानो प्रेम से शीत हो उठा—उसमें कठोरता का संशयान भी नहीं।**

इस एक श्लोक से ही सम्पूर्ण पीता का सार निहित बेलकर स्वामी जी ने अन्त में यह कहते हुए उपसंहार किया 'इस एक श्लोक को पढ़ने से ही समग्र पीता के पाठ का फल होता है।

७

एक दिन स्वामी जी ने ब्रह्मसूत्र सति के लिए कहा। कहते लगे 'ब्रह्मसूत्र के माध्य को बिना पढ़े इस समय स्वतंत्र रूप से तुम सब लोग सूत्रों का अर्थ समझने की चेष्टा करो। प्रथम अध्याय के प्रथम पाद के सूत्रों का पढ़ना आरम्भ हुआ। स्वामी जी कुछ रूप से संसृष्ट उच्चारण करने की शिक्षा देने लगे कहते लगे संसृष्ट भाषा का उच्चारण हम लोग ठीक ठीक नहीं करते। इसका उच्चारण तो इतना सरल है कि बीबी चेष्टा करने से ही सब लोग संसृष्ट का शुद्ध उच्चारण कर सकते हैं। हम लोग बचपन से ही दूसरे प्रकार का उच्चारण करने के जादी हो गये हैं इसीलिए इस प्रकार का उच्चारण अभी हम लोगों को इतना मया और कठिन मानून होता है। हम लोग 'आत्मा' शब्द का उच्चारण 'आत्मा' न करके 'आत्ता' क्यों करते हैं? महर्षि पतंजलि अपने महाभाष्य में कहते हैं—'अपसंख्य उच्चारण करनेवाला म्लेच्छ है। अतः उनके मत से हम सब तो म्लेच्छ ही हुए। तब नबीन ब्रह्मचारी और सन्यासीगण एक एक करके जहाँ तक बन सका ठीक ठीक उच्चारण करके ब्रह्मसूत्र पढ़ने लगे। बाद में स्वामी जी यह उपाय बतलाने

लगे, जिससे सूत्र का प्रत्येक शब्द लेकर उसका अक्षरार्थ किया जा सके। उन्होंने कहा, “कौन कहता है कि ये सूत्र केवल अद्वैत मत के परिपोषक हैं? शंकर अद्वैतवादी थे, इसलिए उन्होंने सभी सूत्रों की केवल अद्वैत मतपरक व्याख्या करने की चेष्टा की है, किन्तु तुम लोग सूत्र का अक्षरार्थ करने की चेष्टा करना—व्यास का यथार्थ अभिप्राय क्या है, यह समझने की चेष्टा करना। उदाहरण के रूप में देखो—अस्मिन्नस्य च तद्योग शास्त्रि<sup>१</sup>—मेरे मतानुसार इस सूत्र की ठीक ठीक व्याख्या यह है कि यहाँ अद्वैत और विशिष्टाद्वैत, दोनों ही वाद भगवान् वेदव्यास द्वारा इंगित हुए हैं।

स्वामी जी एक ओर जैसे गम्भीर प्रकृतिवाले थे, उसी तरह दूसरी ओर रसिक भी थे। पढते पढते कामाच्च नानुमानापेक्षा<sup>२</sup> सूत्र आया। स्वामी जी इस सूत्र को लेकर स्वामी प्रेमानन्द के निकट इसका विकृत अर्थ करके हँसने लगे। सूत्र का सच्चा अर्थ यह है—जब उपनिषद् में, जगत्कारण के प्रसंग में ‘सोऽकामयत’ (उन्होंने अर्थात् उन्हीं जगत्कारण ने कामना की) इस तरह का वचन है, तब ‘अनुमानगम्य’ (अचेतन) प्रवान या प्रकृति को जगत्कारण रूप में स्वीकार करने की कोई आवश्यकता नहीं। जिन्होंने शास्त्र-ग्रन्थों का अपनी अपनी अद्भुत रचि के अनुसार कुत्सित अर्थ करके ऐसे पवित्र सनातन धर्म को घोर विकृत कर डाला है और ग्रन्थकार का जो अर्थ किसी भी काल में अभिप्रेत नहीं था, ग्रन्थकार ने जिसे स्वप्न में भी नहीं सोचा था, ऐसे सभी विषयों को जिन्होंने ग्रन्थ-प्रतिपाद्य बातें सिद्ध करते हुए धर्म को शिष्ट जनो से ‘द्वरात्परिहर्तव्य’ कर डाला है, क्या स्वामी जी उन्हीं लोगों का तो उपहास नहीं कर रहे थे? अथवा, वे जैसे कभी कभी कहा करते थे, कठिन शुष्क ग्रन्थ की धारणा कराने के लिए वे बीच बीच में साधारण मन के उपयुक्त रसिकता लाकर दूसरों को अनायास ही उस ग्रन्थ की धारणा करा देते थे, तो सम्भवतः कहीं वही चेष्टा तो नहीं कर रहे थे?

जो भी हो, पाठ चलने लगा। बाद में शास्त्रदृष्ट्या तूपदेशो वामदेववत्<sup>३</sup> सूत्र आया। इस सूत्र की व्याख्या करके स्वामी जी स्वामी प्रेमानन्द की ओर देखकर कहने लगे, “देखो, तुम्हारे ठाकुर<sup>४</sup> जो अपने को भगवान् कहते थे, सो ईसी भाव से कहते थे।” पर यह कहकर ही स्वामी जी दूसरी ओर मुँह फेरकर कहने

१ ब्रह्मसूत्र ॥११११११॥

२ वही, १८

३ वही, ३०

४ भगवान् श्री रामकृष्ण देव।

छगे "किन्तु उन्होंने मुझसे अपने अन्तिम समय में कहा था—'ओ राम जो रूप्य नहीं अब रामरूप्य तेरे वेदान्त की दृष्टि से नहीं।" यह कहकर दूसरा सूत्र पढ़ने के लिए कहा।

यहाँ पर इस सूत्र के सम्बन्ध में कुछ व्याख्या करनी आवश्यक है। कीपीठकी उपनिषद् में इन्द्र प्रतर्बन संवाद नामक एक व्याख्यायिका है। उसमें लिखा है, प्रतर्बन नामक एक राधा ने देवराज इन्द्र की सन्तुष्ट किया। इन्द्र ने उसे बर देना चाहा। इस पर प्रतर्बन ने उनसे यह बर माँगा कि आप मानव के लिए जो सबसे अधिक कल्याणकारी समझते हैं वही बर मुझे दें। इस पर इन्द्र ने उसे उपदेश दिया—*सा विद्वानीहि*—'मुझे जानो। यहाँ पर सूत्रकार ने यह प्रश्न उठाना है कि 'मुझे' के अर्थ में इन्द्र ने किसको लक्ष्य किया है। सम्पूर्ण व्याख्यायिका का अध्ययन करने पर पढ़ते अनेक सन्देह होते हैं—'मुझे' कहने से स्वाम स्वाम पर ऐसा भाव होता है कि उसका आशय 'देवता' से है, कहीं कहीं पर ऐसा मान्य होता है कि उसका आशय 'प्राण' से है कहीं पर 'जीव' से तो कहीं पर 'ब्रह्म' से। यहाँ पर अनेक प्रकार के विचार द्वारा सूत्रकार सिद्धांत करते हैं कि इस स्वस में 'मुझे' पर का आशय है 'ब्रह्म' से। 'सात्त्वबुद्ध्या' इत्यादि सूत्र के द्वारा सूत्रकार ऐसा एक उदाहरण बिखलाते हैं जिससे इन्द्र का उपदेश इती अर्थ में संगत होता है। उपनिषद् के एक स्थल में है कि कामदेव ऋषि ब्रह्मज्ञान काम कर बोके थे—*मै मनु हुमा हूँ मै सूर्य हुमा हूँ*। इन्द्र ने भी इसी प्रकार सात्त्व प्रतिपाद्य ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति कर कहा था—*सा विद्वानीहि (मुझे जानो)*। यहाँ पर 'मै' और 'ब्रह्म' एक ही बात है।

स्वामी जी भी स्वामी प्रेमानन्द से कहने छगे 'ओ रामरूप्य देव जो कभी कभी अपने को बगवान् कहकर निर्वेद्य करते थे वो वह इस ब्रह्मज्ञान की अवस्था प्राप्त होने के कारण ही करते थे। वास्तव में वे तो सिद्ध पुरुष मात्र थे अवधार नहीं। पर यह बात कहकर ही उन्होंने बीरे से एक दूसरे व्यक्ति से कहा "ओ रामरूप्य स्वयं अपने सम्बन्ध में कहते थे मैं केवल ब्रह्मज्ञान पुरुष ही नहीं हूँ मैं अवधार हूँ। अतः वैसे कि हमारे एक मित्र कहा करते थे ओ रामरूप्य को एक साधु या सिद्ध पुरुष मात्र नहीं कहा जा सकता बरि उनकी बातों पर विश्वास करना है तो उन्हें अवधार कहकर मानना होगा नहीं तो होंगी बहना हीया।

ओ हो स्वामी जी की बात से मेरा एक विशेष उपकार हुआ। सामान्य धर्मधी पढ़कर बाड़े और कुछ सीखा हो या न सीखा हो किन्तु सन्देह करना तो बच्ची तरह सीखा था। मेरी यह पारना थी कि महापुरुषों के विषयपत्र अपने गुरु की बड़ाई कर उन्हें अनेक प्रकार की कल्पना और अतिरंजना का विषय बना

देते हैं। परन्तु स्वामी जी की अद्भुत अकपटता और सत्यनिष्ठा को देखकर, वे भी किसी प्रकार की अतिरजना कर सकते हैं, यह धारणा एकदम दूर हो गयी। स्वामी जी के वचन ध्रुव सत्य है, यही धारणा हुई। इसलिए उनके वाक्य में श्री रामकृष्ण देव के सम्बन्ध में एक नवीन प्रकाश पाया। जो राम, जो कृष्ण, वही अब रामकृष्ण—यह बात उन्होंने स्वयं कही है, अभी यही बात हम समझने की चेष्टा कर रहे हैं। स्वामी जी में अपार दया थी, वे हम लोगों से सन्देह छोड़ देने को नहीं कहते थे, चट से किसीकी बात में विश्वास कर लेने के लिए उन्होंने कभी नहीं कहा। वे तो कहते थे, “इस अद्भुत रामकृष्ण-चरित्र की तुम लोग अपनी विद्या-बुद्धि के द्वारा जहाँ तक हो सके, आलोचना करो, इसका अध्ययन करो—मैं तो इसका एक लक्षांश भी समझ न पाया। उनको समझने की जितनी चेष्टा करोगे, उतना ही सुख पाओगे, उतना ही उनमें डूब जाओगे।”

८

स्वामी जी एक दिन हम सबको पूजा-गृह में ले जाकर साधन-भजन सिखलाने लगे। उन्होंने कहा, “पहले सब लोग आसन लगाकर बैठो, चिन्तन करो—मेरा आसन दृढ़ हो, यह आसन अचल-अटल हो, इसीकी सहायता से मैं ससार-समुद्र के पार होऊँगा।” सभी ने बैठकर कई मिनट तक इस प्रकार चिन्तन किया। उसके बाद स्वामी जी फिर कहने लगे, “चिन्तन करो—मेरा शरीर नीरोग और स्वस्थ है, वस्त्र के समान दृढ़ है, इसी देह की सहायता से मैं ससार को पार करूँगा।” इस प्रकार कुछ देर तक चिन्तन करने के बाद स्वामी जी फिर कहने लगे, “अब इस प्रकार चिन्तन करो कि मेरे निकट से पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण चारों दिशाओं में प्रेम का प्रवाह बह रहा है—हृदय के भीतर से सम्पूर्ण जगत् के लिए शुभकामना हो रही है—सभी का कल्याण हो, सभी स्वस्थ और नीरोग हो। इस प्रकार चिन्तन करने के बाद कुछ देर प्राणायाम करना, अधिक नहीं, तीन प्राणायाम करने से ही काफी है। इसके बाद हृदय में अपने अपने इष्टदेव की मूर्ति का चिन्तन और मन्त्र-जप लगभग आध घंटे तक करना।” सब लोग स्वामी जी के उपदेशानुसार चिन्तन आदि की चेष्टा करने लगे।

इस प्रकार सामूहिक साधनानुष्ठान मठ में दीर्घ काल तक होता रहा है, एवं स्वामी जी की आज्ञा से स्वामी तुरीयानन्द नवीन सन्यासियों और ब्रह्मचारियों को लेकर बहुत समय तक, ‘इस बार इस प्रकार चिन्तन करो, उसके बाद ऐसा करो,’ इस तरह बतला बतलाकर और स्वयं अनुष्ठान कर स्वामी जी द्वारा बतलायी गयी साधना-प्रणाली का अभ्यास कराते थे।



१

एक दिन सवेरे ९। यने में एक कमरे में बैठकर कुछ कर रहा था उसी समय सहसा तुलसी महाराज (स्वामी निर्मलानन्द) जाकर बोले 'स्वामी जी से दोला छोड़े?' मैंने कहा 'जी हाँ। इसके पहले मैंने कुछमृत या और किसीके पास किसी प्रकार मात्र-बीजा नहीं ली थी। एक योमी के पास प्राणायाम आदि कुछ योम-विद्याओं का मैंने ठीम वर्ष तक साधन किया था और उससे बहुत कुछ पारैरिक उन्नति और मन की स्थिरता भी मुझे प्राप्त हुई थी किन्तु वे गृहस्थाश्रम का अवलम्बन करना अत्यावश्यक बतलाते थे और प्राणायाम आदि योम-विद्या को छोड़कर ज्ञान भक्ति आदि अन्यान्य मार्गों को बिस्तुल व्यर्थ कहते थे। इत प्रकार की कट्टरता मुझे बिस्तुल अच्छी नहीं लगती थी। दूसरी ओर, मठ के कोई कोई संन्यासी और उनके भक्तगण योम का नाम सुनते ही बात को हँसी में उड़ा देते थे। 'उससे विशेष कुछ नहीं होता थी रामहृष्ण देव उसके उतने पदापाठी नहीं थे इत्यादि बातें मैं उन लोगों से सुना करता था। पर जब मैंने स्वामी जी का राजयोग पढ़ा तो समझा कि इस ग्रन्थ के प्रवेष्टा जैसे योममार्ग के समर्थक हैं वैसे ही अन्याय मार्गों के प्रति भी यत्नायु है अतएव कट्टर तो हैं ही नहीं अपितु इस प्रकार के उचार भावसम्पन्न आचार्य मुझे कभी दृष्टिगोचर नहीं हुए तिस पर वे संन्यासी भी हैं — अतएव उनके प्रति यदि मेरे हृदय में विशेष यत्ना हो तो उसमें आश्चर्य ही क्या? बाद में मैंने विशेष रूप से जाना कि श्री रामहृष्ण देव साधारणतया प्राणायाम आदि योम-विद्या का उपदेश नहीं दिया करते थे। वे यत्र और ध्यान पर ही विशेष रूप से जोर देते थे। वे कहा करते थे 'ध्यानात्मस्था के प्रगाढ़ होने पर अथवा भक्ति की प्रबलता आने पर प्राणायाम स्वयमेव हा जाता है इन सब वैदिक विद्याओं का अनुष्ठान करने से अनेक बार मन देह की ओर आकृष्ट हो जाता है। किन्तु अन्तरय शिष्यों से वे योम के उच्च अर्थों की साधना कराते थे उन्हें स्वर्ण करके अपनी आध्यात्मिक शक्ति के बल से उन लोगों की बुद्धिमती शक्ति को जाग्रत कर देने से एवं पदचक्र के विभिन्न चरणों में मन की स्थिरता की सुविधा के लिए समय समय पर शरीर के विषी विविष्ट अंग में सुई चुभाकर वहाँ मन की स्थिर करने के लिए कहते थे। स्वामी जी ने जाने पा-चाय शिष्यों में से बटुनी को प्राणायाम आदि विद्याओं का जो उपदेश दिया था वह मैं समझता हूँ उनका अन्त कर्तव्यत्व नहीं था बल्कि उनके गुरु द्वारा उपदिष्ट मार्ग था। स्वामी जी एक बात बता करके थे कि यदि शिष्यों संपूर्ण समर्थ में प्रयत्न करना हो तो उमीती माया में उस उपदेश देना होगा। इसी भाव का अनुसरण करके वे व्यक्तिविशेष भयवा अनिष्टादीविषय को विद्विन्न विद्विन्न साधना

प्रणाली की शिक्षा देते थे और इस तरह सभी प्रकार की प्रकृतिवाले मनुष्यों को थोड़ी-बहुत आध्यात्मिक सहायता देने में सफल होते थे।

जो हो, मैं इतने दिनों से उनका उपदेश सुन रहा हूँ, किन्तु उनके पास से मुझे अभी तक किसी प्रकार की प्रत्यक्ष आध्यात्मिक सहायता नहीं मिली, और उसके लिए मैंने चेष्टा भी नहीं की। चेष्टा न करने का कारण यह था कि मुझे करने का साहस नहीं होता था, और शायद मन के भीतर यह भी भाव था कि जब मैं इनके आश्रित हुआ हूँ, तो जो जो मेरे लिए आवश्यक है, सभी पाऊँगा। किस प्रकार वे मेरी आध्यात्मिक सहायता करेंगे, यह मैं नहीं जानता था। इस समय स्वामी निर्मलानन्द के ऐसे विनमार्गे आह्वान से मन में और किसी प्रकार की दुविधा नहीं रही। 'लूंगा' ऐसा कहकर उनके साथ पूजा-गृह की ओर बढ़ा। मैं नहीं जानता था कि उस दिन श्रीयुत शरच्चन्द्र चक्रवर्ती भी दीक्षा ले रहे हैं। उस समय दीक्षा-दान समाप्त नहीं हुआ था, इसलिए, स्मरण है, पूजा-गृह के बाहर कुछ देर तक मुझे प्रतीक्षा करनी पड़ी थी। बाद में शरत् बाबू बाहर आये, तो उसी समय तुलसी महाराज मुझे ले जाकर स्वामी जी से बोले, "यह दीक्षा लेगा।" स्वामी जी ने मुझसे बैठने के लिए कहा। पहले ही उन्होंने पूछा, "तुझे साकार अच्छा लगता है या निराकार?"

मैंने कहा, "कभी साकार अच्छा लगता है, कभी निराकार।"

इसके उत्तर में वे बोले, "वैसा नहीं, गुरु समझ सकते हैं, किसका क्या मार्ग है, हाथ देखूँ।" ऐसा कहकर मेरा दाहिना हाथ कुछ देर तक लेकर थोड़ी देर जैसे ध्यान करने लगे। उसके बाद हाथ छोड़कर बोले, "तूने कभी घट-स्थापना करके पूजा की है?" घर छोड़ने के कुछ पहले घट-स्थापना करके मैंने बहुत देर तक कोई पूजा की थी। वह बात मैंने उनसे बतायी। तब एक देवता का मन्त्र बताकर उन्होंने उसे अच्छी तरह मुझे समझा दिया और कहा, "इस मन्त्र से तेरा कल्याण होगा। और घट-स्थापना करके पूजा करने से तेरा कल्याण होगा।" उसके बाद मेरे सम्बन्ध में एक भविष्यवाणी करके, उन्होंने सामने पड़े हुए कुछ फलों को गुरु-दक्षिणा के रूप में देने के लिए मुझसे कहा।

मैंने देखा, यदि मुझे भगवान् के शक्तिस्वरूप किन्हीं देवता की उपासना करनी हो, तो मुझे स्वामी जी ने जिन देवता के मन्त्र का उपदेश दिया है, वे ही देवता मेरी प्रकृति के साथ पूर्णरूपेण मेल खाते हैं। सुना था—सच्चे गुरु शिष्य की प्रकृति को समझकर मन्त्र देते हैं। स्वामी जी में आज उसका प्रत्यक्ष प्रमाण मिला।

दीक्षा-दान के कुछ देर बाद स्वामी जी का भोजन हुआ। स्वामी जी की थाली में से मैंने और शरच्चन्द्र बाबू ने प्रसाद ग्रहण किया।

उस समय भीमूत मरेन्द्रनाथ सेन द्वारा सम्पादित 'इन्डियन मिरर' नामक अंग्रेजी दैनिक मठ में बिना मूल्य दिया जाता था किन्तु मठ के संस्थापियों की ऐसी स्थिति नहीं थी कि उसका डाक-सर्ज भी दे सकते। वह पत्र एक पत्रवाहक द्वारा बराहनपर तक बितरित होता था। बराहनपर में 'दिबास्य' के प्रतिष्ठाता सेवा प्रती भी सक्षिपद बन्धोपाध्याय द्वारा प्रतिष्ठित एक विधवाश्रम था। वहाँ पर इस आश्रम के लिए उक्त पत्र की एक प्रति जाती थी। 'इन्डियन मिरर' का पत्रवाहक वस वहाँ तक जाता था इसलिए मठ का समाचारपत्र भी वही दे जाता था। वही से प्रतिदिन पत्र की मठ में जाना पड़ता था। उक्त विधवाश्रम के ऊपर स्वामी जी की ब्येष्ट सहायुभूति थी। अमेरिका-मवास में इस आश्रम की सहायता के लिए स्वामी जी ने अपनी इच्छा से एक व्याख्यान दिया था और उस व्याख्यान के टिकट बेचकर जा कुछ आय हुई, उसे इस आश्रम में दे दिया था। अस्तु, उस समय मठ के लिए बाजार करना पूजा का आयोजन करना आदि सभी कार्य कन्हारी महाराज (स्वामी निर्मयागन्ध) की करना पड़ता था। इस 'इन्डियन मिरर' पत्र की जान का भार भी जर्नीके ऊपर था। उस समय मठ में हम लोग बहुत से नवदीक्षित संस्थापी ब्रह्मचारी जा जुटे थे किन्तु सब भी मठ के सब कार्यों का भार सब पर नहीं बाँटा गया था। इसलिए स्वामी निर्मयागन्ध की ब्येष्ट कार्य करना पड़ता था। अतएव उनके नी मन में आता था कि अपने कार्यों में से थोड़ा थोड़ा कार्य यदि तभीन सामुझों की दे सकें तो कुछ अवकाश मिले। इस उद्देश्य से उन्होंने मुझसे कहा 'बेसो जिस जगह 'इन्डियन मिरर' जाता है उस स्थान की तुम्हें बिलका रूना — गुम वहाँ से प्रतिदिन समाचारपत्र ले आना।' मैंने उसे अत्यन्त सरल कार्य समझकर एक इतसे एक व्यक्ति का कार्य-भार कुछ हलका होगा ऐसा धोषकर, सहज मे ही स्वीकार कर लिया। एक दिन बीपहर के भोजन के बाद कुछ देर बिश्राम कर केने पर निर्मयागन्ध जी ने मुझसे कहा 'बसो वह विधवाश्रम तुम्हें बिलका रू। मैं उनके साथ जाने के लिए तैयार हुआ। इसी बीच स्वामी जी ने मुझे देखकर बेबाल पढ़ने के लिए बुलाया। मैंने कहा कि मैं जमुक कार्य से जा रहा हूँ। इस पर स्वामी जी कुछ नहीं बोले। मैं कन्हारी महाराज के साथ बाहर जाकर उस स्थान को देख आया। झूटकर जब मठ में आया तो अपने एक ब्रह्मचारी मित्र से सुना कि मेरे बच्चे जाने के कुछ देर बाद स्वामी जी किसीसे कह रहे थे "यह बड़का कहीं गया है? क्या स्थियों की तो देखने नहीं गया? इस बात को सुनकर मैंने कन्हारी महाराज से कहा 'मार्द, मैं स्थान देख तो आया पर समाचारपत्र काने के लिए अब वहाँ न जा सकूँगा।

शिष्यों के, विशेषतः नवीन ब्रह्मचारियों के चरित्र की जिनसे रक्षा हो, उस विषय में स्वामी जी विशेष सावधान थे। कलकत्ते में विशेष प्रयोजन के बिना कोई साधु-ब्रह्मचारी रहे या रात बिताये—यह उन्हें बिल्कुल पसन्द न था, और विशेषतः वह स्थान, जहाँ स्त्रियों के सम्पर्क में आना होता था। इसके सैकड़ों उदाहरण देन चुका हूँ।

स्वामी जी जिन दिन मठ से खाना होकर अल्मोड़ा जाने के लिए कलकत्ता गये, उस दिन सीढी के बगल के बरामदे में खड़े होकर अत्यन्त आग्रह के साथ नवीन ब्रह्मचारियों को सम्बोधन करके ब्रह्मचर्य के बारे में उन्होंने जो बातें कही थीं, वे मानो अभी भी मेरे कानों में गूँज रही हैं। उन्होंने कहा—

“देवो वचो, ब्रह्मचर्य के बिना कुछ भी न होगा। धर्म-जीवन का लाभ करना ही, तो उममें ब्रह्मचर्य ही एकमात्र सहायक है। तुम लोग स्त्रियों के सम्पर्क में बिल्कुल न आना। मैं तुम लोगों को स्त्रियों से घृणा करने के लिए नहीं कहता, वे तो साक्षात् भगवतीस्वरूपा हैं, किन्तु अपने को बचाने के लिए तुम लोगों को उनसे दूर रहने के लिए कहता हूँ। मैंने अपने व्याख्यानो में बहुत जगह जो कहा है कि ससार में रहकर भी धर्म होता है, सो वह पढकर मन में ऐमा न समझ लेना कि मेरे मत में ब्रह्मचर्य या सन्यास धर्म-जीवन के लिए अत्यावश्यक नहीं है। क्या करता, उन सब भाषणों के सुननेवाले सभी समझते थे, सभी गूँधी थे—उनके सामने पूर्ण ब्रह्मचर्य की बात यदि एकदम कहने लगता, तो दूसरे दिन से कोई भी मेरा व्याख्यान सुनने न आता। ऐसे लोगों के लिए छूट-ढिलाई दिये जाने पर, वे क्रमशः पूर्ण ब्रह्मचर्य की ओर आकृष्ट होते हैं, इसीलिए मैंने उस प्रकार के भाषण दिये थे। किन्तु अपने मन की बात तुम लोगों से कहता हूँ—ब्रह्मचर्य के बिना तनिक भी धर्मलाभ न होगा। काया, मन और वाणी से तुम लोग ब्रह्मचर्य का पालन करना।”

१०

एक दिन विलायत से कोई पत्र आया। उसे पढकर स्वामी जी उसी प्रसंग में, धर्म-प्रचारक में कौन कौन से गुण रहने पर वह सफल हो सकेगा, यह बताने लगे। अपने शरीर के भिन्न भिन्न अवयवों की ओर लक्ष्य करके कहने लगे कि धर्म-प्रचारक का अमुक अंग खुला रहना आवश्यक है और अमुक अंग बन्द। अर्थात् उसका सिर, हृदय और मुख खुला रहना चाहिए, यानी उसे प्रबल मेधावी, सहृदय और वाग्मी होना चाहिए। और उसके अधोदेश के अंगों का कार्य बन्द होगा, अर्थात् वह पूर्ण ब्रह्मचारी होगा। एक प्रचारक को लक्ष्य करके कहने लगे,

“उसमें सभी गुण हैं केवल एक हृदय का अभाव है—ठीक है कमरा हृदय भी कम आया।

उस पत्र में यह संवाद था कि भविष्य निवेदिता (उस समय कुमारी नोबल) ईश्वर से नाराज के लिए शीघ्र ही खाना होंगी। निवेदिता की प्रार्थना करने में स्वामी जी बहुत खुश हो गये। कहते कहे ‘ईश्वर में इस प्रकार की पवित्र चरित्र महानुभाव नारियाँ बहुत कम हैं। मैं यदि कुछ मर जाऊँ, तो वह मेरे काम को चाल रहेगी। स्वामी जी की यह भविष्यवाणी सफल हुई थी।

## ११

स्वामी जी के पास पत्र आया है कि वेदान्त के श्रीभाष्य के अंग्रेजी अनुबाहक तथा स्वामी जी की सहायता द्वारा मद्रास से प्रकाशित होनेवाले विख्यात ‘ब्रह्म चरित्र’ पत्र के प्रधान लेखक एवं मद्रास के प्रतिष्ठित अध्यापक श्रीयुक्त रंगाचार्य जी के भ्रमण के विवरणों में शीघ्र ही कलकत्ता जायेंगे। स्वामी जी मध्याह्न समय मुझसे बोले ‘पत्र लिखने के लिए कागज और कलम लाकर चला कि’ तो और देख चोड़ा पीने के लिए पानी भी लेता था। मैंने एक गिलास पानी लाकर स्वामी जी को दिया और उरते हुए बीरे बीरे बोला ‘मेरे हाथ की लिखावट उतनी अच्छी नहीं है। मैंने सोचा था चाय विलायत या अमेरिका के लिए कोई पत्र छिपना होगा। स्वामी जी इस पर बोले ‘कोई हरेज नहीं था छिल foreign letter (विदेशी पत्र) नहीं है। उस में कागज-कलम लेकर पत्र लिखने के लिए बैठा। स्वामी जी अंग्रेजी में बोलने लगे। उन्होंने अध्यापक रंगाचार्य की एक पत्र लिखाया और एक पत्र किसी दूसरे को किये—यह ठीक स्मरण नहीं है। मुझे याद है—रंगाचार्य को बहुत सी दूसरी बातों में एक यह भी बात लिखायी थी ‘बंगाल में वेदान्त की बेसी चर्चा नहीं है अतएव जब आप कलकत्ता आ रहे हैं तो कलकत्तावासियों को उर दिलाकर जायें। कलकत्ते में जिससे वेदान्त की चर्चा बढ़े कलकत्तावासी जिससे चौड़ा छबेठ हों उससे लिए स्वामी जी कितने सचेत थे! स्वामी जी ने अस्वस्थ होने के कारण चिकित्सकों के साथ अनुभव से कलकत्ते में अरुण हो अरुण देकर फिर व्याख्यान देना बन्द कर दिया था किन्तु तो भी अब अभी मुझिया पाते कलकत्तावासियों की धर्म भावना को जाग्रत करने की चेष्टा करते रहते थे। स्वामी जी के इस पत्र के फलस्वरूप इसके कुछ दिन बाद कलकत्तावासियों ने स्टार रंगमंच पर उरत परिचित प्रबन्ध का रि प्रीट ऐन्ड रि प्रोड्यूस (पुरोहित और ऋषि) नामक सार्वभौम व्याख्यान सुनने का औपाय प्राप्त किया था।

१२

इसी समय, एक बंगाली युवक मठ में आया और उसने वहाँ साधु होकर रहने की इच्छा प्रकट की। स्वामी जी तथा वहाँ के अन्यान्य साधु उसके चरित्र से पहले ही से विशेषतया परिचित थे। उसको आश्रमवासी होने में अनुपयुक्त समझकर कोई भी उसे मठ में रखने के पक्ष में नहीं था। पर उसके पुनः पुनः प्रार्थना करने पर स्वामी जी ने उससे कहा, “मठ के साधुओं का यदि मत हो, तो तुम्हें रख सकता हूँ।” यह कहकर पुराने साधुओं को बुलाकर उन्होंने पूछा, “इसको मठ में रखने के बारे में तुम लोगों का क्या मत है?” उस पर सभी साधुओं ने उसे मठ में रखने में अनिच्छा प्रदर्शित की। अतः उस युवक को मठ में नहीं रखा गया। इसके कुछ दिनों बाद सुना कि वह व्यक्ति किसी तरह विलायत गया, और पास में पैसा-कौड़ी न रहने के कारण उसे ‘वर्क-हाउस’ में रहना पड़ा।

१३

एक दिन अपराह्न काल में स्वामी जी मठ के बरामदे में हम लोगों को लेकर वेदान्त पढ़ाने बैठे। सन्ध्या होने ही वाली थी। स्वामी रामकृष्णानन्द को इससे कुछ दिन पहले स्वामी जी ने प्रचार-कार्य के लिए मद्रास भेजा था। इसीलिए उस समय मठ में पूजा-आरती आदि उनके एक दूसरे गुरुभ्राता सँभालते थे। आरती आदि में जो लोग उनकी सहायता करते थे, उन्हें भी लेकर स्वामी जी वेदान्त पढ़ाने बैठे थे। उसी समय उक्त गुरुभ्राता आकर नवीन सन्यासी-ब्रह्मचारियों से कहने लगे, “चलो जी, चलो, आरती करनी होगी, चलो।” उस समय एक ओर स्वामी जी के आदेश से सभी वेदान्त पढ़ने में लगे हुए थे, और दूसरी ओर इनके आदेश से ठाकुर जी की आरती में सहयोग देना चाहिए। अतएव नवीन साधु लोग कुछ समय असमजस में पड़ गये। तब स्वामी जी अपने गुरुभ्राता को सम्बोधित करके उत्तेजित होकर कहने लगे, “यह जो वेदान्त पढ़ा जा रहा था, यह क्या ठाकुर की पूजा नहीं है? केवल एक चित्र के सामने जलती हुई बत्ती घुमाना और झंझ पीटना—मालूम होता है, इसीको तुम भगवान् की आराधना समझते हो! तुम्हारी बुद्धि बड़ी ओछी है।” इस तरह कहते कहते, जरा और भी अधिक उत्तेजित हो इस प्रकार वेदान्त-पाठ में बाधा उपस्थित करने के कारण कुछ और भी अधिक कड़े वाक्य कहने लगे। फल यह हुआ कि वेदान्त-पाठ बन्द हो गया। कुछ देर बाद आरती भी समाप्त हो गयी। किन्तु आरती के बाद उक्त गुरुभ्राता चुपके से वहाँ चले गये। तब तो स्वामी जी भी अत्यन्त व्याकुल होकर वारम्बार “वह कहाँ गया, क्या वह मेरी गाली खाकर गया मैं तो नहीं

बूझ गया। इस तरह कहने लगे और सभी लोगों को उन्हें डूँढ़ने के लिए पारों और भेजा। बहुत देर बाद मठ की छत पर चिमित्त भाव से उन्हें बैठे हुए देखकर एक व्यक्ति उन्हें स्वामी जी के पास ले आये। उस समय स्वामी जी का भाव एकदम परिवर्तित हो गया। उन्होंने उनका कितना हुआ किया और कितनी मयूर बाणी में उनसे बातें करने लगे। हम लोग स्वामी जी का गुहमाई के प्रति अपूर्व प्रेम देखकर मुग्ध हो गये। सब हम लोगों को मामूम हुआ कि बुद्धबाइयों के ऊपर स्वामी जी का अगाध विश्वास और प्रेम है। उनकी आन्तरिक चेष्टा यही रहती थी कि वे छोय अपनी जिप्ठा को सुरक्षित रखकर अधिकारिक उभर एवं उबार बन सकें। बाद में स्वामी जी के श्रीमुख से अनेक बार सुना है कि स्वामी जी जितनी अधिक भर्त्सना करते थे वे ही उनके विशेष प्रीति-पात्र थे।

#### १४

एक दिन बरामदे में टहलते-टहलते उन्होंने मुझसे कहा 'देस मठ की एक बायरी रखना और प्रत्येक सप्ताह मठ की एक रिपोर्ट भेजना। स्वामी जी के इस आदेश का मैंने और बाद में अन्य व्यक्तियों ने भी पालन किया था। अभी भी मठ की वह बायिक (छोटी) बायरी मठ में सुरक्षित है। उससे अभी भी मठ के कम-विकास और स्वामी जी के सम्बन्ध में बहुत से तथ्य संपन्न किये जा सकते हैं।

प्रश्नोत्तर





## प्रश्नोत्तर

१

(बेलूड मठ की डायरी से)

प्रश्न—गुरु किसे कह सकते हैं ?

उत्तर—जो तुम्हारे भूत-भविष्य को बता सकें, वे ही तुम्हारे गुरु हैं।

प्रश्न—भक्ति-लाभ किस प्रकार होता है ?

उत्तर—भक्ति तो तुम्हारे भीतर ही है—केवल उसके ऊपर काम-काचन का एक आवरण सा पडा हुआ है। उसको हटाते ही भीतर की वह भक्ति स्वयमेव प्रकट हो जायगी।

प्रश्न—हमे आत्मनिर्भर होना चाहिए—इस कथन का सच्चा अर्थ क्या है ?

उत्तर—यहाँ 'आत्म' का अर्थ है, चिरतन नित्य आत्मा। फिर भी, इस 'अनित्य अह' पर निर्भरता का अभ्यास भी हमे धीरे धीरे सच्चे लक्ष्य पर पहुँचा देगा, क्योंकि जीवात्मा भी तो वस्तुतः नित्यात्मा की मायिक अभिव्यक्ति ही तो है।

प्रश्न—यदि सचमुच एक ही वस्तु सत्य हो, तो फिर यह द्वैत-बोध, जो सदा-सर्वदा सबको ही रहा है, कहाँ से आया ?

उत्तर—किसी विषय के प्रत्यक्ष में कभी द्वैत-बोध नहीं होता। प्रत्यक्ष के पुन उपस्थित होने में ही द्वैत का बोध होता है। यदि विषय-प्रत्यक्ष के समय द्वैत-बोध रहता, तो ज्ञेय ज्ञाता से सम्पूर्ण स्वतन्त्र रूप में तथा ज्ञाता भी ज्ञेय से स्वतन्त्र रूप में रह सकता।

प्रश्न—चरित्र का सामजस्यपूर्ण विकास करने का सर्वोत्तम उपाय कौन सा है ?

उत्तर—जिनका चरित्र उस रूप से गठित हुआ हो, उनका सग करना ही इसका सर्वोत्कृष्ट उपाय है।

प्रश्न—वेद के विषय में हमारा दृष्टिकोण किस प्रकार का होना चाहिए ?

उत्तर—वेदों के केवल उन्ही अशो को प्रमाण मानना चाहिए, जो युक्ति-विरोधी नहीं हैं। पुराणादि अन्यान्य शास्त्र वही तक ग्राह्य है, जहाँ तक वे वेद से अविरोधी हैं। वेद के पश्चात् इस ससार में जहाँ कहीं जो भी धर्म-भाव आविर्भूत हुआ है, उसे वेद से ही गृहीत समझना चाहिए।

प्रश्न—यह चार युगों का काक-विभाजन क्या ज्योतिषशास्त्र की समता के अनुसार सिद्ध है अथवा केवल रुढ़िगत ही है ?

उत्तर—वेदों में तो कहीं ऐसे विभाजन का उल्लेख नहीं है। यह पीठबिक्रम युग की निराधार कल्पना मात्र है।

प्रश्न—शब्द और मात्र के बीच क्या संबंध कोई नित्य सम्बन्ध है ? अथवा मात्र संयोग्य और रुढ़िगत ?

उत्तर—इस विषय में अनेक तर्क किये जा सकते हैं, किसी स्थिर सिद्धान्त पर पहुँचना बड़ा कठिन है। मान्य होता है कि शब्द और अर्थ के बीच नित्य सम्बन्ध है पर पूर्णतया नहीं। बीसा भाषाओं की विविधता से सिद्ध होता है। हाँ कोई सूक्ष्म सम्बन्ध हो सकता है जिसे हम अभी नहीं पकड़ पा रहे हैं।

प्रश्न—भारत में कार्य-मशाली कौसी होनी चाहिए ?

उत्तर—यहसे तो व्यावहारिक और शारीर से संबंध होने की शिक्षा लेनी चाहिए। ऐस केवल बाह्य नर-केसरी संसार पर विजय प्राप्त कर सकते हैं परन्तु मान-मान भिड़ों द्वारा यह नहीं होने का। और दुष्टों, किसी व्यक्तिगत आदर्श के अनुकरण की शिक्षा नहीं लेनी चाहिए, चाहे वह आदर्श कितना ही बड़ा क्यों न हो।

हमके परचाणु स्वामी जी ने कुछ हिन्दू प्रतीकों की अवनति का वर्णन किया। उन्होंने ज्ञानमार्ग और भक्तिमार्ग का भेद समझाया। वास्तव में ज्ञानमार्ग आर्यों का था और इसलिए उसमें अधिकारी-विचार के इतने बड़े नियम थे। भक्ति मार्ग की उत्पत्ति शक्तिशास्त्र से—आर्येतर जाति से हुई है इसलिए उसमें अधिकारी-विचार नहीं है।

प्रश्न—भारत के इस पुनरुत्थान में हमका क्या भिन्न क्या कार्य करेगा ?

उत्तर—इत बठ से चरित्रवान व्यक्ति निकलकर सारे संसार की आम्नात्मिकता की बाढ़ से प्लावित कर देंगे। इनके साथ साथ हमारे खेती में भी पुनरुत्थान होगा। इस तरह बाह्य शक्ति और शैत्य जाति का सम्मुख होगा। गूँ जाति का अस्तित्व समाप्त हो जायगा—वे लोग आज जो काम कर रहे हैं वे सब यंत्रों की सहायता से किये जायेंगे। भारत की वर्तमान आचरणता है—शक्ति-शक्ति।

प्रश्न—क्या मनुष्य के उत्पन्न अर्थात् पुनरुत्थान संभव है ?

उत्तर—हाँ पुनरुत्थान बर्ष पर निर्भर करता है। यदि मनुष्य पशु के समान आचरण करे, तो वह पशु-पौति में गिर जाता है।

एक समय (सन् १८९८ ई०) में इस प्रकार के प्रश्नोत्तर-काल में स्वामी जी ने मूर्ति-पूजा की उत्पत्ति बौद्ध युग में मानी थी। उन्होंने कहा था—पहले बौद्ध चैत्य, फिर स्तूप, और तत्पश्चात् बुद्ध का मन्दिर निर्मित हुआ। उसके साथ ही हिन्दू देवताओं के मन्दिर खड़े हुए।

प्रश्न—क्या कुण्डलिनी नाम की कोई वास्तविक वस्तु इस स्थूल शरीर के भीतर है ?

उत्तर—श्री रामकृष्ण देव कहते थे, 'योगी जिन्हें पद्म कहते हैं, वास्तव में वे मनुष्य के शरीर में नहीं हैं। योगाभ्यास से उनकी उत्पत्ति होती है।'

प्रश्न—क्या मूर्ति-पूजा के द्वारा मुक्ति-लाभ हो सकता है ?

उत्तर—मूर्ति-पूजा से साक्षात् मुक्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती, फिर भी वह मुक्ति-प्राप्ति में गौण कारणस्वरूप है—सहायक है। मूर्ति-पूजा की निन्दा करना उचित नहीं, क्योंकि बहुतेको के लिए मूर्ति-पूजा ही अद्वैत ज्ञान की उपलब्धि के लिए मन को तैयार कर देती है—और केवल इस अद्वैत-ज्ञान की प्राप्ति से ही मनुष्य मुक्त हो सकता है।

प्रश्न—हमारे चरित्र का सर्वोच्च आदर्श क्या होना चाहिए ?

उत्तर—त्याग।

प्रश्न—बौद्ध धर्म ने अपने दाय के रूप में भ्रष्टाचार कैसे छोड़ा ?

उत्तर—बौद्धों ने प्रत्येक भारतवासी को भिक्षु या भिक्षुणी बनाने का प्रयत्न किया था। परन्तु सब लोग तो वैसा नहीं हो सकते। इस तरह किसी भी व्यक्ति के साथ बन जाने से भिक्षु-भिक्षुणियों में क्रमशः शिथिलता आती गयी। और भी एक कारण था—धर्म के नाम पर तिब्बत तथा अन्यान्य देशों के बर्बर आचारों का अनुकरण करना। वे इन स्थानों में धर्म-प्रचार के हेतु गये और इस प्रकार उनके भीतर उन लोगों के दूषित आचार प्रवेश कर गये। अन्त में उन्होंने भारत में इन सब आचारों को प्रचलित कर दिया।

प्रश्न—माया क्या अनादि और अनन्त है ?

उत्तर—समष्टि रूप से अनादि-अनन्त अवश्य है, पर व्यष्टि रूप से सान्त है।

प्रश्न—ब्रह्म और माया का बोध युगपत् नहीं होता। अतः उनमें से किसी-की भी पारमार्थिक सत्ता एक दूसरे से अद्भुत कैसे सिद्ध की जा सकती है ?

उत्तर—उसको केवल साक्षात्कार द्वारा ही सिद्ध किया जा सकता है। जब व्यक्ति को ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाता है, तो उसके लिए माया की सत्ता नहीं रह जाती, जैसे गस्सी की वास्तविकता जान लेने पर सर्प का भ्रम फिर उत्पन्न नहीं होता।

प्रश्न—माया क्या है ?

उत्तर—वास्तव में वस्तु केवल एक ही है—बाहे उसको चेतन्य कही या नही। पर उनमें से एक को दूसरे से निर्वान स्वतंत्र मानना केवल कठिन ही नहीं असम्भव है। इसीको माया या भ्रान्त कहते हैं।

प्रश्न—मुक्ति क्या है ?

उत्तर—मुक्ति का अर्थ है पूर्ण स्वाधीनता—धूम और अधुम दोनों प्रकार के बन्धनों से मुक्त हो जाना। लोहे की शृंखला भी शृंखला ही है और सोने की शृंखला भी शृंखला है। श्री रामकृष्ण देव कहते थे 'पीर में काँटा चुमने पर उसे निकालने के लिए एक दूसरे काँटे की आवश्यकता होती है। काँटा निकल जाने पर दोनों काँटे फेंक बिये बाँधे हैं। इसी तरह सत्प्रवृत्ति के द्वारा असत् प्रवृत्तियों का वधन करना पड़ता है, परन्तु बाद में सत्प्रवृत्तियों पर भी विषय प्राप्त करनी पड़ती है।'

प्रश्न—मगबद्धता बिना क्या मुक्ति-काम हो सकता है ?

उत्तर—मुक्ति के साथ ईश्वर का कोई सम्बन्ध नहीं है। मुक्ति तो पहले से ही वर्तमान है।

प्रश्न—हमारे भीतर जिसे 'मैं' या 'अहं' कहा जाता है वह वेह आदि से उत्पन्न नहीं है, इसका क्या प्रमाण है ?

उत्तर—अनात्मा की भाँति मैं या अहं भी वेह-मग आदि से ही उत्पन्न होता है। वास्तविक 'मैं' के अस्तित्व का एकमात्र प्रमाण है साक्षात्कार।

प्रश्न—सच्चा ज्ञानी और सच्चा भक्त किसे कह सकते हैं ?

उत्तर—जिसके हृदय में अथाह प्रेम है और जो सभी अवस्थाओं में अद्वैत तत्त्व का साक्षात्कार करता है, वही सच्चा ज्ञानी है। और सच्चा भक्त वह है जो परमात्मा के साथ बीबात्मा की अभिन्न रूप से व्यक्तित्व कर यथार्थ ज्ञानसम्पन्न हो गया है, जो सबसे प्रेम करता है और जिसका हृदय सबके लिए खल करता है। ज्ञान और भक्ति में से किसी एक का पक्ष लेकर जो दूसरे की निन्दा करता है वह न तो ज्ञानी है, न भक्त—वह तो बौपी और मूर्ख है।

प्रश्न—ईश्वर की सेवा करने की क्या आवश्यकता है ?

उत्तर—यदि तुम एक बार ईश्वर के अस्तित्व को मान लेते हो तो उनकी सेवा करने के यत्नेष्ट कारण पाओगे। सभी शास्त्रों के मतानुसार मगबद्धता का अर्थ है 'स्मरण'। यदि तुम ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास रखते हो, तो तुम्हारे जीवन में पय पय पर उनको स्मरण करने का हेतु सामने आयेगा।

प्रश्न—क्या मायावाद अद्वैतवाद से निघ्न है ?

उत्तर—नहीं, दोनो एक ही हैं। मायावाद को छोड़ अद्वैतवाद की और कोई भी व्याख्या सम्भव नहीं।

प्रश्न—ईश्वर तो अनन्त हैं, वे फिर मनुष्य रूप धारण कर इतने छोटे किस प्रकार हो सकते हैं ?

उत्तर—यह सत्य है कि ईश्वर अनन्त है। परन्तु तुम लोग अनन्त का जो अर्थ सोचते हो, अनन्त का वह अर्थ नहीं है। अनन्त कहने से तुम एक विराट् जड़ सत्ता समझ बैठते हो। इसी समझ के कारण तुम भ्रम में पड़ गये हो। जब तुम यह कहते हो कि भगवान् मनुष्य रूप धारण नहीं कर सकते, तो इसका अर्थ तुम ऐसा समझते हो कि एक विराट् जड़ पदार्थ को इतना छोटा नहीं किया जा सकता। परन्तु ईश्वर इस अर्थ में अनन्त नहीं है। उसका अनन्तत्व चैतन्य का अनन्तत्व है। इसलिए मानव के आकार में अपने को अभिव्यक्त करने पर भी उनके स्वरूप को कुछ भी क्षति नहीं पहुँचती।

प्रश्न—कोई कोई कहते हैं कि पहले सिद्ध बन जाओ, फिर तुम्हें कर्म करने का ठीक ठीक अधिकार होगा, परन्तु कोई कहते हैं कि शुरू से ही कर्म करना, दूसरों की सेवा करना उचित है। इन दो विभिन्न मतों का सामंजस्य किस प्रकार हो सकता है ?

उत्तर—तुम तो दो अलग अलग बातों को एक में मिलाये दे रहे हो, इसलिए भ्रम में पड़ गये हो। कर्म का अर्थ है मानव जाति की सेवा अथवा धर्म-प्रचार-कार्य। यथार्थ प्रचार-कार्य में अवश्य ही सिद्ध पुरुष के अतिरिक्त और किसीका अधिकार नहीं है, परन्तु सेवा में तो सभी का अधिकार है, इतना ही नहीं, जब तक हम दूसरी से सेवा ले रहे हैं, तब तक हम दूसरों की सेवा करने को बाध्य भी हैं।

२

(ब्लुकलिन नैतिक सभा, ब्लुकलिन, अमेरिका)

प्रश्न—आप कहते हैं कि सब कुछ मंगल के लिए ही है, परन्तु देखने में आता है कि ससार सब ओर अमंगल और दुःख-कष्ट से घिरा है। तो फिर आपके मत के साथ इस प्रत्यक्ष दीखनेवाले व्यापार का सामंजस्य किस प्रकार हो सकता है ?

उत्तर—आप यदि पहले अमंगल के अस्तित्व को प्रमाणित कर सकें, तभी मैं इस प्रश्न का उत्तर दे सकूंगा। परन्तु वैदान्तिक धर्म तो अमंगल का अस्तित्व ही स्वीकार नहीं करता। सुख से रहित अनन्त दुःख कही ही, तो उसे अवश्य प्रकृत अमंगल कहा जा सकता है। पर यदि सामयिक दुःख-कष्ट हृदय की कोमलता

भीर महत्ता में बढ़ि कर मनुष्य को अनन्त सुख की ओर अग्रसर कर दे, तो फिर उसे अमंगल नहीं कहा जा सकता बल्कि उसे ही परम मंगल कहा जा सकता है। जब तक हम यह अनुसन्धान नहीं कर लेते कि किसी वस्तु का अनन्त के राज्य में क्या परिणाम होता है, तब तक हम उसे बुझ नहीं कह सकते।

सैतान की उपासना हिन्दू धर्म का धर्म नहीं है। मानव जाति क्रमोन्नति के मार्ग पर चर रही है, परन्तु सब लोग एक ही प्रकार की स्थिति में नहीं पहुँच सके हैं। ईर्ष्या पापिष जीवन में कोई कोई लोग अत्यान्व्य व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक महान् और पवित्र देखे जाते हैं। प्रत्येक मनुष्य के लिए उसके अपने वर्तमान उन्नति-क्षेत्र के भीतर स्वयं को उत्तम बनाने के लिए अबतक विद्यमान है। हम अपना नाश नहीं कर सकते हम अपने भीतर की बीवनी शक्ति को लपट या दुर्बल नहीं कर सकते परन्तु उस शक्ति को विभिन्न दिशा में परिचाहित करने के लिए हम स्वतन्त्र हैं।

प्रश्न—पापिष अङ्ग वस्तु की सत्यता क्या हमारे मन की केवल कल्पना नहीं है?

उत्तर—मेरे मन में बाह्य अङ्ग की अवस्था एक सत्ता है—हमारे मन के विचार के बाहर भी उनका एक अस्तित्व है। सैतान के क्रमविकास-रूप महान् विनाश का अनुभवी होकर यह समस्त विश्व उन्नति के पथ पर अग्रसर हो रहा है। सैतान का यह क्रमविकास अङ्ग के क्रमविकास से पूर्वक है। अङ्ग का क्रमविकास सैतान की विक्राग-मयासी का सूचक या प्रतीकस्वरूप है किन्तु उसके द्वारा इस प्रजापी की व्याख्या नहीं हो सकती। वर्तमान पापिष परिस्थिति में बढ़ रहने के कारण हम अभी तक व्यक्तित्व नहीं प्राप्त कर सके हैं। जब तक हम उस उत्कृष्ट भूमि में नहीं पहुँच जाते जहाँ हम अपनी अन्तःशक्ति के परम लक्ष्यों को प्रकट करने के उपयुक्त यन्त्र बन जाते हैं तब तक हम प्रकृत व्यक्तित्व की प्राप्ति नहीं कर सकते।

प्रश्न—ज्या मर्माङ्ग के पास एक जन्मात्त शिष्टु को ले जाकर उनसे पूछा गया कि शिष्टु अज्ञान दिये हुए पाप के फल से अज्ञान हुआ है, अब क्या अपने माता पिता के पाप के फल से—इस समस्या की मीमांसा आप किस प्रकार करेंगे?

उत्तर—इस समस्या में पाप की बात की से जाने का कोई भी प्रयोजन नहीं होना पड़ता। तो भी मनुष्य बुद्धि विरहाम है कि शिष्टु की यह अज्ञानता उसके पूर्व जन्म हुए किसी धर्म का ही फल होगी। मेरे मन में पूर्व जन्म को स्वीकार करने पर ही ऐसी समस्याओं की मीमांसा ही संभव है।

प्रश्न—मृत्यु के परमाणु हमारी आत्मा क्या आत्मत्व की अवस्था को प्राप्त करती है?

उत्तर—मृत्यु तो केवल अवस्था का परिवर्तन मात्र है। देश-काल आपके ही भीतर वर्तमान है, आप देश-काल के अन्तर्गत नहीं है। वस इतना जानने से ही यथेष्ट होगा कि हम, इहलोक में या परलोक में, अपने जीवन को जितना पवित्र और महान् बनायेंगे, उतना ही हम उन भगवान् के निकट होते जायेंगे, जो सारे आध्यात्मिक सौन्दर्य और अनन्त आनन्द के केन्द्रस्वरूप हैं।

३

### (ट्वेन्टिएथ सेन्चुरी क्लब, बोस्टन, अमेरिका)

प्रश्न—क्या वेदान्त का प्रभाव इसलाम धर्म पर कुछ पड़ा है ?

उत्तर—वेदान्त मत की आध्यात्मिक उदारता ने इसलाम धर्म पर अपना विशेष प्रभाव डाला था। भारत का इसलाम धर्म ससार के अन्यान्य देशों के इसलाम धर्म की अपेक्षा पूर्ण रूप से भिन्न है। जब दूसरे देशों के मुसलमान यहाँ आकर भारतीय मुसलमानों को फुसलाते हैं कि तुम विधार्मियों के साथ मिल-जुलकर कैसे रहते हो, तभी अशिक्षित कट्टर मुसलमान उत्तेजित होकर दगा-फसाद मचाते हैं।

प्रश्न—क्या वेदान्त जाति-भेद मानता है ?

उत्तर—जाति-भेद वेदान्त धर्म का विरोधी है। जाति-भेद एक सामाजिक प्रथा मात्र है और हमारे बड़े बड़े आचार्यों ने उसे तोड़ने के प्रयत्न किये हैं। बौद्ध धर्म से लेकर सभी सम्प्रदायों ने जाति-भेद के विरुद्ध प्रचार किया है, परन्तु ऐसा प्रचार जितना ही बढ़ता गया, जाति-भेद की शृंखला उतनी ही दृढ़ होती गयी। जाति-भेद की उत्पत्ति भारत की राजनीतिक समस्याओं से हुई है। वह तो वंश-परम्परागत व्यवसायों का समवाय (trade-guild) मात्र है। किसी प्रकार के उपदेश की अपेक्षा यूरोप के साथ व्यापार-वाणिज्य की प्रतियोगिता ने जाति-भेद को अधिक मात्रा में तोड़ा है।

प्रश्न—वेदों की विशेषता किस बात में है ?

उत्तर—वेदों की एक विशेषता यह है कि सारे शास्त्र-ग्रन्थों में एकमात्र वेद ही बारम्बार कहते हैं कि वेदों के भी अतीत हो जाना चाहिए। वेद कहते हैं कि वे केवल बाल-बुद्धि व्यक्तियों के लिए लिखे गये हैं। इसलिए विकाम कर चुकने पर वेदों के परे जाना पड़ेगा।

प्रश्न—आपके मत में प्रत्येक जीवात्मा क्या नित्य सत्य है ?

उत्तर—जीवात्मा मनुष्य की वृत्तियों की समष्टिस्वरूप है, और इन वृत्तियों का प्रतिक्षण परिवर्तन होता रहता है। इसलिए यह जीवात्मा अनन्त काल के



लिए कभी सत्य नहीं हो सकती। इस भूमिक जपद्-मपंज के भीतर ही उसकी सत्यता है। जीवात्मा तो विचार और स्मृति की समष्टि है—वह नित्य सत्य कैसे हो सकती है ?

प्रश्न—भारत में बौद्ध धर्म का पतन क्यों हुआ ?

उत्तर—वास्तव में भारत में बौद्ध धर्म का लोप नहीं हुआ। वह एक बिराट्ट सामाजिक आन्दोलन मात्र था। बुद्ध के पहले मग के नाम से तथा अन्य विभिन्न कारणों से बहुत प्रायश्चित्त हीवी भी और लोग बहुत मद्यपान एवं कामिप-आहार करते थे। बुद्ध के उपदेश के फल से मद्यपान और जीव-हत्या का भारत से प्रायः लोप सा हो गया है।

४

(अमेरिका के हार्बर्गोर्ब में 'आत्मा, ईश्वर और धर्म' विषय पर स्वामी जी का एक भाषण समाप्त होने पर वहाँ के श्रोताओं ने कुछ प्रश्न पूछे थे। वे प्रश्न तथा उनके उत्तर नीचे दिये गये हैं।)

श्रोतकों में से एक ने कहा—अगर पुरोहित लोग नरक की ज्वाला के बारे में बातें करना छोड़ दें तो लोगों पर से उनका प्रभाव ही उठ जाय।

उत्तर—उठ जाय तो अच्छा ही हो। अगर बातें कोई किसी धर्मकी मानता है, तो वस्तुतः उसका कोई भी धर्म नहीं। इससे तो मनुष्य को उसकी प्रायश्चित्त प्रकृति के बजाय उसकी ईवी प्रकृति के बारे में उपदेश देना कहीं अच्छा है।

प्रश्न—जब प्रभु (ईसा) ने यह कहा कि स्वर्ग का राज्य इस संसार में नहीं है तो इससे उनका क्या तात्पर्य था ?

उत्तर—यह कि स्वर्ग का राज्य हमारे अन्दर है। मनुषी लोगों का विश्वास था कि स्वर्ग का राज्य इसी पृथ्वी पर है। पर ईसा मसीह ऐसा नहीं मानते थे।

प्रश्न—क्या आप मानते हैं कि मनुष्य का विकास पशु से हुआ है ?

उत्तर—मैं मानता हूँ कि विकास के नियम के अनुसार ऊँचे स्तर के प्राणी अपेक्षाकृत निम्न स्तर से विकसित हुए हैं।

प्रश्न—क्या आप किसी ऐसे व्यक्ति को मानते हैं, जो अपने पूर्व जन्म की बातें जानता हो ?

उत्तर—हाँ कुछ ऐसे लोगों से भरी घंट हुई है, जो कहते हैं कि उन्हें अपने पिछले जीवन की बातें याद हैं। वे स्वतः ऊपर उठ चुके हैं कि अपने पूर्व जन्म की बातें याद कर सकते हैं।

प्रश्न—ईसा मसीह के क्रूस पर चढ़ने की बात में क्या आपको विश्वास है ?

उत्तर—ईसा मसीह ईश्वर के अवतार थे। कोई उन्हें मार नहीं सकता था। देह, जिसको क्रूस पर चढ़ाया गया, एक छाया मात्र थी, एक मृगतृष्णा थी।

प्रश्न—अगर वे ऐसे छाया-शरीर का निर्माण कर सकें, तो क्या यह सबसे बड़ा चमत्कारपूर्ण कार्य नहीं है ?

उत्तर—चमत्कारपूर्ण कार्यों को मैं आध्यात्मिक मार्ग का सबसे बड़ा रोड़ा मानता हूँ। एक बार बुद्ध के शिष्यों ने उनसे एक ऐसे व्यक्ति की चर्चा की, जो तथाकथित चमत्कार दिखाता था—वह एक कटोरे को बिना छुए ही काफ़ी ऊँचाई पर रोके रखता था। उन लोगो ने बुद्ध को वह कटोरा दिखाया, तो उन्होंने उसे अपने पैरो से कुचल दिया और कहा—कभी तुम इन चमत्कारों पर अपनी आस्था मत आधारित करो, बल्कि शाश्वत सिद्धान्तों में सत्य की खोज करो। बुद्ध ने उन्हें सच्चे आन्तरिक प्रकाश की शिक्षा दी—वह प्रकाश, जो आत्मा की देन है और जो एकमात्र ऐसा विश्वसनीय प्रकाश है, जिसके सहारे चला जा सकता है। चमत्कार तो केवल मार्ग के रोड़े हैं। उन्हें हमें रास्ते से अलग हटा देना चाहिए।

प्रश्न—क्या आप मानते हैं कि 'शैलोपदेश' सचमुच ईसा मसीह के हैं ?

उत्तर—हाँ, मैं ऐसा मानता हूँ। और इस सम्बन्ध में मैं अन्य विचारकों की तरह पुस्तकों पर ही भरोसा करता हूँ, यद्यपि मैं यह भी समझता हूँ कि पुस्तकों को प्रमाण बनाना बहुत ठोस आधार नहीं है। पर इन सारी बातों के बावजूद हम सभी 'शैलोपदेश' को निःसंकोच अपना पथप्रदर्शक मान सकते हैं। जो हमारी अन्तरात्मा को जेंचे, उसे हमें स्वीकार करना है। ईसा के पाँच सौ साल पहले बुद्ध ने उपदेश दिया था और सदा उनके उपदेश आशीषों से भरे रहते थे। कभी उन्होंने अपने जीवन में अपने कार्यों अथवा अपने शब्दों से किसीकी हानि नहीं की, और न जरयुद्ध अथवा कल्पयुद्ध ने ही।

## ५

(निम्नलिखित प्रश्नोत्तर अमेरिका में दिये हुए विभिन्न भाषणों के अन्त में हुए थे। वहाँ से इनका संग्रह किया गया है। इनमें से यह अमेरिका के एक सवाद-पत्र से संगृहीत है।)

प्रश्न—आत्मा के आवागमन का हिंदू सिद्धान्त क्या है ?

उत्तर—वैज्ञानिकों का ऊर्जा या जड़-संभारण (conservation of energy or matter) का सिद्धान्त, जिस भित्ति पर प्रतिष्ठित है, आवागमन का सिद्धान्त भी उसी भित्ति पर स्थापित है। इस सिद्धान्त (conservation of energy or

matter) का प्रार्थन करनेपर हमारे देश के एक दार्शनिक ने ही किया था। प्राचीन 'हिन्दू मूटि' पर विस्मय नहीं करने दो। 'मूटि' कल्प में लाली विरागता है—दुःख नहीं न दुःख का होता अभाव है। 'भार' की उत्पत्ति। यह अगम्य है। त्रिभूत प्रसार नाम का भाव नहीं है। उनी प्रार मूटि का भी भाव नहीं है। ईश्वर और मूटि मानो की समानता पर वेगर्भी के समान है—उनका न भाव है न अस्त—वे दिव्य पुरुष है। मूटि के बारे में हमारा मत यह है—'बहु भी है और रहेगी। पापपाप केनामिनी की भाव में एक पाप मीननी है—यह है पर्यवेन-सहिष्णुता। को भी पर्ये बुरा नहीं है, बराबर सब धर्मों का मार एक ही है।

प्रश्न—भारत की सिखा उठनी उग्रत करो नहीं है?

उत्तर—त्रिभिन्न गम्यों में अनेक अगम्य जातियों में भारत पर आक्रमण किया था प्रयाग उनीके कारण भारतीय महिमार् इतनी अनुग्रह है। कि हममें कुछ शेष ही भारतवागियों के निरी भी है।

द्विती समय अमेरिका में स्वामी जी से कहा गया था कि हिन्दू धर्म में कभी किसी अन्य धर्मासम्भों की भवन धर्म में नहीं मिलया है। इसका उत्तर में उन्होंने कहा "जैसे पूर्व के लिए बुद्धदेव के पास एक बिरुप मन्दिर का उठी प्रकार पश्चिम के लिए मेरे पास भी एक सन्देह है।

प्रश्न—आप क्या यहाँ (अमेरिका में) हिन्दू धर्म के विनाशकाय अनुष्ठान बाहिर को चलाना चाहते हैं?

उत्तर—मैं तो केवल दार्शनिक तरीकों का ही प्रचार कर रहा हूँ।

प्रश्न—क्या आपको ऐसा नहीं मालूम होता कि यदि भारी मरक का डर मनुष्य के सामने से हटा दिया जाय तो निमी भी क्या से उसे क्राइ में रचना असम्भव ही जायगा?

उत्तर—नहीं बल्कि मैं तो यह समझता हूँ कि मय की अपेक्षा हृदय में प्रेम और माया का संचार होने से वह अधिक अच्छा हो सकेगा।

## १

(स्वामी जी ने २५ मार्च सन् १८९६ ई की संयुक्त राज्य अमेरिका के हार्बर्ड विश्वविद्यालय की 'बैबुएल दार्शनिक समा' में वैदाल बर्न के बारे में एक व्याख्यान दिया था। व्याख्यान समाप्त होने पर श्रोताओं के साथ निम्नलिखित प्रश्नोत्तर हुए।)

प्रश्न—मैं यह जानना चाहता हूँ कि भारत में दार्शनिक विचार की वर्तमान अवस्था कैसी है? इन सब बातों की बड़ी आवश्यक कहाँ तक आलोचना होती है?

उत्तर—मैंने पहले ही कहा है कि भारत में अधिकांश लोग द्वैतवादी हैं। अद्वैतवादियों की संख्या बहुत अल्प है। उस देश में (भारत में) आलोचना का प्रधान विषय है मायावाद और जीव-तत्त्व। मैंने इस देश में आकर देखा कि यहाँ के श्रमिक संसार की वर्तमान राजनीतिक परिस्थिति से भली भाँति परिचित हैं, परन्तु जब मैंने उनसे पूछा, 'धर्म कहने से तुम क्या समझते हो, अमुक अमुक सम्प्रदाय का धर्म-मत किस प्रकार का है', तो उन्होंने कहा, 'ये सब बातें हम नहीं जानते—हम तो बस चर्च में जाते भर हैं।' परन्तु भारत में किसी किसान के पास जाकर यदि मैं पूछूँ कि तुम्हारा शासनकर्ता कौन है, तो वह उत्तर देगा, 'यह बात मैं नहीं जानता, मैं तो केवल टैक्स (कर) दे देता हूँ।' पर यदि मैं उससे धर्म के विषय में पूछूँ, तो वह तत्काल बतला देगा कि वह द्वैतवादी है, और माया तथा जीव-तत्त्व के सम्बन्ध में वह अपनी धारणा को विस्तृत रूप से कहने के लिए भी तैयार हो जायगा। वे लिखना-पढ़ना नहीं जानते, परन्तु इन बातों को उन्होंने साधु-सन्ध्यासियों से सीखा है, और इन विषयों पर विचार करना उन्हें बहुत अच्छा लगता है। दिन भर काम करने के पश्चात् पेड़ के नीचे बैठकर किसान लोग इन सब तत्त्वों पर विचार किया करते हैं।

प्रश्न—कट्टर या असल हिन्दू किसे कह सकते हैं? हिन्दू धर्म में कट्टरता (orthodoxy) का क्या अर्थ है?

उत्तर—वर्तमान काल में तो खान-पान अथवा विवाह के विषय में जातिगत विधि-निषेध का पालन करने से ही कट्टर या असल हिन्दू हो जाता है। फिर वह चाहे जिस किसी धर्म-मत में विश्वास क्यों न करे, कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। भारत में कभी भी कोई नियमित धर्मसंघ या चर्च नहीं था, इसलिए कट्टर या असल हिन्दूपन गठित तथा नियमित करने के लिए सघन रूप से कभी चेष्टा नहीं हुई। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि जो वेदों में विश्वास रखते हैं, वे ही असल या कट्टर हिन्दू हैं। पर वास्तव में, देखने में यह आता है कि द्वैतवादी सम्प्रदायों में से अनेक केवल वेद-विश्वासी न होकर पुराणों में ही अधिक विश्वास रखते हैं।

प्रश्न—आपके हिन्दू दर्शन ने यूनानियों के स्टोइक दर्शन<sup>१</sup> पर किस प्रकार प्रभाव डाला था?

१ सम्भवतः ईसा से ३०८ वर्ष पूर्व ग्रीस के दार्शनिक जीनो (Zeno) ने इस दर्शन का प्रचार किया था। इनके मत से, सुख-दुःख, भला-बुरा, सब विषयों में समभावसम्पन्न रहना और अविचलित रहकर सबको सहना ही मनुष्य जीवन का परम पुरुषार्थ है। स०

उत्तर—यद्यपि सम्भव है कि उसने विस्मयित्वा गिबामियों द्वारा उस पर कुछ प्रभाव डाला था। ऐसा समझेह किया जाता है कि पादपा मोरस के उपरोपों में सौर्य वर्जन का प्रभाव विद्यमान है। जो है। हमारी यह धारणा है कि सांख्य वर्जन ही बेरी में निहित कार्बोनिज तत्वा का पुनित-विचार द्वारा समन्वय करने का सबसे प्रथम प्रयत्न है। हम बेरी तक में कपिल के नाम का उल्लेख पाते हैं—**श्रुति प्रसूतं कपिलं यस्तमपे।**<sup>१</sup>

— जिन्होंने उन कपिल श्रुति को पहले प्रसव किया था।

प्रश्न—पादभाष्य विज्ञान व साध इस मत का विरोध कहीं पर है ?

उत्तर—विरोध कुछ भी नहीं है। बल्कि हमारे इस मत के साथ पादभाष्य विज्ञान का सादृश्य ही है। हमारा परिष्कारवाद तथा आकाश और प्राण तत्व ठीक आपक आपुनिक वर्जनों के सिद्धान्त के समान है। आपक परिष्कारवाद या कमविकास हमारे यज्ञ और सास्य वर्जन में पाया जाता है। बुद्ध्यान्तस्वस्य श्रेष्ठि—पतञ्जलि न बतलाया है कि प्रकृति के आपूरण के द्वारा एक जाति अन्य जाति न परिवर्त होती है—**आत्यन्तरपरिणाम् प्रकृत्यापुनरात्।** केवल इसकी व्याख्या के विषय में पतञ्जलि के साथ पादभाष्य विज्ञान का मतभेद है। पतञ्जलि की परिष्कार की व्याख्या आध्यात्मिक है। वे कहते हैं—जब एक किसान अपने खेत में पानी देने के लिए पास के ही जलाशय से पानी भेजा चाहता है तो वह बस पानी को रोक रखनेवाले द्वार को खोल कर देता है—**निमित्तमप्रयोजकं प्रकृतीनां वरचमेवस्तु तदा शेषिककत्।** उसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य पहले से ही मग्न है केवल इन सब विभिन्न अवस्था-बकस्नी द्वारों या प्रतिबन्धों ने उसे बद्ध कर रखा है। इन प्रतिबन्धों को हटाने मात्र से ही उसकी वह मग्न शक्ति बड़े वेग के साथ अभिव्यक्त होन लगती है। तिर्यक् योनि में मनुष्यत्व कुछ मात्र से निहित है मनुकूळ परिस्थिति उपस्थित होने पर वह तत्क्षण ही मानव रूप में अभिव्यक्त हो जाता है। उसी प्रकार उपमुक्त सुयोग तथा बचसर उपस्थित होने पर मनुष्य के भीतर जो ईश्वरत्व विद्यमान है वह अपने को अभिव्यक्त कर देता है। इसलिये आधुनिक नूतन मतभावधारकों के साथ विवाद करने को विशेष कुछ नहीं है। उदाहरणार्थ विषय-मध्यम के सिद्धान्त के सम्बन्ध में सास्य मत के साथ आधुनिक शरीर विज्ञान (Physiology) का बहुत ही गीका मतभेद है।

प्रश्न—परन्तु आप जोनों की पद्धति भिन्न है।

उत्तर—हाँ, हमारे मतानुसार मन की समस्त शक्तियों को एकमुखी करना ही ज्ञान-लाभ का एकमात्र उपाय है। वहिर्विज्ञान में बाह्य विषयों पर मन को एकाग्र करना होता है और अन्तर्विज्ञान में मन की गति को आत्माभिमुखी करना पड़ता है। मन की इस एकाग्रता को ही हम योग कहते हैं।

प्रश्न—एकाग्रता की दशा में क्या इन सब तत्त्वों का यथार्थ ज्ञान आप ही आप प्रकट होता है ?

उत्तर—योगी कहते हैं कि इस एकाग्रता शक्ति का फल अत्यन्त महान् है। उनका कहना है कि मन की एकाग्रता के बल से ससार के सारे सत्य—बाह्य और अन्तर दोनों जगत् के सत्य—करामलकवत् प्रत्यक्ष हो जाते हैं।

प्रश्न—अद्वैतवादी सृष्टि-तत्त्व के विषय में क्या कहते हैं ?

उत्तर—अद्वैतवादी कहते हैं कि यह सारा सृष्टि-तत्त्व तथा इस ससार में जो कुछ भी है, सब माया के, इस आपातप्रतीयमान प्रपञ्च के अन्तर्गत है। वास्तव में इस सबका कोई अस्तित्व नहीं है। परन्तु जब तक हम बद्ध हैं, तब तक हमें यह दृश्य जगत् देखना पड़ेगा। इस दृश्य जगत् में घटनाएँ कुछ निर्दिष्ट क्रम के अनुसार घटती रहती हैं। परन्तु उनके परे न कोई नियम है, न क्रम। वहाँ सम्पूर्ण मुक्ति—सम्पूर्ण स्वाधीनता है।

प्रश्न—अद्वैतवाद क्या द्वैतवाद का विरोधी है ?

उत्तर—उपनिषद् प्रणालीबद्ध रूप से लिखित न होने के कारण जब कभी दार्शनिकों ने किसी प्रणालीबद्ध दर्शनशास्त्र की रचना करनी चाही, तब उन्होंने इन उपनिषदों में से अपने अभिप्राय के अनुकूल प्रामाणिक वाक्यों को चुन लिया है। इसी कारण सभी दर्शनकारों ने उपनिषदों को प्रमाण रूप से ग्रहण किया है,—अन्यथा उनके दर्शन को किसी प्रकार का आधार ही नहीं रह जाता। तो भी हम देखते हैं कि उपनिषदों में सब प्रकार की विभिन्न चिन्तन-प्रणालियाँ विद्यमान हैं। हमारा यह सिद्धान्त है कि अद्वैतवाद द्वैतवाद का विरोधी नहीं है। हम तो कहते हैं कि चरम ज्ञान में पहुँचने के लिए जो तीन सोपान हैं, उनमें से द्वैतवाद एक है। धर्म में सर्वदा तीन सोपान देखने में आते हैं। प्रथम—द्वैतवाद। उसके बाद मनुष्य अपेक्षाकृत उच्चतर अवस्था में उपस्थित होता है—वह है विशिष्टा-द्वैतवाद। और अन्त में उसे यह अनुभव होता है कि वह समस्त विश्व-ब्रह्माण्ड के साथ अभिन्न है। यही चरम दशा अद्वैतवाद है। इसलिए इन तीनों में परस्पर विरोध नहीं है, बल्कि वे आपस में एक दूसरे के सहायक या पूरक हैं।

प्रश्न—माया या अज्ञान के अस्तित्व का क्या कारण है ?

उत्तर—कार्य-कारण संघात की सीमा के बाहर 'क्यों' का प्रश्न नहीं पूछा जा सकता। माया-राज्य के भीतर ही 'क्यों' का प्रश्न पूछा जा सकता है। हम कहते हैं कि यदि न्यायशास्त्र के अनुसार यह प्रश्न पूछ सका जाय तभी हम उसका उत्तर देंगे। उसके पहले उसका उत्तर देने का हमें अधिकार नहीं है।

प्रश्न—समुद्र ईश्वर क्या माया के अन्तर्गत है ?

उत्तर—हाँ पर यह समुद्र ईश्वर मायाकवी आचरण के भीतर से परिदृश्यमान उस निर्बुद्ध ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। माया या प्रकृति के अतीत होने पर वही निर्बुद्ध ब्रह्म जीवार्त्मा कहलाता है और मायापीडित या प्रकृति के नियन्त्रण के रूप में वही ईश्वर या समुद्र ब्रह्म कहलाता है। यदि कोई व्यक्ति सूर्य को देखने के लिए यहाँ से ऊपर की ओर यात्रा करे, तो जब तक वह असक्त सूर्य के निकट नहीं पहुँचता तब तक वह सूर्य को क्रमशः अधिकाधिक बड़ा ही देखता जायगा। वह जितना ही आगे बढ़ेगा उसे ऐसा मालूम होगा कि वह भिन्न भिन्न सूर्यों को देख रहा है परन्तु वास्तव में वह उसी एक सूर्य को देख रहा है इसमें संशय नहीं। इसी प्रकार, हम जो कुछ देख रहे हैं सभी उसी निर्बुद्ध ब्रह्मसत्ता के विभिन्न रूप मात्र हैं इसलिए उस दृष्टि से ये सब सत्य हैं। इनमें से कोई भी मिथ्या नहीं है परन्तु यह कहा जा सकता है कि ये निम्नतर सौपान मात्र हैं।

प्रश्न—उस पूर्ण निरपेक्ष सत्ता को ज्ञान की विशेष प्रणाली कौन सी है ?

उत्तर—हमारे मत में दो प्रणालियाँ हैं। उनमें से एक तो अस्तिभावस्रोतक या प्रवृत्ति मार्ग है और दूसरी नास्तिभावस्रोतक या निवृत्ति मार्ग है। प्रथमोक्त मार्ग से साधु विश्व चलाता है—इसी पथ से हम प्रेम के द्वारा उस पूर्ण वस्तु को मान्य करने की चेष्टा कर रहे हैं। यदि प्रेम की परिधि अनन्त मूनी बढ़ा दी जाय तो हम उसी विश्व-प्रेम में पहुँच जायेंगे। दूसरे पथ में 'निति' 'निति' अर्थात् 'यह नहीं' 'यह नहीं' इस प्रकार की साधना करनी पड़ती है। इस साधना में चित्त की जो कोई तरंग मन को बहिर्मुखी बनाने की चेष्टा करती है उसका निवारण करना पड़ता है। अन्त में मन ही मानो भर जाता है तब सत्य स्वयं प्रकाशित हो जाता है। हम इसीको समाधि या तानादीप्त अवस्था या पूर्ण ज्ञानावस्था कहते हैं।

प्रश्न—तब तो यह विपरी (ज्ञाता या द्रष्टा) को विषय (ज्ञेय या दृश्य) में बसा देने की अवस्था हुई ?

उत्तर—विपरी को विषय में नहीं बरन् विषय को विपरी में बसा देने की। वास्तव में यह जगत् विहीन ही जाता है केवल में रह जाता है—एकमात्र में ही वर्तमान रहता है।

प्रश्न—हमारे कुछ जर्मन दार्शनिकों का मत है कि भारतीय भक्तिवाद सम्भवतः पाश्चात्य प्रभाव का ही फल है।

उत्तर—इस विषय में मैं उनसे सहमत नहीं हूँ। इस प्रकार का अनुमान एक क्षण के लिए भी नहीं टिक सकता। भारतीय भक्ति पाश्चात्य देशों की भक्ति के समान नहीं है। भक्ति के सम्बन्ध में हमारी मुख्य धारणा यह है कि उसमें भय का भाव बिल्कुल ही नहीं रहता—रहता है केवल भगवान् के प्रति प्रेम। दूसरी बात यह है कि ऐसा अनुमान बिल्कुल अनावश्यक है। भक्ति की बातें हमारी प्राचीनतम उपनिषदों तक में विद्यमान हैं और ये उपनिषद् ईसाइयों की बाइबिल से बहुत प्राचीन हैं। संहिता में भी भक्ति का बीज देखने में आता है। फिर 'भक्ति' शब्द भी कोई पाश्चात्य शब्द नहीं है। वेद-मन्त्र में 'श्रद्धा' शब्द का जो उल्लेख है, उसीसे क्रमशः भक्तिवाद का उद्भव हुआ था।

प्रश्न—ईसाई धर्म के सम्बन्ध में भारतवासियों की क्या धारणा है ?

उत्तर—बड़ी अच्छी धारणा है। वेदान्त सभी को ग्रहण करता है। दूसरे देशों की तुलना में भारत में हमारी धर्म-शिक्षा का एक विशेषत्व है। मान लीजिए, मेरे एक लड़का है। मैं उसे किसी धर्म-मत की शिक्षा नहीं दूँगा, मैं उसे प्राणायाम सिखाऊँगा, मन को एकाग्र करना सिखाऊँगा और थोड़ी-बहुत सामान्य प्रार्थना की शिक्षा दूँगा, परन्तु वैसी प्रार्थना नहीं, जैसी आप समझते हैं, वरन् इस प्रकार की कुछ प्रार्थना—'जिन्होंने इस विश्व-ब्रह्माण्ड की सृष्टि की है, मैं उनका ध्यान करता हूँ—वे मेरे मन को ज्ञानालोक से आलोकित करें।' इस प्रकार उसकी धर्म-शिक्षा चलती रहेगी। इसके बाद वह विभिन्न मतावलम्बी दार्शनिकों एवं आचार्यों के मत सुनता रहेगा। उनमें से जिनका मत वह अपने लिए सबसे अधिक उपयुक्त समझेगा, उन्हींको वह गुरु रूप से ग्रहण करेगा और वह स्वयं उनका शिष्य बन जायगा। वह उनसे प्रार्थना करेगा, 'आप जिस दर्शन का प्रचार कर रहे हैं, वही सर्वोत्कृष्ट है, अतएव आप कृपा करके मुझे उसकी शिक्षा दीजिए।'

हमारी मूल बात यह है कि आपका मत मेरे लिए तथा मेरा मत आपके लिए उपयोगी नहीं हो सकता। प्रत्येक का साधन-पथ भिन्न भिन्न होता है। यह भी हो सकता है कि मेरी लड़की का साधन-मार्ग एक प्रकार का हो, मेरे लड़के का दूसरे प्रकार का, और मेरा इन दोनों से बिल्कुल भिन्न प्रकार का। अतः प्रत्येक व्यक्ति का इष्ट या निर्वाचित पथ भिन्न भिन्न हो सकता है,—और सब लोग अपने अपने साधन-मार्ग की बातें गुप्त रखते हैं। अपने साधन-पथ के विषय में केवल



में जानता हूँ और मेरे गुण—किसी तीसरे व्यक्ति को यह नहीं बताया जाता क्योंकि हम दूसरों से गुणा विबाह करना नहीं चाहते। फिर, इस दूसरों के पास प्रकट करने से उनका कोई काम नहीं होता क्योंकि प्रत्येक को ही अपना अपना मार्ग चुन लेना पड़ता है। इसीलिए सर्वसाधारण को केवल सर्वसाधारणोपयोगी धर्म और शासना प्रणाली का ही उपदेश दिया जा सकता है। एक दृष्ट्यन्त औचित्य—अवश्य उसे सुनकर भाग हँसने। मान औचित्य, एक पीर पर बड़े रहने से धारक मेरी उन्नति में कुछ सहायता होती ही परन्तु इसी कारण यदि मैं अभी को एक पीर पर बड़े होने का उपदेश देने कर्णुं तो क्या यह हँसी की बाध न होगी? हो सकता है कि मैं ईतबासी होऊँ और मेरी स्त्री भी ईतबासी। मेरा कोई बच्चा इच्छा करे तो ईसा बुद्ध या मुहम्मद का उपासक बन सकता है वे उसके इष्ट हैं। हाँ यह अवश्य है कि उस अपने जातिगत सामाजिक नियमों का पालन करना पड़ेगा।

प्रश्न—क्या सब हिन्दुओं का जाति-विभाज्य में विश्वास है?

उत्तर—उन्हें बाध्य होकर जातिगत विमम मानने पड़ते हैं। उनका लक्ष्य ही उनमें विश्वास न हो पर तो भी वे सामाजिक नियमों का उल्लंघन नहीं कर सकते।

प्रश्न—इस प्राणायाम और एकाग्रता का अन्वेषण क्या सब लोग करते हैं?

उत्तर—हाँ पर कोई कोई लोग बहुत थोड़ा करते हैं—वर्मशास्त्र के आदेश का उल्लंघन न करने के लिए जितना करना पड़ता है, उस उतना ही करते हैं। भारत के मन्दिर यहाँ के गिरजाघरों के समान नहीं हैं। जाहे तो एक ही घारे मन्दिर धारक हो जायें तो भी लोगों को उनका अभाव महसूस नहीं होता। स्वर्ग की इच्छा से पुन की इच्छा से अथवा इसी प्रकार की और किसी कामका से जोय मन्दिर बनवाते हैं। हो सकता है किसीने एक बड़े भाटी मन्दिर की प्रतिष्ठा कर उसमें पूजा के लिए दो-चार पुरोहितों को भी नियुक्त कर दिया पर मुझे यहाँ जाने की कुछ भी आवश्यकता नहीं है क्योंकि मेरा जो कुछ पूजा-याठ है वह मेरे घर में ही होता है। प्रत्येक घर में एक अलग कमरा होता है, जिसे 'ठाकुर-घर' या 'पूजा-गृह' कहते हैं। बीसा-गृह के बाव प्रत्येक बाळक या बालिका का मह कर्तव्य ही जाता है कि वह पहले स्नान करे, फिर पूजा सम्पन्ना बन्दगादि। उसकी इस पूजा या उपासना का अर्थ है—प्राणायाम ध्यान तथा किसी मन्त्र विधि का अर्थ। और एक बात की और विधाय ध्यान देना पड़ता है वह है—धामना के समय शरीर को हमेशा सीधा रचना। ह्मात्त विश्वास है कि मन के बल से शरीर को स्वस्थ और स्वच्छ रना जा सकता है। एक व्यक्ति इस प्रकार पूजा

आदि करके चला जाता है, फिर दूसरा जाकर वहाँ बैठकर अपना पूजा-पाठ आदि करने लगता है। सभी निम्नत्व भाव से अपनी अपनी पूजा करके चले जाते हैं। कभी कभी एक ही कमरे में तीन-चार व्यक्ति बैठकर उपासना करते हैं, परन्तु उनमें से हर एक की उपासना-प्रणाली भिन्न भिन्न हो सकती है। इस प्रकार की पूजा प्रतिदिन कम से कम दो बार करनी पड़ती है।

प्रश्न—आपने जिस अद्वैत-अवस्था के बारे में कहा है, वह क्या केवल एक आदर्श है, अथवा उसे लोग प्राप्त भी करते हैं ?

उत्तर—हम कहते हैं कि वह यथार्थ है—हम कहते हैं कि वह अवस्था उपलब्ध होती है। यदि वह केवल थोड़ी बात हो, तब तो उसका कुछ भी मूल्य नहीं। उस तत्त्व की उपलब्धि करने के लिए वेदों में तीन उपाय बतलाये गये हैं—श्रवण, मनन और निदिध्यासन। इस आत्म-तत्त्व के विषय में पहले श्रवण करना होगा। श्रवण करने के बाद इस विषय पर विचार करना होगा—आँखें मूँदकर विश्वास न कर, अच्छी तरह विचार करके समझ-बूझकर उस पर विश्वास करना होगा। इस प्रकार अपने सत्यस्वरूप पर विचार करके उसके निरन्तर ध्यान में नियुक्त होना होगा, तब उसका साक्षात्कार होगा। यह प्रत्यक्षानुभूति ही यथार्थ धर्म है। केवल किसी मतवाद को स्वीकार कर लेना धर्म का अंग नहीं है। हम तो कहते हैं कि यह समाधि या ज्ञानातीत अवस्था ही धर्म है।

प्रश्न—यदि आप कभी इस समाधि अवस्था को प्राप्त कर लें, तो क्या आप उसका वर्णन भी कर सकेंगे ?

उत्तर—नहीं, परन्तु समाधि अवस्था या पूर्ण ज्ञान की अवस्था प्राप्त हुई है या नहीं, इस बात को हम जीवन के ऊपर उसके फलाफल को देखकर जान सकते हैं। एक मूर्ख व्यक्ति जब सोकर उठता है, तो वह पहले जैसा मूर्ख था, अब भी वैसा ही मूर्ख रहता है, शायद पहले से और भी खराब हो सकता है। परन्तु जब कोई व्यक्ति समाधि में स्थित होता है, तो वहाँ से व्युत्थान के बाद वह एक तत्त्वज्ञ, साधु, महापुरुष हो जाता है। इसीसे स्पष्ट है कि ये दोनों अवस्थाएँ कितनी भिन्न भिन्न हैं।

प्रश्न—मैं प्राध्यापक—के प्रश्न का सूत्र पकड़ते हुए यह पूछना चाहता हूँ कि क्या आप ऐसे लोगों के विषय में जानते हैं, जिन्होंने आत्म-सम्मोहन विद्या (self-hypnotism) का कुछ अध्ययन किया है? अवश्य ही प्राचीन भारत में इस विद्या की बहुत चर्चा होती थी—पर अब उतनी दिखायी नहीं देती। मैं जानना चाहता हूँ कि जो लोग आजकल उसकी चर्चा और साधना करते हैं, उनका इस विद्या के विषय में क्या कहना है, और वे इसका अम्यास या साधना किस तरह करते हैं।

उत्तर—आप पाश्चात्य देश में जिसे सम्मोहन-विद्या कहते हैं, वह तो असली व्यापार का एक सामान्य अंग मात्र है। हिन्दू लोग उसे आत्मापसम्मोहन (self de-hypnotisation) कहते हैं। वे कहते हैं आप तो पहले से ही सम्मोहित (hypnotised) हैं—इस सम्मोहित-भाव को दूर करना हीगा अपसम्मोहित (de-hypnotised) होना होगा—

न तत्र सुप्तो भाति न अन्धतारकम्  
नेमा विद्युत्तो भाति कुलीप्यमग्निः ।  
तमेव भास्तमनुभाति सर्वम्  
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥

—‘वहाँ सूर्य प्रकाशित नहीं होता अन्ध तारक विद्युत् भी नहीं—धो फिर इस सामान्य अग्नि की बात ही क्या। उन्हींके प्रकाश से समस्त प्रकाशित हो रहा है।’

यह तो सम्मोहन (hypnotism) नहीं है—यह तो अपसम्मोहन (de-hypnotisation) है। हम कहते हैं कि वह प्रत्येक बर्म जो इस प्रपंच की उत्पत्ता की विद्या देता है एक प्रकार से सम्मोहन का प्रयोग कर रहा है। केवल अद्वैतवादी ही ऐसे हैं जो सम्मोहित होना नहीं चाहते। एकमात्र अद्वैतवादी ही समझते हैं कि सभी प्रकार के द्वैतवाद से सम्मोहन या मोह उत्पन्न होता है। इसलिए अद्वैतवादी कहते हैं बर्दों की भी अपरा विद्या समझकर उनके अतीत ही जात्रों समुक्त ईश्वर क भी परे जैसे जात्रो सारे विश्वब्रह्माण्ड को भी दूर फेंक या इतना ही नहीं अपने शरीर-मन आदि को भी पार कर जात्रो—कुछ भी रोप न रहन पाय सभी तुम सम्पूर्ण रूप से मोह से मुक्त होबीने।

यनी बाधो निर्वर्तये अप्राप्य मनसा सह ।  
मानसं ब्रह्मणो विद्वान् न विभेति क्वाचन ॥

—मन क महित बाधी जिन न पाकर जहाँ से लौट जाती है उस ब्रह्म के आनन्द को जानने पर फिर जिनो प्रकार का मय नहीं रह जाता।’ यही आगम्मीहन है।

१ बटोपनिषद् ॥२१२।१५॥

२ तैत्तिरीयोपनिषद् ॥२।४।१॥

न पुण्य न पाप न सौख्य न दुःखम्  
 न मन्त्रो न तीर्थं न वेदा न यज्ञा ।  
 अहं भोजनं नैव भोज्यं न भोक्ता  
 चिदानन्दरूप शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥

—‘मेरे न कोई पुण्य है, न पाप, न सुख है, न दुःख, मेरे लिए मन्त्र, तीर्थ वेद या यज्ञ कुछ भी नहीं है। मैं भोजन, भोज्य या भोक्ता कुछ भी नहीं हूँ—मैं तो चिदानन्दरूप शिव हूँ, मैं ही शिव (मगलस्वरूप) हूँ।’

हम लोग सम्मोहन-विद्या के सारे तत्त्व जानते हैं। हमारी जो मनस्तत्त्व-विद्या है, उसके विषय में पाश्चात्य देशवालों ने हाल ही में थोड़ा थोड़ा जानना प्रारम्भ किया है, परन्तु दुःख की बात है कि अभी तक वे उसे पूर्ण रूप से नहीं जान सके हैं।

प्रश्न—आप लोग ‘ऐस्ट्रल बॉडी’ (astral body) किसे कहते हैं ?

उत्तर—हम उसे लिङ्ग-शरीर कहते हैं। जब इस देह का नाश होता है, तब दूसरे शरीर का ग्रहण किस प्रकार होता है ? जड़-भूत को छोड़कर शक्ति नहीं रह सकती। इसलिए सिद्धान्त यह है कि देहत्याग होने के पश्चात् भी सूक्ष्म-भूत का कुछ अंश हमारे साथ रह जाता है। भीतर की इन्द्रियाँ इस सूक्ष्म-भूत की सहायता से और एक नूतन देह तैयार कर लेती हैं, क्योंकि प्रत्येक ही अपनी अपनी देह बना रहा है—मन ही शरीर को तैयार करता है। यदि मैं साधु बनूँ, तो मेरा मस्तिष्क साधु के मस्तिष्क में परिणत हो जायगा। योगी कहते हैं कि वे इसी जीवन में अपने शरीर को देव-शरीर में परिणत कर सकते हैं।

योगी अनेक चमत्कार दिखाते हैं। कोरे मतवादों की राशि की अपेक्षा अल्प अभ्यास का मूल्य अधिक है। अतएव मुझे यह कहने का अधिकार नहीं है कि अमुक अमुक बातें घटती हैं नही देखी, इसलिए वे मिथ्या हैं। योगियों के ग्रन्थों में लिखा है कि अभ्यास के द्वारा सब प्रकार के अति अद्भुत फलों की प्राप्ति हो सकती है। नियमित रूप से अभ्यास करने पर अल्प काल में ही थोड़े-बहुत फल की प्राप्ति हो जाती है, जिससे यह जाना जा सकता है कि इसमें कुछ कपट या धोखेबाजी नहीं है। और इन सब शास्त्रों में जिन अलौकिक बातों का उल्लेख है, योगी वैज्ञानिक रीति से उनकी व्याख्या करते हैं। अब प्रश्न यह है कि ससार की सभी जातियों में इस प्रकार के अलौकिक कार्यों का विवरण कैसे लिपिबद्ध किया गया ? जो व्यक्ति कहता है कि ये सब मिथ्या हैं, अतः इनकी व्याख्या करने

की कोई आवश्यकता नहीं उसे युक्तिवादी विचारक नहीं कहा जा सकता। जब तक आप उन बातों को अमान्यक प्रमाणित नहीं कर सकते तब तक उन्हें अस्वीकार करने का अधिकार आपको नहीं है। आपको यह प्रमाणित करना हीना कि इन सबका कोई आपार नहीं है, तभी उनको अस्वीकार करने का अधिकार आपको होगा। परन्तु आप लोगों ने तो ऐसा किया नहीं। दूसरी ओर, योगी कहते हैं कि ये सब व्यापार वास्तव में अशुभ नहीं हैं और वे इस बात का वादा करते हैं कि ऐसी क्रियाएँ वे अभी भी कर सकते हैं। भारत में आज भी अनेक अशुभ बटगाएँ होती रहती हैं परन्तु उनमें से कोई भी किसी बमत्कार द्वारा नहीं बटवी। इस विषय पर अनेक ग्रन्थ विद्यमान हैं। जो हो यदि वैज्ञानिक रूप से मनस्त्व की मासोचना करने के प्रयत्न को छोड़कर इस विद्या में अधिक और कुछ न हुआ हो तो भी इसका साथ श्रेय योगियों को ही देना चाहिए।

प्रश्न—योगी क्या क्या बमत्कार दिखा सकते हैं इसके उदाहरण क्या आप दे सकते हैं?

उत्तर—योगियों का कथन है कि अन्य किसी विज्ञान की बर्षा करने के लिए जितने विश्वास की आवश्यकता होती है, योग विद्या के निमित्त उससे अधिक विश्वास की जरूरत नहीं। किसी विषय को स्वीकार करने के बाद एक मात्र व्यक्ति उसकी सत्यता की परीक्षा के लिए जितना विश्वास करता है उससे अधिक विश्वास करने को योगी लोग नहीं कहते। योगी का आदर्श अतिशय उच्च है। मन की शक्ति से जो सब कार्य ही सकते हैं उनमें से निम्नतर कुछ कार्यों को मने प्रयत्न देना है। बल में इस पर अविश्वास नहीं कर सकता कि उच्चतर कार्य भी मन की शक्ति द्वारा ही सकते हैं। योगी का आदर्श है—सर्वज्ञता और सर्वशक्तिमत्ता की प्राप्ति कर उनकी सहायता से धारत्व शान्ति और प्रेम का अधिकारी हो जाना। मैं एक योगी को जानता हूँ जिन्हें एक बड़े बिरसे सर्प ने काट लिया था। सर्वबंध टूटते ही वे बेहोश हो जमीन पर गिर पड़े। सम्प्रा के समय वे हीन में आये। उनसे जब पूछा गया कि क्या हुआ था तो वे बोले 'मिरे प्रियतम के पाश में एक बूट आया था। इन महारमा की घारी बूना कोप और हिंसा का भाव पूर्ण रूप से दण्ड ही बुरा है। कोई भी पाश उन्हें बहला देने के लिए प्रयत्न नहीं कर सकती। वे सर्वदा अमन्त प्रेममन्त्रण हैं और प्रेम की शक्ति से सर्वशक्तिमान ही गये हैं। बल ऐसा व्यक्ति ही यथार्थ योगी है, और यह सब शक्तियों का विकास—अनेक प्रकार के बमत्कार शिवाभावा—गौरव मान है। यह सब प्राप्त कर केना योगी का लक्ष्य नहीं है। योगी बटते हैं कि योगी के अतिरिक्त अन्य सब मानो मुनाम हैं—जाने-बने के मुनाम आनी रती के मुनाम आने लड़के-बच्चों के मुनाम धय-नीसे क

गुलाम, स्वदेशवासियो के गुलाम, नाम-यश के गुलाम, जलवायु के गुलाम, इस ससार के हज़ारो विषयो के गुलाम ! जो मनुष्य इन वन्वनों मे से किसीमे भी नही फँसें, वे ही यथार्थ मनुष्य हैं—यथार्थ योगी है।

इहैव तैजित सर्गो येषा साम्ये स्थित मन ।

निर्दोष हि सम ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः ॥'

—'जिनका मन साम्यभाव मे अवस्थित है, उन्होने यही ससार पर जय प्राप्त कर ली है। ब्रह्म निर्दोष और समभावापन्न है, इसलिए वे ब्रह्म मे अवस्थित हैं।'

प्रश्न—क्या योगी जाति-भेद को विशेष आवश्यक समझते हैं ?

उत्तर—नही, जाति-विभाग तो उन लोगो को, जिनका मन अभी अपरि-पक्व है, शिक्षा प्रदान करने का एक विद्यालय मात्र है।

प्रश्न—इस समाधि-तत्त्व के साथ भारत की गर्म जलवायु का तो कुछ सम्बन्ध नही है ?

उत्तर—मैं तो ऐसा नही समझता। कारण, समुद्र-धरातल से पन्द्रह हज़ार फीट की ऊँचाई पर, सुमेरु के समान जलवायुवाले हिमालय मे ही तो योगविद्या का उद्भव हुआ था।

प्रश्न—ठण्डी जलवायु मे क्या योग मे सिद्धि प्राप्त हो सकती है ?

उत्तर—हाँ, अवश्य ही सकती है। और ससार मे इसकी प्राप्ति जितनी सम्भव है, उतनी सम्भव और कुछ भी नही है। हम कहते है, आप लोग—आपमें से प्रत्येक, जन्म से ही वेदान्ती है। आप अपने जीवन के प्रत्येक मुहूर्त मे ससार की प्रत्येक वस्तु के साथ अपने एकत्व की घोषणा कर रहे हैं। जब कभी आपका हृदय ससार के कल्याण के लिए उन्मुख होता है, तभी आप अनजान मे सच्चे वेदान्तवादी हो जाते हैं। आप नीतिपरायण हैं, पर यह नही जानते कि आप क्यो नीतिपरायण हो रहे हैं। एकमात्र वेदान्त दर्शन ही नीति-तत्त्व का विश्लेषण कर मनुष्य को ज्ञानपूर्वक नीतिपरायण होने की शिक्षा देता है। वह सब घर्मों का सारस्वरूप है।

प्रश्न—आपके मत मे क्या हम पाश्चात्यो मे ऐसा कुछ असामाजिक भाव है, जिसके कारण हम इस तरह बहुवादी और भेदपरायण बन रहे हैं, और जिसके अभाव के कारण प्राच्य देश के लोग हमसे अधिक सहानुभूतिसम्पन्न हैं ?

उत्तर—मेरे मत में पारश्वर्य जाति अधिक निर्वय स्वभाव की है और प्राण्य देश के लोग सब भुवों के प्रति अधिक दयासम्पन्न हैं। परन्तु इसका कारण यही है कि आपकी सम्पत्ता बहुत ही आधुनिक है। किसीके स्वभाव को दयालु बनाने के लिए समय की आवश्यकता होती है। आपमें सक्ति काशी है परन्तु जिस मात्रा में शक्ति का संभव हो रहा है, उस मात्रा में हृदय का विकास नहीं हो पा रहा है। बिधेपकर मन संयम का अभ्यास बहुत ही अल्प परिमाण में हुआ है। आपको साधु और सान्त प्रकृति बनने में बहुत समय लगेगा। पर भारतवासियों के प्रत्येक एक-बिन्दु में यह भाव प्रवाहित हो रहा है। यदि मैं भारत के किसी गाँव में जाकर वहाँ के लोगों को राजनीति की शिक्षा देनी चाहूँ तो वे उसे नहीं समझेंगे। परन्तु यदि मैं उन्हें वेदान्त का उपदेश दूँ तो वे कहेंगे 'हैं स्वामी जी अब हम आपकी बात समझ रहे हैं—आप ठीक ही कह रहे हैं। आज भी भारत में सर्वत्र यह वैराग्य या अनासक्ति का भाव देखने में आता है। आज हमारा बहुत पतन हो गया है परन्तु अभी भी वैराग्य का प्रभाव इतना अधिक है कि राजा भी अपने राज्य को त्यागकर, साधु में कुछ भी न लेता हुआ देश में सर्वत्र पर्यटन करेगा।

वहीं कहीं पर गाँव की एक साधारण लड़की भी अपने परदे से सूत काठते समय कहती है—मुझे वैठबाव का उपदेश मत सुनाओ मेरा चरखा तक 'सोइ' 'सोइ' कह रहा है। इन लोगों के पास जाकर उनसे मार्गसाध कीलिए और उनसे पूछिए कि जब तुम इस प्रकार 'सोइ' कहते हो तो फिर उस पत्थर को प्रणाम क्यों करते हो? इसके उत्तर में वे कहेंगे आपकी दृष्टि में तो धर्म एक मठबाव मात्र है पर हम तो धर्म का अर्थ प्रत्यक्षानुभूति ही समझते हैं। उनमें से कोई शायद कहेगा 'मैं तो तभी यथार्थ वेदान्तवादी होऊँगा जब सारा संसार मेरे सामने से अन्तर्हित हो जायगा जब मैं सत्य के दर्शन कर सकूँगा। जब तक मैं उस स्थिति में नहीं पहुँचता तब तक मुझमें और एक साधारण अज्ञ व्यक्ति में कोई अन्तर नहीं है। यही कारण है कि मैं प्रस्तर-मूर्ति की उपासना कर रहा हूँ मन्दिर में जाता हूँ जिससे मुझे प्रत्यक्षानुभूति ही आय। मैंने वेदान्त का ध्वष किया तो है, पर मैं अब उस वेदान्त प्रतिपाद्य आत्म-तत्त्व को देखना चाहता हूँ—उसका प्रत्यक्ष अनुभव कर सकना चाहता हूँ।

बाम्बेदरी शम्भदरी छात्रव्याख्यातकीसतम्।

बैकुण्ठ्यं विदुषां तत्रमुपगतये न तु मुक्तये॥<sup>१</sup>

—‘धाराप्रवाह रूप से मनोरम सद्वाक्यों की योजना, शास्त्रों की व्याख्या करने के नाना प्रकार के कौशल—ये केवल पण्डितों के आमोद के लिए ही हैं, इनके द्वारा मुक्ति-लाभ की कोई सम्भावना नहीं है।’ ब्रह्म के साक्षात्कार से ही हमें उस मुक्ति की प्राप्ति होती है।

प्रश्न—आध्यात्मिक विषय में जब सर्वमाधारण के लिए इस प्रकार की स्वाधीनता है, तो क्या इस स्वाधीनता के साथ जाति-भेद का मानना मेल खाता है ?

उत्तर—कदापि नहीं। लोग कहते हैं कि जाति-भेद नहीं रहना चाहिए, इतना ही नहीं, बल्कि जो लोग भिन्न भिन्न जातियों के अन्तर्गत हैं, वे भी कहते हैं कि जाति-विभाग कोई बहुत उच्च स्तर की चीज नहीं है। पर साथ ही वे यह भी कहते हैं कि यदि तुम इससे अच्छी कोई अन्य वस्तु हमें दो, तो हम इसे छोड़ देंगे। वे पूछते हैं कि तुम इसके बदले हमें क्या दोगे ? जाति-भेद कहाँ नहीं है, बोलो ? आप भी तो अपने देश में इसी प्रकार के एक जाति-विभाग की सृष्टि करने का प्रयत्न सर्वदा कर रहे हैं। जब कोई व्यक्ति कुछ अर्थ सग्रह कर लेता है, तो वह कहने लगता है कि ‘मैं भी तुम्हारे चार सौ घनिकों में से एक हूँ।’ केवल हमी लोग एक स्थायी जाति-विभाग का निर्माण करने में सफल हुए हैं। अन्य देशवाले इस प्रकार के स्थायी जाति-विभाग की स्थापना के लिए प्रयत्न कर रहे हैं, किन्तु वे सफल नहीं हो पा रहे हैं। यह सच है कि हमारे समाज में काफी कुसंस्कार और बुरी बातें हैं, पर क्या आपके देश के कुसंस्कारों तथा बुरी बातों को हमारे देश में प्रचलित कर देने से ही सब ठीक हो जायगा ? जाति-भेद के कारण ही तो आज भी हमारे देश के तीस करोड़ लोगों को खाने के लिए रोटी का एक टुकड़ा मिल रहा है। हाँ, यह सच है कि रीति-नीति की दृष्टि से इसमें अपूर्णता है। पर यदि यह जाति-विभाग न होता, तो आज आपको एक भी संस्कृत ग्रन्थ पढ़ने के लिए न मिलता। इसी जाति-विभाग के द्वारा ऐसी मजबूत दीवारों की सृष्टि हुई थी, जो शत शत बाहरी चढाइयों के बावजूद भी नहीं गिरी। आज भी वह प्रयोजन मिटा नहीं है, इसीलिए अभी तक जाति-विभाग बना हुआ है। सात सौ वर्ष पहले जाति-विभाग जैसा था, आज वह वैसा नहीं है। उस पर जितने ही आघात होते गये, वह उतना ही दृढ़ होता गया। क्या आप यह नहीं जानते कि केवल भारत ही एक ऐसा राष्ट्र है, जो दूसरे राष्ट्रों पर विजय प्राप्त करने अपनी सीमा से बाहर कभी नहीं गया ? महान् सम्राट् अशोक यह विशेष रूप से कह गये थे कि उनके कोई भी उत्तराधिकारी परराष्ट्र विजय के लिए प्रयत्न न करें। यदि कोई अन्य जाति हमारे यहाँ प्रचारक भेजना चाहती है, तो भेजे, पर वह हमारी वास्तविक सहायता ही करे, जातीय सम्पत्ति-



स्वरूप हमारा जो धर्म-भाव है उसे क्षति न पहुँचावे। ये सब विभिन्न जातियों हिन्दू जाति पर विजय प्राप्त करने के लिए क्यों आयीं? क्या हिन्दुओं ने अन्य जातियों का कुछ अनिष्ट किया था? बल्कि जहाँ तक गम्मब था उन्होंने संसार का उपकार ही किया था। उन्होंने संसार को विज्ञान दर्शन और धर्म की शिक्षा दी तथा संसार को अनेक असम्य जातियों को सम्य बनाया। परन्तु उसके बदले में उनको क्या मिला?—रक्तपात। अत्याचार!! और दुष्ट 'काफिर' यह घृण नाम!!! वर्तमान कास में भी पारपाल्य व्यक्तियों द्वारा लिखित भारत सम्बन्धी ग्रन्थों को पढ़कर देखिए तथा वहाँ (भारत में) भ्रमण करके कसिए जो शोक गये थे उनके द्वारा लिखित आख्यायिकाओं को पढ़िए। आप देखेंगे उन्होंने भी हिन्दुओं को 'हिन्दन' कहकर गाधियाँ दी हैं। मैं पूछता हूँ, भारतवासियों ने ऐसा कौन सा अनिष्ट किया है जिसके प्रतिशोध में उनके प्रति इस प्रकार की सख्णपूर्ण बातें कही जाती हैं?

प्रश्न—सम्यता के विषय में बेबाग की क्या धारणा है?

उत्तर—आप दार्शनिक लोग हैं—आप यह नहीं मानते कि धर्मों की बीबी पास रहने से ही मनुष्य मनुष्य में कुछ भेद उत्पन्न ही जाता है। इन सब कल-कारखानों और पढ़-बिखानों का मुख्य क्या है? उनका तो बस एक ही फल देखने में आता है—वे सर्वत्र ज्ञान का विस्तार करते हैं। आप अभाव अथवा दारिद्र्य की समस्या को हल नहीं कर सके बल्कि आपने तो अभाव की मात्रा और भी बढ़ा दी है। धर्मों की सहायता से 'दारिद्र्य-समस्या' का कभी समाधान नहीं हो सकता। उनके द्वारा जीवन-संग्राम और भी तीव्र हो जाता है। प्रतिपे-दिता और भी बढ़ जाती है। पढ़-प्रकृति का क्या कोई स्वतन्त्र मूल्य है? कोई व्यक्ति यदि तार के माध्यम से बिजली का प्रवाह भेज सकता है तो आप उसी समय उसका स्मारक बनाने के लिए उद्यत हो जाते हैं। क्यों! क्या प्रकृति स्वयं यह कार्य काजों बार नित्य नहीं करती? प्रकृति में सब कुछ क्या पहले से ही विद्यमान नहीं है? आपको उसकी प्राप्ति हुई भी तो उससे क्या काम? वह तो पहले से ही वहाँ वर्तमान है। उसका एकमात्र मूल्य यही है कि वह हमें मीठर से उन्नत बनाता है। यह जन्म मानो एक व्यायामशाला के सवृष है—इसमें जीवात्माएँ अपने अपने कर्म के द्वारा अपनी अपनी उन्नति कर रही हैं और इसी उन्नति के फलस्वरूप हम देवस्वरूप या इन्द्रास्वरूप हो जाते हैं। अब किंचित विषय में ईश्वर की कितनी अभिभ्यक्ति है यह जानकर ही उस विषय का मुख्य या सार निर्धारित करना चाहिए। सम्यता का अर्थ है, मनुष्य में इसी ईश्वरत्व की अभिभ्यक्ति।

प्रश्न—क्या बौद्धों में भी किसी प्रकार का जाति-विभाग है ?

उत्तर—बौद्धों में कभी कोई विशेष जाति-विभाग नहीं था, और भारत में बौद्धों की संख्या भी बहुत थोड़ी है। बुद्ध एक समाज-सुधारक थे। फिर भी मैंने बौद्ध देशों में देखा है, वहाँ जाति-विभाग की सृष्टि करने के बहुत प्रयत्न होते रहे हैं, पर उसमें सफलता नहीं मिली। बौद्धों का जाति-विभाग वास्तव में नहीं जैसा ही है, परन्तु मन ही मन वे स्वयं को उच्च जाति मानकर गर्व करते हैं।

बुद्ध एक वेदान्तवादी सन्यासी थे। उन्होंने एक नये सम्प्रदाय की स्थापना की थी, जैसे कि आजकल नये नये सम्प्रदाय स्थापित होते हैं। जो सब भाव आजकल बौद्ध धर्म के नाम से प्रचलित हैं, वे वास्तव में बुद्ध के अपने नहीं थे। वे तो उनसे भी बहुत प्राचीन थे। बुद्ध एक महापुरुष थे—उन्होंने इन भावों में शक्ति का संचार कर दिया था। बौद्ध धर्म का सामाजिक भाव ही उसकी नवीनता है। ब्राह्मण और क्षत्रिय ही सदा से हमारे आचार्य रहे हैं। उपनिषदों में से अधिकांश तो क्षत्रियों द्वारा रचे गये हैं, और वेदों का कर्मकाण्ड भाग ब्राह्मणों द्वारा। समग्र भारत में हमारे जो बड़े बड़े आचार्य हो गये हैं, उनमें से अधिकांश क्षत्रिय थे, और उनके उपदेश भी बड़े उदार और सार्वजनीन हैं, परन्तु केवल दो ब्राह्मण आचार्यों को छोड़कर शेष सब ब्राह्मण आचार्य अनुदार भावसम्पन्न थे। भगवान् के अवतार के रूप में पूजे जानेवाले राम, कृष्ण, बुद्ध—ये सभी क्षत्रिय थे।

प्रश्न—सम्प्रदाय, अनुष्ठान, शास्त्र—ये सब क्या तत्त्व की उपलब्धि में सहायक हैं ?

उत्तर—तत्त्व-साक्षात्कार हो जाने पर मनुष्य सब कुछ छोड़ देता है। विभिन्न सम्प्रदाय, अनुष्ठान, शास्त्र आदि की वही तक उपयोगिता है, जहाँ तक वे उस पूर्णत्व की अवस्था में पहुँचने के लिए सहायक हैं। परन्तु जब उनसे कोई सहायता नहीं मिल पाती, तब अवश्य उनमें परिवर्तन करना चाहिए।

सक्ता. कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत ।

कुर्याद्विद्वास्तयासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसग्रहम् ॥

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञाना कर्मसंजिनाम् ।

जोषयेत्सर्वकर्मणि विद्वान् युक्त समाचरन् ॥<sup>१</sup>

—अर्थात् 'ज्ञानी व्यक्ति को कभी भी अज्ञानी की अवस्था के प्रति घृणा प्रदर्शित नहीं करनी चाहिए और न उनकी अपनी अपनी साधन-प्रणाली में उनके विश्वास

को नष्ट ही करना चाहिए बल्कि ज्ञानी व्यक्ति को चाहिए कि वह उनको ठीक ठीक मार्ग प्रदर्शित करे, जिससे वे उस अवस्था में पहुँच जायें जहाँ वह स्वयं पहुँचा हुआ है।

प्रश्न—वेदान्त 'व्यक्तित्व' (individuality) और नीतिशास्त्र की व्याख्या किस प्रकार करता है ?

उत्तर—वह पूर्ण ब्रह्म यथार्थ अविनाश्य व्यक्तित्व ही है—माया द्वारा उसने पृथक् पृथक् व्यक्ति के आकार धारण किये हैं। कर्मसंसार से ही इस प्रकार का बोध हो रहा है पर वास्तव में वह सबैक वही पूर्ण ब्रह्मस्वरूप है। वास्तव में सत्ता एक है पर माया के कारण वह विभिन्न रूपों में प्रतीत हो रही है। यह समस्त भेद-बोध माया में है। पर इस माया के भीतर भी सर्वथा उची एक की ओर लौट जान की प्रवृत्ति बनी हुई है। प्रत्येक पण्डित के समस्त नीतिशास्त्र और समस्त आचरणशास्त्र में यही प्रवृत्ति अभिव्यक्त हुई है क्योंकि यह ही जीवात्मा का स्वभावगत प्रयोजन है। यह उची एकत्व की प्राप्ति के लिए प्रयत्न कर रही है—और एकत्व प्राप्त के इस संघर्ष को हम नीतिशास्त्र और आचरणशास्त्र कहते हैं। इसीलिए हमें सर्वथा उन्हें अभ्यास करना चाहिए।

प्रश्न—नीतिशास्त्र का अधिकतम भाग क्या विभिन्न व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्ध को ही लेकर नहीं है ?

उत्तर—नीतिशास्त्र एकदम यही है। पूर्ण ब्रह्म कभी माया की सीमा के भीतर नहीं आ सकता।

प्रश्न—आपने कहा कि 'मैं' ही वह पूर्ण ब्रह्म है—मैं आपसे पूछनीवाला था कि इस 'मैं' या 'अहं' का कोई ज्ञान रहता है या नहीं ?

उत्तर—यह 'अहं' या 'मैं' उची पूर्ण ब्रह्म की अभिव्यक्ति है, और इस अभिव्यक्त ब्रह्म में उसमें जो प्रकाश-सक्ति कार्य कर रही है उसीको हम 'ज्ञान' कहते हैं। इसीलिए उस पूर्ण ब्रह्म के ज्ञानस्वरूप में 'ज्ञान' शब्द का प्रयोग ठीक नहीं है क्योंकि वह पुनर्विस्था को इस सापेक्ष ज्ञान के परे है।

प्रश्न—वह सापेक्ष ज्ञान क्या पूर्ण ज्ञान के अन्तर्गत है ?

१ अंग्रेजी के individual शब्द में 'अ-विनाश्य' और 'व्यक्ति' दोनों भाव निहित हैं। स्वामी जी जब उत्तर में कहते हैं कि 'ब्रह्म ही यथार्थ individual है' तब प्रबन्धीत ज्ञान को अर्थात् उपपन्न-अपन्न-हीन अविनाशिता को वे व्यक्त करते हैं। फिर वे कहते हैं कि उस सत्ता ने माया के कारण पृथक् पृथक् व्यक्ति के आकार धारण किये हैं। स

उत्तर—सुकृत द्वारा। सुकृत दो प्रकार के हैं सकारात्मक और नकारात्मक। 'चोरो मत करो'—यह नकारात्मक निर्देश है, 'परोपकार करो'—यह सकारात्मक है।

प्रश्न—परोपकार उच्च अवस्था में क्यों न किया जाय, क्योंकि निम्न अवस्था में वैसा करने से साधक भवबन्धन में पड़ सकता है ?

उत्तर—प्रथम अवस्था में ही इसे करना चाहिए। आरम्भ में जिसे कोई कामना रहती है, वह भ्रान्त होता है और बन्धन में पड़ता है, अन्य लोग नहीं। धीरे धीरे यह बिल्कुल स्वाभाविक बन जायगा।

प्रश्न—स्वामी जी ! कल रात आपने कहा था, 'तुममें सब कुछ है।' तब यदि मैं विष्णु जैसा बनना चाहूँ, तो क्या मुझे केवल इस मनोरथ का ही चिन्तन करना चाहिए अथवा विष्णु रूप का ध्यान करना चाहिए ?

उत्तर—सामर्थ्य के अनुसार इनमें से किसी मार्ग का अनुसरण किया जा सकता है।

प्रश्न—आत्मानुभूति का साधन क्या है ?

उत्तर—गुरु ही आत्मानुभूति का साधन है। 'गुरु बिनु होइ कि ज्ञान।'

प्रश्न—कुछ लोगों का कहना है कि ध्यान लगाने के लिए किसी पूजा-गृह में बैठने की आवश्यकता नहीं है। यह कहाँ तक ठीक है ?

उत्तर—जिन्होंने प्रभु की विद्यमानता का ज्ञान प्राप्त कर लिया है, उनके लिए इसकी आवश्यकता नहीं है, लेकिन औरों के लिए है। किन्तु साधक को सगुण ब्रह्म की उपासना से ऊपर उठकर निर्गुण ब्रह्म की उपासना की ओर अग्रसर होना चाहिए, क्योंकि सगुण या साकार उपासना से मोक्ष नहीं मिल सकता। साकार के दर्शन से आपको सासारिक समृद्धि प्राप्त हो सकती है। जो माता की भक्ति करता है, वह इस दुनिया में सफल होता है, जो पिता की पूजा करता है, वह स्वर्ग जाता है, किन्तु जो साधु की पूजा करता है, वह ज्ञान तथा भक्ति लाभ करता है।

प्रश्न—इसका क्या अर्थ है क्षणमिह सज्जन सगतिरेका आदि—'सत्सग का एक क्षण भी मनुष्य को इस भवलोक के परे ले जाता है' ?

उत्तर—सच्चे साधु के सम्पर्क में आने पर सत्पात्र मुक्तावस्था प्राप्त कर लेता है। सच्चे साधु विरले होते हैं, किन्तु उनका प्रभाव इतना होता है कि एक महान् लेखक ने लिखा है, 'पाखंड वह कर है, जो दुष्टता सज्जनता को देती है।' दुष्ट जन सज्जन होने का ढोंग करते हैं। किन्तु अवतार कपाल-मोचन होते हैं, अर्थात् वे लोगों का दुर्भाग्य पलट सकते हैं। वे मारे विश्व को हिला सकते

प्रश्न—क्या गीता में श्री कृष्ण के विश्व रूप में जिस दिव्य ऐश्वर्य का वर्णन कराया गया है वह श्री कृष्ण के रूप में निहित अल्प सद्गुण उपाधियों के बिना गोपियों से उनके सम्बन्ध में व्यक्त प्रेम भाव के प्रकाश से स्पष्टतर है?

उत्तर—दिव्य ऐश्वर्य के प्रकाश की अपेक्षा निश्चय ही वह प्रेम हीनतर है जो प्रिय के प्रति भगवत्प्रभावना से रहित हो। यदि ऐसा न होता तो हाङ्ग-मांस के शरीर से प्रेम करनेवासे सभी भोग मोक्ष प्राप्त कर लेते।

८

(पुरु, अवतार, योग, अथ सेवा)

प्रश्न—वेदाङ्ग के अन्त्य तक कैसे पहुँचा जा सकता है?

उत्तर—अव्यक्त मनन और निर्विघ्नासन द्वारा। किसी सद्गुरु से ही अव्यक्त करना चाहिए। चाहे कोई नियमित रूप से शिष्य न हुआ हो पर अथर्व विज्ञान सुपात्र है और वह सद्गुरु के शिष्यों का अव्यक्त करता है तो उसकी मुक्ति हो जाती है।

प्रश्न—सद्गुरु कौन है?

उत्तर—सद्गुरु वह है, जिसे गुरु-परम्परा से आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त हुई है। अध्यात्म गुरु का कार्य बड़ा कठिन है। बुराओं के पापों को स्वयं अपने ऊपर लेना पड़ता है। कम अनुभूत व्यक्तियों के पतन की पूरी आसंका रहती है। यदि धार्मिक पीड़ा मान लो तो उसे अपने को सामान्य समझना चाहिए।

प्रश्न—क्या अध्यात्म गुरु विज्ञान सुपात्र नहीं बना सकता?

उत्तर—कोई अवतार बना सकता है। साधारण गुरु नहीं।

प्रश्न—क्या मोक्ष का कोई सरल मार्ग नहीं है?

उत्तर—'प्रेम को पथ कृपा को चारु'—केवल उन लोगों के लिए आसान है, जिन्हें किसी अवतार के सम्पर्क में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ हो। परमहंस कह कहा करते थे—जिसका यह आशिरी अम्न है वह किसी न किसी प्रकार से मर वर्णन कर लेगा।

प्रश्न—क्या उसके लिए योग सुषम मार्ग नहीं है?

उत्तर—(मन्त्रादि में) आपने गुरु कहा समझा!—योग सुषम मार्ग! यदि आपका मन निर्मल न होया और आप योगमार्ग पर आसक्त होंगे तो आपको कुछ अनौचित्य सिद्धियाँ मिल जायेंगी परन्तु वे फकावटें होंगी। इसलिये मन की निर्मलता प्रथम आवश्यकता है।

प्रश्न—इसका उपाय क्या है?

प्रश्न—क्या जीव-सेवा मात्र से मुक्ति मिल सकती है ?

उत्तर—जीव-सेवा प्रत्यक्ष रूप से तो नहीं, परोक्ष रूप से आत्मशुद्धि द्वारा मुक्ति प्रदान कर सकती है। किन्तु यदि आप समुचित रूप से किसी कार्य के करने की इच्छा रखते हैं, तो सम्प्रति उसे ही पूर्ण पर्याप्त समझिए। किसी भी पथ में खतरा है मुमुक्षा के अभाव का। निष्ठा का होना आवश्यक है, अन्यथा विकास न होगा। इस समय कर्म पर जोर देना आवश्यक ही गया है।

प्रश्न—कर्म में हमारी भावना क्या होनी चाहिए—परोपकारमूलक करुणा या अन्य कोई भावना ?

उत्तर—करुणाजन्य परोपकार उत्तम है, परन्तु शिव ज्ञान से सर्व जीव की सेवा उससे श्रेष्ठ है।

प्रश्न—प्रार्थना की उपादेयता क्या है ?

उत्तर—सोयी हुई शक्ति प्रार्थना से आसानी से जाग उठती है और यदि सच्चे दिल से की जाय, तो सभी इच्छाएँ पूरी हो सकती हैं, किन्तु अगर सच्चे दिल से न की जाय, तो दस में से एक की पूर्ति होती है। परन्तु इस तरह की प्रार्थना स्वार्थपूर्ण होती है, अतः वह त्याज्य है।

प्रश्न—नर-रूपधारी अवतार की पहचान क्या है ?

उत्तर—जो मनुष्यों के विनाश के दुर्भाग्य को बदल सके, वह भगवान् है। कोई भी साधु, चाहे वह कितना भी पढ़ूँचा हुआ क्यों न हो, इस अनुपम पद के लिए दावा नहीं कर सकता। मुझे कोई ऐसा व्यक्ति नहीं दिखायी पड़ता, जो रामकृष्ण को भगवान् समझता हो। हमें कभी कभी इसकी धुँवली प्रतीति मात्र हो जाती है, बस। उन्हें भगवान् के रूप में जान लेने और साथ ही ससार से आसक्ति रखने में सगति नहीं है।

९

(भगिनी निवेदिता के कुछ प्रश्नों के उत्तर<sup>१</sup>)

प्रश्न—पृथ्वीराज एव चंद्र जिस समय कन्नौज में स्वयंवर के लिए जाने को प्रस्तुत हुए, उस समय उन्होंने किनका छद्मवेश धारण किया था—मुझे याद नहीं आ रहा है ?

उत्तर—दोनों ही भाट का वेष धारण कर गये थे।

---

१ ये उत्तर स्वामी जी ने सैन फ्रांसिस्को से मई २४, १९०० ई० को एक पत्र में लिखे थे। स०

हैं। सबसे कम खतरनाक और पूजा का सर्वोत्तम तरीका किसी मनुष्य को पूजा करना है जिसने मानव में ब्रह्म के होने का विश्वास प्रतिष्ठित कर लिया उसने विश्व व्यापी ब्रह्म का साक्षात्कार कर लिया। विभिन्न परिस्थितियों के अनुसार संन्यस्त जीवन तथा गृहस्थ जीवन दोनों ही संयुक्त हैं। केवल ज्ञान आवश्यक वस्तु है।

प्रश्न—ध्यान कहाँ लगाना चाहिए—शरीर के भीतर या बाहर? मन को भीतर समेटना चाहिए जबका बाह्य प्रवेस में स्थापित करना चाहिए?

उत्तर—हमें भीतर ध्यान लगाने का यत्न करना चाहिए। कहाँ तक मन के इधर-उधर भागने का सवाल है मनीष्य कोष में पहुँचने में कम्मा समय समेया। अभी तो हमारा संघर्ष शरीर से है। जब आसन सिद्ध हो जाता है तभी मन से संघर्ष आरम्भ होता है। आसन सिद्ध हो जाने पर अन्तःप्रत्यय निश्चल हो जाता है—और साधक चाहे जितने समय तक बैठा रह सकता है।

प्रश्न—कभी कभी अप से बकान माझूम होने लगती है। तब क्या उसकी शक्ति स्वाध्याय करना चाहिए, या उन्हीं पर आरुढ़ रहना चाहिए?

उत्तर—यों कारणों से अप में बकान माझूम होती है। कभी कभी मस्तिष्क बक जाता है और कभी कभी आसुर्य के परिणामस्वरूप ऐसा होता है। यदि प्रथम कारण है तो उस समय कुछ क्षण तक अप छोड़ देना चाहिए, क्योंकि हठपूर्वक अप में धने रहने से विभ्रम या विक्लिप्तावस्था भावि जा जाती है। परन्तु यदि द्वितीय कारण है तो मन को बलात् अप में लगाना चाहिए।

प्रश्न—कभी कभी अप करते समय पहले आनन्द की अनुभूति होती है लेकिन तब आनन्द के कारण अप में मन नहीं लगता। ऐसी स्थिति में क्या अप जारी रखना चाहिए?

उत्तर—हाँ वह आनन्द आध्यात्मिक साधना में साधक है। उसे रसास्वादन कहते हैं। उससे ऊपर उठना चाहिए।

प्रश्न—यदि मन इधर-उधर भागता रहे तब भी क्या देर तक अप करते रहना ठीक है?

उत्तर—हाँ उसी प्रकार जैसे अगर किसी बबलास घोड़े की पीठ पर कोई अपना भासल जमाये रहे तो वह उस बक में कर सेता है।

प्रश्न—आपने अपने 'मन्त्रिपीठ' में लिखा है कि यदि कोई कमखोर आधमी योगाभ्यास का यत्न करता है तो और प्रतिक्रिया होती है। तब क्या किया जाय?

उत्तर—यदि आरगञ्जान के प्रयास में मर जाना पड़े तो भय किस बात का। आनन्दन तथा अग्न ब्रह्म ही वस्तुओं के लिए मरने में मनुष्य को भय नहीं होता और धर्म के लिए मरने में आप भयभीत क्यों हों?

प्रश्न—क्या जीव-सेवा मात्र से मुक्ति मिल सकती है ?

उत्तर—जीव-सेवा प्रत्यक्ष रूप से तो नहीं, परोक्ष रूप से आत्मशुद्धि द्वारा मुक्ति प्रदान कर सकती है। किन्तु यदि आप समुचित रूप से किसी कार्य के करने की इच्छा रखते हैं, तो सम्प्रति उसे ही पूर्ण पर्याप्त समझिए। किसी भी पथ में खतरा है मुमुक्षा के अभाव का। निष्ठा का हीना आवश्यक है, अन्यथा विकास न होगा। इस समय कर्म पर जोर देना आवश्यक हो गया है।

प्रश्न—कर्म में हमारी भावना क्या होनी चाहिए—परोपकारमूलक करुणा या अन्य कोई भावना ?

उत्तर—करुणाजन्य परोपकार उत्तम है, परन्तु शिव ज्ञान से सर्व जीव की सेवा उससे श्रेष्ठ है।

प्रश्न—प्रार्थना की उपादेयता क्या है ?

उत्तर—सोयी हुई शक्ति प्रार्थना से आसानी से जाग उठती है और यदि सच्चे दिल से की जाय, तो सभी इच्छाएँ पूरी हो सकती हैं, किन्तु अगर सच्चे दिल से न की जाय, तो दस में से एक की पूर्ति होती है। परन्तु इस तरह की प्रार्थना स्वार्थपूर्ण होती है, अतः वह त्याज्य है।

प्रश्न—नर-रूपधारी अवतार की पहचान क्या है ?

उत्तर—जो मनुष्यों के विनाश के दुर्भाग्य को बदल सके, वह भगवान् है। कोई भी साधु, चाहे वह कितना भी पहुँचा हुआ क्यों न हो, इस अनुपम पद के लिए दावा नहीं कर सकता। मुझे कोई ऐसा व्यक्ति नहीं दिखायी पड़ता, जो रामकृष्ण को भगवान् समझता हो। हमें कभी कभी इसकी घुँघली प्रतीति मात्र हो जाती है, बस। उन्हें भगवान् के रूप में जान लेने और साथ ही ससार से आसक्ति रखने में सगति नहीं है।

९

(भगिनी निवेदिता के कुछ प्रश्नों के उत्तर<sup>१</sup>)

प्रश्न—पृथ्वीराज एव चद जिस समय कन्नौज में स्वयंवर के लिए जाने को प्रस्तुत हुए, उस समय उन्होंने किनका छद्मवेश धारण किया था—मुझे याद नहीं आ रहा है ?

उत्तर—दोनों ही माट का वेष धारण कर गये थे।

---

१ ये उत्तर स्वामी जी ने सैन फ्रांसिस्को से मई २४, १९०० ई० को एक पत्र में लिखे थे। स०



प्रश्न—क्या पूष्पीराज ने संयुक्ता के साथ इसलिए विवाह करना चाहा था कि वह ब्रह्मीक कन्या थी तथा उसके प्रतिहारी की पुत्री थी? संयुक्ता की परिचारिका होने के लिए क्या उन्होंने अपनी एक बारी को सिखा-पढ़ाकर वहाँ भेजा था? और क्या इसी बूढ़ा बाबी ने राजकुमारी के हृदय में पूष्पीराज के प्रति प्रेम का बीज अंकुरित किया था?

उत्तर—दोनों ही परस्पर के स्म-गुणों का वर्णन सुनकर तथा चित्र ब्रह्म-कौमुद कर एक दूसरे के प्रति आकृष्ट हुए थे। चित्र-वर्धन के द्वारा नायक-नायिका के हृदय में प्रेम का संचार भारत की एक प्राचीन रीति है।

प्रश्न—गोप बाबूकों के बीच में कृष्ण का प्रतिपादन कैसे हुआ?

उत्तर—ऐसी भविष्यवाणी हुई थी कि कृष्ण कंस को सिंहासन से विध्वस्त करेंगे। इस मय से कि ब्रह्म सेने क बाबू कृष्ण कहीं गुप्त रूप से प्रतिपादित हों हुएचारी कंस ने कृष्ण के माता-पिता को (यद्यपि वे कंस की बहुत बुराई की थी) कैद में डाल रखा था तथा इस प्रकार का आवेग दिया कि उद्योग से राज्य में बिठने बाबूक पैदा होंगे उन सबकी हत्या की जायगी। अत्याचारी कंस के हाथ से रक्षा करने के लिए ही कृष्ण के पिता ने उन्हें गुप्त रूप से यमुना पार पहुँचाया था।

प्रश्न—उनके जीवन के इस अध्याय की परिसमाप्ति किस प्रकार हुई थी?

उत्तर—अत्याचारी कंस के द्वारा आमन्त्रित होकर वे अपने भाई ब्रह्मदेव तथा अपने पाकक पिता ब्रह्म के साथ राजसभा में पधारे। (अत्याचारी ने उनकी हत्या करने का वकल्प रखा था।) उन्होंने अत्याचारी का वध किया। किन्तु स्वयं राजा न बनकर कंस के निकटतम उत्तराधिकारी को उन्होंने राजसिंहासन पर बैठाया। उन्होंने कनी कर्म के फल को स्वयं नहीं सोया।

प्रश्न—इस समय की किसी नाटकीय घटना का उल्लेख क्या आप कर सकते हैं?

उत्तर—इस समय का जीवन ब्रह्मीक बटमारों से परिपूर्ण था। बाबूक बस्पा में वे अत्यन्त ही संवत्त थे। संवत्तता के कारण उनकी गोपिका माता ने एक दिन उन्हें बधिमन्थन की रस्मी से बाँधना चाहा था। किन्तु अनेक उन्मिषों को ओढ़कर भी वे उन्हें बाँधने में समर्थ न हुईं। तब उनकी दृष्टि तुली और उन्होंने देखा कि जिनको वे बाँधने जा रही हैं उनके शरीर में समग्र ब्रह्माण्ड अविच्छिन्न है। डरकर कोपती हुई वे उनकी स्तुति करने लगीं। तब भगवान् ने उन्हें पुनः माया से आधुन किया और एकमात्र बही बाबूक उन्हें दृष्टिपोचर हुआ।

देवश्रेष्ठ ब्रह्मा को यह विश्वास न हुआ कि परब्रह्म ने ही गोप बालक का रूप धारण किया है। इसलिए परीक्षा के निमित्त एक दिन उन्होंने समस्त गायों को तथा गोप बालक को चुराकर एक गुफा में निद्रित कर रखा। किन्तु वहाँ से लौटकर उन्होंने देखा कि वे ही गायें तथा गोप बालक कृष्ण के चारों ओर विद्यमान हैं। वे फिर उनको भी चुरा कर ले गये एव उन्हें भी छिपाकर रखा। किन्तु लौटने पर फिर उन्हें वे ही ज्यों के त्यों दिखायी देने लगे। तब उनके ज्ञान-नेत्र खुले, उन्होंने देखा कि अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड तथा सहस्र सहस्र ब्रह्मा कृष्ण की देह में विराजमान हैं।

कालिय नाग ने यमुना के जल को विपाक्त कर डाला था, इसलिए उन्होंने उसके फन पर नृत्य किया था। उनके पारा इन्द्र की पूजा वन्द किये जाने के फल-स्वरूप क्रुपित होकर इन्द्र ने जब इस प्रकार प्रबल वेग से जल वरसाना प्रारम्भ किया कि समस्त ब्रजवासी मानो उसमें डूबकर मर जायेंगे, तब कृष्ण ने गोवर्धन-धारण किया। कृष्ण ने एक अगुली से छत्र की तरह गोवर्धन पर्वत को ऊपर उठाकर धारण किया, और उसके नीचे सभी ने आश्रय लिया।

बाल्यकाल से ही वे नाग-पूजा तथा इन्द्र-पूजा के विरोधी थे। इन्द्र-पूजा एक वैदिक अनुष्ठान है। गीता में सर्वत्र यह स्पष्ट है कि वे वैदिक अनुष्ठानों के पक्षपाती नहीं थे।

अपने जीवन में इसी समय उन्होंने गोपियों के साथ लीला की थी। उस समय उनकी आयु ग्यारह वर्ष की थी।

## अनुक्रमणिका

- अंकन-पद्धति २८४  
 अंग्रेज १५-५ उनका भोजन ८३  
 उनका सुदृढ़ सिंहासन ५९ उनकी  
 मूल विशेषता ५९ उनकी व्यवसाय  
 बुद्धि ५९ और अमेरिकन ८८ ९  
 ९६ और फ्रांसीसी ९ पाठि ७९,  
 १५५ तथा मुसलमान २८९ पुरुष  
 ६७ सज्जन १९ स्त्रियाँ १९  
 अंधवी अनुवाद ३६६ औदार ११४  
 दैनिक ३६४ पड़नेवाले १५५  
 बोलनेवाली पाठि २०६ भाषा  
 ९ (पा टि) १४९, २९१  
 मित्र १९ साम्यकाल १२४  
 वाक्य २०४ घासन १२५ शिक्षा  
 ३२१ सम्यता का निर्माण २८९  
 सरकारी कर्मचारी ४८  
 अंध आत्म-विनाश २८६  
 अंधविश्वास ५, २४२, २५४ २८७  
 २९५ और अंध विधि-विधान  
 २४२ बौद्धिक २९३ विश्ववादी  
 श्रेण २५६ (बेसिए कुसंस्कार)  
 अक्षर ९३  
 'अक्षर एकाक्षर' ३२३  
 अक्षर ब्रह्म २१५  
 अक्षि ४ २१३ ३५१ कुण्ड ३  
 भारतीय २६ परीक्षा २५७  
 पुराण ५१  
 अक्षय स्मृति ७२  
 'अक्षय' ५३ (बेसिए धूम)  
 अज्ञान ४१ ३७४ उसका कारण  
 ४१ उसका विरोध २१८  
 अज्ञानी ३४३  
 अज्ञेयवाद ३७ २७४  
 अटलान्ठिक २७ महासागर २८५  
 मतिभ्रतन ज्ञान २१५  
 अतीत और भविष्य २९५  
 अतीन्द्रिय अवस्था ४३ शक्ति १३९  
 अपरमेय सहिता १६२  
 अपवृत्तार ३३६  
 अईत ३८१ आत्म ९ (पा  
 टि), उसकी उपलब्धि २१८  
 और ईत ३४ और विधिप्राप्त  
 ३५९ ज्ञान ३३६, ३३८, ३७३  
 तत्त्व ३३७ ३७४ मत ३३७  
 ३५९ बुद्ध सारक्य में ३४  
 सत्य ३३४ ३५  
 अईतवाद ३७४-७५, १५ ईतवाद  
 का विरोधी नहीं ३८३  
 अईतवादी १ २५३ २८१ ३८३,  
 ३८६ और उनका कथन २८२  
 कष्ट १ ८  
 अईतान्ठ स्वामी ३५५  
 अम्भारम और अभिमूढ जगत् १  
 नुब ३९८ तत्त्वविद् १५१ वर्तन  
 १२ वादी ३१ २५९ विद्या  
 १३५, १४२ विचर १६५  
 अम्भ्यापन-कार्य १२६, ३४७  
 मानस ३२४ स्वप्न १६२  
 जलाधार ३२९  
 जनात्मा ३७४  
 जनासक्ति ३९२  
 'जनुमानगम्य' ३५९  
 जनेक १८४  
 जन्मान १५९  
 जन्म भावना २२ -विरवात ३६,  
 १२ १५१ १८६, २१७

- अन्नदान ६१  
 अपरा १५९, एव परा विद्या मे भेद  
 १५९, विद्या ३८८  
 अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य २८३  
 अपसम्मोहन ३८८  
 'अपील एवलाश' २७, ३५, २४८  
 अपोलो क्लब २३६  
 अफगानिस्तान ६३, १२३  
 अफ्रीका ४९, ६७, ९१, १११  
 अफ्रीदी ६५  
 'अभाव' से 'भाव' की उत्पत्ति ३८०  
 अभिव्यक्ति ३९६  
 अभीष्ट लक्ष्य, मानवीय वधुता ३८  
 अमगल ३७५-७६  
 अमरावती ९३  
 अमरीकी जनता २२७, प्रेस २४१  
 (पा० टि०)  
 अमृत का सेतु ३५०  
 अमृत पुत्र ३५१  
 अमृतबाजार ३३९  
 अमेरिकन २७, ७५, ८१, ८९, २७८,  
 और पैसा २७०, कन्याएँ ९०,  
 जाति २४६, ढग २२९, परिवार  
 ९०, पुरुष २६५, भक्त २२०,  
 मित्र १९३ (पा० टि०), लडकी  
 २६३, शिष्य २०३ (पा० टि०),  
 सवाददाता २२९ (पा० टि०),  
 समाचारपत्र २७ (पा० टि०),  
 स्वातन्त्र्य घोषणा-दिवस २०३  
 (पा० टि०)  
 अमेरिका ६, १४, ४९, ६३, ६९,  
 ७८-९, ८१, ८५-६, ९१, २२२,  
 २३८, २४८, २६०, २६५, २७०,  
 २८०, २८५, २८९, ३२५, ३४१-  
 ४२, ३५४, ३६६, ३७५, ३७८-  
 ८०, उसका अहंकार २१७, उसके  
 आदिवासी २४१, और भारत  
 २१७, महाद्वीप १०१, वहाँ  
 स्त्री-पूजा का दावा २६५, वाले  
 ९५, २३८, वासी २४९, ३४०,  
 विरोधी २७५, सयुक्त राज्य २२७  
 (पा० टि०)  
 अमेरिकी, उनकी नारी के प्रति सम्मान-  
 भावना २७७, जाति २७७,  
 वैज्ञानिकी २८३, व्याख्यान-मंच  
 २७६, स्त्रियाँ १९  
 अम्बापाली १५४  
 अरब ९२, १०७, १३४, २८५,  
 जाति ९१, निवासी २७, मरु-  
 भूमि १०५-६, वाले २८५  
 अरबी १०७, खलीफा १०७  
 अर्जुन ५०, ५४, १४३, ३३०-३२,  
 ३४९, ३५७-५८  
 अलीपुर ३५४  
 अलौकिक ज्ञान-प्राप्ति १३९, तथा  
 लौकिक १६०, सिद्धियाँ ३९८  
 अल्मोडा १८९ (पा० टि०), १९३  
 (पा० टि०), ३६५  
 अवतार ३४८, उसकी पहचान ४०१,  
 पुरुष ३४८  
 अवतारत्व १६०  
 अवस्था-भेद ३१७  
 अवस्था, सात्त्विक ५४  
 'अविद्या' १३५, अज्ञान १००  
 अशुभ, अहिर्मन २८१, उसका इलाज  
 २९२, उसका कारण २९२-९३,  
 उसका फल १७३ (देखिए असत्)  
 अशोक, धर्मसम्राट् ८६, महान् सम्राट्  
 ३९३, महाराज ६४, सम्राट्  
 ७४, २८४  
 अश्वमेध १३५  
 अष्टाग योग १५८  
 असत् १९६-९७, २४२, ३७४, उससे  
 सत् का आविर्भाव नहीं ११६,  
 प्रवृत्ति ३७४ (देखिए अशुभ)  
 असीरियन जाति ३००  
 असुर कन्या १०७, जाति १०६, वश  
 १०७, विजयी १०४, सेना १०६  
 'अह' २५८-५९, ३७४, ३९६, क्षुद्र  
 २६०

आहुंकार ३४ २२ ३२८  
 अहिंसा ५१  
 अहिंसा परमो धर्म २८२

आकाश और प्राण-तत्त्व ३८२  
 आगरा २२४

आचरणदास्य ११७ ३९६

आचार ५८ और पाश्चात्य शासन  
 शक्ति १३७ और रीति १४९  
 नैतिक २७५ विचार ६ ध्येय  
 हार ३२९ शास्त्र २८३-८४  
 संहिता २७४ स्त्री सम्बन्धी और  
 विभिन्न वैया ९६

आचार ही पहला धर्म ७२

आत्म उसका अर्थ ३७१ -वर्षा ३५

-चित्तन २८ -जयी १७३ ज्ञान  
 ११९ ४ -तत्त्व २१५ ३५४  
 ३८७ ३९२ त्याग २३४ निर्भर  
 ३७१ रसा और धर्म रसा १ ९  
 रसा और राज्य की सृष्टि १ ३  
 विष् १ ९ -सृष्टि ४ १ -संयम  
 २३३ -सम्मान की भावना २२३  
 -सम्मोहन विद्या ३८७ -साक्षात्कार  
 ११९ स्वल्प २१३

आत्मा १६ २५६ ३२, ३६ ४  
 ६३ ६८, १२६ १२८ २९ १४४  
 १७३ १७९ १९९ २ २ २ ५,  
 २२ २४ २४७ २५३ २५८,  
 २६६, २६९ २७८ २९२, ३५  
 ३५८ अनस्य ३१ अपरिचित  
 ३१ अमृत का सेतु ३५ अवि  
 नश्वर १२ अविभाग्य २५८  
 इन्द्रियातीत ४ ईश्वर का शरीर  
 २२ उसका अन्तर्निहित विषयत्व  
 २४२ उसका एक से दूसरे शरीर  
 में प्रवेश २७ उसका देहान्तर  
 मन २७२ उसका प्रकाश ४  
 २२२ उसका प्रभाव २५८  
 उसकी उपलब्धि ३ उसकी बधा  
 ३७ उसकी रोग ३७९ उसकी

देहान्तर प्राप्ति २६८ उसकी  
 प्रकृति १५७ उसकी मुक्ति २६८  
 उसकी व्यक्तिगत सत्ता २६८  
 उसके अस्तित्व २९६ उसके आवा-  
 यमन का सिद्धांत २८ ३७९-८  
 उसके अन्तर्गत में विश्वास २९  
 एक मुक्त सत्ता २५७ एकारमक  
 तत्व २४ और बड़ में अन्तर ३१  
 और मन ४ कार्य-कारण से परे  
 ३६ क्रियाहीन ३१ चिन्तन  
 नित्य ३७१ द्वारा प्रकृति-परि-  
 शासन ३१ द्वारा मन का प्रयोग  
 २६७ धर्म का मूलमूल आचार  
 २६७ न मन है, न शरीर २३  
 नित्यमुक्त १७४ ३४४ निर्धिय  
 २५७ परम अस्तित्व ३१ पूर्व  
 २४२ प्रतिबिम्ब की मति अल्प  
 २५७ मन तथा अहं से परे २६७  
 मनुष्य का वास्तविक स्वरूप २६७  
 महिमा मयी १९१ मानवीय २३  
 क्लिप्तमुक्त १४४ शून्य ३१ समस्त  
 ३१ सर्वगत १७४ स्वतन्त्र तत्व  
 २९९

आत्माओं की आत्मा २ ७

आत्मा के पुनर्जन्म २७ २४९

आत्मानुभूति उसका साधन ३९९

आत्मतपसम्मोहन ३८८

आत्म १५७

आदर्श उसकी अधिव्यक्ति ४६

राष्ट्रीय ६ आद १८ आनी

२४५ व्यक्तिगत ३७२

आदिम अवस्था में स्त्रियों की स्थिति

१ २ निवासी ६३ मनुष्य

रचना रूढ़-सहृद १ १

आविवाही ३६ और परमेश्वर की

कल्पना ३५

आधुनिक पश्चिम ६३४ २४

बगाड़ी १३३ विद्या ३५

आध्यात्मिक अद्यतनता १२५ उत्पत्ति

२४३ ३५६ उपविष्टक १२

खोज २५३, चक्र १३६, जीवन २१, ज्ञान १६०, तरंग १३४, द्विगज ६, ११, ३५५, पहलू २९४, प्रतिभा २३०, प्रभाव ४१, प्रभुता १२०, प्रयोजन १५७, वाढ ३७२, भूमिका १७, मार्ग ३७९, मृत्यु २९०, यथार्थ ४३, लहर ४०, विषय ३९३, व्यक्ति ३०, शक्ति २१९, ३९८, समता ११९, समानता १२३, सहायता १६, ३६३, साक्षात्कार १२३, साधना १२४, ४००, सौन्दर्य ३७७, स्वाधीनता ५९

अनुवशिक पुरोहित वर्ग १२१

'आप भले तो जग भला' ३२०

आपद्नाता—क्षत्रिय ११०

'आपेरा हाउस' २४१

आप्त वेद ग्रन्थ ११८

आभ्यान्तरिक शुद्धि ६८

आयरिश ११४

भारती ३६७

आर० बी० स्नोडेन, कर्नल २४५

आर्ट पैलेस २३२

आर्थर स्मिथ, श्रीमती २७८

आर्य १०९-१०, ११८, २५०,

उनका उद्देश्य ११२, उनका गठन

और वर्ण ६४, उनका पारिवारिक

जीवन ११७, उनका योगदान

११६, उनकी काव्य-कल्पना

११७, उनकी दयालुता १११,

उनकी विद्या का बीज १६४,

उनकी विशेषता २६४, उनके

वस्त्र ८६, उनके सव्रभ मे भ्रमपूर्ण

इतिहास ११०, ऋषि ११६,

एव म्लेच्छ १४०, और अमेरिका

२४२, और जगली जाति १११,

और यूनानी १३४, और वर्णश्रम

की सृष्टि ११२, चारित्रिक विशेषता

११७, जाति ६३-४, ११६,

१३९, ३००, ३०२, जाति का

इतिहास ३६, ज्योति २६४, द्वारा आविष्कृत वेद १४०, धर्म १२२, नाटक और ग्रीक नाटक १६५, परिवार का सगठन १२२, प्रवास ३६४, महान् जाति २४६, लोग ८२, वर्ग ११८, वेदिका १९५, शान्तिप्रिय १०९, शिल्पकला १६५, सन्तान १४०, सम्प्रदाय १११-१२, १२२, समाज १४१, १४९ (पा० टि०)

आर्यसमाजी और खाद्य सबधी वाद-विवाद ७५

आर्यतर जाति १२२

आलमबाजार मठ ३३९, ३५२

आलार्सिगा ३४१, पेरुमल ३५२

आलोचना, उसके अभाव से हानि १५९

आल्प्स २५८, २६०

आत्मागमन १७३, उसका सिद्धान्त ३७९

आश्रम २३३, -विभाग १५३

आश्रय-दोष ७३

आसन ३६१

आसुरी शक्ति ३६

आस्ट्रिया ९९, वहाँ का बादशाह ९८

आस्ट्रेलिया ४९, ६७, १११, ११३, निवासी १५९

आहार ३१४, उसकी शुद्धता से मन शुद्ध ७२, उसके अभाव से शक्ति-ह्रास ७२, और आत्मा का सबध ७२, और उसकी तुलना ७६, और जाति ८४, और जातिगत स्वभाव ३२७, और मुसलमान ८३, और यहूदी ८३, जन्म-कर्म के भेद से भिन्नता ७५, प्राच्य मे ८२, रामानुजाचार्य के अनुसार ७२, शंकराचार्य के अनुसार ७२, शब्द का अर्थ ७२, सम्बन्धी विधि-निषेध ८३, सम्बन्धी विचार ७८

आह्लिक कृत्य ३१२

शक्ति ६ १४ १९, ८५, ८९, ९४  
 १८, १२४ १३३ १४९-५०  
 १५३ २३५, २५१ ३६६ और  
 अमेरिका ८९  
 शब्दा-संभार १९९  
 इटली ६९, ८१ ९३ १६ १८  
 २२४ निवासी ९३ वहाँ के पोप  
 १६  
 इट्सकन १ ६  
 'इम्बियन मिरर' ३३९ ३६४  
 'इम्बिया हाउस' १४९  
 इतिहास उसका जर्म १३२  
 'इतौ मट्टस्ततौ भ्रष्ट' १३७  
 इन्द्र ४ ३ वेवराज ३६ पुरी  
 ९२ पूजा ४ ३ मठर्षण ३६  
 इन्द्रमनुष्य ३३४  
 'इन्द्रिमन्थ्य ज्ञान' ७२  
 इन्द्रिय २ ७ पाँच २९८ भोज  
 जमित मुख ३३ स्वाद की २१८  
 इमामबाका १४५  
 इकाहामाद ८४  
 इमनिंग म्बुख २५४  
 इष्टदेव ५५, ३६१  
 इसलाम उसकी समीक्षा २८१ जर्म  
 ३७७ मठ २१८  
 इसकीमो जाति ६२, ८२  
 इसलाम जर्म १ ७ ११३-१४ १२३  
 इसलामी सम्प्रदा १४५  
 'इहलोक' और 'परलोक' २१७  
 ई टी स्टर्डी ३५५  
 ईरान ८७ १५९  
 ईरानी १३४ ३ उनके कर्मके  
 ८७  
 ईस-केन-कठ (उपनिषद्) ३४९  
 ईस-निगा २२ प्रेम २६१ ६२  
 ईस्वर २२ २८, ३३ ३८, ४१ २, १२७  
 १५८, १७५, २१४ १५, २३  
 २३५, २४४ २५१ २५८, २६९,  
 २६४ २७९-८ ३७४-७५, ३७९

अनादि अनिबन्धनीय अनन्त धार  
 ३३८ आत्मा की आत्मा २२  
 आनन्द २२ उनका सार्वभौम  
 पिता-माता ३८ उनके केन्द्रीय मुख  
 २४७ उपासना के लिए उपासना  
 २९९ उसका अस्तित्व (सत्) २२  
 उसका ज्ञाता बाह्य ३ ४ उसका  
 ज्ञान (चित्) २२ उसका प्रेम ४८,  
 २६२ उसका वास्तविक मंदिर  
 २९७ उसका सच्चा प्रेमी २६२  
 उसकी कल्पना २१ उसकी प्रथम  
 अभिव्यक्ति ३ २ उसकी सत्ता  
 २८२ उसके कर्म के लिए कर्म २९९  
 उसके तीन रूप २६१ उसके प्रतीक  
 २४८ उसके प्रेम के लिए प्रेम २९९  
 उससे मित्र अभिव्यक्ति नहीं ४२  
 और निरुद्ध कीट १९३ और परलोक  
 ३८ और मनुष्य का उपादान ४  
 और मुपित २४ और विश्व-मोक्षना  
 ३३ और सृष्टि ३८ कृपा १३  
 अपत् का रचयिता २७३ तत्व  
 २२ तथा काक २७१ निर्या  
 यिक २२ निर्गुण ३ २ परम  
 २२ परिभाषा २१३ पवित्र  
 २५३ पाकक और संहारक २७२  
 पावता और उपासना २६९  
 पूजा २१ पूर्व २४३ प्रत्येक  
 वस्तु का सर्वनिष्ठ कारण २४  
 प्रेम २३४ प्रेम प्रेम के लिए २६९,  
 २९७ विस्वासी का ज्ञाता २४७  
 वैयक्तिक ४ २९९ समुच्च २१  
 २६८, २९९, ३ २, ३ ५, ३८४  
 ३८८ समुच्च और निर्गुण २९७  
 सपुत्र रूप में गारी ३ २ सर्व-  
 सत्त्वमान २४३ -साक्षात्कार २८२  
 सत्ता २६९  
 'ईस्वर का कित्त्व और मनुष्य का  
 भावत्व' २७८  
 ईस्वरत्व उसका ज्ञान २१९ उसकी  
 अभिव्यक्ति ३९४

- ईश्वरीय शक्ति १५२  
 ईर्ष्या-द्वेष, जातिसुलभ १४२, प्रति-  
 द्वन्दिता १६८  
 ईसप की कहानियाँ २८५  
 'ईसा-अनुसरण' ३४४-४५  
 ईसाई, अमेरिका के २४८, आदर्श ३०२,  
 उनका अत्याचार २८०, उनका ईश्वर  
 २५८, उनकी आलोचना २७४,  
 उनकी क्रियाशीलता ९, उनके अव-  
 गुण २७३, उनके नैतिक स्वलन  
 २७५, और उनका धर्म २७३,  
 और मुसलमान की लड़ाई १०७,  
 और मुसलमान धर्म ११२, और  
 हिन्दू २९८, कैथोलिक २७१, जगत्  
 १६१, डाइन २६५, देश २३५,  
 २५२, २५४, देहात्मवादी १५०, धर्म  
 ९२, १०६, ११२-१४, १६१, २३५-  
 ३६, २४२, २४९, २५२, २५९,  
 २६१, २७४, २७७, २८३-८४,  
 २८६, ३०९-१०, ३८५, धर्म और  
 इस्लाम ११३, धर्म और भारतवासी  
 की धारणा २८५, धर्म और  
 वर्तमान यूरोप ११३, धर्म की  
 त्रुटि ११३, धर्म की नीव २८४,  
 धर्मग्रथ ११३, धर्म-प्रचारक २७२,  
 धर्म, बुद्ध धर्म से प्रभावित २८४,  
 पादरी ३७, ८८, १५१, ३०२,  
 पुरातनवादी २४९, प्रेम में स्वार्थी  
 २६२, बनने के लिए धर्मों का  
 अगीकार २४३, मत २१८,  
 २५९, २७३, २८४, मिशनरी  
 ३०९, ३१३, ३३१, मिशनरी,  
 उनके अतिरिजित विवरण २५६,  
 राष्ट्र २७३, शिक्षक २४८, शिक्षा  
 २९५, सघ २७, २६५, सच्चा, एक  
 सच्चा हिन्दू २१९  
 ईसा मसीह ४९, २८१, ३७६,  
 ३७८-७९  
 ईस्ट इण्डिया १४८  
 'ईस्ट चर्च' २३०
- उक्ति-संग्रह १५५  
 उडवर्ड एवेन्यू २६१  
 उडिया ८२  
 उडीसा ८०  
 उत्तराखण्ड ८६  
 उत्तरी घुव १३२  
 उत्तरोत्तर सत्य से सत्य पर २९७  
 उद्जन ३३६, और ओषजन ३३६  
 'उद्धार' २५७  
 उद्धारवाद २७२  
 'उद्बोधन' (पत्र) १३२, १३७, १६१  
 (पा० टि०), १६७ (पा० टि०), ३३९,  
 ३५६, उसका उद्देश्य १३६  
 उन्नति, मानसिक १०९  
 उपनिषद् १२०, १२३, १५७, ३८३,  
 ३९५, कठ २४९, ३५० (पा० टि०),  
 ३८८ (पा० टि०), कौषीतकी ३६०,  
 तैत्तिरीय ३८८ (पा० टि०), प्रसंग  
 ३५०, प्राचीनतम ३८५, बृहदारण्यक  
 ३५४, मुण्डक २२२, ३५०, वाणी  
 ३५०, श्वेताश्वतर ३५१ (पा० टि०),  
 ३८२ (पा० टि०)  
 उपयोगितावादी ३१५  
 उपासक, उनका वर्गीकरण २१५  
 उपासना, उसका अर्थ ३८६, प्रणाली  
 ३८७, साकार ३९९  
 ऊर्जा या जड़-सधारण का सिद्धान्त  
 ३७९  
 ऋग्वेद १९६ (पा० टि०), -प्रकाशन  
 १४८, -सहिता १४८  
 ऋतुपर्ण, राजा ८६  
 ऋषि ६, १२०, १५०, १८६, १९७,  
 २२२, २८२, उनकी परिभाषा  
 १३९, ज्ञानदीप्त १९९, प्राचीन  
 ३८०, मुनि १०९, १२६, मुनि,  
 पूर्वकालीन ३३५, वामदेव ३६०;  
 -हृदय १४१  
 ऋषित्व १६०, और वेद-दृष्टि १३९



एकरूप उसका ज्ञान ३९७ उसकी  
 और ३३३-३४ उसकी प्राप्ति  
 ३९६

एकाग्रता उसका महत्त्व ३८३ और योग  
 ३८३

'एडम्स पीक टु एलिफेन्टा' ३४६ ४७

एडवर्ड कारपेन्टर ३४६ ४७

एडा रेकार्ड २६७

एकेस्वरवाण ३६

एथिकल एसोसियेशन ३ ३ ३

एगिस्त्राम २३१

एमी बिस्सन कुमारी २७९

एनेसबेक २४५

एगिस्कोपक चर्च २३१

एथियाटिक क्वार्टर्ली रिव्यू १४९

एथिया १७ ११ ३ १०८, १३२ २६

मध्य १४ १२१ माइनर १ ५

१ ७-८ ३०२ बाछे २३५

एसोटेरिक बीज मठ १५१

'एसोसियेशन ड्राफ्ट' २७९ २८१

ऐम्को इन्डियन कर्मचारी १४९ समाज  
 १४९

ऐम्को सैस्सन बांति ३ २

ऐतिहासिक पत्रिका ३५७ उत्पानुत्थान  
 ३५७

'ऐस्ट्रक बोडी' ३८९

ओकरेड २३

'ओकरेड डिम्पून' (पत्रिका) २३

ओपर्ट (जर्मन पत्रिका) १६२

ओकार, उसका महत्त्व ५२

ओ ए ए ११६, २ ७

ओम् एस्ट एओम् १७३-७५

ओपनग ३३६

ओक्षियो तर्क २३५

ओद्योगिक कार्य २३ तथा २२९

पिका २२८, २३०-३१

ओपनिमेडिक साक्षात्क-स्थापना ९४

ओरिंगबेन ५९

ओस आप्पाचारी ४ २

ओटर बर्तवारी १ ८

ओठानिपद् ३४९-५ (पा० टि)

३८८ (पा टि०)

ओषा करवका की १४५ बालक

ओषा की १२६ ओंफ और धेर

की २५७ राजा और मनुष्य-स्वभाव

की ३२७-२८ सर्व और संघ्यायी

की ३२४

ओषा ६३

ओषी ४ १

ओषुघुघ ८८, ३७९

ओषाकुमारी १२

ओषा महापुत्र ३६४

ओषि कृषि ३८२

ओषी १२३

ओषोपी और धर्म २२

ओषा और प्रेम १९१

ओष ५

ओष आत्मा का नहीं २६९ उसका

अर्थ ३७५ उसका पत्र अक्षर्यभाषी

३३६ उसके नियम १७ उसमें

भावना ४ १ उसे करने का अवि-

कार १३८ काष्ठ १२३ ३९५

काष्ठ प्राचीन १२ काष्ठ विद्या

११८ नति १७४ निष्काम ३३

३५८ प्रकृति में ३१ पत्र ५३

मार्ग ५६ योग ३५६ वेद का

मता १४ शक्ति १७५

कककता १३ १९, ७८-८ ८३ ८७

११४ १४७, १६८ १८५ २२४

२६९-७ २९५, ३२१, ३३७, ३३७,

३६५ ३६ बासी ३६६

कका और प्रकृति ४३ और वस्तु ४३

नाटक कठिनता ४३ नाट्यीय

युनानी में अन्तर ४३ शक्ति और

वपार्थ साम्यात्मिक ४३ शक्ति की

अविष्कृति ४३

- कलियुग ९१  
कल्पना, अन्धविश्वासभरी ३६, एव  
परिकल्पना २८, मुक्ति की २५,  
स्वतंत्रता की २५  
कवि ककण ४२  
काग्रेस ऑफ ओरियेण्टलिस्ट १६१  
कास्टाटिनोपूल १०७, शहर १०६  
कास्टेटाइन ११२  
'कांफ्रे दे लिस्तोयार दि रिलिजिओ' १६१  
'कांफ्रेगेशनल चर्च' २३९, २४१  
कॉक (Cock) ११३  
कादम्बरी ४२  
कानन्द २७, २४३, २४८-४९, २५४,  
२६२-६७, २७०, २७४-७५ (देखिए  
विवेकानन्द, स्वामी)  
'काफिर' ३९४  
काबुल १०७  
काम, उसका मापदण्ड २१३, और मोक्ष  
२०८, -काचन ३७१, -क्रोध १३२,  
-दमन ३४६, -प्रवृत्ति ३४७, -यज्ञ-  
लिप्सा १७३  
कामिनी-काचन २१७  
कारण, उसका अस्तित्व २८, -धारा  
२०८, -कार्य-विधान १७३  
कारपेन्टर, एडवर्ड ३४६-४७, साहब  
३४७  
कार्लाइल ३२०  
कार्ल वॉन बरगेन, डॉ० २३९  
कार्य, अभीष्ट ३२१, व्यापार १९१,  
व्यावहारिक २९०  
कार्य-कारण २६, १८०, २१३, ३८४,  
उसका नियम २५, परम्परा २३-४,  
सिद्धान्त २८, वाद ११६  
काल और देश १९६  
कालिदास १६४-६५  
कालिय नाग ४०३  
कालीघाट ९१  
कालीमाई ४९  
काव्य, उसकी भाषा २२२, सिन्धु १३२  
काव्यात्मक भाव ११७
- काशी ९१, ९७, १६३  
काशीपुर ३४२  
काश्मीर ६३, ८४  
काश्य १२०  
किडी ३५२  
कीर्तन ३९  
कीर्ति २१७  
कुण्डलिनी ३७३, शक्ति ३६२  
कुतुबुद्दीन १०७  
कुमाऊं ८४  
कुमारिल ५६, १२२  
कुमारी एनी विल्सन २७९, एम० वी०  
एच० १८१, नोबल ३६६, सारा  
हम्बर्ट २७९  
कुम्भकर्ण २१८  
कुरान २१, २०४, २०७, २८१, ३३१,  
शरीफ ११३  
कुरुक्षेत्र ३३१, ३५७, रोग-शोक का ४७  
कुलगुरु ३६२  
कुसस्कार १८, ४७, ७३, ३९३ (देखिए  
अन्धविश्वास)  
'कूरियर हेरल्ड' २७५  
कृति और सघर्ष १८९  
कृषिजीवी देवता तथा मृगयाजीवी असुर  
१०३  
कृष्ण ३९, ११९, १२३, १२६-२७, १६३,  
१६५, २६८, ३३१-३२, ३४२,  
३५७-५८, ३६०-६१, ३९५, ३९८,  
४०२-३, उनकी शिक्षा २४८, और  
बुद्ध २४८  
कृष्णव्याल भट्टाचार्य १४६-४७  
केन्द्रगामी (centripetal) ३१३  
केन्द्रापसारी (centrifugal) ३१३  
केशवचन्द्र सेन, आचार्य १४९, १५३  
कैट, डॉ० २९४  
कैथोलिक चर्च, उसकी सेवा-पद्धति २८४,  
जगत् १६१  
'कैम्पस एलिसिस' ९७  
कैलास ४९  
क्रोध और हिंसा ३९०

एकत्र उसका ज्ञान ३९७ उसकी  
 और ३३३ ३४ उसकी प्राप्ति  
 ३९६  
 एकाग्रता उसका महत्त्व ३८३ और योग  
 ३८३  
 'एडमन्ड पीक टु एडिफ्रैन्ट' ३४६ ४७  
 एडमन्ड कारपोरेटर ३४६ ४७  
 एडा रेकार्ड २६७  
 एकेस्वरबाब ३६  
 एथिकल एसोसियेशन ३ ३ ३  
 एमिस्वाम २३१  
 एनी विस्तार कुमायी २७९  
 एनेसडेक २४५  
 एपिस्कोपल चर्च २३१  
 एशियाटिक क्वार्टर्ली रिव्यू १४९  
 एशिया ६७ ९१ ३ १०८, १३२ २६  
 मध्य ६४ १२१ माइलर १ ५,  
 १ ७-८ ३०२ बाके २३५  
 एसोटेरिक बीय मठ १५१  
 'एसोसियेशन हास' २७९, २८१

ऐम्बो इन्डियन कर्मचारी १४९ समाज  
 १४९  
 ऐम्बो सैनिक प्राप्ति ३ २  
 ऐतिहासिक यज्ञेयता ३५७ सत्यागुरुचरण  
 ३५७  
 'ऐस्ट्रल बोडी' ३८९

ओकमेड २३  
 'ओकमेड ट्रिग्युन' (पत्रिका) २३  
 ओपर्ट (जर्मन पत्रिका) १९९  
 ओकाट, उसका महत्त्व ५२  
 ओ उतु सतु ११६, २ ७  
 ओम् उतुतु ओम् १७३-७५  
 ओपनग ३३६  
 ओक्षियो उतु २३५

ओद्योगिक कार्य २३ श्या २२९  
 पिमा २२८, २३०-३१  
 ओद्योगिक आभ्यास-स्थापना ९४

ओरेंजवेड ५९  
 ओंस अत्याघाटी ४ २  
 ओप्टर अडैतवायी १ ८  
 ओपनिपद ३४९-५ (पा टि)  
 ३८८ (पा टि)  
 कथा करबता की १४५ बाकक  
 ओपाक की १२६ बेंक और घेर  
 की २५७ राजा और मनुष्य-स्वभाव  
 की ३२७-२८ छर्प और सम्पायी  
 की ३२४  
 कनाडा ६३  
 कनौज ४ १  
 कपुपुतस ८८, ३७९  
 कन्याकुमायी १२  
 कन्हार महाराज ३६४  
 कपिक श्रापि ३८२  
 कबीर १२३  
 कनखोटी और शक्ति २२  
 कवणा और डेम १९१  
 कर्म ५

कर्म आत्मा का नहीं २६९ उसका  
 चर्च ३७५ उसका एक अनर्स्वभायी  
 ३३६ उसके नियम १७ उसमें  
 मानना ४ १ उसे करने का बहि-  
 कर १३८ काण्ड १२३ ३९५  
 काण्ड प्राचीन १२ काण्ड विद्यार  
 ११८ गति १७४ निष्काम ३३  
 ३५८ प्रकृति मे ३१ एक ५३  
 मार्ग ५३ बीज ३५६ वेद का  
 भाव १४ शक्ति १७५  
 कलकता १३ १९, ७८-८ ८३ ८९,  
 ११४ १४९, १६८, १८५, २२४  
 २६९-७ २९५, ३२१, ३३६, ३३९,  
 ३३५ ६६ बायी ३३६  
 कला और प्रकृति ४३ और वस्तु ४३  
 नाटक कठिनतरम ४३ राष्ट्रीय  
 युवागी में अन्तर ४३ शक्ति और  
 बपार्च आध्यात्मिक ४३ सौन्दर्य की  
 अभिव्यक्ति ४३

घृणा ४०, ३९०, दृष्टि ३५८

चडीचरण ३४६, वाबू ३४६, ३४८,  
उनका चरित्र ३४७

चद ४०१

चक्रवर्ती, शरच्चन्द्र ३४८, ३६३

चट्टोपाध्याय, रामलाल ३४५

चन्द्र २०९, ३८८

चन्द्रमा ३२१, ३५१

चरित्र, उसका सर्वोच्च आदर्श ३७३,  
उसके विकास का उपाय ३७१

चाडाल ३०५

चांपातला (महल्ला) ३४१

चारण १०७

चारुचन्द्र मित्र ३४०

चार्वक, उनका मत ३३७

चाल-चलन ६०, प्राच्य, पाश्चात्य मे  
अन्तर ८८

चिकित्सा विज्ञान, आधुनिक २८४

चिटगांव १६८

चित्तौड-विजय ३०१

चित्रकार ११५

चित्र-दर्शन ४०२

चिरन्तन सत्य १५९

चिर ब्रह्मचारिणी १५४

चीन ४९, ६३, ८८, १५९, २७३,  
३२७, जाति ६३, जापान ४९,  
निवासी ६३, ६९, ८८, साम्राज्य  
१०७

चीनी, उनका भोजन ८२, भाषा  
८८, भोग-विलास के आदिगुरु  
८७

चेतन-अचेतन ३३३-३४, ३३७, ३९७,  
उसकी परिभाषा २९८

चेतना, उसके लिए आधार की कल्पना  
२७९

'चेट' (chant) २८४

चैतन्य १२३, १६७, बुद्धि ७५

चैतन्यदेव ७३

'चैरिटी फंड' ३२१

छठी इन्द्रिय २५३

छाया-शरीर ३७९

छुआछूत ७३, ८३, १३५

जगली जाति १११, वर्वर १०६

जगत् एक व्यायामशाला ३९४, कल्पना  
१६५, दृश्य ३७, वाह्य ३७६,  
बौद्धिक ३०४, भाव ४८, भौतिक  
और सीमित चेतना का परिणाम  
३३, मानसिक २१४, मायाधिकृत  
१४०

जगदम्बा ५४, १५६

जगदीशचन्द्र वसु, ३३४ (पा० टि०)

जगन्नाक २५६ (देखिए जगन्नाथ)

जगन्नाथ ११५, २५६, २८६, २८८,  
उसकी किंवदन्ती २५६, -रथ २२८,  
२३०

जड तत्त्व २६९, द्रव्य ३१, ३३, पदार्थ  
२४०, २७१, ३०३ ३१३, ३७५,  
बुद्धि ७५, वस्तु और विचार २१३,  
वादी ४८, ३०३, विज्ञान और  
कारखाना ३९४

जनक १४८, राजा १०९

जनता और धर्म २२८, और सन्यासी  
२६६

जन-धर्म १२१, -समाज, उसका विश्वास  
२६८

जन्म, पूर्व के प्रभाव का सिद्धान्त ३०२,  
-मरण १७५, १७७, -मृत्यु १७३

जप, उसमें थकान का कारण ४००, और  
ध्यान ३६२, -तप ३४४, हरिनाम  
का ५२

जफर्सन एवेन्यू २६१

जम्बूद्वीप १०५-६, १६२

जयपुर ११५

जयस्तभ, विजय-तोरण ९८

ज़रथुष्ट्र ३७९

जर्मन और अंग्रेज ९४, और रूसी ९०,  
दार्शनिक २८४-८५, पण्डित १६२,  
लोग ८८-९, वहाँ के महानतम

कमलिकास ३८२ और वैतन्य ३७६  
 क्रिटिक २३७  
 क्रिया-कर्म ८६  
 क्रिश्चियन भयिनी १९२ (पा टि )  
 क्लिष्टन एवेम्पू २८७  
 क्लिष्टन स्ट्रीट २८३  
 कथिय ६३ १५, ३ ४ भाष्यवाता  
 ११ और वैतन्य ३७२ भाति २५१  
 रत्नक ३ ४ शक्ति ३७२  
 मूड अर्ह २६

गुडविन ३४१ से से १९५ (पा टि )  
 गुण ठम १३६, १२९ रत्न ५४ १३५  
 ३६, २१८ १९ सत्त्व ५४ १३५-  
 ३६ सत्त्व का अस्तित्व १३६  
 मुद्र, उसका उपवेश ३३ उसका महत्त्व  
 १६ उसका विशेष प्रयोजन १५९  
 उसकी कृपा २१८ उसकी परिभाषा  
 ३७१ और विषय-संबंध ८ मुहूर्त्त  
 ३१९ वसिष्ठा ३६३ -परम्परा  
 ३९८ परम्परागत ज्ञान १५९  
 भाई ३६८ बाद, दामिक २२१

सम्पत्ता ३६३  
 बुद्ध गोविन्दसिंह पैगम्बर १२४  
 मुन्नेब १३ २ ४२, २३४ ३९७  
 (बेसिए रामहृत्त)

'बुद्ध विन ज्ञान नहीं' १५७  
 'बुद्ध विन ह्रीह कि ज्ञान' ३९९  
 'मुहूर्त्त गुणमुनेषु' ३४५

गुह राम्य १११  
 मुहूर्त्त बुद्ध ३१९  
 गुहस्वाभम ३६२  
 मेरुट, ठामस एऊ २४५

मोप १२८ कामक ४ २-३  
 मोपाक १३१ उसका मय १२९ उसकी  
 तमस्या १३ और कृष्ण से मेट  
 १२९ ३ काकाज बाकक १२८  
 २९ हृदयाराध्य १२७-२८

मोपाकनाल घील (स्व ) ३४२  
 मोमेन १३५  
 मोर्बाली ६५  
 मोरधर्म-वारण ४ ३  
 मोरिम बुद्ध ७

मौल (Gaulob) भाति ९२  
 म्रीक ८५, १ ५ ६, १३३ उनका ज्ञाने का  
 लपीका ८२ कोरत १६५ ज्योतिष  
 १६४ नाटक १६५ प्राचीन ८६  
 भाषा १६५ ६६ यथार्थिका १६५

मोस १५९, ३८१ और रोम ५६  
 म्बाचीन १६४  
 'सेनुए' दार्शनिक शब्द' ३८

कामेन ३४१ ३४८ (बेसिए विमलानन्द  
 स्वामी)  
 खेतकी १८८ ३२३  
 खेती-बाटी सम्पत्ता की भावि मिलि १ ५  
 खण ६३ भाति ३४

गंगा ७८, १ ५, २ ५, २ ९, ३६२,  
 ३६७ जल ७९ -वट १८२

'गत्यात्मक कर्म' २९०-९१ २९३  
 गमास्यार्थ पर्वत ५१ (पा टि )  
 गमासुर ५१ और बुद्धदेव ५१ (पा टि )

गवकात्म १ ३  
 'गमं शर्त' २२१  
 गाडोपुर ३१७  
 गान्धापी १ ७  
 गार्पी १४८

गार्जिनट एऊ ए शॉ २२८ २९  
 गौता ५३ ५, ५७ ९७ (पा टि )  
 ११९, १२३ १२७ (पा टि )  
 १२८ (पा टि ) १६५ ३६, २२३  
 २३७ ३२ ३३०-३२, ३४९  
 ३५९ ३९५ (पा टि ) ३९८

४ ३ उसका उपवेश ५५, ३३२  
 उसका पहला संवाद २२ एवं महा  
 भाष्य की भाषा १६५ और महा  
 भाष्य १६६ पर्वतमन्मथ पञ्च १६५

'गौता-जल' ३५६  
 गुजरात ८२  
 गुजराती पण्डित ३५१

जीवात्मा २१८-१९, २६९, २९६-९८,  
३०३-४, ३३२, ३७१, ३७४, ३७७,  
३९४, ३९६, अनन्त काल के  
लिए सत्य नहीं ३७८, उसका  
स्वभावगत प्रयोजन ३९३, मनुष्य-  
वृत्ति की समष्टिस्वरूप ३७७,  
विचार और स्मृति की समष्टि ३७८

'जुपिटर' २५०

जूलू १५९

जुद-अवेस्ता २८१

जे० एच० राइट, प्रो० २०४ (पा० टि०)

जे० जे० गुडविन १९५ (पा० टि०)

जे० पी० न्युमैन बिशप २३५

जेम्स, डॉ० ३००, ३०३, श्रीमती २८६

जेरुसलम १०७-८, २४७, और रोमन  
२५४

जेसुइट २३८, तत्त्व २३८

जैकब ग्रीन २३२

'जैण्टिलमैन' ८५

जैन ५१, ५४, ५९, ७४, ११९, २५३,  
धर्मावलम्बी और नैतिक विधान  
२८२, नास्तिक ३०३

जैमिनी सूत्र ५२

जोसेफिन, रानी ९९

ज्ञान ३५, ४०, अतिचेतन २१५,  
अधिभौतिक १५९, अलौकिक  
१३४, आत्म ४००, आत्मा की  
प्रकृति १५७, आध्यात्मिक १५९,  
आवश्यक वस्तु ४००, उपासना  
२५१, उसका अर्थ १००,  
उसका आदि स्रोत १५७, उसका  
दावा १५९, उसका लोप १५९,  
उसकी उत्पत्ति ३९७, उसकी स्फूर्ति,  
देश-काल पात्रानुसार १५८, उसके  
लाभ का उपाय १५९, उससे  
प्रेम २९६, एकत्व का ३९७, और  
अज्ञान ३३५, और धर्म ३१८, और  
भक्ति ३७४, और भाव २२२, और  
सुधार १८, काण्ड १४०, गुरु-परंपरा-  
गत १५९, चर्चा १५८, तथा भक्ति-

लाभ ३९९, द्वैत ३३५-३६, निरपेक्ष  
३३५, -नेत्र ४०३, पुस्तकीय १८,  
२१८, -प्राप्ति १३९, -भक्ति १५५,  
३५१, भक्ति, योग और कर्म २१८,  
मनुष्य की स्वभावसिद्ध सम्पत्ति  
१५७, -मार्ग और भक्तिमार्ग  
३७२, -मार्गी और भक्तिमार्गी का  
लक्ष्य २६१, मिथ्या ३३५, योग  
३५५, -लाभ ३८३, विहीन वर्ग  
और ईश्वर २३९, सबधी सिद्धान्त  
१५९, -सस्था २२१, सत्य ३३५,  
सम्यक् ३९७, सापेक्ष ३९७, स्वत-  
सिद्ध १५८

ज्ञानातीत अवस्था ३८४, ३८७

ज्ञानी, उसकी निरकुशता ६

ज्यामिति २१४, २८४, शास्त्र का  
विकास ११६

ज्यूलिस वर्ने ३२०

ज्योतिष २८४, आर्य १६४, उसकी  
उत्पत्ति ११६, ग्रीक १६४, शास्त्र  
३२३, ३७२

झंगलूराम ५७

'टाइम्स' (समाचारपत्र) ३१३

टाइलर स्ट्रीट डे नर्सरी २७९

टॉनी महोदय १४९

टामस एफ० गेलर २४५

टिटस २४७

टिन्डल ३०९

टेनेसी क्लब २४५

ट्रिब्यून २५९, २६३, उसके सवाददाता  
२५२

'ठाकुर-घर' ३८६

ठाकुर जी १४३-४५, ३५९, ३६७

ठाकुर साहब १४५-४६

डॉ० एफ० ए० गार्डनर २२८-२९, कालं  
वाँन वरगेन २३९, कैंट २९४, जार्ज

कवि २८५ सागर २१ स्त्री  
 ६७  
 जर्मनी ८५ ९८ ९ बाले ६९, ८१ ८९  
 पहाड़ी ५९, ९३  
 पाठ ६५  
 जाति अंग्रेज ७९ अमेरिकन २४६  
 अरब १ अनीगियन ३ अमूर  
 १ ६ आर्य ३६ ६३ ४ ११६  
 २४६ ३ आयर १२२, ३७२  
 इस्कीमो ६३ ८२ उसका एक  
 अपना उद्देश्य ५८ उसका रहस्य  
 (भारतीय) ३ ३ उसकी व्युत्पत्ति  
 ३९३ उसकी उत्पत्ति ३७७ उसकी  
 उत्पत्ति का सहाय्य और उपाय १६८  
 उसकी बौद्धिक सामाजिक परिस्थिति  
 का पता २२२ उसकी विविधता  
 २८ उसके चार प्रकार २५१  
 उसके विभिन्न उद्देश्य ४८ एक  
 सामाजिक प्रथा २३३ ३७७ एक  
 स्थिति ३ ४ ऐम्बो संनतन  
 ३ २ और हथ ५७ और व्यक्ति  
 ५१ और शास्त्र ५७ और स्वधर्म  
 ५६ अश्विन २५१ अक्ष ६४  
 गुण और धर्म के आधार पर २८  
 बुद्ध ५७ गौतम ९२ चीन ६३  
 जगदी १११ जगत्पति ५७ तुर्क  
 १ ७ यमासुर २८५ बरह ६३  
 दोग ७३ धर्म ५७ नाटी २७९  
 निरामिषमोक्षी ७५ -पति १२३  
 पारसी ९२ प्रत्येक का एक जीव  
 मोक्ष ६ प्रथा १२ २४१  
 फ्रांक ९२ ३ फ्रांसीसी ९९ बंगाली  
 १५३ बर्बर ९२ १ ६ १५८  
 २५१ मेघ ११९ ३७७ ३९१  
 मेघ उसका कारण २८९ ३९३  
 मेघ उसकी उपयोगिता ३९३ मेघ  
 और स्वाधीनता ३९३ मेघ  
 गुणानुसार १३५ मेघ का कारण  
 २८९, ३९३ मसिमोबी ७५  
 मुगल ६४ मुसलमान १ ८

यूही १ ६ मुनाती ६४ रोमन  
 ९२ सेन्टि २९१ बतमानुय ७६  
 बर्षसंक्राती की मूर्ति १ ७  
 विभाग ३८६ व्यक्ति की समष्टि  
 ४९ व्यवस्था २२७ व्यवस्था और  
 पुराहित बर्ष ३ ५ व्यवस्था के  
 दोग २८८, ३ ४ व्यवस्था सच्ची  
 ३ ४ सबसे शरीर सबसे अनीर  
 २८ समस्या का मूलपाठ ११९  
 हिन्दू ११७-१८ २४६ ३९४ रूप  
 ६३  
 जातिगत विधि-नियम ३८१  
 जातिव्य और व्यक्तिव १  
 'जाति-धर्म और 'स्वधर्म' ५७ मुक्ति  
 का शोधान ५७ सामाजिक उत्पत्ति  
 का कारण ५७  
 जातीय चरित्र ६२ चरित्र का मीर्यद  
 ५८ चरित्र हिन्दू का ६ जीवन  
 और माता १६९ जीवन की मूल  
 मिति ५८ भाव आत्मसमता  
 ४८९ मृत्यु ५८ चिन्त संपीठ  
 १६९  
 जॉन स्टुवर्ट मिल ३ २  
 जापान ४९, ९३ २७३  
 जापानी उनका ज्ञान-पाल ७५ जाने  
 का तरीका ८२ पश्चिम १६९  
 जार्ज वेन्सिंग डॉ २४५  
 जिहोवा ४९, ९ शिव १५७  
 जीनो शार्चनिक ३८१  
 जीव १४२ २१३ ३६ शक्ति  
 प्रकाश का क्षेत्र ५३ सेवा द्वारा  
 मुक्ति ४ १ -रूप ७४  
 जीवन आत्मा का २२ इन्द्रिय का  
 २२ उसमें मोक्ष २२४ और  
 मृत्यु का सम्बन्ध २५ और मृत्यु के  
 नियम २३ गृहस्थ ४ चरम  
 कल्प २ २ -तृष्णा १७३-७४  
 -वन्दन १७३ -मरण २३ व्यास  
 द्वारिक ९ -संज्ञाम ३९४ संवत्  
 ४ सामर १८७

दादू १२३  
 दान-प्रणाली ११३  
 दानशीलता १७  
 दामोदर (नदी) ८०  
 दाराशिकोह ५९  
 'दारिद्र्य-समस्या' ३९४  
 दार्जिलिंग ३५२, ३५५  
 दार्शनिक चिन्तन, उसका सूत्रपात ११८,  
 तत्त्व ३८०  
 दाह-संस्कार २५१  
 दि प्रीस्ट ऐण्ड दि प्रॉफेट' ३६६  
 दिल्ली ९८, साम्राज्य १२४  
 दीक्षा-ग्रहण ३८६, -दान ३६३  
 दुःख और सुख ५३, २२२  
 दुःख भी शुभ १८७  
 दुर्गा ११५, पूजा ७८, १४७  
 दुर्भिक्ष-पीडित ६०-१  
 दुर्योधन ५०  
 'द्वरात्परिहर्तव्य' ३५९  
 देव और असुर ६८, १०७, -कन्या १०७,  
 गृहद्वार १७४, दर्शन १४३, मडल  
 ११८, -शरीर ३८९, श्रेष्ठ ब्रह्मा  
 ४०३, स्वरूप ३९४  
 देवता ३६०, आस्तिक ६८  
 देवराज ३६०  
 देवालय ८५, ३६४  
 देवेन्द्रनाथ ठाकुर १४९, १५३  
 देश, उसकी अवनति और भाषा १६८-  
 ६९, और काल १९६, ३३४, ३३७,  
 और धर्म के प्रतिनिधि २४३  
 देश-काल २५, और नीति, सौन्दर्य-ज्ञान  
 ३२६, और पात्र तथा मानसिक भाव  
 ३२६, -पात्र-भेद १४०, व्यक्ति  
 के भीतर ३७७  
 देश-भेद, उसके कारण अनिवार्य कार्य  
 ७०, उससे समाज-सृष्टि १०३,  
 भक्ष्याभक्ष्य-विचार १३५  
 'देशीय परिवार-रहस्य' १४९  
 देह-मन ३७४  
 देहात्मवादी ४८, ईसाई १५०

दैहिक क्रिया ३६२  
 दोष, आश्रय, जाति, निमित्त ७३  
 द्रविड ११८  
 द्रव्य ३३४  
 द्वि-आवर्तन ३३५  
 द्वेषभाव ६२  
 द्वैत ५९, ज्ञान ३३५, प्रकृति मे ३४,  
 प्रत्यक्ष मे ३७१, -बोध ३७१, वाद  
 २१, ३८३, ३९२, वादी ३४, ३८१,  
 ३८६, वादी के अनुसार जीव तथा  
 ब्रह्म २८२  
 धन और ईसाई २८०, विश्वयुद्ध का  
 कारण २८०  
 धनुषीय यत्र ११७  
 धर्म ४, ६-७, १६, ६१, ११०, १२४,  
 २०८, २४९, २५३-५४, ३१०,  
 अनुभव का विषय ३३६, -अनुभूति  
 १३९, आधुनिक फैशन रूप मे २६२,  
 इतिहास १६१, इसलाम ३७७,  
 ईश्वर की प्राप्ति २२१, ईसाई १६१,  
 २३५-३६, २४२, २५२, २५९,  
 २६१, २७१-७२, २७४, २७७,  
 २८३, २८६, ३०९, ३८५, उच्चतर  
 वस्तु की वृद्धि और विकास २९८,  
 उपदेश २८३, ३३१, उपदेशक  
 २४९, २७४-७५, २८४, उसका  
 अर्थ ३९२, उसका गभीर सत्य  
 और शक्ति ३३२, उसका मूल  
 उद्देश्य ३२९, उसका मूलभूत आधार  
 २६७, उसका मूल विश्वास ३१४,  
 उसका लोप और भारत-अवनति  
 ५०, उसका समन्वय २७२, २७५,  
 उसकी महिमा २१३, उसके प्रति  
 सहिष्णु-भाव २९७, एक की दूसरे धर्म  
 मे सम्पूर्ति २४३, और अनुयायियों  
 मे दोष २७५, और आतक ३७८,  
 और ऐतिहासिक गवेषणा ३५७, और  
 घडे का प्रतीक २४७, और देश ३०२,  
 और धर्मान्वि २६०, और योग ३२९,  
 और विज्ञान मे द्वन्द्व ३३१, और



पैटर्न २४५ जेम्स ३ ३ ३  
 सी टी म्यूकर्स २७१  
 कार्बिन ११३  
 कार्बिन ३ ९  
 'काकर-उपासक जाति' २७७  
 काकर-मुखा और पुरोहित २७२  
 डिग्रीएट २६२ ३३ २७ २७४  
 डिग्रीएट इबर्निंग म्यूब २६३  
 डिग्रीएट जर्नेल २६२  
 डिग्रीएट ट्रिब्यून २५ २५२-५३  
 २५९, २६१  
 डिग्रीएट फ्री प्रेस २५५, २६१ (पा  
 टि ) २६३  
 डिबेटिंग क्लब ३५४  
 डमस्कोन २६५  
 डेबी ईगल २८६ मबट २३१ सैर-  
 टॉबियन २३२  
 'डिस्टर्ट' व्यायाम ३५३  
 डेविड हेयर २८९  
 डेस मोहस म्यूब २६३  
 ड्यूकड जॉर्जिया ६४  
 ड्यूनक माइका टाइम्स २३४  
 डाका ८  
 दक्षिणबाहू ३३४ (पा टि )  
 दलब्रान १४ ३५१ दर्शन २३७  
 दामाकार ३९५  
 'दलबसि' १७४-७५  
 दलस्या विविध ३९७  
 दमोगुण ५४ ५७ १३६ १५९ २१९  
 और रज तथा सल ५४  
 दर्कशास्त्र २८  
 दाब २२४  
 दाठार ११८ उनका प्रमुत्ब १ ७  
 मांशु १ ७  
 दाठारी १ ७ रज १ ७  
 दाग्नि ९  
 दामविक बोध ५४  
 दाठ १२६

दिग्बत ४९ ६४ ६९ और दाठार  
 ३ ५ वहाँ की स्त्रियाँ ३२६  
 दिग्बती ३३-४ परिवार ३२६  
 दीर्घ २ ८ स्वाण ९१ १६३ ३२४  
 दुकाराम १२३  
 दुटीमानन्द स्वामी ३६१  
 दुर्क १ ७ जाति १ ७  
 दुल्सी ६२ बल ३२८ महाराज ३६३  
 (वेसिए निर्मलानन्द स्वामी)  
 दुर्लमी ८२  
 त्याग १३४ उसका महत्त्व १३५  
 उसकी शक्ति २३ और बेराम  
 ३४ -माब ३४२  
 विगुनासीतानन्द स्वामी ३४१  
 विवेक और ईस्वर २८४  
 विमुक्तक संग्राम ११९  
 वरुं स्ट्रीट २७  
 वॉनस-ए-कैम्पिस ३४४  
 पाउवेंड वाइलेड पार्क १७३ (पा टि )  
 वियोसॉफिस्ट २३४  
 वियोसॉफी सम्प्रदाय १४९  
 'वसिना' १४७  
 वसिनी ब्राह्मण ८३  
 वसिनेरवर ३४५  
 वण्ड ईस्वर द्वारा २७१ प्रतिक्रिया माण  
 २७१ प्राकृतिक २७९  
 वत माइकेल मधुसूदन ४२  
 वया और स्याम ३१३ और प्रेम ३ ३  
 वयानन्द सगस्वती १४९ १५३  
 वरर ६३  
 वर्सन और वलब्रान २५३ तथा बड़बाब  
 ११९ शास्त्र ३६, १ ८ १३२  
 ३८३ शास्त्र और मारुत का बर्मे  
 १५ शास्त्र और विधि २५१  
 वसु बंधु सम्पदा की आचारधिका २८४  
 वसु और बेराम की उत्पत्ति १ ४-५  
 वहेज २६४  
 दासिनात्य भाई ७

विचारक २४५, विचारधारा २८१,  
विश्वास २६९, २८२, विषय २७५,  
व्यक्ति २५८, व्यक्ति का लक्षण  
५२, व्यक्ति की प्रार्थना-मुद्रा २६०,  
शिक्षा २२८-२९, सस्था २८८,  
सच्चा २८२, समन्वय २७२,  
सिद्धान्त २९०, सिद्धान्त, प्राचीन-  
तम २७  
'धुनो' का युग २४९  
ध्यान ३१७, उसकी आवश्यक बातें  
४००  
ध्रुपद और ख्याल ३९  
ध्रुवप्रदेश, उत्तरी ६३  
नचिकेता ३५०  
नन्द ४०२  
नन्दन वन ४७  
नरक १०, १२, २९, ५२, १८०, २६६,  
३०१, ३०३, ३७८, कुण्ड ७०  
नरभक्षी २६४, -रगक्षेत्र १३७  
नरेन्द्र ३५५ (देखिए विवेकानन्द)  
नरेन्द्रनाथ सेन ३४०, ३६४  
नर्मदा १६३  
नर्मदेश्वर १६३  
नव व्यवस्थान ३६, ११३, २८१  
'नाइण्टीन्थ सेन्चुरी' १४९, १५१-५२  
'नाइण्टीन्थ सेन्चुरी क्लब' २४६  
नागपुर १५५ (पा० टि०)  
नागादल १०८  
नाटक, आर्य १६५, कठिनतम कला ४३,  
ग्रीक १६५, -रचना-प्रणाली १६५  
नानक १२३  
नाम-कीर्तन १३६, -जप १२६, -यज्ञ  
३१६, ३९१, -रूप १७४, १७७  
नायक १४३  
नारकीय अग्नि २६०  
नारद १४३  
नारायण १२६  
नारी, उस पर दोषारोपण ३०१, उसकी  
कल्पना का उदय ३०२, उसके प्रति

हिन्दु भावना २७७, उसके प्रति  
अनौचित्य २०, ऋषि ३०२, और  
पुरुष १९, २०४, नारीत्व, उसका  
आदर्श ३००  
नार्थम्प्टन डेली हेरल्ड २७६  
नार्थ स्ट्रीट २२८  
नार्वे ८१  
नासदीय सूक्त १९६  
नित्यानन्द, स्वामी ३५२  
निमित्त दोष ७३  
नियम, उसकी परिभाषा ३१, और कीर्ति  
६२, और जगत् के विषय ३२६,  
और प्रकृति ३१, और रूपया ६२,  
जातिगत ३८६, तथा मनुष्य ६२,  
सामाजिक ३८६  
निरपेक्ष ज्ञान ३३५, सत्ता ३८४,  
सत्य ३३५  
निरामिषभोजी ६५, जाति ७५  
निरीश्वरवादी, पश्चिम २८९  
निर्गुण ब्रह्म १४६, सत्ता ३८४  
निर्मयानन्द, स्वामी ३६४  
निर्मलानन्द, स्वामी ३५२, ३६२-६३  
(देखिए तुलसी महाराज)  
निर्वाण, उसका अधिकारी ३०१  
निर्वाणषट्कम् २०७, ३८९ (पा० टि०)  
निवृत्ति मार्ग ३८४  
निवेदिता, भगिनी १९५ (पा० टि०),  
३६६, ४०१  
निष्काम कर्म १४०, १५८, ३३०, ३५८,  
ज्ञान १४०, भक्ति १४०, योग १४०  
नीग्रो लोग २७५  
नीति-तत्त्व ३९१, -शास्त्र २४८, ३९६,  
-शास्त्र और व्यक्ति का पारस्परिक  
सम्बन्ध ३९६, -सहिता २८१  
नीति, दह, दाम, साम ५२  
नीलकण्ठ १६२  
'नूह' (Noah) १५७  
'नेटिव' ४८  
'नेटिव स्लेव' ४८  
'नेति' ३८४

विज्ञान में समानता ३२३ कर्म  
 ३१२ कल्पना की सीमा नहीं २१८  
 कार्य २८ किम्यात्मक २७७ क्षुधा  
 १५२ ग्रन्थ १२७ १३२, १३९  
 ४ २१५, २२३ २८१ २९६,  
 २९८ ३३ ग्रन्थ बौद्ध २७४  
 जीवन ३६५ बीबित के लिए विभिन्न  
 धर्म की आवश्यकता २७३ तथा  
 अन्धविश्वास २७४ तरंग १५  
 तीन मिथ्यागरी २७३ पीसा २५२  
 धार्मिक और सामाजिक सुधार प्रदल  
 की सम्पूर्ण ३ ४ नकारात्मक नहीं  
 २९८ मकमुग १४२ पत्र ३३२  
 पत्र तथा पुष्प और पाप २२३  
 परायण २८२ परिवर्तन २६  
 २७३-७५, २९५ परोपकार ही  
 २२२ पवित्रता की अन्तःप्रेरणा  
 के प्रतीक २४७ पाश्चात्य २६८  
 पिपासा १५२ पैतृक २४५ प्रकृत  
 २४१ प्रकृति ३२९ प्रचार २३७  
 २४१ ३७३ प्रचार-कार्य ३७५  
 प्रचारक १६१ २४३ २६४ ६५,  
 २७५, ३९७ प्रचारक-सम्बन्धी  
 १६१ प्रत्यक्ष अनुभव का विषय  
 ३२४ २१८ प्रत्येक की निजी विरो  
 पता २९४ प्रथम मिथ्यागरी बौद्ध  
 २७३ प्रवर्तक १५४ ३ ५ बुद्ध  
 २९३ बौद्ध १६२ ६३ २५२, २७२  
 ३ १ ३०८ ३९५ ब्राह्म १४९  
 १५३ ब्राह्मण २४२ भारतीय  
 २३१ भारतीय मत २६७ माव  
 ३७१ ३९४ भावना ३६६ मत  
 ३२९ ३ ३८१ ३८५ महासमा  
 २३९, ३१९, ३३९ मिथ्यागरी २५२  
 २९४ रसक २२२ राज्य १३९  
 १५ १ ९ लाम ३२४ ३६५  
 शब्द-विचार में नहीं ३२४ वास्तविक  
 और मनुष्य ३२३ विभिन्न उसकी  
 उत्पत्ति बचम १६३ विद्वान् २४७  
 ३१३ और ६१ वैश्वतोक्त ३४७

वैश्वतोक्त ३७५ वैदिक १६२  
 -व्यवस्था २७४ -साला २२४  
 शास्त्र २३६ २७३ ३३१ ३२,  
 ३८३ सिद्धा १४१ ३८५ -संग्यास  
 २८३ सत्कार का प्राचीनतम १५२  
 सकारात्मक २९८ सच्चे २१८  
 समा १६१ सम्बन्ध में दो अतिर्या  
 २६ सम्बन्धी कथा-वार्ता ३२९  
 -सम्मेलन २४३ ४४ २७८ सामन  
 ३४७ सामन और सह-शिष्या ३४७  
 साधना ३४६ सिद्धान्त २३६, २३९  
 हिन्दू १४१ ४३ २४५, २५४  
 २६९, २७७ ३३३ ३३९ ३७६,  
 ३८ हिन्दू, उसका सर्वव्यापी  
 विचार तथा प्रमुख सिद्धान्त २४२  
 हिन्दू उसकी शिष्या २६८  
 'धर्म और 'पत्र' २४४  
 धर्मपाठ २३५  
 'धर्म-सम्मेलन' २३२  
 धर्मसम्पाद अष्टौक ८६  
 धर्मत्व और नास्तिक २६  
 धर्मनिष्ठा उसकी अभिव्यक्ति २६  
 धर्मार्थ चिकित्सात्म्य ११३  
 वातुगर्भ १६३ (देखिए बौद्ध रूप)  
 वारणा और अग्यास १४२ और ध्यान  
 ३४४  
 धार्मिक ५६ अभिव्यक्ति २५८ आयो-  
 क्तन १२४ २१८ आयम २६६  
 उल्ल-मुक्त २१४ -एकता-सम्मेलन  
 ३८ और पैसेवालों की पूजा २१८  
 और मन्त्राल ३२४ कृत्य ७ १३  
 क्षेत्र १२५ आजा-पीना हिन्दू का ४  
 धर्म ११३ चाल-डाक हिन्दू की ४  
 जीवन ७६ २३३ २७६ दमन  
 १५ दोष २९२ दुष्टिकोण १२४  
 प्रचार २६९ प्रतिनिधित्व २८९  
 मन २७४ मनुष्य २२१ मनोभाव  
 २७८ महत्त्वावांछा १२४ मामला  
 २८१ रीति २७६ वाद्यबुद्ध २७४  
 विद्वान्-धर्म २८१ विचार २९२

- पाण्डित्य, उसका प्रदर्शन १६७  
 'पातिव्रत्य, उसका सम्मान २६३  
 'पाप ४१, ५१-२, २०८, २१३, २१७-  
 १८, २६९, ३१३, और अन्धविश्वास  
 १५१, और पुण्य ४०, कमजोरी,  
 और कायरता २२२, घृणा २२२,  
 परपीडन २२२, पराधीनता २२२,  
 -पुण्य २२३, ३१७, सदेह २२२  
 पापी और महात्मा १९३  
 पारमार्थिक सत्ता २७३  
 पारसी १०७, २५४, उनका विश्वास  
 २८१, जाति ९२, सम्यता ९२  
 पार्थिव जड वस्तु और मन ३७६  
 पाली और अरबी १६१, भाषा ४२  
 पाश्चात्य अर्थ २१५, असुर ४८, आहार  
 ८९, उनका स्वास्थ्य ६५, उनकी  
 दृष्टि में प्राच्य ४७, उनमें धर्म की  
 प्रधानता ५०, उनसे सीखने का  
 उपाय ६२, उसमें असांभोजिक भाव  
 ३९१, जगत् १४९, जगत् और  
 भारत १३६, जाति ३९२, जाति  
 द्वारा कृष्ण-उपदेश-अनुसरण ५५,  
 देश ५०, ६८, ८०, ८७-८,  
 ९६, ३२२, ३८५, ३८८, देश और  
 उनके वस्त्र ८५, देश और खाद्य  
 सबंधी वाद-विवाद ७५, देश का  
 आहार ८०-१, देश में राजनीति  
 ६१, देश में सत्त्वगुण का अभाव  
 १३६, देशवाले ३८९, देशवासी  
 ६५, ८०, ३८०, देशवासी असुर  
 की सतान ६८, देशीय पोशाक  
 ६६, धर्म ९०, २६८, प्रभाव  
 ३८५, मत से समाज का विकास  
 १०१, विज्ञान ३३६, ३८२,  
 विज्ञान, आधुनिक ३२३, विद्या  
 ३०९-१०, ३३६-३७, शासन-  
 शक्ति १३७, शिष्य ३६२, शिष्या  
 १९ (पा० टि०), सस्कृतज्ञ विद्वान्  
 १४८, सम्यता ९१, मन्यता का  
 आदि केन्द्र ९२
- पास्टचूर ११३  
 'पिक्विक् पेपर्स' ३१६  
 'पिता' ८  
 पियरेपोट २८३  
 पुण्य २०८, और पाप २५३, प्रेम करना  
 २२२, शक्ति और पौरुष २२२,  
 स्वतन्त्रता २२२  
 पुनर्जन्म ७९, २३९, उसका सिद्धान्त  
 २४, २८, २३९, २४७, २९५, कर्म  
 पर निर्भर ३७२, वाद १५,  
 २९४, वादी २७९, सिद्धान्त और  
 नैतिक प्रेरणा २९, सिद्धान्त  
 के बीजाणु २४०  
 पुराण, अग्नि ५१, एव तन्त्र १४६,  
 और वेदान्त १४०, और शास्त्र  
 ५७, कथा २४७, विष्णु १६३  
 पुरी जी १४४ (देखिए भोलापुरी)  
 पुरुष, ब्रह्मज्ञ ३६, शक्तिमान ६२,  
 शक्तिमान ही समाज का परिचालक  
 ६१, सिद्ध ३६०  
 पुरोहित ३७, ३०४, ३७८, और ऋषि  
 ३६६, और सन्यासी २५३, पन्थ  
 १२०, प्रपच १८, ११९, वर्ग  
 ३००, वर्ग, आनुवंशिक १२१  
 पुरोहिती, पैतृक व्यवसाय ७  
 पुर्तगाल ८१  
 पुस्तक, अनश्वर ३७, और सत्य ३७,  
 मानचित्र मात्र २९९  
 पुस्तकीय ज्ञान २१८  
 पूजन एव अर्घ्य दान ११६  
 पूजा-अर्चना ३४३, -आरती ३६७,  
 गृह ३६१, ३६३, ३८६, -गृह और  
 ध्यान ३९९, पद्धति और मनुष्य  
 २२१, -पाठ ११४, ३१७, ३८६-  
 ८७  
 पूर्णता और जन्म २१५  
 पूर्णांग ११७  
 पूना १२४  
 पूर्वज, उनका ऐश्वर्य-म्मरण १६०,  
 और पूर्वज की गौरव-गाथा १६०,

'नेति-नेति' २२, २ ८  
 नेपाल ८४ १३५ और तिब्बत १६३  
 वहाँ बौद्ध प्रभाव १६३  
 नेपोलिमन सुतौम्य ६८, ९७ ९९ बाघ  
 झाह ९९ बोनापार्ट ९९ महावीर  
 ९८ ९  
 नैतिकता और आध्यात्मिकता २१६  
 २३६  
 नैतिक साधन २५३  
 नोबल कुमारी ३६६  
 'न्याय-दिवस' २७९  
 न्यूकॉर्क सी टी बॉ २६९  
 २७१  
 'न्यूज' २५४  
 न्यूबीरीष १११  
 न्यूयॉर्क ८९, ९५ १७३ (पा टि )  
 १७६ (पा टि ) १९७ (पा टि )  
 २ १ २१६ २२१ २५६, २७  
 वहाँ का स्त्री-समाज २१६  
 'न्यूयॉर्क डेली ट्रिब्यून' २७८  
 'न्यूयॉर्क वर्ल्ड' २३७  
 पंचकोस २ ७  
 पंचनाम २ ७  
 पंचेन्द्रिय २५५  
 पंचाब ८ ८२ १३५  
 पद्यन ५९  
 फर्नांडिस जनका महामात्य ४२, १६८  
 महावि ३५८  
 पर-निष्ठा ३३३  
 परब्रह्म ४ ३  
 परम अन्तिम ३५, २१३ आत्मन्वस्-  
 स्म २ ७-८ चित् २ ७-८ ज्ञानी  
 २ २-तरुण का ज्ञान २१५ धर्म  
 ३८ ध्यानावस्था ५४ प्रभु १९४  
 संगल ३७६ मानसतावादी और  
 पनन २२२ भेद बौद्धिकता नहीं  
 २१६ तन् १७ २ ७-८  
 परमहंस १३६ ३२६ देव ३९८  
 रामायण २३४ (देगिय रामायण)

परमात्मा ७ १३, १७ ५५ २१२  
 २१७-१९ २२२ २३३ २७४  
 परमपिता २७८ सगुण ३८ हमार  
 व्यक्तित्व ४२ हर एक में २२  
 परमानन्द १९६ २ ५  
 'परमानन्द के द्वीप' २४०  
 परमेश्वर ३३-४ ३६-७ २ २, २२  
 वनन्त १२७ और आदिवासी ३५  
 निर्गुण १२७ वेदवर्णित १२७  
 परलोक-विद्या २२१  
 परहित १३  
 परा विद्या १३६, १५९  
 परिकल्पना ३३  
 परिणामवाद ३३ १ ३८२  
 परिणामवादी १ १  
 परिपचन (assimilation) ३१६  
 परिप्रायक २८३  
 परोपकार ३९९ कल्याणम् ४ १  
 मूलक कल्याण ४ १  
 परों की कठोर प्रथा २६५  
 पत्नी-सुरोहित २३१  
 पत्रापी बाबा १५३ ३१७  
 पवित्र आत्मा २२ चरित्र २१६, ३६९  
 पशुपति बामु ३४१ भोग ३४१  
 पशु-बलि १२०-२१  
 पश्चिम और भारत में स्त्री संबंधी  
 भाषना ३ २ वेद्य २१७  
 पश्चिमी वेद्य २४५ शिष्टाचार और  
 रीति-रिवाज २४५  
 पैसावेता ३  
 पहलक ६३  
 पहलकी भाषा ६४  
 पहाड़ी ८३  
 पौष इन्द्रिय २४  
 पांचाल १२  
 पाहपागोपस २८२  
 पाठक पैसरी २८७ २९६  
 पाठक और नास्तिकता २८  
 पाटलिपुत्र १२ साम्राज्य १२१  
 पाणिग्रहण (संस्कार) १५४

- पाण्डित्य, उसका प्रदर्शन १६७  
 पातिव्रत्य, उसका सम्मान २६३  
 पाप ४१, ५१-२, २०८, २१३, २१७-  
 १८, २६९, ३१३, और अन्धविश्वास  
 १५१, और पुण्य ४०, कमजोरी,  
 और कायरता २२२, घृणा २२२,  
 परपीडन २२२, पराधीनता २२२,  
 -पुण्य २२३, ३१७, सदेह २२२  
 पापी और महात्मा १९३  
 पारमार्थिक सत्ता २७३  
 पारसी १०७, २५४, उनका विश्वास  
 २८१, जाति ९२, सम्यता ९२  
 पार्थिव जड वस्तु और मन ३७६  
 पाली और अरबी १६१, भाषा ४२  
 पाश्चात्य अर्थ २१५, असुर ४८, आहार  
 ८९, उनका स्वास्थ्य ६५, उनकी  
 दृष्टि में प्राच्य ४७, उनमें धर्म की  
 प्रधानता ५०, उनसे सीखने का  
 उपाय ६२, उसमें असामाजिक भाव  
 ३९१, जगत् १४९, जगत् और  
 भारत १३६, जाति ३९२, जाति  
 द्वारा कृष्ण-उपदेश-अनुसरण ५५,  
 देश ५०, ६८, ८०, ८७-८,  
 ९६, ३२२, ३८५, ३८८, देश और  
 उनके वस्त्र ८५, देश और खाद्य  
 सबंधी वाद-विवाद ७५, देश का  
 आहार ८०-१, देश में राजनीति  
 ६१, देश में सत्त्वगुण का अभाव  
 १३६, देशवाले ३८९, देशवासी  
 ६५, ८०, ३८०, देशवासी असुर  
 की सतान ६८, देशीय पोशाक  
 ६६, धर्म ९०, २६८, प्रभाव  
 ३८५, मत से समाज का विकास  
 १०१, विज्ञान ३३६, ३८२,  
 विज्ञान, आवुनिक ३२३, विद्या  
 ३०९-१०, ३३६-३७, शासन-  
 शक्ति १३७, शिष्य ३६२, शिष्या  
 १९ (पा० टि०), मन्कृतज्ञ विद्वान्  
 १८८, मन्मता ९१, मन्मता का  
 आदि केन्द्र ९२  
 पास्टचूर ११३  
 'पिक्विक् पेपर्स' ३१६  
 'पिता' ८  
 पियरेपोट २८३  
 पुण्य २०८, और पाप २५३, प्रेम करना  
 २२२, शक्ति और पौरुष २२२,  
 स्वतन्त्रता २२२  
 पुनर्जन्म ७९, २३९, उसका सिद्धान्त  
 २४, २८, २३९, २४७, २९५, कर्म  
 पर निर्भर ३७२, वाद १५,  
 २९४, वादी २७९, सिद्धान्त और  
 नैतिक प्रेरणा २९, सिद्धान्त  
 के बीजाणु २४०  
 पुराण, अग्नि ५१, एव तन्त्र १४६,  
 और वेदान्त १४०, और शास्त्र  
 ५७, कथा २४७, विष्णु १६३  
 पुरी जी १४४ (देखिए भोलापुरी)  
 पुरुष, ब्रह्मज्ञ ३६, शक्तिमान ६२,  
 शक्तिमान ही समाज का परिचालक  
 ६१, सिद्ध ३६०  
 पुरोहित ३७, ३०४, ३७८, और ऋषि  
 ३६६, और सन्यासी २५३, पन्थ  
 १२०, प्रपच १८, ११९, वर्ग  
 ३००, वर्ग, आनुवंशिक १२१  
 पुरोहिती, पैतृक व्यवसाय ७  
 पुर्तगाल ८१  
 पुस्तक, अनश्वर ३७, और सत्य ३७,  
 मानचित्र मात्र २९९  
 पुस्तकीय ज्ञान २१८  
 पूजन एव अर्घ्य दान ११६  
 पूजा-अर्चना ३४३, -आरती ३६७,  
 गृह ३६१, ३६३, ३८६, -गृह और  
 ध्यान ३९९, पद्धति और मनुष्य  
 २२१, -पाठ ११४, ३१७, ३८६-  
 ८७  
 पूर्णता और जन्म २१५  
 पूर्णंगि ११७  
 पूना १२४  
 पूर्वज, उनका ऐश्वर्य-स्मरण १६०,  
 और पूर्वज की गौरव-गाथा १६०,

और भक्तिपूर्ण हृदय १६ तथा  
 सक्तिहीन संचित हृदय १६  
 पूर्वजन्म ३७६  
 पूर्वीय विचार २९५  
 'पुनर-जाउस' ३२१  
 'पिरिपैटिकस' २४२  
 पेरिस ६६, ७७, ८५, ९१, ९६, ९८  
 ११ १९२ (पा टि) उसकी  
 विकासप्रियता ९५ उसकी श्रेष्ठता  
 ९१ और सन्धन ८६ बर्तन  
 विज्ञान और विज्ञान की ज्ञान ९४  
 धर्मतिहास-सभा १६२ मगरी  
 ९१२ ९४-५ पृथ्वी का केन्द्र  
 ९४ प्रवर्धनी १६१ प्राचीन  
 ९७ यूरोपीय सम्प्रदाय की  
 गंगोत्री ९१ वहाँ की लक्ष्मी ६६  
 विद्या विज्ञान का केन्द्र ६९ विश्व  
 विद्यालय ९४  
 'पेरिस-मेड' ८५  
 येरू १ १  
 पैरिमार्ल १ ६  
 पैतृक धर्म २४५  
 पीप १ ७  
 पीगाफ जन्म अन्तर ६६-८ उसका  
 क्रिया ६७ उसकी सृष्टि एक  
 शक्ति ६६ तथा व्यवसाय ६७  
 पारबाल्य बेगीन ६६ सामाजिक  
 ६६  
 'पोस्ट' २९४  
 पीपा तथा बन्धा २१४  
 पीराजिद्र अकाल १५७ पुन ३७२  
 पीर्य और निस्कार्य २२३  
 प्यार पुना २ १२  
 प्युक्लम वर्ष २ ४  
 प्रजाग १८८, १ २ १९१ ईश्वर  
 १८६ जगता पुन १८७ उसकी  
 आत्मा १ ३ विज्ञान १८६ १९७  
 प्रजागता उगता वर्ष २५३ लक्ष्मी  
 गत्य २५३  
 प्रजागान्त त्वामी २५४

प्रकृत तत्त्ववित् १५१ ब्रह्मवित्  
 १५१ भक्त १५१ योपी १५१  
 'प्रकृत महात्मा' १५१ १५१  
 प्रकृति २५, २७ ३ ४२ ३ १८  
 २२३ २५८-५९ ३५९, ३८४  
 भक्त बाह्य २१३ उसका अस्तित्व  
 २८ उसका नियम २७४ उसकी  
 अभिव्यक्ति २६९ उसके मध्य  
 सत्य आत्मा ३१ उसमें प्रत्येक वस्तु  
 की प्रकृति २९१ और बीवारमा  
 २१ और परमेस्वर ३३ और  
 मुक्ति ३१ बंधी ३७८ नियम  
 संबंधी ३१ नैतिक २५९ पर  
 लक्षता और स्वतन्त्रता का विमर्श  
 २९८ परमेस्वर की शक्ति  
 ३३ बंधनमुक्त २६ नैतिक  
 २९६ यथार्थ और आदर्श का  
 विमर्श २९८  
 प्रजातन्त्र ९९१ बायी ३४६ ४७  
 प्रजासत्तक ६४  
 प्रजापञ्च मज्जुससार १४९ १५२  
 प्रतिमा-पूजा १२  
 प्रत्यक्ष बोध २८ बायी १५८  
 प्रत्यक्षानुभूति ३९२  
 प्रत्यक्षबायी उनका बाधा २९८  
 प्रथा १ ४  
 'प्रकृत मातृ १९ १४९, १८९  
 प्रभु ११ ११ १७ ४ ५२ १२७-  
 २९ १३८ १४२ १४४ २ ४  
 २ ७ ३७८ ३९७ ३९९ अन्त  
 यामी १४१ उनका भय धर्म का  
 प्रारम्भ २४८ ठेकरवर्ण १३८  
 परम १ ४ अन्तर्वर्ण १३८  
 मुक्त १२८  
 प्रमत्तान्य मित्र ३५६  
 प्रकृति मार्ग ३८४  
 प्रजाग्य प्रजागाय १११ २७ २८५  
 प्रजाग्य विद्यालय २०८ २९  
 प्रमत्तपुत्र ३४९  
 प्रगाय २ ७

प्राचीन, कर्मकाण्ड १२०, मिस्र १०५,  
 रोमन के खाने का तरीका ८२  
 प्राचीन व्यवस्थान ३६, २८१  
 प्राच्य, उसका उद्देश्य और पाश्चात्य  
 धर्म ५०, और पाश्चात्य ४७-८,  
 ५५, ११४, ३५२, और पाश्चात्य  
 आचार की तुलना ७१, और  
 पाश्चात्य का अर्थ ६८, और पाश्चात्य  
 का धर्म ५०, और पाश्चात्य सम्यता  
 की मित्तियाँ १०५, जाति और  
 ईसा-उपदेश ५५, -पाश्चात्य की  
 साधारण भिन्नता ६५, -पाश्चात्य  
 मे अन्तर ६६, ७०, -पाश्चात्य मे  
 स्वभावगत भेद ३९२  
 'प्राण' ३६०  
 प्राणायाम ३६१-६२, और एकाग्रता  
 ३८६  
 प्रायोपवेशन ३४८  
 प्रार्थना, उसकी उपादेयता ४०१, उसके  
 विभिन्न प्रकार २९१  
 प्रेम ३५, ४०, १५४, ईश्वर का २६२,  
 उसका बन्धन १९, उसकी परिभाषा  
 २६२, उसकी महिमा १२८,  
 उसकी व्याख्या २६१, और अगाध  
 विश्वास ३६८, और आशा ३८०,  
 और निष्काम कर्म १८३, और  
 भाव २६१, और विज्ञान ३७,  
 और श्रद्धा २६२, -पात्र २६२, -  
 भाव ३९८, शाश्वत १८३, १९२,  
 सच्चा २२०  
 'प्रेम को पथ कृपाण की धारा' ३९८  
 प्रेमानन्द स्वामी ३५२, ३५५, ३५९-६०  
 प्रेरणा, उच्च १४  
 प्रेसविटेरियन २८, २२२, चर्च का  
 घर्मोत्साह और असहिष्णुता २७२  
 प्रो० राइट २३१  
 प्लाकी ९२  
 प्लास द लॉ कॉन्कार्ड ९७  
 फर्स्ट यूनिटेरियन चर्च २४२-४३

फादर पोप १८१, रिबिंगटन ३१०  
 फारस १०७  
 फिलिना ९२  
 फैमिन इन्दयोरेन्स फन्ड ३२३  
 फैरिसी (यहूदी कर्मकाण्डी) २७  
 फ्राक, जाति ९२-३  
 फ्रास ६७, ६९, ८५, ८९, ९१, ९३,  
 ९८, १०८, उसका इतिहास  
 ९९, उसका राष्ट्रीय गीत ९९,  
 उसकी क्रांति ९८, उसकी विजय  
 ९९, औपनिवेशिक साम्राज्य-  
 स्थापना की शिक्षा ९४, कैथोलिक  
 प्रधान देश १६१, जातियो की  
 सघर्ष-भूमि ९२, देश ६८, ३१३,  
 निवासी ९४, पाश्चात्य महानता  
 तथा गौरव का केन्द्र ९१, यूरोप  
 का कर्मक्षेत्र ९२, स्वाधीनता का  
 उद्गम-स्थान ९४  
 फ्रासीसी, अग्नेज और हिन्दू ५८,  
 उनका रीति-रिवाज ८१, उनकी  
 विशेषता ९५, और अग्नेज ६०,  
 १२४, कन्या ९०, क्रांतिकारी  
 दार्शनिक ३०२, चरित्र ५८,  
 ९४, जल सवधी विचार ८९,  
 जाति ९९, दार्शनिक और उपन्यास-  
 कार २५८ (देखिए बालजक),  
 पद्धति ८१, परिवार ९५, पोशाक  
 ८५, प्रजा ५८, ९९, रसोइया  
 ८१, विप्लव ९४, सब विषय मे  
 आगे ८५, सम्य ९५  
 फिरगी ९२  
 'फ्री प्रेस' २५२  
 फ्रेंच भाषा १६६  
 फ्रेजर हाउस २७०  
 फलामारीयन ११३  
 फलोरेन्स नगरी ९३  
 वग देश १३५, १६८, ३५६  
 वगला देश ३४२, पाक्षिक पत्र १३२,  
 भाषा ४२, १६७-६९, ३५४,



मासिक पत्र ३३९ (पा टि )  
 समासौचना १४८  
 बंगवासी (मुखपत्र) ३३९  
 बंगाल ५३ (पा टि ) ८ ८३,  
 ११४ १३८ ३३२, ३५३, ३६६  
 और पंजाब ८३ और यूरोप  
 १ २ विद्योद्योगिक संस्थापती  
 ३४२ देव ७६ ७९ पश्चिम  
 ७९ पूर्व का भोजन ७९  
 बंगाली आधुनिक १३३ कवि प्राचीन  
 ७७ वाति १५३ टोसा ९७  
 भोजन का तरीका ८२ मुखक  
 ३६७  
 बंधोपाध्याय साक्षिपत्र ३६४  
 बंधीचारी ४९ (डेविड कृष्ण)  
 'बहुपत्न' ८२  
 ब्रह्मकायम ७८  
 बनारस १२  
 बन्धन ६, ८, १९, ३१ १७४ २८८  
 ३२ ३२२, ३७४ ३९९ और  
 मोह १ भौतिक १८५ मुक्त  
 १७५  
 बरमी उनके जाने का तरीका ८२  
 बराहगढ़ मठ ३४४  
 बर्बर जाति ९२, १५८  
 बर्लिन ९५  
 बसरेन ४ २  
 'बलवान की जय' ७६  
 बलवाचार्य ३४२  
 बभ्रु, जगदीशचन्द्र ३३४ (पा टि )  
 पद्मपति ३४१ विजयहृत्पत्र ३५४  
 बहुजन हिताय बहुजन मुखाय १३७  
 १५५  
 बहुपति की प्रथा ३२६  
 बहुषारी और भेदपदमय ३९१  
 बाइबिल २ ४ २ ७ २५३ २६२  
 २६८, २८९, २९६, २९८ ३१  
 ३३१ ३८५  
 बाबकाबाद ३४१  
 बाकूल्पा १२७

बाकूल्पा २५८  
 बाकी राजा १११  
 बाल्टीमोर १९१ अमेरिकन २९०  
 २९२  
 बास्तिरु क्रिष्ण ९८  
 बाह्याचार और अत्याचार ७ और  
 अन्त्याचार ७  
 'बिनेटासिस्म' २३२  
 बिस्प जे पी स्मूथिन २३५  
 'बी बी' (Throo BS) २८९  
 बीजगणित २८४  
 बीन स्टारस २८५  
 बुकनर ११३  
 'बुधपरस्व के धर्म-परिवर्तन' १६  
 बुद्ध २१ ३६, ३९, ५१ ५५ ६, ११९,  
 १५७ १६२ ३३ १६५, १६७  
 २३३ २३८ ३९ २४८, २५२,  
 २७८-७९ २९२, ३८३ अमृतार  
 अथ में स्वीकार ३ ३ उनका  
 आधिपत्य २९३ उनका धर्म २८३  
 २९१ २९३-९४ ३ ४ उनका  
 मन्दिर ३७३ उनका सिद्धान्त  
 ३ ४ उनकी महामता ३ ५ उनकी  
 शिक्षा २९४ ३ ५ उनकी शिक्षा  
 और महत्त्व २९४ ३ ४ उनकी  
 शिक्षा २७५ उनके आगमन से पूर्व  
 ३ ४ उनके युग ३ ५ उनके  
 अत्याचार का नियम २७४ उसके  
 प्रति हिन्दू ३ ३ एक महापुरुष  
 ३९५ एक समाज-सुधारक ३९५  
 और ईसा ४१ २८३ और बीड  
 धर्म ३९५ और अन्धी जाति  
 व्यवस्था ३ ८ साधनिक धर्म  
 से २१ द्वारा आन्तरिक प्रकाश  
 की शिक्षा ३७९ द्वारा भारत  
 के धर्म की स्थापना २९२ पहला  
 निघण्टी धर्म २९४ मठ २ २,  
 ३ ३ ५ महान् बुद्ध ३ ३  
 बाद २५३ वैशाखवासी गणपती  
 ३९५

बुद्धदेव ५०, १६३, ३८०, भगवान्  
/ १५४ (देखिए बुद्ध)

बुद्धि, जड चैतन्य ७५, सत्य की ज्ञाता  
२२२

बृहदारण्यक उपनिषद् ३५४

'बेनीडिक्शन' २८४

बैबिलोन १०१, १५९

बैबिलोनिया ३००, निवासी ६४

बेलगांव ३११, ३२५

बेल्ल मठ १९२ (पा० टि०)

बे सिटी टाइम्स प्रेस २६९

बे सिटी डेली ट्रिब्यून २७०

'बोओगे पाओगे' १७३

बोर्नियो ४९, ६३

बोस्टन इवनिंग ट्रांसक्रिप्ट २३२

बोस्टन २७०, वहाँ की स्त्रियाँ २१७,

हेरल्ड २७९, २८१

बौद्ध ३७, ५४, ५९, ७४, ११९, २३७,

२६८, २७५, २७९, आधुनिक

२९८, उनका विश्वास १५७,

उनकी जीवदया ९, उनके दुर्गुण

५६, उनमें जाति-विभाग ३९५,

और ईश्वर ३६, और वैष्णव

११९, और वैदिक धर्म का उद्देश्य

५६, काल १३५, कालीन

मूर्तियाँ ८६, ग्रन्थ २७४, चैत्य

३७३, तत्र १६३, दर्शन २३५,

देश ३९५, धर्म ३६, ५६,

१०७, १२०-२२, १६१-६३, २५२,

२५४, २७२-७३, ३७८, ३९५,

धर्म का कथन ३०१, धर्म का

सामाजिक भाव ३९५, धर्म की

जनप्रियता १२०, धर्म के

सुधार १२०, धर्मावलम्बी ३४१,

प्रचारक १२१, प्रथम मिशनरी

धर्म २५२, भारत में उनकी

सख्या २३९, भिक्षु १६३, भिक्षु

धर्मपाल २३६, मत १५१, २७५,

मतावलम्बी ८८, मित्र ५६, राज्य

५१, विद्वान् २३५, सगठन १२१,

सम्प्रदाय १६३, साम्राज्य, पतनो-  
न्मुख १२१, स्तूप १६३

बौद्धिक पाण्डित्य ८, विकास १०९,  
२४१, शिक्षा १४

ब्रजवासी ४०३

ब्रह्म १००, २२३, ३५८, ३६०, ३८८,

४००, अखण्ड १८३, अविनश्वर

१८३, ईश्वर तथा मनुष्य का उपा-

दान ४०, उसका धर्म २४२, २४७,

उसका साक्षात्कार ३७३, ३९३,

ज्ञान ३६०, ज्ञानरूपी मुद्रिका

३१९, तथा जगत् २८२, तथा

जीव २८२, दृष्टि ३५८, निर्गुण

१४६, ३९९, निर्दोष और समभावा-

पन्न ३९१, पूर्ण, यथार्थ ३९६,

-वध ५२, वाद १२०, शाश्वत

१८३, सगुण २८२, ३८४, ३९९,

सत्ता, निर्गुण ३८४, सत्य १८३-

८४, सूत्र ३५, ३५९ (पा० टि०),

स्वरूप ३९४

ब्रह्मचर्य ९७, ३३२, ३४६, ३६५;

-भाव ३४७

ब्रह्मचारी १५४, ३५३, और सन्यासी

३५८, नवीन ३६५, मित्र ३६४,

विद्यार्थी ९७

ब्रह्मज्ञ पुरुष ३६०

ब्रह्मत्व, उसकी महिमा १६२, -ज्ञान

१४४

ब्रह्मपुत्र १२

ब्रह्मराक्षसी १६९

'ब्रह्मवादिन्' पत्र ३६६

ब्रह्मा १४६, १५७, देवश्रेष्ठ ४०३;

सृष्टिकर्ता २४८

ब्रह्माण्ड १३, १५९, २८२, ३०२,

३०४, ३३७, ३८३, ४०२-३,

अनन्त कोटि ४०३

ब्रह्मानन्द, स्वामी ३५२

ब्रह्मास्त्र १०३

ब्राह्मण ६३, ६५, १४७, २५१, २६१,

३७२, ईश्वर का ज्ञाता ३०४,

मासिक पत्र ३३९ (पा० टि०)  
 समासोचना १४८  
 बंगवासी (सूक्तपत्र) ३३९  
 बंगाल ५३ (पा टि ) ८ ८६  
 ११४ ११८ ३३२, ३५६, ३६६  
 और पंजाब ८३ और यूरोप  
 १ २ विधोत्सोक्रिकल सोसायटी  
 ३४२ देश ७६ ७९ परिषद  
 ७९ पूर्व का भोजन ७९  
 बंगाली आधुनिक १३३ कवि प्राचीन  
 ७७ बापि १५३ टोसा ९७  
 भोजन का तरीका ८२ मुद्रक  
 ३६७  
 बंगोपाख्याय समापक ३१४  
 बंसीबाटी ४९ (वेबिए कृष्ण)  
 'बङ्गपत्र' ८२  
 ब्रह्मिकामय ७८  
 बनारस १२  
 ब्रह्मण ९ ८ १९ ३१ १७४ २८८,  
 ३२ ३२२, ३७४ ३९९ और  
 मोह १ मौक्तिक १८५ मुक्त  
 १७५  
 बरनी सनके खान का तरीका ८२  
 बराहमबर मठ ३४४  
 बर्बर जाति ९२, १५८  
 बस्तिन ९५  
 बख्शेव ४ २  
 'बक़्शाल की बय' ७३  
 बल्कमाचार्य ३४२  
 बसु, जगदीशचन्द्र ३३४ (पा टि )  
 पशुपति ३४१ विजयचन्द्र ३५४  
 बहुजन हिताय बहुजन मुक्ताय ३३७  
 १५५  
 बहुपति की मथा ३२६  
 बहुवादी और सेवकसमाज ३९१  
 बाह्यिक २ ४ २ ७ २५३ २६२,  
 २६८ २८९, २९६, २९८ ३१  
 ३३१ ३८५  
 बादशाहवार ३४१  
 बालकृष्ण १९७

बालक २५८  
 बाली राजा १११  
 बास्तीमोर १९१ अमेरिका ९९  
 २९३  
 बास्तिन किला ९८  
 बाह्याचार और अत्याचार ७ और  
 अनाचार ७०  
 'बिनेटास्त्रिम २३२  
 बिद्यप के पी स्मृति २३५  
 'बी बी' (Three B'S) २८९  
 बीजगणित २८४  
 बीज स्टावस २८५  
 बुद्धर ११३  
 'बुद्धपरस्त के धर्म-परिवर्तन' १६  
 बुद्ध २१ ३६ ३९ ५१ ५५ ६, ११७  
 १५७, १६२-६३ १६५ १९७  
 २३३ २३८ ३९ २४८ २५७  
 २७८-७९, २९२ ३८६ अच्युत  
 रूप में स्वीकार ३ ३ उनका  
 आनिर्मात्र २९३ उनका धर्म २८३  
 २९१ २९३-९४ ३ ४ उनका  
 मन्दिर ३७३ उनका सिद्धान्त  
 ३ ४ उनकी महात्मता ३ ५ उनकी  
 शिक्षा २९४ ३ ५ उनकी शिक्षा  
 और महत्त्व २९४ ३ ४ उनकी  
 सीमा २७५ उनके आगमन से पूर्व  
 ३ ४ उनके युग ३ ५ उनके  
 अनाचार का विमम २७४ उनके  
 प्रति हिन्दू ३ ३ एक महापुरुष  
 ३९५ एक समाज-सुधारक ३९५  
 और ईसा ४१ २८३ और बीज  
 धर्म ३९५ और सन्धी जाति-  
 व्यवस्था ३ ४ वार्षिक कृषि  
 से २१ हाथ आन्तरिक प्रकाश  
 की शिक्षा ३७९ हाथ मारण  
 के धर्म की स्थापना २९२ पहला  
 मिथ्याही धर्म २९४ मठ २९२  
 ३ ३ ५ महान् गुण ३ ३  
 बाद २५३ बैद्यनाथजी संयाही  
 ३९५

२२७, २७०, उसकी जलवायु १३४, उसकी जातीय सम्पत्ति ३९३, उसकी दक्षिणी भाषा १०५, उसकी भावी सन्तान १९५, उसकी मुक्ति २१९, उसकी राष्ट्रीय आत्मा १८, उसकी लघु रूपरेखा ३, उसकी वर्तमान आवश्यकता ३७२, उसकी विशेषता १११, उसकी सजीवता ५, उसके अन्य धार्मिक सम्प्रदाय २९७, उसके उपकारकर्ता २८९, उसके जातीय जीवन ६०-१, उसके भगवान् १४१, उसके राष्ट्र का सगीत ५, उसके रीति-रिवाज २९, २४८, २८१, उसके सम्प्रदाय और मत-मतान्तर २८२, उसमें कर्मकाण्ड ११९, उसमें दार्शनिक चिन्तन ३८०, उसमें नियमित धर्म-सघ नहीं ३८१, उसमें बल एव सार ४९, उसमें बौद्ध धर्म का पतन ३७८, उसमें मुसलमान-जन-सख्या २८१, उसमें मोक्ष-मार्ग ५०, उसमें रजोगुण का अभाव १३६, उसमें 'व्यावहारिकता' २२७, उस पर मुसलमान-विजय १०६, उससे सीखने का पाठ २७२, और अघविश्वास ५, और अन्य जाति २८५, और अफगानिस्तान ६३, और अमेरिका २१७, और आत्मा सबधी देहान्तर-प्राप्ति २७१, और आहारसम्बन्धी पवित्रता ७३, और ईश्वर ४, और कला २८३, और धर्म ७, १४२, और पाश्चात्य देश ३८१, और प्राचीन ग्रीक १०६, और यवन १३५, और राजनीति ३९२, और सामाजिक नियम ११२, और सामाजिक भेद ११९, २९३, और सिद्धान्त की बोरियाँ २९१, किसान १४, तत्कालीन ३०३, तथा आर्य जाति २७२, तथा विदेश ५, तीर्थ भूमि १३२, दक्षिण

६४, दासता में बँधी जाति ३, द्वारा खेल का आविष्कार २८५, नव जाग्रत १२२, पवित्र १३२, प्राचीन ७, १२०, ३८७, भूमि १४१, मूर्तिपूजक २४८, ललित कला में प्रधान गुरु २२४, वर्तमान ४७, वहाँ का भोजन ८०, वहाँ की जाति-प्रथा २७२, वहाँ की नारी २२८, २३०, २६३, ३८०, वहाँ की विधवा २५९, वहाँ की स्थिति २२७, वहाँ के आदिवासी २६४, वहाँ के चिन्तन-शील मनीषी १००, वहाँ के गरीब १५, २३८, वहाँ के पुजारी २९३, वहाँ के विभिन्न धर्म २७१, वहाँ के शिक्षित २८०, वहाँ जाति-व्यवस्था २६९, वहाँ धर्म सबधी स्वतंत्रता २७१, वहाँ बौद्ध धर्म २९३, वहाँ सन्यासी का महत्त्व १८, वहाँ सम्प्रदाय की मूल भित्ति १००, विषयक योजना १४, सीमा १३२ (देखिए भारतवर्ष)

'भारत और हिन्दुत्व' २७८  
 भारतवर्ष ९३, १०७, १४७, २४३  
 'भारतवर्ष में ४१ वर्ष' (पुस्तक) ५९  
 भारतवासी ४९, ६६, १५१, ३७३, ३८५, ३९२, आधुनिक १३४, उसकी औसत आय ४, उसकी दृष्टि ४८, प्राचीन और प्रकृति १३२, वर्तमान १३३  
 'भारताधिवास' (पुस्तक) १४९  
 भारतीय अध्यात्म विद्या और यूनानी १३४, अनुक्रम १२३, आचार-विचार २७९, इतिहास १२४, १६६, उत्पादन २८५, उद्देश्य, मोक्ष ९७, और अग्नेज २९५, और यूनानी कला ४३, कहावत २८९, चिन्तन १३३, जनता १२४-२५, जलवायु ११८, जाति, आदिम ११०, १३३, ज्योतिष शास्त्र

उसका जन्म ईस्वीरोपासना हेतु  
२८ श्रीरक्षामि ३९५ -कुमार  
१५५ पश्चिमी ८३ बेवता ७१  
धर्म १२१ २४२ बाळक गोपाळ  
१२६ बकीळ ३१२ बाब २३४  
२७८ संन्यासी २५३ २७९  
२८१ २९१ सन्धा १२६ ३ ४  
साजु २४२

ब्राह्मण्य १४२  
ब्राह्म धर्म १४९, १५३ मन्थिर ३१  
समाज १४९, १५३ २५  
बिक्रमे हु क ३५, २४५  
शुकस्मि २८६, ३७५  
शुकस्मि एषिकस एषोसियेसन ३८३  
३८६ ३९६ एषिकस सोसायटी  
२८७ टासम्य २९६ बेली ईगळ  
२९७ नैतिक समा ३७५ स्टेडर्ड  
यूनियन २८३ २८७ ३ ३ ३

भक्त उसका छम्प २६१ मिछनरी  
३१  
भक्ति १२७-२८, १४४ ३ ९, ३११  
३१८, ३४४ आन्तरिक ३२५  
बास्वामयी २७७ उसके सर्वत्र में  
मुख्य कारणा ३८५ श्रीर ज्ञान  
१४ ३५१ श्रीर पास्नात्य  
३८५ ज्ञान श्रीर कर्मयोग ३५६  
निष्ठा एवं प्रेम १२७ मनुष्य के  
भीतर ही ३७१ मार्ग ३७२ मार्गी  
२६१ -ज्ञान ३७१ भाव ३८५  
वैराग्य ३५१

'भक्तियोग ४  
भक्ततीस्वरूपा ३६५  
भयवत्तपा ३७४  
भयवन्-सेवा १५४ ३७४  
भयवद्गीता ३१९ ३३१  
भगवान् ७ ५३-५, १ १ ४  
१३६ १४३ १४९, १६६  
२६८, २७३ ३२२, ३३ ३३५,  
३४६, ३५२ ३६३ ३७५, ३७७

३९५ उनके प्रति प्रेम ३८५ कृष्ण  
३३१ ३२ निरपेक्ष ३३५ बुद्धिबेव  
१५४ रामकृष्ण ४३ १४१ (वे  
रामकृष्ण बेव) सत्स्वरूप ३५८  
स्वर्गोत्थ २८  
भमिनी क्रिश्चन १९२ (पा टि )  
निवेदिता १९५ (पा टि )  
३६६ ४ १

भट्टाचार्य कृष्ण श्याम १४६ ४७  
भय ४  
भय १४३  
भयार्थ १७४-७५  
भयानी संकर ३४३  
भयम्बायी २५९  
भारत ३ ९, ९ १४ १६-७ १९,  
२३ २८ ३९, ४८ ५, ५६, ६०-१  
६३ ७३ ७५, ८४-५, ८९, ९२ ३  
१ ७ ११ १२ १२३ १३३,  
१३५ ३६ १४७-४८, १५  
१५४-५५, १५७ १६२ ३४ २१६  
१७ २३१ ३२ २४१ २४९-५१,  
२५६-५७ २६ ३१ २३६ ६७  
२७ २७४ २८ २८४ २८६  
८८ २९ २९३ २९५, ३३७  
३४६, ३७२, ३७७ ३८६, ३९०-  
९१ ४ २ आधुनिक १४९  
उष्णतम आदर्श ३ ९ उत्पीड़ित  
का शरत्काला २४७ उत्तर १२१  
१२३-२४ २७३ उत्तरी २५  
उसका अतीत और १३२ उसका  
अवतार ११९ उसका आधिष्कार  
श्रीर वैम २८४-८५, २९४ उसका  
इतिहास १३२, २२४ उसका ऐति  
हासिक क्रम-विक्रम ११६ उसका  
धर्म १५, २२७ २९२, २९४  
उत्तमाध्ये ४ उसका प्राय ६  
उसका चतु-सहस्र २७९ उसका  
राष्ट्रीय धर्म १२२ उसका श्रेष्ठत्व  
४ उसका सहा २८५) उनकी  
नवा १६३ १६६ उसकी जनतत्त्वा

२२७, २७०, उसकी जलवायु १३४, उसकी जातीय सम्पत्ति ३९३, उसकी दक्षिणी भाषा १०५, उसकी भावी सन्तान १९५, उसकी मुक्ति २१९, उसकी राष्ट्रीय आत्मा १८, उसकी लघु रूपरेखा ३, उसकी वर्तमान आवश्यकता ३७२, उसकी विशेषता १११, उसकी सजीवता ५, उसके अन्य धार्मिक सम्प्रदाय २९७, उसके उपकारकर्ता २८९, उसके जातीय जीवन ६०-१, उसके भगवान् १४१, उसके राष्ट्र का संगीत ५, उसके रीति-रिवाज २९, २४८, २८१, उसके सम्प्रदाय और मत-मतान्तर २८२, उसमें कर्मकाण्ड ११९, उसमें दार्शनिक चिन्तन ३८०, उसमें नियमित धर्म-सघ नहीं ३८१, उसमें बल एव सार ४९, उसमें बौद्ध धर्म का पतन ३७८, उसमें मुसलमान-जन-संख्या २८१, उसमें मोक्ष-मार्ग ५०, उसमें रजोगुण का अभाव १३६, उसमें 'व्यावहारिकता' २२७, उस पर मुसलमान-विजय १०६, उससे सीखने का पाठ २७२, और अधविश्वास ५, और अन्य जाति २८५, और अफगानिस्तान ६३, और अमेरिका २१७, और आत्मा सबधी देहान्तर-प्राप्ति २७१, और आहार सम्बन्धी पवित्रता ७३, और ईश्वर ४, और कला २८३, और धर्म ७, १४२, और पाश्चात्य देश ३८१, और प्राचीन ग्रीक १०६, और यवन १३५, और राजनीति ३९२, और सामाजिक नियम ११२, और सामाजिक भेद ११९, २९३, और सिद्धान्त की वोरियाँ २९१, किसान १४, तत्कालीन ३०३, तथा आर्य जाति २७२, तथा विदेश ५, तीर्थ भूमि १३२, दक्षिण

६४, दासता में बँधी जाति ३, द्वारा खेल का आविष्कार २८५, नव जाग्रत १२२, पवित्र १३२, प्राचीन ७, १२०, ३८७, भूमि १४१, मूर्तिपूजक २४८, ललित कला में प्रधान गुरु २२४, वर्तमान ४७, वहाँ का भोजन ८०, वहाँ की जाति-प्रथा २७२, वहाँ की नारी २२८, २३०, २६३, ३८०, वहाँ की विधवा २५९, वहाँ की स्थिति २२७, वहाँ के आदिवासी २६४, वहाँ के चिन्तन-शील मनीषी १००, वहाँ के गरीब १५, २३८, वहाँ के पुजारी २९३, वहाँ के विभिन्न धर्म २७१, वहाँ के शिक्षित २८०, वहाँ जाति-व्यवस्था २६९, वहाँ धर्म सबधी स्वतंत्रता २७१, वहाँ बौद्ध धर्म २९३, वहाँ सन्यासी का महत्त्व १८, वहाँ सम्प्रदाय की मूल भित्ति १००, विषयक योजना १४, सीमा १३२ (देखिए भारतवर्ष)

'भारत और हिन्दुत्व' २७८

भारतवर्ष ९३, १०७, १४७, २४३  
'भारतवर्ष में ४१ वर्ष' (पुस्तक) ५९  
भारतवासी ४९, ६६, १५१, ३७३, ३८५, ३९२, आधुनिक १३४, उसकी औसत आय ४, उसकी दृष्टि ४८, प्राचीन और प्रकृति १३२, वर्तमान १३३

'भारताधिवाम' (पुस्तक) १४९

भारतीय अध्यात्म विद्या और यूनानी १३४, अनुक्रम १२३, आचार-विचार २७९, इतिहास १२४, १६६, उत्पादन २८५, उद्देश्य, मोक्ष ९७, और अग्नेज २९५, और यूनानी कला ४३, कहावत २८९, चिन्तन १३३, जनता १२४-२५, जलवायु ११८, जाति, आदिम ११०, १३३, ज्योतिष शास्त्र

१६४ विद्योत्सोही १५१ वसिष्ठ  
 २७३ धर्म १२३ १६३ २३१  
 २४२ २४६ ४७ २६१ २६९  
 धर्म दर्शन साहित्य १५१ नारी  
 २६२ ६३ प्रवेश ४९ प्रकृति  
 ४३ बन्धा २२८ २३१ बौद्ध  
 धर्म उसका लोप १२१ भक्ति  
 ३८५ भक्ति और पाश्चात्य देश  
 २८५ भाष्य स्त्री पर निर्भर  
 २६७ महिला ३८ मुसलमान  
 ३७७ पण्ड ५ रीति-नीति  
 १४८ रीति-रिवाज २५ २८६  
 सङ्की २६ विद्या १६४ विद्यार्थी  
 १५८ विज्ञान ११ घटीर ४८  
 समाज ११८ २८ सम्राट् असोक  
 २८४ साहित्य १९५ स्त्री १९,  
 ८६ २६३

माव और माया १९८ बी प्रकार के  
 ३३५

माया ४२ अश्वेजी १४९ २९१ भावार्थ  
 ४२ आत्मकारिक २४५ उसका  
 रहस्य ४२ और भारतीय जीवन  
 १६९ और शैल-अवगति १६९  
 और प्रकृति १६८ और भाव  
 १६८ और मनोभाव १६७ और  
 केवली १६७ और समाज ३६२  
 कलकत्ते की १६८ काश्मिरी की  
 ४२ पीक १९५ ६६ बीली  
 ८८ पहलुवी ६४ पाकी ४२  
 फेंक १६६ बगला १६७ ३५४  
 बोलचाल की १६७ मृत उसके  
 समय १६८ म्येन्क ३१२  
 यूरोपीय १३३ २८४ विचारों  
 की बाह्य १६८ विज्ञान २८४  
 संस्कृत १३३ १६४ २५३ २८४  
 ३५१ ३५८ द्वितीयोपदेश की  
 ४२

त्रिभाषीत और प्रवचनीकता ५४१

भीष्म ५

भूपरमात्म ३ ९, ३२३

भूमभ्यसागर १३३  
 भूमिपति और शक्ति २५१  
 मौन १३४ उसके हाथ बीच २२३  
 और पीड़ा २१ तथा त्याग ५१  
 -विकास ८  
 भोजन असाध्य और साध ७७ बर्द्ध  
 सभासी ७९ और भाव विचार ७९  
 और सर्वसम्मत सिद्धान्त ७९  
 निरामिय ७६ निरामिय-सामिय  
 ७३ पूर्व ब्याज का ७९ मांस ७४  
 भोग्य प्रभ्य ७२  
 भोलाशेष १४३ उसका चरित्र १४४  
 भोलापुत्री उसका चरित्र १४४  
 भौतिकशास्त्र उच्चतर २१४  
 भौतिकवाद २८ शास्त्र ३०९, ३२३  
 ३३६

मन्त्र साम्राज्य १२१

मज्जिमसार २३४ प्रतापबन्ध १४९, १५३

मठ-भ्यवस्था उसके विकास का धर्म  
 ३ २

मधुरा ७७

मशास ८ १३५, १८९ २३२, ३२५,  
 ३६६ ६७ ३३९

महासी सिष्य ३५२

मध्य एशिया ३४

मन अपने धर्म की प्रकिया ३२ असंख्य  
 दर्शन ४ उसकी एकाग्रता और  
 जीव ३८३ ३९७ उसकी क्रिया  
 का धर्म ३२ उसकी निर्मलता  
 ३९८ ९९ उसके अनुपम बन्ध  
 ३२ उसके बंध की चेष्टा  
 ३३८ और आत्मा २४ ७२  
 और आसन ४ और कर्म-नियम  
 २५ और बहिर्बिज्ञान ३८३ और  
 बाह्य प्रकृति २५ और घटीर १२७  
 ३८६ जन्म और मृत्यु का पाप  
 ४ तथा जड़ २६७ प्रकृत और  
 नियम ३१ मन्त्रधीन २६७  
 मन संयम ३९२

मनस्तत्त्व विद्या ३८९

मनु ८४, उनका शासन १३५, और वेद ५४, स्मृति ५२  
मनु० ५२ (पा० टि०), ७२  
मनुष्य ५४, अजन्मा २१५, अमरण-शील २१५, आदिम ३६, १०१, आरम्भ मे शिकारी १०१, उसका कर्तव्य ३२९, उसका क्रमविकास १०१, उसका गुरु २१४, उसका यथार्थ सुख ३३०, उसका विकास २४७, ३७८, उसका सगठन ६३, उसका स्वभाव ३२८, उसकी आत्मा और ज्ञान २९६, उसकी आध्यात्मिक समता ११९, उसकी ईश्वर-प्राप्ति २४७, उसकी उन्नति के अवसर ३७६, उसकी पूर्णाविस्था २६९, उसकी प्रकृति २६७, उसकी मुक्ति, अद्वैत ज्ञान से ३७६, उसकी स्वतंत्र सत्ता का भ्रम २९८, उसके पास तीन चीजें ४०, उसके मार्ग मे सहायक ३३०, उसके लिए उपयुक्त धर्म ३३०, एक आत्मा २४, २९७, एक पूर्ण सत्ता २९८, और असत्य, सत्य की परीक्षा ३३६, और आत्मा तथा भलाई २९२, और ईश्वर २१४, और ईश्वरत्व का अभिव्यक्तीकरण ३८२, और ईसा मे अन्तर ४०, और उसकी सहायता २९२, और कीर्ति ६२, और गुण ५४, और जड पदार्थ २३५, और धर्म २४२, और परीक्षा ३३६, और पागल मे भेद ३२८, और प्रकृति ५०, १०२, २१३, और बन्वन ३९१, और भौतिक वस्तु २१४, और शक्तिमान व्यक्ति ३६, कर्मठ, उसकी सेवा २२१, चेतन भाग का श्रेष्ठ प्राणी ३३७, जगली और सम्य १०८, द्वारा प्रथा-सृष्टि १०४, धार्मिक और नास्तिक २२१, निम्न-

तम भी ईश्वर २१३, पशुता, मनुष्यता और देवत्व का मिश्रण २२१, पुच्छरहित वानरविशेष ३३७, पूजा का सर्वोत्तम तरीका ४००, प्राणीविशेष ३३७, बुद्धिवादी और दार्शनिक पूजा २२१, भावुक २२१, मस्तिष्क मे जल का अंश ३३७, यथार्थ ३९१, समाज की सृष्टि १०५, साधारणतया चार प्रकार २२१, स्वार्थ का पुज २६ 'मनुष्य का दिव्यत्व' २५५ (पा० टि०), २६७

'मनुष्य' बनो ६२

मनोमय कोष ४००

मन्त्र-जप ३६१

मन्त्र-तन्त्र १५१, -वाक्षा ३१८, ३६२

'ममी' २४

मरण और जीवन १९६

मरसिया १४५

मराठा १२४

मलावार ८०, ८७

मलेरिया ४७, ७२

महाकाव्य तथा कविता २८५

'महात्मा' १५३

महादेव १६२

महापुरुष, प्राचीन, उनके ज्ञान का उद्धार १६०

महाभारत १६५-६६, ३३६, आदि पर्व ७४ (पा० टि०), महाकाव्य १२०

महामना स्पितामा १५७

महामाया १०६, उसका अप्रतिहत नियम १५६

महामारी ४७, ७२

महारजोगुणात्मक क्रिया ३४१

महारजोगुणी ५५

महाराष्ट्र ८२

महालामा १०७

महावीर प्रथम नेपोलियन ९८

मासभोजी ६५, जाति ७५



मांसाहारी ७५  
 'मां' १०-१ १७७ ब्यामयी १७८  
 माइकेस मधुसूदन बस ४२  
 माकाक १४६  
 माता बप्टी ८५  
 मातृत्व उसका आदर्श २७७-७८  
 उसका सिद्धान्त और हित २६६  
 मातृ धर्म ३ ३ भूमि २९  
 माइक वेम १५  
 मानव उसका परम सख्य ३४४  
 प्रकृति की दो ज्योति ४१ -शरीर  
 १२८ (देखिए मनुष्य)  
 मानसिक बन्ध २१४  
 'मामुकी पृष्ठ' ११२  
 माया २६ १ ०-१ १७४ १७८  
 २२३ ३१६ ३३४ ३४४ ३८३  
 ३९७ ४ २ उसका द्वार १७५  
 उसकी सत्ता ३७३ उसके अस्तित्व  
 का कारण ३८३-८४ और बीच  
 तत्व ३८१ पाश १७५ -ममता  
 ३१६ -राम्य ३८४ बाब ३७४  
 ७५ समस्त भेद-बोध ३९६  
 समष्टि और व्यष्टि रूप ३७३  
 मामाधिकृत बन्ध १४  
 मायिक जगत प्रपञ्च ३७८  
 मातृमापोबा ३२५  
 मार्म भिषुति ३८४ प्रकृति ३८४  
 मानिस हेरक २९१  
 माइक-बरबार १२२ साम्राज्य १२३  
 मासबा १२४  
 'मास (mass)' २८४  
 मास्टर महाशय ३४४  
 मित्र चावचन्द्र ३४ प्रमथाबास  
 (स्व) ३५६ हरिपद ३ ९  
 मिथिला १२२  
 मिनिबापोलिस नगर २८ स्टार २४२  
 मित्र ३ ९ जॉन स्टुअर्ट ३ २  
 स्टुअर्ट ३३५  
 मित्रातरी उनका कर्तव्य २३१ उनकी  
 हकबल १५३ उसका भारतीय धर्म

के प्रति स्व २६९ धर्म २५२  
 प्रभु ३१ सोय और हित ३६-  
 देवता १५२ स्कूल ३ ९  
 मिश्रयजित २८४ ३२३  
 मिसिसिपी २६  
 मित्र २४ ९१ १५९ निवासी ६४  
 १ १ प्राचीन १ ५  
 मीमांसक ५ उनका मत ५२  
 मीमांसा-वर्तन १२३ भाष्य १६८  
 मुक्ति ८ २१ २४ ३ ५ ५९,  
 १९४ १९९ २ ३ ३५१ ४ १  
 उसका अर्थ ३७४ उसकी श्रेष्ठा  
 ५ उसकी प्राप्ति २५७  
 उसकी सच्ची कल्पना २५ उसके  
 चार मार्ग २१८ उसके साथ ईश्वर  
 का संबंध नहीं ३७४ और धर्म ५  
 और व्यक्ति २५८ ज्योति २ ३  
 -बुध मृत्यु १२६ साम ६ ३४४  
 ३४८ ३७४ ३८३ ३९३  
 मुख्य जाति १४ बरबार १२४  
 बाबकाह १ ७ राम्य ५९ सभ्राट्  
 ९३ २६१ साम्राज्य १२४  
 मुनि १ ९ १२६ पूर्वकालीन ३३५  
 मुमुक्षु और वर्णोच्छ्र ५३  
 मुसलमान ३६-७ ५१ ८३ १ ८ ९,  
 ११२, १४५, १६१ २६७ २९७  
 उनका शक्ति-प्रयोग २७३ उनकी  
 भारत पर विजय १ ३ उनके सामे  
 का तरीका ८२ और ईसाई २६४  
 फूट ३७७ जाति १ ८ धर्म  
 ९२ नारी ३ २ भारतीय ३७७  
 विवेता १ ७  
 मुसलमानी अभ्युदय १ ७ काल मे  
 आन्वीकन की प्रकृति १२३ धर्म  
 १ ६ प्रभाव २६४  
 मुस्लिम उसका बन्धुत्व ९ सरकार  
 १५  
 मुहम्मद १७ २१ ३६ ४१ १५७  
 ३६८ ३८६  
 मुहम्मद १४५

- 'मूर' ९१, जाति २४२  
 मूर्तिपूजक देश २४९, देश और ईसाई  
 धर्म २५२, भारत २४८  
 मूर्तिपूजा २२८, २३०, २३८, २४३,  
 उसकी उत्पत्ति ३७३, मुक्ति-प्राप्ति  
 में सहायक ३७३  
 मूर्तिविग्रह १२७  
 मूसा ३०  
 मृत्यु ६२, ३७६-७७  
 मेक्सिको १०१, २३६  
 मेथाडिस्ट २२२  
 मेमफिस २४५, २४९  
 मेम्फिस २७, ३५  
 मेरी ४९, ९१, १८४, हेल १८३  
 'में' ३७४, ३८४  
 मैक्स मूलर, प्रोफेसर ९, १६४, आदर-  
 णीय गृहस्थ १५०, उनका ज्ञान  
 १४९, उनका भारत-प्रेम १५०,  
 उनकी सचेतनता १४८, प्रोफेसर  
 महोदय १५३-५४, भारत-हितैषी  
 १५०  
 मैजिक लैन्टर्न ३३६  
 मैत्रेयी १४८  
 मैथिल एव मागधी १२०  
 मैनिकीयन अपधर्म २८४  
 मैसूर ८२  
 मोक्ष १२, ५२, २३९, ३९८, उसका  
 अमिलाषी १३४, धर्म ५१, परा-  
 यण योगी ४७, प्राप्ति ५०, मार्ग  
 ५०, ५५-६  
 'मोहमुद्गार' ५५  
 मौत और जिन्दगी २०४  
 मौर्य राजा १२०, वशी नरेश  
 १२०, सम्राट् और बौद्ध धर्म  
 १२१  
 'मौलिक पाप' २४७  
 मौलिकता, उसके अभाव में अवनति  
 ६८  
 म्लेच्छ ४८, अपशब्द, उच्चारणकर्ता  
 ३५८, भाषा ३१२  
 यग मैन्स हिब्रू एसोसिएशन ३५  
 यक्ष्मा ६६  
 यज्ञ, उसका धुआँ १०९, उसकी अग्नि  
 १६२, —काष्ठ १६२, वेदी ११६  
 यथार्थ और आदर्श २९८  
 यम ४७, ५५, ३५०, उसका घर ७६,  
 —सदन ३५०, स्वरूप ४७  
 यमराज ८५  
 यमुना ४०२-३  
 यवन ६३, १०५, १३३, उसपर वाद-  
 विवाद ६४, गुरु १३३  
 'यवनिका' १६४  
 यहूदी १८, ३६, उनका विश्वास ३७८,  
 और अरब २७३, और ईसाई  
 धर्म-संघ २७, और पैगम्बर १८,  
 कट्टर और आहार ८३, जाति  
 १०६, पंडित २५५, संघ ३५  
 यागटिसीक्वाग १०५  
 याज्ञवल्क्य १४८, —मैत्रेयी सवाद ३५४  
 यादृशी भावना यस्य १५४  
 युग-कल्प-मन्वन्तर १९५  
 युगधर्म और भारत १४२  
 युजेनी (Eugenie) सम्राज्ञी ६८  
 युधिष्ठिर ५०  
 युफ्रेटीज १०५,  
 यूनान १३३, ३००, उसकी प्रेरणा  
 ४, देश १६४, पाश्चात्य सम्यता  
 का आदि केन्द्र ९२, वाले १३३  
 यूनानी १०१, २८५, आधिपत्य १६४,  
 कला का रहस्य ४३, चित्रकार  
 ४३, जाति ६४, नरेश २८४,  
 प्राचीन ९३, विद्याकाक्षी २६७,  
 व्युत्पत्ति १६४ (देखिए ग्रीक)  
 युनिटो क्लव २५०  
 युनिटेरियन २२२, २६२-६३, चर्च  
 २५३, २५५, २५९, फर्स्ट २६१  
 'यूपस्तम्भ' १६२  
 यूरोप ६८, ७१, ८५, ९२-४, ९८-९,  
 १०२, १०५, ११३, १३३, १५१-

५२ ११२ २३५ २७ २८०  
 २८४-८५, ३४१ ३७७ उत्तर  
 १३२ उसकी महान् सेवा-कर्म  
 में परिणति १ ८ उसकी सम्पत्ता  
 की भिति १ ५ उसमें सम्पत्ता का  
 आगमन १ ८ सण्ड १ ५६  
 तथा अमेरिका १३४ तिवाची  
 ४८ वर्तमान और ईसाई कर्म  
 ११३ बासी ४९ ५५ ६८  
 यूरोपियन ४८-५ ५५ ६२ उनके  
 उपनिवेश ६७ क्रोम ७  
 यूरोपीय ६४-५ कति कर्कर जाति की  
 उत्पत्ति १ ६ अन्नगुण १११  
 ईसाई ११३ उत्तराधिकारी २५८  
 उनके उपनिवेश ६७ जाति १ ६  
 तथा हिन्दू जाति २४६ वेस ६१  
 २५६ पश्चिम ११ ११३  
 पर्यटक ४७ पुस्तक ९६ कति  
 विज्ञान १ माया १३३ २८४  
 मनीषी १५१ राजा १ ८  
 विद्युत्वाधार (काइनेमी) १३५  
 विज्ञान ६४ वैज्ञानिक २८३  
 सम्पत्ता ९१ १ ९ ११७ १३४  
 सम्पत्ता का साधन ११२ सम्पत्ता  
 की मनीषी ९३ सम्पत्ताकपी बरतन  
 के उपादान १ ९ साहित्य १३३  
 येशुज उसकी मूरत १४५ बाबा  
 १४६  
 योहोका २१  
 योन १५३ और शरीर की स्वस्थता  
 ३१७ और सांख्य दर्शन ३८२  
 कर्म ३५६ क्रिया ३६२ क्रिया  
 उससे लाज ३६२ ज्ञान ३५५ मार्ग  
 ३६२ ३९८ राज ३५६ -विद्या  
 ३९०-९१ सक्ति १५  
 जोगानन्द, स्वामी ३४१ ३५२  
 योगाभ्यास ३७३ ४  
 योगी ९ ३७३ उनका धन्य और  
 अभ्यास ३८९ उनका बाबा ३९  
 उसका बाधर्ष ३९ उसका सधो-

लम आहार ३९७ और सिद्ध  
 २९५ मोक्षपरायण ४७ यवार्थ  
 ३९०-९१  
 'योनिया' (Ionia) ६४  
 एनाथार्थ ३६६  
 एबोनूज ५४ १३५ ३६ २१८ १९  
 उसका कर्म २१९ उसका भाषण  
 में जमान १३६ उसकी अस्थिरता  
 १३६ उसकी जाति धीमे-धीमे  
 नहीं १३६ उसकी प्राप्ति कम्पानप्रद  
 १३६ और उत्पन्न १३६ प्रचल  
 ५७  
 रन्तिरेज १३५  
 रवि १७८-७९  
 रविमर्मा ११५  
 रसायनशास्त्र ११७ ३ ९ ३२३  
 ३३४ ३३६  
 राइट जे एच ओ २ ४  
 (पा टि ) २३१  
 'राई' ८१  
 राम-द्वय ३२४  
 राजतरंगिणी ३३  
 राजनीतिक स्वाधीनता ५८ ६  
 राजन्यकर्म और पुरोहित ११९  
 राजपूत ८४ मद्र १४५ और १२२  
 राजपूताना ८ ८२, १ ७-८ और  
 हिमालय ८७  
 राजयोग ३५९ ३६२  
 राज-सामंत ८६  
 राजसी प्रेम और पीड़ा २२४  
 राजा और प्रजा ३२३ शत्रुघ्न ८६  
 रिचर्ड १ ८  
 राजेन्द्र शीघ्र ३४९  
 राजेन्द्रलाल बॉस्टर ५१ (पा टि )  
 राजी जीसेडिज ९९ ।  
 राजाश्यामी सम्प्रदाय १५३  
 राजबौद्ध विधिधर्म २४६  
 रामकृष्ण १४८, १५२-५३ १६७  
 २१८, ४ १ उनका कर्म १५२

- उनका शक्ति-सम्प्रसारण १५२,  
उनकी उक्तियाँ १४८, उनकी  
जीवनी १५०, उनके धर्म की विशेषता  
१५२, एकता के अवतार २१८,  
और युगधर्म १४२, चरित १५१,  
-जीवनी १५३, -धर्मावलम्बी १५२,  
नरदेव १५१, परमहंस २३४,  
भगवान् १४१, १५१, ३६० (देखिए  
रामकृष्ण देव)  
'रामकृष्णचरित' १४९, ३६१  
रामकृष्ण देव ४३, १४९, १५१, १५५,  
३२२, ३३२, ३४०, ३४५, ३५१,  
३५९ (पा० टि०), ३६१-६२,  
३७३-७४, उनमे कला-शक्ति का  
विकास ४३, यथार्थ आध्यात्मिक ४३  
रामकृष्ण मठ १६७ (पा० टि०),  
मिशन १३२ (पा० टि०), मिशन  
का कार्य ३७२  
रामकृष्ण वचनामृत ३४४  
'रामकृष्ण हिज़ लाइफ एण्ड सेंडिंग्स'  
९, १४८ (पा० टि०), १५१  
(पा० टि०)  
'रामकेष्ट' ३२२  
रामचरण, उनका चरित्र १४४-४५  
रामदास १२३  
रामनाथ २१८  
राम २९, ७६, ३६०-६१, ३९५, और  
कृष्ण ७४, सुसम्य आर्य १११  
रामप्रसाद ५३  
रामलाल चट्टोपाध्याय ३४५, दादा  
३४५  
रामानन्द १२३  
रामानुज ५६, १०२, उनका व्यावहा-  
रिक दर्शन १०३  
रामानुजाचाय ७२, और साद्य मत्रधी  
चिन्ता ७३  
रामानुज नरैण २८६  
रामायण ११, १८३, ३३६, जयोध्या  
८८ (पा० टि०), आय जाति  
द्वारा अनार्य-विजय उपायान नहीं  
११०, उत्तर ७४ (पा० टि०),  
और महाभारत ७४  
रामेश्वर ३२५  
राबर्ट्स, लार्ड ५९  
राय शालिग्राम साहब बहादुर १५३  
रायल सोसायटी ९४  
रावण ४९, २१८  
राष्ट्र, उसका धर्म २५८, उसका मूल्या-  
कन ३००, उसकी मुक्ति का मार्ग  
२८९,  
राष्ट्रीय आदर्श ६०, उसके दी-तिहाई  
लोग २७५, चरित्र ११७, जीवन  
१२०, दुर्गुण २७७, सम्यता १६  
रिचर्ड, राजा १०८  
रिजले मॅनर १९७ (पा० टि०)  
रिपन कॉलेज ३४०  
रीति-नीति ४९, ५७, ९६, १४९,  
३९३, -रिवाज १६, ११८, १३७,  
२३१  
'रेड इन्डियन्स' २५६  
रेनेसाँ (नवजन्म) ९३  
रेल तथा यातायात १६८  
रेवरेण्ड २४५, एच० ओ० ब्रीड  
२४३, एम० एफ० नॉक्स २२८-  
२९, जोसेफ कुक २३५, लेट्वार्ड  
३१०  
रेव० वाल्टर ब्रूमन २९१  
रेव० हिरम ब्रूमन २९१  
रुढि और नियम २१९  
रूम ८१, ९९, २८९, वाले ६९  
रूमी और तिब्बती ८८, और फ़ार्मीनी  
पर्यटक का मत ६४  
रोग-शोक का कुक्षेत्र ४७  
रोम ४, ९२-३, १०६, १५९, २७१,  
उसका ध्येय ४, प्राचीन ३००  
रोमन १०६, १३४, कैथोलिक १६१,  
२७२, कैथोलिक चर्च २७४,  
जानि ९२, प्राचीन ८२, वाले  
२८५, नामाज्य १०६  
रोशेण्ट नोतोर २७०, २८५

संका २१८ २३६ २७३ द्वीप २१८  
 धीररूपी २१९  
 कदमी और सरस्वती ११४  
 कदय उसकी प्राप्ति १५९  
 कदमक १४६ सहर १४५ शिया  
 कौर्णों की राजधानी १४५  
 कदम ९ (पा टि) ६६-७ ८५ ६  
 ९३ ९५ १४७ नयरी ११२  
 'सन्तम-मेड' ८५  
 कलित कला और भारत २२४  
 कानि माहर्षि हिस्टोरिक सोसायटी  
 २८३  
 कौ मर्सी ९९  
 कामा २९६  
 कार्ड रावर्ट्स ५९  
 का सलेट एकेडमी २४८  
 'काँ सीकेट अकादमी' २७ २९  
 काहीर १२४  
 क्लिसियन विपटर २९ ९१ २९३  
 'कलकते पत्थर पर काई कही?' ९  
 कुली मौलरी २३७ २३९  
 'केटर व क्यासे' ९८  
 केनिम वावि २९१  
 कोकसेबा ३९७  
 कोकाचार ७३ १४६  
 कोम और वासना २१९  
 कौकिक विद्या १६  
 कोम १८२  
 कमानुयुत गुण और अधिकार १५८  
 कनमानुय वावि ७६  
 कनस्पतिशास्त्र ३ ९  
 कदाहृत्नगर ३६४  
 'कर्क-हाउस' ३२१ ३६७  
 'कर्तु' (virtue) ९६  
 कर्म धर्म ३८ मेघ का कारण ६३  
 विभाग और कार्य ११२ -म्यबस्ता  
 उससे काम २८ संकल्पना ६३  
 संकरी वावि १ ७

कर्मायम और कार्य ११२  
 कर्मायमाचार १११  
 कसिप्ट १४८  
 कस्तु, अस्तित्वहीन २९८ उनमें परि  
 कर्तन २२१ केवल एक ३७४  
 काताबरन और शिवा २६  
 काव अमेय २७४ जवूट ३३६  
 कर्त १५ आदर्श १८ एकेवर  
 ३६ कर् ११९ ईत २१ पुनर्  
 गम १५ बहुदेवता ३६ मौक्तिक  
 २८ भीतिकता २१४ विर्तवा ७४  
 कामदेव श्रुति ३६  
 कामाचार शक्ति-पूजा ९  
 कामाचारी ९  
 कायसेठ १९४  
 वाराणसी ५१ (पा टि) २८  
 'काई सिक्सटीन डे मर्सी' २८१  
 कार्डोर्क २७८  
 कास्तेयर ११३  
 कासिगटन पोस्ट २९४  
 विकास और आत्मा २६८ सर्व  
 क्रमिक २१९  
 किकटर झुगो ११३  
 किकम्पुर ८  
 किकार और आवर्ष १२ और जगह  
 ३२१ और शब्द ३२ मन की  
 पति ३७ शक्ति १५९, १६८  
 'किकार और कार्य-समा २२७ २२९  
 किकयकप्य कसु ३५४ कानु ३५४  
 किकयनगर १२४  
 किकान १ १३९ आधुनिक ३५  
 उसका अटक निबन्ध २५८ और  
 धर्म ३ २ ३३३ और साहित्य  
 २८३ सामाजिक २३२  
 किकपावार ७४  
 किकेरी किकन २३७ किकली २९५  
 किकेह-मुक्त ३४८  
 किकी अपरा ३८८ उसकी संज्ञा  
 १६४ और धर्म १ ८ -वर्षा  
 १६ -बुद्धि ३१६ ३१८, ३६१

भारतीय १६४, मनस्तत्त्व ३८९,  
यूनानी १६४, लौकिक १६०,  
सम्मोहन ३८९

विद्यार्थी और कामजित् ९७

विद्वत्ता और बुद्धि २२२

विघवा आश्रम ३६४

विधि-विधान ११८

विभीषण २१८

विमलानन्द, स्वामी ३४१, ३४८

वियना ९५

'विरक्त' ७ (देखिए सन्यासी)

विलायत ६९, ८७, ११४, ३५५,  
३६५-६७

विलायती पत्र ३६६, भोजन-पद्धति  
७१, रसोद्भवा ७१

विव कानन्द स्वामी २७, २९, २०३  
(पा० टि०), २१६, २२७, २३२,  
२४२, २४४-४६, २४८-५०,  
२५२, २५४, २५६-५७, २५९,  
२६१, २६३, २६९-७१, २७६,  
२७८, उनका अविश्वास २७१,  
उनका काव्यालंकार प्रयोग २५६,  
उनका रोचक व्याख्यान २६९,  
उनका सृष्टि के बारे में सिद्धान्त  
२७१, उनके तार्किक निष्कर्ष  
२५६, द्वारा अपने धर्म का  
समर्थन २७२, पूर्वीय बन्धु २५५,  
ब्राह्मण सन्यासी २५३, महान् पूर्वीय  
२५३, मृदुभाषी हिन्दू सन्यासी  
२७६, रहस्यमय सज्जन २५६,  
सज्जन भारतीय २६९, हिन्दू दार्श-  
निक २५५, हिन्दू सत २५८,  
हिन्दू सन्यासी २४८, २५२,  
२६७, २७०, २७२, २७८  
(देखिए विवेकानन्द)

विव कानोन्द २२८ (देखिए विवेकानन्द)

विव क्योनन्द २२७ (देखिए विवेकानन्द)

विवा कानन्द २३०-३१ (देखिए विवे-  
कानन्द)

विवाह, उसका आदि तत्त्व १०३,

तथा खान-पान २८८, निम्न  
संस्कारहीन अवस्था २८०, -पद्धति  
का सूत्रपात १०२, प्रणाली में  
परिवर्तन और कारण ३०१, बाल्य  
२५१, ३२२, संस्कार २५१

विवि रानान्ड, २२९ (देखिए विवेकानन्द)  
विवी रानान्ड, स्वामी २३१ (देखिए  
विवेकानन्द)

विवेकचूडामणि ३९२ (पा० टि०)

विवेकानन्द, स्वामी २३, २७ (पा०-  
टि०), ३५-६, ३८, १५३, १६२,  
१८१, १८३, २३३-३५, २७०,  
२७८, २८८, २९३-९४, २९६,  
३००, ३०३, ३०५, ३०९,  
अंग्रेजी व्यवहारपूर्ण २४६, अत्य-  
धिक आनन्ददायक २४५, अन्यतम  
विद्यार्थी २४५, अप्रतिम वक्ता  
२४४, आकर्षक व्यक्तित्व २३८,  
आहार सबधी विचार ७८-९०,  
उच्चतर ब्राह्मणवाद की देन २३४,  
उच्च शिक्षा-प्राप्त २७०, उनका  
आश्चर्यजनक भाषण २४५, उनका  
उच्चारण २४६, उनका धर्म विश्व  
की तरह व्यापक २४२, उनका बाह्य  
व्यक्तित्व २४६, २७४, २९१,  
उनका भाषण २९१, २९६, उनका  
शब्दचयन २९१, उनका सामान्य  
व्यवहार १४५, उनका व्यक्तित्व  
२३२-३३, २३८, उनका स्वदेश  
के प्रति अनुराग ३२२, ३२८,  
उनकी अंग्रेजी और भाषण-शैली  
२९०, ३३३, उनकी निरपेक्ष दृष्टि  
३५, उनकी वाग्मिता २३८,  
उनकी विशेषता ३१८, उनकी  
सगीतमयी वाणी २७७, उनकी  
संस्कृति २३८, उनकी सत्यवादिता  
३२५, उनके ईसाई सबधी विचार  
२६६, उनके जल सबधी विचार  
७९, कुशल ववतृता २३९,  
गभीर, अन्तर्दृष्टि २४४, गभीर,

सन्धे श्रीर सुसंस्कृत व्यवहार २७९  
 चरित्र-गुण ३४५  
 शुम्भकीय व्यक्तित्व २३९, चर्क-  
 कुसुमता २४४ ईवी अधिकार  
 द्वारा सिद्ध शक्ता २३७ निस्पृह  
 संन्यासी ३११ पुत्र्य ग्राह्य  
 संन्यासी २९१ पुतात्मा २३४  
 प्रतिभाशाली विद्वान् २४३ प्रसिद्ध  
 संन्यासी २५ बंगाली संन्यासी  
 ३११ ब्राह्मण संन्यासी २३२  
 २७९ ब्राह्मणों में ब्राह्मण २३८  
 भद्र पुरण २३३ भारतीय संन्यासी  
 २९ मास श्रीर आहुति २३४  
 २४५ मन्त्र पर भाटकर २४५  
 महान् लिप्या २४४ मोहिनी  
 शक्ति ३५२ मुवा संन्यासी  
 ३११ बिहार में कलाकार २४५  
 विश्वास में आदर्शवादी २४५  
 संगीतमय स्वर २३८ संन्यासी  
 २८९ सर्वश्रेष्ठ शक्ता २४४  
 सुंदर शक्ता २३१ ३२ मुबिख्यात  
 हिन्दू २४१ सुसंस्कृत सज्जन २७  
 'त्रिवेकानन्द जी के संघ में' (पुस्तक)  
 ३४८ (पा टि) ३५१  
 'त्रिवेकानन्द साहित्य' २५१ (पा  
 टि) २६१ (पा टि) ३७८  
 विमिष्टाईत ३५९ श्रीर अईत ५९  
 वाद ३८३ वादी २८१  
 विशेष उत्तराधिकार ३ ४  
 विदेषाधिकार ११९, २२३  
 विश्व-धर्म ११६ -यैम २२३ ३८४  
 -ब्रह्मण १४६ ३८८ भ्रम १८४  
 -मेला २४४ -मेला सम्मेलन २४५  
 -भोजना और ईस्वर ३३ -स्वप्न  
 १८३-८४  
 विद्वत्संज्ञा सञ्ची २१४  
 विद्वत्सिद्धि १४८  
 विपरी और विषय ३८४  
 विपुत्रण रत्ना ६३  
 विष्णु १४६ ३९९ पातकवर्ण २४८

पुराण १६३  
 विस्कोन्सिन स्टेट बार्नेक २४१  
 बीजापाभि १६९  
 'बीरत्न' ९६  
 बीरभोग्या बहुधर्या ५२  
 बीर संन्यासी १७३ १७५  
 बुद्ध श्रीमती २२८  
 बुद्धावन-हुंज १२८  
 बेज ७ ५२, १२३ १२७ १३९ १४६,  
 १५२ २ ४ २ ७ २२२, २२७  
 ३ ७-४ ३१२ ३७१-७२, ३८७  
 ३८९ खजवा सुकत ११ ज्ञान  
 वाक्य २९७ उनका कर्मकाण्ड  
 ३९५ उसका व्यापक प्रभाव  
 १३९ उसका शासन १३९ उसकी  
 शोषणा २१५ उसके विभाव  
 १४ उसमें आर्थविद्या के बीर्य  
 १६४ उसमें विभिन्न धर्म का बीज  
 १६३ लूक १९६ एण्ड के दो  
 लब्ध ३ ३-४ -नामधारी १३९  
 परम उत्तर का ज्ञान २१५ परिभाषा  
 १३९ प्रकृत धर्म ११४ प्रचारक  
 १६६ मंत्र १ ९ ३८५ -मूर्ति  
 'मगवान्' १४१ बापी १३७  
 बिजवासी ३८१ सर्वश्री मनु का  
 बिचार २१५ सार्वभौम धर्म  
 की व्याख्या करनेवाला १३९  
 हिन्दू का प्रामाणिक धर्मग्रन्थ २८१  
 वैदव्यास भक्तान् ३५९  
 वेदान्त १४६ ३ ५, ३४८ ४९ ३५५,  
 ३६ ३६४ ३६६ ६७ ३९२  
 उसका प्रभाव ३७७ उसकी धारणा  
 सम्भता के नियम में ३९४ उसके  
 लक्ष्य तक पहुँचने का उपाय ३९८  
 जाति भेद का विरोधी ३७७ दर्शन  
 ३ ३८ ३९१ द्वारा व्यक्तित्व  
 ३९६ -गाठ ३६७ नाम १४  
 समिति ३५४ (पा टि)  
 वेदान्तवादी धर्मा ३९१ ९२  
 वेदान्तिक धर्म ३४७

वेमली चर्च २२९, प्रायनागृह २२७  
 वैदिक अनुष्ठान ४०३, आचार्य ५७,  
 उपाय उचित ५६, और बौद्ध धर्म  
 का एक उद्देश्य ५६, देव १२०,  
 धर्म ५६, धर्म का पुनरुद्भव १२१,  
 धर्म की उत्पत्ति १६२, धर्म तथा  
 बौद्ध धर्म १२०-२२, धर्म  
 तथा समाज की भित्ति ५६, पक्ष  
 १२१, यज्ञधूम १३५, स्तर २२२,  
 हठकारिता १६६  
 वैदान्तिक धर्म ३७५  
 वैद्यनाथ १६८  
 वैयक्तिक अनुभव ३३२, ईश्वर २९९,  
 पवित्रता ३०१, सम्पत्ति ३०२  
 वैराग्य, उमका प्रथम सोपान ३९७,  
 उसका भाव ३९२, और आनन्द-  
 लाभ ३९७, और त्याग १३६,  
 यथार्थ ३३८  
 वैवाहिक जीवन, उसमें नारी का  
 समानाधिकार ३००, और तलाक  
 २५०  
 वैश्य ६३, ६५, १०३, और वाणिज्य  
 ३०४  
 वैष्णव ७४, आधुनिक ७४  
 वैष्णवास्त्र १०३  
 व्यजनाशक्ति ११७  
 व्यक्ति अज्ञ ३९२, अपना निर्माता  
 २९९, उसका अनुसोचन ३२६,  
 उसका निर्माण २२४, उसकी  
 शक्ति २१९, उसके उत्थान से  
 देश का उत्थान २१९, उसके  
 सन्यासी बनने की प्रतिज्ञा २८३,  
 और ईश्वरत्व का ज्ञान २१९,  
 और क्रियाशील विशेषता २२४,  
 और गुरु की जानकारी ३०, और  
 नियम ३१, और मुक्ति की साधना  
 २१९, और विचार का दमन  
 ३१, और व्यक्तित्व २७४, कम  
 शिक्षित २८१, चरित्रवान ३७२,  
 ज्ञानी ३९५, देश-काल के भीतर

नहीं ३७७, धर्म के लिए २१५,  
 धार्मिक का लक्षण ५२, पूजा ३६,  
 वास्तविक ४२, शिक्षित आचार्य  
 २८०

व्यक्तिगत विशेषता २३७  
 व्यक्तित्व और उच्चतर भूमि ३७६,  
 प्रकृत ३७६  
 'व्यष्टि' ३९६ (पा० टि०)  
 व्यापारी और कारीगर २५१  
 व्यायामशाला २१४  
 व्यावहारिक कार्य २९०, जीवन ९,  
 दर्शन और रामानुज १२३  
 व्यास ५०, २३७, ३५७, ३५९  
 ब्रूमन बन्धु २९०-९१, २९३, रेव०  
 वाल्टर २९१, रेव० हिरम २९१  
 शकर ५६, १२२, १६२, अद्वैतवादी  
 ३५९, उनका आन्दोलन १२३,  
 उनका महाभाष्य १६८ (देखिए  
 शकराचार्य)  
 शकराचार्य ५५ (पा० टि०), १२२,  
 १६२, २०७ (पा० टि०), और  
 आहार ७२  
 शक्ति १४६, आसुरी ३६, उद्भावना  
 १५९, उसकी अभिव्यक्ति २१४,  
 उसकी पूजा २६१, उसके अवस्था-  
 न्तर ३३४, और अभीष्ट कार्य  
 ३३२, पूजा, उसका आविर्भाव  
 ९१, -पूजा और यूरोप ९१, -पूजा,  
 कामवासनामय नहीं ९१, -पूजा,  
 कुमारी सघवा ९१, विचार १५९,  
 शारीरिक एव मानसिक ३३२  
 शक्ति 'शिव-त्ता' २१५  
 शबरस्वामी १६८  
 शब्द और भाव ३७२, और रूप ३२  
 शरच्चन्द्र चक्रवर्ती ३४८, ३६३, बाबू  
 ३४८, ३५१, ३६३  
 शरीर ८, १३, ४०, ५५, ६६, ७०,  
 १०३, १३६, १३८, १४१, १४३,  
 १६९, २०७, २१३, २१५, २१७-



१८, २२३ २५७ २८२-८३ ३६१  
 ३९८ आत्मा का बाह्यावरण २२  
 चक्षु की गति २९८ चक्षु की शक्ति  
 ३७२ और मन २९९ ३८८  
 भौतिक ३७ मन और आत्मा  
 ६३ मन द्वारा निमित्त ३८९  
 मन द्वारा प्राप्त २९८ मरणाधीन  
 २१५ योग द्वारा स्वस्व ३९७  
 रसा ३३७ विज्ञान ३८२ -सुखि  
 तथा पापपात्य और प्राप्य ६८९  
 -सम्बन्ध १५४  
 शास्त्रमूर्ति ११९  
 शापेनहीन कर्मण शार्दणिक २८४  
 शालग्राम १६२ शिला १६२ ६३  
 शालग्राम साहब महापुर, राय १५३  
 शान्ति १८३ १८८ और प्रेम ३९  
 शास्त्र और धर्म १४२ व्योतिप  
 ३२३ भूपर्मा ३ ९, ३२३ भौतिक  
 ३ ९ ३२३ ३३९ सत्य से  
 सात्यर्ष १३९ मठ ५२ रसामन  
 ११७ ३ ९ ३२३ ३३४ ३३६  
 शनस्पति ३ ९  
 शाहूबर्ही ५९, ९३  
 शिकामो २३१ ३२ २३५, २३७-३९,  
 २५ २७ २७९, ३१९ कर्म  
 महासभा १६१ ३३९ महासभा  
 १६१ बर्ही का विद्व-मेका २४३  
 'शिकामो सहे हेराण्ड' ३८  
 शिखा औद्योगिक २२८ और अपि  
 कार ११२ शान ३५२ शौचिक  
 १४ व्यवहार ५१  
 शिखा मुमुक्षुमान १४५  
 शिखरला १६९  
 शिखरार ११५  
 शिख ४९-५ १२६ १६६ २ ७-८  
 शिखरान्तराक्षर ३८९ शान ४ १  
 शिखरान्तर्गत २६८ शरीर २ ९  
 शिखरिन १६३ पूजा १६२  
 शिखरानन्द स्वामी ३४१ ६२  
 शिखरार्थ २ ७-८

शुक ५  
 शुक्नीति ५२ (पा टि )  
 'शुक्ल' ७८  
 शुद्धानन्द स्वामी ३३९ (पा टि )  
 सुम १९४ बहुर्मन्त्र २८१ और अष्टम  
 २५, १८५, २ २ ३७४ कर्म  
 २८१ प्रत्येक धर्म की नींव से  
 २९४ बचन २८१ संकल्प  
 २८१ सर्वोत्तम ३१  
 शुभाष्टम १७३ २  
 शुभ्यवाही ३ ५ जनका उदय ३ ४  
 शेक्सपियर १६५ बसब ३  
 शेपाई एस आर श्रीमती २४५  
 शीतान १२ ३७३  
 शीतवाला उमा १९  
 'शीतोपदेश' ३७९  
 शैवात्म्य १ ३  
 शमदान-वैराग्य ३३६  
 श्रद्धा ३८५ अमीष्ट की आचरकता  
 २५ एवं भक्ति १४३ ३१५  
 और बलिदान २ ३  
 श्रद्धिक और सेवक २५१  
 श्रवण मतन और निदिध्यासन ३८७  
 ३९८  
 श्री हृष्य ४९, ५५  
 श्रीभाष्य ३३६  
 श्री राम २१८ १९  
 श्री रामहृष्य बचनानुत् १५५ (पा  
 टि )  
 श्रुति १३९ -आत्म १४४  
 शूल एवं कुसु सुम १४८  
 श्वेताश्वतराग्निपत्र ३५१ (पा टि )  
 ३८२ (पा टि )  
 शुकक ३६१  
 शूली (देवी) १४६  
 शमीन १९ कला १४३ भाद्रपदा  
 २९७ २६, ७ २७१ निष्ठा  
 ३ मन्वा ३९

‘संगीत मे औरगजेव’ ३२३

सग्रहणी ८०

सथाल १५९, उनके वशज १५८

सन्यास ५५, १२०, १३५, २१७,

२४१, आश्रम २६६ ३२२, ३५४,

ग्रहण १५४, धर्म, जीवन के लिए

आवश्यक नही ३६५, व्रत १५४,

३५२

सन्यासिनी २४९

सन्यासी ७, ११, १४, १७, १५३,

१७३-७४, २३०, २४९, २६३,

३१४, ३१६, ३१८-१९, ३५३,

३६१-६२, ३६४, उनका मूल उद्देश्य

३५३, उसका अर्थ ७, और

गृहस्थ १८, और ब्रह्मचारी ३५५,

३६७, और शिक्षा-रीति १९,

गैरिक वस्त्रधारी १८, जातिगत

बधन मुक्त २६६, ढोगी ३२४,

३२६, तथा धर्म और नियम

३२२, धर्म २८३, नवदीक्षित ब्रह्म-

चारी ३६४, निम्नजातीय २६६,

बगाली ३११, ब्राह्मण २३४,

भाई १८५, यथार्थ ३२६, विद्वान्

२३०, विवाह का अनधिकारी

२८३, शिष्य ३९७, सपत्तिवि-

हीन ८, सम्प्रदाय १८, सुधार और

ज्ञान के केन्द्र १८

सयुक्त राज्य २६७, राष्ट्र २३५

सयुक्ता ४०२

सवेग, पशु कोटि की चीज २२०

सस्कृत कुल २९४, पुरातत्त्व १६६,

पुस्तक २८५, भाषा १३३, २८४,

३५८, मत्र ३१२, ३४९, शब्द

४२, साहित्य १४८

सस्था, उसकी अपूर्णता तथा कल्याण

२१९

सहिता, अथर्ववेद १६२, उनमे भक्ति

का बीज ३८५, ऋग्वेद १४८,

-नीति २८१

सतीत्व ९७, ३०३

सत् १९६-९७, २४२, वास्तविक ३६

सत्य ८, अद्वैत ३३५, उच्चतर ३७,

उसका अन्वेषण २१४, उसका

प्रकाश २३६, उसकी खोज २३६,

२५५, उसके कहने का ढग २१४,

उसके दो भेद १३९, उससे सत्य

की ओर २५४, औरत्याग २१४,

और मिथ्या २२१, और राष्ट्र

३७, चिरन्तन १५९, ज्ञान

३३५-३६, निरपेक्ष ३३१, ३३५,

परम १७, रूपी जल २४७, वादी

५०, वास्तविक ३१५, सापेक्ष

३१३, सारभूत २७३

सत्त्वगुण ५४, १३५-३६, उसका

अस्तित्व १३६, उसकी जाति

चिरजीवी १३६, उसकी विद्या

१३५, और तमोगुण १३६, प्रधान

ब्राह्मण ५४

सत्सग, उसकी महिमा ३९९, एव

वार्तालाप ३०९

सद्गुरु ३९८

सनक ५०

सनातन धर्म ३५९, उसका महत्त्व

१४१, शास्त्र और धर्म १४२

सन्त कवि ५३ (पा० टि०)

सन्मार्ग और भाषा ३६२

सप्तधातु २०७

सम्भता, अग्नेजी का निर्माण २८९,

आधुनिक यूरोपीय १३४, आध्या-

त्मिक या सासारिक ११३,

इस्लामी १४५, उसका अर्थ

३९४, उसकी आदि मिति १०५,

उसके भय से अनाचार ७०,

एव सस्कृति १५९, पारसी ९२,

राष्ट्रीय १६

समभाव ३३४

समाज, उसके अनुसार विभिन्न मत

३२७, और गुरु का उदय १६०,

और सिद्धान्त ३१, देश और

काल ३२७, वादी ३४७

समाधि २१५, ३८४ अवस्था ३८७  
 -तत्त्व ३९१  
 समानता और भ्रातृभाव २८८  
 सम्पत्ति और वैभव १८७  
 सम्प्रदाय आधुनिक संस्कृतम १६६  
 बियोनोफी १४९ इटलीवादी ३८१  
 बीड १६३ रोमन कैथोलिक  
 २७२ बीप्यब १६३  
 सम्मोहन-बिद्या ३८८-८९  
 घर बिसिम्यम हटर २८४  
 घरस्वामी ११४  
 सर्वनात्मक सिद्धान्त १८  
 सर्प भ्रम ३३५  
 सर्वधर्मसमान्य ३५८  
 'सर्वेश्वरबाब का युग' ३६  
 सहस्ररत्नगी परित्र' २८५  
 सहिष्णुता २३७ उसके लिए मुक्ति  
 २४६ और प्रेम २४६  
 साक्ष्य दर्शन ३८२ मत् ३८२  
 साइबेरिया ४९  
 सांख्यिक अवस्था ५४  
 साधन-यत्र ३८५ प्रजापती ३९५  
 मन्त्र ३४८ ३५२, ३६१  
 -मार्ग ३८५ -सोपान ३४५  
 साधना प्रयापती ३६१ ३८१ अनुष्णन  
 ३६१ राज्य ३४५  
 साधु-दर्शन ३३ -संघ ३३८ -सम्प्राप्ती  
 १५ ३१५ ३२३ ३२६ ३८१  
 छानेट १८१  
 छात्रेक्ष ज्ञान ३९६ ९७  
 छामरीबा नारी और ईसा १५४  
 'सामाजिक प्रगति' २२१  
 'सामाजिक विज्ञान संघ' २३१  
 सामाजिक विभाजन २२७ स्वाधीनता  
 ५८  
 छामिय और निगमिय भोजन ७३  
 साम्यवाद ३९१  
 साम्राज्यवादी ४  
 छारा हर्मट २७९  
 'सातौर दिवार्तघ' ३२

छामेम इवनिम म्यूज २२७ २३  
 'सामोमन के गीत २६२  
 'साहित्य-कल्पद्रुम' ३४५  
 सिद्धम ३३९, ३४१  
 सिंहनी नीत २३५  
 सिकन्दर ८७ सम्राट् ३३  
 सिकन्दरपाह १३४  
 सिकन्दरियानिवासी ३८२  
 सिक्का साम्राज्य १२४  
 सिथियन (scythian) १२१  
 सिद्ध ३७५ 'जिनो' १५७  
 सिद्धि-नाम १५२  
 सिद्धुका २८५  
 सिन्धु १२, १ ५ बेघ १ ७  
 सियामबह ३३९  
 सीता २१८ १९ बेबी ७४ राम १८३  
 सुख अनन्त ३७६ और श्रेयसू २८  
 -सुख ३१ १७७ २०२ २ ९  
 -सोम ५  
 सुभार-आन्धोलन २९२ और सुद्धि  
 का आचार २४७ बाबी १२४  
 सुबोधानन्द स्वामी ३५२  
 सुभाषा ४९  
 सूर्य १४१ १४६ १८ २ ३४  
 २ ९, २५७ २६५, ३३७ ३५१  
 ३८४ ३८८  
 सृष्टि २ ८ ३८ अमाधि और  
 अनन्त २९७ उसका अर्थ २९८  
 उसका आदि नहीं ३८ और  
 मनुष्य ३३ -मात १९६ मनुष्य  
 समाज की १ ५ रचना २७१  
 रचनावाद का सिद्धान्त ३३-४  
 राज्य ३३७ व्यक्त ३९७ समाज  
 की बेघ-मेघ से १ ३  
 सन कैथारपत्र १४९, १५३ मरेन्द्रनाथ  
 ३४ ३६४  
 सेनेटर पामर २७  
 सेन्ट हेडेना ९९  
 सेन्ट्रल बर्थ २४३ वीटिस्ट बर्थ  
 २२८ २९

- सेमेटिक ३००  
 'सेल मूल तातार' १०६  
 सेलिबिस ४९  
 सेलेबीज ६३  
 सेवर हाल २८२  
 सेवा, निष्काम १९२  
 सेवियर ३४२, श्रीमती ३४०, ३४२  
 सैगना २७०-७१, इर्वनिंग न्यूज  
 २७२, करियर हेरल्ड २७४  
 सैन फ्रांसिस्को ३५४ (पा० टि०),  
 ४०१ (पा० टि०)  
 सैरागोटा २३१  
 सोमलता १६२  
 'सोऽह' २९२  
 सौरजगत् ३३७  
 स्कम्भ १६२-६३  
 स्कॉटलैण्ड ९४  
 स्टर्डी, ई० टी० ३५५  
 स्टार-रगमच ३६६  
 स्टुअर्ट खानदान ९४, मिल ३३५  
 स्टैडर्ड यूनियन २८६  
 स्टैसबर्ग जिला ९७  
 स्टोइक दर्शन ३८१  
 'स्ट्रियेटर डेली फ्री प्रेस' २४०  
 स्त्री और पुरुष २५७, और बौद्धिकता  
 २१६, -पूजा ९०, सबधी आचार  
 और विभिन्न देश ९६,  
 स्थिरा माता २०३ (पा० टि०)  
 स्नान और दाक्षिणात्य ७०, और  
 पाश्चात्य, प्राच्य मे अतर ६९-७०  
 स्नोडेन, आर० वी० कर्नल २४५  
 स्पेन ४, ६९, ८१, ९१, २३५, उसकी  
 समृद्धि २३६, देश १०८, ११३,  
 वाले १०१, २७३  
 स्पेनी लोग २७३  
 स्पेन्सर ३०९  
 स्मिथ कॉलेज २७८, पत्रिका २७८  
 'स्रष्टा एव नर्वाधिनायक' १२०  
 'स्टेटन लिमेयम व्यूरो' २५०  
 स्वतंत्रता, उच्चतम ३१, सच्ची ०२२
- स्वधर्म, उसका अनुसरण ५२, उसकी  
 रक्षा ५६  
 स्वयंवर ४०१, उसकी प्रथा १०२,  
 स्वर्ग १२, २३, ६९, १३४, १७४,  
 १८०, २१४, २५८, २६५, २८५,  
 ३७८, ३८६, उसकी कल्पना २५,  
 और देवदूत २५, और सुख की  
 कल्पना २५  
 स्वर्णिम नियम २५८-५९  
 स्वाधीनता ९९, आध्यात्मिक ५९,  
 राजनीतिक ५८, ६०, समानता  
 और बहुत्व ९४, सामाजिक ५८-९  
 स्वेडन ८१, २३९  
 स्वेडनवर्ग २५८
- हुटर, सर विलियम २८४, २८६  
 हुक और अधिकार २२४  
 हुक्सले ३०९, ३१२  
 हुज़रत ईसा १५४, मूसा १५७  
 हुटेन्टॉट १५९  
 हुठधर्मी और जडता २९४  
 हदीस ११३  
 हनुमान १४३, २१९  
 हब्बी १५९  
 हरमोहन बाबू ३४८-४९  
 हरिद्वार ७८  
 हरिनाम ५४, उसका जप ५२,  
 -सकीर्तन-दल ३४०  
 हरिपद मित्र ३०९ (पा० टि०)  
 हसन-हुसैन १४५  
 हार्टफोर्ड २३२  
 हार्डफोर्ड ३७८  
 हार्वर्ड क्रिमसन २८२, विश्वविद्यालय  
 ३८०  
 'हार्वर्ड रिलिजस यूनियन' २८२  
 'हॉल ऑफ कोलम्बस' २३२  
 हॉलैण्ड ८५  
 'हिदन' ३९४  
 हिन्दुस्तान २३२, और देशवामी  
 ब्राह्मण २५०

विश्वामित्र २४ २९१  
 विश्वेस्वर १५१  
 विषय और विषयी २३ भोग १३४  
 विष्णुस्वामी ३६३ (पा टि)  
 वीणापाणि ३२७  
 वृन्दावन ३६३  
 बहूट हाक १५  
 बेघ राजा २१७  
 बेह २५, ४१ ६३४ ११३ ११७  
 १३२ २ १ (पा टि) २२५,  
 २४१ २८४ २८९ ३६ ३६४  
 ३६९ ३७२ ३७९ अर्धपूर्व ३७  
 अनादि अन्त १५१ ३६९  
 अर्ध ३६१ (पा टि) आध्या  
 त्मिक जीवन के नियम ३६९  
 ईश्वर का प्रामाणिक बचन १६  
 उसका अर्थ ८९ उसका प्रताप  
 १६ उसकी मायता ४३ चक्र  
 ११४ २२१ ३६१ (पा टि) और  
 आत्मा संबंधी विचार १४९ और  
 कट्टर वैदिक मार्गी १६ और  
 कर्मकाण्ड का आचार २८९ और  
 बंधवासी ३६५ और भाठ ९२  
 और मज २८९ और हिन्दू धर्म  
 १४९ दो अंश में विभक्त  
 ६३ -पाठी ९ प्राचीनतम ग्रन्थ  
 १६ मंत्र ३६१ महान् ग्रन्थ ९  
 माध्यम छि सत्य का उद्घोष १५१  
 यजुर् ६३ ३६१ (पा टि) ३६९  
 वेदान्त ३६३ (पा टि) साक्षात्  
 १६ हिन्दू का आदि धर्मग्रन्थ ६३  
 वेद का अर्थ ६३  
 वेदांत ३४ ७२ ८१ ८९, ९१ २  
 १ ४-५, ११७ १५९, २५४  
 अभिमत ८ आधाबाबी ७३  
 उद्यम का इतिहास १५ ५१  
 उद्देश्य १७ उसका अस्वास्थ्य  
 ८ उसका ईश्वर ८७ १८८  
 उसका पुत्र ७६ उसका बाबा  
 ११९ उसका ध्येय ८ उसका

निर्मीक सिद्धान्त ९९ उसका  
 प्रतिपादन ११८ उसका प्रतिपाद्य  
 ८३ उसका रूप ७८-८० उसका  
 विचार ८१ उसका समाधान  
 १९८ उसकी अपेक्षा १५ उसकी  
 ईश्वर-कल्पना ६७ (पा टि)  
 उसकी प्रत्य पर अनास्था ७९  
 ऐतिहासिक व्यावहारिक परिणाम  
 ११७-२१ और आस्तिक दर्शन  
 ३४-५ और उसका प्रचार ७३  
 ४ और ग्रंथ ७९ और ग्रंथ संबंधी  
 विचार ७९ और बन्धन ९७  
 और भारत ८ और मुक्ति-बापना  
 ११६ और व्यक्ति-विशेष की  
 धारणा ७९ और समस्त धर्म २५  
 और सांख्य ६७ (पा टि)  
 और सामाजिक आकांक्षा ३ १  
 कठिनाई ८ कथन १९८ केसरी  
 ३८ आति-मेद-हीन ८९ दर्शन  
 ६३ ७१ ७७ ११४ ११७-१८  
 १५ १७ ३६४ (पा टि)  
 ३६७ ३७२ दर्शन और निराशा  
 वाद ७२ दर्शन और यथार्थ आशा  
 वाद ७२ बाबा आधुनिक संसार  
 पर १५ दृष्टि १ द्वारा  
 उठाया प्रश्न ८५ द्वारा अनर्थ  
 शीघ्र ईश्वर का उपदेश ७९ द्वारा  
 पाप पापी की स्थापना ८१  
 धर्म ३६५ धारणा ८ निराशा  
 बाबी ७३ प्रतिपादित ईश्वर ८९  
 प्राचीनतम दर्शन ९३ १२ मठ  
 ६५ ७१ १ ३ महता ११८  
 राष्ट्र का धर्म ८ सद्य ८४  
 विख्यात सूत्र ११९ विशिष्ट  
 सिद्धान्त ११९ विशेषता ८९,  
 ११७ १५२ व्यावहारिक पद्य  
 १ २ व्याख्याकार का उद्यम  
 १५१ शाब्दिक अर्थ ६३ सिद्धा  
 ७४ ८२ ९३ संघर्ष के लिए  
 म्यान १६५ सम्प्रदायपरिहित ८९

सागर ७६, सिद्धान्त ९७, २९६, ३६७, सिद्धि ९२, सूत्र का भाष्य ३७० (पा० टि०), हिन्दू का धर्म-ग्रथ ६४

वेदान्त एण्ड दि वेस्ट १३७ (पा० टि०)

वेदान्ती, अद्वैत ६७, आधुनिक १७१, उत्साही २५४, उनका उपदेश ९७, उनका कथन १०८, उनका मत ६७, ७१, उनकी सहिष्णुता २९५, और आध्यात्मिक विशेषाधिकार १००, और उनकी नीति १२७, और सन्यासी २८७, और साख्य मत ६६-७, नैतिकता १०१-२, मस्तिष्क १०९, विचार ६८, सच्चा ७५, सत् ६८

वेनिस, अर्वाचीन २०८

वैज्ञानिक शिक्षा ३५८

वैतरणी २४१ (पा० टि०) (देखिए लेथी नदी)

वैदिक ऋषि ३७१, कर्मकाण्ड ६३ (पा० टि०), ३६४, काल २०५-६, क्रियाकाण्ड ३६२ (पा० टि०), ज्यामिति का उद्भव १३०, धर्म १६०, २७२, ३७२, नाम २८६, पशुवलि ३५४, पुरोहित २०१, भाषा १६०, मन्त्र २०१ (पा० टि०), मार्गी १६०, यज्ञ १८९, यज्ञ-वेदी १३०, विचार ६४, विद्या ३६०, सत्य ८९, साहित्य ६३ (पा० टि०), ३५५, साहित्यरूपी अरण्य २५६

वैधी भक्ति ३६

वैभव-विलास २९८

वैरागी २६३, ३६७ (पा० टि०)

वैशेषिक ३६२ (पा० टि०), दर्शन ६५

वैश्य २०२, २०९-१०, ३६४, उनका उत्थान २१८, उनका प्रभुत्व-काल २१८, उसका सूदरूपी कोडा २१८, उसकी विशेषता २१८, और

इग्लैण्ड २०९, और प्रजा २२२, और ब्राह्मण शक्ति २०९; और राजशक्ति २१८, कुल २२१, शक्ति २०९, २१७

वैष्णव साधक ३६७ (पा० टि०)

व्यक्ति, अज्ञ ३७०, -उपासना ४६, उसका मूल्यांकन १८५, उसका सत्य और उद्देश्य ३५१, उसकी असफलता १९५, उसकी असहायता १२३, उसकी प्रतीक्षा ३००, और अनासक्ति १९३, और आप्त विषय ३६९, और उच्च सदेश ३००, और जीवन सबधी दृष्टि १८४, और प्रतिक्रिया १६८, और भाव १८५, कल्पना और शून्य ३११, विकास-प्रक्रिया १६१, व्यवहारकुशल १८४

व्यक्तित्व, अपरिणामी, अपरिवर्तनीय ७६, (देखिए परमात्मा), उसका अर्थ ७५, १४१, उसका पुनर्विकास १९३, -धारी १४१, भाव ८३, यथार्थ ७६, -वाद ८४, सुरक्षा के लिए सघर्ष १४१

व्याकुलता और प्रेम २१

व्याख्या, उसके चार प्रकार ६४ (पा० टि०)

व्यापारी, जीवन, धर्म, प्यार, शील के १७८

व्यायामशाला, ससाररूपी १८७

व्यावहारिक जीवन, उसका महत्त्व २६२, उसकी विशेषता २६१, उसमें आदर्श का अस्तित्व २६१, और आदर्श का फल २६१, और आदर्श की शक्ति २६१, और मतवाद २६२

व्यावहारिक ज्ञान क्षेत्र ३७९, योग २६५

व्यास ६४-५, वीवर २२१, सूत्र ६४, ३६२-६३, ३७० (देखिए व्यास देव)

व्यास देव ३६४ (पा० टि०)

फिर भी मैं आने की मरसक बेपटा कर रहा हूँ हास्यार्किक तुम तो जानती हो कि एक महीना जाने में और एक महीना वापस आने में ही कम बाते हैं और वह भी केवल चंद दिनों के आवास के लिए। और पिस्ता न करो मैं पूरी कोशिश कर रहा हूँ। मेरे अत्यधिक गिरे हुए स्वास्थ्य और कुछ कामूनी मामलों आदि के कारण थोड़ी देर अवश्य हो सकती है।

बिरलेहाबद  
दिवेकानन्द

(कुमारी बोसेफिन मैक्सवॉड को लिखित)

मठ, बम्बई हावड़ा  
बंबास भारत

प्रिय 'बो'

तुम्हारे जिस महान् ज्ञान से मैं जूनी हूँ उसे चुकाने की कल्पना तक मैं नहीं कर सकता। तुम कहीं भी क्यों न रहो मेरी मंगलकामना करना तुम कभी भी नहीं भूलती हो। और तुम्हीं एकमात्र ऐसी हो जो इन तमाम घुमेच्छाओं से ऊँची उठकर मेरा समस्त बोझ अपने ऊपर लेती हो तथा मेरे सब प्रकार के अनुचित आचरणों को सहन करती हो।

तुम्हारे आपानी मित्र ने बहुत ही व्यामूढापूर्ण व्यवहार किया है किन्तु मेरा स्वास्थ्य इतना खराब है कि मुझे यह डर है कि आपान जाने का समय मैं नहीं निकाल सकूँगा। कम से कम केवल अपने गुणवाही मित्रों के समाचार जानने के लिए मुझे एक बार बम्बई प्रेसीडेन्सी हीकर पुनरुत्था पड़ेगा।

इसके अलावा आपान यात्रायात्र में भी दो महीने की अवधि केवल एक महीना वहाँ पर रह सकूँगा कार्य करने के लिए इतना सीमित समय पर्याप्त नहीं है— तुम्हारा क्या मत है? अतः तुम्हारे आपानी मित्र ने मेरे मार्गव्यय के लिए जो धन भेजा है उसे तुम वापस कर देना। नवम्बर में जब तुम भारत छोड़ोपी उस समय मैं उसे चुका दूँगा।

आसाम में मूस पर पुन मेरे रोग का मयातक आक्रमण हुआ था कमस मैं स्वल्प हो रहा हूँ। बम्बई के लोग मेरी प्रतीक्षा कर हीएन हो चुके हैं अब की बार उनसे मिलने जाना है।

इन सब कारणों के होते हुए भी यदि तुम्हारा यह अभिप्राय हो कि मेरे लिए जाना उचित है, तो तुम्हारा पत्र मिलते ही मैं खाना हो जाऊँगा।

लन्दन से श्रीमती लेगेट ने एक पत्र लिखकर यह जानना चाहा है कि उनके भेजे हुए ३०० पौण्ड मुझे प्राप्त हुए है अथवा नहीं। उनका भेजा हुआ धन यथा-समय मुझे प्राप्त हुआ है तथा पूर्व निर्देश के अनुसार एक सप्ताह अथवा उससे भी पहले 'मीनरो एण्ड कम्पनी, पेरिस'— इस पते पर मैंने उनको सूचित कर दिया है।

उनका जो अन्तिम पत्र मुझे प्राप्त हुआ है, उस लिफाफे को न जाने किसने अत्यन्त भद्दे तरीके से फाड़ दिया है। भारतीय डाक विभाग मेरे पत्रों को थोड़ी शिष्टता के साथ खोलने का प्रयास भी नहीं करता।

तुम्हारा चिरस्नेहशील,  
विवेकानन्द

(कुमारी मेरी हेल को लिखित)

मठ,

५ जुलाई, १९०१

प्रिय मेरी,

मैं तुम्हारे लम्बे प्यारे पत्र के लिए अत्यन्त कृतज्ञ हूँ, क्योंकि इस समय मुझे किसी ऐसे ही पत्र की जरूरत थी, जो मेरे मन को थोड़ा प्रोत्साहन दे सके। मेरा स्वास्थ्य बहुत खराब रहा है और अभी है भी। मैं केवल कुछ दिनों के लिए सँभल जाता हूँ, इसके बाद फिर ढह पडना जैसे अनिवार्य हो जाता है। खैर, इस रोग की प्रकृति ही ऐसी है।

काफी पहले मैं पूर्वी बंगाल और आसाम में भ्रमण करता रहा हूँ। आसाम काश्मीर के बाद भारत का सबसे सुन्दर प्रदेश है, लेकिन साथ ही बहुत अस्वास्थ्यकर भी है। पर्वतों और गिरि शृङ्खलाओं में चक्कर काटती हुई विशाल ब्रह्मपुत्र— जिसके बीच-बीच में अनेक द्वीप हैं, बस देखने ही लायक है।

तुम तो जानती ही हो कि मेरा देश नद-नदियों का देश है। किन्तु इसके पूर्व इसका वास्तविक अर्थ मैं नहीं जानता था। पूर्वी बंगाल की नदियाँ नदियाँ नहीं, मीठे पानी के घुमडते हुए सागर हैं, और वे इतनी लम्बी हैं कि स्टीमर उनमें हफ्तों तक लगातार चलते रहते हैं। कुमारी मैक्सवेल जापान में हैं। वे उस देश पर मुग्ध हैं और मुझसे वहाँ आने को कहा है, लेकिन मेरा स्वास्थ्य इतनी लम्बी समुद्र-यात्रा गवारा नहीं कर सकता, अतः मैंने इकार कर दिया है। इसके पहले मैं जापान देख भी चुका हूँ।



तो तुम बेनिस का आनन्द से रही हो! यह बूढ़ पुद्गल (मगर) अबस्य ही मजेदार होमा — क्योंकि साइसोक केवल बेनिस में ही हो सकता था है न?

मुझ अत्यंत खुशी है कि सैम इस वर्ष तुम्हारे साथ ही है। उत्तर के अपने नीरस अनुभव के बावजूद यूरोप में उसे आनन्द आ रहा होगा। इधर मैंने कोई रोपक मित्र नहीं बनाया और जिन पुराने मित्रों को तुम जानती हो वे प्रायः सबके सब मर चुके हैं—लेवकी के राजा भी। उनकी मृत्यु सिक्न्दर में सम्राट् अकबर की समाधि के एक ऊँचे मीनार से गिर पड़ने से हुई। वे अपने लार्च से आगे में इस महान् प्राचीन वास्तु-सिन्धु के गमूने की मरम्मत करवा रहे थे कि एक दिन उसका निरीक्षण करते समय उनका पैर फिससा और वे सैकड़ों फुट नीचे गिर गये। इस प्रकार तुम देखती हो न कि प्राचीन के प्रति हमारा उत्साह ही कमी कमी हमारे दुःख का कारण बनता है। इसलिए मेरी ध्यान रहे कहीं तुम अपनी भारतीय प्राचीन वास्तुओं के प्रति अत्यधिक उत्साहशील न हो जाना।

मिस्र के प्रतीक-चिह्न में सर्प रहस्यवाह (योग) का प्रतीक है सूर्य ज्ञान का उल्लिखित सागर कर्म का कमल भक्ति का और हंस परमात्मा का जो इन सबके मध्य में स्थित है।

सैन और माँ को प्यार कहना।

सस्नेह,  
त्रिविक्रानन्द

पुनश्च—हर समय धीरे से अस्वस्थ रहने के कारण ही यह छोटा पत्र लिखना पड़ रहा है।

(मगिनी क्रिश्चन को लिखित)

प्रिय क्रिश्चन

बेल्गुम मठ,  
६ जुलाई, १९११

कमी कमी किसी कार्य के आदेश से मैं बिचल हो उठता हूँ। आज मैं लिखने के गठे में मस्त हूँ। इसलिए मैं सबसे पहले तुमको कुछ पंक्तियाँ लिख रहा हूँ। मेरे स्नायु दुर्बल हैं—ऐसी मेरी बहनामी है। अत्यन्त सामान्य कारण से ही मैं व्याकुल हो उठता हूँ। किन्तु प्रिय क्रिश्चन मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि इस विषय में तुम भी मुझसे कम नहीं हो। हमारे यहाँ के एक कवि ने लिखा है जो सकता है कि पर्वत भी चढ़ने वाले ज्वल में भी धीरजता उत्पन्न हो पाय किन्तु महान् व्यक्ति के हृदय में स्थित महान् भाव कभी दूर नहीं होना। मैं सामान्य

व्यक्ति हूँ, अत्यन्त ही नामान्य, किन्तु मैं यह जानता हूँ कि तुम महान् हो, तुम्हारी महत्ता पर मदा में विश्वास है। अन्यान्य विषयों में भले ही मुझे चिन्तित होना पड़े, किन्तु तुम्हारे बारे में मुझे तनिक भी दुश्चिन्ता नहीं है।

जगज्जननी के चरणों में मैं तुम्हें माँप चुका हूँ। वे ही तुम्हारी मदा रक्षा करेगी एवं माग दिग्गती रहेगी। मैं यह निश्चित रूप में जानता हूँ कि कोई भी अनिष्ट तुम्हें स्पर्श नहीं कर सकती—किन्ती प्रकार की विघ्न-त्रावाएँ क्षण भर के लिए भी तुम्हें दवा नहीं सकती। इति।

भगवदाश्रित,  
विवेकानन्द

(कुमारी जोसेफिन मैविलअँड को लिखित)

१४ जुलाई, १९०१

प्रिय 'जो',

यह जानकर कि बोया कलकत्ता आ रहे हैं, मैं सतत प्रमत्त हूँ। उन्हें शीघ्र मठ भेज दो। मैं यहाँ रहूँगा। यदि सम्भव हुआ, तो मैं उन्हें यहाँ कुछ दिन रखूँगा और तब उन्हें फिर नेपाल जाने दूँगा।

आपका,  
विवेकानन्द

(कुमारी मेरी हेल को लिखित)

बेल्लूड मठ,  
हावडा, बगाल,  
२७ अगस्त, १९०१

प्रिय मेरी,

मैं मनाता हूँ कि मेरा स्वास्थ्य तुम्हारी आशा के अनुरूप हो जाय, कम से कम इतना अच्छा कि तुम्हें एक लम्बा पत्र ही लिख सकूँ। पर यथार्थ यह है कि वह दिन-प्रतिदिन गिरता ही जा रहा है, इसके अतिरिक्त भी अनेक परेशानियाँ और उलझनें साथ लगी हैं। मैंने तो अब उन पर ध्यान देना ही छोड़ दिया है।

स्विट्ज़रलैण्ड के अपने सुन्दर काष्ठगृह में सुख-स्वास्थ्य से परिपूर्ण रहो, यही मेरी कामना है। यदाकदा स्विट्ज़रलैण्ड अथवा अन्य स्थानों की प्राचीन वस्तुओं का हल्का अध्ययन—निरीक्षण करते रहने से चीजों का आनन्द थोड़ा और भी बढ़ जायगा। मैं बहुत प्रसन्न हूँ कि तुम पहाड़ों की मुक्त-वायु में साँस

स रही हो। लेकिन बुल है कि सीम पूर्णतः स्वयम् नहीं है। तैर, इसमें कोई चिन्ता की बात नहीं उसकी काठी जैसे ही बड़ी अच्छी है।

स्त्रियों का चरित्र और पुरुषों का भाव्य इन्हें स्वयं ईश्वर भी नहीं जानता मनुष्य की तो बात ही क्या! चाहे यह मेरा स्त्रियौचित्य स्वभाव ही मान लिया जाय पर इस क्षण तो मेरे मन में यही आता है कि काग तुम्हारे अतिर पुरुषत्व का षोड़ा वर्ण होता। ओह मेरी! तुम्हारी बुद्धि स्वास्व्य मुन्दरता सब उस एक आशय्यक तत्त्व के बिना व्यर्थ जा रहे हैं और वह है—स्वयित्त की प्रतिष्ठा! तुम्हारा धर्म तुम्हारी ठेकी सब बचवास है केवल मजाक। अधिक से अधिक तुम एक बोद्धिम-स्कूल की छोटी हो—टीकहीन! बिलुप्त ही रीकहीन!

आह! यह जीवनपर्यन्त बुराई को रास्ता सुझाते रहने का व्यापार! यह अत्यन्त कठोर है अत्यन्त क्रूर! पर मैं अचहाय हूँ इसके भाग। मैं तुम्हें प्यार करता हूँ मेरी ईमानदारी से सम्झाई से मैं तुम्हें प्रिय समनेवासी बातों से छस नहीं सकता। न ही यह मेरे बघ का रोग है।

फिर मैं एक मरणोन्मुख व्यक्ति हूँ मेरे पास छस करने के लिए समय नहीं। अत ए छसकी आग! अब मैं तुमसे ऐसे पत्रों की आशा करता हूँ जिनमें खड़ी भार जैसी ठेकी हो उसकी ठेकी बनाये रखो मुझे पर्याप्त रूप से आपति की आशय्यकता है।

मुझे मैकबीग परिवार के विषय मे अब ब महीं ये कोई समाचार नहीं मिला। श्रीमती कुछ या निवेदिता से कोई भीबा पत्र-व्यवहार न होने पर श्री श्रीमती सेविमर से मुझ बराबर उनके विषय में सूचना मिलती रही है और अब सुनता हूँ कि वे सब तारों मे श्रीमती कुछ के अतिथि हूँ।

मुने नहीं माकूम कि निवेदिता मारत अब आपस जायेगी या कभी जायेगी भी या नहीं।

एक तरह से मैं एक अवकाशप्राप्त व्यक्ति हूँ आन्धोत्तन कैसा बल रहा है इसकी कोई बहुत जानकारी मैं नहीं रखता। बुराई आन्धोत्तन का स्वयम् भी बका होता बा रहा है और एक आशमी के लिए उसके विषय में सूक्ष्मतम जानकारी रखना बर्लमब है।

जाने-पीने सोने और रोप समय में शरीर की शुभूपा करने के विषय मैं और कुछ नहीं करता। बिबा मेरी। आशा है इस जीवन में कहीं न कहीं हग तुम अवश्य मिलेंगे। और न भी मिलें तो भी तुम्हारे इस माई का प्यार तो सरा तुम पर रहेगा ही।

(श्री एम० एन० वनर्जी को लिखित)

मठ, वेलूड, हावडा,  
२९ अगस्त, १९०१

स्नेहाशी,

मेरा शरीर क्रमशः स्वस्थ होता जा रहा है, यद्यपि अभी तक मैं अत्यन्त ही दुर्बल हूँ। 'शुगर' अथवा 'अलबुमिन' की कोई शिकायत नहीं है, यह देखकर सब कोई चकित हैं। वर्तमान गडवडी का एकमात्र कारण स्नायु सम्बन्धी दुर्बलता है। अस्तु, धीरे धीरे मैं ठीक होता जा रहा हूँ।

पूजनीया माता जी ने कृपापूर्वक जो प्रस्ताव किया है, उससे मैं विशेष कृतार्थ हूँ। किन्तु मठ के लोगो का कहना है कि नीलाम्बर बाबू के मकान, यहाँ तक कि समूचे वेलूड गाँव में भी अभी तथा आगामी महीने में 'मलेरिया' छा जाता है। इसके अलावा किराया भी अत्यधिक है। अतः पूजनीया माता जी यदि आना चाहे, तो मेरी राय यही है कि कलकत्ते में एक छोटे से मकान की व्यवस्था की जाय। यदि हो सका, तो मैं भी कलकत्ते में जाकर ही रहूँगा, क्योंकि वर्तमान शारीरिक दुर्बलता में पुनः मलेरिया का आक्रमण होना कतई वाछनीय नहीं है। मैंने अभी इस बारे में सारदानन्द या ब्रह्मानन्द की राय नहीं ली है। वे दोनों ही कलकत्ते में हैं। ये दो मास कलकत्ता अपेक्षाकृत स्वास्थ्यप्रद है और कम खर्चीला भी है।

मूल बात यह है कि प्रभु उन्हें जैसे चलाये, वैसे ही चलना उचित है। हमलोग केवल सलाह दे सकते हैं और वह सलाह भी एकदम निरर्थक ही है। यदि रहने के लिए उन्हें नीलाम्बर बाबू का मकान ही पसन्द हो, तो किराया आदि पहले से ही ठीक कर रखना। माता जी की इच्छा पूर्ण हो—मैं तो केवल इतना ही जानता हूँ।

मेरा हार्दिक स्नेह तथा शुभकामना जानना।

सदा प्रभुचरणाश्रित,  
विवेकानन्द

(श्री एम० एन० वनर्जी को लिखित)

मठ, वेलूड, हावडा,  
७ सितम्बर, १९०१

स्नेहाशी,

ब्रह्मानन्द तथा अन्यान्य सभी की राय जानना आवश्यक प्रतीक होने के कारण एव उन लोगो के कलकत्ते में रहने के कारण तुम्हारे अन्तिम पत्र के जवाब देने में देरी हुई।

पूरे एक वर्ष के लिए मकान लेने का विषय सोच-समझकर निश्चित करना होगा। इधर जैसे इस महीने वेल्ड में 'मलेरिया' होने का खतरा है उसी प्रकार कम्कत्ते में भी 'प्लेग' का खतरा है। फिर भी यदि कोई गाँव के भीतरी भाग में न जाने के प्रति सचेत रहे तो वह 'मलेरिया' से बच सकता है क्योंकि नदी के किनारे पर 'मलेरिया' बिल्कुल नहीं है। अभी तक नदी के किनारे पर 'प्लेग' नहीं फैला है और 'प्लेग' के आक्रमण के समय इस गाँव में उपस्थित सभी स्वस्थ मारवाड़ियों से भय बाटे हैं।

इसके अतिरिक्त अधिक से अधिक तुम कितना किराया दे सकते हो उसका उल्लेख करना आवश्यक है। अब कहीं हम उपनुसार मकान की तलाश कर सकते हैं। और दूसरा उपाय यह है कि कम्कत्ते का मकान से लिया जाय।

मैं स्वयं ही मानो कम्कत्ते में विशेषी बात चुका हूँ। किन्तु और लोग तुम्हारी पसन्द के अनुसार मकान की तलाश कर देंगे। जितना शीघ्र हो उनके निम्नलिखित दोनों विषयों में तुम्हारा विचार बात होते ही हम लोग तुम्हारे लिए मकान तलाश कर देंगे। (१) पूरनीया माता जी बेमूक रहना चाहती हैं बचका कम्कत्ते में? (२) यदि कम्कत्ता रहना पसन्द हो तो कहीं तक किराया देना अभीष्ट है एवं जिस मुहल्ले में रहना जाऊँ लिए उपयुक्त होगा? तुम्हारा जवाब मिलते ही शीघ्र यह कार्य सम्पन्न हो जायगा।

मेरा हार्दिक स्नेह तथा शुभकामना जानता।

भवशील  
विश्वकामन्द

पुनरुक्त—हम लोग यहाँ पर कुछसपूर्वक हैं। मोती एक सप्ताह तक कम्कत्ते में रहकर वापस आ चुका है। बत तीन दिनों से यहाँ पर दिन रात बर्षा हो रही है। हमारी दो गाँवों के बच्चे हुए हैं।

वि

(भगिनी निवेदिता को लिखित)

मठ, वेल्ड  
७ सितम्बर, १९११

प्रिय निवेदिता

हम सभी तात्कालिक आशे में मग्न रहते हैं—ठासकर इस कार्य में हूब उठी रूप से संलग्न हैं। मैं कार्य के आशे की बचाये गता चाहता हूँ किन्तु कोई ऐसी बटना बट जानी है जिसके अन्तर्गत वह खच ही उठान उठता है और

इसीलिए तुम यह देख रही हो कि चिन्तन, स्मरण, लेखन—और भी न जाने कितना सब किया जा रहा है।

वर्षा के वारे में कहना पड़ेगा कि अब पूरे जोर से आक्रमण शुरू हो गया है, दिन-रात प्रबल वेग से जल बरस रहा है, जहाँ देखो वहाँ वर्षा ही वर्षा है। नदियाँ बढ़कर अपने दोनों तटों को प्लावित कर रही हैं, तालाब, सरोवर सभी जल से परिपूर्ण हो उठे हैं।

वर्षा होने पर मठ के अन्दर जो जल रुक जाता है, उसे निकालने के लिए एक गहरी नाली खोदी जा रही है। इस कार्य में कुछ हाथ बँटाकर अभी अभी मैं लौट रहा हूँ। किसी किसी स्थल पर कई फुट तक जल भर जाता है। मेरा विशालकाय सारस तथा हंस-हंसिनी सभी पूर्ण आनन्द में विभोर हैं। मेरा पाला हुआ 'कृष्ण-सार' मृग मठ से भाग गया था और उसे ढूँढ़ निकालने में कई दिन तक हम लोगो को बहुत ही परेशानी उठानी पड़ी थी। एक हसी दुर्भाग्यवश कल मर गयी। प्रायः एक सप्ताह से उसे श्वास लेने में कष्ट का अनुभव हो रहा था। इन स्थितियों को देखकर हमारे एक वृद्ध रसिक साधु कह रहे थे, महाशय जी, इस कलिकाल में जब सर्दी तथा वर्षा से हंस को जुकाम हो जाता है, और मेढक को भी छीक आने लगती है, तो फिर इस युग में जीवित रहना निरर्थक ही है।

एक राजहसी के पख झड़ रहे थे। उसका कोई प्रतिकार मालूम न होने के कारण एक पात्र में कुछ जल के साथ थोड़ा सा 'कार्बोलिक एसिड' मिलाकर उसमें कुछ मिनट के लिए उसे इसलिए छोड़ दिया गया था कि या तो वह पूर्णरूप से स्वस्थ हो उठेगी अथवा समाप्त हो जायगी, परन्तु वह अब ठीक है।

त्वदीय,  
विवेकानन्द

वेल्लूड,  
८ अक्टूबर, १९०१

प्रिय—

जीवन-प्रवाह में उत्थान-पतन के अन्दर होकर मैं अग्रसर हो रहा हूँ। आज मानो मैं कुछ नीचे की ओर हूँ।

भवदीय,  
विवेकानन्द

(कुमारी जोसफिन मैकिडमोंड को लिखित)

मठ, पोस्ट-बेकड हावड़ा

८ नवम्बर, १९११

प्रिय 'जो'

Abatement (कमी) शब्द की व्याख्या के साथ जो पत्र मेला जा चुका है वह निश्चय ही अब तक तुम्हें मिल गया होगा। मैंने न तो स्वयं वह पत्र ही लिखा है और न 'ठार' ही भेजा है। मैं उस समय इतना अधिक अस्वस्थ था कि उन दोनो में से किसी भी कार्य को करना मेरे लिए सम्भव नहीं था। पूर्वी बंगाल का भ्रमण करके लौटने के बाद से ही मैं निरन्तर बीमार भैसा हूँ। इसके अलावा दृष्टि बट जाने के कारण मेरी हास्ता पहले से भी बरबाद है। इन बातों को मैं लिखता नहीं चाहता किन्तु मैं यह बेशक रहा हूँ कि कुछ सोम पूरा निबरन जानना चाहते हैं।

अस्तु, तुम अपने आपानी मित्रों को केन्द्र भा रखी हो—इस समाचार से मुझे ख़ुशी हुई। मैं अपने सामर्थ्यानुसार उन लोगों का आदर-आतिथ्य करूँगा। उस समय मद्रास में रहने की मेरी विशेष सम्भावना है। आगामी सप्ताह में कलकत्ता छोड़ देने का मेरा विचार है एवं कम्पस बकिंग की ओर अप्रसर होना चाहता हूँ।

तुम्हारे आपानी मित्रों के साथ उड़ीसा के मंदिरों को देखना मेरे लिए सम्भव होना या नहीं यह मैं नहीं जानता हूँ। मैंने स्केण्डों का भोजन किया है अतः वे सोम मुझे मन्दिर से जाने देंगे अबका नहीं—यह मैं नहीं जानता। लॉर्ड कर्जन को मन्दिर में प्रवेश नहीं करने दिया गया था।

अस्तु, फिर भी तुम्हारे मित्रों के लिए यहाँ तक मुझसे सहायता हो सकती है मैं करने को सर्वैव प्रस्तुत हूँ। कुमारी मूणर कलकत्ता में है यद्यपि वे हम लोगों से नहीं मिली हैं।

सतत स्नेहात्मक त्वरीय

विश्वकाम्य

(स्वामी स्वरूपानन्द को लिखित)

गोपाल लाल विला,  
वाराणसी छावनी,  
९ फरवरी, १९०२

प्रिय स्वरूप,

चारु के पत्र के उत्तर में उससे कहना कि ब्रह्मसूत्र का वह स्वयं अध्ययन करे। उसका यह कहने से क्या अभिप्राय है कि ब्रह्मसूत्रों में बौद्ध मत का संकेत है? निश्चय ही उसका मतलब भाष्य से होगा—होना चाहिए, और शंकराचार्य केवल अन्तिम भाष्यकार थे, हाँ, बौद्ध साहित्य में भी वेदान्त का कहीं कहीं उल्लेख है और बौद्धों का महायान मत अद्वैतवादी भी है। अमरसिंह नाम के एक बौद्ध ने बुद्ध के नामों में अद्वयवादी का नाम क्यों दिया था? चारु लिखता है कि ब्रह्म शब्द उपनिषद् में नहीं आता है। वाह ! !

बौद्ध धर्म के दोनों मतों में मैं महायान को अधिक प्राचीन मानता हूँ। माया का सिद्धान्त ऋक् संहिता के समान प्राचीन है। श्वेताश्वतर उपनिषद् में 'माया' शब्द का प्रयोग है, जो प्रकृति से विकसित हुआ है। इस उपनिषद् को कम से कम मैं बौद्ध धर्म से प्राचीन मानता हूँ।

बौद्ध धर्म के विषय में मुझे कुछ दिनों से बहुत सा ज्ञान हुआ है। मैं इसका प्रमाण देने को तैयार हूँ कि—

(१) शिव-उपासना अनेक रूपों में बौद्धमत से पहले स्थापित थी, और बौद्धों ने शैवों के तीर्थस्थानों को लेने का प्रयत्न किया, परन्तु असफल होने पर उन्होंने उन्हींके निकट नये स्थान बनाये, जैसे कि बोधगया और सारनाथ में पाये जाते हैं।

(२) अग्निपुराण में गयासुर की कथा का बुद्ध से सम्बन्ध नहीं है—जैसा कि टा० राजेन्द्रलाल मानते हैं—परन्तु उसका सम्बन्ध केवल पहले से ही वर्तमान एक कथा से है।

(३) बुद्ध देव गयाशीर्ष पर्वत पर रहने गये, इससे यह प्रमाण मिलता है कि वह स्थान पहले से ही था।

(४) गया पहले से ही पूर्वजों की उपासना का स्थान बन चुका था, और बौद्धों ने अपनी चरण-चिह्न उपासना में हिन्दुओं का अनुकरण किया है।

(५) प्राचीन से प्राचीन पुस्तकें भी यह प्रमाणित करती हैं कि वाराणसी शिव-पूजा का बड़ा स्थान था, आदि आदि।

बोधगया से और बौद्ध साहित्य में मैंने बहुत सी नयी बातें जानी हैं। चारु ने कहना कि वह स्वयं पढ़ें तथा मूर्खतापूर्ण मतों से प्रभावित न हों।



मैं यहाँ बाराबत्ती में अच्छा हूँ और यदि मेरा इसी प्रकार स्वास्थ्य सुधरता जायगा तो मुझे बड़ा काम होगा।

बौद्ध धर्म और नव-हिन्दू धर्म के सम्बन्ध के विषय में मेरे विचारों में अन्तिम कायी परिवर्तन हुआ है। उन विचारों को निश्चित रूप देने के लिए कदाचित् मैं जीवित न रहूँ परन्तु उसकी कार्यप्रणाली का संकेत मैं छोड़ पाऊँगा और तुम्हें तथा तुम्हारे भ्रातृमणों को उस पर काम करना होगा।

आशीर्वाद और प्रेमपूर्वक तुम्हारा  
बिबेकानन्द

(श्रीमती जोसि कुम को लिखित)

नौपास लाह दिना  
बाराबत्ती काबरी  
१ फरवरी १९२

प्रिय श्रीमती कुम

आपका और पुत्री का एक बार पुनः भारतभूमि पर स्वागत है। मद्रास बर्नक की एक प्रति जो मुझे 'जो' की कृपा से प्राप्त हुई, उससे मैं अत्यन्त हर्षित हूँ। जो स्वागत निवेदिता का मद्रास में हुआ वह निवेदिता और मद्रास दोनों ही के लिए हितकर था। उसका भावण निरूप्य ही बड़ा सुन्दर रहा।

मैं आशा करता हूँ कि आप और निवेदिता भी इसी जन्मी भाषा के परचात् पूरी तरह विभ्राम कर रही होगी। मेरी बड़ी इच्छा है कि आप कुछ बंटों के लिए पश्चिमी कच्छता के कुछ पाँवों में जायें और वहाँ ककड़ी बसि बैठ अन्नक तथा चास-मूत बादि से निर्मित पुराने किस्म के बंगाली मकानों को देखें। वास्तव में वे ही 'बंगला' कहलाये जाने के अधिकारी हैं जो अत्यन्त कक्षापूर्ण होते हैं। किन्तु आह! आजकल तो वह नाम 'बंगला' हर किसी बड़े-सबे भूमित मकान को देकर उस नाम का मजाक बना दिया गया है। पुराने जमाने में जो कोई भी महक बनवाया तो अतिवि-सत्कार के लिए इस प्रकार का एक 'बंगला' अवश्य बनवाया था। इसकी निर्माण-कला अब विलुप्त होयी या रही है। काश मैं निवेदिता की सारी पाठशाला ही इस बीबी में बनवा सकता। फिर भी इस तरह के जो दो-एक नमूने खोज बने हैं उन्हें देखकर सुख होता है।

बिबेकानन्द सब प्रबन्ध कर देगा आपको केवल कुछ बंटों की भाषा भर करनी पड़ेगी।

श्री ओकाकुरा अपने अल्पकालीन दौरे पर निकल पड़े हैं। वे आगरा, ग्वालियर, अजन्ता, एलोरा, चित्तौड़, उदयपुर, जयपुर और दिल्ली आदि जगहें जाना चाहते हैं।

बनारस का एक अत्यंत सुशिक्षित घनाढ्य युवक, जिसके पिता से हमारी पुरानी मित्रता थी, कल इस नगर में वापस आ गये हैं। उनकी कला में विशेष रुचि है और नष्टप्राय भारतीय कला के पुनरुत्थान के सदुद्देश्य से बहुत सा धन व्यय कर रहे हैं। वे श्री ओकाकुरा के जाने के पश्चात् ही मुझसे मिलने आये। भारत की कला जो कुछ भी शेष रह गयी है, उसका श्री ओकाकुरा को दर्शन कराने के लिए ये ही उपयुक्त व्यक्ति हैं, और मुझे विश्वास है, इनके सुझावों से श्री ओकाकुरा लाभान्वित होंगे। अभी ही श्री ओकाकुरा ने टेराकोटा की एक सुराही यहाँ से प्राप्त की है, जिसे नौकर इस्तेमाल कर रहे थे। उसकी गठन और उसकी मुद्राकित डिजाइन पर वे मुग्ध रह गये। किन्तु चूँकि वह सुराही मिट्टी की थी और यात्रा में उसके टूट जाने का भय था, अतः उन्होंने मुझसे उसे पीतल में ढलवा लेने को कहा। मैं तो किकर्तव्यविमूढ सा था कि क्या करूँ। कुछ घंटे बाद तभी यह युवक आये और न केवल उन्होंने इस कार्य के करने का जिम्मा ले लिया, वरन् मुझे ऐसे सैंकड़ों मुद्राकित टेराकोटा भी दिखाये, जो श्री ओकाकुरावाले से असख्यगुना श्रेष्ठ हैं।

उन्होंने उस अद्भुत प्राचीन शैली के पुराने चित्रों को सिखाने का भी प्रस्ताव रखा। वाराणसी में केवल एक परिवार ऐसा बचा है, जो अब भी उम प्राचीन शैली में चित्र बना सकता है। उनमें से एक ने तो मटर के एक दाने पर आखेट का संपूर्ण दृश्य ही चित्रित कर डाला है, जो बारीकी और क्रियाकान में पूर्णतः निर्दोष है। मुझे आशा है कि लौटते समय ओकाकुरा इस नगर में आयेंगे और इन भद्रपुरुष के अतिथि बनकर भारत के कलावशेषों का दर्शन करेंगे।

निरंजन भी श्री ओकाकुरा के साथ गया है और एक जापानी होने से किसी मंदिर में आने-जाने से उसे कोई मना नहीं करता। ऐसा प्रतीत होता है, जैसे तिव्वती और दूसरे उत्तर प्रान्तीय बौद्ध शिव की उपासना के लिए यहाँ बराबर आते रहे हैं। यहाँ वालों ने उसे शिर्वांग का स्पर्श करने तथा पूजा आदि करने की अनुमति दे दी थी। श्रीमती एनी बेसेंट ने भी ऐसी ही चेष्टा एक बार की थी, पर बेचारी! उन्हें मंदिर के प्रागण तक में प्रवेश नहीं करने दिया गया, यद्यपि उन्होंने जूते उतार दिये थे और साड़ी पहनकर पुरोहितों के चरणों की धूल भी माये लगा चुकी थी। बौद्ध हमारे यहाँ के किसी भी बड़े मंदिर में अहिन्दू नहीं ममलें जाते।

मेरा कार्यक्रम कोई निश्चित नहीं है मैं बहुत चौध ही यह स्वाम बन सकता हूँ।

विश्वेकानन्द और लड़के भाप सबको अपना रह-आदर प्रेषित करत हूँ।

चिरस्महादद

विश्वेकानन्द

(स्वामी ब्रह्मानन्द को लिखित)

गोपाल लाल बिमा

बाणजसी छावनी

१२ फरवरी १९०९

कम्पानीय

तुम्हारे पत्र से सबिलेप समाचार जानकर खुशी हुई। निवेदिता क स्कूल के बारे में मुझे जो कुछ कहना था मैंने उनको लिख दिया है। इतना ही कहना है कि उनकी दृष्टि में जो अच्छा प्रतीत हो तदनुसार वे कार्य करें।

और किसी विषय में मेरी राय न पूछना। उससे मेरा विमर्श खराब हो जाता है। तुम मेरे लिए कबल यह कार्य कर देना—बस इतना ही। रुपये धेज देना क्योंकि इस समय मेरे समीप दो-चार रुपये ही धेज हैं।

कन्हाई मयकुरी के सहारे जीवित है बाट पर जप-तप करता रहता है तथा रात में यहाँ आकर सोता है। नैदा गरीब आबमियों का कार्य करता है। रात में आकर सोता है। बाबा (Okakura) तथा निर्दलन आ मये हैं। आज उनका पत्र मिलने की सम्भावना है।

प्रभु के निर्देशानुसार कार्य करते रहना। दूसरों के अविमत जानने के लिए भटकने की क्या आवश्यकता है? सबसे मेरा स्नेह कहना तथा बच्चों से भी। इति।

सस्नेह लक्ष्मीय

विश्वेकानन्द

(ममिनी निवेदिता को लिखित)

बाणजसी

१२ फरवरी १९०९

प्रिय निवेदिता

एक प्रकार की शक्तियाँ तुममें उद्भूत हों महामाया स्वयं तुम्हारे हृदय तथा

१ ओकाकुरा (Okakura) को प्रेमपूर्वक ऐसा सम्बोधित किया गया है। 'कुरा' शब्द का उच्चारण बंभला 'कुड़ा' (अर्थात् बाबा) के निकट है इसीलिए स्वामी जी महाराज में उनको बाबा कहते थे। स

भूजाजो मे अचिष्टिन हो । अप्रतिहत महाशक्ति तुम्हारे अन्दर जाग्रत हो तथा यदि सम्भव हो, तो उमके माय ही माय तुम शान्ति भी प्राप्त करगे—यही मेरी प्रार्थना है।

यदि श्री रामकृष्ण देव मृत्य हो, तो उन्होंने जिम प्रकार मेरे जीवन मे मार्ग प्रदशन किया है, ठीक उनी प्रकार अथवा उमसे भी हजार गुना स्पष्ट रूप से तुम्हे भी वे मार्ग दिग्वाकर अग्रसर करते रहे।

विवेकानन्द

(स्वामी ब्रह्मानन्द को लिखित)

गोपाल लाल विला,  
वाराणसी छावनी,  
१८ फरवरी, १९०२

अभिन्नहृदय,

रुपये प्राप्ति के समाचार के साथ कल मैंने जो तुमको पत्र लिखा है, अब तक वह निश्चय ही तुमको मिल गया होगा। आज यह पत्र लिखने का मुख्य कारण है कि इस पत्र के देखते ही तुम उनसे मिल आना। तदनन्तर क्या बीमारी है, कफ आदि किस प्रकार का है, यह देखना है, किसी अत्यन्त सुयोग्य चिकित्सक के द्वारा रोग का अच्छी तरह से निदान करा लेना। राम बाबू की बड़ी लडकी विष्णु-मोहिनी कहाँ है?—वह हाल ही मे विधवा हुई है।

रोग से चिन्ता कही अधिक है। दस-बीस रुपये जो कुछ आवश्यक हो दे देना। यदि इस ससाररूपी नरककुण्ड मे एक दिन के लिए भी किसी व्यक्ति के चित्त मे थोडा सा आनन्द एव शान्ति प्रदान की जा सके, तो उतना ही सत्य है, आजन्म मैं तो यही देख रहा हूँ—बाकी सब कुछ व्यर्थ की कल्पनाएँ हैं।

अत्यन्त शीघ्र इस पत्र का जवाब देना। चाचा (Okakura या अकूर चाचा) तथा निरजन ने ग्वालियर से पत्र लिखा है। अब यहाँ पर दिनो दिन गर्मी बढ रही है। बोधगया से यहाँ पर ठण्ड अधिक थी। निवेदिता के श्री सरस्वती पूजन सम्बन्धी घूम घाम के समाचार से बहुत ही खुशी हुई। शीघ्र ही वह स्कूल खोलने की व्यवस्था करे। जिससे सब कोई पाठ, पूजन तथा अध्ययन कर सकें, इसका प्रयास करना। तुम लोग मेरा स्नेह ग्रहण करना।

सस्नेह,

विवेकानन्द

(स्वामी ब्रह्मानन्द को लिखित)

गोपाल लाल बिरा  
 बाराणसी छावनी  
 २१ फरवरी १९२

प्रिय राजाराम

अभी अभी मुझे तुम्हारा एक पत्र मिला। अगर मैं और शर्दी यहाँ जाने को इच्छुक हूँ, तो उन्हें भेज दो। जब कलकत्ते में ताऊन फैला हुआ है तो वहाँ से दूर रहना ही अच्छा है। इसाहाबाद में भी व्यापक रूप से ताऊन का प्रकोप है नहीं जानता कि इस बार बाराणसी में भी फैलगा या नहीं।

मेरी ओर से श्रीमती ब्रुक से कहो कि एछोरा तथा अन्य स्थानों का भ्रमण करने के लिए एक बठिन यात्रा करनी होगी है जब कि इस समय मौसम बहुत गर्म हो गया है। उनका शरीर इतना कमजोर है कि इस समय यात्रा करना उनके लिए उचित नहीं। कई दिन हुए मुझे 'बाबा' का एक पत्र मिला था। उनकी अंतिम सूचना के अनुसार वे अर्जन्ता पये हुए थे। महन्त ने भी उत्तर नहीं दिया थायब वे राजा प्यारीमोहन को पत्रोत्तर देते समय मुझे लिखेंगे।

नेपाल के मंत्री के मामले के बारे में मुझे विस्तार से लिखो। श्रीमती ब्रुक कुमारी मैक्सवेल तथा अन्य लोगों से भिरा विशेष प्यार तथा आशीर्वाद कहता। तुम्हें बाराणसी और अन्य लोगों को मेरा प्यार तथा आशीर्वाद। क्या गोपाल बाबा को पत्र मिला गया? कृपया उनकी बकरी की घोड़ी बेचना शुरू करते रहना।

धस्सेह,  
 विश्वकान्त

पुनरुक्त—यहाँ के सब लड़के तुम्हें अभिवादन करते हैं।

(स्वामी ब्रह्मानन्द को लिखित)

गोपाल लाल बिरा  
 बाराणसी छावनी  
 २४ फरवरी १९२

प्रिय राजाराम

आज प्रातःकाल तुम्हारा भेजा अमेरिका से आया हुआ एक छोटा सा पार्सल मिला। पर मुझे न कोई पत्र मिला न तो वह रजिस्ट्री ही जिसकी तुमने चर्चा की है और न ही कोई दूधपै। मैं नेपाली संस्कृत आदि के अध्ययन नहीं या क्या कुछ बठित

हुआ, यह मैं बिल्कुल भी नहीं जान सका हूँ। एक मामूली सी चिट्ठी लिखने में इतना कष्ट और विलम्ब ! अब मुझे यदि हिसाब-किताब भी मिल जाय, तो मैं चैन की साँस लूंगा। पर कौन जानता है, उसके मिलने में भी कितने महीने लगते हैं।

सस्नेह,  
विवेकानन्द

(कुमारी जोसेफिन मैकिलवॉड को लिखित)

मठ,

२१ अप्रैल, १९०२

प्रिय 'जो',

ऐसा लगता है जैसे मेरे जापान जाने की योजना निष्फल हो गयी है। श्रीमती बुल जा चुकी हैं, और तुम जा रही हो। मैं जापानी सज्जन से पर्याप्त रूप से परिचित नहीं हूँ।

सारदानद जापानी सज्जन और कन्हाई के साथ नेपाल गया है। क्रिश्चन शीघ्र नहीं जा सकी, क्योंकि मार्गट इस महीने के अन्त से पूर्व नहीं जा सकती थी।

मैं भली भाँति हूँ—ऐसा ही लोग कहते हैं, पर अभी बहुत दुर्बल हूँ और पानी पीने की मनाही है। खैर रासायनिक विश्लेषण के अनुसार तो काफी सुधार परिलक्षित हुआ है। पैरों की सूजन और अन्य शिकायतें सत दूर हो गयी हैं।

श्रीमती वेटी तथा श्री लेगेट, अल्बर्टा और हॉली को मेरा अनन्त प्यार कहना—शिशु हॉली को तो जन्म-पूर्व से ही मेरा आशीर्वाद प्राप्त है और वह सदा मिलता भी रहेगा।

तुम्हें मायावती कैसा लगी? उसके बारे में मुझे लिखना।

चिर स्नेहावद्ध,  
विवेकानन्द

(कुमारी चागीज मैक्सवेल का निमित्त)

३८

कैम्ब्रिज

१९ मार्च १९०२

प्रिय 'आ'

आपके नाम के नाम निमित्त जब मैं मुग्ध भ्रम रहा हूँ।

मैं बहुत कुछ स्वप्न हूँ किन्तु जिन्नी मुझे भ्रान्त थी उस दृष्टि में यह नहीं ब  
बराबर है। एकांत में रहने की मेरी प्रवृत्ति भावना उत्पन्न हो गयी है—मैं गण  
के लिए विधायक बनना चाहता हूँ मेरे लिए और कार्य कार्य बन रहेगा। यदि सम्भव  
हो सके तो मैं अपनी पुगनी भिक्षावृत्ति को पुनः प्रारम्भ कर दूँगा।

'आ' मुग्धता सर्वोपरि मंगल हो—जुम देखने की तरह मेरी देखाभाव बन  
गयी हो।

विश्वनाथ

विश्वनाथ

(कीर्ती अलि बुल को निमित्त)

बम्बई मह,

१४ जून १९०२

प्रिय कीर्ती माता

मेरे विचार से पूर्ण ब्रह्मचर्य के आदर्श को प्राप्त करने के लिए किसी भी  
जाति को मानव के प्रति परम आदर की भावना बूझ करनी चाहिए और वह  
विवाह को अछेय एवं पवित्र धर्म-संस्कार मानने में ही सक्षम है। रोमन कैथोलिक  
ईसाई और हिन्दू विवाह को अछेय और पवित्र धर्मसंस्कार मानते हैं, इसलिए  
बोना जातियों में परमशक्तिमान महान् ब्रह्मचारी पुरुषों और स्त्रियों को उत्पन्न  
किया है। आर्यों के लिए विवाह एक दृष्टिकोणमात्र है या बल से प्रथम की हुई  
सम्पत्ति जिसका अपनी इच्छा से अन्त किया जा सकता है इसलिए प्रथम ब्रह्मचर्य  
भाव का विकास नहीं हुआ है। जिन जातियों में अभी तक विवाह का विकास नहीं  
हुआ है उनमें आधुनिक बौद्ध धर्म का प्रचार होने के कारण उन्होंने संन्यास को एक  
उपहास बना डाला है। इसलिए आपण में जब तक विवाह के पवित्र और महान्  
आदर्श का निर्माण न होवे (परस्पर प्रेम और आदर्श को छोड़कर) तब तक

मेरी समझ मे नहीं आता कि वहाँ बड़े बड़े सन्यासी और सन्यासिनियाँ कैसे हो सकते हैं। जैसा कि आप अब समझने लगी हैं कि जीवन का गौरव ब्रह्मचर्य है, उसी तरह जनता के लिए इस बड़े धर्म-संस्कार की आवश्यकता—जिससे कुछ शक्तिसम्पन्न आजीवन ब्रह्मचारियों की उत्पत्ति हो—मेरी भी समझ मे आने लगी है।

मैं बहुत कुछ लिखना चाहता हूँ, परन्तु शरीर दुर्बल है 'जो मेरी जिम मनोकामना से पूजा करता है, मैं उसको उसी रूप मे मिलता हूँ।'

विवेकानन्द

१ ये यया मा प्रपद्यन्ते तास्तयं व भजाम्यहम् ।

मम घर्तमानुयतन्ते मनुष्या पायं सर्वथा ॥ गीता ॥ ४।११।





## अनुक्रमणिका

- अग्नेज २५, १३२, १३९, १५४, १६४, १६८, १७६, १७८-८० १८९-९२, १९४, २०५, २०७-८, २२८, २३०, २४४, २८६, २८८, और भारतीय २५४, पुरातत्त्वविद् १९३, मित्र १६६, यात्री १६४, राज १६२, राजा १६२, सरकार १६१-६२, २६९, २८९
- अग्नेज्जी अनुवाद १९३, ३६० (पा० टि०), कम्पनी १६८, ढग १६४, भाषा २०४, २३१, राज्य १६७
- अधविश्वास १४, ६३, २५३, ३४३, और जनता १३२, और सत्य १०३
- अकबर, सम्राट् ३८०
- अक्रूर चाचा ३९१ (देखिए ओकाकुरा)
- अग्नि २०-३, उपासना ३५६, और सत्यकाम २१, पुराण ३८७, वैदिक १३९, होम २०
- 'अग्नि देवता' ३५६
- 'अग्नि-यज्ञ' ३५६
- अघोर चक्रवर्ती २४८
- 'अचू' ३२०
- अजता ३८९, ३९२
- अज्ञेयवाद (दर्शनिक) २९४, वादी (आधुनिक) ४०, ५८-९, २९२
- अटलांतिक १६३, १८९
- अतुल बाबू २५७-५८
- अद्वैत ५०, १७०, उसका सार घर्म ११४, और आत्मा सबधी विचार १४१, और ईश्वर ६८, और ज्ञान २७२, और वेदान्त ५२, ६०, नीतिशास्त्र का आधार ८२, भाव २७३, मत ४४, मार्गी २७३
- अद्वैतवाद ४०, ४६-७, ५०-३, ५५, ७५, ८१, १७५, २०३, ३४०, ३८७, उसकी प्रार्थना ६३, उसके विचार ५२, १४१, और उसका कथन ४२
- अद्वैतवादी ४१, ५१ ६३, ३४३, ३५५, ३८७, उनका चरम सिद्धान्त ७५, और आत्मा ७०
- अद्वैताश्रम ३४७
- अध्यात्मवाद १२२
- अनादि पुरुष ८८
- 'अनुभूति' २९२
- अनुराधा १७३
- अनुराधापुरम् १७४
- अन्तर्जातीय विवाह २७१
- अन्तर्विवाह २७५
- अन्दमान १९४
- अन्दमानी भील १९४
- अन्वकूप (Black Hole) १५४
- अपनेल, श्रीमती ३२२
- अपरिणामी सत्ता ५०
- अपेरा गायिका २०१
- अफगान २१६
- अफगानी १८९
- अफ्रीकी १०४, १५८, १८०, १८२, १८९, १९१, १९४, २१०, उत्तर १८०, दक्षिणी-पश्चिमी १३४ (पा० टि०)
- अबीसीनियावासी २८९
- अभेद बुद्धि ५८
- अभेदानन्द ३२७-२८, ३४६ (देखिए काली)
- अमरनाथ ३७३

अमरसिंह ३८७  
 अमरावती १५  
 अमरक मुसलमान सेनापति १९  
 अमेरिकन १७७ २ १ २ ५, २ ७  
 २२१ और उतका बाहर २९१  
 काठेज २१९ यियोसाक्रिस्ट  
 घोसामटी २९२ प्रमु १६२ मित्र  
 ३२६  
 अमेरिका ५७ (पा टि ) १ ५  
 १५९ १६२ ३३ २ १ २ ५,  
 २ ७ २४७ २५ २५२-५४  
 २८१ २०८ ३५५, २६१ ६२,  
 ३७१ ३९२ महाद्वीप १८९  
 यात्रा २३७ वाले २४२ संयुक्त  
 राज्य १५९  
 अरब ५८ १५७ १७९ १८१-८२,  
 १९४ ९५ वाति १८२ माजिक  
 १७९ मियाँ १८५ बासी २५  
 अरब की मयनूमि ८२ १८ और  
 १८१ २१७  
 अराकान १६८  
 अरुणाचलम् १७६  
 अर्जुन ४ ८, २३८  
 अर्जुन-कृष्ण सबाह २३७  
 अकबामियन २२  
 अकामेडा ३३०-३१ ३३४  
 अल्बर्ट ३५७ ३५९ ३६५, ३९३  
 (वेनिए स्टारगीज अल्बर्ट)  
 अल्बर्ट स्टारगीज कुमार ३५७ ३५९  
 अल्मोडा १२८ ३६५  
 अल्फा १९७  
 'अल्फा' २ ९ १ ३ १९७  
 अल्फाही अकबर बीग बीग' १७  
 अलतारनाह ९२  
 अलसोक्रिस्तर १७६  
 अशुभ ६२ उसका कारण ६१  
 अशोक महाराज १७४ १९६ सभाद  
 १८१  
 अष्ट सिद्धि ११४  
 'अमिरिम १९६

'असीम' ११४  
 असीरिया प्राचीन १९४  
 असीरी १९५  
 असुर नुन १ ५  
 अस्तित्व' ८१  
 असुसिनी १८१  
 अह' ११३ ११६, २४१  
 अह' बहास्मि ८३  
 अह' साट्प्य' ४९-५ उसका अर्थ  
 ४८  
 अहि' (घड़प का कारण) १९७  
 अहिंसा परमो धर्म १७४  
 अहिर्मन (अधिष) १ ४  
 अहुर्मन्त्र (धिष) १ ४  
 आंट मेरी ३३६  
 आइफेक-मीनार २९१  
 'आइवरी पेष्ट' १६४  
 आइसिस १८१  
 आकाश प्राणरूप ३८  
 आक्रीपोक्सि होटक २२१  
 आयरा ८९, ३६८ ३८  
 आराम त्याग और समय २४४ वर्धम  
 ११३ बजिवान १२९ रक्षा  
 १२९ विकास ५३ विस्वास का  
 आदर्श १२ संगीत ३४ सिद्धि  
 और साक्षात्कार २४१ स्वल्प  
 ५१ ६२  
 आर्या ६-७ १०-१ १३-५ २२, ३१  
 ३४ ४ ४७ ४९-५ ५३ ५८  
 ९, ७९ ८१ २ ८५ ६, ८९ ९२  
 ९५ ७ १ ६, १२३ १२७  
 १३३ १९८ २३४ २३९, २६९,  
 २८३ २८६, २९३ २९५ अष्टौ  
 १ ५ अनन्त ७ अनन्त अनादि  
 ८९ अनन्त बहुस्वरूप ६८  
 अनुमति ५१ अपरिणामी ५  
 अमिय पवार्थ ६७ अविनाशी ६७  
 उसका महत्त्व १६-८ उसका मुक्त  
 स्वभाव ६७ उसका अभ्य ९७

उसका विकास ५९, उसका श्रेष्ठत्व  
 ३१७, उसका समाधान १००,  
 उसका स्वरूप ९६, १००, उसकी  
 अभिव्यक्ति का सिद्धान्त ९८,  
 उसकी असीमता का प्रश्न ९९,  
 उसकी परिभाषा ११८, उसकी  
 पूर्णता की स्थिति ९८, उसकी  
 प्राचीनतम कल्पना १०६, उसकी  
 यथार्थ स्वाधीनता ७५, उसकी  
 सर्वज्ञता २७, उसकी सर्वोपरिता  
 ७२, और अद्वैतवादी ७०, और  
 ईश्वर ७९, ११६, और जीवन  
 १२४, और प्रकृति ९७, और  
 भारतीय धारणा १०७, और मन  
 ९८, और विश्व ८०, और साख्य  
 मत ६७, देश से परे ११६, नाम-  
 रूपात्मक १०७, निराकार, अत  
 अनाम १०८, निराकार चेतन  
 वस्तु ९६, बधनरहित ११३,  
 मंगलमय ९९, मन का साक्षी  
 (साख्य मतानुसार) ९५, मनुष्य-  
 मन का आधार ९१, विषयक  
 आदर्श १०६, विषयक धारणा ९३,  
 शरीर के माध्यम से स्थित ९०,  
 शाश्वत ८८, सबधी विचार ९५,  
 सबधी विभिन्न मत ९६, सगुणीकृत  
 निर्गुण ११८, सर्वव्यापी ६७, ससीम  
 और पूर्ण ५४, स्वयं सत्य १०१,  
 स्वयं स्वरूप १००, स्वरूप ६३  
 आत्मिक देह ९४  
 आदम ७३ (पा० टि०)  
 आदर्श अवस्था १०, प्रत्यात्मक १२८,  
 व्यावहारिक ९  
 'आदान-प्रदान' की नीति २५०  
 आदि मानव और ईश्वर १०२  
 'आदुनिम' १९७ (देखिए आदुनोई)  
 'आदुनोई' १८९, १९७  
 आधुनिक अज्ञेयवादी ४०, प्रत्यक्षवादी  
 ४९, बौद्ध धर्म ३९४, विज्ञान  
 ८७, वैज्ञानिक उनका कथन ६२

आध्यात्मिक जीवन २९१, दशा २९०,  
 पक्ष २९०, प्रगति २४९, भाव  
 ७९, विकास १११, व्यक्तिवाद  
 १३४, साधना २७४  
 आपेनी राज्य २२२  
 आफ्रीदी १६०  
 आरती-स्तुति १०५  
 आरियन् १९५  
 'आरिया' १६६  
 आरुणि ३७  
 आर्क-डचेस २०८, ड्यूक २०८  
 'आर्कडक' ग्रीक कला २२२  
 आर्टिक २२३, सप्रदाय और उसकी  
 दो भावधारा २२३  
 आर्टिका २२२, विजयकाल २२३  
 आर्य १३५, १६१-६२, १६७, १७०,  
 २१३, २१६, २३६, उनकी प्रकृति  
 १०५, कुल १०४, जाति ९४,  
 १९६, विचारधारा ९३  
 आलासिंगा ३६५  
 आलेकजेन्द्रिया नगर १८१  
 आशावाद ३१६, ३४१, वादी ९४  
 आसक्ति और अनासक्ति ३१५  
 आसाम ३७४-७६, ३७८-७९  
 आसीर १९१  
 आस्ट्रियन जाति २०९, राजकुमारी  
 २१०, राजवंश २०९  
 आस्ट्रिया २०८, २१०-१२, सम्राट्  
 २१३, साम्राज्य २१५, २१८,  
 लॉयड १६१  
 आस्ट्रेलिया १६३, १८४, १९४  
 इंग्लैण्ड १३२, १६४, २०१, २०५,  
 २०९-१०, २१४, २३४, २६९,  
 २८२, ३०३, ३०६, ३१४-१५,  
 ३२१, ३३४, ३४७-४८, ३५५,  
 ३५८, ३६५-६७, ३७०, ३७२  
 इंग्लैण्ड का इतिहास (Green's  
 History of England) २६६-  
 ६७

इच्छा उत्पत्ति का कारण १२१ शक्ति  
७८ १३१

इच्छा ११९ १७९-८ २१ ३७४

इंस्टीमियम बेनिस १८९

इण्डो-यूरोपियन २१५

'इन्स' १८९

'इन्सु' १८९

इन्द्र ३३

इन्द्रदेव १४८

इन्द्रिय-निग्रह १३३ मग-वेह ७६

इफेस १९८

'इषाहीम' १९८

इक्ष्मिड १५ (पा टि )

इसलाम ४३ १९२

'इसिस' (मोमस्ता के रूप में) १९६

इस्तम्बोस २ ५

'इस्तीज़ाज आसिएन बोरी जातान' १९३

इसाइस १९८

ई टी स्टडी ३६७

ईजिप्ट २

ईडन ७३ (पा टि )

ईड ७३ (पा टि )

ईरान १ ३ १८२, १८९ ९ सुरान  
१९५

ईरानी १ ४ १५१ १९१ १९८

बेरा १८९ पोशाक १८२ बाद

साही १८१ मापा १ ४ विचार

घारा १ ५

ईज २९७

ईस्वर ८१ १६-७ ३०-१ ३४-५

४१-२, ४५ ६, ५५, ५७ ६३

६९-७ ७३ ७७ ८१ ८३

८९-८, ९०-१ १ १ १ ३-५

११ ११९, १२७ १३७ १३६,

१८ २४०-४१, २७४ २८

२८२, २८७-८८, २९३ १४ जगु

भृति १३३ उपादान कारण ६८

उपादान २३ असका गुणवान २८१

उसका नाम-महत्त्व १३५ उसकी

अनुकम्पा का आकार १ ९

उसकी कल्पना १०३ एक वृत्त

११८ और आत्मा ७९ और आदि

मानव १ २ और जीव ११

और ब्रह्म ८३ और मित्र मित्र

अनुभव-परिणाम ११९ और

वेदान्त का सिद्धान्त ६८ और सूर्य

११९ कृपा १३ चिन्तन २४९

बर्धन २९ बेहूषापी २८ धारणा

२८, ७६ निर्गुण बीजगण २८

निर्गुण-समुप ३१ ११८ प्रकृति

का कारण-स्वरूप ६८ प्राप्ति

२४२ प्रेम २७२ मन की उपब

११५ बाद २८ बाबी (सपन)

धर्म ३९ विश्व सृष्टि स्थिति

प्रकृत्य का कारण ८९ व्यष्टि की

समाप्ति ८३ कुल-अधुम में भी

२७१ सर्वेधी उपसम्बि १ ४

सर्वेधी धारणा ४४ ११६ सगुण

३८, ४१ ४५ ६ ५७ सगुण समी

आत्माओं का योग १३२ सर्वधुम

८३ साक्षात्कार १३३ स्वय की

परछाई ११३

ईश्वरत्वग्र विद्यासागर २३३

ईश्वरत्व की धारणा ९२

ईसा ४३ १ ४ १२८, १९८ ९९

'ईसा अनुसरण' १७

ईसाई २५, ४२, ५९, २५२ विकिरसक

३२३ धर्म ५८, १३७ १८१ २५३

२८७ २८९ ९ मठ ८८, २९४

'ईसाई बीमारी ३

'ईसाई-विज्ञान २९४

ईसाकेस ३७४

ईसा मधीह ५८, ६९, १९८ २८२

ईसाख १९७

उज्ज्विनी १८२

उड़ीसा १५५-५६, २८ ३८६

उत्तरकापी १४९

उत्तरावन २४

- उदयपुर ३८९  
 'उद्बोधन' (पत्रिका) १४७ (पा० टि०), १५३, १७७, २८५  
 उपकोशल २१-२  
 उपनिषद् ४, १६, २७, ३७, २३३,  
 उसका उपदेश २२, उसकी शिक्षा  
 १३२, कठ ११२ (पा० टि०),  
 काल २३, केन ७६ (पा० टि०);  
 छान्दोग्य १९, ३७, ७२ (पा० टि०),  
 बृहदारण्यक ६९, ७२ (पा० टि०),  
 मुण्डक ६८ (पा० टि०),  
 ११२-१३, श्वेताश्वतर ३४२ (पा० टि०), ३८७  
 उपयोगितावाद और कला २३५  
 उपहृद (Lagoons) १९०  
 उपासना विधि २९२  
 ऋषि १३५, २५५, २८८-८९, प्राचीन  
 २६, प्राचीन भारतीय २८२  
 'एग्लिसाइड' ३४०  
 एकत्व का आदर्श १७  
 एकमेवाद्वितीयम् ३१७  
 एकेश्वरवाद ४०, वादी ३९  
 एगल (गरुड शावक) २११  
 एजेलॉदस २२१  
 एडम्स, श्रीमती ३११, ३३७, ३४१  
 एडविन अनल्लिड २९४  
 एडेन १४९, १७८-७९  
 एथेस २०५, २२१-२२, छोटा ३६४  
 एन० एन० घाष २५३  
 एनिसक्वाम २८६  
 एनी वेमेण्ट, श्रीमती २९२, ३८९  
 एफ० एच० लेगेट ३११-१२, ३३१  
 एम० एन० वनर्जी ३८३  
 एम० नी० एडम्स, श्रीमती ३३८  
 एमा एमम, मादाम २०२  
 एलनविदनन ३७६  
 एलोरा ३८९, ३९२  
 एलनविदनन ३७६
- एशिया १३६, १७९, १९१, २०५,  
 २१४-१५, २२१-२२, २२७, २३५,  
 खण्ड १९५, मध्य २०९, २१५-१६,  
 माइनर १९१, १९७, २१३, २१७  
 एशियायी कला २२२  
 एस० पानेल, श्रीमती ३४८  
 एस्तर स्ट्रीट ३३१  
 ऐम्पीनल, श्रीमती ३५५  
 ओआइस ३५९  
 ओकलैंड ३०३, ३०५, ३१२, ३२१  
 ओकाकुरा, श्री ३७७, ३८९, ३९०  
 (पा० टि०) (देखिए अकूर चाचा)  
 ॐ तत् सत् ११४, ३३३  
 ॐ नमो नारायणाय १४७  
 'ॐ ह्री क्ली' १७६  
 ओरियेण्ट एक्सप्रेस ट्रेन २१३  
 'ओरी अंताल एक्सप्रेस ट्रेन' २०५  
 ओलम्पियन खेल २२१, जूपिटर २२१  
 ओलि बुल, श्रीमती ३०३, ३०५,  
 ३१०, ३२२, ३२७, ३५५, ३६३,  
 ३६७-६८, ३७० ७१, ३८८, ३९४  
 ओलिया ३२४  
 ओसमान (मुसलमान नेता) १९२  
 कज्जाक २२०  
 'कट्टमारण' १५६  
 कठोपनिषद ११२ (पा० टि०)  
 कथा, नार्ड की १३८, प्राचीन फारसी  
 ३५, मिश्र देवता १९७, मुसलमान  
 और लोमडी ७७, मेढक २९६,  
 शिव देवता, नुई देवी १९६, श्वेत-  
 केतु २२-३, सत्यकाम १९, २३१,  
 सेव, मांप और नारी ७३  
 कनिष्क (तुरष्क मन्नाट) २१६  
 कन्फुसी मत २०५  
 कन्हाई ३६५, ३९३  
 कनीर १६९

कर्त्तव्य साध २२९ ३  
 कर्मण्यो धनं २९२  
 कर्म असन् ५४ और प्रकृति २७४  
 और समाधि २५ काष्ठ २३,  
 ३५ आल ६१ पीपल ७९  
 निष्काम योग २३९ फल २४  
 ५४ ७८, ३४ योग २३९  
 योगी ३१ २३९ विद्या ५४  
 सुभाषुम २४ सकाम २५  
 साधना ११ ११४  
 कर्मयोग ११९  
 कलकता १४ (पा टि) १४८  
 ४९, १५४-५५, १६३, १६६, १६८,  
 १७३-७४ २३२, २३७ २४७  
 २५०-५१ २६ २७१ २८२,  
 ३२४ ३२७-२८, ३४७ ३५४  
 ३७०-७१ ३७४ ३८१ ३८३-८४  
 ३८६ ३९२  
 कला और उपयोगिता २२७ शास्त्र  
 २२२  
 कल्याणी २६  
 काशी ३२  
 कति उमका विचार ४९ और हर्बर्ट  
 स्पेन्सर ४९  
 काकेसस पर्वत २१७  
 कानस्टान्टिनोपल १९२, २ २ ३  
 २ ५, २ ८, २१३ २१५ १७  
 २१९ २२१ ३५८, ३६ ३६४  
 कानस्टान्टिनोपल (रोमन बाबसाह)  
 १७९  
 काशी (पारमेश्वर शहर) १७५ उसका  
 हठ मन्दिर १७६  
 'कामिन्द' (बनिवार्य मण्डी)  
 २१८ २२  
 काष्ट मसर १९६  
 काठरी १८२  
 काकेला २११  
 काशी १९४  
 काबा १८२  
 काबुल २१६

कामदेवी १९७  
 कामिनी काचन २७९  
 कायस्थ-कुल १६१  
 कार्तिक (शुक्रवार का मन्वतार) १७७  
 कार्नेलिया सीरान जी कुमारी ३७१  
 कार्य-कारण नियम ८१ भाग ४५  
 विद्या ११ वृत्त ८१ सम्बन्ध  
 ५१ १११ १२२ सम्बन्ध और  
 उसका अर्थ ५१  
 कार्य-कारणवाद २६  
 काश्मिर महाकवि १५२ (पा टि)  
 २३३  
 काश्मिरी मायामोबादेस २ १२  
 काशी ३४७-४८ ३५ ३५४ ३५८  
 (देखिए बनेदान्द)  
 काशी माँ १३ १३२ १३९ ३६७  
 पूजा ३३९ ४ माता ३७  
 काशी १४८ उत्तर १४९  
 काशीपुर २५ ७५७  
 काश्मीर १४८, १५१ १५२ (पा  
 टि) २१६ १७ ३७९ खण्ड  
 १५२ वेस १५२ अमर्य १५२  
 काहिरा ३६४  
 किरगिस्तान २९७-९९  
 किरगिस्तान १९५  
 किशनगढ़ ३५८  
 कीर्ति १७१  
 कीर्तन उसका अर्थ २८१ और सुपद  
 २४६  
 कुमारस्वामी १७६-७७  
 कुमारी बन्धुनी स्टारलीन ३५७ ३५९  
 कार्नेलिया सीरान जी ३७१ केट  
 ३११ बसेवी ३ ३ ३२१ गोबल  
 ३१३ ३३७ मुक ३४५, ३५५  
 मूलर ३३ ३४४ ३८६ मेरी  
 हेल ३ ८, ३१३ ३१६ ३३६  
 ३७ ३३९, ३४२ ३४४ ३७३  
 ३७९, ३८१ मैक्सवॉड ३१३  
 ३२३ ३२८ ३६ (देखिए  
 बीसेफिन मैक्सवॉड) बारबो

- ३१८-१९, ३४५, ३५४, वेक्हम  
३५५, वेल ३५५, सूटर ३१०,  
३१५, स्पेन्सर ३११, ३३७
- कुरान ४३, ५८  
कुरुक्षेत्र ८, २३७  
कुर्द पाशा और आरमेनियन हत्या २२०  
कुलगुरु की दशा २४९  
कूना १९४  
कृष्ण १३३, २३८, २६२, और  
बुद्ध १३६, गीता के मूर्त स्वरूप  
२३८, गीतागायक २३७, २३९  
'कृष्णसार मृग' ३८५  
केट, कुमारी ३११, ३३७  
केनोपनिषद् ७६ (पा० टि०)  
केम्ब्रिज ३०५, ३१०  
कैथोलिक २०४, क्रिश्चियन १६५,  
ग्रीक पादरी २०३, बादशाह २१०,  
मत २९४, रोमन ४३, सघ २१०,  
सन्त १२७, समाज २०३, सम्प्र-  
दाय २०३, २०९  
'कैलिओपी' (ब्रिटिश जहाज) ५७  
(पा० टि०)  
कैलिफोर्निया २९२, ३०६, ३२०, ३३०-  
३१, ३३४, ३३६, ३४८, ३६४  
कैस्पियन हृद २१३, २१७  
कोकण ब्राह्मण १६९  
कोन्नगर १५७  
कोरियन १७६  
कोल ब्रुक, कप्तान १५४  
कोलम्बस (क्रिस्टोफोर कोलम्बस)  
१८९  
कोलम्बो १५६, १६५, १७३, १७५,  
१७८, ३७१  
कौण्टी ऑफ स्टार्लिंग, जहाज १५५  
कौन्टेस १७६  
'क्रम-विकास' ४६  
क्रिमिया की लडाई ३२९  
क्रिश्चन १७५, ३९३, भगिनी ३६०,  
३८०  
क्रिस्तान धर्म १९२-९४, धर्मग्रन्थ
- १९२, पादरी २०५, २२०, राजा  
२०८, रियाया १८२  
क्रीट द्वीप २८३  
कलावे, मादाम ३६०  
'क्लासिक' ग्रीक कला २२२-२३, उसके  
सप्रदाय २२३  
क्लेरोइ ३५९  
'क्वोरनटीन' २२१  
क्षत्रिय २४८, सधिर ३३९  
क्षात्रभाव २४४, २४९
- खगेन ३४७  
खगोल विद्या ८७  
खिलजी २१६  
खुरासान १४८  
खेतडी ३७४, ३८०, महाराज ३६८  
खेदिब इस्माइल १९०  
ख्याल (गाना) २६०
- गगा १०४, १५२-५५, १६८, १८७,  
२५०-५१, २९८, और गीता  
१४९, का किनारा १५१, जल  
७९, १४९, २३३, ३०६, ३४८,  
तीर ७९, पार १६९, महिमा  
१४९, सागर १५७, १६८, १७१,  
सागरी डोगी १५७, सुरतरगिनी  
१५०, स्नान २७१
- गगाघर ३५०  
गगोत्री १४९  
गणेश जी १४९  
गया ३८७  
गयाशीर्ष पर्वत ३८७  
गयासुर ३८७  
'गावाडा' १८४  
गावार २१६  
गावारी २१६  
गिरीशचन्द्र घोष २४५ (देखिए गिरीश  
वावू)  
गिरीश वावू २४५, २५७  
गीता ४, १०६ (पा० टि०), १०९,



१२९, १५२ व ८ (पा० टि )  
 ३५३ ३९५ (पा० टि ) उत्सका  
 मूल तत्त्व २३९ और यगा बस  
 १४९ और विद्वान्त २४ कर्म का  
 अर्थ २३७-३८ तथा विद्वान्त १४४  
 गुजराल १४८ १६४ ३७५  
 गुजराली शास्त्र १६९, २२  
 गुण तम २४८ २५५ गज १५  
 २४८, २५६ सत्य २४८  
 गुण महोद्दमाव २७१ सुरेन्द्रनाथ २८३  
 गुमीची १४९  
 गुरुदेव ७९, २६२, ३६ ३१३  
 ३५ महाराज ३५ (देखिए  
 रामकृष्ण)  
 गुह गुह-वास २२९  
 गुह नाटक और रामकृष्ण १२९  
 गुसाई जी १४८ (देखिए तुलसीदास)  
 गेह धी ३६२  
 गे २२  
 गेडिस अभ्यासक ३१५  
 'गे' ४४  
 'गोबालेज' १६८  
 गोपाल बाबा ३९२  
 गोपाल साहब विद्या ३८७-८८ ३९०-९२  
 गोकुण्डा महाज १६३-६४  
 गोविन्ददास १४९  
 'गोसाई' १७३  
 गोस्वामी तुलसीदास १४८ (पा टि )  
 गौतम २२ बुद्ध ५७  
 गौठ कला २२३ और उत्सका इति  
 हास २२२-२३ और उत्सकी टीका  
 अबल्लाई २२२ और विकास  
 २२३ कलासिद्ध २२२ २३ जाति  
 १९१ कर्म २२१ पासा २२  
 पेदायाक २२ प्राचीन १९२  
 प्राया १९२, १९६ मापी २१२  
 बिघा २१२ सभ्राट् २१९  
 दीनेकर ३४२ ६४  
 दीस १८९९ ९ ९ ५ विजय  
 २२३

ग्यालियर ३८९ ९१  
 गोप एन एन २५३  
 गुरुवर्ती अषीर २४८  
 गटपामी मौसी १५७  
 गट्टोपाध्याय हरिदास २९ २६२  
 ३३ २६७  
 गन्धन नगर १५४  
 गन्ध २०-२, ३४ ३७ ७ मण्डल  
 १४१ लोक २४  
 गन्धगिरि १६८  
 गन्धयुक्त १९२, १९५  
 गन्धदेव १९७ ३५६-५७  
 गन्धनाथ ३७२  
 गन्धमा २३ १ ४ ११२, १४१ २ ७  
 गन्ध-सूर्य २६  
 गांडाक २७९  
 गायत्री २१५ तुर्क २१७  
 गाह ३८७  
 गाविक का बेश ३५४  
 गित्त धुडि २४१  
 गित्ताई ३८९  
 गित्त-कला १४ २४३ कार २ ६  
 गृह २१२ निधि १९६ शाखा  
 १६७  
 गिवाकाय (विशुद्ध बुद्धि) २१  
 गित्तापट्टम् १६८  
 गित्तिया घाम् सीयव पहुर १५  
 (पा टि )  
 गीत १६३ १७४ १७७ २ ८९  
 मन्त २ ५  
 गीती १६३ १७६ १ ४-९५, २ ९,  
 २८७-८८ जेपी महाज १८३  
 गुम्बकीय रोग-निवारक (magnetic  
 healer) ३ ६, ३२१  
 गुंदा १५४  
 'गुटी' १७२  
 गीतम्य वैज १३३ १७५  
 गीतम्य महाप्रभु २७९, २८१

चैतन्यवान पुरुष ६८  
 चैतन्य सम्प्रदाय १६९, २७९  
 चोरवागान २६६-६७  
 'छठवी इन्द्रिय' २९२  
 छान्दोग्य उपनिषद् १९, ३७, ७२  
 (पा० टि०)  
 छुआछत १७१, १८३, १८५  
 जगज्जननी ३८१  
 जगदम्बा १९९, ३०८  
 जगदीशचन्द्र बसु (डॉ०) २०५ (देखिए  
 जगदीश बसु)  
 जगदीश बसु २०६  
 जगन्नाथ का मंदिर ३००, घाट १६८  
 जगन्नाथपुरी १५५  
 जगन्माता ३१२, ३२६, ३३५, ३४३,  
 ३४५, ३६१, ३७०, आदि शक्ति  
 २४२  
 जड पदार्थ और मन १२१, और  
 मन का प्रश्न १२२  
 जड विज्ञान २५७  
 जनक १४३  
 जनरल असेम्बली २६३, कॉलेज २५८  
 जनरल स्ट्राग (अग्नेज मित्र) १६६  
 जप-ध्यान २५८  
 जवाला १९  
 जयपुर ३८९  
 जरूसलेम १९८, २००, २०५  
 जर्मन, आस्टेन्ड कम्पनी १५४, कम्पनी  
 १६३, डॉक्टर ३२३, पंडित बर्गस  
 १९४, भाषी २१२, मनुष्या २०८-  
 ९, लॉयड १६१, सम्यत २०७,  
 सेनापति २०८  
 जर्मनी १६३-६४, २०७-८, २१०  
 जलनोया, मोशियो ३६०  
 जलागी नदी १५४  
 जहाज १६०-६१  
 जहाजी गोले १६०  
 जाजीवार १४९

जाति, आसुरी और दैवी सपदावाली  
 १०६, आस्ट्रिय २०९, और देश  
 १९५, तमिल १७५, तुर्स्क २१६,  
 तुर्क २१६, दोरियन २२२, वालिव  
 १९७, यहूदी १९७, विद्या १९४,  
 हिन्दू २१७  
 जॉन फाक्स ३४८  
 जान्स्टन, श्री ३६६, श्रीमती ३३५,  
 ३६८  
 जापान १७४, २२७, २३४, २३६,  
 २४७, ३७२-७३, ३७५-७६, ३७९,  
 ३९३, ९४  
 जापानी १७६, १९४, चित्रकला २३४,  
 मित्र ३७८, ३८६, ललित कला  
 ३७५, सज्जन ३९३  
 जाफना १७५  
 जार्ज, श्री ३५५  
 जावा १४९, १६८  
 जिनेवा १८९-९०  
 जिहोवा की उत्पत्ति ३४९  
 जीव और ईश्वर ८३, ११०  
 जीवन और मन का नियमन १२१  
 जीवन्मुक्त और उसका अर्थ ७१  
 जीवाणु-कोष ४७  
 जीवाणु विज्ञान शास्त्री २९६  
 जीवात्मा ५२, ५४-५, ९१, १००,  
 १०६, ११०, ११३, और शरीर  
 का सबध ११०, कोष ४७, निर्गुण,  
 सगुण ४१  
 'जीवित ईश्वर' २९  
 जीविसार (protoplasm) ८०  
 जीसस ३१७  
 जुल बोआ २०१-२, २१९, ३६६, ३७६  
 (देखिए बोया)  
 जूडास इस्केरियट ३१७  
 जे० एच० राइट २८६  
 जेम्स और मेरी (चोर बालू) १४९,  
 १५५  
 जेम्स, डॉ० ३५५-५६  
 जेहोवा १०३

जीन घर्म १३३  
 जो ३ ५, ३१२ ३१५, ३१८ ३२०-  
 २३ ३२८ २९ ३३२ ३४ ३४५  
 ३५५-५७ ३६२ ३६५ ६६ ३६८  
 ३७ ७२, ३७५-७८, ३८१ ३८६  
 ३९३ ९४ (बेचिए जोसेफिन मैत्रिल-  
 मॉड)

जोन्स स्ट्रीट ३ ३ ३ ५  
 जोसिफुस १९८ ९९  
 जोसेफिन मैत्रिलमॉड ३ ५, ३१८  
 ३२८, ३३१ ३३४ ३४५ ४६  
 ३५५, ३६२ ६३ ३६५, ३७०-  
 ७१ ३७५, ३७७-७८ ३८१  
 ३८६ ३९३-९४

जोसिफिन रानी २१  
 ज्ञान ७१ ७५ ९५, १३५, ३४३  
 इन्द्रिय कवित्त ३३३ उसकी  
 निष्पत्ति ८४ उसके मूल सुख  
 ३८ और मक्ति २७२ और  
 सत्य बर्षान २७४ बाण्ड २३  
 पुस्तकीय २३२ प्राप्ति २७४  
 मनुष्य के भीतर ४७ योग ११४  
 २७२ योगी ७८ युवा ७३

जाता ८५

जाँसी की रानी २७७

टप्पा २४६ ४७ २६  
 टर्क स्ट्रीट ३ ८ ३१ ३११ १५  
 ३१८ ३२ ३२२, ३२५, ३२७-  
 २८

टलेमी बाबुसाह १८१  
 टाटा की ३७१  
 टॉमस-आ केम्पिस १७  
 'टारपिडी १५९ ६  
 'टालिस नामा' १५३  
 टूटल १७८  
 टेरा कोटा ३८९  
 टेहरी १४९  
 'ट्यूटानिक' ब्रान्ड ३१५

टार्नि की ३१  
 ट्रायमबाल ३२  
 ट्रिगम ३३७

टागुर २५५, २५८ (बेचिए राम  
 कृष्ण) देवता १७०

टब १७५, १९४ विचकार २१२  
 सम्प्रदाय २१२  
 डॉ० जेम्स ३५५-५६ बोल ३६७  
 सोपन ३५५ हीमर ३११ १२,  
 ३२२ २३

बायमण्ड हारकर १४५, १५१

बायानिसिपस २२१

बारबिन २९०

बिट्राएट ३२७ ३४४

बिट्राएट ट्रिम्पुन' २९७

बिट्राएट, फ्री प्रेस' २९३

'बेलबर्' ३२८

बेकिल (बीटान) १ ४

'बोल' १६६

बप २६

बाका २७१-७२

बॉय और आत्म प्रवर्धना २४१

'बैत' २५९ ६

बाल्जान १ ५ बर्षी १ ९ बाप  
 १ ९

'बाल्जमसि' ३ ४६ ७८, १ १

बमिळ १६९ बाल्जनाइ १७ मुस  
 १७५ बाति १७५ बेस १३९

भापा १७५

बमोयुज २४८, २५५-५६

बर्कवाल्ज ७३ ४

बार्निक पद्धति २४१ पूजाप्रनाली २४१

बाब २३७ धामना २४२

बाबमहल २९

बास्तार-बुन २१३ बंदी २१२

बातारी १९५

तारादेवी १७६  
 तिव्वती १७६, २१३  
 तीर्थयात्रा ३६९  
 तु-भाई साहब १४८, १५०, १५३,  
 १७२, १७७ (देखिए तुरीयानन्द  
 स्वामी)  
 'तुम' ६८-९  
 तुर्स्क २०८, मन्नाट् २१६  
 तुरीयानन्द, स्वामी २७१, ३०४, ३१२,  
 ३१८-१९, ३२५, ३४४, ३४६,  
 ३४८-४९, ३५३, ३५८  
 तुर्क १८९, १९५, २१३, २१९, २२१,  
 और मुगल २१६, जाति २१५-  
 १६, वंश २१५  
 तुर्किस्तान २१५, २८३  
 तुर्किस्तानी १५१  
 तुर्की १७९, २००, २०८-९, २१२-  
 १४, जाति २१६, सुलतान १९०  
 तूरान १९५  
 तूरानी १९५  
 तेलुगु (बोली) १६९  
 तोडादार 'जल' १६०  
 त्रिगुणातीत, स्वामी १४७ (पा० टि०)  
 त्रिवेणी १५३, घाट १५३  
 'त्रेंजासिएन, त्रेंसविलिजे' २०१  
 'त्व' ११३  
 थर्सबी, कुमारी ३०३, ३२१  
 थियोसॉफी ३२३  
 थेरापिउट १८१  
 थेरापुत्तस २८२  
 दक्षिण देश १७०, मुल्क १६९  
 दक्षिणी ब्राह्मण १६९  
 दक्षिणेश्वर २३२, २६२, ३३०  
 दहम ९४  
 'दमूजी' १९७  
 दरियाई जग १६०  
 दर्शनशास्त्र २०२, २७५, २८३  
 दौत (बुद्ध भगवान का) १७६

दादू १६९  
 दामोदर नद १५५  
 दामोदर-रूपनारायण (नद) १५५  
 दार्जिलिंग ३२०, ३७२, ३७५  
 दार्शनिक सिद्धान्त ४४  
 दाशरथि, सान्याल २६०-६१, ३६७  
 दाह पद्धति, उसके कारण ९४  
 दिनेमार १८९-९०  
 दिल्ली २१५, ३८९  
 'दी अपील-अभालास' २८९  
 दीनू ३४७  
 दुर्गा प्रसन्न ३०९  
 'देव' १०४  
 देव-दूत ३९४, पूजा १३९  
 देवयान ४, २४  
 देव वर्ग १३०  
 देश, काल ९६, ११९, और निमित्त  
 ६९, ७४-६, २७५  
 देशी सिपाही १६६  
 'देवी सारा' २०१  
 द्वैत ९०, १७०, २७३, और ईश्वर  
 ६८, की भावना २४१, की भाषा  
 ११३, भाव ५१, ५८, २४१,  
 २७२, ३१७, भावात्मक धारणा  
 ५२, मत ५३, वाद ३१, ५३-  
 ४, ५८, ६०, ८९-९०, वादी ४८,  
 ५२-५५, वादी और उनके विभिन्न  
 मत ५६

धर्म ३, १४, २१, ४०, ४२-३, ८९-  
 ९०, १०८, १६१-६२, १७६, १८०,  
 १९१, १९६, १९९, २०५, २१३,  
 २३०, २५२, २९०, २९४-९५,  
 ३३९, आधुनिक बौद्ध ३९४,  
 ईसाई ५८, १३७, १८१, २५३,  
 २८७, २८९-९०, उसका अंग २९३,  
 उसका निम्नतम रूप १०३, उसका  
 प्रयोग २९१, उसका लक्ष्य २९१,  
 उसका व्यावहारिक रूप २३,  
 उसकी हानिकारक प्रवृत्ति ५३,

और आवर्त १ और उपयोमिता  
 का प्रश्न १२ और वैज्ञानिक  
 पद्धति ३८ और संप्रदाय २९३  
 और सान्त्वना ४५ कथाएँ १७  
 किस्तान १९२ ९४ १९८ गुह  
 २४९ २५१ २७७ प्रप १०७  
 २४१ ३४ श्रीक २२१ पीपण  
 २५५ श्रीन १३३ बीया ३  
 नव हिन्दू ३८८ विपासा २५४  
 पुस्तक १०३ पौराणिक २५३  
 प्रकार १७४-७५, १८१ २९४  
 प्रकारक २९४ ३ प्रोटेस्टन्ट  
 १७८ बौद्ध ४ १९ २१६,  
 २४१ ३८७-८८ बौद्ध और हिन्दू  
 में भेद १३८ भारतीय १३३  
 मार्ग १३ मुसलमान १७९,  
 २१६ मुसलमानी १८९ २१८  
 यहूदी १९८ विधि १३९ विभक्त  
 सम्मत (व्यावहारिक) १ ५  
 विवाह ५८ वैष्णव १३ १७  
 व्यावहारिक विज्ञान २६ घास्न  
 २२१ शिशा २२१ संबंधी  
 विचार ४३ संस्कार ३९४ ९५  
 सगुण ईश्वरवादी ३९ सनातन  
 २५४ सनातनी हिन्दू १२७  
 साधन २४९ साधना २४९  
 हिन्दू १३३ १६९, २९१ ०९  
 २९४ हिन्दू बौद्ध संबंधी विचार  
 १३  
 बर्मोपरोप्टा २५५  
 ध्यानयोग २४२  
 धूप २६  
 धुपपत्र २४७  
 मज्जनयम का १७१  
 मङ्गल १ ४  
 मन्त्री (Prophet) १ ८ सम्प्रदाय  
 १९८  
 'ममी नारायणाय १५  
 'ममी ब्रह्मणे' १५

मरक २६-८ ५९ १११ १७४ ३४३  
 मूच्छ ६३  
 मरुसिहाचार्य १७१  
 मरेन २६ २६७ (वेसिए मरेन)  
 मरेन्द्र २५८ ६२ ३६३-६८ ३५  
 (वेसिए मरेन्द्रनाथ)  
 मरेन्द्रनाथ २५८ २६५, २६७ (वेसिए  
 विश्वकानन्द, स्वामी)  
 नवद्वीप १५४ (पा टि)  
 नवनिधि ११४  
 नव ब्यवस्थान (New Testament)  
 १ ६ १९३ १९८ ९९  
 नाथ-भूजा २१८  
 'नाथ-यन्त्र' ३५८  
 नागक १६९  
 नाम-कीर्तन २७९ रूप २५ १२३  
 रूप माया १४२  
 नारद वेदवि ३७  
 नारद्वीय सूक्त ३६७  
 नारायण उसका बसेपार्थ १५५  
 नारी शिक्षा का रूप २७७-७८  
 नार्थ ३७६  
 'नियम' ३८  
 नियार्कस (सेनापति) १८९  
 निरंजन ३८९ ३९१  
 निरासावादी ९४  
 निर्गुण पुरुष ४२ भाष २८ मठ ३१  
 नाथ २९ ४५  
 निर्वाण २९६  
 निर्वाणपदक ७२ (पा टि)  
 निर्विकल्प समाधि २६१  
 निवेदिता ३ ३४ ३१ ३१४ ३१९,  
 ३२४ ३३ ३३८ ३९ ३४२  
 ४४ ३५ ३५२, ३५५, ३५८  
 ३६४ ३८४ ३८८ ३९ ९१  
 निष्काम कर्मयोग २३२  
 नीधो १९४  
 नीतिकार २ ६  
 नीतिशास्त्र १२ १९, १८ ४३ ६  
 ८२

- 'नील' नद १९६  
 नीलाम्बर वावू २४५, ३८३  
 नुई देवी १९६  
 नृत्य-कीर्तन १७५  
 नेग्रिटो (छोटा नीग्रो) १९४  
 'नेटिव' १६१-६२, १८९  
 नेटिवी पैरपोशी १६६  
 नेपल्स १८३, १९९  
 नेपाल ३७०, ३७६, ३८१, ३९२  
 नेपाली १७६, १९४, सज्जन ३९२  
 नेपोलियन २१०-१२  
 नेप्चून का मंदिर २२१  
 नैदा ३९०  
 नैनीताल ३७३  
 नोबल, कुमारी ३१३, ३३७  
 न्यायशास्त्र ७४  
 न्यास-सलेख ३४९, ३५४  
 न्यूयार्क १५०, ३०५-७, ३१८-१९,  
 ३२१, ३२७-२९, ३३४-३६, ३३८,  
 ३४२-४३, ३४५-४८, ३५४, ३६६
- पचवटी ३३२  
 पजाव १९५ (पा० टि०)  
 पजाबी जाट १७५  
 पद्म-पत्र ७१  
 पद्मा १५३  
 'पन्ट' १९६  
 परम तत्त्व ११३  
 परम सिद्धावस्था २७३  
 परमात्मा १०६, ११०, ११३, १५१,  
 २४१, शाश्वत १०८  
 परमानन्द १४२  
 परमेश्वर ११२, २४१, २७२-७३,  
 'प्रेममय' २७२  
 परशुराम २४९  
 परामक्ति २७३  
 परिणामशील ४९  
 परिणामी जगत् ५०  
 'पवित्र गऊ' ३४५  
 पाचाल ३
- पाचाल राज २२  
 पाइरिउसटि बन्दर २२१  
 पाइलट फिश १८५-८६  
 पाईन स्ट्रीट ३१२  
 पाचियाप्पा कॉलेज २२१  
 पाटलिपुत्र १८२  
 पाप १८, ३१, ६१, १०४, १०९,  
 १७३, २३२, २६९, २७३-७४,  
 ३०४, और उसका रूप या अर्थ  
 ११, और पुण्य १०, और भ्रम  
 ७, और वेदान्त ११  
 पारथेनन २२१  
 पारमार्थिक सत्ता ४१, ४६, ५०  
 पारसी ९४, दूकानदार १७९, मत  
 १९७, बादशाह १९७  
 पार्वती १७५  
 पाल-जहाज १५८  
 पॉलीक्लेट २२३  
 पॉलीक्लेटस २२१  
 पारचात्य आदर्श ७९, २३६, और  
 प्राच्य संगीत २४५, और भारतीय  
 कला (स्थिति और अन्तर) २३५,  
 केन्द्र १८९, जनस्रोत १५०, जाति  
 २३७-३८, ज्ञान २५४, दर्शन  
 २७५, देश ७९, १४७, (पा०  
 टि०) २०१, २२८, २३५-३६,  
 २३८, २४९, २५२, २५८, पद्धति  
 २७५, प्रणाली २३९, बुध मण्डली  
 १९९, लोग ११०, विजेता २३९,  
 विज्ञान २२७, २३०, वेदान्तयुक्त  
 विज्ञान २२९, शिक्षा २३५,  
 संगीत २४६-४७, सम्यता २२९,  
 ३५४  
 पितृयान ४  
 पिरामिड ९३-४, १८१  
 पिलोपनेस २२२  
 पिलोपेनेसियन २२३  
 पी० एण्ड ओ० कम्पनी १६१, १६५  
 पुराण-संग्रह १७०  
 पुरी १७३

पुरोहित-सम्प्रदाय ४३  
 पुस्तक १८  
 पूजा-ग्रह १३९  
 पूजा-पाठ १ २  
 पूजा ३७१ ३७५  
 पैपर हियासान्धि २ ३४ २१९ २  
 पिरा २१९  
 पेरिस १५ २ २ ३-५ २ ७  
 २१३ ३ ५ ३१६ ३२१ ३२३  
 २५ ३३४ ३४८-५ ३५२-५५  
 ३५९ ६२, ३६४ ३६६ ६८, ३७९  
 नगरी २११ प्रबर्धनी २ ६, २१७  
 काछे २ ६  
 पेरिस गवरी ३५९  
 'पोस्ट' २१९  
 पोप २१  
 पोर्ट टिब्रिडिक २६२  
 पोर्ट सर्विस बम्बरगाह ३६२  
 पोर्तुगाल १८९ ९  
 पोर्तुगीज १५४ १७५ बाकू १६८  
 सेनापति १७९  
 पोस्ट ऑफिस के ऑफिस ३५३  
 पीपलिक कथा २३८  
 प्यारी मोहन ३९२  
 प्रकृति ३४ ८ ९ ९२ ११३  
 १२ १४४ अनादि अनन्त ८९  
 आत्मा के लिए १२७ आन्तरिक  
 और बाह्य १२०-२१ उसका  
 आसय १२१ उसका उपयोगी अर्थ  
 १ ७ उसका विकास का सिद्धान्त  
 ९८ और व्यक्ति का सम्बन्ध १२३  
 बटनाओं की समष्टि १२१ बाती  
 १२४ पुस्तक ९८ विश्वदुष्कृत  
 १२  
 प्रतिष्ठा देह ९३४  
 'प्रतीक' रामकृष्ण मिशन का ३४६  
 प्रतीकवाद १३५  
 प्रत्यक्ष अनुमति ७१ १३५ बौद्ध  
 १३५ बाबी २९ ४१ ४९  
 'प्रत्यक्षा' ८६

प्रत्ययात्मक आदर्श १२८  
 प्रपञ्चगीता १११ (पा टि )  
 प्रबुद्ध मार्ग ३१८ १९, ३२४  
 प्रभु १२८, २३९ २४५ अन्तर्गामी  
 २४ आत्मन्दमय ३४ ७ सर्व  
 इतर १६  
 प्रमवाणस मित्र ३५ (पा टि )  
 प्रयाम १५२  
 प्रवाहन वैश्विक राजा ३  
 प्रदान्त महासागर ५७ ३१  
 प्रधिया २ ९  
 प्लेटो उलका सिद्धान्त १२८  
 प्लेस ड एताए मुनि ३४७-५ ३५३,  
 ३५५, ३५७ ३५८ ६  
 प्रागैतिहासिक युग १ २  
 प्राचीन अग्नि २६ पैगम्बर ५७ ऊरसी  
 ३५, ११६ बौद्ध उलका मठ ५  
 प्राचीन व्यवस्थान (Old Testament)  
 २ ७६ (पा टि ) १ ६  
 'प्राण' ८५  
 प्राण जीवन का मूल उल्लेख ३७  
 प्राणायाम २५७-५८  
 प्रिंस ऑफ वेल्स २ १  
 प्रियमाथ मुक्तोपाध्याय २५७ सिन्हा  
 २२७  
 प्रेम १७ ६ १११ २७९-८ २८८  
 अनुमति १२९ अपाधिक स्वर्गीय  
 २३८ असीम और ससीम ६  
 आनन्द की अभिव्यक्ति १४  
 उसकी महत्ता व्यापकता १५ परि  
 पालक सक्ति ६ पशु प्राणी से  
 १३ प्रतियोगिता का मूल ६ मार्ग  
 २८ मूल ६ सूक्ष्म रूप ७७४  
 स्वर्गीय २३८  
 प्रेमानन्द स्वामी २७१ ३५१  
 'प्रिय पैग' १५९  
 प्रीतिघटेक २२३  
 प्रो विजियम वेम्स ३५५ (रेडिए डॉ  
 वेम्स)  
 प्रोटेस्टेण्ट बर्म १७८

'प्रोटेस्टेन्ट-प्रबल' २१०

फक, श्रीमती ३६१

फरात १०४

फान माल्तके २०९

फारस १९४, २१३, २१५, २१६-१७,  
जाति २१६

फारसी २१७, प्राचीन ३५, ११६

फाडिनेण्डलेसेप्स १८८

फिडियस (कलाकार) २२१, २२३

फिनीशियन १९१

फिलिस्तीन १९१

'फिलो' १९८

फेटिश, उसका अर्थ १३४ (पा० टि०),  
पूजा १३४-३५

फेरिस-चक्र २९१

फेरो (मिस्र का बादशाह) १८०, १९०

फेरो-वश १८१

फास १६४, १८०, २०१, २०७, २१०-  
११, २२०, २४७, ३०३, ३२०,  
३२६, ३४४, ३४९, ३५७, ३५९,  
और जर्मनी में अंतर २०७

फ्रांसिस लेगेट ३५५

फ्रासीसी १५४, १७९, १९०-९१, २००-  
१, २०४-५, २०९, २१४, पुरुष  
२०१, भाषा १९४, विद्वान् २२२-  
२३

फ्रिस्को ३०८, ३१३, ३२१

फ्रेच बाल २०९, जहाज ३४६, जाति  
२१२, डिक्शनरी ३१६, भाषा  
२००, २०३, २१९, ३२५, ३५३-  
५५, लेखक ३६०, सम्यता २०७,  
स्त्री-पुरुष २११

फ्लोरेंस ३७४

वग देश १५३, १६५, १६८, १७१,  
१७५, पूर्व १६५, भाषा २०२,  
भूमि २०५, २७०-७१, भूमि  
और उमका रूप १५१, सागर  
१५७

वगला १६६, १७६, १७८, भाषा  
१९७, १९९

वगाल १६८, १७६, २०१, २४३,  
२७५-७६, २८०, २९०, ३६३,  
३६८-७०, ३७२, ३७८, ३८१,  
आधुनिक १३६, देश १७६, पूर्व  
१५६, पूर्वी ३७३-७५, ३७९, प्रदेश  
१८२, मे कुल गुरु प्रथा २४७

वगाली १४८, १६८, नौकर १६५,  
भाषा १७६ (पा० टि०), मकान  
३८८, राजा विजय सिंह १७६,  
लडकी २०२, साहित्य २८०

वगोपसागर १६८

बकासुर १५७

बगदाद १९०

बडौदा ३७१, ३७३

'बदफरिगम' ३००

बनर्जी, एम० एन० ३८३, श्रीमती  
३१८, ३७२

बनारस ३८९

बन्धन ३०, ४७, ७८, ११०, १२४,  
१४०, ३३२, ३४२-४३

बम्बई १६३, १६५, ३७१, ३७५-७६,  
प्रेसीडेन्सी ३७८

बरखज्जाई १६०, २१६

बरमी १७६, १९४

बर्गस (जर्मन पंडित) १९४

बर्गेन शहर १६३

बर्दमान नगर १४९

बर्लिन १५०

'बल का आदर्श' १३२

बलगेरिया २१३-१४, २१८

बलगाम बसु २४७

बलराम वावू २३७, २६९, २७१  
(देखिए बसु, बलराम)

बलिराज १४८

बसु, जगदीश चन्द्र (डॉ०) २०५, बल-  
गम २४७, रामतनु २५८

'बहुजनहिताय बहुजनमुखाय' ५८  
बहु विवाह १६१



बाँकीपुर १५४  
 बाह्विष २ २९ ३४ ४२, ७३  
 (पा टि) १७ १९१ १९३  
 १९७-९८  
 बाणबाजार २३७ २४८, २५७  
 बान्ताम शहर (नामिग्य केन्द्र) १६८  
 बाबकिल १९३  
 बाबिक १९ १९३ २२२ खाति  
 १९७ प्राचीन १९५ साहसी १९१  
 बाबिकी १९७  
 बाबिलोमिया १९५  
 बाबीजी प्राचीन १९४  
 बाबुराम ३५ ३९२ (बेकिए स्वामी  
 प्रेमालम्ब)  
 बार्नहार्ड २ २ २११ १२  
 'बास' १९७  
 बाळ गंगानर ठिळक १९६  
 बाळ ब्रह्मचारी १५ विवाह २७५-७६  
 बास्य विवाह १६१  
 बिभीमिरी १७१  
 बिस्मार्क २ ९  
 बी आई एस एन कम्पनी १६१  
 बुक कुमारी ३४४ ३५५ श्रीमती ३४७  
 बुककण्ठ १७  
 बुडापेस्त २१४  
 बुद्ध १८, १२७ १४३ २९४ और  
 महिसा १३२ और उनका देवत्व  
 १४२ और उनका महाप्रयाण  
 २९६ और कृष्ण १३६ और चर  
 बाहा १३७ मगधान् १७६ (बेकिए  
 बुद्धदेव)  
 बुद्धदेव ३१  
 बुद्धि ४३ ८४ उत्तका अनुसरण ४४  
 और मानना १७ और हृदय १८  
 बुद्धों बंस २११  
 बुलगेरिया २१४  
 बुद्ध श्रीमती ३ ५, ३१५, ३१८, ३२८  
 ३३१ ३५, ३५ ३५६, ३५८,  
 ३६६, ३७६, ३८२, ३८८, ३९२ ९६  
 बुद्धेवर ह्यम् बुधम ३४८

बुस्मार २१५  
 बृहदारण्यकोपनिषद् ६९ ७२ (पा  
 टि)  
 बेंजमिन मिस्स ३ ३  
 बेदूस श्रीमती ३३४  
 बंटी श्रीमती ३९३  
 बिहारिन मरब १८२  
 बबीसोल १८९  
 बेबीलोनिज्ज उनकी भारवा ९३  
 बेल्ज माँ ३८३ मठ २२७ २३७  
 २४५, २६३ २६५, २६८-७१  
 २७३-७५, २७७-७८, ३८०-८१  
 ३८९-८४ ३९४  
 बेसतार्ड मावाम ३५९  
 बीजा मस्य २ ६ (बेकिए जुळ बोमा)  
 बीयस १७७-७८, १८  
 बीमगया ३८७  
 बीनापार्ट २१ बंस २११ सम्प्रामी  
 २११  
 बीया श्री ३५९, ३६३, ३७ ३८१  
 (बेकिए जुळ बोमा)  
 बीस डॉ ३६७  
 बीस परिवार ३४  
 बीस्टन ३५६  
 बीड ४ ९२ अनुधासन १३८  
 उत्तर प्राण्ठीय ३८९ उनका मठ  
 ५ और हिन्दू १७५ और  
 हिन्दू बर्म में भेव १३८ कट्टर  
 १७४ त्यायी २१७ बर्म ४  
 २४१ प्रचारक १७४ प्राचीन  
 ४८ मिश्र १७४ मठ ५ ५३,  
 १३८ ३८७ युग २३८ सङ्की  
 १७६ साहित्य ३८७ सीलानी  
 १७३  
 ब्रह्म ६ २ २२, २७ ४५ ६, ७७  
 ८३, १ ५, ११३ १३ २९२,  
 ३८७ अनुजम २५ अनुमृति २४  
 बिन्तान २३९ भाग २१ २३१  
 तत्व ८३ विष १७६ निर्मुक्त २५  
 ११८ पुस्य ४६ पूर्ण २६६ फळ

- १४८, लोक २४, १४१, विद्या ४,  
सर्वव्यापी २३, साक्षात्कार २१,  
सूत्र ३८७  
ब्रह्मचर्य ३६६, अखड २५०, २५५,  
और उसकी महत्ता २५६, जीवन  
का गौरव ३९५, पालन २३२,  
भाव ३९४, व्रत २४२  
ब्रह्मचारिणी और उसकी आवश्यकता  
२७८  
ब्रह्मचारी २०, २७२, २९०, ३४७,  
३६५, और उसकी आवश्यकता  
२७८, पुरुष ३९४, शिष्य १९  
ब्रह्मपुत्र ३७९, नदी ३७२  
ब्रह्मभावापन्न २२  
'ब्रह्मवादिन्' १७२  
ब्रह्मा ७६, ३४२  
ब्रह्माण्ड ६, २३, २६, ३०-१, ३३, ६८,  
७०-१, ७६, ७९, २८४, ३१८,  
जगत् ६९, ७३, स्वरूप ७३  
ब्रह्मानन्द, स्वामी २५७, ३०३, ३०६,  
३०९, ३५१, ३६४, ३८३, ३८८,  
३९२  
ब्राउनिंग १३७  
ब्राह्मण १९, उडिया १६९, कुल २४८,  
कोकण १६९, गुजराती १६९,  
२२०, २४८, दक्षिणी १६९  
ब्रिटिश कौन्सिल ऑफिस ३५०  
ब्रिटिश जहाज ५७, म्यूजियम १९३  
ब्रीटानी ३५९  
ब्रेस कम्पेन ३५९  
ब्लाजेट, श्रीमती ३१२, ३३७  
ब्लावट्स्की, मैडम २९२  
भक्ति, और त्याग १४२, और द्वैत  
२७२, और श्रद्धा २३२, के पाँच  
प्रकार २७२, ज्ञान मिश्रित २८१,  
परा २७३, मार्गी २७३, योग  
२७१-७२  
भगवत्प्राप्ति २८०  
भगवद्गीता ४ (देविए गीता)
- भगवान् २२, ५९, ७१, २३०, २४१,  
२४४, २४९, २७३, ३३६, और  
उच्चतर भाव ३५, हृदय-स्थित ६२  
भगिनी क्रिश्चन ३६०, ३८०, निवे-  
दिता ३०४, ३१४, ३२४, ३८-३९,  
३४२-४४, ३५०, ३५५, ३६४,  
३८४, ३९०  
भागीरथ १८७  
भागीरथी १५४  
भारत २९, ४०, ४९, ९७, १०४-५,  
११६, १४०, १४४, १६४, १६७-  
६८, १७३, १७५, १७७, १७९,  
१८२-८३, १८८-८९, १९१-९६,  
२०१, २१५-१६, २२९-३०, २३२,  
२३४, २४२, २४६, २४८, २५४,  
२५७, २७५, २८५-८७, २९२,  
२९५, २९७, २९९, ३०५, ३२०,  
३२४, ३३१, ३३३, ३३९, ३४१-  
४२, ३४४, ३४७, ३५०-५१,  
३५५, ३६१, ३६३, ३६६, ३७३-  
७४, ३७८-७९, आधुनिक १५३,  
उत्तरी १६९, उसका उच्च भाव  
२५४, उसका सदेश १२७, उसका  
हित २३३, उसके निवासी १०६,  
उसके श्रमजीवी १९०, और  
आत्मा विषयक धारणा ९५, और  
उच्च वर्णवाले १६७, और उसकी  
सहिष्णुता १६७, और कृष्ण १३३,  
और जन समाज २५४, और  
जीवन शक्ति १६७, और दुभिक्षो  
की समस्या २५०, और पश्चिमी  
देश में अन्तर १२७-२८, और  
प्राचीनतम दर्शन-पद्धति १२१,  
और 'महान् त्याग' १३७, और  
वैष्णव धर्म १३०, और सामाजिक  
नाम्यवाद १३४, की लक्ष्मी १८९,  
धारणा ९५, पश्चिमी २४३,  
प्राचीन १९, १०८, भक्त २०५,  
भूमि ३८८, भ्रमण २०२, महा-  
सागर १७२, १७९, माता ३४५,

में स्त्री-शिक्षा १३९ साहित्यप्रिय  
 २९६ अज्ञात प्रकृत का ह्लास २६९  
 भारतीय उसकी आत्मा विषयक भारणा  
 १ ७ उसकी विशेषता १२१  
 कला ३८९ जाति ३४ डाक-  
 विभाग ३७९ तत्त्वचिंतक (प्राचीन)  
 और शरीर संबंधी भारणा १ ६  
 धर्म और उसका बोध १३३ नारी  
 २७७-७८ प्रयोग १३४ मन  
 १२१ महिला २७८ वाणिज्य  
 १८९ विचारधारा १२१ विद्रोह  
 २९८ बेस-भूषा २३६ समाज  
 २९८ सामु ३५६ स्त्री २९८  
 भाषना उसकी महत्ता और व्यापकता  
 १८  
 भाषावादी ४९  
 माया अश्वेथी २ १ २ ४ २१३  
 ईरानी १ ४ श्रीक १९२ १९३  
 तमिल १७५ फ्रांसीसी १९४  
 फ्रेंच २ २१९ २५३-५५,  
 ३२५ बग २ २ बंजला १९७  
 १९९ यहूदी १९८ संस्कृत १ ४  
 १ ९, १९३  
 भाष्यकार २२  
 मिश्र-संन्यासी ३६१  
 भुवन मोहन सरकार  
 भूटाणी १७६  
 मूटिया १९४  
 भूमध्य सागर १८३ १८८, १९१  
 १९६ २ ३ २ ५, २८२  
 'भेला' १५६  
 भैरव-सौप्तिक २६६  
 भैरवी-एकतात्वा २६१ सौप्तिक २६७  
 भौतिक तत्व ८९ बाब १२२ २९२  
 बादी २९ विज्ञान १४ घास्य  
 २३  
 मंगोल १९५ जाति १९५  
 मंगोलार्क (छोटे मंगोल) १९५  
 मंत्र-दीक्षा २४९

मनो-बोध १ ४  
 मईसीमियन २२२ कला २२२  
 मठ, बेल्लूड ३६३ ३६५, ३६९-७१  
 ३७१-७५, ३७७-७८ ३८०-८१  
 ३८३-८६ ३९४  
 मठवाह १३८  
 'महर' १ ८ ३१७  
 महास १५ १६८ १७१ १७७ २२१  
 ३६५, ३६९ ३७५ और तमिल  
 भाषा १७ जर्नल ३८८  
 महासफ्टम् १६८  
 महासी १६९, १७०-७१ जमावार  
 १७ तिसक १६९ मित्र १७१  
 मधुर भाष २७९-८१  
 मध्य वेदा १५६  
 मध्य मुनि १६९ सम्प्रदाय १६९  
 मर्म' १८ (पा टि )  
 मनुष्य' ४४ २७ उसका प्रकृत  
 स्वरूप ६२  
 मनोमय कोस १४१  
 मनोविज्ञान १४ २५४ २५७  
 मलाबार १७ १९६  
 मलायलम (मलाबार) १५१  
 मलायी १९४  
 मसीहा ३४  
 महाकाली पाठशाळा १४  
 महा निर्वाण मूर्ति १७४  
 महा प्रवाण और बुद्ध २९६  
 महाभारत २३३  
 महामाया २४२, ३६६  
 महाभारत १७६ २१६ मठ ३८७  
 महाराष्ट्र १६४  
 महाविषय रक्षा १५७  
 महावीर १४७-४८, १७५  
 महिम ३४८  
 महेश्वरी १९५ (पा टि )  
 महेश्वरनाथ गुप्त २७१  
 मा १३ १५ ३ ७ ३ ९, ३२६  
 ३२ ३ ३३९ ३३ ३५९  
 मा बुलबुललिपी २६१

- मागची भाषा १७६  
 माता जी (महाकाली पाठशाला की  
 सस्थापिका) १४०  
 मातृभूमि २७८  
 मादमोआज़ेल २०१, ३६३, उसका  
 अर्थ २०१  
 मवुकरी ३९०  
 मानचू १९५  
 मानव-आत्मा २९  
 मानवतावादी १४०  
 मानमिक विद्या २९२  
 मानिकी १८१  
 माया ३१, ७५, ७६, ९२, १०९, ११३,  
 १३६, १३८, १६७, २७१, २७३-  
 ७४, ३८७; अमरावती २०६,  
 उसका अर्थ १२३, उसकी परि-  
 भाषा १४२, उसकी व्यापकता  
 २७५, जाल ७५, नामरूप १४२,  
 पाश २७३, मोह ७०-१  
 मायातीत अवस्था ७५  
 मायामय ६८  
 मायावती ३४७, ३६६-६८, ३९३  
 मायावरण २७  
 मारमोरा २२१  
 मारवाड १८२  
 मारवाडी २३०  
 मार्गट ३१४, ३२४, ३३५-३७, ३४३,  
 ३४५, ३५५-५६, ३६९-७०, ३७२,  
 ३९३ (देखिए निवेदिता, भगिनी)  
 मार्गरेट ३०५  
 मार्टिन लूथर २०३  
 मार्साइ १८३, १९९  
 मालद्वीप १५७, १८४  
 मालाबार १८०  
 'मालिम' १६५  
 माल्टा १४९  
 मासपेरो १९३-९४  
 मास्टर महाशय २७१-७२ (देखिए  
 महेंद्रनाथ गुप्त)  
 माहिन्दी १७४  
 मि० श्यामीएर १७१  
 मित्र, प्रमदादास ३५०  
 मिल २७५, २९०  
 मिल्टन १३७, श्रीमती ३२२, ३२७,  
 ३३५  
 मिल्वार्ड एडम्स, श्रीमती ३३७  
 मिस्त्र १८०-८१, १९१, १९८, २०२,  
 २०५, २२१, ३६०, जाति २२२,  
 देश १०६ १९३, देशवामी १०३,  
 पुरातत्त्व १९३, प्राचीन १९०,  
 १९५-९६  
 मिस्त्री ९३-४, आदमी १८३, उसका  
 प्राचीन मत १८१, सम्प्रता १७०  
 मुकुन्दमाला १११ (पा० टि०)  
 मुक्ति ३४, ५५, ६७, ७५-६, ९७,  
 १२३-२४, २७२, ३१७, ३४१-४२,  
 अमरता से अविच्छिन्न सबध ११७,  
 उसका अर्थ ११६, उसका सरलार्थ  
 ११०, उसका सिद्धान्त ११०, मे  
 अनुकम्पा की आवश्यकता ११२,  
 सन्यास १३३  
 मुखोपाध्याय, प्रियनाथ २५७  
 मुगल १६८, प्रतिनिधि १६८,  
 बादशाह २१६  
 मुण्डकोपनिषद् ६८ (पा० टि०), ११२-१३  
 मुराद, सुल्तान २२०  
 मुर्शिदाबाद १५४  
 'मुल्लक' १९७  
 मुसलमान २५, २९, ४३, ५९, ७७,  
 १६५, २००, २०३, २०८, २१३,  
 २४७, २५२, धर्म २१६, नेता  
 ओसमान १९२, नौकर १६५,  
 हिन्दी भाषी २२०  
 मुसलमानी धर्म १८९, २१८, बगदाद  
 १८९  
 मुहम्मद १४३, १८२  
 'मूमिया' १८१  
 मूर्ति-पूजन १६१  
 मूर्ति-पूजा १९८, २९२, उसका उद्गम  
 २३७

मूलर, कुमारी ३२ ३४४ ३८६  
 मूसा यहूदी नेता १८  
 मृत्यु का निरन्तर चिन्तन २८४  
 मैक्सवॉथ मिस २ १ २१९ (वेसिए  
 जोसेफिन मैक्सवॉथ)  
 मेघदूत २३३  
 मेटारनिक २११ १२  
 मेबाडिस्ट ३४३  
 'मिनुस' १९६  
 मेनेसिफ (हृष्टी बावघ्राह) १८  
 मेमफिस प्रवास २८९  
 मेरॉन २२१  
 मेरी ३ ८ ३१६ ३२५, ३३६ ३७  
 ३३९, ३४२, ३७३-७४ ३७९,  
 ३८१-८२ (वेसिए मेरी हेल्  
 कुमारी)  
 मेरी लई (वास्ट्रियन राजकुमारी)  
 २१ ११  
 मेरी हेल् कुमारी ३ ८ ३१६-१४  
 ३३६ ३७ ३३९, ३४२ ३४४  
 ३७३ ३७९ ३८१  
 मेल्काबि माधमोजाबेल २२१  
 मेल्का माधम २ २  
 मेस्टन श्रीमती ३११ १२ ३१९, ३२५,  
 ३५५-५६  
 मेसाजरी मारीठीम (क्रासीली) १६१  
 'मै' ३०-१ ४९ ५८९, ६२, ८४-५,  
 १२३ जसकी पहचान ६२  
 मैककिडमी परिवार ३१६ बहनों ३३७  
 मैक्सवॉथ कुमारी ३१३, ३२३ ३२८,  
 ३७३ ३७९ (वेसिए मैक्सवॉथ  
 जोसेफिन)  
 मैक्सवॉथ जोसेफिन ३ ५ ३१८,  
 ३२८ ३३१ ३३४ ३४५ ४६,  
 ३५५ ३६२ ६३ ३६५ ३७  
 ७१ ३७५ ३७७-७८, ३८१  
 ३८६ ३९३ ९४  
 मैकबीय परिवार ३८२  
 मैडम मेसिज ३१५  
 मैक्सिम २ ४-५ तीप २ ५

'मैक्सिम गन' २०४  
 मैक्सिम श्रीमती ३७६  
 मैडामास्कर १४९  
 मैसूर १७२, १७८, ३७५  
 मैसूरी रामानुजी 'रसमू' १७२  
 मोसा १११ ११४ १४ श्री  
 शक्तिव मुक्ति १२८ निर्वाण  
 १२४ सिद्धि ११  
 मोठी ३८४  
 मोनरो एण्ड कम्पनी ३७४  
 'मोल्क' १९७-९८  
 म्सेण्ड १३५  
 ममराज १५९  
 मधन १९२ १९६ आशीन १९१  
 मोग १८१  
 मस श्रीमती ३३७  
 यहूदी १ ४ १ ६ १९१ १९३ ९७  
 २९९ उमकी धीतान की कल्पना  
 १ ४ जाति १९७ बेवता १ ३  
 बर्म १९८ मापा १९८  
 पारकशी १५१  
 'पाबे' बेवता १८ १९८  
 मुकेटिस १७ १९७ गरी १९३  
 युस्क (तुरस्क-सम्राट्) २१६  
 यूबीय या कबीली बेवता १ ३  
 यूताम १८२, २३८, ३६  
 यूतानी बेवता १३५ हकीमी १८१  
 यूरोप ४३ ४८, १३३ ३४ १४७ १६३  
 १६५, १७८-७९, १८३, १८८, १९३  
 १९५, २ ०-१ २ ३ २ ७ २ ९  
 १ २१३ १४ २१८, २२१ २२,  
 २२७ २४७ २७४ २७६, २८७  
 ३८ एण्ड २१२ पूर्वी १९२  
 मम्मकालीन ४ याता १४५  
 बानी २१४ १५, २१४ २३६  
 यूरोपियन १६५, १७५ पोलाक १६२  
 राजम्वयन २११ बैरा १८२  
 यहूदीय ३६७ सम्पता १९२, १९६,  
 १९९

यूरोपीय कमीज २३६, कोट-कमीज  
२३६, विद्या ३५४, वेशभूषा  
२२८, सम्यता १७७

यूसफजाई २१६

यूसुफ १९८

योग, उसका अर्थ २४२, ज्ञान २७१-  
७२, ध्यान २४२, भक्ति २७१-  
७२, माया १०९

योगानन्द, स्वामी २५७

योगीन माँ ३६९

योगिक सिद्धि और सीमा के प्रश्न १४१

रगून १४९

रघुवश १४७ (पा० टि०), १५२  
(पा० टि०)

रजोगुण १५०, २४८, २५६

रजोगुणी २५३

रब्बी (उपदेशक) १९९

रमते योगी १४३

राइट, श्रीमती २८६

राक्सी चाची ३३७ (देखिए ब्लाजेट,  
श्रीमती)

राखाल ३५०, ३९२ (देखिए ब्रह्मानन्द,  
स्वामी)

राजकुमार (एक वृद्ध क्लर्क) २६३-६६

राजकुमारी हेमी डॉफ ३५७

राजदरबार, उसका महत्त्व २४३,  
सम्यता और सस्कृति का केन्द्र  
२४३

राजपूताना १७८, १८२

'राजयोग' (पुस्तक) २५७-५८

राजस्थान २३८, २४३

राजेन्द्रलाल, डॉ० ३८७

राघाकान्त देव, राजा २५०

रावा प्रेम २८०

राम १४७

रामकृष्ण देव २६०, २६२, २७१-७२,  
३०५, ३१५-१६, ३२६, ३५१,  
३९१ (देखिए रामकृष्ण परमहंस)

रामकृष्ण परमहंस १२७, १२९-३०,

१३२, १३६, २२७, २३२, २३४,

२४१, २४४-४५, २५१, २५४,

२६०-६२, २७३, ३०७, ३३२,

उनका श्रेष्ठत्व २५२, और  
विवेकानन्द १४१, जन्मोत्सव ३०९,

भगवान् रूप २४२

रामकृष्ण मठ ३४६, मठ एव मिशन

२८५ (पा० टि०), मिशन ३४६,

३५१

रामकृष्णानन्द, स्वामी ३६५, ३६९,

३७४ (देखिए शशि)

रामगढ ३२०

रामतनु बसु २५८

राम बाबू ३९१

रामलाल २६०

रामसनेही १६९

रामानन्दी तिलक १६९

रामानुज १६९

रामानुजी तिलक १६९

रामायण २३३

रामेश्वर १४९

रामेश्वरम् ३६९

रावण-कुम्भकर्ण १७३

रावण, राजा १७३

राष्ट्र, उसके इतिहास का महत्त्व २२८

रुडयर्ड किर्पलिंग २९७-९८

रुवाटिनो कम्पनी (इटैलियन) १६१

रूपनारायण (नद) १५५

रूमानिया २१८

'रूल मिटानिया, रूल दी वेव्स' १५३

रूस १६४, १८०, २०८, ३६५, युद्ध  
२१४

रूसी भावना ३६५

रुस्काइव ३७४

रेड-बुड वृक्ष ३३६

रेजी २११

'रोजेट्टा स्टोन' १९६

रोम १५०, १८९-९०, १९२, १९९,

२०९, उसके वादशाह १९३, राज  
२१२, राज्य २१०, २१७,

साम्राज्य १८९  
रोमन १३७ १८१-८२, १९६, १९९  
सैमोसिक ४३ २१८, ३९४ वर्ष  
२ ३ निवासी जनकी सर्वरता  
१३७ बावपाह (कालस्टान्सिठस)  
१७९ बाले २ ३

संका १४७ १७३-७५  
'कविन्द के बाप' (बंगाली कहानी में  
एक पात्र) १५९  
कल्पन ६, १९, ३७ ४८, १५ १९९  
३ ५, ३ ७ ३१ ३३१ ३२,  
३३४ ३७ ३७९

'काइट ऑफ़ एशिया' २९६  
काइट थियेट का आक्रमण ३२९  
काइपजिक २११  
कागत डॉ ३५५  
कायबल मस्य २ ३  
काई कर्जन ३८६  
का माटिल २ २  
कासरोप १५

कालगामर १७९-८१, १८३ १८९  
कामून २९७ २९९  
काँम एजिलिस ३ ५ ६, ३१२, ३२०-  
२३ ३३४ ३३७ ३३९, ३४८, ३५९  
'काँ मियन' ३४६  
काहीर ३७६

काम्बरी ३७१  
कामिब २९७  
कामिप्य २२३  
कामिचप ३७६  
कामिपात्र ७८  
काम परिचार ३२१ ३४५ मिस्टर  
२ ६

कामेट, की ३१२, ३२६ ३२९, ३३१  
३७ ३३४ ३५, ३४७ ३६२,  
३९३ भीमनी ३१ ३१५, ३१९,  
३२१ ३२३ ३२५, ३२७-२८,  
३३१ ३३४ ३५, ३७९  
कामे प्रोपेज २२१

सेन्धा १९४  
कोहित सागर १८८

कट-बुद्ध ४७ ३३  
कनिष्कबाड़ी ३६५  
कणह १९७  
कल्या ३३ १५३  
'कर्ममान मारण' १५३  
कसीयतनामा ३ ७ ३९४ ३३५  
कस्तु १३५, जपाबान नाम-रूप का  
योग १२३  
काईकाऊ, भीमनी ३४७  
काटरकू २११  
कामु-पीठ १६३  
कारलेण १५४  
कापलसी ३८९, कामनी ३८७-८८,  
३९०-९२ कासी १५ (पा  
टि )

कास्बन भीमनी ३५४  
कास्को कुमारी ३१८ १९, ३४५ ४६,  
३५४  
कास्मीकि १४८  
काप्य पीठ १६३ ६४ १९६  
कास्तु घिल्प ३८  
कास्त्रोर २१९ २  
'कास्त्र' ८७

कासासबाव ३९, ५२३ कासी ८१,  
२९६  
कासटर हूगो २ २ महाकवि २ ३  
कास्य सिई १७३  
कास्य का मंदिर २२१  
कासान आयुनिक ३९ कासी (Idea-  
list) ४१ ४८

कासानगर १७  
कासास्य मुनि १७  
कासानापर ईस्वाकण्ड २३३  
कासा-कासा २७१  
कासा २ ५, २११ ३६२ मकरी  
२ ८ कास २ ९, २१२  
कासरेण कासा २

विलायत १५८, १६३, १६५-६६,  
 १७१, २५२, २५४-५५  
 विवाह २७५, अन्तर्जातीय २७१, और  
 भावात्मक शिक्षा २७७, विधवा  
 २७१  
 विवेकचूडामणि ७३ (पा० टि०)  
 विवेकानन्द, स्वामी ८३, १२७, २५०,  
 २५५, २५८, २८६, २९०, २९२-  
 ९३, २९८-९९, ३००, ३०४-५,  
 ३०८-१२, ३१४-२०, ३२४-२५,  
 ३२८-३१, ३३३-३९, ३४१-४९,  
 ३५२-५३, ३५७-६०, ३६२-६५,  
 ३६७-७४, ३७७, ३७९-८२, ३८४-  
 ८६, ३९०-९३, ३९५, उनकी  
 निश्चिन्तता २६६-६८, उनके  
 विवाह सबबी विचार २७६, और  
 अद्वैत १४१, और उनकी सहृदयता  
 २६२-६६, और चित्रकला २३८,  
 और चैतन्य २७९, और धर्म तथा  
 सम्प्रदाय २९३, और निर्वाण  
 ३३२, और बुद्ध १४२, और  
 यौगिक सिद्धियाँ १४१, और राम-  
 कृष्ण परमहंस १४१, और व्यक्तित्व  
 का प्रश्न १४३, और शंकराचार्य  
 १४३, और संगीत कला २४६,  
 और सत्य दर्शन २७४, और हिन्दू  
 धर्म २९४  
 विशिष्टाद्वैत और ईश्वर ६८  
 'विशिष्टाद्वैतवाद' ९०  
 विश्व-ब्रह्मांड १४  
 विश्वामित्र २४९  
 विष्णु, उनकी उपासना १३३, प्रतिमा  
 २३२  
 विष्णु मोहिनी ३९१  
 वीर रस २४७, २८०  
 वीर-वैष्णव सम्प्रदाय १७०  
 वीर-शैव १७०, शैववाद १७५  
 वील माट, श्रीमती ३५८  
 वुड्न पागा २१९-२०  
 वृष और मत्स्यकाम २०

वेकूहम, कुमारी ३५५  
 वेद २८, ३०, ४४, ४८, ८८, १०५  
 ११२, १३२, १३५, १३९, १८९,  
 १९६, २४२, उसका सहिता भाग  
 २५, उसकी आवश्यकता २४२,  
 उसके भाग २३, पाठ ३६५, भाष्य-  
 कार सायण १७० (पा० टि०),  
 वाक्य २७४  
 वेदान्त ७, १६, २९, ३२, ५३-४, ५६,  
 ६०, १३२, १४४, १७०, २२७  
 २४१, ३३४, उसका आदर्श ३४,  
 उसका उपदेश ३३, उसका मत  
 ३३, उसका मूलतत्त्व २५, उसका  
 मूल सिद्धान्त (एकत्व भाव) ८,  
 उसका वैशिष्ट्य २२, उसका व्या-  
 वहारिक पक्ष २१, उसका श्रेष्ठत्व  
 ११२, उसका सरलीकरण १२,  
 उमका सिद्धान्त २२९, उसकी  
 साधना ३५, और अद्वैत ५२, और  
 अद्वैतवाद ४०, और ईश्वर ६८,  
 और उसका कथन ६१, और उसकी  
 उपयोगिता ३, और गीता २४०,  
 और धर्म ३, और प्रणेता ३, और  
 सभवा आदर्श ६, और सिद्धान्त ३,  
 दर्शन ४, ८४, दर्शन में ईश्वर का  
 स्थान ८३, धर्म ५८, भाव २०२,  
 मत २७, ३१७, युक्त पाश्चात्य  
 विज्ञान २२९, वादी ६७, ममिति  
 ३२४, सोसायटी ३१२, ३२९,  
 ३३५, ३४२  
 वेदान्ती, प्राचीन ४८  
 वेनिस १९०, ३६०, ३८०  
 वेल, कुमारी ३५५  
 वैदिकन २१०  
 वैदिक अग्नि १३९, धर्म त्यागी २७७,  
 यज्ञ २३९, यज्ञानुष्ठान २४१, वेदी  
 १३९  
 वैष्णव १७०, २४१, २८१, धर्म १३०,  
 १३३ १७०, सम्प्रदाय ३००  
 वैश्य २४८-४९



४१ ४३ ४५६ ४८  
 ४१ ४१३ १५  
 विश्वकाम्यसामग्री ११ ३४१ (पा० टि )  
 विशिष्ट' उसका अर्थ ६७  
 विशिष्टाद्वैतभाव ३६  
 विशिष्टाद्वैतभाव ४६-७ ६७ भावी  
 ६२  
 विश्वविद्यालय १ २  
 विश्व ३४ ३७-८ ४७ ५७ १७५  
 १७६, ३५७ उपासना और नाम  
 १७४ प्रभु १७३ रूप १७५  
 विश्वपुराण १७६ (पा टि ) ३१५  
 शीला १२७  
 'बीर' ९२  
 बुद्ध साङ्ख्य ३७१  
 बुद्धाचरण १९६  
 ब्रह्म ११ ४३४ ४६-७ ५१ ५७  
 ६२, ६४ ७१ ८३ २ ४-५  
 २८ २६४ २६६ २८३-८५,  
 २८९, २९२ ६३ ३१५ और  
 शिक्षा २९८ श्वश्रु २८३  
 वेदव्यास ३१४  
 वेदान्त ४७ ५२ ६१२ ७४ ८८,  
 १११ १४ २८६, ३१४ अद्वैत  
 ६८ और माया ११७ बर्धन  
 ९५, ४७ १८७ २८ धर्म ५५  
 सूत्र ५६-७ ३१५  
 'वेदान्त-केसरी' ४६  
 वेदाध्ययन ४७  
 वेदोक्त तत्त्व ६२  
 वेत्स ३७३  
 वैकुण्ठ १४४  
 वैदिक भाषा २८४ युग ३ साहित्य  
 २८४  
 वैदेही १४२ (बेल्गिय सीता)  
 वैद्यनाथ ३५७ ३६१ ३६५  
 वैराग्य ७८  
 वैश्य ४७  
 वैष्णव सम्प्रदाय ३७  
 व्यक्तित्व ३५७

व्यास ४२, ४६-७ ११५, ११८,  
 ३१४ सूत्र ४६, ५६  
 व्यूह-रचना १६२  
 शंकर ४२, ४९, ५०-१ ५९, ६२, ६४  
 ८ ७१ ११२ (बेल्गिय शंकराचार्य)  
 शंकराचार्य ६८, ३१४ १५, ३४२,  
 ४४  
 शंख १७३ १७५  
 शकुनि १५३  
 शकुन्तला १४८  
 शक्ति' ३६  
 शतपथ ब्राह्मण ३१६  
 शनिग्रह ७७  
 'सम्भ' ७ २९ और महा ७  
 शरत् ३७५, ३९१  
 शरीर ९ १२, २६, २८ ३२,  
 ३६ ६ ६४ ६६, ७४ ७७  
 ८७ ८९ ९७ १ ५, १ ७  
 १ ९ १ ११४ १२१ २२, १४७  
 १५८ १७१ २ ६ २२९ २३४  
 २३८ २५१ २५६ २६५ ६६,  
 २९३ ३ ५, ३ ७ ३ ९ १  
 ३२२, ३२९  
 शांकर-माध्य ४२, ५६  
 शाक्य ३५  
 शापेनहासर ६२  
 शास्त्रिधाम-भिक्षा ३४  
 शास्ता २१२ २९३  
 शास्त्र २८ १ ५ उसका कार्य ६५  
 शिकागो ८६ ३६६ ३७७ ३८३  
 ३९३ ४ २-३ ४१३ ४१५  
 शिक्षा और सहानुभूति ११६ धान  
 २४३ लौकिक २४४  
 शिव ३२ ३४ ३७ ४७ ५ ५७  
 १२९ धनु ११६  
 शिवजी का मृत ३३६ ३७  
 शिवमहिम्ना स्तोत्रम् २६३ (पा टि )  
 शिवस्वरूप ४२  
 शुक्ल रामचन्द्र २ ५ (पा टि )

‘शुभ’ ८

शुभ-अशुभ १३०

शून्यवाद ५३, वादी ५४, ३७१

शूर्पणखा १३७

‘शेक्सपियर क्लब’ १३२, १७७

‘शेक्सपियर सभा’ १४८

शैव ३७

श्याम २००

श्यामा माँ ११२

श्रवण १२६

श्राद्ध-सस्कार २४३

श्री ऊली ३६७, बूली ३७६, लेगेट  
३९३, ३९६, ४००

श्री कृष्ण २१, २७, ३१, १५२-५३,  
१६८, १८६-९०, २२९, २३५,  
२४०, ३०१, ३०६, ३१९

श्री चैतन्यचरितामृत ३९

श्री चैतन्यदेव ३९ (पा० टि०)

श्रीनगर ३५३-५४

श्री भाष्य ३१५

श्रीमद्भागवत् १३ (पा० टि०)

श्री रामकृष्ण २४, २९, ३२-४, ३६,  
७०, १००, २४१, २५६, और  
उनके विचार २६९-७०, परमहंस  
२६७, २६९, २७१, राष्ट्र के आदर्श  
२७१

श्री रामकृष्ण देव ३१, ४०५ (देखिए  
श्रीरामकृष्ण)

श्रुतिशास्त्र २०८

श्वेतकेतु ७८

श्वेताश्वतर उप० २१ (पा० टि०)

सजय ३१८, ३१९

सगीत ४१

सदेहवादी २५९

सन्यास-मार्ग २५३

सन्यासिनी ३२

‘सन्यासी’ ३९०, धर्म ३९०

सस्कृत, प्राचीन २८३, भाषा १३२, २८४

सत् ८, ७०

सत्यकाम ९३

सत्यवान १५५-५८

सत्त्व (गुण) १९-२०, २२

सत्त्वगुण ५७, ६८, ९६, ३१९

सनक २५ (पा० टि०)

सनत्कुमार २५ (पा० टि०)

सनन्दन २५ (पा० टि०)

सनातन २५ (पा० टि०)

सनातन तत्त्व ७४

सनातनी दर्शन ४६

सन्त पॉल ३३, ७८, जॉन ७

सन्त-समागम १५५

सन्देहवादी २१८ (पा० टि०)

समत्वभाव ४१, १०१

समाजवाद ३५७

समाधि ५२, अवस्था ७०, ७२,  
और अर्थ ४१, धर्ममेघ ७९,

निर्विकल्प १०३, सविकल्प १०३

‘समारिया’ वासियो २२८

सर एडविन आर्नल्ड २०५ (पा० टि०)

सरयू १४४

सरला घोषाल, श्रीमती ३६८

सविकल्प (समाधि) १०३,

सहदेव १५९, १६१, १६६

सहस्रद्वीपोद्यान, १२२

साख्य १६५, दर्शन ६८, ३०१

साख्यवादी ६८

साउटर, कुमारी ३७३

साकार उपासना १८२

साधन पथ १४६, भजन ७५

साम्यवाद ३४

साम्यावस्था ३२६

मादृश्यमूलक ज्ञान ४०

सारदा ३७४

मारदानन्द ३५४-५५, ३७१, ३८०,

३९७, ४००, ४०३-५, ४०७

सावित्री १५४-५८

‘साहित्यकल्पद्रुम’ ३३८

मिकन्दर २००

मिण्डरेला नृत्य ३७७

हम लोग इस सर्वश्रेष्ठ क संसारक मनुष्य की स्थिति में रहेंगे तब तक हमें मनुष्यों में ही ममता को देखना पड़ेगा। इसीलिए हमारी ममता विषयक बातों एवं उपायों का स्वभाव ही 'यह धरती ममता का सर्वश्रेष्ठ मन्दिर है। इसीसे हम देखते हैं कि युवों से मनुष्य मनुष्य को ही उपायों का उपाय है। लोगों का इस मनुष्योपायों के विषय में अब कमी स्वभाविक रूप से विकसित अभिचार देखने में आता है जो उनकी निम्न या आलोचना भी होती है। फिर भी हमें यह दिखायी देता है कि इसकी पीढ़ काफ़ी मजबूत है। ऊपर की पाठ्य-प्रणाली में हमें ही धरती आलोचना के योग्य हों पर उनकी अब बहुत ही गहराई तक पहुँची हुई और सुदृढ़ है। ऊपर की आलोचना के होने पर भी उसमें एक सार-रस है। मैं तुमसे यह कहना नहीं चाहता कि तुम बिना समझे-बूझे किसी पुरानी कथाओं अथवा अतीतक अनर्थाक विद्याओं को बखरावती गले के गोले उतार आओ। दुर्भाग्यवश कई पुरानों में बाधाकारी व्याख्याएँ ब्रह्मण्य या मयी हैं। मैं यह नहीं चाहता कि तुम उन सब पर किन्नाह करो। मैं ऐसा करने को नहीं कह सकता बल्कि मेरा मतलब यह है कि इन पुरानों के अस्तित्व की रक्षा का कारण एक सार-रस है जिसे खल नहीं होने देना चाहिए। और यह सार-रस है उनमें निहित व्यक्ति सम्बन्धी उपदेश धर्म को मनुष्य के दैनिक जीवन में परिवर्तन करना वर्तमानों के उन्मादकाल में विचरण करनेवाले धर्म का साधारण मनुष्यों के लिए दैनिक जीवनोपयोगी एवं व्यावहारिक बनाना।

### ‘ट्रिब्यून’ में प्रकाशित रिपोर्ट

इस भाषण की जो रिपोर्ट ‘ट्रिब्यून’ में प्रकाशित हुई उसका विवरण निम्न लिखित है

बहुता सहोदय ने मक्ति की स्थापना में प्रतीक-प्रतिमाओं की उपयोगिता का समर्थन किया और उन्होंने कहा कि मनुष्य इस समय जिस अवस्था में है, ईश्वरके साक्षे यदि ऐसी अवस्था न होती तो बड़ा अच्छा होता। परन्तु विद्यमान समय का प्रतिहार धर्म है। मनुष्य वैतन्य और आध्यात्मिकता का विषयों पर कोई विनिर्णय नहीं क्या न बताये पर वास्तव में वह अभी अज्ञानावस्था में ही है। ऐसे जड़ मनुष्य को हाथ पकड़कर धीरे धीरे उठाना होगा—तब तक उठाना होगा जब तक वह वैतन्यमय मनुष्य आध्यात्मिकता प्राप्त न हो पाव। आन्दोलन के उभारने में १९ ही सही ठेके आरम्भ हैं, जिनके लिए आध्यात्मिकता की समझना जरूरी है। जो प्रेरक शक्तियाँ हम इनेतरकर भाग बड़ा रही हैं, तथा हम जो काम प्राप्त करना चाहते हैं, वे सभी जाइ हैं। सर्वोत्तम स्तर के वर्तमानों में भेदा करना है कि हम

केवल उसी रास्ते से आगे बढ़ सकते हैं, जो अल्पतम प्रतिरोध का हो। और पुराण-प्रणेतारों को यह बात भली भाँति मालूम थी, तभी वे हमारे लिए ऐसी पद्धति बता गये हैं। इस प्रकार के कार्य में पुराणों को विस्मयजनक और बेजोड़ सफलता मिली है। भक्ति का आदर्श अवश्य ही आध्यात्मिक है, पर उमका रास्ता जड़ वस्तु के भीतर से होकर है और इस रास्ते के सिवा दूसरा रास्ता भी नहीं है। अतः, जड़ जगत् में जो कुछ ऐसा है, जो आध्यात्मिकता प्राप्त करने में हमारी सहायता कर सकता है, उसे ग्रहण करना होगा, और उसे इस तरह काम में लाना होगा कि मानव क्रमशः आगे बढ़ता हुआ पूर्ण आध्यात्मिक स्थिति में विकसित हो सके। शास्त्र आरम्भ से ही लिंग, जाति या धर्म का भेदभाव छोड़कर सबको वेद-पाठ करने का अधिकार प्रदान करते हैं। हमें भी इसी तरह उदार होना चाहिए। यदि मनुष्य जड़ मन्दिर बनाकर भगवान् में प्रीति कर सके तो अच्छा ही है। यदि भगवान् की मूर्ति बनाकर इस प्रेम के आदर्श पर पहुँचने में मनुष्य को कुछ भी सहायता मिलती है तो उसे एक ही जगह वीस मूर्तियाँ पूजने दो। चाहे कोई भी काम क्यों न हो, यदि उसके द्वारा धर्म के उस उच्चतम आदर्श पर पहुँचने में सहायता मिलती हो तो उसे वह अबाध गति से करने दो, पर हाँ, वह काम नैतिकता के विरुद्ध न हो। 'नैतिकता के विरुद्ध न हो', ऐसा इसलिए कहा गया कि नैतिकता विरोधी काम हमारे धर्म-मार्ग के सहायक नहीं होते, बल्कि विघ्न ही उपस्थित किया करते हैं।

स्वामी जी ने मूर्ति-पूजा के विरोध की समीक्षा करते हुए कहा कि भारतवर्ष में सर्वप्रथम कवीर ने ही ईश्वरोपासना के लिए मूर्ति का व्यवहार करने के विरुद्ध आवाज उठायी थी। परन्तु भारत में ऐसे कितने ही बड़े बड़े दार्शनिक और धर्म-संस्थापक हुए हैं, जिन्होंने भगवान् का सगुण रूप अस्वीकार कर निर्भीकता के साथ अपने निर्गुण मत का प्रचार करने पर भी मूर्ति-पूजा की निन्दा नहीं की। हाँ, उन्होंने मूर्ति-पूजा को उच्च कोटि की उपासना नहीं माना है, और न किसी पुराण में ही मूर्ति-पूजन को ऊँचे दर्जे की उपासना ठहराया गया है।

यहूदियों के मूर्ति-पूजन के इतिहास का जिक्र करते हुए स्वामी जी ने कहा कि जिहोवा एक सन्दूक के भीतर रहते हैं, ऐसा विश्वास करनेवाले यहूदी लोग भी मूर्तिपूजक ही थे। इस ऐतिहासिक दृष्टान्त के उपस्थित रहते हमें मूर्ति-पूजा की इसलिए निन्दा नहीं करनी चाहिए कि और लोग उसे दोषपूर्ण बताते हैं। मूर्ति या किसी और भी जड़ वस्तु के प्रतीक को, जो मनुष्य को धर्म की प्राप्ति में सहायता करे, बिना सकोच ग्रहण करना चाहिए। पर हमारा कोई भी धर्मग्रन्थ ऐसा नहीं है, जो स्पष्ट शब्दों में यह नहीं कहता कि जड़ वस्तु की सहायता से अनुष्ठित होने-वाली उपासना निकृष्ट श्रेणी की है। सारे भारतवर्ष के सब लोगों को बलपूर्वक

मूर्तिपूजक बनाने की चेष्टा की गयी थी और इसकी जितनी मित्वा की जाय वह कम है। प्रत्येक व्यक्ति को कैंची उपासना करनी चाहिए, जबवा किस चीज की सहायता से उपासना करनी चाहिए—यह बात खोर से या हुकम से करने की क्या आवश्यकता पड़ी थी? यह बात अन्य कोई कैसे जान सकता है कि कौन आवनी किस वस्तु के सहारे उभरति कर सकता है? कोई प्रतिमा-मूजा द्वारा कोई अग्नि-मूजा द्वारा यहाँ तक कि कोई केवल एक खम्भे के सहारे उपासना की सिद्धि प्राप्त कर सकता है, यह किसी और को कैसे मालूम हो सकता है? इन बातों का निर्णय अपने अपने गुरुओं के द्वारा ही होना चाहिए। भक्ति विपयक प्रश्नों में इष्टदेव सम्बन्धी जो नियम हैं उन्हींमें इस बात की व्याख्या देखने में आती है—जबकि व्यक्तिविरोध को अपनी विशिष्ट उपासना पद्धति से अपने इष्ट देव के पास पहुँचने के लिए आये बढ़ना पड़ेगा और वह जिस निर्बाधित रास्ते से आये बढ़ेगा वही उसका इष्ट है। मनुष्य को चम्भा ठी चाहिए अपनी ही उपासना पद्धति के मार्ग से पर साध ही अन्य मार्गों की ओर भी सहानुमति की दृष्टि से देखना चाहिए। और इस मार्ग का अवकम्बल उसको ठब तक करना पड़ेगा जब तक वह अपने निरिष्ट स्वाम पर नहीं पहुँच जाता—जब तक वह उस केन्द्रस्थल पर नहीं पहुँच जाता वह वस्तु की सहायता की कोई आवश्यकता ही नहीं है।

इसी प्रसंग में भारतवर्ष के बहुतेरे स्थानों में प्रचलित कुङ्कुम-प्रसा के विपय में जो एक प्रकार से बंधमत्त मुस्माई की तरह हो पयी है, सावधान कर देना आवश्यक है। हम धार्मिकों में पढ़ते हैं—'जो देवों का धार-तत्त्व समझते हैं जो मित्वाप हैं जो धन के लोभ से और किसी प्रकार के स्वार्थ से लोगों को धिक्का नहीं देते जिनकी कृपा हेतुविशेष से नहीं प्राप्त होती बसन्त जगु विच प्रकार देह-मीनों और कला-मुस्मो से बचने में कुछ न चाहते हुए सभी देह-मीनों में मना जीवन आकर उन्हें हरा-भरा कर देती है, उनमें मयी मयी कोपले निकल आती है, उठी प्रकार जिनका स्वभाव ही लोगों का कल्याण करनेवाला है जिनका धारा जीवन ही धुधरों के हित के लिए है जो इसके बड़े लोगों से कुछ भी नहीं चाहते ऐसे महान् व्यक्ति ही गुरु कहलाने योग्य हैं धुधरे नहीं। असद्गुरु के पास ती मान-काम की आस्ता ही नहीं है, उस्टे उनकी धिक्का से विपत्ति की ही सम्भावना रहती है क्योंकि गुरु केवल धिक्का या उपदेशक ही नहीं है, धिक्का देना तो उनके कर्तव्य का एक बहुत ही मामूली अंश है। हिन्दुओं का विश्वास है कि गुरु ही धिक्क में सन्नि का संचार करते हैं। इस बात की समझने के लिए वह जगद् का ही एक दृष्टान्त के लो। मानो किसी ने रोग-निवारक टीका नहीं किया ऐसी अवस्था में उसके शरीर के अन्दर रोग के दूषित कोटाजुओं के प्रवेश कर जाने की बहुत आशंका है।

उसी प्रकार असद्गुरु से शिक्षा लेने में भी बुराइयों के सीख लेने की बहुत कुछ आशंका है। इसलिए भारत से इस कुलगुरु-प्रथा को एकदम उठा देना अत्यन्त आवश्यक हो रहा है। गुरु का काम व्यवसाय न हो जाय, इसे रोकने की चेष्टा करनी होगी, क्योंकि यह एकदम शास्त्र-विरुद्ध है। किसी भी आदमी को अपने को गुरु नहीं बतलाना चाहिए और कुलगुरु-प्रथा के कारण जो वर्तमान परिस्थिति है, उसका समर्थन भी नहीं करना चाहिए।

खाद्याखाद्य-विचार के सम्बन्ध में स्वामी जी ने कहा कि आजकल खान-पान के विषय में जिन कठोर नियमों पर जोर दिया जाता है, वे अधिकांश छिछले हैं। जिस उद्देश्य से इन नियमों को आरम्भ में चलाया गया था, उस उद्देश्य की सिद्धि नहीं हो पाती। खाद्य वस्तुओं को स्पर्श करने का अधिकार किसे है?—यह प्रश्न विशेष ध्यान देने योग्य है, क्योंकि इसमें एक बड़ा भारी मनोवैज्ञानिक रहस्य छिपा हुआ है। पर साधारण मनुष्यों के दैनिक जीवन में उतनी सावधानी रखना अत्यन्त कठिन ही नहीं, असम्भव भी है। जिन लोगों ने केवल धर्म के लिए ही अपने जीवन को उत्सर्ग कर दिया है, ये नियम केवल उन्हींके लिए पालनीय हैं, पर इसकी जगह हर एक आदमी के लिए इन नियमों का पालन करना आवश्यक बतकर बड़ी भारी गलती की गयी है। क्योंकि सर्वसाधारण में अधिकतर ऐसे ही लोग हैं जो जड़ जगत् के सुखों से तृप्त नहीं हुए हैं, और ऐसे अतृप्त लोगों पर जबरदस्ती आध्यात्मिकता लाने की चेष्टा व्यर्थ है।

भक्तों के लिए जो उपासना पद्धतियाँ हैं, उनमें मनुष्य रूप की उपासना ही सबसे उत्तम है। वास्तव में यदि किसी रूप की पूजा करनी है, तो अपनी हैसियत के अनुसार प्रतिदिन छ या बारह दरिद्रों को अपने घर लाकर, उन्हें नारायण समझकर उनकी सेवा करना अच्छा है। मैंने कितनी जगहों में प्रचलित दान की प्रथाएँ देखी हैं, पर उनसे वैसे कोई सुफल होते नहीं देखा है। इसका कारण यही है कि वह दान की क्रिया यथोचित भाव से अनुष्ठित नहीं है। 'अरे! यह ले जा'—इस प्रकार के दान को दान या दया-धर्म का अनुष्ठान नहीं कह सकते। यह तो हृदय के अहंकार का परिचायक है। इस प्रकार दान देनेवाले का उद्देश्य यही रहता है कि लोग जानें या समझें कि वह दया-धर्म का अनुष्ठान कर रहा है। हिन्दुओं को यह जानना चाहिए कि स्मृतियों के मत में दान ग्रहण करनेवालों की अपेक्षा दान देनेवाला छोटा समझा जाता है। ग्रहण करनेवाला ग्रहण करते समय साक्षात् नारायण समझा जाता है। अतः मेरे मत में यदि इस प्रकार की नयी पूजा-पद्धति प्रचलित की जाय, तो बड़ा अच्छा हो—कुछ दरिद्रनारायण, अवनारायण या क्षुवात्तनारायण को प्रतिदिन प्रतिगृह में लाना एवं प्रतिमा की

जिस प्रकार पूजा की जाती है, उसी प्रकार उसकी भी भोजन-वस्त्रादि का हाथ पूजा करना। मैं किसी प्रकार की उपासना या पूजा-प्रवृत्ति की न तो निन्दा करता हूँ और न किसी को बुरा बताता हूँ बल्कि मरे कहने का सारांस यही है कि इस प्रकार की माध्यम-पूजा सर्वविधा श्रेष्ठ पूजा है, और भारत के लिए इसी पूजा की सबसे अधिक आवश्यकता है।

अन्त में स्वामी जी ने भक्ति की तुम्हना एक त्रिकोण के साथ की। उन्होंने कहा कि इस त्रिकोण का पहला कोण यह है कि भक्ति या प्रेम कोई प्रतिदान नहीं चाहता। प्रेम में भय नहीं है, यह उसका दूसरा कोण है। पुरस्कार या प्रतिदान पाने के उद्देश्य से प्रेम करना मित्रादी का धर्म है। व्यवसायी का धर्म है, सत्त्व धर्म के साथ उसका बहुत ही कम सम्बन्ध है। कोई मित्रुक न बने क्योंकि वैसे होना नास्तिकता का चिह्न है। 'जो आबनी रहता तो है गंगा के तीर पर किन्तु पानी पीने के लिए कुन्दा खोदता है वह मूर्ख नहीं तो और क्या है? —बड़ वस्तु की प्राप्ति के लिए भगवान् से प्रार्थना करना भी ठीक वैसे ही है। भक्त को भगवान् से सवा इस प्रकार कहने के लिए तैयार रहना चाहिए—'प्रभो मैं तुमसे कुछ भी नहीं चाहता मैं तुम्हारे लिए अपना सब कुछ अर्पित करने को तैयार हूँ। प्रेम में भय नहीं रहता। क्या तुमने नहीं देखा है कि यह चकती हुई कमजोर हृदय वाली स्त्री एक छोटे से कुत्ते के भौंकने से भाग बड़ी होती है घर में बुझ जाती है? बुझने बिल नहीं उसी रास्ते से जा रही है। आज उसकी गोद में एक छोटा सा बच्चा भी है एकाएक किसी घर में निकलकर उस पर चोट करना आता है। ऐसी अवस्था में भी तुम उसे अपनी जान बचाने के लिए मागते या घर के अन्दर बुझते देखोगे? नहीं कदापि नहीं। आज अपने नन्हें बच्चे की रक्षा के लिए, यदि आवश्यकता पड़े तो वह घोर के मुँह में बुझने से भी बाध न आयेगी। अब इस त्रिकोण का तीसरा कोण यह है कि प्रेम ही प्रेम का अर्थ है। अन्त में भक्त इसी भाव पर आ पहुँचता है कि स्वयं प्रेम ही भगवान् है। और बाकी सब कुछ अर्थ है। भगवान् का अस्तित्व प्रामाणिक करने के लिए मनुष्य को अब और कहाँ जाना होगा? इस प्रत्यक्ष संसार में जो कुछ भी प्रार्थन है उसके अन्दर सर्वविधा स्पष्ट विद्यात्मी बेने-बाळा तो भगवान् ही है। वही वह सक्ति है जो सूर्य चन्द्र और तारों को बुझाती एव चकती है तथा स्त्री-पुरुषों में सभी जीवों में सभी वस्तुओं में प्रकाशित हो रही है। बड़ सक्ति के राज्य में मध्याकर्षण सक्ति के रूप में वही विद्यमान है प्रत्येक स्थान में प्रत्येक परमाणु में वही वर्तमान है—सर्वत्र उसकी ज्योति चिह्नकी हुई है। वही अमन्त प्रेमस्वरूप है संसार की एकमात्र संभावनी सक्ति है और वही सर्वत्र प्रत्यक्ष विद्यात्मी दे रहा है।

## वेदान्त

(१२ नवम्बर, १८९७ को लाहौर में दिया गया व्याख्यान)

जगत् दो हैं जिनमे हम वसते हैं—एक वहिर्जगत् और दूसरा अन्तर्जगत्। अति प्राचीन काल से ही मनुष्य इन दोनों भूमियो मे समानान्तर रेखाओ की तरह वरावर उन्नति करते आये हैं। खोज पहले वहिर्जगत् मे ही शुरू हुई। मनुष्यो ने पहले पहल दुरूह समस्याओ के उत्तर बाह्य प्रकृति से पाने की चेष्टा की। प्रथमतः मनुष्यो ने अपने चारो ओर की वस्तुओ से सुन्दर और उदात्त की तृष्णा निवृत्त करनी चाही। वे अपने को और अपने सभी भीतरी भावो को स्थूल भाषा मे प्रकाशित करने के लिए प्रवृत्त हुए, तथा उन्हे जो सब उत्तर मिले, ईश्वर-तत्त्व और उपासना-तत्त्व के जो सब अति अद्भुत सिद्धान्त उन्हे प्राप्त हुए, और उस शिव-सुन्दर का उन्होंने जो उच्छ्वासमय वर्णन किया, ये सभी वास्तव मे अति अपूर्व हैं। वहिर्जगत् से निस्सन्देह महान् भावो का आविर्भाव हुआ। परन्तु बाद मे मनुष्य जाति के लिए जो अन्य जगत् उन्मुक्त हुआ, वह और भी महान्, और भी सुन्दर तथा अनन्त गुना विस्तृत था। वेदो के कर्मकांड-भाग मे हम घर्म के बडे ही आश्चर्यमय तत्त्वो का वर्णन पाते हैं। हम ससार की सृष्टि, स्थिति और प्रलय करनेवाले विधाता के सम्बन्ध के वहाँ अत्यन्त अद्भुत तत्त्व-समूह देखते हैं, ये सब हमारे सामने मर्मस्पर्शी भाषा मे रखे गये हैं। तुममे से अनेक को ऋग्वेद संहिता का वह श्लोक, जो प्रलय के वर्णन मे आया है, याद होगा। भावो को उद्दीप्त करनेवाला ऐसा उदात्त वर्णन शायद कभी किसीने नही किया। इन सबके होते हुए भी हम देखते हैं कि इनमे केवल वहिर्जगत् की ही महत्ता का चित्रण किया गया है, वह वर्णन स्थूल का है, इसमे कुछ जडत्व फिर भी लगा हुआ है। तथापि हम देखते हैं, जड और ससीम भाषा मे यह अससीम का ही वर्णन है। यह जड शरीर के अनन्त विस्तार का वर्णन है, किन्तु मन का नही, यह देश के अनन्तत्व का वर्णन है, किन्तु विचार का नही। इसलिए वेदो के दूसरे भाग मे, अर्थात् ज्ञानकाण्ड मे, हम देखते हैं, एक बिल्कुल ही भिन्न प्रणाली का अनुसरण किया गया है। पहली प्रणाली थी बाह्य प्रकृति मे विश्व-ब्रह्माण्ड के प्रकृत सत्य का अनुसन्धान, यह जड ससार से जीवन



की सभी गम्भीर समस्याओं की मीमांसा करने की चेष्टा थी। यथार्थ हिन्दुत्वही महिम्ना—‘यह हिमाक्षय पर्वत जिनकी महत्ता बतला रहा है। यह बड़ा ऊँचा विचार है अथवा किन्तु फिर भी भारत के लिए यह पर्याप्त नहीं था। भारतीय मन को इस पथ का परित्याग करना पड़ा था। भारतीय गवेषणा पूर्णतया बहिर्बन्ध को छोड़कर बूसरी और मुक्ती—सोज अन्तर्बन्ध में घुस हुई, अन्तर्बन्ध से बड़ से बेटन में आये। चारों ओर से यह प्रश्न उठने लगा ‘मृत्यु के पश्चात् मनुष्य का क्या हाल होता है? अस्तीत्यैके नाममस्तीति बीके (कठोपनिषद् १।१।२) —‘किसी किसी का कथन है कि मनुष्य की मृत्यु के बाद भी आत्मा का अस्तित्व रहता है और कोई कोई कहते हैं कि नहीं रहता है परन्तु इनमें कौन सा सत्य है? यहाँ हम देखते हैं एक बूसरी ही प्रजाती का अनुसरण किया गया है। भारतीय मन को बहिर्बन्ध से जो कुछ मिला था मिला चुका था परन्तु उससे इसे वृष्टि नहीं हुई। अनुसंधान के लिए वह और आगे बढ़ा। समस्या के समाधान के लिए अपने अपने में ही खोजा समायो तब यथार्थ उत्तर मिला।

वेदों के इस भाग का नाम है उपनिषद् या वेदान्त या आरम्भिक या रहस्य। यहाँ हम देखते हैं, धर्म बाहरी विस्मय से बिल्कुल अलग है यहाँ हम देखते हैं आध्यात्मिक विषयों का वर्णन बड़ की भाषा से नहीं हुआ आत्मा की भाषा से हुआ है। सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्त्वों के लिए तदनुकूल भाषा का व्यवहार किया गया है। यहाँ और कोई स्पष्ट भाष नहीं है यहाँ जन्म के विषयों से कोई समझौता नहीं है। हमारी आज की आस्था के पदे, उपनिषदों के और तथा साहसी महामना अपि निर्मम भाव से बिना समझौता किये ही मनुष्य जाति के लिए जैसे से जैसे तत्त्वों की घोषणा कर गये हैं जो कभी भी प्रचारित नहीं हुए। ये हमारे दैववाचियों में जन्हीको तुम्हारे जाने रहना चाहता हूँ। वेदों का ज्ञानकाण्ड एक विद्यालय महासागर है इसका बोझ ही अंध समस्या के लिए अनेक जन्मों की आवश्यकता है। उमानुज ने उपनिषदों के सम्बन्ध में यथार्थ ही कहा है कि वेदान्त वेदों का मुकुट है और अथमुच ही यह सर्वमान भारत की आधिकारिक है। वेदों के कर्मकाण्ड पर हिन्दुओं की बड़ी श्रद्धा है परन्तु हम जानते हैं मुणों तक मूर्ति के नाम से केवल उपनिषदों का ही जन्म लिया जाता था। हम जानते हैं, हमारे बड़े बड़े उच्च वर्णकारों ने—स्वात ही, चाहे वर्तमान या गौतम यहाँ तक कि सभी वर्णशास्त्रों के अन्तर्गत अज्ञान महापुरुष कपिल ने भी—जब अपने मन के समर्थन में प्रमाथों का लंघन करना चाहा तब उनमें से हर एक को उपनिषदों ही में अन्तर्गत मिले हैं और नहीं नहीं क्योंकि धारण सत्य केवल उपनिषदों ही में है।

कुछ समय ऐसे हैं जो किसी विशेष पथ से विशेष विदेश अन्तर्गतों और समयों

श्लोको का अर्थ लगाने में हमें अपने ऐसे भाव रखने की चेष्टा नहीं करनी चाहिए जो उनमें अभिप्रेत न थे। जब तुम अविचार-भेद का अपूर्व रहस्य समझोगे, तब श्लोको का यथार्थ अर्थ सहज ही तुम्हारी समझ में आ जायगा।

यह सच है कि सम्पूर्ण उपनिषदों का लक्ष्य एक है, कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति (मुडकोपनिषद् १।३)—‘वह कौन सी वस्तु है जिसे जान लेने पर सम्पूर्ण ज्ञान करतलगत हो जाता है?’ आजकल की भाषा में अगर कहा जाय तो यही कहना चाहिए कि उपनिषदों का उद्देश्य चरम एकत्व के आविष्कार की चेष्टा है, और भिन्नत्व में एकत्व की खोज ही ज्ञान है। हर एक विज्ञान इसी नींव पर प्रतिष्ठित है। मनुष्यों का सम्पूर्ण ज्ञान भिन्नत्व में एकत्व की खोज पर ही प्रतिष्ठित है। और, यदि दृश्य जगत् की थोड़ी सी घटनाओं में ही एकत्व के अनुसन्धान की चेष्टा क्षुद्र मानवीय विज्ञान का कार्य हो तो इस अपूर्व विचित्रना-सकुल विश्व के भीतर, हम जिसके नाम और रूपों में सहस्रधा वैभिन्न्य देख रहे हैं, जहाँ जड़ और चेतन में भेद वर्तमान है, जहाँ सभी चित्तवृत्तियाँ एक दूसरी से भिन्न हैं, जहाँ कोई रूप किसी दूसरे से नहीं मिलता, जहाँ प्रत्येक वस्तु अपर वस्तु से पृथक् है, एकत्व का आविष्कार करने का हमारा उद्देश्य कितना कठिन है! परन्तु इन विभिन्न स्तरों और अनन्त लोको के भीतर एकत्व का आविष्कार करना ही उपनिषदों का लक्ष्य है। दूसरी ओर हमें अरुन्वती न्याय का भी सहारा लेना चाहिए। यदि किसी को अरुन्वती नक्षत्र दिखलाना है तो पहले पासवाला उससे कोई बड़ा और उज्ज्वलतर नक्षत्र दिखलाकर उस पर देखनेवाले की दृष्टि स्थिर करनी चाहिए, इसके बाद छोटे नक्षत्र अरुन्वती का दिखलाना आसान होगा। इसी तरह सूक्ष्मतम ब्रह्मतत्त्व समझाने के लिए, दूसरे कितने ही स्थूल भावों के उपदेश देकर ऋषियों ने उच्च तत्त्व को समझाया है। इस कथन को प्रमाणित करने के लिए मुझे ज्यादा कुछ नहीं करना, केवल उपनिषदों को तुम्हारे सामने रख देना है, फिर तुम स्वयं समझ जाओगे। प्रायः प्रत्येक अध्याय द्वैतवाद या उपासना के उपदेश से आरम्भ होता है। पहले शिक्षा दी गयी है कि ईश्वर सत्कार का सृष्टिकर्ता है, संरक्षक है और अन्त में प्रत्येक वस्तु उसीमें विलीन हो जाती है, वही हमारा उपास्य है, वही शासक है, वही वहिर्प्रकृति और अन्तर्प्रकृति का प्रेरक है, फिर भी वह मानो प्रकृति के बाहर है। एक कदम और बढ़कर हम देखते हैं, वे ही आचार्य वतलाते हैं कि ईश्वर प्रकृति के बाहर नहीं, बल्कि प्रकृति में अन्तर्व्याप्त है। अन्त में ये दोनों भाव छोड़ दिये गये हैं, और जो कुछ है सब वही है—कोई भेद नहीं। तत्त्वमसि श्वेतकेतो—‘हे श्वेतकेतु, तुम वही (ब्रह्म) हो।’ अन्त में यही घोषणा की गयी कि जो समग्र जगत् के भीतर विद्यमान है वही मनुष्यों की

सम्प्रदाय की नींव डाली है, उसे इन तीनों प्रस्तावों को ग्रहण करना ही पड़ा और उन पर एक नये भाव्य की रचना करनी पड़ी। अतः बेदान्त को उपनिषदों के किसी एक ही भाग में ईतवाद विशिष्टाईतवाद या अईतवाद के रूप में आवृत्त कर देना ठीक नहीं। जब कि बेदान्त से ये सभी मत निकले हैं तो उसे इन मतों की समष्टि ही कहना चाहिए। एक अईतवादी अपने को बेदान्ती कहकर परिचय देने का जितना अधिकारी है उतनाही रामानुज सम्प्रदाय के विशिष्टाईतवादी को भी है। परन्तु मैं कुछ और बड़कर कहना चाहता हूँ कि हिन्दू धर्म कहने से हम लोगों का बही अभिप्राय है जो वास्तव में बेदान्ती का है। मैं तुमसे कहता हूँ कि ये तीनों भारत में स्वरवादीय काक से प्रचलित हैं। तुम कदापि यह विश्वास न करो कि अईतवाद के आविष्कारक संकर थे। उनके जन्म का बहुत पहले ही से यह मत यहाँ था। वे केवल इसके अन्तिम प्रतिनिधियों में से एक थे। रामानुज के मत के लिए भी यही बात कहनी चाहिए। उनके भाव्य ही से यह सूचित हो जाता है कि उनके आविर्भाव के बहुत पहले से यह मत विद्यमान था। जो ईतवादी सम्प्रदाय अन्य सम्प्रदायों के साथ साथ भारत में वर्तमान हैं उन पर भी यही बात लागू होती है। और अपने बोड़े से ज्ञान के आचार पर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि ये सब मत एक दूसरे के विरोधी नहीं हैं।

जिस तरह हमारे पदचर्यात महान् उरु के क्रमिक उच्चाटन मात्र हैं जो संकीर्ण की तरह पिछले बीमे स्वरवाले परतों से उठते हैं और अन्त में समाप्त होते हैं अईत की बखामम्मीर ध्वनि में उसी तरह हम देखते हैं कि पूर्वोक्त तीनों मतों में भी मनुष्य मन उरु से उरुतर आवर्ष की और अपतर हुआ है और अन्त में सभी मत अईतवाद के उरुतम सोपान पर पहुँचकर एक बहुमुत एकत्र में परिचमाप्त हुए हैं। मत ये तीनों परस्पर विरोधी नहीं हैं। इतनी ओर, मुझे यह कहना पड़ता है कि बहुत लोग इस भ्रम में पड़े हैं कि ये तीनों मत परस्पर विरोधी हैं। हम देखते हैं अईतवादी आचार्य जिन धर्मोक्तों में अईतवाद की ही धिजा दी गयी है, उन्हें तो ज्यों का त्यों रप बैठे हैं, परन्तु जिनमें ईत या विशिष्टाईतवाद के उरुसे हैं उन्हें उरुवस्ती अईतवाद की ओर बसीड साते हैं, उनका भी अईत अर्थ कर डालते हैं। उरु अईतवादी आचार्य अईतारमक धर्मोक्तों का ईतवाद का अर्थ ग्रहण करने की चेष्टा करते हैं। वे हमारे पूज्य आचार्य हैं यह मैं मानता हूँ परन्तु बीबा बाध्यागुदोरपि भी एक प्रसिद्ध बाक्य है। मेरा मत है कि केवल इसी एक विषय में उन्हें अर्थ हुआ है। ह्ये शारदों की विरुत व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं है। बाक्य विषयों में हमें किसी प्रकार की बेईमानी का उदात्त लेकर अर्थ की व्याख्या करने की उरुत नहीं है। व्याकरण के शीघ्र-यैव विधान से क्या आगरा।

है—प्रक्षेपण। प्रलय होने पर जगत्-प्रपञ्च सूक्ष्मातिसूक्ष्म होकर अपनी प्राथमिक अवस्था को प्राप्त होता है, कुछ काल उसी शान्त अवस्था में रहकर फिर विकसित होता है। यही सृष्टि है। अच्छा, तो फिर इन प्राणरूपिणी शक्तियों का क्या होता है? वे आदि-प्राण से मिल जाती हैं। यह प्राण उस समय बहुत कुछ गतिहीन हो जाता है, परन्तु इसकी गति बिल्कुल ही बन्द नहीं हो जाती। वैदिक सूक्तों के आनीदवातम्—‘वह गतिहीन भाव से स्पन्दित हुआ था’—इस वाक्य से इसी तत्त्व का वर्णन किया गया है। वेदों के कितने ही पारिभाषिक शब्दों का अर्थ-निर्णय करना अत्यन्त कठिन काम है। उदाहरण के रूप में हम यहाँ ‘वात’ शब्द को ही लेते हैं। कभी कभी तो इससे वायु का अर्थ निकलता है और कभी कभी गति सूचित होती है। इन दोनों अर्थों में बहुधा लोगो को भ्रम हो जाता है। अतएव इस पर ध्यान रखना चाहिए। अच्छा, तो उस समय भूतों की क्या अवस्था होती है? शक्तियाँ सर्वभूतों में ओतप्रोत हैं। वे उस समय आकाश में लीन हो जाती हैं, इस आकाश में फिर भूतसमूहों की सृष्टि होती है। यह आकाश ही आदि-भूत है। यही आकाश प्राण की शक्ति से स्पन्दित होता रहता है, और प्रत्येक नयी सृष्टि के साथ ज्यों ज्यों प्राण का स्पन्दन द्रुत होता जाता है, त्यों त्यों आकाश की तरफें क्षुब्ध होती हुई चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र आदि के आकार धारण करती जाती हैं। हम पढ़ते हैं, यदिद किञ्च जगत् सर्वं प्राण एजति निःसृतम्। (ऋग्वेद, १०।१२९।२)—‘इस ससार में जो कुछ है, प्राण के कम्पित होने से निःसृत होता है।’ यहाँ ‘एजति’ शब्द पर ध्यान दो, क्योंकि ‘एज्’ घातु का अर्थ है कांपना, ‘निःसृतम्’ का अर्थ है प्रक्षिप्त और ‘यदिदम् किञ्च’ का अर्थ है इस ससार में जो भी कुछ।

जगत्-प्रपञ्च की सृष्टि का यह थोड़ा सा आभास दिया गया। इसके विषय में बहुत सी छोटी छोटी बातें कही जा सकती हैं। उदाहरणस्वरूप किस तरह सृष्टि होती है, किस तरह पहले आकाश की ओर आकाश से दूसरी वस्तुओं की सृष्टि होती है, आकाश में कम्पन होने पर वायु की उत्पत्ति कैसे होती है, आदि कितनी ही बातें कहनी पड़ेंगी। परन्तु यहाँ एक बात पर ध्यान रखना चाहिए, वह यह कि सूक्ष्मतर तत्त्व से स्थूलतर तत्त्व की उत्पत्ति होती है, सबसे पीछे स्थूल भूत की सृष्टि होती है। यही बाह्यतम वस्तु है, और इसके पीछे सूक्ष्मतर भूत विद्यमान हैं। यहाँ तक विश्लेषण करने पर भी, हमने देखा कि सम्पूर्ण ससार केवल दो तत्त्वों में पर्यवसित किया गया है, अभी तक चरम एकत्व पर हम नहीं पहुँचे। शक्ति-तत्त्व के एकत्व को प्राण, और जड-तत्त्व के एकत्व को आकाश कहा गया है। क्या इन दोनों में भी कोई एकत्व पाया जा सकता है? ये भी क्या एक तत्त्व में पर्यवसित किये जा सकते

आत्मा में भी विराजमान है। यहाँ किसी तरह की रियायत नहीं यहाँ बूझों के मतामत की परवाह नहीं की गयी। यहाँ सत्य निराकरण सत्य निर्भीक भाषा में प्रचारित किया गया है। आजकल जब महान् सत्य का उसी निर्भीक भाषा से प्रचार करने में हमें हठदिब न करना चाहिए, और ईस्वर की कृपा से मैं स्वयं तो कम से कम उसी प्रकार का एक निर्भीक प्रचारक होने की आशा रखता हूँ।

अब मैं पूर्व प्रयोग का अनुसरण करते हुए दो बातों को समझाता हूँ। एक है मनस्तापिक पक्ष जो सभी वैद्वान्त्वियों का सामान्य विषय है, और दूसरा है पद-सृष्टि पक्ष। पहले मैं पद-सृष्टि पक्ष पर विचार करूँगा। हम देखते हैं आजकल आधुनिक विज्ञान के विभिन्न विभिन्न आविष्कार हमें आकस्मिक रूप से चमत्कृत कर रहे हैं, और स्वप्न में भी अकल्पनीय अद्भुत चमत्कारों को हमारे सामने रखकर हमारी आँखों को चकाचौंध कर देते हैं। परन्तु वास्तव में इन आविष्कारों का अविनाश बहुत पहले के आविष्कृत सत्त्वों का पुनराविष्कार मात्र है। सभी हाथ की बात है, आधुनिक विज्ञान ने विभिन्न शक्तियों में एकत्र का आविष्कार किया है। उसने सभी सभी मह आविष्कृत किया कि ताप विद्युत् चुम्बक आदि विभिन्न विभिन्न नामों से परिचित जितनी शक्तियाँ हैं, वे एक ही शक्ति में परिवर्तित की जा सकती हैं। अब दूसरे उन्हें चाहे जिन नामों से पुकारते रहें विज्ञान उनके लिए एक ही नाम व्यवहार में लाता है। यही बात संस्कृत में भी पायी जाती है। यद्यपि वह एक प्राचीन ग्रन्थ है, तथापि उसमें भी शक्ति विषयक ऐसा ही सिद्धान्त दिलाता है जिसका मैंने उल्लेख किया है। जितनी शक्तियाँ हैं, चाहे तुम उन्हें मुस्ताकर्षण कहो चाहे आकर्षण या विकर्षण कहो अबचा ताप कहो, या विद्युत् के सब उसी शक्ति-तरंग के विभिन्न रूप हैं। चाहे मनुष्यों के बाह्य इन्द्रियों का व्यापार कहो या उनके अन्तःकरण की चिन्तन-शक्ति ही कहो है सब एक ही शक्ति से उद्भूत जिसे प्राण-शक्ति कहते हैं। अब यह प्रश्न पठ सकता है कि प्राण क्या है? प्राण स्पन्दन या कम्पन है। जब सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का विक्रम इसके चिरन्तन स्वरूप में हो जाता है, तब वे अनन्त शक्तियाँ नहीं बनी जाती हैं? क्या तुम सोचने हो कि इनका भी स्रोत ही प्राण है? नहीं बल्कि नहीं। यदि चिन्तन-शक्ति विन्तुम नष्ट हो जाय तो फिर अविष्य में अमतरंग का उत्पादन कैसे और किम आकार पर हो सकता है? क्योंकि यदि तो तरंगकार संभव है जो उठती है विरती है फिर उगती है फिर विरती है। इसी जगत्-अर्थ के विनाश को हमारे शास्त्रों में 'मृष्टि' कहा गया है। परन्तु, प्यास रहे 'मृष्टि' अर्थात् वा (creation) नहीं। अर्थात् में मंगल्य चरणों का पदार्थ अनुवाद नहीं होता। यही मृष्टिज ने मैं मंगल्य के चार अर्थों में व्याख्या करता हूँ। 'मृष्टि' शब्द का आधुनिक अर्थ

है—प्रक्षेपण। प्रलय होने पर जगत्-प्रपञ्च सूक्ष्मातिसूक्ष्म होकर अपनी प्राथमिक अवस्था को प्राप्त होता है, कुछ काल उसी शान्त अवस्था में रहकर फिर विकसित होता है। यही सृष्टि है। अच्छा, तो फिर इन प्राणरूपिणी शक्तियों का क्या होता है? वे आदि-प्राण से मिल जाती हैं। यह प्राण उस समय बहुत कुछ गतिहीन हो जाता है, परन्तु इसकी गति विल्कुल ही बन्द नहीं हो जाती। वैदिक सूक्तों के आनीदवातम्—‘वह गतिहीन भाव से स्पन्दित हुआ था’—इस वाक्य से इसी तत्त्व का वर्णन किया गया है। वेदों के कितने ही पारिभाषिक शब्दों का अर्थ-निर्णय करना अत्यन्त कठिन काम है। उदाहरण के रूप में हम यहाँ ‘वात’ शब्द को ही लेते हैं। कभी कभी तो इससे वायु का अर्थ निकलता है और कभी कभी गति सूचित होती है। इन दोनों अर्थों में बहुधा लोगों को भ्रम हो जाता है। अतएव इस पर ध्यान रखना चाहिए। अच्छा, तो उस समय भूतों की क्या अवस्था होती है? शक्तियाँ सर्वभूतों में ओतप्रोत हैं। वे उस समय आकाश में लीन हो जाती हैं, इस आकाश से फिर भूतसमूहों की सृष्टि होती है। यह आकाश ही आदि-भूत है। यही आकाश प्राण की शक्ति से स्पन्दित होता रहता है, और प्रत्येक नयी सृष्टि के साथ ज्यों ज्यों प्राण का स्पन्दन द्रुत होता जाता है, त्यों त्यों आकाश की तरंगें क्षुब्ध होती हुई चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र आदि के आकार धारण करती जाती हैं। हम पढ़ते हैं, यदिदं किञ्च जगत् सर्वं प्राण एजति निःसृतम्। (ऋग्वेद, १०।१२९।२)—‘इस ससार में जो कुछ है, प्राण के कम्पित होने से निःसृत होता है।’ यहाँ ‘एजति’ शब्द पर ध्यान दो, क्योंकि ‘एज्’ धातु का अर्थ है काँपना, ‘निःसृतम्’ का अर्थ है प्रक्षिप्त और ‘यदिदम् किञ्च’ का अर्थ है इस ससार में जो भी कुछ।

जगत्-प्रपञ्च की सृष्टि का यह थोड़ा सा आभास दिया गया। इसके विषय में बहुत सी छोटी छोटी बातें कही जा सकती हैं। उदाहरणस्वरूप किस तरह सृष्टि होती है, किस तरह पहले आकाश की ओर आकाश से दूसरी वस्तुओं की सृष्टि होती है, आकाश में कम्पन होने पर वायु की उत्पत्ति कैसे होती है, आदि कितनी ही बातें कहनी पड़ेंगी। परन्तु यहाँ एक बात पर ध्यान रखना चाहिए, वह यह कि सूक्ष्मतर तत्त्व से स्थूलतर तत्त्व की उत्पत्ति होती है, सबसे पीछे स्थूल भूत की सृष्टि होती है। यही बाह्यतम वस्तु है, और इसके पीछे सूक्ष्मतर भूत विद्यमान हैं। यहाँ तक विश्लेषण करने पर भी, हमने देखा कि सम्पूर्ण ससार केवल दो तत्त्वों में पर्यवसित किया गया है, अभी तक चरम एकत्व पर हम नहीं पहुँचे। शक्ति-तत्त्व के एकत्व को प्राण, और जड़-तत्त्व के एकत्व को आकाश कहा गया है। क्या इन दोनों में भी कोई एकत्व पाया जा सकता है? ये भी क्या एक तत्त्व में पर्यवसित किये जा सकते

है? हमारा आधुनिक विज्ञान यहाँ मूक है, वह किसी तरह की मीमांसा नहीं कर सका। और यदि उसे इसकी मीमांसा करनी ही पड़े तो जैसे उसने प्राचीन पुस्तों की तरह आनाथ और प्राचीनों का आधिपत्य किया है, उसी तरह उनके मार्ग पर उसे जाने भी बसना होगा।

बिस एक तरह से आनाथ और प्राण की सृष्टि हुई है वह सर्वव्यापी नियुक्त तत्व है जो पुराणों में ब्रह्मा अतुरानन ब्रह्मा के नाम से परिचित है और मनस्तत्त्व के अनुसार बिसको 'महत्' भी कहा जाता है। यहीं उन दोनों तत्वों का मेल होता है। जिसे मन कहते हैं वह मस्तिष्क बाल में फँसा हुआ उसी महत् का एक छोटा सा भंस है और मस्तिष्क बाल में फँसे हुए संसार के सामूहिक मनों का नाम समष्टि महत् है। परन्तु बिस्सेपन को जाने भी अपसर होना है यह अब भी पूर्ण नहीं है। हममें से हर एक मनुष्य मानो एक झुर्र ब्रह्माण्ड है और सम्पूर्ण जगत् बिस्व ब्रह्माण्ड है। जो कुछ स्पष्टि में हो रहा है वही समष्टि में भी होता है—जब पियडे तथा ब्रह्माण्डे। यह बात सहज ही हमारी समझ में आ सकती है। यदि हम अपने मन का बिस्सेपन कर सकते तो समष्टि मन में क्या होता है इसका भी बहुत कुछ निश्चित अनुमान कर सकते। अब प्रश्न यह है कि वह मन है क्या चीज? इस समय पारबाल्य बेशों में भौतिक विज्ञान की वैसे ही उत्तम प्रति हो रही है और गरीबिज्ञान बिस तरह बीरे बीरे प्राचीन बनों के एक के बाद दूसरे दुर्ग पर अपना अधिकार बना रहा है जैसे बैसते हुए पारबाल्यबासियों को कोई टिकाऊ आभार नहीं मिस रहा है क्योंकि आधुनिक सरीरविज्ञान में पब पब पर मन की मस्तिष्क के साथ अनिसता बैसकर भी बड़ी उल्लान में पड़ गये हैं परन्तु सारठबर्ष में हम कोय यह तत्व पहले ही से जानते हैं। हिन्दू बाळक को पहले ही यह तत्व सीखना पड़ता है कि मन अइ पबार्थ है परन्तु सूक्ष्मतर अइ है। हमारा यह जो स्कुल सरीर है, इसके परबाल् सूक्ष्म सरीर अचवा मम है। यह भी अइ है केवल सूक्ष्मतर अइ है परन्तु यह आत्मा नहीं।

मैं इस 'आत्मा' सव्व का अंग्रेजी में अनुबाद नहीं कर सकता कारण यूरोप में 'आत्मा' सव्व का सौठक कोई भाव ही नहीं अतएव इस सव्व का अनुबाद नहीं किया जा सकता। अर्मेन शार्डनिक इस 'आत्मा' सव्व का सेल्ल (self) सव्व से अनुबाद करते हैं, परन्तु अब तक इस सव्व को सार्बभूमि भाग्यता प्राप्त न हो जाय तब तक इसे व्यवहार में लाना अचम्भव है। अतएव उसे सेल्ल (self) कहो जाइे कुछ और कहो हमारी आत्मा के सिवा यह और कुछ नहीं है। यही आत्मा मनुष्य के भीतर सवार्थ मनुष्य है। यही आत्मा अइ को अपने यत्र के रूप में अचवा मनोविज्ञान की भाषा में कहो तो अपने अन्त करण के रूप में बकाली किण्टी है और मन अन्तदित्रियों की सहायता से सरीर की वृथमान बाह्य इन्द्रियों पर काम करता

है। अस्तु, यह मन है क्या ? अभी हाल में ही पार्श्वचाय दार्शनिक यह जान सके हैं कि नेत्र वास्तव में दर्शनेन्द्रिय नहीं है, किन्तु यथार्थ इन्द्रिय इनके पीछे वर्तमान है, और यदि यह नष्ट हो जाय तो सहस्रलोचन इन्द्र की तरह चाहे मनुष्य की हज़ार आंखें हो, पर वह कुछ देख नहीं सकता। तुम्हारा दर्शन यह स्वतः सिद्ध सिद्धान्त लेकर आगे बढ़ता है कि दृष्टि का तात्पर्य वास्तव में बाह्य दृष्टि से नहीं, यथार्थ दृष्टि अन्तरिन्द्रिय की, भीतर रहनेवाले मस्तिष्क के केन्द्रसमूहों की है। तुम चाहे जिस नाम से पुकारो, परन्तु इन्द्रिय शब्द से हमारी नाक, कान आंखें नहीं सिद्ध होती। और इन इन्द्रियसमूहों की ही समष्टि, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार के साथ मिलकर अंग्रेज़ी में माइण्ड (mind) नाम से पुकारी जाती है। और यदि आधुनिक शरीर-वैज्ञानिक तुमसे आकर कहें कि मस्तिष्क ही माइण्ड (mind) है, और वह मस्तिष्क ही विभिन्न सूक्ष्म अवयवों से गठित है तो तुम्हारे लिए डरने का कोई कारण नहीं। उनसे तुम तत्काल कह सकते हो कि हमारे दार्शनिक बराबर यह बात जानते हैं, यह हमारे धर्म के प्रथम मुख्य सिद्धान्तों में से एक है।

खैर, इस समय तुम्हें समझना होगा कि मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार आदि शब्दों के क्या अर्थ हैं। सबसे पहले हम चित्त की मीमांसा करें। चित्त वास्तव में अन्तःकरण का मूल उपादान है, यह महत् का ही अंश है। विभिन्न अवस्थाओं के साथ मन का ही एक साधारण नाम चित्त है। उदाहरणार्थ ग्रीष्मकाल की उस स्थिर और शान्त झील को लो जिस पर एक भी तरंग नहीं है। सोचो, किसीने उस पर एक पत्थर फेंका। तो उससे क्या होगा ? पहले, पानी पर जो आघात किया गया उससे एक क्रिया हुई, इसके पश्चात् पानी उठकर पत्थर की ओर प्रतिक्रिया करने लगा और उसी प्रतिक्रिया ने तरंग का आकार धारण किया। पहले पहल पानी ज़रा कांप उठता है, उसके बाद ही तरंग के आकार में प्रतिक्रिया होती है। इस चित्त को झील की तरह समझो, और बाहरी वस्तुएँ उस पर फेंके गये प्रस्तर खड हैं। जब कभी वह इन्द्रियों की सहायता से किसी बहिर्वस्तु के सस्पर्श में आता है, बहिर्वस्तुओं को भीतर ले जाने के लिए इन इन्द्रियों की ज़रूरत होती है, तभी एक कम्पन उत्पन्न होता है। वह मन है—सकल्प-विकल्पात्मक। इसके बाद ही एक प्रतिक्रिया होती है, वह निश्चयात्मिका बुद्धि है, और इस बुद्धि के साथ साथ अहंज्ञान और बाहरी वस्तु का बोध पैदा होता है। जैसे हमारे हाथ पर मच्छर ने बैठकर डक मारा, सवेदना हमारे चित्त तक पहुँची, चित्त ज़रा कांप उठा—हमारे मनोविज्ञान के मत से वही मन है। इसके बाद एक प्रतिक्रिया उठी और साथ ही साथ हमारे भीतर यह भाव पैदा हुआ कि हमारे हाथ में मच्छर काट रहा है, इसे भगाना चाहिए। इसी प्रकार झील में पत्थर फेंके जाते हैं। परन्तु इतना ज़रूर समझना होगा कि झील पर जितने



आवाज होते हैं सब बाहर से आते हैं परन्तु मन की हीन में बाहर से भी आवाज आ सकते हैं और भीतर से भी । भिन्न और उसकी इन भिन्न भिन्न अवस्थाओं का नाम ही अन्तःकरण है ।

पहले जो कुछ कहा गया उसके साथ एक और भी बात समझनी होगी । उसके अर्थात् समझने में हम लोगों को विषय सुनिश्चिता होगी । तुममें से हर एक ने मुक्ता अवस्था ही देखी होगी और तुममें से अनेक को माकूम भी होया कि मुक्ता किस तरह बनती है । व्यक्ति (जीव) के भीतर मूलि अथवा माकूम की कविका पढ़कर उसे उत्तेजित करती रहती है और व्यक्ति की वैह इस उत्तेजना की प्रतिक्रिया करते हुए उस छोटी सी शक्त की रज को अपने शरीर से निकले हुए रस से ढकती रहती है । वही कविका एक निरिष्ट आकार को प्राप्त कर मुक्ता के रूप में परिवर्त होती है । यह मुक्ता जिस तरह निर्मित होती है, हम सम्पूर्ण संसार को उसी तरह स्थापित करते हैं । बाहरी संसार से हम आवाज भर पाते हैं । यहाँ तक कि उस आवाज के प्रति चेतन्य होने में भी हमें अपने भीतर से ही प्रतिक्रिया करनी पड़ती है और जब हम प्रतिक्रियाशील होते हैं तब वास्तव में हम अपने मन के अंशविशेष को ही उस आवाज के प्रति प्रक्षेपित करते हैं और जब हमें उसकी जानकारी होती है, तब वह और कुछ नहीं उस आवाज से आकार प्राप्त हुआ अपना मन ही है । जो काग बहिर्जन्तु की बचार्थता पर विश्वास करना चाहती है, उन्हें यह बात माननी पड़ेगी और वाचकक इस शरीरविज्ञान की उत्पत्ति के विषयों में इस बात को किना माने हुएरा उपाय ही नहीं है । यदि बहिर्जन्तु को हम 'क' मान लें तो वास्तव में हम 'क + मन' को ही जानते हैं और इस जानकारी के भीतर मन का भाग इतना अधिक है कि उसने 'क' को सर्वोपर्य ढक लिया है और उस 'क' का बचार्थ रूप वास्तव में सर्वत्र अज्ञात और अज्ञेय है । अतएव यदि बहिर्जन्तु के नाम से कोई वस्तु ही भी तो वह सर्वत्र अज्ञात और अज्ञेय है । हमारे मन के द्वारा वह जिस चीज में शक्त ही जाती है, उसी स्थापित होती है, हम उसकी उसी रूप में जानते हैं । अन्तर्जन्तु के सम्बन्ध में भी यही बात है । हमारी आत्मा के सम्बन्ध में भी यह बात बिल्कुल सब उतपत्ती है । हम आत्मा की जानना चाहें तो उसे भी अपने मन के भीतर से समझेंगे तब हम आत्मा के सम्बन्ध में जो कुछ जानते हैं वह 'आत्मा + मन' के सिवा और कुछ नहीं । अर्थात् मन ही के द्वारा जानत मन ही के द्वारा स्थापित आत्मा को हम जानते हैं । इस तरह के सम्बन्ध में हम जाने चलकर कुछ और विवेचना करेगी यहाँ हमें धरना ही स्मरण रखना होगा ।

इसके परचात् हमें जो विषय समझना है, वह यह है कि यह वैह एक निरवच्छिन्न अज्ञ प्रवाह का नाम है । प्रसिद्ध हम इसमें नये नये पदार्थ जोड़ रहे हैं, फिर प्रसि-

क्षण इससे कितने ही पदार्थ निकलते जा रहे हैं। जैसे एक निरन्तर बहती हुई नदी है, उसकी सलिलराशि सदा ही एक स्थान से दूसरे स्थान को जा रही है, फिर भी हम अपनी कल्पना के बल से उसके समस्त अंशों को एक ही वस्तु मानकर उसे एक ही नदी कहते हैं। परन्तु वास्तव में नदी है क्या ? प्रतिक्षण नया पानी आ रहा है, प्रतिक्षण उसकी तटभूमि परिवर्तित हो रही है, प्रतिक्षण सारा वातावरण परिवर्तित होता जा रहा है। तब नदी है क्या ? वह इसी परिवर्तन-समष्टि का नाम है। मन के सम्बन्ध में भी यही बात है। बौद्धों ने इस सदा ही होनेवाले परिवर्तन को लक्ष्य करके महान् क्षणिक विज्ञानवाद की सृष्टि की थी। उसे ठीक ठीक समझना बड़ा कठिन काम है। परन्तु बौद्ध दर्शनो में यह मत सुदृढ युक्तियों द्वारा समर्थित और प्रमाणित हुआ है। भारत में यह वेदान्त के किसी किसी अंश के विरोध में उठ खड़ा हुआ था। इस मत को निरस्त करने की ज़रूरत आ पड़ी थी, और हम आगे देखेंगे, इस मत का खंडन करने में केवल अद्वैतवाद ही समर्थ हुआ था और कोई मत नहीं। आगे चलकर हम यह भी देखेंगे कि अद्वैतवाद के सम्बन्ध में लोगों की अनेक विचित्र धारणाएँ होने पर भी और अद्वैतवाद से लोगों के भयभीत होने पर भी, वास्तव में ससार का कल्याण इसीसे होता है, कारण इस अद्वैतवाद से ही सब प्रकार की समस्याओं का उत्तर मिलता है। द्वैतवाद और दूसरे जितने 'वाद' हैं उपासना आदि के लिए बहुत अच्छे हैं, उनसे मन को बड़ी तृप्ति होती है और हो सकता है कि उनसे मन के उच्च पथ पर बढ़ने में सहायता मिलती हो, परन्तु यदि कोई तर्कसंगत एवं धर्मपरायण होना चाहे तो उसके लिए एकमात्र गति द्वैतवाद ही है। अस्तु, मन को भी देह की तरह किसी नदी के सदृश समझना चाहिए। वह भी सदा एक ओर खाली और दूसरी ओर पूर्ण हो रहा है। परन्तु वह एकत्व कहाँ है, जिसे हम आत्मा कहते हैं ? हम देखते हैं कि हमारी देह और मन में इस तरह सदा ही परिवर्तन होने पर भी हमारे भीतर कोई ऐसी वस्तु है, जो अपरिवर्तनीय है, जिसके कारण हमारी वस्तु विषयक धारणाएँ अपरिवर्तनीय हैं। जब विभिन्न दिशाओं से आलोक-रश्मियाँ किसी यवनिका या दीवार अथवा किसी दूसरी अचल वस्तु पर पड़ती हैं, केवल तभी उनके लिए एकता-स्थापन संभव होता है, केवल तभी वे एक अखंड भाव की सृष्टि कर सकती हैं। मनुष्य के विभिन्न शारीरिक अवयवों में वह एकत्व कहाँ है, जिस पर पहुँचकर विभिन्न भावराशियाँ एकत्व और पूर्ण अखंडत्व को प्राप्त हो सकें ? इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह वस्तु कभी मन नहीं हो सकती, क्योंकि वह परिवर्तनशील है। इसलिए अवश्य वह ऐसी वस्तु है जो न देह है, न मन है, जिसमें कभी परिवर्तन नहीं होता, जिसमें आकर हमारे समस्त भाव, बाहर के समस्त विषय एक अखंड भाव में परिणत हो जाते हैं—यही वास्तव में हमारी आत्मा है।

और जब कि हम देख रहे हैं कि सम्पूर्ण जड़ पदार्थ जिसे तुम सूक्ष्म जड़ अथवा मग  
 चाहे जिस नाम से पुकारो परिवर्तनशील है और जब कि सम्पूर्ण स्वक जड़ या बाह्य  
 अथवा भी परिवर्तनशील है तो यह अपरिवर्तनीय वस्तु (आत्मा) कदापि जड़ पदार्थ  
 नहीं हो सकती अतएव वह भेदन-स्वभाव अविनाशी और अपरिचामी है।

इसके बाद एक दूसरा प्रश्न उठता है। यह प्रश्न बहिर्भंगत् सम्बन्धी पुरुषे  
 सृष्टि रचनावाचो (Design Theories) से निम्न है। इस संसार को देख कर  
 किसने इसकी सृष्टि की किसने जड़ पदार्थ बनाया आदि प्रश्नों से जिस सृष्टि-रचना-  
 वाद की उत्पत्ति होती है मैं उसकी बात नहीं कहूँ। मनुष्य की भीतरी प्रकृति  
 से सत्य को जानना मेरी मुख्य बात है। आत्मा के अस्तित्व के सम्बन्ध में जिस तरह  
 प्रश्न उठा जा यहाँ भी ठीक उसी तरह प्रश्न उठ रहा है। यदि यह ध्रुव सत्य माना  
 जाय कि हर एक मनुष्य में सटीर और मग से पृथक् एक अपरिवर्तनीय आत्मा  
 विद्यमान है तो यह भी मानना पड़ता है कि इन आत्माओं के भीतर कारण भाव  
 और सहानुभूति की एकता विद्यमान है। अन्धता हमारी आत्मा तुम्हारी आत्मा  
 पर कैसे प्रभाव डाल सकती है? परन्तु आत्माओं के बीच में रहनेवाली वह कौन  
 सी वस्तु है जिसके भीतर से एक आत्मा दूसरी आत्मा पर कार्य कर सकती है?  
 वह माध्यम कहाँ है जिसके द्वारा वह क्रियाशील होती है। मैं तुम्हारी आत्मा के  
 बारे में किस प्रकार कुछ भी अनुभव कर सकता हूँ? वह कौन सी वस्तु है, जो हमारी  
 और तुम्हारी आत्मा में सम्बन्ध है? अतः यहाँ एक दूसरी आत्मा के मानने की  
 धार्मिक आवश्यकता प्रतीत होती है क्योंकि वह आत्मा सम्पूर्ण भिन्न भिन्न आत्माओं  
 और जड़ वस्तुओं के भीतर से अपना कार्य करती है, वह संसार की अक्षय्य  
 आत्माओं में ओतप्रोत भाव से विद्यमान रहती है उसीभी सहायता से दूसरी  
 आत्माओं में भीवनी शक्ति का संचार होता है एक आत्मा दूसरी आत्मा को  
 प्यार करती है एक दूसरे से सहानुभूति रखती है या एक दूसरे के लिए कार्य करती  
 है। इती सर्वव्यापी आत्मा को परमात्मा कहते हैं। वह सम्पूर्ण संसार का प्रभु है  
 ईश्वर है। और जब कि आत्मा जड़ पदार्थ से नहीं बनी जब कि वह भेदन स्वरूप  
 है तो वह जड़ के नियमों का अनुसरण नहीं कर सकती—उसका विचार जड़ के  
 नियमानुसार नहीं किया जा सकता। अतएव वह अजेय अश्रमा अविनाशी तथा  
 अपरिचामी है।

मैत्रं विप्रयति शत्रुयानि मैत्रं शत्रुति वाचकः।  
 न चर्तं वसैरवयमपारो न घोषयति मास्तः॥  
 निरायं सर्वगतः एवाणुरचलोऽयं लज्जनाः॥  
 (गीता २।२३-२४)

—‘इस आत्मा को न आग जला सकती है, न कोई शस्त्र इसे छेद सकता है, न वायु इसे सुखा सकती है, न पानी गीला कर सकता है, यह आत्मा नित्य, सर्वगत, कूटस्थ और सनातन है।’ गीता और वेदान्त के अनुसार जीवात्मा विभु है, कपिल के मत में यह सर्वव्यापी है। यह सच है कि भारत में ऐसे अनेक सम्प्रदाय हैं जिनके मतानुसार यह जीवात्मा अणु है, किन्तु उनका यह भी मत है कि आत्मा का प्रकृत स्वरूप विभु है, केवल व्यक्त अवस्था में ही वह अणु है।

इसके बाद एक दूसरे विषय की ओर ध्यान देना चाहिए। बहुत सम्भव है, यह तुम्हें आश्चर्यजनक प्रतीत हो, परन्तु यह तत्त्व भी विशेष रूप से भारतीय है और हमारे सभी सम्प्रदायों में वह सामान्य रूप में विद्यमान है। इसीलिए मैं तुमसे इस तत्त्व की ओर ध्यान देने और उसे याद रखने का अनुरोध करता हूँ, कारण, यह सभी भारतीय विषयों की बुनियाद है। पाश्चात्य देशों में जर्मन और अंग्रेज पण्डितों द्वारा प्रचारित भौतिक विकासवाद तुम लोगों ने सुना होगा। उस मत के अनुसार वास्तव में सभी प्राणियों के शरीर अभिन्न हैं, जो भेद हम देखते हैं वे एक ही शृंखला की भिन्न भिन्न अभिव्यक्ति मात्र है और क्षुद्रतम कीट से लेकर श्रेष्ठतम सावु तक सभी वास्तव में एक हैं, एक ही दूसरे में परिणत हो रहा है तथा इसी तरह चलते हुए क्रमशः उन्नत होकर जीव पूर्णत्व प्राप्त कर रहे हैं। यह सिद्धान्त परिणामवाद के नाम से हमारे शास्त्रों में भी है। योगी पतञ्जलि कहते हैं, जात्यन्तरपरिणाम प्रकृत्यापूरात्। (पातञ्जल योगसूत्र, ४।२)—‘एक जाति, एक श्रेणी दूसरी जाति, दूसरी श्रेणी में परिणत होती है।’ ‘परिणाम’ का अर्थ है एक वस्तु का दूसरी वस्तु में परिवर्तित होना। परन्तु यहाँ यूरोपवालों से हमारा मतभेद कहाँ पर होता है? पतञ्जलि कहते हैं, प्रकृत्यापूरात्—प्रकृति के आपूरण से। यूरोपीय कहते हैं कि प्रतिद्वन्द्विता, प्राकृतिक और यौन-निर्वाचन आदि ही एक प्राणी को दूसरे प्राणी का शरीर ग्रहण करने के लिए बाध्य करते हैं, परन्तु हमारे शास्त्रों में इस जात्यन्तर-परिणाम का जो कारण बतलाया गया है, उसे देखते हुए यही कहना पड़ता है कि यहाँवालों ने यूरोपीयों से और भी अच्छा विश्लेषण किया है—इन्होंने वहाँवालों से और भी गहरे पहुँचने की कोशिश की है। ये कहते हैं, प्रकृत्यापूरात्—‘प्रकृति के आपूरण से।’ इसका क्या अर्थ है? हम यह मानते हैं कि जीवाणु क्रमशः उन्नत होते हुए बुद्ध बन जाता है, किन्तु साथ ही हमारी यह भी दृढ़ वारणा है कि किसी यन्त्र में यदि किसी न किसी तरह की शक्ति यथोचित मात्रा में न भर दी जाय तो उस यन्त्र से तदनुरूप कार्य सम्भव नहीं हो सकता। उस शक्ति का विकास चाहे जिस किसी रूप में हो, पर शक्तिसमष्टि की मात्रा सदा एक ही रहती है। यदि तुम्हें एक प्रान्त में शक्ति का विकास देखना है तो दूसरे प्रान्त में उसका प्रयोग करना होगा—वह

शक्ति किसी दूसरे आकार में प्रवासित भले ही हो परन्तु उसका परिमाण एक होना ही चाहिए। अतएव बुद्ध यदि परिचाम का एक प्राप्त हो तो दूसरे प्राप्त न होना ही आवश्यक ही बुद्ध के सबूत होगा। यदि बुद्ध कमविकसित परिचयत बीजानु ही तो वह बीजानु भी कमविकसित (अव्यक्त) बुद्ध ही है। यदि यह ब्रह्माण्ड अनन्त शक्ति का व्यक्त रूप हो तो जब इस ब्रह्माण्ड में प्रत्यक्ष की अवस्था होती है, तब भी दूसरे किसी आकार में उसी अनन्त शक्ति को विद्यमानता स्वीकार करनी पड़ेगी। इससे व्यक्त कुछ भी नहीं हो सकता। अतएव यह निश्चित है कि प्रत्येक आत्मा अनन्त है। हमारे पैरों तले रेंगते रहनेवाले कुछ कौट से लेकर महत्तम और उच्चतम सामुदायिक सब में वह अनन्त शक्ति अनन्त पवित्रता और समी गुण अनन्त परिमाण में मौजूद हैं। भेद केवल अविश्वसित की म्यूनाधिक मात्रा में है। कौट में उस महाशक्ति का बोझ ही विकास पाया जाता है तुममें उससे भी अधिक और किसी दूसरे वेबोपम पुरुष में तुमसे भी कुछ अधिक शक्ति का विकास हुआ है। भेद बत इतना ही है, परन्तु है समी में नहीं एक शक्ति। पतञ्जलि कहते हैं, तत्त्वोक्तिम्बु (पाठसम मोगसूत्र ४।१) — 'किञ्चान्त्रिषु तच्छु अपने बेट में पानी भरता है। किसी बलासम से वह अपने बेट का एक कोना काटकर पानी भर रहा है, और बस के बेग से बेट के वह जाने के मय से उसने माली का मुँह बन्द कर रखा है। जब पानी की बरूत पड़ती है, तब वह द्वार खोल देता है, पानी अपनी ही शक्ति से उसमें भर जाता है। पानी जाने के बेग को बंद करने की कोई आवश्यकता नहीं क्योंकि वह बलासम के बल में पहले ही से विद्यमान है। इसी तरह हममें से हर एक के पीछे अनन्त शक्ति अनन्त पवित्रता अनन्त सत्ता अनन्त वीर्य अनन्त आनन्द का भाण्डार परिपूर्ण है, केवल यह द्वार—बड़ी देहकमी द्वार हमारे वास्तविक रूप के पूर्ण विकास में बाधा पहुँचाता है।

और इस देह का संयोजन बिलगा ही उभय होता जाता है जितना ही तमोपुत्र रजोबुध में और रजोबुध उत्पन्नपुत्र में परिणत होता है, यह शक्ति और बुद्धता उतनी ही प्रकाशित होती रहती है, और इसीलिए भोजन-पान के सम्बन्ध में हम इतना सावधान रहते हैं। वह सम्भव है कि हम लोग मूल उत्पन्न भूल गये हों जैसे हम अपनी विवाह-प्रथा के सम्बन्ध में कह सकते हैं। यह विषय यद्यपि यहाँ अप्रासंगिक है, फिर भी हम बुध्याम्ब के तीर पर यहाँ इसका चिह्न कर सकते हैं। बरि कोई दूसरा अवसर मिलेगा तो मैं इन विषयों पर विशेष रूप से कर्तव्य परन्तु इस समय मैं तुमसे इतना ही कहता हूँ कि बिना मूल भावों से हमारी विवाह-प्रथा का प्रचलन हुआ है, उनके प्रचलन करने से ही प्रचार सम्भवा का संचार ही सकता है, किसी दूसरे उपाय से कदापि नहीं। बरि हर एक स्त्री-पुरुष को बिल किसी पुरुष या स्त्री

को पति अथवा पत्नी के रूप से ग्रहण करने की स्वाधीनता दी जाय, यदि व्यक्तिगत सुख, पाशव प्रकृति की परितृप्ति, समाज में बिना किसी बाधा के सचरित होती रहे, तो उसका फल अवश्य ही अशुभ होगा। उससे दुष्ट प्रकृति और आसुर स्वभाव की सन्तान उत्पन्न होगी। प्रत्येक देश में एक ओर मनुष्य इस तरह की पशु प्रकृति की सन्तान उत्पन्न कर रहे हैं, दूसरी ओर इनके दमन के लिए पुलिस की सख्या बढ़ा रहे हैं। इस तरह की सामाजिक व्याधि के प्रतिकार की चेष्टा में कोई फल नहीं होता, बल्कि समाज में इन दोषों की उत्पत्ति को कैसे रोका जाय, सन्तानों की सृष्टि किस उपाय से रोकी जाय, यह समस्या उठ खड़ी होती है। और जब तक तुम समाज में हो, तब तक तुम्हारे विवाह का प्रभाव समाज के प्रत्येक मनुष्य पर अवश्य ही पड़ेगा, अतएव तुम्हें किस तरह विवाह करना चाहिए, किस तरह का नहीं, इस पर तुम्हें आदेश देने का अधिकार समाज को है। भारतीय विवाह-प्रथा के पीछे इसी तरह के ऊँचे भाव हैं। जन्मपत्रों में वर-कन्या की जैसी जाति, गण आदि लिखे रहते हैं, अब भी उन्हींके अनुसार हिन्दू समाज में विवाह होते हैं और प्रसंग के अनुसार मैं यह भी कहना चाहता हूँ कि मनु के मत से कामोद्भूत पुत्र आर्य नहीं है। गर्भाधान से लेकर मृत्युपर्यन्त जिस सतान के सस्कार वैदिक विधि के अनुसार हो, वही वास्तव में आर्य है। आजकल सभी देशों में ऐसी आर्य सन्तान बहुत कम पैदा होती है, और इसीका फल है कि कलियुग नाम की दोषराशि की उत्पत्ति हो रही है। हम प्राचीन महान् आदर्शों को भूल गये हैं। यह सच है कि हम लोग इस समय इन भावों को पूर्ण रूप से कार्य में परिणत नहीं कर सकते, यह भी सम्पूर्ण सत्य है कि हम लोगों ने इन सब महान् भावों में से कुछ को हास्यास्पद बना दिया है। यह विल्कुल सच है और शोक का विषय है कि आजकल प्राचीन काल के से पिता-माता नहीं हैं, समाज भी अब पहले सा शिक्षित नहीं है, और प्राचीन समाज में जिस तरह समाज के सभी लोगों पर प्रीति रहती थी, अब वैसी नहीं रहती, किन्तु व्यावहारिक रूप में दोषों के आ जाने पर भी वह मूल तत्त्व बड़े ही महत्त्व का है, और यदि उसका कार्यान्वित होना सदोष है, यदि इसके लिए कोई खास तरीका नाकामयाव हुआ है, तो उसी मूल तत्त्व को लेकर ऐसी चेष्टा करनी चाहिए, जिससे वह अच्छी तरह काम में आ सके। मूल तत्त्व के नष्ट करने की चेष्टा क्यों? भोजन सम्बन्धी समस्या के लिए भी यही बात है। वह तत्त्व भी जिस तरह काम में लाया जा रहा है, वह निस्सन्देह बहुत ही खराब है, किन्तु इसमें उस तत्त्व का कोई दोष नहीं। वह सनातन है, वह सदा ही रहेगा, ऐसा पुनः प्रयत्न करो जिससे वह तत्त्व ठीक ठीक भाव से काम में लाया जा सके।

भारत में हमारे सभी सम्प्रदायों को आत्मा सम्बन्धी इस तत्त्व पर विश्वास

करना पड़ता है। केवल ईतबादी कहते हैं जैसा हम आगे विचार करेंगे वस्तु  
 कर्मों से वह संकुचित हो जाती है, उसको सम्पूर्ण शक्ति और स्वभाव सफाई को प्राप्त  
 हो जाते हैं फिर उत्कर्म करने से उस स्वभाव का विकास होता है। और ईतबादी  
 कहते हैं आत्मा का न कमी संशोध होता है, न विकास इस तरह होने की प्रतीति  
 मात्र होती है। ईतबादी और ईतबादियों में बस इतना ही भेद है परन्तु यह  
 बात सभी मानते हैं कि हमारी आत्मा में पहले हा से सम्पूर्ण शक्ति विद्यमान है, एसा  
 नहीं कि कुछ बाहर से आराम में आय मा कोई चीज इसमें आसमान से टपक पड़े।  
 प्यास देने योग्य बात है कि तुम्हारे भेद प्रेरित (Inspired) नहीं हैं ऐसे नहीं  
 कि वे बाहर से भीतर आ रहे हैं किन्तु अन्तस्फुरित (expired) हैं अर्थात्  
 नीतर से बाहर आ रहे हैं—वे सनातन नियम हैं जिनकी अवस्थिति प्रत्येक आत्मा  
 में है। बीटी से लेकर देवता तक सबकी आराम में वेद अवस्थित हैं। बीटी को कबक  
 विकसित होकर अधि-शरीर प्राप्त करना है तभी उसका भीतर वेद अर्थात् सनातन  
 तत्त्व प्रकाशित होगा। इस महान् भाव को समझने की आवश्यकता है कि हमारी  
 शक्ति पहले ही से हमारे भीतर मौजूब है—मुक्ति पहले ही से हम में है। उसके  
 लिए इतना कह सकते हो कि वह संकुचित हो गयी है, अथवा माया के आवरण से  
 आवृत हो गयी है, परन्तु इससे कुछ अन्तर नहीं पड़ता। पहले ही से वह वहीं मौजूब  
 है, यह तुम्हीं समझ लेना होगा। इस पर तुम्हीं विश्वास करना होगा—विश्वास  
 करना होगा कि कुछ के भीतर जो शक्ति है, वह एक छोटे से छोटे मनुष्य में भी है।  
 यही हिन्दुओं का आत्म-तत्त्व है।

परन्तु यही बीदों के साथ महा विरोध बढ़ा हो जाता है। वे वेद का विस्लेषण  
 करके उसे एक बड़ झोठ मान कहते हैं और उसी तरह मन का विस्लेषण करके  
 उसे भी एक बुरा बड़ प्रवाह बतलाते हैं। आत्मा के सम्बन्ध में वे कहते हैं, यह  
 अनात्मत्व है और उसके अस्तित्व की कल्पना करने की कोई आवश्यकता नहीं।  
 किसी इन्द्र और उसमें संलग्न गुणशक्ति की कल्पना का क्या काम? हम लोग कुछ  
 गुण ही मानते हैं। जहाँ शिर्ष एक कारण मान लेने पर सब विषयों की व्याख्या हो  
 जाती है, वहाँ जो कारण मानना युक्तिसंगत नहीं है। इसी तरह बीदों के साथ  
 विचार छिड़ा और जो मठ इन्द्र विशेष का अस्तित्व मानते थे उनका संबंध करके  
 बीदों ने उनकी बूझ में मिला दिया। जो इन्द्र और गुण दोनों का अस्तित्व मानते  
 हैं जो कहते हैं—तुममें एक अत्मा आत्मा है, हममें एक अथवा हर एक के शरीर  
 और मन से अथवा एक एक आत्मा है, हर एक का एक स्वतन्त्र अस्तित्व है—उनकी  
 वर्क-पद्धति में पहले ही से कुछ भ्रष्टि थी।

यही एक तो ईतबाद का मत ठीक है, हम पहले ही देख चुके हैं कि यह शरीर

है, यह सूक्ष्म मन है, यह आत्मा है और सब आत्माओं में है वह परमात्मा। यहाँ मुश्किल इतनी ही है कि आत्मा और परमात्मा दोनों ही द्रव्य बतलाये जा रहे हैं और देह-मन आदि तथाकथित द्रव्य उनसे गुणवत्त सलग्न है, ऐसा स्वीकार किया जा रहा है। अब बात यह है कि किसीने कभी जिस द्रव्य को नहीं देखा, उसके सम्बन्ध में वह कभी विचार नहीं कर सकता। अतः वे कहते हैं, ऐसी दशा में इस तरह के द्रव्य के मानने की ज़रूरत क्या है? तो फिर क्षणिकविज्ञानवादी क्यों नहीं हो जाते और क्यों नहीं कहते कि मानसिक तरंगों के सिवा और किसी भी वस्तु का अस्तित्व नहीं है?—उनमें से कोई एक दूसरी से मिली हुई नहीं, वे आपस में मिलकर एक वस्तु नहीं हुईं, समुद्र की तरंगों की तरह एक दूसरी के पीछे पीछे चली आ रही हैं, वे कभी भी सम्पूर्ण नहीं, वे कभी एक अखण्ड इकाई नहीं बनाती। मनुष्य बस इसी तरह की तरंग-परम्परा है—जब एक तरंग चली जाती है, तब दूसरी तरंग पैदा कर जाती है, ऐसा ही चलता रहता है और इन्हीं तरंगों की निवृत्ति को निर्वाण कहते हैं। तुम देखते हो, इसके सामने द्वैतवाद मूक है, यह असम्भव है कि वह इसके विरुद्ध कोई युक्ति दे सके, और द्वैतवाद का ईश्वर भी यहाँ नहीं टिक सकता। जो सर्वव्यापी है तथा व्यक्तिविशेष है, बिना हाथों के ससार की सृष्टि कर रहा है, बिना पैरों के जो चल सकता है—इसी प्रकार और भी, कुम्भकार जिस तरह घट का निर्माण करता है, उसी तरह जो विश्व की सृष्टि करता है—उसके लिए बौद्ध कहते हैं, इस तरह की कल्पना बच्चों की जैसी है और यदि ईश्वर इस तरह का है तो वे उस ईश्वर के साथ विरोध करने को तैयार हैं, उसकी उपासना करने के अभिलाषी नहीं। यह ससार दुःख से परिपूर्ण है, यदि यह ईश्वर का काम हो तो बौद्ध कहते हैं, हम इस तरह के ईश्वर के साथ लड़ने को तैयार हैं। और दूसरे, इस तरह के ईश्वर का अस्तित्व अयौक्तिक और असम्भव है। सृष्टि-रचनावाद (Design Theory) की श्रुतियों पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि क्षणिकविज्ञानवादियों ने उनके सम्पूर्ण युक्तिजाल का खडन कर डाला है। अतएव वैयक्तिक ईश्वर नहीं टिक सकता।

सत्य, एकमात्र सत्य अद्वैतवादियों का लक्ष्य है। सत्यमेव जयते नानृतम् । सत्येन पन्था विततो देवयानः —‘सत्य ही की विजय होती है, मिथ्या को कभी विजय नहीं मिलती, सत्य से ही देवयान मार्ग की प्राप्ति होती है।’ (मुण्डकोपनिषद्, ३।१।६) सत्य की पताका सभी उड़ाया करते हैं, किन्तु यह केवल दुर्बलों को पद-दलित करने के लिए। तुम अपने ईश्वर विषयक द्वैतवादात्मक विचार लेकर किसी वेचारे प्रतिमापूजक के साथ विवाद करने जा रहे हो, सोच रहे हो, तुम बड़े युक्तिवादी हो, उसे अनायास ही परास्त कर सकते हो, यदि वह उल्टे तुम्हारे ही वैयक्तिक



ईश्वर को सड़ा दे—उसे कास्मिक कहे तो फिर तुम्हारी क्या बचा हो? तब तुम धर्म की दुहाई देने लगते हो अपने प्रतिद्वन्द्वी को नास्तिक नाम से पुकार कर चिस्ल-पों मचाने लगते हो और यह तो दुर्बल मनुष्यों का सबा ही नाय रहा है—जो मुझे परास्त करेगा वह जोर नास्तिक है! यदि मुक्तिवादी होना चाहते हो तो बारि से अस्त तक मुक्तिवादी ही बने रहो और अगर न रह सको तो तुम अपने लिए जितनी स्वाधीनता चाहते हो उतनी ही दूसरे को भी क्यों नहीं देते? तुम इस तरह के ईश्वर का अस्तित्व कैसे प्रमाणित करोगे? दूसरी ओर, वह प्रायः अप्रमाणित किया जा सकता है। ईश्वर के अस्तित्व के सम्बन्ध में रंजमान प्रमाण नहीं बल्कि नास्तित्व के सम्बन्ध में कुछ अति प्रबल प्रमाण है भी। तुम्हारा ईश्वर, उसके गुण इन्धस्वरूप असंख्य बीबात्मा प्रत्येक बीबात्मा का एक स्पष्टि मात्र इन सबको लेकर तुम उसका अस्तित्व कैसे प्रमाणित कर सकते हो? तुम व्यक्ति हो किस विषय में? देह के सम्बन्ध में तुम व्यक्ति हो ही नहीं क्योंकि इस समय प्राचीन बीबाओं की अपेक्षा तुम्हें और अच्छी तरह मालूम है कि जो अङ्गराशि कभी सूर्य में रखी होनी नहीं तुममें जा गयी है, और वही तुम्हारे भीतर से निकलकर अनस्पतियों में बनी जा सकती है। इस तरह तुम्हारा व्यक्तित्व कहाँ रह जाता है? तुम्हारे भीतर जान रात एक तरह का विचार है तो कब मुझ दूसरी तरह का। तुम उसी रीति से अब विचार नहीं करते जिस रीति से बचपन में करते थे कोई व्यक्ति अपनी मुबाबत्ता में जिस बंग से विचार करता था वैसे बूढाबत्ता में नहीं करता। तो फिर तुम्हारा व्यक्तित्व कहाँ रह जाता है? यह मत कहो कि ज्ञान में ही तुम्हारा व्यक्तित्व है—ज्ञान अहंकार मात्र है और यह तुम्हारे प्रकृत अस्तित्व के एक बहुत छोटे अंश में व्याप्त है। जब मैं तुमसे बातचीत करता हूँ तब मेरी सभी इन्द्रियाँ काम करती रहती हैं, परन्तु उनके सम्बन्ध में मैं कुछ नहीं जान सकता। यदि वस्तु की सत्ता का प्रमाण ज्ञान ही हो तो कहना पड़ेगा कि उनका (इन्द्रियों का) अस्तित्व नहीं है, क्योंकि मुझे उनके अस्तित्व का ज्ञान नहीं रहता। तो अब तुम अपने वैयक्तिक ईश्वर सम्बन्धी सिद्धान्तों को लेकर कहाँ रह जाते हो? इस तरह का ईश्वर तुम कैसे प्रमाणित कर सकते हो?

फिर और, बीबा सबे हीकर वह बोधना करेये कि यह केवल अयौक्तिक ही नहीं बरन् अनैतिक भी है क्योंकि वह मनुष्य को कापुल्य बन जाना और बाहर से सहायता लेने की प्रार्थना करना सिखाता है— इस तरह कोई भी तुम्हारी सहायता नहीं कर सकता। यह जो ब्रह्माण्ड है इसका निर्माण मनुष्य ने ही किया है। तो फिर बाहर क्यों एक कास्मिक व्यक्ति विशेष पर विश्वास करते हो जिसे न कभी देखा न जिसका कभी अनुभव किया अबना जिससे न कभी किसीकी कोई सहायता

मिली ? क्यों फिर अपने को कापुरुष बना रहे हो और अपनी सन्तानो को सिखलाते हो कि कुत्ते की तरह हो जाना मनुष्य की सर्वोच्च अवस्था है, और चूँकि हम कमजोर, अपवित्र और ससार में अत्यन्त हेय और अधम हैं, इसलिए इस काल्पनिक सत्ता के सामने घुटने टेककर बैठ जाना चाहिए ? दूसरी ओर, बौद्ध, तुमसे कहेंगे, तुम अपने को इस तरह कहकर केवल झूठ ही नहीं कहते, किन्तु तुम अपनी सन्तानो के लिए घोर पाप का सचय कर रहे हो, क्योंकि, स्मरण रहे, यह ससार एक प्रकार का सम्मोहन है, मनुष्य जैसा सोचते हैं, वैसे ही हो जाते हैं। अपने सम्बन्ध में तुम जैसा कहोगे, वही बन जाओगे। भगवान् बुद्ध की पहली बात यह है — 'तुमने अपने सम्बन्ध में जो कुछ सोचा है, तुम वही हुए हो, भविष्य में जो कुछ सोचोगे वैसे ही होगे।' यदि यह सत्य है तो कभी यह मत सोचना कि तुम कुछ नहीं हो, या जब तक तुम किसी दूसरे की, जो यहाँ नहीं रहता, स्वर्ग में रहता है, सहायता नहीं पाते, तब तक कुछ नहीं कर सकते। इस तरह सोचने से उसका फल यह होगा कि तुम प्रतिदिन अधिकाधिक कमजोर होते जाओगे। 'हम महा अपवित्र हैं, हे प्रभो, हमें पवित्र करो'—इसका परिणाम होगा कि तुम अपने को हर प्रकार के पापों के लिए विवश कर दोगे। बौद्ध कहते हैं, प्रत्येक समाज में जिन पापों को देखते हो, उसमें नब्बे फी सदी बुराइयाँ इसी वैयक्तिक ईश्वर की धारणा के कारण उत्पन्न हुई हैं, मनुष्य-जीवन का, अद्भुत मनुष्य-जीवन का, एकमात्र उद्देश्य एव लक्ष्य अपने को कुत्ते की तरह बना डालना—यह मनुष्य की एक भयानक धारणा है। बौद्ध वैष्णवों से कहते हैं, यदि तुम्हारा आदर्श, तुम्हारे जीवन का लक्ष्य और उद्देश्य भगवान् के वैकुण्ठ नामक स्थान में जाकर अनन्त काल तक हाथ जोड़कर उनके सामने खड़ा रहना ही है तो इससे आत्महत्या कर डालना अधिक अच्छा है। बौद्ध यहाँ तक कह सकते हैं, इस भाव से वचने के लिए निर्वाण या विनाश की चेष्टा वे कर रहे हैं। मैं तुम लोगों के सामने ठीक बौद्धों की ही तरह ये बातें कह रहा हूँ, क्योंकि आजकल लोग कहा करते हैं कि अद्वैतवाद से लोगों में अनैतिकता घुस जाती है। इसलिए दूसरे पक्ष के लोगों का जो कुछ कहना है, वही मैं तुमसे कहने की चेष्टा कर रहा हूँ। हमें दोनों पक्षों पर निर्भीक भाव से विचार करना है।

एक वैयक्तिक ईश्वर ने ससार की सृष्टि की—इसे प्रमाणित नहीं किया जा सकता। यह हमने सर्वप्रथम समझ लिया। क्या एक बालक भी आजकल इस बात पर विश्वास कर सकता है ? चूँकि एक कुम्भकार ने घट का निर्माण किया, अतएव एक ईश्वर ने इस जगत् की सृष्टि की। यदि ऐसा ही हो तो ईश्वर भी तुम्हारा एक कुम्भकार ही हुआ। और यदि कोई तुमसे कहे कि सिर और हाथों के न रहने पर भी वह काम करता है, तो तुम उसे पागलखाने में रखने की ठानोगे। तुम्हारे

ईश्वर न—इस संसार के सृष्टिकर्ता वैयक्तिक ईश्वर ने जिसके पास तुम जीवन भर से चिन्ता रहे हो क्या कभी तुम्हें कोई सहायता दी? आधुनिक विज्ञान तुम लोगों के सामने यह एक और प्रश्न पेश करके उसके उत्तर के लिए चुनौती दे रहा है। वे प्रमाणित कर देंगे कि इस तरह की जो सहायता तुम्हें मिली है, उस तुम अपनी ही भेट्टा से प्राप्त कर सकते थे। इस तरह के रोबन से मुक्ति प्राप्त करने की तुम्हारे लिए कोई आवश्यकता न थी इस तरह न रोकर तुम अपना उद्देश्य अनायास ही प्राप्त कर सकते थे। और भी हम लोग पहले देख चुके हैं कि इस तरह के वैयक्तिक ईश्वर की धारणा से ही अत्याचार और पुरोहित-प्रबंध का आविर्भाव हुआ। वहाँ यह धारणा विद्यमान थी वहाँ अत्याचार और पुरोहित प्रबंध प्रचलित थे और लोगों का कथन है कि जब तक वह दिव्या भाव अङ्ग समेत गप्ट नहीं होता तब तक यह अत्याचार बन्द नहीं हो सकता। जब तक मनुष्य सोचता है कि किसी दूसरे मज्जीकिक पुरुष के सामने उसे विनीत मान से रहना होगा तब तक पुरोहित का अस्तित्व अवश्य रहेगा। वे विशेष अधिकार या दावे पेश करेंगे ऐसी भेट्टा करेंगे जिससे मनुष्य उनके सामने सिर झुकाये और बेचारे असहाय व्यक्ति मध्यस्थता करने के लिए पुरोहितों के प्रार्थी बने रहेंगे। तुम लोग ब्राह्मणों को निर्मूलक कर सन्ते हो परन्तु इस बात पर ध्यान रखो कि जो लोग ऐसा करेंगे वे ही उनके स्थान पर अपना अधिकार जमायेंगे और वे फिर ब्राह्मणों की अपेक्षा अधिक अत्याचारी बन जायेंगे। क्योंकि ब्राह्मणों में फिर भी कुछ उदारता है, परन्तु वे स्वयंमिद ब्राह्मण सत्ता से ही बड़े दुःखी हुए करते हैं। भिद्युक्त का यदि कुछ धन मिल जाय तो वह मम्पूब संसार को एक दिनके के बराबर समझता है। अतएव जब तक इस वैयक्तिक ईश्वर की धारणा बनी रहेगी तब तक वे सब पुरोहित भी रहेंगे। और समाज में किसी तरह की उच्च नीतिक्रिया की आशा भी ही नहीं जा सकेगी। पुरोहित-प्रबंध और अत्याचार तथा एक साथ रहेंगे। क्यों लोगों ने इन वैयक्तिक ईश्वर की धारणा की? कारण इसका यह है कि प्राचीन समय में कुछ बलवान मनुष्यों ने साधारण मनुष्यों को अपने बग में लाने उनमें कहा था तुम्हें हमारा आदिग मानकर खजना होगा नहीं तो हम तुम्हारा नाम कर दामेंगे। यही उगका अर्थ और इति है। इसका कोई दूसरा कारण नहीं—महदुर्जन्य बन्धमुद्धतम्—गुरुणा गुरुण टै जो हाथ में सदा ही बन्ध सिध र्हाता है, और जो उमरी आजा का उम्पपन करता है, उगका वह तन्नाम विनाश कर जानता है।

इसके बाद बीज कहते हैं तुम्हारा यह कथन पूर्णतया सुशामम्भर है कि तब कुछ धर्मज्ञान का कर है। तुम लोग अनल्प्य जीवात्माओं के मन्धर्य में विराम करते हो और तुम्हारे मा में इन जीवात्मा का न धर्य है, न मृत्यु। यही तक तो तुम्हारी

के नाम से कुछ भी नहीं रह जाता, कारण व्यक्तित्व के नाम से ऐसा कुछ सूचित होता है, जो अपरिणामी है। परिवर्तनशील व्यक्तित्व हो ही नहीं सकता, यह स्वविरोधी वाक्य है। इसलिए हमारे इस क्षुद्र जगत् में व्यक्तित्व के नाम से कुछ भी नहीं रह जाता। विचार, भाव, मन, शरीर, जीव-जन्तु और वनस्पति— इनका सदा ही परिवर्तन होता रहता है। अस्तु। अब सम्पूर्ण विश्व को एक समष्टि की इकाई के रूप में ग्रहण करो। क्या यह परिवर्तित या गतिशील हो सकती है? कदापि नहीं। किसी अल्प गतिशील या सम्पूर्ण गतिहीन वस्तु से तुलना करने पर ही गति का निश्चय होता है। अतः समष्टि के रूप में विश्व गति और परिणाम से रहित है। यहाँ मालूम हो जाता है कि जब तुम अपने को सम्पूर्ण विश्व से अभिन्न समझोगे, जब 'मैं ही विश्वब्रह्माण्ड हूँ' यह अनुभव होगा, तभी—केवल तभी, तुम्हारे यथार्थ व्यक्तित्व का विकास होगा। यही कारण है कि अद्वैतवादी कहते हैं, जब तक द्वैत है, तब तक भय से छूटने का कोई उपाय नहीं है। जब कोई दूसरी वस्तु दिखलायी नहीं पडती, किसी भिन्न भाव का अनुभव नहीं होता, जब केवल एक ही सत्ता रह जाती है, तभी भय दूर होता है, तभी मनुष्य मृत्यु के पार जा सकता है। और तभी ससार-बोध लोप हो जाता है। अद्वैतवाद हमें यह शिक्षा देता है कि मनुष्य का यथार्थ व्यक्तित्व है समष्टि-ज्ञान में, व्यष्टि-ज्ञान में नहीं। जब तुम अपने को सम्पूर्ण समझोगे, तभी तुम अमर होगे। तभी तुम निर्भय और अमृतस्वरूप हो सकोगे, जब विश्व, ब्रह्माण्ड और तुम एक हो जाओगे, और तभी जिसे तुम परमात्मा कहते हो, जिसे सत्ता कहते हो और जिसे पूर्ण कहते हो, वह विश्व से एक हो जायगा। और हमारी तरह की मनोवृत्तिवाले लोग एक ही अखड सत्ता को विविधतापूर्ण विश्व के रूप में देखते हैं। जो लोग कुछ और अच्छे कर्म करते हैं तथा उन्हीं सत्कर्मों के बल से जिनकी मनोवृत्ति कुछ और उत्तम हो जाती है, वे मृत्यु के पश्चात् इसी ब्रह्माण्ड में इन्द्रादि देवों का स्वर्गलोक देखते हैं। उनसे भी ऊँचे लोग इसमें ही ब्रह्मलोक देखते हैं। और जो लोग पूर्ण सिद्ध हो गये हैं, वे पृथ्वी, स्वर्ग या कोई दूसरा लोक नहीं देखते, उनके लिए यह ब्रह्माण्ड अन्तर्हित हो जाता है, उसकी जगह एकमात्र ब्रह्म ही विराजमान रहता है।

क्या हम इस ब्रह्म को जान सकते हैं? मैंने तुमसे पहले ही सहिता में अनन्त के वर्णन की कथा कही है। यहाँ हमको उसका ठीक विपरीत पक्ष मिलता है—यहाँ आन्तरिक अनन्त है। सहिता में वहिर्जगत् के अनन्त का वर्णन है। यहाँ चिन्तन-जगत्, भाव-जगत् के अनन्त का वर्णन है। सहिता में अस्तिभाव का बोध करानेवाली भाषा में अनन्त के वर्णन की चेष्टा हुई थी, यहाँ उम भाषा से काम नहीं निकला, नास्तिभावात्मक या

बार्थनिकों के अस्तित्व में एक बार्थनिक व्यापार मात्र है क्योंकि इन्हीं और गुण के नामों से वास्तव में किसी पदार्थ का अस्तित्व नहीं है। यदि तुम एक साधारण मनुष्य हो तो तुम केवल पुण्यरुचि बेलौगे और यदि तुम कोई बड़े योगी हो तो तुम इन्हीं का ही अस्तित्व बेलौगे परन्तु दोनों को एक ही समय में तुम करायि नहीं कर सकते। अतएव है बौद्ध इन्हीं और पुण्य को लेकर तुम जो विचार कर रहे हो, सब तो यह है कि वह बेबुनियाद है। परन्तु यदि इन्हीं पुण्यरुचि है तो केवल एक ही इन्हीं का अस्तित्व सिद्ध होता है। यदि तुम आत्मा से पुण्यरुचि उठा लो और यह सिद्ध करो कि पुण्यरुचि का अस्तित्व मन में ही है आत्मा पर उतका आरोप मात्र किया गया है तो दो आत्मा भी नहीं रह जाती क्योंकि एक आत्मा से दूसरी आत्मा की विवेकता गुणों ही की बरौछत सिद्ध होती है। तुम्हें कैसे मान्य होगा है कि एक आत्मा दूसरी आत्मा से पुण्य है?—कुछ भेदात्मक लक्षणों कुछ गुणों के कारण। और जहाँ गुणों की उता गयी है, वहाँ कैसे भेद रह सकता है? अतः आत्मा दो नहीं आत्मा 'एक' ही है, और तुम्हारा परमात्मा अनात्मक है, वह आत्मा ही है। इन्हीं एक आत्मा को परमात्मा कहते हैं इसे जीवात्मा और दूसरे नामों से भी पुकारते हैं। और है साक्ष्य तथा अन्तर ईश्वरवादिमो तुम लोग कहते रहते हो—आत्मा सर्वव्यापी विभु है इस पर तुम काम किस तरह अनेक आत्मामों का अस्तित्व स्वीकार करते हो? असीम क्या कमी हो हो सकते हैं? एक होना ही सम्भव है। एक ही असीम आत्मा है और सब उसी की अभिव्यक्तियाँ हैं। इसके उत्तर में बौद्ध मीन है परन्तु अद्वैतवादी पुण्य नहीं रह जाते।

दुर्लभ मर्तों की तरह केवल दूसरे मर्तों की समालोचना करके ही अद्वैत पक्ष निरस्त नहीं होता। अद्वैतवादी तभी उन सभी मर्तों की समालोचना करते हैं जब वे उसके बहुप निरा वा जाते हैं और उसके रंजन को देखते करते हैं। वह निरत इतना ही करता है कि दूसरे मर्तों का निराकरण कर अपने सिद्धान्त को स्थापित करता है। एकमात्र अद्वैतवादी ही ऐसा है जो दूसरे मर्तों का रंजन तो करता है परन्तु दूसरों की तरह उसके रंजन का आचार शस्त्रों की दुर्दा देना नहीं है। अद्वैतवादिनों की मुक्ति इस प्रकार है, वे कहते हैं तुम संसार को एक अविद्यमान ननि प्रमाह मात्र कहते हो ठीक है, अद्वैत में सब गनिनीत है भी तुममें भी गनि है और वेद में भी गनि है मति सर्वत्र है। "मक्ति इसका नाम संसार है, इतिहास दमरा नाम जगत् है—अविद्यमान ननि।" यदि सही है तो तुम्हारे संसार में अविद्यमान

१ नृ धातु का अर्थ 'संस्कार' वा 'गति' होता है और जगत् में नम् धातु विद्यत् प्रत्यय के साथ है।

यही वैराग्य का मूल मन्त्र है, यही सब तरह की नैतिकताओं और निःश्रेयस् का मूल मन्त्र है, क्योंकि तुम्हें स्मरण रखना चाहिए कि त्याग-तपस्या से ही ससार की सृष्टि हुई है। और जितना ही पीछे की ओर तुम जाओगे उसी क्रम से तुम्हारे सामने भिन्न भिन्न रूप, भिन्न भिन्न देह अभिव्यक्त होते रहेंगे और एक एक करके उनका त्याग होगा, अन्त में तुम वास्तव में जो कुछ हो, वही रह जाओगे, यही मोक्ष या मुक्ति है।

यह तत्त्व हमें समझ लेना चाहिए, विज्ञातारमरे केन विजानीयात— 'विज्ञाता को कैसे जानोगे?' ज्ञाता को कोई जान नहीं सकता, क्योंकि यदि वह समझ में आने योग्य होता, तो वह कभी ज्ञाता न रह जाता। और यदि तुम आइने में अपनी आँखों का बिम्ब देखो, तो तुम उन्हें अपनी आँखें नहीं कह सकते, वे कुछ और ही हैं, वे बिम्बमात्र हैं। अब बात यह है कि यदि यह आत्मा—यह अनन्त सर्वव्यापी पुरुष साक्षी मात्र हो, तो इससे क्या हुआ? यह हमारी तरह न चल फिर सकता है, न जीता है, न ससार का सम्भोग ही कर सकता है। यह बात लोगों की समझ में नहीं आती कि जो साक्षी स्वरूप है, वह किस तरह आनन्द का उपभोग कर सकता है। "हे हिन्दुओं, तुम सब साक्षी स्वरूप हो, इस मत से तुम लोग निष्क्रिय और अकर्मण्य हो गये हो"—यह बात लोग कहा करते हैं। उनकी इस बात का उत्तर यह है, 'जो साक्षीस्वरूप है, वही वास्तव में आनन्दोपभोग कर सकता है।' अगर कहीं कुश्ती लड़ी जाती है तो अधिक आनन्द किन्हीं मिलता है?—जो लोग कुश्ती लड़ रहे हैं उन्हें या जो दर्शक हैं उन्हें? इस जीवन में जितना ही तुम किसी विषय में साक्षी स्वरूप हो सकोगे उतना ही तुम्हें उससे अधिक आनन्द मिलता रहेगा। यथार्थ आनन्द यही है और इस युक्ति से तुम्हारे लिए अनन्त आनन्द की प्राप्ति तभी सम्भव है, जब तुम इस विश्व ब्रह्मांड के साक्षी स्वरूप हो सको। तभी मुक्त पुरुष हो सकोगे। जो साक्षी स्वरूप है, वही निष्काम भाव से स्वर्ग जाने की इच्छा न रख, निन्दा-स्तुति को समदृष्टि से देखता हुआ कार्य कर सकता है। जो साक्षी स्वरूप है, आनन्द वही पा सकता है, दूसरा नहीं। अद्वैतवाद के नैतिक भाग की विवेचना करते समय उसके दार्शनिक तथा नैतिक भाग के अन्तर्गत एक और विषय आ जाता है, वह मायावाद है। अद्वैतवाद के अन्तर्गत एक एक विषय के समझने में ही वर्षों लग जाते हैं और व्याख्या करने में महीनों लग जाते हैं, इसलिए इसका मैं उल्लेख मात्र ही करूँगा। इस मायावाद को समझना सभी युगों में बड़ा कठिन रहा है। मैं तुमसे संक्षेप में कहता हूँ, मायावाद वास्तव में कोई वाद या मत विशेष नहीं है, वह देश, काल और निमित्त की समष्टि मात्र है—

'निति-नेति' की भाषा में अनन्त के वर्णन का प्रयत्न किया गया। यह विश्व ब्रह्मांड है माना कि यह ब्रह्म है। क्या हम इसे जान सकते हैं? नहीं— नहीं जान सकते। तुम्हें इस विषय को स्पष्ट रीति से फिर समझना होगा। तुम्हारे मन में बार बार इस सन्देह का आविर्भाव होगा कि यदि यह ब्रह्म है तो किस तरह हम इसे जान सकते हैं। विज्ञानाधारमरु केन विज्ञानीयात्। (बुध्या रथ्यकोपनिषद् २।४।१४) — विज्ञाता को किस तरह जाना जाता है? विज्ञाता को कैसे जान सकते हैं? मैंने सब वस्तुओं को देखा है पर क्या वे अपने को भी देख सकती हैं? नहीं देख सकतीं। ज्ञान की क्रिया ही एक नीची अवस्था है। ऐ आर्ष घन्तागो तुम्हें यह विषय अच्छी तरह भाव रखना चाहिए, क्योंकि इस तत्त्व में महान् तथ्य निहित है। तुम्हारे निकट पश्चिम के जो सार प्रकोपन आया करते हैं, उनकी दार्शनिक बुनियाद एक यही है कि इन्द्रिय-ज्ञान से बढ़कर दूसरा ज्ञान नहीं है। पूर्व में हमारे देशों में कहा गया है कि यह वस्तु-ज्ञान वस्तु की अपेक्षा नीचे बने का है, क्योंकि ज्ञान के अर्थ से सदा ससीम भाव ही समझ में आता है। जब कभी तुम किसी वस्तु को जानना चाहते हो तभी वह तुम्हारे मन से सीमाबद्ध हो जाती है। पूर्व कथित वृष्टान्त में जिस तरह मुक्ति से मुक्ता बनती है उस पर विचार करो तभी समझो कि ज्ञान का अर्थ सीमाबद्ध करना कैसे हुआ। किसी वस्तु को चुनकर तुम उसे चेतना के घेरे में ले जाते हो और उसको सम्पूर्ण भाव से जान नहीं पाते हो। यही बात समस्त ज्ञान के सम्बन्ध में ठीक है। यदि ज्ञान का अर्थ सीमाबद्ध करना ही हो तो क्या उस अनन्त के सम्बन्ध में भी तुम ऐसा कर सकते हो? जो सब जानों का उत्पादन (आधार) है जिसे छोड़कर तुम किसी तरह का ज्ञान अभिन्न नहीं कर सकते जिससे कोई गुण नहीं है जो सम्पूर्ण ससार और हम लोगों की आत्मा का छाया स्वरूप है उसके सम्बन्ध में तुम ऐसा कैसे कर सकते हो—उस तुम कैसे सीमा में ला सकते हो? उसे तुम कैसे जान सकते हो? किस उपाय से उसे बाँधो? हर एक वस्तु यह सम्पूर्ण ससार प्रपञ्च उस अनन्त के जानने की बुधा चेट्या मात्र है। मानो यह अनन्त आत्मा अपने मुलाबमोरुन की चेट्या कर रही है और सर्वोच्च देवता से लेकर निम्नतम प्राणी तक सभी मानो उसके मुख का प्रतिबिम्ब बहस करने के बर्तन हैं। एक एक करके एक एक बर्तन में अपने मुख का प्रतिबिम्ब देखने की चेट्या करके उसे उग्रयुक्त न वेग अन्त में मनुष्य देह में आत्मा समझ पाती है कि यह सब समीप है, और अनन्त कभी दाम्ब के भीतर अपने को प्रकटित नहीं कर सकता। जमी समय पीछे की ओर की मात्रा शुरू होती है और जमीको त्पाय वा चैतन्य कहते हैं। इन्द्रियों से पीछे हट जाओ इन्द्रियों की ओर मन आओ

गयी है। परन्तु इस पर ध्यान रहे कि यह ईश्वर केवल सम्पूर्ण कल्याणकारी गुणों का ही आवार नहीं है। ईश्वर और शैतान—दो देवता नहीं रह सकते, एक ही ईश्वर का अस्तित्व मानना पड़ेगा और हिम्मत वाँचकर भला और बुरा उसी ईश्वर को मानना पड़ेगा, और यह युक्तिसम्मत सिद्धान्त मान लेने पर जो कुछ ठहरता है, उसे भी लेना होगा। हम 'चडी' में पढते हैं, 'जो देवी सभी प्राणियों में शान्ति के रूप में अवस्थित है, उसे हम नमस्कार करते हैं। जो देवी सभी प्राणियों में शुद्धिरूपा होकर स्थित है, उसे हम नमस्कार करते हैं।' उन्हे सर्वस्वरूप कहने से उसका फल चाहे जैसा हो, साथ ही उसे भी लेना होगा। 'हे गार्गी, सब कुछ आनन्द है, इस ससार में जो कुछ आनन्द देख रही हो, सब उसी आध्यात्मिक तत्त्व का अंश है।' इसकी सहायता से तुम हर एक काम कर सकते हो। मेरे मामने के इस प्रकाश में चाहे तुम किसी गरीब को हजार रुपये गिन दो और चाहे कोई दूसरा इसी प्रकाश में तुम्हारा जाली हस्ताक्षर करे, प्रकाश दोनों ही के लिए बराबर है। यह हुआ ईश्वर-ज्ञान का दूसरा सोपान। तीसरा सोपान यह है कि ईश्वर न तो प्रकृति के बाहर ही है और न भीतर ही, वल्कि ईश्वर प्रकृति, आत्मा, विश्व—ये सब पर्यायवाची शब्द हैं। दो वस्तुएँ वास्तव में हैं ही नहीं, कुछ दार्शनिक शब्दों ने ही तुम्हें धोखा दिया है। तुम सोच रहे हो, तुम शरीर भी हो और आत्मा भी हो, और एक साथ ही तुम शरीर और आत्मा बन गये हो। यह कैसे हो सकता है? मन ही मन इसकी जाँच करो। यदि तुम लोगो में कोई योगी होगा तो वह अपने को चैतन्य स्वरूप जानता होगा, उसके लिए शरीर है ही नहीं। यदि तुम साधारण मनुष्य होगे तो तुम अपने को देह सोचोगे, उस समय चैतन्य के सम्पूर्ण ज्ञान का लोप हो जायगा। मनुष्य के देह है, आत्मा है, और भी बहुत सी चीजें हैं—इन सब दार्शनिक धाराओं के रहने के कारण तुम लोग सोचते होगे कि ये सब एक ही समय में मौजूद हैं, परन्तु ऐसा नहीं है। एक समय में एक वस्तु का अस्तित्व है। जब तुम जड़ वस्तु देख रहे हो, तब ईश्वर की चर्चा मत करो, क्योंकि तुम केवल कार्य ही देख रहे हो, उसका कारण तुम्हें नहीं दिखायी पड़ता। और जिस समय तुम कारण

१ या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण सस्थिता ।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ॥

या देवी सर्वभूतेषु शुद्धिरूपेण सस्थिता ।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ॥



और इस क्षेत्र काक निमित्त को जाये नाम-रूप में परिणत किया गया है। नाम जो समुद्र में एक तरंग है। समुद्र से समुद्र की तरंगों का भेद सिर्फ नाम और रूप में है, और इस नाम और रूप की तरंग से पुनः कोई सत्ता भी नहीं है, नाम और रूप दोनों तरंग के साथ ही हैं, तरंगें बिलीन ही या सफ़ी हैं और तरंग में जो नाम और रूप हैं, वे भी चाहे फिर काक के लिए बिलीन हो जायें पर पानी पहले की तरह सम मात्रा में ही बना रहेगा। इस प्रकार यह माया ही तुममें और हममें पशुओं में और मनुष्यों में देवताओं में और मनुष्यों में भेद माय पैदा करती है। सब तो यह है कि यह माया ही है जिसने आत्मा को मानो साक्षों प्राणियों में बाँध रखा है और उनकी परस्पर मिश्रता का बोध नाम और रूप से ही होता है। यदि उनका त्याग कर दिया जाय नाम और रूप दूर कर दिये जायें तो वह सब के लिए अस्तित्व हो जायगी तब तुम वास्तव में जो कुछ ही बही रह जाओगे। यही माया है। और फिर यह कोई सिद्धान्त भी नहीं है केवल तथ्यों का कथन मात्र है।

जब कोई यथार्थवादी कहता है कि इस क्षेत्र का अस्तित्व है तब उसके कहने का अभिप्राय होता है कि उस क्षेत्र की अपनी एक खास विशेषता सत्ता है उसका अस्तित्व संसार की किसी भी दूसरी वस्तु पर अवलम्बित नहीं और यदि यह सम्पूर्ण विश्व नष्ट हो जाय तो भी वह पूर्ण की पूर्ण ही बनी रहेगी। कुछ लोग ता विचार करने पर ही तुम्हारी समझ में आ जायगा कि ऐसा कभी ही नहीं बनता। इस इन्द्रियग्राह्य संसार की सभी चीजें एक दूसरी पर अवलम्बित हैं वे एक दूसरी की ओर आती हैं; वे सापेक्ष और परस्पर सम्बन्धित हैं—एक का अस्तित्व दूसरे पर निर्भर है। हमारे वस्तु-ज्ञान के तीन सोपान हैं। पहला यह है कि प्रायेण वस्तु स्वतन्त्र है और एक दूसरी से अलग है दूसरा यह कि सभी वस्तुओं में पारस्परिक सम्बन्ध है और अन्तिम सोपान यह है कि वस्तु एक ही है जिसे हम लोग अनेक रूपों में देख रहे हैं। ईश्वर के सम्बन्ध में अत्र मनुष्य की पत्नी धारणा यह होती है कि वह इन ब्रह्मांड के बाहर नहीं रहता है जिसका मतलब है कि उन समय का ईश्वर विषयक मान पूर्णतः मानवीय होता है अर्थात् जो कुछ मनुष्य करते हैं ईश्वर भी बही करता है, भेद बेवकाल नहीं है कि ईश्वर के कार्य अनेक बड़े पैमाने पर तथा अधिक उच्च प्रकार के होते हैं। हम लोग मान गये हैं कि ईश्वर सम्पूर्ण ऐसी धारणा बाड़े ही शर्तों में बने अतीन्द्रिय और आदर्श प्रमाणित भी आ सकती है। ईश्वर के सम्बन्ध में दूसरी धारणा यह है कि वह एक शक्ति है और उसीकी गर्भन अभिव्यक्ति है। इसे वास्तव में हम मनुष्य ईश्वर बट मानते हैं 'बही' में ही ईश्वर की बात नहीं

गयी है। परन्तु इस पर ध्यान रहे कि यह ईश्वर केवल सम्पूर्ण कल्याणकारी गुणों का ही आवार नहीं है। ईश्वर और शैतान—दो देवता नहीं रह सकते, एक ही ईश्वर का अस्तित्व मानना पडेगा और हिम्मत वाँचकर भला और बुरा उसी ईश्वर को मानना पडेगा, और यह युक्तिसम्मत सिद्धान्त मान लेने पर जो कुछ ठहरता है, उसे भी लेना होगा। हम 'चडी' में पढते हैं, 'जो देवी सभी प्राणियों में शान्ति के रूप में अवस्थित है, उसे हम नमस्कार करते हैं। जो देवी सभी प्राणियों में शुद्धिरूपा होकर स्थित है, उसे हम नमस्कार करते हैं।' उन्हे सर्वस्वरूप कहने से उसका फल चाहे जैसा हो, साथ ही उसे भी लेना होगा। 'हे गार्गी, सब कुछ आनन्द है, इस ससार में जो कुछ आनन्द देख रही हो, सब उसी आध्यात्मिक तत्त्व का अंश है।' इसकी सहायता से तुम हर एक काम कर सकते हो। मेरे सामने के इस प्रकाश में चाहे तुम किसी गरीब को हजार रुपये गिन दो और चाहे कोई दूसरा इसी प्रकाश में तुम्हारा जाली हस्ताक्षर करे, प्रकाश दोनों ही के लिए बराबर है। यह हुआ ईश्वर-ज्ञान का दूसरा सोपान। तीसरा सोपान यह है कि ईश्वर न तो प्रकृति के बाहर ही है और न भीतर ही, बल्कि ईश्वर प्रकृति, आत्मा, विश्व—ये सब पर्यायवाची शब्द हैं। दो वस्तुएँ वास्तव में हैं ही नहीं, कुछ दार्शनिक शब्दों ने ही तुम्हें धोखा दिया है। तुम सोच रहे हो, तुम शरीर भी हो और आत्मा भी हो, और एक साथ ही तुम शरीर और आत्मा बन गये हो। यह कैसे हो सकता है? मन ही मन इसकी जाँच करो। यदि तुम लोगो में कोई योगी होगा तो वह अपने को चैतन्य स्वरूप जानता होगा, उसके लिए शरीर है ही नहीं। यदि तुम साधारण मनुष्य होगे तो तुम अपने को देह सोचोगे, उस समय चैतन्य के सम्पूर्ण ज्ञान का लोप हो जायगा। मनुष्य के देह है, आत्मा है, और भी बहुत सी चीजें हैं—इन सब दार्शनिक धाराओं के रहने के कारण तुम लोग सोचते होगे कि ये सब एक ही समय में मौजूद हैं, परन्तु ऐसा नहीं है। एक समय में एक वस्तु का अस्तित्व है। जब तुम जड़ वस्तु देख रहे हो, तब ईश्वर की चर्चा मत करो, क्योंकि तुम केवल कार्य ही देख रहे हो, उसका कारण तुम्हें नहीं दिखायी पढता। और जिस समय तुम कारण

१ या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण सस्थिता ।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ॥

या देवी सर्वभूतेषु शुद्धिरूपेण सस्थिता ।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ॥

—चडी ५।४७-९, ५।७४-६॥

दिलोये उस समय कार्य का लोप हो जायगा। तब यह संसार न जाने कहीं बंटा जाया है, न जाने कौन इसका प्राप्त कर लेता है।

हे महात्मन् हे तत्त्वविद् समाधि अवस्था में ज्ञानी के हृदय में अनिर्बचनीय केवल आनन्दस्वरूप उपमादर्शित अपार, नित्यमुक्त निष्कर्म असीम आकाशानुस्य अद्वैत मेदरहित पूर्णस्वरूप ऐसा ही ब्रह्म प्रकाशमान होता है।

हे महात्मन् हे तत्त्वविद् समाधि अवस्था में ज्ञानी के हृदय में ऐसा पूर्ण ब्रह्म प्रकाशमान होता है जो प्रकृति की विकृति से रहित है, वहिष्य स्वरूप है, समभाव होने पर भी जिसकी समता करनेवाला कोई नहीं है, जिसमें किसी तरह के परिणाम का सम्बन्ध नहीं है (जो अपरिमेय है) जो वेद-वाक्यों द्वारा सिद्ध है और जिसे हम अपनी उता कहुते हैं तथा जो उसका सार है।

हे महात्मन् हे तत्त्वविद् समाधि अवस्था में ज्ञानी के हृदय में ऐसा ब्रह्म प्रकाशमान होता है, जो अरु और मृत्यु से रहित है, जो पूर्ण अज्ञान और अनुष्नीय है और जो महाप्रलम्बकाशीम अल्पकाल में निम्न उस समस्त विश्व क सृष्टि है जिसके ऊपर, नीचे चारों तरफ अन्त ही अन्त है और अन्त की सृष्टि पर तरंग की कौन कहे एक छोटी सी लहर भी नहीं है—निस्तम्बता और शान्ति है समस्त बर्णन आदि का अन्त हो गया है मूलों तथा सन्तों के सभी लक्षण समझों और पुष्टों का सबा के लिए अन्त हो गया है।

मनुष्य की ऐसी अवस्था भी होती है, और अब यह अवस्था आती है तब संसार विसीन हो जाता है।

अब हमने देखा कि तत्त्वस्वरूप ब्रह्म अज्ञान और अज्ञान है, परन्तु अज्ञेयवाकियों की श्रुति से नहीं। हम 'उसे' जान गये यह कहना ही पापकर्मपूर्ण बात है क्योंकि पहले ही से तुम नहीं (ब्रह्म) हो। हमने यह भी देखा है कि एक तटके से ब्रह्म यह मेव नहीं है फिर दूसरे तटके से वह मेव है भी। नाम और रूप उद्य को फिर जो सत्य वस्तु नहीं रहती है वह नहीं है। वह हर एक वस्तु के भीतर सत्यस्वरूप है।

तुम्हीं स्त्री हो पुरुष भी तुम्हीं हो तुम कुमार, तुम्हीं कुमारी भी हो और तुम्हीं सब का सहायक लिए हुए बृहद् हैं, विश्व में सर्वत्र तुम ही हो।

१ इ विश्वकाम्यसाहित्य ॥४ ८-४१ ॥

२ त्वं स्त्री त्वं कुमारति त्वं कुमारी उत वा कुमारी।

त्वं जीर्णं वस्त्रं वस्त्रं त्वं ज्योतिर्भवति विश्वतोमुखः ॥

—वैतान्तिकसूत्रोपनिषद् ४।१॥

अद्वैतवाद का यही विषय है। इस सम्बन्ध में कुछ बातें और हैं। इस अद्वैतवाद से सभी वस्तुओं के मूल तत्त्व की व्याख्या मिल जाती है। हमने देखा है, तर्कशास्त्र और विज्ञान के आक्रमणों के विरोध में हम केवल इसी अद्वैतवाद को लेकर खड़े हो सकते हैं। अन्त में सारे तर्कों को यही ठहरने की एक दृढ़ भूमि मिलती है। भारतीय वेदान्ती अपने सिद्धान्त के पूर्ववर्ती सोपानों पर कभी दोषारोपण नहीं करते, बल्कि वे अपने सिद्धान्त पर ठहर कर, उन पर नज़र डालते हुए, उनका समर्थन करते हैं, वे जानते हैं, वे सत्य हैं, सिर्फ वे गलत ढंग से उपलब्ध हुए हैं— भ्रम के आधार पर उनका वर्णन किया गया है। वे भी वही सत्य हैं, अन्तर इतना ही है कि वे माया के माध्यम से देखे गये हैं, कुछ विकृत होने पर भी वे सत्य—केवल सत्य ही है। एक ही ब्रह्म है, जिसे अज्ञ प्रकृति के बाहर किसी स्थान में अवस्थित देखता है, जिसे अल्पज्ञ ससार का अन्तर्यामी देखता है, जिसका अनुभव ज्ञानी आत्म-स्वरूप या सम्पूर्ण ससार के स्वरूप में करता है। यह सब एक ही वस्तु है, एक ही वस्तु भिन्न भिन्न भावों से दृष्टिगोचर हो रही है, माया के विभिन्न शीशों के भीतर से दिखायी दे रही है, विभिन्न मन से दिखायी दे रही है, और पृथक् पृथक् मन से दिखायी देने के कारण ही यह सब विभिन्नता है। केवल इतना ही नहीं, उनमें से एक भाव दूसरे में ले जाता है। विज्ञान और सामान्य ज्ञान में क्या भेद है? रास्ते पर जब कभी कोई असाधारण घटना घट जाती है तो पथिकों में से किसी से उसका कारण पूछो। दस आदमियों में से कम से कम नौ आदमी कहेंगे, यह घटना भूतों की करामात है। वे बाहर सदा भूत-प्रेतों के पीछे दौड़ते हैं, क्योंकि अज्ञान का स्वभाव ही है कार्य के बाहर कारण की खोज करना। एक पत्थर गिरने पर अज्ञ कहता है, भूत या शैतान का फेंका हुआ पत्थर है। परन्तु वैज्ञानिक कहता है वह प्रकृति का नियम या गुस्त्वाकर्षण है।

विज्ञान और धर्म में सर्वत्र कौन सा विरोध है? प्रचलित धर्म जितने हैं, सभी बहिरागत व्याख्या द्वारा आच्छन्न हैं। सूर्य के अधिष्ठाता देवता, चन्द्र के अधिष्ठाता देवता—इस तरह के अनन्त देवता हैं, और जितनी घटनाएँ हो रही हैं, सब कोई न कोई देवता या भूत ही कर रहा है, इसका साराश यही है कि किसी विषय के कारण की खोज उसके बाहर की जाती है, और विज्ञान का अर्थ यह है कि किसी वस्तु के कारण की व्याख्या उसी प्रकृति से की जाती है। धीरे धीरे विज्ञान ज्यो ज्यो प्रगति कर रहा है, त्यों त्यों वह प्राकृतिक घटनाओं की व्याख्या भूत-प्रेतों और देवदूतों के हाथ से छीनता जा रहा है। और चूंकि आध्यात्मिक क्षेत्र में अद्वैतवाद इसकी साधना कर चुका है, इसलिए यही सबसे अधिक विज्ञान-सम्मत धर्म है। इस जगत् को विश्व के बाहर के किसी ईश्वर ने नहीं बनाया,

संसार के बाहर की किसी प्रतिभा ने इसकी सृष्टि नहीं की। वह आप ही आप सृष्ट हो रहा है, आप ही आप उसकी अभिव्यक्ति हो रही है। आप ही आप उसका प्रसन्न हो रहा है—एक ही अनन्त सत्ता ब्रह्म है। तद्व्यवसि स्वेतनेतो हे स्वेतनेतो तुम नहीं हो।

इस तरह तुम देख रहे हो यही एकमात्र यही वैज्ञानिक वर्तन बन सकता है, कोई दूसरा नहीं। और इस अर्बसिधित वर्तमान भारत में आजकल प्रतिदिन विज्ञान की जो बकबास चल रही है प्रतिदिन मैं जिस भुक्तिदाय और विचार धीरता की पुष्टाई सुन रहा हूँ उससे मुझे आशा है तुम्हारे समस्त सम्प्रदाय अद्वैतवादी होने और बुद्ध के शब्दों में अनुबन्धिताय अनुबन्धनुबन्धाय संसार मे इस अद्वैतवाद का प्रचार करने का साहस करेये। यदि तुम ऐसा न कर सको तो मैं तुम्हें डरपोक समझूँगा। यदि तुमने अपनी कायरता दूर नहीं की यदि अपने भय को तुमने बहाना बना लिया तो दूसरे को भी वही ही स्थायीतया हो। बेचारे मूर्तिपूजक को बिस्तुक उड़ा देने की चेष्टा न करो उसे पीतल मत कहो। जो तुम्हारे साथ पूर्वतया सहमत न हो उसीके पास अपना मठ प्रचार करने के लिए न जाओ। पहले यह समझो कि तुम खुद कायर हो और यदि तुम्हें समाज का भय है यदि तुम्हें अपने ही प्राचीन कुसंस्कारों का इतना भय है तो यह भी सोच लो कि जो लोग अब हैं उन्हें अपने कुसंस्कारों का और कितना बर्षिक भय और बन्धन होना। अद्वैतवादियों की यही बात है। दूसरों पर श्वा करो। परमात्मा करे एक ही सम्पूर्ण संसार केवल मठ में ही नहीं अनुभूति के सम्बन्ध में भी अद्वैतवादी हो पाय। परन्तु यदि बीसा नहीं हो सकता तो हमको जो अच्छा करते बने नहीं करना चाहिए। अब का हाथ पकड़कर उसकी सक्ति के अनुसार उन्हें बीरे बीरे भागे से चलो, जितना वे जाने बड़ सकते हैं। और हमको कि भारत में सभी बलों का विकास क्रमोन्नति के नियमानुसार बीरे बीरे हुआ है। बात ऐसी नहीं कि बूरे से सत्ता हो रहा है, बल्कि भय से और भी भया हो रहा है।

अद्वैतवाद के नैतिक सम्बन्धों के विषय में कुछ और कहना आवश्यक है। हमारे लड़के आजकल प्रमुक्ति भाव से बाधभित करते हैं—किसीसे सत जोयों ने सुना होगा परमात्मा जाने किससे सुना—कि अद्वैतवाद से लोग डुराजायी हो जाते हैं क्योंकि अद्वैतवाद सिद्धांतता है कि हम सब एक हैं, सभी ईश्वर हैं अतएव हमें अब सवाचार अपनाने की कोई आवश्यकता नहीं। इस बात क उधर में पहले तो यहाँ कहना है कि यह व्यक्ति पशुप्रकृति मनुष्य के मुख में सोमा डेती है, कस्ताबात के बिना जिसके दमन करने का कोई दूसरा उपाय नहीं है। यदि तुम ऐसे ही हो तो इस तरह कस्ताबात द्वारा पालित करने योग्य मनुष्य कहलाने की अपेक्षा बाल

हत्या कर लेना कदाचित् तुम्हारे लिए श्रेयस्कर होगा। कशाघात बन्द होते ही तुम लोग अमुर हो जाओगे। यदि ऐसा ही हो तो इसी समय तुम्हारा, अन्त कर देना उचित होगा। तुम्हारे लिए दूसरा उपाय और कोई नहीं। इस तरह तो सदा ही तुम्हे कोड़े और डंडे के भय से चलना होगा और तुम्हारे उद्धार तथा निस्तार का रास्ता अब नहीं रह गया।

दूसरे अद्वैतवाद, केवल अद्वैतवाद से ही नैतिकता की व्याख्या हो सकती है। हर एक धर्म यही प्रचार कर रहा है कि सब नैतिक तत्त्वों का सार दूसरों की हित-साधना ही है। क्यों हम दूसरों का हित करें? नि स्वार्थ होना चाहिए। क्यों हमें नि स्वार्थ होना चाहिए? कोई देवता ऐसा कह गये है? वे देवता मेरे लिए मान्य नहीं हैं। शास्त्रों ने ऐसा कहा है—शास्त्र कहते रहे, क्यों हम उसे मानें? शास्त्र यदि ऐसा कहते हैं तो मेरे लिए उनका क्या महत्त्व है? ससार के अविकाश आदमियों की यही नीति है कि वे अपना ही भला ताकते हैं। हर एक व्यक्ति अपना अपना हित साधन करे, कोई न कोई सबसे पीछे रहेगा। किस कारण मैं नैतिक बनूँ? जब तक गीता में वर्णित इस सत्य को न जानोगे, तब तक तुम इसकी व्याख्या नहीं कर सकते। 'जो महात्मा अपनी आत्मा को सब भूतों में स्थित देखता है और आत्मा में सब भूतों को देखता है, वह इस तरह ईश्वर को सर्वत्र सम भाव से अवस्थित देखता हुआ आत्मा द्वारा आत्मा की हिंसा नहीं करता।'

अद्वैतवाद की शिक्षा से तुम्हे यह ज्ञान होता है कि दूसरों की हिंसा करते हुए तुम अपनी ही हिंसा करने हो, क्योंकि वे सब तुम्हारे ही स्वरूप हैं। तुम्हे मालूम हो या न हो, सब हाथों से तुम्ही कार्य कर रहे हो, सब पैरों से तुम्ही चल रहे हो, राजा के रूप में तुम्ही प्रासाद में सुखो का भोग कर रहे हो, फिर तुम्ही रास्ते के भिखारी के रूप में अपना दुःखमय जीवन बिता रहे हो। अज्ञ में भी तुम हो, विद्वान् में भी तुम हो, दुर्बल में भी तुम हो, सबल में भी तुम हो। इस तत्त्व का ज्ञान प्राप्त कर तुम्हे सबके प्रति सहानुभूति रखनी चाहिए। चूँकि दूसरों को कष्ट पहुँचाना अपने ही को कष्ट पहुँचाना है, इसलिए हमें कदापि दूसरों को कष्ट नहीं देना चाहिए। इसीलिए यदि मैं बिना भोजन के मर भी जाऊँ तो भी मुझे इसकी चिन्ता नहीं, क्योंकि जिस समय मैं भूखा मर रहा हूँ उस समय मैं लाखों मुँह से भोजन भी कर रहा हूँ। अतएव यह 'मैं', 'मेरा' —इन सब विषयों पर

१. सर्वभूतस्थमात्मान सर्वभूतानि चात्मनि ॥गीता ६।२९॥

सम पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम् ।

न हिनस्त्यात्मनात्मान ततो याति परा गतिम् ॥ गीता १३।२८॥

हमें ध्यान ही नहीं देगा चाहिए, यह सम्पूर्ण संसार मेरा ही है, मैं ही एक बृहती रीति से संसार के सम्पूर्ण आनन्द का भोग कर रहा हूँ। और, मेरा या इस संसार का बिनाश भी कौन कर सकता है? इस तरह वेसते हो अद्वैतवाद ही नैतिक तत्त्वों की एकमात्र ध्यास्या है। अन्याय्य बात तुम्हें नैतिकता की शिक्षा दे सकते हैं परन्तु हम क्यों नीतिपरायण हों इसका हेतुनिर्वेच नहीं कर सकते। यह सब तो हुई ध्यास्या की बात।

अद्वैतवाद की सामना में साम क्या है? उससे एकत्रि प्राप्त होती है। तुमने जगत् पर सम्मोहन का जो पर्व डाल रखा है उसे हटा दो। मनुष्य को दुर्बल न सोचो उसे दुर्बल न कहो। समझ लो कि एक दुर्बलता शब्द से ही सब पापों और सम्पूर्ण अशुभ कर्मों का निर्देश हो जाता है। सारे दोषपूर्ण कार्यों की मूल प्रेरक दुर्बलता ही है। दुर्बलता के कारण ही मनुष्य सभी स्वार्थों में प्रवृत्त होता है। दुर्बलता के कारण ही मनुष्य दूसरों को कष्ट पहुँचाता है। दुर्बलता के कारण ही मनुष्य अपना सच्चा स्वस्व्य प्रकाशित नहीं कर सकता। सब लोग जाने कि वे क्या है? दिन-रात वे अपने स्वस्व्य—सोऽहम् का जप करें। माता के स्तन-धाम के साथ सोऽहम् (मैं बड़ी हूँ)—इस अोजमयी भाषी का पात करे। श्रोतव्यो जन्तव्यो निर्विध्यास्तित्तम्याः मादि का पहले भजन करें। तत्परश्चात् वे उसका चिन्तन करें, और उसी चिन्तन उसी मनन से ऐसा कार्य होंगे जिन्हें संसार ने कभी देया ही नहीं था। किसे तरह यह काम में काया पाय? कोई कोई कहते हैं—यह अद्वैतवाद कार्य में परिणत नहीं किया जा सकता अर्थात् भौतिक बराबर पर उसकी शक्ति का प्रकाश नहीं हुआ। इस कथन में अधिक सत्य अवश्य है। वेद की उस वाणी का स्मरण करो

श्रीमित्येकाकारं ब्रह्म श्रीमित्येकाकारं परम्।

श्रीमित्येकाकारं ज्ञात्वा यो परिच्छति तस्य तत् ॥

—‘ॐ यही ब्रह्म है। ॐ यह परम तत्ता है। जो इस बीजार का रहस्य जानते हैं, वे जो कुछ चाहते हैं वही उन्हें मिलता है।

अतएव पढ़ते तुम इस बीजार का रहस्य समझो। यह बीजार तुम्हीं ही हमारा ज्ञान प्राप्त कर। इस तत्त्वज्ञान महापाठ्य का रहस्य समझो तभी वेदल तभी तुम जो कुछ चाहोगे वह पाओगे। यदि भौतिक दृष्टि से बने होना चाहो तो विस्वागत कर तुम बड़ हो। मैं एक छोटा सा बुद्धिमान ही सरना हूँ तुम गर्वनाहार उंची तरफ हो सारने हो परन्तु यह गमन रागो कि हम दोनों के लिए पृष्ठभूमि अन्त समुद्र ही है। अन्त ब्रह्म हमारी एक शक्ति

और वीर्य का भंडार है, और हम दोनों ही क्षुद्र हो या महान् उससे अपनी इच्छा भर शक्ति-संग्रह कर सकते हैं। अतएव अपने पर विश्वास करो। अद्वैतवाद का यह रहस्य है कि पहले अपने पर विश्वास करो, फिर अन्य सब पर। ससार के इतिहास में देखोगे कि केवल वे ही राष्ट्र महान् एव प्रबल हो सके हैं, जो आत्म-विश्वास रखते हैं। हर एक राष्ट्र के इतिहास में तुम देखोगे, जिन व्यक्तियों ने अपने पर विश्वास किया वे ही महान् तथा सबल हो सके। यहाँ, इस भारत में एक अग्नेज्ज आया था, वह एक साधारण क्लर्क था, रुपये-पैसे के अभाव से और दूसरे कारणों से भी उसने अपने सिर में गोली मारकर दो बार आत्महत्या करने की चेष्टा की, और जब वह उसमें असफल हुआ तब उसे विश्वास हो गया कि बड़े बड़े काम करने के लिए वह पैदा हुआ है—वही लॉर्ड क्लाइव इस साम्राज्य का प्रतिष्ठाता बन गया। यदि वह पादरियों पर विश्वास करके घुटने टेककर 'हे प्रभु, मैं दुर्बल हूँ, दीन हूँ,' ऐसा किया करता तो जानते हो उसे कहाँ जगह मिलती? निस्सन्देह उसे पागलखाने में रहना पड़ता। इस प्रकार की कुशिक्षाओं ने तुम्हें पागल बना डाला है। मैंने सारे ससार में देखा है, दीनता के उस उपदेश से, जो दौर्बल्य का पोषक है, बड़े अशुभ परिणाम हुए हैं—मनुष्य जाति को उसने नष्ट कर डाला है। हमारी सन्तानों को जब ऐसी ही शिक्षा दी जाती है, तब इसमें क्या आश्चर्य यदि वे अन्त में अर्धविक्षिप्त हो जाते हैं!

यह अद्वैतवाद के व्यावहारिक पक्ष की शिक्षा है। अतएव अपने पर विश्वास रखो, और यदि तुम्हें भौतिक ऐश्वर्य की आकांक्षा हो तो इसको कार्यान्वित करो, धन तुम्हारे पास आयेगा। यदि विद्वान् और बुद्धिमान होने की इच्छा है तो उसी ओर अद्वैतवाद का प्रयोग करो, तुम महामनीषी हो जाओगे। और यदि तुम मुक्ति लाभ करना चाहते हो तो तुम्हें आध्यात्मिक भूमि में इस अद्वैतवाद का प्रयोग करना होगा, तभी तुम परमानन्द स्वरूप निर्वाण लाभ करोगे। इतनी ही भूल हुई थी कि आज तक उसका प्रयोग आध्यात्मिकता की ओर ही हुआ था—वस। अब व्यावहारिक जीवन में उसके प्रयोग का समय आया है। अब उसे रहस्य मात्र या गोपनीय रखने से काम नहीं चलेगा, अब वह हिमालय की गुफाओं और जंगलों में साधु-सन्यासियों ही के पास बँधा नहीं रहेगा—अब लोगों के दैनिक जीवन के कार्यों में उसका प्रयोग अवश्य होना चाहिए। राजप्रासाद में, साधु-सन्यासियों की गुहा में, गरीबों की कुटियों में सर्वत्र, यहाँ तक कि रास्ते के भिखारी द्वारा भी वह कार्यान्वित होगा, कारण क्या गीता में नहीं बतलाया गया? —स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्। (गीता, २।४०)—'इस धर्म का अल्प मात्र उपयोग भी बड़े बड़े भय से हमारा उद्धार कर सकता है।'



मतएव चाहे तुम स्त्री हो चाहे गृह अथवा चाहे और ही कुछ हो तुम्हारे लिए भय का अल्प मात्र भी कारण नहीं कारण भी कृप्य कहते हैं यह कर्म इतना महान् है कि इसका अल्प मात्र अनुष्ठान करने से भी महाकल्याण की प्राप्ति होती है।

मतएव हे आर्यसन्तान आत्मसी होकर बैठे मत रहो—जागो उठो और जब तक इस चरम कर्म्य तक न पहुँच जाओ तब तक मत रुको। अब अहिंसकता को व्यावहारिक क्षेत्र में प्रयोग करने का समय आया है। उसे अब स्वर्ग से स्वर्ग में ले जाना होगा। इस समय विभाटा का विधान यही है। हमारे प्राचीन काल के पूर्वज की भाँती से हमें निर्दोष भिन्न रखा है कि इस अहिंसकता को स्वर्ग से पृथ्वी पर ले आओ। तुम्हारे उस प्राचीन शास्त्र का उपदेश सम्पूर्ण सभार में इस प्रकार व्याप्त हो जाय कि समाज के प्रत्येक मनुष्य की वह साधारण सम्मति हो जाय हमारी नस नस में बहिर के प्रत्येक कर्म में उसका प्रवाह हो जाय।

तुम्हें सुनकर आश्चर्य हुआ कि हम लोगों से कहीं बढ़कर अमेरिकी ने बेदास्त को अपने व्यावहारिक जीवन में चरितार्थ कर लिया है। मैं न्यूयार्क के समुद्र तट पर सड़ा सड़ा बैसा करता था—भिन्न भिन्न देशों से लोग बसने के लिए अमेरिका आ रहे हैं। उन्हें देखकर मुझे यह मालूम होता था मानो उनका रूप सुसुप्त गया है वे वीरों तबे कृचले पड़े हैं उनकी भाषा मुझसे मयी है किसीसे निमाह मिसाने की उनमें हिम्मत नहीं है कपड़ों की एक पोटली मात्र उनका सर्वस्व है और वे कपड़े भी फटे हुए हैं पुछिस का आदमी देखते ही भय से दूसरी ओर के झूटपाव पर चलने का इरादा करते हैं। और फिर वह ही महीने में उन्हें देखो वे साफ़ कपड़े पहने हुए फिर उठाकर सीबे बस रहे हैं और उठकर लोगों की नजर से नजर भिजाते हैं। ऐसा विचित्र परिवर्तन किसने किया? सोचो वह आदमी आरमेनिया या किसी दूसरी जगह से आ रहा है, वहाँ कोई उसे कुछ समझते नहीं वे सभी पीस डालने की चेष्टा करते थे। वहाँ सभी उससे कहते थे—“तू गुलाम होकर पैसा हुआ है सुकाम ही रहेगा।” वहाँ उसने बस भी हिंसने डलने की चेष्टा करने पर वह कुचल डाला जाता था। वहाँ और भी सभी बल्लुएँ मानो उससे कहती थीं—“गुलाम तू गुलाम है—जो कुछ है तू वही बना रहे निरपरा के जिस अँबरे में पैसा हुआ था उसीमें जीवन भर पड़ा रहे। हुआ भी मानो गूँबकर उससे कहती थी—“तेरे लिए कोई आशा नहीं—कुसाम होकर बिरकाल तू बैरास्य के बालकार में पड़ा रहे। वहाँ बल्लुमाने ने पीसकर उसकी जान निकाल ली थी। और क्यों ही वह जहाज से उतरकर न्यूयार्क के रास्ते पर चलने लगा उसने देखा कि बल्ले कपड़े पहने हुए किसी भले आदमी ने उसमें हाथ भिजाया। एक तो कपड़े पहने हुए था और दूसरा अचछे बल्ले

कपडों से सुसज्ज था। इससे कोई अन्तर नहीं पडा। और कुछ आगे बढ़कर भोजनालय में जाकर उसने देखा—भद्रमडली मेज़ के चारों ओर बैठी भोजन कर रही थी, उसी मेज़ के एक ओर उससे भी बैठने के लिए कहा गया। वह चारों ओर घूमने लगा—देखा, यह एक नया जीवन है। उसने देखा, ऐसी जगह भी है, जहाँ और पाँच आदमियों में वह भी एक आदमी गिना जा रहा है। कभी मौका मिला तो वार्शिंगटन जाकर सयुक्तराज्य के राष्ट्रपति से हाथ मिला आया, वहाँ उसने देखा, दूर के गाँवों से मँले कपड़े पहने हुए किसान आकर राष्ट्रपति से हाथ मिला रहे हैं। तब उससे माया का पर्दा दूर हो गया। वह ब्रह्म ही है—मायावश इस तरह दुर्बलता तथा दासता के सम्मोह में पडा हुआ था। अब उसने फिर से जागकर देखा—मनुष्यों के ससार में वह भी एक मनुष्य है। हमारे इस देश में, इस वेदान्त की जन्मभूमि में हमारा जन साधारण शत शत वर्षों से सम्मोहित बना कर इस तरह की हीन अवस्था में डाल दिया गया है। उनके स्पर्श में अपवित्रता समायी है, उनके साथ बैठने से छूत समा जाती है। उनसे कहा जा रहा है, निराशा के अन्वकार में तुम्हारा जन्म हुआ है, सदा तुम इसी अँधेरे में पड़े रहो। और उसका परिणाम यह हुआ कि वे लगातार डूबते चले जा रहे हैं, गहरे अँधेरे से और गहरे अँधेरे में डूबते चले जा रहे हैं। अन्त में मनुष्य जितनी निकृष्ट अवस्था तक पहुँच सकता है, वहाँ तक वे पहुँच चुके हैं। क्योंकि, ऐसा देश कहाँ है जहाँ मनुष्य को जानवरों के साथ एक ही जगह पर सोना पडता हो? इसके लिए किसी दूसरे पर दोषारोपण न करो—अज्ञ मनुष्य जो भूल किया करते हैं, वही भूल तुम मत करो। कार्य-कारण दोनों यही विद्यमान है। दोष वास्तव में हमारा ही है। हिम्मत बाँधकर खड़े हो जाओ—अपने ही सिर सब दोष ले लो। दूसरे पर दोष न मढो। तुम जो कष्ट भोग रहे हो उसके एकमात्र कारण तुम्हीं हो।

अतः लाहौर के युवकों, निश्चयपूर्वक समझो इस आनुवशिक तथा राष्ट्रीय महापाप के लिए हमी लोग उत्तरदायी हैं। बिना इसे दूर किये हमारे लिए कोई दूसरा उपाय नहीं है। तुम चाहे हज़ारों समितियाँ गढ लो, चाहे बीस हज़ार राजनीतिक सम्मेलन करो, चाहे पचास हज़ार सस्थाएँ स्थापित करो, इसका कोई फल न होगा, जब तक तुम्हारे भीतर वह सहानुभूति, वह प्रेम न आयेगा, जब तक तुम्हारे भीतर वह हृदय न आयेगा, जो सबके लिए सोचता है। जब तक फिर से भारत को बुद्ध का हृदय प्राप्त नहीं होता और भगवान् कृष्ण की वाणी ध्यावहारिक जीवन में परिणत नहीं की जाती, तब तक हमारे लिए कोई आशा नहीं। तुम लोग यूरोपियनों और उनकी सभा-समितियों का अनुकरण कर रहे हो, परन्तु उनके हृदय के भावों का तुमने क्या अनुकरण किया है?

मैं तुमसे एक खाँसी पैसा क्लिप्सा कहूँगा। यहाँ के यूरोपियनों का एक बल कुछ बर्मी लोगों को लेकर लम्बन गया बाब में पता चला कि वे यूरोपियन थे। वहाँ उन्होंने उन लोगों की एक प्रदर्शनी खोलकर न्यून बनोपार्जन किया। अन्त में सब बल आपस में बाँटकर उन्होंने उन लोगों को यूरोप के किसी दूसरे देश में भेज आकर छोड़ दिया। ये छपीब बेचारे यूरोप की किसी माया का एक चक्क भी यहाँ जानते थे। लेकिन वास्ट्रिया के मजदूर वैदेशिक प्रतिनिधि ने इन्हें कम्बन भेज दिया। वे लोग लम्बन में भी किसीको नहीं जानते थे अठएव वहाँ जाकर भी निरुत्तर अवस्था में पड़ गये। परन्तु एक अंग्रेज महिला को इनकी सूचना मिली। वे इन बर्मी विदेशियों को अपने घर के गयीं और अपने कपड़े अपने बिछौने तथा जो कुछ आवश्यक हुआ सब बेकर उनकी सेवा करने लगीं और समाचार पत्रों में उन्होंने इनका हाल प्रकाशित कर दिया। बेसो उसका फस कैसा हुआ! उसके दूसरे ही दिन मागो साय राष्ट्र सभेत हो गया। चारों ओर से उनकी सहायता के लिए रुपये जाने लगे। अन्त में वे बर्मी आपस भेज दिये गये। उनकी राज नीतिक और दूसरी जितनी समा-समितियाँ हैं वे ऐसी ही सहायसुक्ति पर प्रतिष्ठित हैं, कम से कम अपने लिए उनकी बुद्ध नीब प्रेम पर आधारित है। वे सम्पूर्ण संसार को चाहे प्यार न कर सकें बर्मी चाहे उनके अनु भले ही हों परन्तु इतना तो निरुत्तर ही है कि अपनी जाति के लिए उनका प्रेम अपात्र है और अपने द्वार पर आये हुए विदेशियों के साथ भी वे सत्य न्याय और दया का व्यवहार करते हैं। पश्चिमी देशों के सभी स्थानों में उन्होंने किछ तरह मेरा जातिव्य-सत्कार और जातिरक्षा की भी इसका परि मैं तुमसे उम्मेद न करूँ तो वह मेरी अक्षयता होगी। यहाँ वह हृदय कहाँ है जिसकी बुनियाद पर इस जाति की हीनार उठनी जायगी? हम पाँच भावनी मिलकर एक छोटी सी सम्मिश्र धुँजी की कम्पनी खोलते हैं। कुछ दिनों के अन्तर ही हम लोग आपस में एक दूसरे को पट्टी पड़ाना शुरू कर देते हैं अन्त में सब कारोबार गूट भूट हो जाता है। तुम लोग मजदूरों के अनुकरण की बात कहते हो और उनकी तरह विद्यालय राष्ट्र का बंभल करना चाहते हो परन्तु तुम्हारी वह नीब कहाँ है? हमारी नीब बामू की है, हमीलिए उस पर जो पर जटाया जाता है वह बीड़े ही बिना में टूटकर व्यस्त हो जाता है।

अतः हे साहीर के मुँहको फिर अर्धत की बही प्रबल पनाका पट्टयत्री नयीकि और रिमी आचार पर तुम्हारे भीतर बीसा अपूर्व प्रेम नहीं पैदा ही सकता। अब तक तुम लोग उठी एक भयवान् की लंबन एक ही भाव में अवस्थित नहीं देगते अब तक तुम्हारे भीतर वह प्रेम पैदा नहीं हो सकता—जगी प्रेम की पड़ाना कट्टयत्री।

उठो, जागो, जब तक लक्ष्य पर नहीं पहुँचते तब तक मत रुको। उठो, एक बार और उठो, क्योंकि त्याग के बिना कुछ हो नहीं सकता। दूसरे की यदि सहायता करना चाहते हो, तो तुम्हें अपने अहंभाव को छोड़ना होगा। ईसाइयों की भाषा में कहता हूँ—तुम ईश्वर और शैतान की सेवा एक साथ ही नहीं कर सकते। चाहिए वैराग्य। तुम्हारे पूर्व पुरुषों ने बड़े बड़े कार्य करने के लिए ससार का त्याग किया था। वर्तमान समय में ऐसे अनेक मनुष्य हैं, जिन्होंने अपनी ही मुक्ति के लिए ससार का त्याग किया है। तुम सब कुछ दूर फेंको—यहाँ तक कि अपनी 'मुक्ति का विचार भी दूर रखो—जाओ, दूसरों की सहायता करो। तुम सदा बड़ी बड़ी साहसिक बातें करते हो, परन्तु अब तुम्हारे सामने यह व्यावहारिक वेदान्त रखा गया है। तुम अपने इस तुच्छ जीवन की बलि देने के लिए तैयार हो जाओ। यदि यह जाति बची रहे तो तुम्हारे और हमारे जैसे हज़ारों आदमियों के भूखे मरने से भी क्या हानि होगी? यह जाति डूब रही है। लाखों प्राणियों का शाप हमारे मिर पर है, सदा ही अजस्र जलधारवाली नदी के समीप रहने पर भी तृष्णा के समय पीने के लिए हमने जिन्हे नावदान का पानी दिया, उन अगणित लाखों मनुष्यों का, जिनके सामने भोजन के भाण्डार रहते हुए भी जिन्हे हमने भूखे मार डाला, जिन्हे हमने अद्वैतवाद का तत्त्व सुनाया और जिनसे हमने तीव्र घृणा की, जिनके विरोध में हमने लोकाचार का आविष्कार किया, जिनसे ज़वानी तो यह कहा कि सब बराबर है, सब वही एक ब्रह्म हैं, परन्तु इस उक्ति को काम में लाने का तिल मात्र भी प्रयत्न नहीं किया। 'मन में रखने ही से काम हो जायगा, परन्तु व्यावहारिक ससार में अद्वैतवाद को घसीटना?—हरे! हरे!।' अपने चरित्र का यह दाग मिटा दो। उठो, जागो। यदि यह क्षुद्र जीवन चला भी जाय तो क्या हानि है? सभी मरेंगे—साधु या असाधु, धनी या दरिद्र—सभी मरेंगे। चिर काल तक किसी का शरीर नहीं रहेगा। अतएव उठो, जागो और सम्पूर्ण रूप से निष्कपट हो जाओ। भारत में घोर कपट समा गया है। चाहिए चरित्र, चाहिए इस तरह की दृढ़ता और चरित्र का बल जिससे मनुष्य आजीवन दृढ़व्रत बन सके। 'नीतिनिपुण मनुष्य चाहे निन्दा करे चाहे स्तुति, लक्ष्मी आये या चली जाय, मृत्यु आज ही हो चाहे शताब्दी के पश्चात्, जो धीर हैं वे न्यायमार्ग से एक पग भी नहीं हिलते।' उठो, जागो, समय बीता जा रहा है और व्यर्थ के वित्तवादाद में हमारी सम्पूर्ण शक्ति का क्षय होता जा रहा है। उठो, जागो, छोटे छोटे विषयो

१ निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु लक्ष्मी समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।  
अद्वैतं वा मरणमस्तु युगान्तरे वा न्याय्यात्पथ प्रविचलन्ति पद न धीरा ॥

बीर मतमतान्तरों को लेकर प्यार का विवाद मत करो। तुम्हारे सामने सबसे महान् कार्य पड़ा हुआ है—साखों आदमी डूब रहे हैं उनका उद्धार करो। इन बात पर अच्छी तरह ध्यान दो कि मुसलमान जब भारत में पहले पहुँच आये थे तब भारत में कितने अधिक हिन्दू रहते थे। आज उनकी संख्या कितनी बट गयी है। इसका कोई प्रतिभार हुए बिना यह बिन दिन और बटती ही जायगी अन्तः से पूर्वतः विमुक्त हो जायेंगे। हिन्दू जाति सप्त हो जाय तो हाने दो लेकिन साथ ही—उनके सीकड़ों बोप रहने पर भी संसार के सम्मुख उनके सीकड़ों विद्वत् विष उपस्थित करने पर भी—जब तक वे बिन बिन महान् भावों के प्रतिनिधि स्वरूप हैं, वे भी सप्त हो जायेंगे। और उनके लोप के साथ साथ सारे आध्यात्म ज्ञान का विरोधोपपन्न अपूर्व अद्वैत तत्त्व भी सप्त हो जायगा। अतएव उठो जागो संसार की आध्यात्मिकता की रक्षा के लिए हाथ बढ़ाओ। और पहले अपने देश के कल्याण के लिए इस तत्त्व को काम में लाओ। हमें आध्यात्मिकता की उतनी आवश्यकता नहीं जितनी इस भौतिक संसार में अद्वैतवाद को बोझा कार्य में परिणत करने की। पहले रोटी और तब बर्न चाहिए। गरीब बेचारे मूखों मर रहे हैं और हम उन्हें आवश्यकता से अधिक धर्मोपदेश दे रहे हैं। मतमतान्तरों से पेट नहीं भरता। हमारे दो बोप बड़े ही प्रबल हैं पहला बोप हमारी दुर्बलता है दूसरा है बुद्धा करण ह्रदयहीनता। साखों मत-मतान्तरों की बात कह सकते हो करोड़ों सम्प्रदाय संघटित कर सकते हो परन्तु जब तक उनके बुद्ध का अपने ह्रदय में अनुमन नहीं करते वैदिक उपदेशों के अनुसार जब तक स्वयं नहीं समझते कि वे तुम्हारे ही पटीर के बंध हैं जब तक तुम और वे—बनी और बरिख साधु और जसाधु सभी उसी एक अन्त पूर्व के बिसे तुम बड़ा कहते हो बंध नहीं हो जाते तब तक कुछ न होया।

सपन्नो मैंने तुम्हारे सामने अद्वैतवाद के कुछ प्रबल भावों को प्रकाशित करने की चेष्टा की और अब इसे काम में लाने का समय आ गया है। केवल इसी देश में नहीं सब जगह। आधुनिक विद्या के लोहे के मुद्गरों की चोट खाकर अद्वैतवादार्थक धर्मों की मजबूत बीमार चूर चूर हो गयी है। ऐसा नहीं कि अद्वैतवादी सम्प्रदाय केवल नहीं धार्मिकों का बर्न लीज-लीज कर कुछ का कुछ कर रहे हैं। लीजावानी की हद हो गयी है—कहाँ तक लीजावानी हो—इतना खबर नहीं है। ऐसा नहीं कि केवल नहीं वे अद्वैतवादी आत्मज्ञान के लिए बौद्धों के किसी कोने में छिपने की चेष्टा कर रहे हैं नहीं यूरोप और अमेरिका में तो यह प्रवृत्ति और भी व्यापक है। और वहाँ भी माण्ड के इस अद्वैतवाद का कुछ बंध जाना चाहिए। यह वहाँ पहुँच भी गया है। वहाँ दिन दिन उसका प्रसार बढ़ाना चाहिए। पश्चिमी

सम्यक्ता की भी इससे रक्षा होगी। कारण, पश्चिमी देशों में पहले का भाव उठ गया है और एक नया ढंग—काचन की पूजा के रूप में शैतान की पूजा प्रवर्तित हुई है। इस आधुनिक धर्म अर्थात् पारस्परिक प्रतियोगिता और काचन की पूजा की अपेक्षा तो पहले के अपरिमार्जित धर्म की राह अच्छी थी। कोई भी राष्ट्र हो, चाहे वह कितना ही प्रबल क्यों न हो, ऐसी बुनियाद पर कभी नहीं टिक सकता। और मसार का इतिहास हममें कह रहा है, जिन किन्हीं लोगों ने ऐसी बुनियाद पर अपने समाज की प्रतिष्ठा की, वे विनष्ट हो गये। भारत में काचन-पूजा की यह तरंग न आ सके, उसकी ओर पहले ही से नज़र रखनी होगी। अतएव सबसे पहले अद्वैतवाद प्रचारित करो, जिसमें धर्म आधुनिक विज्ञान के प्रबल आघातों से भी अक्षत बना रहे। केवल इतना ही नहीं, तुम्हें दूसरों की भी सहायता करनी होगी— तुम्हारे विचार यूरोप और अमेरिका के सहायक होंगे, परन्तु सबसे पहले तुम्हें याद दिलाता हूँ कि व्यावहारिक कार्य की आवश्यकता है, और उसका प्रथमंश यह है कि घोर से घोरतम दारिद्र्य और अज्ञान-तिमिर में डूबे हुए साधारण लाखों भारतीयों की उन्नति-साधना के लिए उनके समीप जाओ। और उनको अपन हाथ का सहारा दो और भगवान् कृष्ण की यह वाणी याद रखो

इहैव तैर्जितं सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः ।

निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिता ॥

(गीता ५।१९)

—‘जिनका मन इस साम्य भाव में अवस्थित है, उन्होंने इस जीवन में ही ससार पर विजय प्राप्त कर ली है। चूँकि ब्रह्म निर्दोष और सबके लिए सम है, इसलिए वे ब्रह्म में अवस्थित हैं।’

और मतमतान्तरों को लेकर स्पर्ध का विषय मत करो। तुम्हारे सामने सबसे महान् कार्य पड़ा हुआ है—काबों आसमी अब रहे हैं उनका उद्धार करो। इस बात पर अच्छी तरह ध्यान दो कि मुख्यमान अब भारत में पहले पहल जाने से तब भारत में कितने अधिक हिन्दू रहते थे। अब उनकी संख्या कितनी घट गयी है। इसका कोई प्रतिकार हुए बिना यह दिन दिन और घटती ही जायगी अन्ततः वे पूर्वतः विसुप्त हो जायेंगे। हिन्दू जाति कष्ट हो जाय तो होने दो लेकिन साथ ही—उनके संकड़ों कोप रहने पर भी संसार के सम्मुख उनके संकड़ों विद्वत् विन उपस्मित करने पर भी—अब तक वे बिन बिन महान् भावों के प्रतिनिधि स्वरूप हैं, वे भी कष्ट हो जायेंगे। और उनके कोप के साथ साथ सारे आध्यात्म ज्ञान का शिरोभूषण अपूर्व अद्वैत तत्त्व भी सुप्त हो जायगा। अतएव उठो जाओ संसार को व्यापारिमकता की रक्षा के लिए हाथ बड़ाओ। और पहले अपने देश के कल्याण के लिए इस तरह को काम में लाओ। हमें व्यापारिमकता की उतनी आवश्यकता नहीं बितनी इस मूर्ख संसार में अद्वैतवाद को बौद्धा कार्य में परिणत करने की। पहले रोटी और तब धर्म चाहिए। गरीब बेचारे भूखा मर रहे हैं और हम उन्हें आवश्यकता से अधिक धर्मोपदेश दे रहे हैं। मतमतान्तरों से पेट नहीं भरता। हमारे ही कोप बड़े ही प्रबल हैं। पहला कोप हमारी दुर्बलता है, दूसरा है लूना करना हृदयहीनता। काबों मत-मतान्तरों की बात कह सकते ही करोड़ों सम्प्रदाय संमिश्रित कर सकते हो परन्तु जब तक उनके पुत्र का अपने हृदय में अनुभव नहीं करते वैदिक उपदेशों के अनुसार जब तक स्वयं नहीं समझते कि वे तुम्हारे ही शरीर के अंग हैं जब तक तुम और वे—बनी और बलि साधु और अतामु तमी जसी एक अमलत प्रभ के बिसे तुम ब्रह्म कहते हो अंत नहीं हो जाते तब तक कुछ न होगा।

सम्भवतो मैंने तुम्हारे सामने अद्वैतवाद के कुछ प्रधान भावों को प्रकाशित करने की चेष्टा की और अब इसे काम में लाने का समय आ गया है। केवल इसी हेतु मैं नहीं अब अपह। आधुनिक विज्ञान के लोहे के मुद्गारों की शक्ति साकर ईश्वारात्मक धर्मों की मजबूत बीजार बुर बुर हो रही है। ऐसा नहीं कि ईश्वारी सम्प्रदाय केवल नहीं छात्रों का अर्थ रीति-नीति कर कुछ ना कुछ कर रहे हैं। रीतिवादी की हद हो गयी है—कहाँ तक रीतिवादी हो—उन्मोह खबर नहीं है। ऐसा नहीं कि केवल नहीं वे ईश्वारी आत्मरक्षा के लिए अंधेरे क बिनी कोने में छिपने की चेष्टा कर रहे हैं नहीं यूरोप और अमेरिका में तो यह प्रचल और भी ज्यादा है। और वहाँ भी भारत के इन अद्वैतवाद का कुछ अंत जाना चाहिए। यह वहाँ पहुँच भी गया है। वहाँ दिन दिन उसका प्रचार बढ़ता जा रहा है। विचारी

इसके पदचात् स्वामी जी ने यूरोप पर भारतीय विचारों के प्रभाव की विस्तृत समीक्षा करके दिखाया कि विभिन्न युगों में स्पेन, जर्मनी एवं अन्यान्य यूरोपीय देशों के ऊपर इन विचारों की कौसी छाप पड़ी थी। भारतीय राजकुमार दारा-शिकोह ने उपनिषद् का अनुवाद फारसी में किया। शॉपेनहॉवर नामक जर्मन दार्शनिक उसका लैटिन अनुवाद देखकर उमकी ओर विशेष रूप से आकृष्ट हुआ। उसके दर्शन में उपनिषदों का यथेष्ट प्रभाव देखा जाता है। इसके बाद ही काण्ट के दर्शन-ग्रन्थों में भी उपनिषदों के भावों के चिह्न देखे जाते हैं। यूरोप में साधारणतया तुलनात्मक भाषा-विज्ञान की अभिरुचि के कारण ही विद्वान् लोग संस्कृत के अध्ययन की ओर आकृष्ट होते हैं। परन्तु अध्यापक डॉयसन जैसे व्यक्ति भी हैं जो केवल दार्शनिक ज्ञान के लिए ही दर्शनों का अध्ययन करते हैं। स्वामी जी ने आशा प्रकट की कि भविष्य में यूरोप में संस्कृत के पठन-पाठन में और अधिक दिलचस्पी ली जायगी। इसके बाद स्वामी जी ने दिखलाया कि पूर्वकाल में 'हिन्दू' शब्द सार्थक था और वह सिन्धु नदी के इस पार बसनेवालों के लिए प्रयुक्त होता था, किन्तु इस समय वह सर्वथा निरर्थक है, क्योंकि इस समय सिन्धु नदी के इस पार नाना धर्मावलम्बी बहुत सी जातियाँ बसती हैं।

इसके बाद स्वामी जी ने वेदों के सम्बन्ध में विस्तृत रूप से प्रकाश डाला। उन्होंने कहा, "वेद किसी व्यक्ति विशेष के वाक्य नहीं हैं। पहले कतिपय विचारों का शनैः शनैः विकास हुआ, अतत उन्हें ग्रन्थ का रूप दिया गया, और वह ग्रन्थ प्रमाण बन गया।" स्वामी जी ने कहा, "अनेक धर्म इसी भाँति ग्रन्थबद्ध हुए हैं। ग्रन्थों का प्रभाव भी असीम प्रतीत होता है। हिन्दुओं के ग्रन्थ वेद हैं जिन पर अभी हजारों वर्षों तक हिन्दुओं को निर्भर रहना होगा। लेकिन उन्हें वेदों के सम्बन्ध में अपने विचार बदलने होंगे और उन्हें नये मिररे से दृढ़ चट्टान की नींव पर स्थापित करना होगा। वेदों का वाङ्मय विशाल है, किन्तु वेदों का नब्बे प्रतिशत अंश इस समय उपलब्ध नहीं है। विशेष विशेष परिवार में एक एक वेदांश थे। उन परिवारों के लोप हो जाने से वे वेदांश भी लुप्त हो गये, किन्तु जो इस समय भी मिलते हैं, वे भी इस जैसे कमरे में समा नहीं सकते। ये वेद अत्यन्त प्राचीन तथा अति सरल भाषा में लिखे गये हैं। वेदों का व्याकरण भी इतना अस्पष्ट है कि बहुतों के विचार में वेदों के कई अंशों का कोई अर्थ ही नहीं निकलता।"

इसके बाद स्वामी जी ने वेद के दो भागों—कर्मकांड और ज्ञानकांड की विस्तृत समीक्षा की। कर्मकांड कहने से संहिता और ब्राह्मण का बोध होता है। ब्राह्मणों में यज्ञ आदि का वर्णन है। संहिता अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्, जगती प्रभृति छंदों में रचित गेय पद हैं। साधारणतः उनमें इन्द्र, वरुण अथवा अन्य किसी देवता की



## वेदान्त

(सोसल्टी में विया हुआ भाषण)

२ दिसम्बर, १८९७ को स्वामी जी अपने शिष्यों के साथ महालय के बॉगसे में बहरे हुए थे वहाँ उन्होंने वेदान्त में सम्बन्ध में इरीर डेढ़ घंटे तक व्याख्यान दिया। स्थानीय बहुत से सम्मन एवं कई यूरोपीय महिलाएँ उपस्थित थीं। खेडगी के राजा साहूब समापति ने जन्होंने ही उपस्थित खेडगी से स्वामी का परिचय कराया। स्वामी जी ने बड़ा सुन्दर व्याख्यान दिया परन्तु खर का शिष्य है कि उस समय कोई शीघ्रकृपि का लेखक उपस्थित नहीं था। अतः समस्त व्याख्यान उपलब्ध नहीं है। स्वामी जी के दो शिष्यों ने जो नोट लिखे वे उसीका अनुबाध नीचे दिया जाता है।

### स्वामी जी का भाषण

यूनानी और आर्य प्राचीन काल की वे दो जातियाँ भिन्न भिन्न वातावरणों और परिस्थितियों में पड़ीं। प्रकृति में जो कुछ सुन्दर था जो कुछ मधुर था जो कुछ लोभनीय था उसीके मध्य स्थापित होकर स्मृतिप्रद बननाम में विचारण कर यूनानी जाति ने एक जारों ओर सब प्रकार महिमामय प्राकृतिक दृश्यों के मध्य अवस्थित होकर तथा जबिक सापीरिक परियम के अनुकूल बननाम न पाकर हिन्दू जाति ने दो प्रकार की विभिन्न तथा विविष्ट सम्प्रदायों के आरणों का विकास किया। यूनानी लोग बाह्य प्रकृति की अन्त एवं आर्य लोग आन्तरिक प्रकृति की अन्त सम्बन्धी जीवन में रतचित्त हुए। यूनानी लोग बहुत बह्यांश की खोज में व्यस्त हुए और आर्य लोग क्षुद्र बह्यांश या सूक्ष्म अणु के उत्पानुत्पान में मग्न हुए। संसार की सम्प्रदाय में दोनों को ही अपना अपना विविष्ट अंश विशेष सम्पन्न करना पड़ा था। आवश्यक नहीं है कि इनमें से एक को दूसरे से कुछ उधार लेना है। लेकिन परस्पर सुखकारक सम्बन्ध से दोनों कामाश्रित होंगे। आर्यों की प्रकृति विश्लेषण-प्रिय थी। पथित और व्याकरण में आर्यों की अद्भुत उपलब्धियाँ प्राप्त हुईं और मन के विश्लेषण में वे जलम सीमा को पहुँच गये थे। हमें पाश्चातोत्तर संश्लेषण ज्येष्ठी एवं निम्न के मध्य व्यष्टीवाधियों के विचारों में मास्तीय विचार की शक्य सीख पड़ती है।

है कि ईश्वर के साक्षात्कार के पश्चात् ही मनुष्य का यथार्थ जीवन आरम्भ होता है।

अब यह प्रश्न उठा, ये देवता कौन थे ? इन्द्र समय समय पर मनुष्यों की सहायता करते हैं। कभी कभी वे अत्यधिक सोम का पान भी करते हैं, स्थान स्थान पर उनके लिए सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी प्रभृति विशेषणों का भी प्रयोग हुआ है। वरुण के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार की नाना धारणाएँ हैं। देवों के चरित्र सम्बन्धी ये सब वर्णनात्मक मंत्र कही कही बहुत ही अपूर्व हैं और भाषा भी अत्यन्त उदात्त है। इसके पश्चात् स्वामी जी ने प्रलय वर्णनात्मक विख्यात नासदीय सूक्त—जिसमें अन्वकार का अन्वकार से आवृत होना वर्णित है—सुनाया और कहा, जिन लोगों ने इन सब महान् भावों का इस प्रकार की कविता में वर्णन किया है, यदि वे ही असम्य और असंस्कृत थे तो फिर हमें अपने को क्या कहना चाहिए ? इन ऋषियों की अथवा उनके देवता इन्द्र, वरुण आदि की किसी प्रकार की समालोचना करने या उनके बारे में कोई निर्णय देने में मैं अक्षम हूँ। मानो क्रमागत दृश्य पर दृश्य बदलता चला आ रहा है और सबके पीछे एक सद्दिवा बहुधा बदन्ति की यवनिका है। इन देवताओं का वर्णन बड़ा ही रहस्यमय, अपूर्व और अति सुन्दर है। वह विल्कुल अगम्य प्रतीत होता है—पर्दा इतना सूक्ष्म है कि मानो स्पर्श मात्र से ही फट जायगा और मृगमरीचिका की भाँति लुप्त हो जायगा।

आगे चलकर स्वामी जी ने कहा, “मुझे एक बात बहुत सम्भव और स्पष्ट मालूम होती है और वह यह है कि यूनानियों की भाँति आर्य लोग भी ससार की समस्या हल करने के लिए पहले बाह्य प्रकृति की ओर उन्मुख हुए—सुन्दर रमणीय बाह्य प्रकृति भी उन्हें प्रलोभित करके धीरे धीरे बाह्य जगत् में ले गयी। किन्तु भारत की यही विशेषता है कि जिस वस्तु में कुछ उदात्तता नहीं होती उसका यहाँ कुछ मूल्य ही नहीं होता। मृत्यु के पश्चात् क्या होता है, इसकी यथार्थ तात्त्विक विवेचना साधारणतः यूनानियों के मन में उठी ही नहीं। किन्तु भारत में आरम्भ से ही यह प्रश्न बार बार पूछा जा रहा है—‘मैं कौन हूँ ? मृत्यु के पश्चात् मेरी क्या अवस्था होगी ?’ यूनानियों के मत में मनुष्य मर कर स्वर्ग जाता है। स्वर्ग जाने का क्या अर्थ है ? सब कुछ के बाहर जाना, भीतर कुछ नहीं है। सब कुछ केवल बाहर है। उनका लक्ष्य केवल बाहर की ओर था, केवल इतना ही नहीं, मानो वे स्वयं भी अपने आप से बाहर थे। और उन्होंने सोचा, जिस समय वे एक ऐसे स्थान में जा पहुँचेंगे जो बहुत कुछ इसी ससार की भाँति है, किन्तु वहाँ इस ससार के दुःख-क्लेश का सर्वथा अभाव है, तभी उन्हें ईप्सित सभी वस्तुएँ प्राप्त हो जायँगी और वे तृप्त हो जायँगे। उनकी धर्म सम्बन्धी भावना इसके और ऊपर नहीं उठ सकी।

स्तुति है। इस पर प्रश्न यह उठा ये देवता कौन थे? इनके सम्बन्ध में अनेक मत निर्धारित हुए, किन्तु जगन्नाथ मठों द्वारा ये मत संक्षिप्त कर दिये गये। ऐसा बहुत दिनों तक चलता रहा।

इसके बाद स्वामी जी ने उपासना प्रणाली सम्बन्धी विभिन्न चारनामों की चर्चा की। बेबिबेकानन्द के प्राचीन निवासियों की आत्मा के सम्बन्ध में यह चारनामों की यह केवल एक प्रतिरूप देह (double) मात्र है उसका अपना कोई व्यक्तित्व नहीं होता और यह देह मूल देह से अपना सम्बन्ध कदापि विच्छिन्न नहीं कर सकती। इस 'प्रतिरूप' देह को भी मूल शरीर की भाँति शुद्धा तथा मनोवृत्ति आदि के विकार होते हैं ऐसा उनका विश्वास था साथ ही यह भी विश्वास था कि मूल मूल शरीर पर किसी प्रकार का आघात करने से 'प्रतिरूप' देह भी बाह्य होनी। मूल शरीर के मरने पर 'प्रतिरूप' देह भी मरने को बाध्य है। इसलिए मूल शरीर की रक्षा करने की प्रथा आरम्भ हुई। इसीसे ममी समाधि मन्दिर, छत्र आदि की उत्पत्ति हुई। भिक्षु और बेबिबेकानन्द के निवासी एवं यतुदियों की विचार-चारा इसके अधिक अग्रसर न हो सकी वे आरम्भ-तत्त्व तक नहीं पहुँच सके।

प्रो मैक्समूलर का कहना है कि ऋग्वेद में पितर-पूजा का सामान्य चिह्न भी नहीं दिखायी पड़ता। ममी जाँच फाड़े हुए हम लोगों की ओर देख रहे हैं। ऐसा भीमत्स और मयानह दृश्य भी वेदों में नहीं मिलता। देवता मनुष्यों के प्रति मित्रभाव रखते हैं। उपास्य और उपासक का सम्बन्ध सहज और सीम्य है। उसमें किसी प्रकार की स्तुति का नाम नहीं है उनमें सहज आनन्द और सरल हास्य का समाज नहीं है। स्वामी जी ने कहा वेदों की चर्चा करते समय मनी में देवताओं की हास्य-शक्ति स्पष्ट सुनता हूँ। वैदिक ऋषियोग अपने सम्पूर्ण भाव भाषा में भक्ते ही न प्रकट कर सके हों किन्तु वे संस्कृति और सहृदयता के आसार थे। हम लोग उनकी तुलना में बगुनी हैं।

इसके बाद स्वामी जी ने अपने कथन की पुष्टि में अनेक वैदिक मठों का उल्लेख किया। जिस स्थान पर पितृगण निवास करते हैं उनको उही स्थान पर के जाओ—यहाँ कोई दुःख शोक नहीं है। इत्यादि। इसी भाँति इस देश में इस चारनामों का आधिपत्य हुआ कि खिठनी पत्नी शव जला दिया जायगा उतना ही अच्छा है। उनको समझ आत हो गया कि स्कूल देह के अतिरिक्त एक मूल देह है वह मूल देह स्कूल देह के त्याग के पश्चात् एक ऐसे स्थान में पहुँच जाती है जिस स्थान में केवल आनन्द है दुःख का तो नामोनिशान भी नहीं है। ऐतिहासिक चर्म में मय और कष्ट के नाम प्रचुर हैं। उनकी यह चारनामों की यह यदि मनुष्य ने ईश्वर का दर्शन कर लिया तो वह मर जायगा। किन्तु ऋग्वेद का नाम यह

थे, उन्होंने अपने मत की पुष्टि के लिए खीचतान कर उनका विकृत अर्थ किया। रामानुजाचार्य और मध्वाचार्य ने भी शुद्ध अद्वैतभाव प्रतिपादक वेदाशो की द्वैत व्याख्या करके वैसी ही भूल की है। यह सर्वथा सत्य है कि उपनिषद् एक तत्त्व की शिक्षा देते हैं, किन्तु इस तत्त्व में सोपानारोहण की भाँति शिक्षा दी गयी है। इसके बाद स्वामी जी ने कहा कि खेद की बात है कि वर्तमान भारत में धर्म का मूल तत्त्व नहीं रह गया है, सिर्फ थोड़े वाह्य अनुष्ठान मात्र शेष बचे हैं। भारतवासी इस समय न तो हिन्दू ही हैं और न वेदान्ती ही। वे केवल छुआछूत मत के पोषक हैं। रसोई-घर ही उनके मन्दिर हैं और रसोई की हँडिया और बर्तन ही उनके देवता हैं। इस स्थिति का अन्त होना ही चाहिए, और जितना शीघ्र इसका अन्त हो, उतना ही हमारे धर्म के लिए अच्छा है। उपनिषद् अपनी महिमा में उद्भासित हो और साथ ही विभिन्न सम्प्रदायों में विवाद की इति भी हो जाय।

शरीर स्वस्थ न होने से इतना ही बोल कर स्वामी जी थक गये। अतः उन्होंने आघ घटे विश्राम किया। उनके व्याख्यान का शेषांश सुनने के लिए श्रोतागण इस बीच धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करते रहे। स्वामी जी बाहर आये और उन्होंने फिर आघ घटे भाषण किया। उन्होंने समझाया कि बहुत्व में एकत्व की खोज को ही ज्ञान कहते हैं और किसी विज्ञान का चरम उत्कर्ष तब माना जाता है, जब सारे अनेकत्व में एक एकत्व का अनुसंधान पूरा हो जाता है। यह नियम भौतिक विज्ञान तथा आध्यात्मिक विज्ञान दोनों पर समान रूप से लागू होता है।

किन्तु हिन्दुओं का मन इतने से तृप्त नहीं हुआ। उनके विचार में स्वर्ग भी स्वर्ग ब्रह्म के अन्तर्गत है। हिन्दुओं का मन है कि जो कुछ संयोगोत्पन्न है उसका विनाश अवश्यम्भावी है। उन्होंने बाह्य प्रकृति से पूछा आत्मा क्या है, इसे क्या गुण बाधती हो? उत्तर मिला 'नहीं। प्रकृत हुआ 'क्या कोई ईश्वर है? प्रकृति ने उत्तर दिया "मैं नहीं जानती। तब वे प्रकृति से विमुख हो गये और वे समझने लगे कि बाह्य प्रकृति कितनी ही महान् और भय्य क्यों म हूँ यह वेच-काम की सीमा से बाधक है। तब एक अन्य बाधनी सुनायी देती है 'गये उदात्त मार्गों की धारणा उनके मन में उदित होती है। यह बाधनी की 'निति निति'—'यह नहीं यह नहीं'—उस समय विभिन्न वेचवच एक ही गये सूर्य अन्ध ठारा इतना ही क्यों समग्र ब्रह्मांड एक हो गया—उस समय इस नूतन आवर्ष पर उनके धर्म का आध्यात्मिक आधार प्रतिष्ठित हुआ।

न तत्र सूर्यो भासति न अन्धतारकं नेमा विद्युत्तो भासति क्रुतोऽप्यमग्निः।

तमेव भास्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभासति॥

(कठोपनिषद् ३।१)

—'यहाँ सूर्य भी प्रकाशित नहीं होता न अन्ध न तारा न विद्युत्, फिर इस मूर्खक बलि का तो कहना ही क्या! उसीके प्रकाशमान होने से ही सब कुछ प्रकाशित होता है, उसीके प्रकाश से ही सब चीजें प्रकाशित हैं। उस सीमाबद्ध अपरिपक्व व्यक्तिविशेष सबके पाप-पुण्यों का विचार करनेवाले शूद्र ईश्वर की धारणा सेप नहीं रही अब बाहर का अन्वेषण समाप्त हुआ अपने भीतर अन्वेषण आरम्भ हुआ। इस भाँति उपनिषद् भारत के आइबिज हो गये। इन उपनिषदों का यह विद्यालय साहित्य है। और भारत में जो विभिन्न मतवाद प्रचलित हैं, सभी उपनिषदों की मिति पर प्रतिष्ठित हुए।

इसके बाद स्वामी जी ने ईत विधिपटाईत अईत मतों का बर्षन करके उनके सिद्धान्तों का निम्नलिखित कथन से समन्वय किया। उन्होंने कहा "इनमें प्रत्येक मानो एक एक सोपान है—एक सोपान पर चढ़ने के बाद परबर्ती सोपान पर चढ़ना होता है, सबके अन्त में अईतवाद की स्वामाधिक परिपति है और अन्तिम सोपान है तत्त्वकति। उन्होंने बताया कि प्राचीन प्राप्यकार शंकराचार्य रामानुजाचार्य और मध्वाचार्य आदि भी उपनिषद् को ही एकमात्र प्रमाण मानते थे तथापि सभी इस भ्रम में पड़े कि उपनिषद् एक ही मन की धिया देते हैं। तबने प्रकृतियाँ की हैं। शंकराचार्य इस भ्रम में पड़े थे कि तब उपनिषदों में ब्रह्म अईतवाद की धिया है इनका कुछ है ही नहीं। इनसिद्द अिध स्थान पर स्पष्ट ईत आवालयक वकीक भिन्ने

ऐंग्लो-सैक्सन जाति ने मानवता तथा सामाजिक उन्नति की दिशा मे कार्य करने की, सम्यता और प्रगति की महती क्षमता का विकास किया है। इतना ही नहीं, कुछ और आगे बढ़कर मैं यह भी कह सकता हूँ कि यदि उस ऐंग्लो-सैक्सन जाति की शक्ति का प्रभाव इतना विस्तारित नहीं हुआ होता तो हम शायद इस तरह इकट्ठे भी नहीं होते और आज यहाँ पर 'भारतीय आध्यात्मिक विचारों का प्रभाव' विषय पर चर्चा भी न कर पाते। फिर पाश्चात्य से प्राच्य को, अपने स्वदेश को, लौटकर देखता हूँ कि वही ऐंग्लो-सैक्सन शक्ति अपने समस्त दोषों के साथ भी अपने गुणों की निश्चित विशिष्टताओं की रक्षा करते हुए अपना कार्य यहाँ कर रही है और मेरा विश्वास है कि अन्ततः महान् परिणाम सिद्ध होगा। ब्रिटिश जाति का विस्तार और उन्नति का भाव हमें बलपूर्वक उन्नति की ओर अग्रसर कर रहा है। साथ ही हमें यह भी याद रखना चाहिए कि पाश्चात्य सम्यता का मूल स्रोत यूनानी सम्यता है और यूनानी सम्यता का प्रधान भाव है—अभिव्यक्ति। हम भारतवासी मननशील तो हैं, परन्तु कभी कभी दुर्भाग्यवश हम इतने मननशील हो जाते हैं कि हममें भाव व्यक्त करने की शक्ति बिल्कुल नहीं रह जाती। मतलब यह कि धीरे धीरे ससार के समक्ष भारतवासियों की भाव प्रकाशित करने की शक्ति अव्यक्त ही रह गयी और उसका फल क्या हुआ? फल यही हुआ कि हमारे पास जो कुछ था, सबको हम गुप्त रखने की चेष्टा करने लगे। भाव गुप्त रखने का यह सिलसिला आरम्भ तो हुआ व्यक्ति विशेष की ओर से, पर क्रमशः बढ़ता हुआ यह अन्त में जातीय स्वभाव बन गया। और आज भाव को अभिव्यक्त करने की शक्ति का हममें इतना अभाव हो गया है कि हमारी जाति एक मरी हुई जाति समझी जाने लगी है। ऐसी अवस्था में अभिव्यक्त किये बिना हमारी जाति के जीवित रहने की सम्भावना कहाँ है? पाश्चात्य सम्यता का मेरुदण्ड है विस्तार और अभिव्यक्ति। भारतवर्ष में ऐंग्लो-सैक्सन जाति के कामों में से जिस कार्य की ओर मैंने तुम लोगों का ध्यान आकृष्ट करना चाहा है, वही हमारी जाति को जगाकर एक बार फिर हमें अपने को अभिव्यक्त करने के लिए तैयार करेगा। और आज भी यही शक्तिशाली ऐंग्लो-सैक्सन जाति अपने भाव-विनिमय के साधनों की सहायता से हमें ससार के आगे अपने गुप्त रत्नों को प्रकट करने के लिए उत्साहित कर रही है। ऐंग्लो-सैक्सन जाति ने भारतवर्ष की भावी उन्नति का रास्ता खोल दिया है और हमारे पूर्वपुरुषों के भाव जिस तरह धीरे धीरे बहुतेरे स्थानों में फैलते जा रहे हैं, यह वास्तव में विलक्षण है। लेकिन जब हमारे पूर्वपुरुषों ने अपना सत्य और मुक्ति का सदेश प्रचारित किया, तब उन्हें कितना सुभीता था! भगवान् बुद्ध ने किस तरह मार्वजनीन भ्रातृभाव के महान् तत्त्व का प्रचार किया था। उस समय भी

## इंग्लैंड में भारतीय आध्यात्मिक विचारों का प्रभाव

११वीं मार्च सन् १८९८ ई. को स्वामी जी की शिष्या सिस्टर रिबेक्का (कुमारी एम. ई. मोबस) ने कम्ब्रिज के स्टार विदेयर में 'इंग्लैंड में भारतीय आध्यात्मिक विचारों का प्रभाव' नामक विषय पर एक व्याख्यान दिया। समापति का आसन स्वयं स्वामी विवेकानन्द ने ही ग्रहण किया था। स्वामी जी ने उठकर पहले श्रोताओं को उमठ महिका का परिचय देते हुए नीचे लिखी बातें कहीं

### स्वामी जी का भाषण

#### बेचियो और सख्तनो

मैं जिस समय एशिया के पूर्वी हिस्से में भ्रमण कर रहा था उस समय एक विषय की ओर मेरी दृष्टि विशेष रूप से आकृष्ट हुई थी। मैंने देखा कि उन स्वार्थों में भारतीय आध्यात्मिक विचार व्याप्त हैं। चीन और जापान के कितने ही मन्त्रियों की बीमारियों के ऊपर कई सुपरिचित चिकित्सकों को किन्ना हुआ देखकर मैं किन्ता विस्मित हुआ था यह तुम सोल आसानी से समझ सकते हो। और यह सुनकर शायद तुम्हें और भी आश्चर्य होगा और कुछ लोगों को सम्भवतः प्रसन्नता भी होगी कि वे सब मंत्र पुण्डरी बौद्धा धिपि में लिखे हुए हैं। हमारे बंगाल के पूर्वपुरुषों का धर्म प्रचार में किन्ता उत्साह और स्फूर्ति थी मानो वही बताने के लिए आज भी वे मंत्र उन पर स्मारक के रूप में मौजूद हैं।

भारतीय आध्यात्मिक विचारों की पहूँच एशिया महाद्वीप के इन देशों तक ही हुई है ऐसा नहीं बरन् वे बहुत दूर तक फैले हुए हैं और उनके विह्वल सुस्पष्ट हैं। यहाँ तक कि पारशात्य देशों में भी किन्ता ही स्वार्थों के आचार-व्यवहार के धर्म में पैठकर मैंने उनके प्रभाव-विह्वल देखे। प्राचीन काल में भारत के आध्यात्मिक विचार भारत के पूर्व और पश्चिम दोनों ही ओर फैले। यह बात अब ऐतिहासिक सत्य के रूप में प्रमाणित हो चुकी है। सारा संसार भारत के आध्यात्म-उत्सव के स्थि वहाँ तक पहुँची है तथा वहाँ की आध्यात्मिक सक्ति ने मानव जाति को जीवन सभलन के कार्य में प्राचीन अथवा अर्वाचीन समय में किन्ता बड़ी सहायता पहुँचायी है, यह बात अब सब लोग जान गये हैं। ये सब तो पुण्डरी बातें हैं। मैं संसार में एक और सर्वाधिक उम्मेदनीय बात बोलता हूँ। वह यही है कि उस अद्भुतकर्म

मैं अब केवल दो चार बातें और कहना चाहता हूँ। हमारी धारणा है कि हम भारतवासी भी कुछ काम कर सकते हैं। भारतवासियों मे हम वगाली लोग भले ही इस बात की हँसी उडा सकें, पर मैं वैसा नही करता। तुम लोगो के अन्दर एक अदम्य उत्साह, एक अदम्य चेष्टा जाग्रत कर देना ही मेरा जीवन-व्रत है। चाहे तुम अद्वैतवादी हो, चाहे विशिष्टाद्वैतवादी हो अथवा तुम द्वैतवादी ही क्यों न हो, इससे कुछ अतर नही पडता। परन्तु एक बात की ओर जिसे दुर्भाग्यवश हम लोग हमेशा भूल जाया करते हैं, इस समय मैं तुम्हारा ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ। वह यह कि 'ऐ मानव, तू अपने आप पर विश्वास कर।' केवल इसी एक उपाय से हम ईश्वर के विश्वास-परायण बन सकते हैं। तुम चाहे अद्वैतवादी हो या द्वैतवादी, तुम्हारा विश्वास चाहे योगशास्त्र पर हो या शकराचार्य पर, चाहे तुम व्यास के अनुयायी हो या विश्वामित्र के, इससे कोई फर्क नही पडता। बात यह है कि पूर्वोक्त आत्मा सम्बन्धी विश्वास के विषय मे भारतवासियों के विचार ससार की अन्य सभी जातियों के विचारो से निराले हैं। एक पल के लिए इसे ध्यान मे रखो कि जब अन्यान्य सभी बर्गों और देशो मे आत्मा की शक्ति को लोग बिल्कुल स्वीकार नही करते—वे आत्मा को प्रायः शक्तिहीन, दुर्बल और जड वस्तु की तरह समझते हैं, हम लोग भारतवर्ष मे आत्मा को अनन्त शक्ति-सम्पन्न समझते हैं और हमारी धारणा है कि आत्मा शाश्वत पूर्ण ही रहेगी। हमे सदा उपनिषदो मे दिये गये उपदेशो को स्मरण रखना चाहिए।

अपने जीवन के महान् व्रत को याद रखो। हम भारतवासी और विशेषतः हम वगाली बहुत परिमाण मे विदेशी भावो से आक्रान्त हो गये हैं, जो हमारे जातीय धर्म की सम्पूर्ण जीवनी शक्ति को चूसे डालते हैं। हम आज इतने पिछडे हुए क्यों हैं? क्यों हममे से निन्यानवे फी सदी आदमी सम्पूर्णतः पाश्चात्य भावो और उपादानो से विनिर्मित हो रहे हैं? अगर हम लोग राष्ट्रीय गौरव के उच्च शिखर पर आरोहण करना चाहते हैं तो हमे इस विदेशी भाव को दूर फेंक देना होगा, साथ ही यदि हम ऊपर चढना चाहते हैं तो हमे यह भी याद रखना होगा कि हमे पाश्चात्य देशो से बहुत कुछ सीखना बाकी है। पाश्चात्य देशो से हमे उनका शिल्प और विज्ञान सीखना होगा, उनके यहाँ के भौतिक विज्ञानो को सीखना होगा और उबर पाश्चात्य देशवासियों को हमारे पास आकर धर्म और अध्यात्म-विद्या की शिक्षा ग्रहण करनी होगी। हम हिन्दुओ को विश्वास करना होगा कि हम ससार के गुरु हैं। हम यहाँ पर राजनीतिक अधिकार तथा इसी प्रकार की अन्यान्य बातो के लिए चिल्ला रहे हैं। अच्छी बात है, परन्तु अधिकार और सुभीते केवल मित्रता के द्वारा ही प्राप्त हो सकते हैं और मित्रता की आशा वही की जाती है, जहाँ दोनो पक्ष समान होते हैं। यदि एक पक्ष-



यहाँ हमारे प्रिय भारतवर्ष में वास्तविक ज्ञानम्ब प्राप्त करने के यत्न सुभीत थे और हम बहुत ही सुगमता के साथ पृथ्वी की एक छोर से दूसरे छोर तक अपने भावों और विचारों को प्रचारित कर सकते थे परन्तु अब हम उससे और भी दूरे बढ़कर ऐंम्बो-सैक्सन जाति तक अपने भावों का प्रचार करने में कृतकार्य हो रहे हैं।

इसी तरह क्रिया प्रतिक्रिया इस समय चल रही है और हम देख रहे हैं कि हमारे देश का संवेदन यहाँवाले सुनते हैं और वेचन सुनते ही नहीं है, बल्कि उन पर अनुकूल प्रभाव भी पड़ रहा है। इसी बीच इंग्लैंड ने अपने कई महान् मतिमान व्यक्तियों को हमारे काम में सहायता पहुँचाने के लिए भेज दिया है। तुम लोगों ने सामय मेरी मित्र मिश्र मूलर की बात सुनी है और सम्भव है तुम लोगों में से बहुतों का उनके साथ परिचय भी हो—ये इस समय इसी मंच पर उपस्थित हैं। उच्च कुछ में उत्पन्न इस सुशिक्षित महिला ने भारत के प्रति जगत् प्रेम होने के कारण अपना समस्त जीवन भारत के कल्याण के लिए समर्पित कर दिया है। उन्होंने भारत को अपना घर तथा भारतवासियों को ही अपना परिवार बना लिया है। तुम सभी उन सुप्रसिद्ध उदाररूपमा ब्रजेश महिला के नाम से भी परिचित हो—उन्होंने भी अपना सारा जीवन भारत के कल्याण तथा पुनरुत्थान के लिए अर्पण कर दिया है। मेरा अभिप्राय श्रीमती बेसेन्ट से है। प्यारे माइयो आज इस मंच पर दो अमेरिकन महिलाएँ उपस्थित हैं—ये भी अपने हृदय में बैठा ही उद्देश्य धारण किये हुए हैं और मैं आप लोगों से निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि ये भी हमारे इस गरीब देश के कल्याण के लिए अपने जीवन की उत्सर्ग करने को तैयार हैं। इस अवसर पर मैं तुम लोगों को एक स्वदेशवासी का नाम याद दिलाना चाहता हूँ। इन्होंने इंग्लैंड और अमेरिका जाति दोनों को देखा है, उनके ऊपर मेरा बड़ा विश्वास और धरोरा है, इन्हें मैं विशेष सम्मान और प्रेम की दृष्टि से देखता हूँ आध्यात्मिक राज्य में ये बहुत माने कड़े हुए हैं, ये बड़ी बुद्धता के साथ और बुपचाप हमारे देश के कल्याण के लिए कार्य कर रहे हैं आज यदि उन्हें किसी और जगह कोई विशेष काम न होता तो वे अबस्य ही इस समा में उपस्थित होते—यहाँ पर मेरा मतलब श्री मोहिनीमोहन कट्टोपाध्याय से है। इन लोगों के अतिरिक्त अब इंग्लैंड ने कुमारी मारगरेट मोबस को उपहारस्वरूप भेजा है—इससे हम बहुत कुछ आशा रखते हैं। अब और अधिक बातें न कर मैं तुम लोगों से कुमारी मारगरेट मोबस का परिचय कराता हूँ जो तुम्हारे समक्ष भाषण करेगी।

जब सिस्टर निरंजिता ने अपना दिक्कतस्व ध्यास्यान समाप्त कर दिया तब स्वामी जी फिर खड़े हुए और उन्होंने कहा

जल्दी या देरी से माया के बन्धन से मुक्त होंगे। यही हमारा सबसे पहला कर्तव्य है। अनन्त आशा से ही अनन्त आकाशा और चैष्टा की उत्पत्ति होती है। यदि यह विश्वास हमारे अन्दर बैठ जाय तो वह हमारे जातीय जीवन मे व्यास और अर्जुन का समय—वह समय, जब कि हमारे यहाँ से समग्र मानव जाति के लिए कल्याणकर उदात्त मतवाद प्रचारित हुआ था—ले आयेगा। आज हम लोग आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि और आध्यात्मिक विचारो मे बहुत ही पिछड गये हैं—भारत मे यथेष्ट परिमाण मे आध्यात्मिकता विद्यमान थी, इतने अधिक परिमाण मे थी कि उसकी आध्यात्मिक महानता ने ही भारतीयो को सारे ससार की जातियो का सिरमौर बना दिया था। और यदि परम्परा तथा लोगो की आशा पर विश्वास किया जाय तो हमारा वह दिन फिर लौट आयेगा, और वह तुम लोगो के ऊपर ही निर्भर करता है। ऐ बगाली नवयुवको, तुम लोग धनी-मानियो और बडे आदमियो का मुंह ताकना छोड दो। याद रखो, ससार मे जितने भी बडे बडे और महान् कार्य हुए है, उन्हें गरीबो ने ही किया है। इसलिए ऐ गरीब बगालियो, उठो और काम मे लग जाओ, तुम लोग सब काम कर सकते हो और तुम्हे सब काम करने पडेगे। यद्यपि तुम गरीब हो, फिर भी बहुत लोग तुम्हारा अनुसरण करेगे। दृढचित्त बनो और इससे भी बढकर पूर्ण पवित्र और धर्म के मूल तत्व के प्रति निष्ठावान बनो। विश्वास रखो कि तुम्हारा भविष्य अत्यन्त गौरवपूर्ण है। ऐ बगाली नवयुवको, तुम लोगो के द्वारा ही भारत का उद्धार होनेवाला है। तुम इस पर विश्वास करो या न करो, पर तुम इस बात पर विशेष रूप से ध्यान रखो और ऐसा मत समझो कि यह काम आज या कल ही पूरा हो जायगा। मुझे अपनी देह और अपनी आत्मा के अस्तित्व पर जैसा दृढ विश्वास है, इस पर भी मेरा वैसा ही अटल विश्वास है। इसीलिए ऐ बगीय नवयुवको, तुम्हारे प्रति मेरा हृदय इतना आकृष्ट है। जिनके पास धन-दौलत नही है, जो गरीब है, केवल उन्ही लोगो का भरोसा है, और चूँकि तुम गरीब हो, इसलिए तुम्हारे द्वारा यह कार्य होगा। चूँकि तुम्हारे पास कुछ नही है, इसीलिए तुम सच्चे हो सकते हो, और सच्चे होने के कारण ही तुम सब कुछ त्याग करने के लिए तैयार हो सकते हो। बस, केवल यही बात मैं तुमसे अभी अभी कह रहा था। और पुन तुम्हारे समक्ष मैं इसे दुहराता हूँ—यही तुम लोगो का जीवन-व्रत है और यही मेरा भी जीवन-व्रत है। तुम चाहे किसी भी दार्शनिक मत का अवलम्बन क्यो न करो, मैं यहाँ पर केवल यही प्रमाणित करना चाहता हूँ कि सारे भारत मे मानव जाति की पूर्णता मे अनन्त विश्वासरूप प्रेम-सूत्र ओतप्रोत भाव से विद्यमान है। मैं चाहता हूँ कि इस विश्वास का सारे भारत मे प्रचार हो।

वाला जीवन भर भीक मांगता रहे ता क्या यहाँ पर मित्रता स्थापित हो सकती है? ये सब बातें कह देना बहुत आसान है पर मेरा तात्पर्य यह है कि पारस्परिक सहयोग के बिना हम लोग कभी शक्तिशाली नहीं हो सकते। इसीलिए मैं तुम लोगों को भिन्नमार्गों की तरफ़ ग़ौर से धर्माचार्य के रूप में ईश्वर और अमेरिका आदि देशों में जाने के लिए कह रहा हूँ। हमें अपने सामर्थ्य के अनुसार विनिमय के निमन का प्रयोग करना होगा। यदि हमें इस लोक में सुखी रहने के उपाय सीखने हैं तो हम भी उसके बचसे में क्यों न उन्हें अनसूत काम तक सुखी रहने के उपाय बतायें ?

सर्वोपरि, समग्र मानव जाति के कल्याण के लिए कार्य करते रहो। तुम एक संकीर्ण बंदे के अन्दर बँधे रहकर अपने को 'बुद्ध' हिन्दू समझने का जो गर्व करते हो उसे छोड़ दो। मृत्यु सबके लिए राहबेज रही है और इसे कभी मठ भूको जो सर्वाधिक अद्भुत ऐतिहासिक सत्य है कि संसार की सब जातियों को भारतीय साहित्य में निबद्ध बनातम सत्यसमूह को सीखने के लिए धर्म ब्राह्मण कर भारत के चरणों के समीप बैठना पड़ेगा। भारत का विनाश नहीं है भीम का भी नहीं है और बापान का भी नहीं। अतएव हमें अपने धर्मस्वी मेस्वंब की बात को सर्वथा स्मरण रखना होगा और ऐसा करने के लिए, हमें रास्ता बताने के लिए एक पत्रप्रसार्क की आवश्यकता है—यह रास्ता जिसके विषय में मैं अभी तुम लोगों से कह रहा था। यदि तुम लोगों में कोई ऐसा व्यक्ति हो जो यह विश्वास न करता हो यदि हमारे यहाँ कोई ऐसा हिन्दू वास्तविक हो जो यह विश्वास करने के लिए उद्यत न हो कि हमारा धर्म पूर्णतः आध्यात्मिक है तो मैं उसे हिन्दू मानने को तैयार नहीं हूँ। मुझे याद है, एक बार काश्मीर राज्य के किसी गाँव में मैंने एक बूढ़ी औरत से बातचीत करते समय पूछा था 'तुम किस धर्म को मानती हो?' इस पर बूढ़ा ने उपाक से जबाब दिया था "ईश्वर को बस्यबाव उसकी इया से मैं मुसलमान हूँ। इसके बाद किसी हिन्दू से भी यही प्रश्न पूछा तो उसने साधारण ढंग से यह दिया "मैं हिन्दू हूँ। श्लोपनिषद् का यह महावाक्य स्मरण आता है—'अज्ञानं वा अद्भुतं विश्वासः। तद्विश्वेता के जीवन में अज्ञान का एक गुणधर दृष्टान्त दिखायी देता है। इस अज्ञान का प्रचार करना ही मेरा जीवनोद्देश्य है। मैं तुम लोगों से फिर एक बार कहना चाहता हूँ कि यह अज्ञान ही मानव जाति के जीवन का और संसार के सब धर्मों का महत्वपूर्ण अंग है। सबसे पहले अपने आप पर विश्वास करने का अभ्यास करो। यह जान लो कि कोई आधर्मिक छोटे से बाल-बुद्ध के बराबर ही सकता है और इसका व्यक्ति पर्वताकार तरंग के समान बड़ा। पर उस छोटे बाल-बुद्ध और पर्वताकार तरंग दोनों के ही पीछे अनन्त समुद्र है। अतएव सबका जीवन आश्रित है सबके लिए मुक्ति का रास्ता खुला हुआ है और सभी

अत्यन्त अकिंचन अश हो, इसीलिए केवल इस तुच्छ स्वयं के अभ्युदयार्थं यत्न करने की अपेक्षा यह श्रेष्ठ है कि तुम अपने करोड़ी भाइयों की सेवा करते रहो।

सर्वत्र पाणिपाद तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।  
सर्वत्र श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥  
(गीता १३।१३)

—‘सर्वत्र उसके हाथ और पैर हैं, सर्वत्र उसके नेत्र, शिर और मुख हैं तथा लोक में सर्वत्र उसके कान हैं। वह ईश्वर सर्वव्यापी होकर सर्वत्र विद्यमान है।’

इस प्रकार धीरे धीरे मृत्यु को प्राप्त हो जाओ। ऐसी ही मृत्यु में स्वर्ग है, उसीमें सारी भलाई है। और इसके विपरीत समस्त अमंगल तथा नरक है।

अब हमें यह विचार करना चाहिए कि किन उपायों अथवा साधनों द्वारा हम इन आदर्शों को कार्यरूप में परिणत कर सकते हैं। सबसे पहले हमें यह समझ लेना चाहिए कि हमारा आदर्श ऐसा न हो जो असम्भव हो। अत्यन्त उच्च आदर्श रखने में एक बुराई यह है कि उससे राष्ट्र कमजोर हो जाता है तथा धीरे धीरे गिरने लगता है। यही हाल बौद्ध तथा जैन सुधारों के बाद हुआ। परन्तु साथ ही हमें यह भी समझ लेना चाहिए कि अत्यधिक व्यावहारिकता भी ठीक नहीं है, क्योंकि यदि तुममें थोड़ी भी कल्पना-शक्ति नहीं है, यदि तुम्हारे पथ-प्रदर्शन के लिए तुम्हारे सामने कोई भी आदर्श नहीं है, तो तुम निरे जगली ही हो। अतएव हमें अपने आदर्शों को कभी नीचा नहीं करना चाहिए और साथ ही यह भी न होना चाहिए कि हम व्यावहारिकता को बिल्कुल भूल बैठें। इन दो ‘अतियों’ से हमें बचना चाहिए। हमारे देश में तो प्राचीन पद्धति यह है कि हम एक गुफा में बैठ जायें, वही ध्यान करें और बस वही मर जायें, परन्तु मुक्ति-लाभ के लिए यह गलत सिद्धान्त है कि हम दूसरों से आगे ही बढ़ते चले जायें। आगे या पीछे साधक को यह समझ लेना चाहिए कि यदि वह अपने अन्य भाइयों की मुक्ति के लिए भी यत्न नहीं करता है तो उसे मुक्ति नहीं प्राप्त हो सकती। अतएव तुम्हें इस बात का यत्न करना चाहिए कि तुम्हारे जीवन में उच्च आदर्श तथा उत्कृष्ट व्यावहारिकता का सुन्दर सामंजस्य हो। तुम्हें इस बात के लिए तैयार होना चाहिए कि एक क्षण तो तुम पूर्ण रूप से ध्यान में मग्न हो सको, पर दूसरे ही क्षण (मठ के चरागाह की भूमि की ओर इशारा करके स्वामी जी ने कहा) इन खेतों को जोतने के लिए उद्यत हो जाओ। अभी तुम इस बात के योग्य बनो कि शास्त्रों की कठिन गुत्थियों को स्पष्ट रूप से समझा सको, पर दूसरे ही क्षण उमी उत्साह से इन खेतों की फसल को ले जाकर बाजार में भी बेच सको। छोटे से छोटे सेवा-टहल के कार्य

## सन्यास उसका आदर्श तथा साधन

१९ जून सन् १८९९ को जब स्वामी जी दूसरी बार पारश्वत्य देशों को जाने लगे उस अवसर पर विद्यार्थी के उपलक्ष्य में बेलुका मठ के युवा संन्यासियों ने उन्हें एक मातृपत्र दिया। उसके उत्तर में स्वामी जी ने जो कहा था उसका सारांश निम्नलिखित है

### स्वामी जी का मापन

यह समय कम्बा मापन देने का नहीं है, परन्तु संक्षेप में मैं कुछ उन बातों की बर्णना कल्पना बिनका तुम्हें जागरण करना चाहिए। पहले हमें अपने आदर्श की मभी मूर्ति समझ लेना चाहिए और फिर उन साधनों को भी जानना चाहिए, जिनके द्वारा हम उसको अर्पित कर सकते हैं। तुम लोगों में से जो संन्यासी हैं उन्हें सर्वत्र घुसरो के प्रति मलाई करते रहने का मत्न करना चाहिए, क्योंकि संन्यास का मही अर्थ है। इस समय 'रमाय' पर भी एक कम्बा मापन देने का अवसर नहीं है, परन्तु संक्षेप में मैं इसकी परिभाषा इस प्रकार करूँगा कि 'रमाय' का अर्थ है 'मृत्यु के प्रति प्रेम। सांसारिक जीवन से प्रेम करते हैं, परन्तु संन्यासी के लिए प्रेम करने की मृत्यु है। तो प्रकृत यह उठता है कि क्या फिर हम आत्महत्या कर लें? नहीं नहीं इससे बहुत दूर। आत्महत्या करनेवालों को मृत्यु तो कभी प्यारी नहीं होती क्योंकि यह बहुधा देखा गया है कि कोई मनुष्य आत्महत्या करने जाता है और यदि वह अपने मत्न में असफल रहता है तो बुझाए फिर वह उसका कभी नाम भी नहीं लेता। तो फिर प्रकृत यह है कि मृत्यु के लिए प्रेम कैसा होता है?

हम यह निश्चित जानते हैं कि हम एक न एक दिन अवश्य मरेने और जब ऐसा है तो फिर किसी उत्कर्म के लिए ही हम क्यों न मरें! हमें चाहिए कि हम अपने सारे कार्यों को जैसे जाना-बीना सोना उठना बैठना आदि सभी—आत्म त्याग की ओर लगा दें। भोजन द्वारा तुम अपने शरीर को पुष्ट करते हो परन्तु उससे क्या काम हुआ यदि तुमने उस शरीर को दूसरों की मलाई के लिए अर्पण न किया? इसी प्रकार तुम पुस्तकें पढ़कर अपने मस्तिष्क को पुष्ट करते हो परन्तु उससे भी कोई काम नहीं यदि समस्त संसार के हित के लिए तुमने उस मस्तिष्क को सेवा कर आत्म-त्याग न किया। चूँकि साधन संसार एक है और तुम इसके एक

## मैंने क्या सीखा ?

(ढाका में मार्च, सन् १९०१ में दिया गया व्याख्यान)

ढाका में स्वामी जी ने दो भाषण अंग्रेजी में दिये। प्रथम भाषण का विषय था, 'मैंने क्या सीखा ?' और द्वितीय का विषय था, 'वह धर्म जिसमें हम पैदा हुए।' बंगला भाषा में एक शिष्य ने प्रथम भाषण की जो रिपोर्ट ली, उसमें व्याख्यान का सारांश आ गया है और उसीका हिन्दी रूपान्तर निम्नलिखित है

### स्वामी जी का भाषण

सर्वप्रथम मैं इस बात पर हर्ष प्रकट करता हूँ कि मुझे पूर्वी बंगाल में आने और देश के इस भाग की सविशेष जानकारी प्राप्त करने का अवसर मिला। यद्यपि मैं पश्चिम के बहुत से सम्य देशों में घूम चुका हूँ, पर अपने देश के इस भाग के दर्शन का सौभाग्य मुझे नहीं मिला था। अपनी ही जन्मभूमि बंगाल के इस अचल की विशाल नदियों, विस्तृत उपजाऊ मैदानों और रमणीक ग्रामों का दर्शन पाने पर मैं अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। मैं नहीं जानता था कि इस देश के जल और स्थल सभी में इतना सौन्दर्य तथा आकर्षण भरा पड़ा है। किन्तु नाना देशों के भ्रमण से मुझे यह लाभ हुआ है कि मैं विशेष रूप से अपने देश के सौन्दर्य का मूल्यांकन कर सकता हूँ।

इसी भाँति मैं पहले धर्म-जिज्ञासा से नाना सम्प्रदायों में—अनेक ऐसे सम्प्रदायों में जिन्होंने दूसरे राष्ट्रों के भावों को अपना लिया है—भ्रमण करता था, दूसरों के द्वार पर भिक्षा माँगता था। तब मैं जानता न था कि मेरे देश का धर्म, मेरी जाति का धर्म इतना सुन्दर और महान् है। कई वर्ष हुए मुझे पता लगा कि हिन्दू धर्म ससार का सर्वाधिक पूर्ण सन्तोषजनक धर्म है। अतः मुझे यह देखकर हादिक क्लेश होता है कि यद्यपि हमारे देशवासी अप्रतिम धर्मनिष्ठ होने का दावा करते हैं, पर हमारे इस महान् देश में यूरोपीय ढंग के विचार फैलने के कारण उनमें धर्म के प्रति व्यापक उदासीनता आ गयी है। हाँ, यह बात जरूर है और उससे मैं भली भाँति अवगत हूँ कि उन्हें जिन भौतिक परिस्थितियों में जीवन-यापन करना पड़ता है, वे प्रतिकूल हैं।

के लिए भी तुम्हें उद्यत रहना चाहिए और वह भी केवल यही नहीं बरू सर्वत्र।

अब दूसरी बात जो ध्यान में रखने योग्य है वह यह है कि इस मठ का उद्देश्य है 'मनुष्य' का निर्माण करना। तुम्हें केवल यही नहीं सीखना चाहिए, जो हमें ऋषियों ने सिखाया है। वे ऋषि जले मये और उनकी सम्मतियाँ भी ऊँहीं छाय जसी यहीं। अब तुम्हें स्वयं ऋषि बनना होगा। तुम भी बैठे ही मनुष्य हो जाँते कि बड़े से बड़े व्यक्ति जो कभी पैदा हुए, यहाँ तक कि तुम अबतारों के सङ्घ हो। केवल प्रार्थों के पढ़ने से ही क्या होगा? केवल ध्यान-धारणा से भी क्या होगा तथा केवल मंत्र-तंत्र भी क्या कर सकते हैं? तुम्हें तो अपने ही पैरों पर खड़े होना चाहिए और इस मये ढंग से कार्य करना चाहिए—वह ढंग जिससे मनुष्य 'मनुष्य' बन जाता है। सच्चा 'मर' यही है जो इतना अक्षितशाली हो जिसकी सक्ति स्वयं है, परन्तु फिर भी जिसका हृदय एक मारी के सङ्घ कीमल हो। तुम्हारे चारों ओर जो करोड़ों व्यक्ति हैं उनके लिए तुम्हारे हृदय में प्रेम जाग होना चाहिए, परन्तु साथ ही तुम जोड़े के समान बड़ और कठोर बने रहो पर ध्यान रहे कि साथ ही तुममें आशा-वासन की ममता भी हो। मैं जानता हूँ कि ये पुत्र एक दूसरे के विरोधी प्रतीत होते हैं, परन्तु हाँ ऐसे ही परस्पर विरोधी प्रतीत होनेवाले पुत्र तुममें होने चाहिए। यदि तुम्हारे वरिष्ठ तुम्हें इस बात की आज्ञा दें कि तुम नबी में दूब पड़ो और एक मगर को पकड़ लाओ तो तुम्हारा कर्तव्य यह होना चाहिए कि पहले तुम आशा-वासन करो और फिर कारण पूछो। भले ही तुम्हें भी हुई आज्ञा ठीक न हो परन्तु फिर भी तुम पहले उसका पाठन करो और फिर उसका प्रतिवार करो। हमारे सम्प्रदायों में विशेषकर बंगीय सम्प्रदायों में एक विशेष बोध यह है कि यदि किसीके मत में कुछ अन्तर होता है तो बिना कुछ सोचे-विचारे वह तट से एक नया सम्प्रदाय शुरू कर देता है। चौड़ा छा भी बनने का उत्तम औरत नहीं होता। अतएव अपने संघ के प्रति तुममें अटूट मया तथा विश्वास होना चाहिए। यहाँ अबज्ञा को तनिक भी स्थान नहीं मिल सकता और यदि कहीं वह दिखानी दे तो निदर्शतापूर्वक उसे कुचलकर नष्ट कर लो। हमारे इस संघ में एक भी अबज्ञाकारी सदस्य नहीं रह सकता और यदि कोई हो तो उसे निकाल बाहर करो। हमारे इस सिधिर में ब्याबाबी नहीं चल सकती यहाँ एक भी बीशेबाज नहीं रह सकता। इतने स्वतंत्र रहो जिसकी नामु, पर हाँ साथ ही ऐसे आज्ञापालक तथा ममर जैसा कि यह पीना या कुता।

और मिश्या है। लाख यत्न करो, पर इसे बिना छोड़े कदापि ईश्वर को नहीं पा सकते। यदि यह न कर सको तो मान लो कि तुम दुर्बल हो, किन्तु स्मरण रहे कि अपने आदर्श को कदापि नीचा न करो। सड़ते हुए मुर्दे को सोने के पत्ते से ढकने का यत्न न करो।' अस्तु। उनके मतानुसार यदि धर्म की उपलब्धि करनी है, यदि ईश्वर की प्राप्ति करनी है तो तुम्हारा प्रथम कर्तव्य है कि तुम लुकाछिपी का खेल खेलना छोड़ दो। मैंने क्या सीखा ? मैंने इस प्राचीन सम्प्रदाय से क्या सीखा ? यही सीखा

दुर्लभ त्रयमेवैतत् देवानुग्रहहेतुकम्।

मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्व महापुरुषसश्रयः॥

(विवेकचूडामणि ३)

—'मनुष्यत्व, मुमुक्षुत्व और महापुरुष का ससर्ग इन तीनों का मिलना बहुत दुर्लभ है। ये तीनों बिना ईश्वर की कृपा के नहीं मिल सकते।' मुक्ति के लिए सबसे आवश्यक वस्तु है—मनुष्यत्व या मनुष्य के रूप में जन्म, क्योंकि मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य-शरीर ही उपयुक्त है। इसके बाद चाहिए मुमुक्षुत्व। सम्प्रदाय और व्यक्ति-भेद से हमारी साधन प्रणालियाँ भिन्न भिन्न हैं। विभिन्न व्यक्ति यह भी दावा कर सकते हैं कि ज्ञानोपार्जन के उनके विशेष अधिकार एव साधन हैं और जीवन में श्रेणी-भेद के कारण उनमें भी विभेद है, किन्तु यह नि सकोच कहा जा सकता है कि मुमुक्षुत्व के बिना ईश्वरोपलब्धि असम्भव है। मुमुक्षुत्व क्या है ? इस ससार के सुख-दुःख से छुटकारा पाने की तीव्र इच्छा, इस ससार से प्रबल निर्वेद। जिस समय भगवान् के दर्शन के लिए यह तीव्र व्याकुलता होगी उसी समय समझना कि तुम ईश्वर-प्राप्ति के अधिकारी हुए हो।

इसके बाद चाहिए ब्रह्मदर्शी महापुरुष का सग अर्थात् गुरु-लाम। गुरु-परम्परा से बिना क्रमभंग के जो शक्ति प्राप्त होती है, उसीके साथ अपना सयोग स्थापित करना होगा, क्योंकि वैराग्य और तीव्र मुमुक्षुत्व रहने पर भी उसके बिना कुछ न हो सकेगा। शिष्य को चाहिए कि वह अपने गुरु को परामर्शदाता, दार्शनिक, सुहृद् और पथप्रदर्शक के रूप में अगीकार करे। गुरु करना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है। श्रोत्रियोऽवृजिनोऽकामहतो यो ब्रह्मविस्तम। (विवेकचूडामणि ३३)

—'जिसे वेदों का रहस्य-ज्ञान है, जो निष्पाप है, जिसे कोई इच्छा न हो, जो ब्रह्म-ज्ञानियों में श्रेष्ठ हो अर्थात् श्रोत्रिय हो, जो केवल शास्त्रों का पठित ही न हो, वरन् उनके सूक्ष्म रहस्यों का भी ज्ञाता हो और जिसे शास्त्रों के वास्तविक तात्पर्य का बोध हो'—वही गुरु होने योग्य है। 'विविध शास्त्रों को पढ़ने मात्र से तो



वर्तमान काल में हम लोगों के बीच ऐसे कुछ सुधारक हैं जो हिन्दू जाति के पुनरुत्थान के लिए हमारे धर्म में सुधार या यों कहिए कि उल्ट-पल्ट करना चाहते हैं। निस्सन्देह उन लोगों में कुछ विचारशील व्यक्ति हैं लेकिन साथ ही ऐसे बहुत से लोग भी हैं जो अपने उद्देश्य को बिना जाने दूसरों का अन्यायकर ब करते हैं और अत्यन्त मूर्खतापूर्ण कार्य करते हैं। इस वर्ग के सुधारक हमारे धर्म में विवादास्पद विचारों का प्रवेश करने में बड़ा उत्साह दिखाते हैं। यह सुधारक नये मूर्ति-पूजा का विरोधी है। इस वर्ग के सुधारक कहते हैं कि हिन्दू धर्म उन्ना धर्म नहीं है क्योंकि इसमें मूर्ति-पूजा का विधान है। मूर्ति-पूजा क्या है? यह अच्छी है या बुरी—इसका अनुसन्धान कोई नहीं करता केवल दूसरों के द्वारे पर वे हिन्दू धर्म को बदनाम करने का साहस करते हैं। एक दूसरा नये और भी है जो हिन्दुओं के प्रत्येक रीति-रिवाजों में वैज्ञानिकता ढूँढ निकालने का कष्ट प्रयत्न कर रहा है। वे सवा विद्युत् शक्ति शुम्भकीय शक्ति वायु-कम्पन तथा उसी तरह की अन्य बातें किया करते हैं। कौन कह सकता है कि वे ज्यो एक दिन ईश्वर की परियाया करने में उसे विद्युत्-कम्पन का समूह न कह सकें। जो कुछ भी ही मैं इनका भी भला करे! भगवन्दा ही निम्न निम्न प्रकृतियों और प्रवृत्तियों के द्वारा अपना कार्य साधन करती हैं।

उक्त विचारवालों के विपरीत एक और वर्ग है, यह प्राचीन धर्म कहता है कि हम लोग तुम्हारी बात की बात निकालनेवाला उर्कबाद नहीं जानते और न हमें जानने की इच्छा ही है। हम लोग तो ईश्वर और आत्मा का साक्षात्कार करना चाहते हैं। हम तुल-मु समय इस संसार को छोड़कर इसके अतीत प्रदेश में जहाँ परम आनन्द है, जाना चाहते हैं। यह धर्म कहता है कि 'सविश्वास संया-त्याग करने से मुक्ति होती है' किन्तु राम विष्णु आदि किसी एक में ईश्वर-बुद्धि रखकर यज्ञ-भक्तिपूर्वक उपासना करने से मुक्ति होती है। मुझे भव है कि मैं इन कुछ आस्थावालों के प्राचीन धर्म का हूँ।

इसके अतिरिक्त एक और वर्ग है जो ईश्वर और संसार दोनों की एक साथ ही उपासना करने के लिए कहता है। यह धर्म नहीं है। वे जो कहते हैं वह उनके हृदय का भाव नहीं रहता। प्रकृत महात्माओं का उपदेश है

जहाँ राम तर्ह काम नहिं जहाँ काम तर्हि राम।

तुलसी कहते हैं तर्हि रवि रजनी इक ठाम ॥

महापुरुषों की भाषा हमसे दम बात नहीं बोधना करती है कि 'सविश्वास को जाना चाहते हो, तो काम-नाश्रम का त्याग करना हीना। यह संसार अकार, मायामय

जौर मिथ्या है। लाख यत्न करो, पर इसे बिना छोड़े कदापि ईश्वर को नहीं पा सकते। यदि यह न कर सको तो मान लो कि तुम दुर्बल हो, किन्तु स्मरण रहे कि अपने आदर्श को कदापि नीचा न करो। सड़ते हुए मुर्दे को सोने के पत्ते से ढकने का यत्न न करो।' अस्तु। उनके मतानुसार यदि धर्म की उपलब्धि करनी है, यदि ईश्वर की प्राप्ति करनी है तो तुम्हारा प्रथम कर्तव्य है कि तुम लुकाछिपी का खेल खेलना छोड़ दो। मैंने क्या सीखा ? मैंने इस प्राचीन सम्प्रदाय से क्या सीखा ? यही सीखा

दुर्लभ त्रयमेवैतत् देवानुग्रहहेतुकम् ।  
मनुष्यत्व मुमुक्षुत्व महापुरुषसश्रयम् ॥  
(विवेकचूडामणि ३)

—'मनुष्यत्व, मुमुक्षुत्व और महापुरुष का ससर्ग इन तीनों का मिलना बहुत दुर्लभ है। ये तीनों बिना ईश्वर की कृपा के नहीं मिल सकते।' मुक्ति के लिए सबसे आवश्यक वस्तु है—मनुष्यत्व या मनुष्य के रूप में जन्म, क्योंकि मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य-शरीर ही उपयुक्त है। इसके बाद चाहिए मुमुक्षुत्व। सम्प्रदाय और व्यक्ति-भेद से हमारी साधन प्रणालियाँ भिन्न भिन्न हैं। विभिन्न व्यक्ति यह भी दावा कर सकते हैं कि ज्ञानोपाजन के उनके विशेष अधिकार एवं साधन हैं और जीवन में श्रेणी-भेद के कारण उनमें भी विभेद है, किन्तु यह निःसर्ग कहा जा सकता है कि मुमुक्षुत्व के बिना ईश्वरोपलब्धि असम्भव है। मुमुक्षुत्व क्या है ? इस ससार के सुख-दुःख से छुटकारा पाने की तीव्र इच्छा, इस ससार से प्रबल निर्वेद। जिस समय भगवान् के दर्शन के लिए यह तीव्र व्याकुलता होगी उसी समय समझना कि तुम ईश्वर-प्राप्ति के अधिकारी हुए हो।

इसके बाद चाहिए ब्रह्मदर्शी महापुरुष का सग अर्थात् गुरु-लाभ। गुरु-परम्परा से बिना क्रमभंग के जो शक्ति प्राप्त होती है, उसीके साथ अपना सयोग स्थापित करना होगा, क्योंकि वैराग्य और तीव्र मुमुक्षुत्व रहने पर भी उसके बिना कुछ न हो सकेगा। शिष्य को चाहिए कि वह अपने गुरु को परामर्शदाता, दार्शनिक, सुहृद् और पथप्रदर्शक के रूप में अंगीकार करे। गुरु करना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है। श्रोत्रियोऽवृजिनोऽकामहतो यो ब्रह्मवित्तम । (विवेकचूडामणि ३३)

—'जिसे वेदों का रहस्य-ज्ञान है, जो निष्पाप है, जिसे कोई इच्छा न हो, जो ब्रह्म-ज्ञानियों में श्रेष्ठ हो अर्थात् श्रोत्रिय हो, जो केवल शास्त्रों का पढित ही न हो, वरन् उनके सूक्ष्म रहस्यों का भी ज्ञाता हो और जिसे शास्त्रों के वास्तविक तात्पर्य का बोध हो'—वही गुरु होने योग्य है। 'विविध शास्त्रों को पढ़ने मात्र से तो

वे बस ठोठे बन गये हैं। उस व्यक्ति को वास्तविक पवित्र समझना चाहिए जिसने सात्वतों का केवल एक अक्षर पढ़कर (विष्य) प्रेम का काम कर लिया।<sup>१</sup> केवल पौषी ज्ञान से पवित्र हुए लोगों से काम न चलेगा। आबकल प्रत्येक व्यक्ति नुरु बनना चाहता है। अंगारु मिथुक कास स्वने का बान करना चाहता है। तो नुरु अवश्य ही ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जिसे पाप छू तक न गया हो जो अकामहन हो अर्थात् जो कामनाओं से सन्तप्त न हो विसुद्ध परोपकार के सिवा जिसका बुररा कोई इरादा न हो जो अहंशुक इयासिन्दु हो और जो नाम-मद्य के लिए अथवा किसी स्वार्थ-सिद्धि के लिए अर्थापवेश न करता हो। जो ब्रह्म की मही प्रति बान चुका है अर्थात् जिसने ब्रह्म-साक्षात्कार कर लिया है, जिसके लिए ईश्वर 'कठला-मसकवद्' है—भूति का कहना है कि यही नुरु होने योग्य है। जब यह आध्यात्मिक संयोग स्थापित हो जाता है तब ईश्वर का साक्षात्कार होता है—तब ईश्वर-भूति सुरुम होती है।

नुरु से बीजा सेने के पश्चात् सत्वान्नेपी सावक के लिए आवश्यकता पड़ती है अम्यास की। सुरुपविष्ट सामनों के सहारे इष्ट के तिरस्तर प्यान द्वारा सत्य का कार्यरूप में परिचर करने के सक्ने और बारंबार प्रयास को अम्यास कहते हैं। मनुष्य ईश्वर प्राप्ति के लिए चाहे जितना ही व्याकुल क्यों न हा चाहे कितना ही अज्जना नुरु क्यों न मिसे साबना—अम्यास बिना किम उस कभी ईश्वरोपभूमि न होगी। जिस समय अम्यास बुर हो जायगा उसी समय ईश्वर प्रत्यक्ष हीपा।

इसीलिए कहता हूँ कि हे हिन्दुओं हे आर्य सन्तानों नुरु नोम हमारे धर्म के हिन्दुओं के इस महान् आदर्श को कभी न भूलो। हिन्दुओं का प्रथम स्वय इन भवसागर के पार जाना है—कमल इसी संसार की छोड़ना होगा ऐसा नहीं है अपितु स्वर्ग को भी छोड़ना पड़ेगा—अनुम के ही छोड़ने से काम नहीं चलेगा नुरु का भी त्याग आवश्यक है और इसी प्रकार सृष्टि-संसार बुर-जला इन सबके अतीत होना होगा और अन्ततोगत्वा सच्चिदानन्द ब्रह्म का साक्षात्कार करना होगा।

१ पौषी बड़ नुनी जयो, बंदिन भया न नोय।

अक्षर एक जो प्रेम से बड़े तो पवित्र होय॥

## वह धर्म जिसमें हम पैदा हुए

३१ मार्च, १९०१ को ढाका में एक सभा का आयोजन खुले मैदान में किया गया था। स्वामी जी ने इस सभा में उपर्युक्त विषय पर अंग्रेजी में दो घण्टे व्याख्यान दिया। श्रोताओं की बहुत बड़ी भीड़ एकत्र थी। एक शिष्य ने उक्त भाषण की रिपोर्ट बंगला में तैयार की, जिसका हिन्दी रूपान्तर निम्नलिखित है

प्राचीन काल में हमारे देश में आध्यात्मिक भाव की अतिशय उन्नति हुई थी। हमें आज वही प्राचीन गाथा स्मरण करनी होगी। किन्तु प्राचीन गौरव के अनुचिन्तन में सबसे बड़ी आपत्ति यह है कि हम कोई नवीन काम करना पसन्द नहीं करते और केवल अपने प्राचीन गौरव के स्मरण और कीर्तन से ही सन्तुष्ट होकर अपने को सर्वश्रेष्ठ समझने लग जाते हैं। हमें इस सम्बन्ध में सावधान रहना चाहिए। यह सही है कि प्राचीन काल में ऐसे अनेक ऋषि-महर्षि थे जिन्हें सत्य का साक्षात्कार हुआ था। किन्तु प्राचीन गौरव के स्मरण से वास्तविक उपकार तभी होगा, जब हम भी उनके सदृश ऋषि हो सकें। केवल इतना ही नहीं, मेरा तो दृढ विश्वास है कि हम और भी श्रेष्ठ ऋषि हो सकेंगे। भूतकाल में हमारी खूब उन्नति हुई थी—मुझे उसे स्मरण करते हुए बड़े गौरव का अनुभव होता है। वर्तमान अवनत अवस्था को देखकर भी मैं दुःखी नहीं होता और भविष्य में जो होगा, उसकी कल्पना कर मैं आशान्वित होता हूँ। ऐसा क्यों? क्योंकि मैं जानता हूँ कि बीज का सम्पूर्ण रूपान्तरण होना होता है, हाँ, जब बीज का बीजत्व भाव नष्ट होगा, तभी वह वृक्ष हो सकेगा। इसी प्रकार हमारी वर्तमान अवनत अवस्था के भीतर ही, चाहे थोड़े समय के लिए ही, भविष्य की हमारी धार्मिक महानता की सम्भावनाएँ प्रसुप्त हैं जो अधिक शक्तिशाली एवं गौरवशाली रूपों में उठ खड़ी होने के लिए तत्पर हैं। अब हमें विचार करना चाहिए कि जिस धर्म में हमने जन्म लिया है, उसमें सहमत होने के लिए समान भूमियाँ क्या हैं? ऊपर से विचार करने पर हमें पता चलता है कि हमारे धर्म में नाना प्रकार के विरोध हैं। कुछ लोग अद्वैतवादी, कुछ विशिष्टा-द्वैतवादी और कुछ द्वैतवादी हैं। कोई अवतार मानते हैं, कोई मूर्ति-पूजा में विश्वास रखते हैं तो कोई निराकारवादी हैं। आचार के सम्बन्ध में भी नाना प्रकार की विभिन्नता दिखायी पड़ती है। जाट लोग मुसलमान या ईसाई की कन्या से विवाह करने पर भी जातिच्युत नहीं होते। वे बिना किसी विरोध के सब हिन्दू मन्दिरों

में प्रवेश कर सकते हैं। पंजाब के अनेक गाँवों में जो व्यक्ति सूबर का मांस नहीं खाता उसे लोग हिन्दू समझते ही नहीं। नेपाल में ब्राह्मण चारों बर्षों में विवाह कर सकता है, जब कि बंगाल में ब्राह्मण अपनी जाति की अन्य शाखाओं में भी विवाह नहीं कर सकता। इसी प्रकार की और भी विभिन्नताएँ देखने में आती हैं। किन्तु इन सभी विभिन्नताओं के बावजूद एकता का एक समान बिन्दु है कि हमारे धर्म के अन्तर्निर्माणों में भी एकता की एक समान भूमि है जैसे कोई भी हिन्दू गोमांस भक्षण नहीं करता। इसी प्रकार हमारे धर्म के सभी अन्तर्भागों में एक महान् सामंजस्य है।

पहले तो शास्त्रों की व्याख्यान करते समय एक महत्त्वपूर्ण तथ्य हमारे सामने आता है कि केवल उन्हीं धर्मों ने उत्तरोत्तर उत्पत्ति की जिनके पास अपने एक या अनेक शास्त्र थे फिर चाहे उन पर कितने ही अत्याचार किये गये हों। नूतनी धर्म अपनी विशिष्ट सुन्दरताओं के होते हुए भी शास्त्र के अभाव में अस्त हो गया जब कि पृथ्वी धर्म यदि धर्म-ग्रन्थ (Old Testament) के अभाव में आज भी बहुमूल्य रूप से प्रतापशाली है। संसार के सबसे प्राचीन ग्रन्थ वेद पर आधारित होने के कारण यही हास हिन्दू धर्म का भी है। वेद के दो भाग हैं—कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड। भारतवर्ष के सौभाग्य अथवा दुर्मिष्य से कर्मकाण्ड का आजकल लोप हो गया है, हालाँकि दक्षिण में अब भी कुछ ब्राह्मण कभी कभी अजा-बलि देकर यज्ञ करते हैं, और हमारे विवाह-शांदादि के मन्त्रों में भी वैदिक क्रियाकाण्ड का आभास दिखायी पड़ जाता है। इस समय उस पूर्व की मूर्ति पुनः प्रतिष्ठित करने का उपाय नहीं है। कुमारिल भट्ट ने एक बार चेष्टा की थी किन्तु वे अपने प्रयत्न में असफल ही रहे। इसके बाद ज्ञानकाण्ड है, जिसे उपनिषद्, वेदान्त या श्रुति भी कहते हैं। आचार्य कोष अब कभी श्रुति का कोई वाक्य उद्धृत करते हैं तो वह उपनिषद् का ही होता है। यही वेदान्त धर्म इस समय हिन्दुओं का धर्म है। यदि कोई सम्प्रदाय सिद्धान्तों की दृढ़ प्रतिष्ठा करना चाहता है तो उसे वेदान्त का ही आचार लेना होगा। ईतनाही अथवा अईतनाही सभी को उसी आचार की धरण लेनी होगी। यहाँ तक कि वैष्णवों को भी अपने सिद्धान्तों की सत्यता सिद्ध करने के लिए योगास्थापनी उपनिषद् की धरण लेनी पड़ती है। यदि किसी नये सम्प्रदाय को अपने सिद्धान्तों के पुष्टिकारक अथवा उपनिषद् में नहीं मिलते तो वे एक नये उपनिषद् की रचना करके उसे व्यवहृत करने का यत्न करते हैं। अतीत में इसके कतिपय उदाहरण मिलते हैं।

इहाँ के सम्बन्ध में हिन्दुओं की यह धारणा है कि वे प्राचीन कास में किसी व्यक्ति विशेष की रचना अथवा ग्रन्थ मान नहीं हैं। वे उसे ईश्वर की अल्प

ज्ञानराशि मानते हैं जो किसी समय व्यक्त और किसी समय अव्यक्त रहती है। टीकाकार सायणाचार्य ने एक स्थान पर लिखा है, यो वेदेभ्योऽखिल जगत् निर्ममे— जिसने वेदज्ञान के प्रभाव से सारे जगत् की सृष्टि की है। वेद के रचयिता को कभी किसीने नहीं देखा। इसलिए इसकी कल्पना करना भी असम्भव है। ऋषि लोग उन मन्त्रों अथवा शाश्वत नियमों के मात्र अन्वेषक थे। उन्होंने आदि काल से स्थित ज्ञानराशि वेदों का साक्षात्कार किया था।

ये ऋषिगण कौन थे? वात्स्यायन कहते हैं, जिसने यथाविहित धर्म की प्रत्यक्ष अनुभूति की है, केवल वही ऋषि हो सकता है, चाहे वह जन्म से म्लेच्छ ही क्यों न हो। इसी लिए प्राचीन काल में जारज-पुत्र वशिष्ठ, धीवर-तनय व्यास, दासी-पुत्र नारद प्रभृति ऋषि कहलाते थे। सच्ची बात यह है कि सत्य का साक्षात्कार हो जाने पर किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं रह जाता। उपर्युक्त व्यक्ति यदि ऋषि हो सकते हैं तो हे आधुनिक कुलीन ब्राह्मण, तुम सभी और भी उच्च ऋषि हो सकते हो। इसी ऋषित्व के लाभ करने की चेष्टा करो, अपना लक्ष्य प्राप्त करने तक रुको नहीं, समस्त ससार तुम्हारे चरणों के सामने स्वयं ही नत हो जायगा।

ये वेद ही हमारे एकमात्र प्रमाण हैं और इन पर सबका अधिकार है।

यथेमा वाच कल्याणीमावादानि जनेभ्यः ।

ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय ॥<sup>१</sup>

क्या तुम हमें वेद में ऐसा कोई प्रमाण दिखला सकते हो, जिससे यह सिद्ध हो जाय कि वेद में सबका अधिकार नहीं है? पुराणों में अवश्य लिखा है कि वेद की अमुक शाखा में अमुक जाति का अधिकार है या अमुक अश सत्ययुग के लिए और अमुक अश कलियुग के लिए है। किन्तु, ध्यान रखो, वेद में इस प्रकार का कोई चिह्न नहीं है, ऐसा केवल पुराणों में ही है। क्या नौकर कभी अपने मालिक को आज्ञा दे सकता है? स्मृति, पुराण, तन्त्र—ये सब वही तक ग्राह्य हैं, जहाँ तक वे वेद का अनुमोदन करते हैं। ऐसा न होने पर उन्हें अविश्वसनीय मान कर त्याग देना चाहिए। किन्तु आजकल हम लोगों ने पुराणों को वेद की अपेक्षा श्रेष्ठ समझ रखा है। वेदों की चर्चा तो बगाल प्रान्त में लोप ही हो गयी है। मैं वह दिन शीघ्र देखना चाहता हूँ, जिस दिन प्रत्येक घर में गृहदेवता शालग्राम की मूर्ति के साथ साथ वेद की पूजा भी होने लगेगी, जब वच्चे, बूढ़े और स्त्रियाँ वेद-अर्चना का शुभारम्भ करेंगी।

बेवों के सम्बन्ध में पाश्चात्य विद्वानों के सिद्धान्तों में मेरा विश्वास नहीं है। आज बेवों का समय वे कुछ निश्चित करते हैं और कस उसे बदलकर फिर एक हजार वर्ष पीछे बसीट से जाते हैं। पुराणों के विषय में हम अजर कह जायें हैं कि वे वहीं तक प्राण्य हैं, जहाँ तक बेवों का समर्पन करते हैं। पुराणों में ऐसी अनेक बातें हैं जिनका बेवों के साथ मेक नहीं साठा। उदाहरण के लिए पुराण में लिखा है कि कोई व्यक्ति उस हजार वर्ष तक और कोई दूसरे बीस हजार वर्ष तक जीवित रहे किन्तु बेवों में लिखा है—अतामूर्खे पुष्कः। इतमें से हमारे लिए कौन सा मत स्वीकार्य है? निश्चय ही बेव। इस प्रकार के कर्मों के बाबजूद मैं पुराणों की निष्ठा नहीं करता। उनमें योग भक्ति ज्ञान और कर्म की अनेक सुन्दर सुन्दर बातें बेवों में आती हैं और हमें उन सभी को ग्रहण करना ही चाहिए। इसके बाद है तन्त्र। तन्त्र का वास्तविक अर्थ है साधन जैसे कापिस तन्त्र। किन्तु तन्त्र सब प्रायः सीमित अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। बौद्ध परमाविष्मन्नी एवं अहिंसा के प्रचारक-प्रसारक गुप्तियों के घासन-काल में वैदिक मान-यत्नों का लोप हो गया। तब राजवर्ष के मय से कोई बीब हिंसा नहीं कर सकता था। किन्तु काकास्तर में बौद्ध धर्म में ही इन मान-यत्नों के श्रेष्ठ अर्थ गुप्त रूप से सम्मिश्रित हो गये। इसीसे तन्त्रों की उत्पत्ति हुई। तन्त्रों में सामाचार प्रभृति बहुत से अर्थ कारण होने पर भी तन्त्रों को लोप जितना कारण समझते हैं, वे उठने कारण नहीं हैं। उनमें वेवास्त सम्बन्धी कुछ उच्च एवं सूक्ष्म विचार निहित हैं। वास्तविक बात तो यह है कि बेवों के बाह्य भाग को ही कुछ परिवर्तित कर तन्त्रों में समाहित कर दिया गया था। वर्तमान काल की पूजा विधियाँ और उपासना पद्धति तन्त्रों के अनुसार होती हैं।

अब हमें अपने धर्म के सिद्धान्तों पर भी बड़ा विचार करना चाहिए। हमारे धर्म के सम्प्रदायों में अनेक विभिन्नताएँ एवं अन्तर्विरोध होते हुए भी एकता के अनेक शत्रु हैं। प्रथम सभी सम्प्रदाय तीन चीजों का अस्तित्व स्वीकार करते हैं—ईश्वर, आत्मा और जगत्। ईश्वर वह है, जो अनन्त काल से सम्पूर्ण जगत् का सर्वत्र पालन और संहार करता आ रहा है। सकल वर्णन के अतिरिक्त सभी इस सिद्धान्त पर विश्वास करते हैं। इसके बाद आत्मा का सिद्धान्त और पुनर्जन्म की बात आती है। इसके अनुसार असक्य जीवात्माएँ बार-बार अपने कर्मों के अनुसार घटीर धारण कर जन्म-मृत्यु के चक्र में घूमती रहती हैं। इसीको संचारवाद या प्रचलित रूप से पुनर्जन्मवाद कहते हैं। इसके बाद यह जगत् अन्त जगत् है। मद्यपि कुछ लोग इन तीनों को त्रिभ्र मानते हैं तथा कुछ इसे एक ही के त्रिभ्र त्रिभ्र रूप और कुछ अन्य प्रकार से इनका अस्तित्व स्वीकार करते हैं। पर इन तीनों का अस्तित्व वे सभी मानते हैं।

यहाँ पर यह स्मरण रखना चाहिए कि चिर काल से हिन्दू आत्मा को मन से पृथक् मानते आ रहे हैं। पाश्चात्य विद्वान् मन के परे किसी चीज़ की कल्पना नहीं कर सके। वे लोग जगत् को आनन्दपूर्ण मानते हैं और इसीलिए उसे मौज मारने की जगह समझते हैं। जब कि प्राच्य लोगो की जन्म से ही यह धारणा होती है कि यह ससार नित्य परिवर्तनशील तथा दुःखपूर्ण है। और इसीलिए यह मिथ्या के सिवा कुछ नहीं है और न ही इसके क्षणिक सुखो के लिए आत्मा का धन गँवाया जा सकता है। इसी कारण पाश्चात्य लोग सघबद्ध कर्म मे विशेष पटु है और प्राच्य लोग अन्तर्जगत् के अन्वेषण मे ही विशेष साहस दिखाते हैं।

जो कुछ भी हो, यहाँ अब हमे हिन्दू धर्म की दो एक और बातों पर विचार करना आवश्यक है। हिन्दुओं मे अवतारवाद प्रचलित है। वेदो मे हमे केवल मत्स्यावतार का ही उल्लेख मिलता है। सभी लोग इस पर विश्वास करते हैं या नहीं, यह कोई विचारणीय विषय नहीं है। पर इस अवतारवाद का वास्तविक अर्थ है मनुष्य-पूजा—मनुष्य के भीतर ईश्वर को साक्षात् करना ही ईश्वर का वास्तविक साक्षात्कार करना है। हिन्दू प्रकृति के द्वारा प्रकृति के ईश्वर तक नहीं पहुँचते—मनुष्य के द्वारा मनुष्य के ईश्वर के निकट जाते हैं।

इसके बाद है मूर्ति-पूजा। शास्त्रो मे विहित हर एक शुभ कर्म मे उपास्य पंच देवताओं के अतिरिक्त अन्य देवता केवल उनके द्वारा अधिष्ठित पदों के भिन्न भिन्न नाम मात्र हैं। किन्तु ये पाँचो उपास्य देवता भी उसी एक भगवान् के भिन्न भिन्न नाम मात्र हैं। यह बाह्य मूर्ति-पूजा हमारे सब शास्त्रो मे अधमतम कोटि की पूजा मानी गयी है, किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि मूर्ति-पूजा करना गलत है। वर्तमान समय मे प्रचलित इस मूर्ति-पूजा के भीतर नाना प्रकार के कुत्सित भावों के प्रवेश कर लेने पर भी, मैं उसकी निन्दा नहीं कर सकता। यदि उसी कट्टर मूर्ति-पूजक ब्राह्मण (श्री रामकृष्ण) की पद-धूलि से मैं पुनीत न बनता तो आज मैं कहाँ होता ?

वे सुधारक जो मूर्ति-पूजा के विरुद्ध प्रचार करते हैं अथवा उसकी निन्दा करते हैं, उनमें मैं कहूँगा कि भाइयो, यदि तुम बिना किसी सहायता के निराकार ईश्वर की उपासना कर सकते हो तो तुम भले ही वैसा करो, किन्तु जो लोग ऐसा नहीं कर सकते हैं, उनकी निन्दा क्यों करते हो ? प्राचीनतम समय का गौरवान्वित स्मृति-चिह्नरूप एक सुन्दर एवं भव्य मकान उपेक्षा या अव्यवहार के कारण जर्जर हो गया है। यह हो सकता है कि उसमे हर कही घूल जमी हुई है, यह भी हो सकता है कि उनके कुछ हिस्से जमीन पर बहते पड़े हों। पर तुम उमे क्या करोगे ? क्या तुम उनकी नफाई-मरम्मत करने उनकी पुगनी धज ओटा दोगे या उमे, उन उमाग्न को गिरा कर उनके स्थान पर एक नदिये स्थायित्व वाले बुद्धिमान आधुनिक योजना के

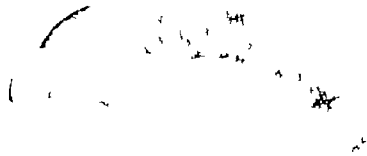


अनुसार कोई दूसरी इमारत नहीं कराये ? हमें उनका गुप्ता करना होना इसके अर्थ है उसकी उचित गार्ड-संरक्षण करना न कि उसे ध्वस्त कर देना। यही पर गुप्ता का काम समाप्त हो जाता है। यदि ऐसा कर सकन हो तो करो सम्पदा दूर रखो। पीसोंडार हो जान पर उसकी और क्या आवश्यकता ? किन्तु हमारे देश के गुप्ताएक एक स्वतन्त्र सम्प्रदाय का संरक्षण करना चाहते हैं। तो भी उन्होंने बड़ा कार्य किया है। ईसा के आठवींशियों की उनके तार पर बर्षा ही। किन्तु तुम लोग अपने की नहीं महान् समुदाय से पुनर्क करना चाहते ही ? हिन्दू भाग लेने ही से क्यों अग्रजत होते हा ?—जो कि तुम लोगों की महान् और गौरवपूर्ण सम्पत्ति है। जो अमर पुत्रो मरे देशवासियो यह हमारा जातीय अहंकार सुपों तक मुसाफिरी को के आता के आता रहा है और इसने अपनी अनुकनीय सम्पदा से संसार को समृद्ध बनाया है। अनेक पौरवपूर्व शताब्दियों तक हमारा यह अहंकार जीवन-सागर में बरुटा रहा है और करोड़ों आत्माओं को उसने दुःख से दूर संसार के उन पार पहुँचाया है। आज सागर उसमें एक छेद हो गया हो और इससे वह सत हो गया हो यह चाहे तुम्हारी अपनी शक्ति से या चाहे किसी और कारण से। तुम जो इस अहंकार पर चढ़े हुए हो अब क्या करोये ? क्या तुम दुर्बलन कहते हुए आपस में झगड़ोगे ? क्या तुम सब मिलकर उस छेद को बन्द करने की पूर्ण चेष्टा करोये ? हम सब लोगों की अपनी पूरी जान सड़ाकर खुशी खुशी उसे बन्द कर देना चाहिए। अगर न कर सके तो हम लोगों की एक सम बूब भरना होगा।

और ब्राह्मणों से भी मैं कहना चाहता हूँ कि तुम्हारा अम्भगत तथा अंधमत अभिमान मिट्या है, उसे छोड़ दो। सास्त्रों के अनुसार तुम में भी अब ब्राह्मणत्व शेष नहीं रह गया क्योंकि तुम भी इतने दिनों से म्लेच्छ राज्य में रह रहे हो। यदि तुम लोगों को अपने पूर्वजों की कथाओं में विश्वास है तो जिस प्रकार प्राचीन कुमारिक मनु ने बीड़ों के संहार करने के अभिप्राय से पहले बीड़ों का शिष्यत्व ग्रहण किया पर अन्त में उनकी हत्या के प्रायश्चित्त के लिए उन्होंने तुषाम्नि में प्रवेश किया उसी प्रकार तुम भी तुषाम्नि में प्रवेश करो। यदि ऐसा न कर सको तो अपनी दुर्बलता स्वीकार कर लो। और सभी के लिए ज्ञान का द्वार खोल दो और परबन्धित जनता को उनका उचित एवं प्रकृत अधिकार दे दो।



पत्रावली—५





## पत्रावली

(स्वामी रामकृष्णानन्द को लिखित)

हाई व्यू, कैवरशम्, रीडिंग,  
३ जुलाई, १८९६

प्रिय शशि,

इस पत्र को देखते ही काली (स्वामी अभेदानन्द) को इंग्लैण्ड रवाना कर देना। पहले पत्र मे ही तुम्हे सब कुछ लिख चुका हूँ। कलकत्ते के मेसर्स ग्रिण्डले कम्पनी के पास उसका द्वितीय श्रेणी का मार्ग-व्यय तथा वस्त्रादि खरीदने के लिए आवश्यक धन भी भेजा जा चुका है। अधिक वस्त्रादि की आवश्यकता नहीं है।

काली को अपने साथ कुछ पुस्तकें लानी होगी। मेरे पास केवल ऋग्वेद-सहिता है। यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्वन् सहिताएँ एव शतपथ्यादि जितने भी 'ब्राह्मण' प्राप्त हो सके तथा कुछ सूत्र एव यास्क के निरुक्त यदि उपलब्ध हो तो इन ग्रन्थों को वह अपने ही साथ लेता आये। अर्थात् इन पुस्तकों की मुझे आवश्यकता है। उनको काठ के बक्स मे भरकर लाने की व्यवस्था करे।

शरत् के आने मे जैसा विलम्ब हुआ था, वैसा नहीं होना चाहिए, काली फौरन आये। शरत् अमेरिका रवाना हो चुका है, क्योंकि यहाँ पर उसकी कोई आवश्यकता नहीं रह गयी। कहने का मतलब यह कि वह छ महीने की देर करके आया और फिर जब वह आया, उस समय मैं खुद ही यहाँ पहुँच चुका था। काली के बारे मे यह बात नहीं होनी चाहिए। शरत् के आने के समय जैसे चिट्ठी खो जाने से गडबडी हुई थी, अब की बार वैसे ही कही चिट्ठी न खो जाय। शीघ्रता से उसे भेज देना।

सस्नेह,  
विवेकानन्द



धीरे उस अवस्था की ओर बढ़ रहा हूँ, जहाँ खुद 'शैतान' को भी, अगर वह हो तो मैं प्यार कर सकूँगा।

तीस वर्ष की अवस्था में मैं अत्यन्त असहिष्णु और कट्टर था। कलकत्ते में सबको के जिस किनारे पर थियेटर हैं, मैं उस ओर के पैदल-मार्ग से ही नहीं चलता था। अब तीस वर्ष की उम्र में मैं वेश्याओं के साथ एक ही मकान में ठहर सकता हूँ और उनसे तिरस्कार का एक शब्द कहने का विचार भी मेरे मन में नहीं आयेगा। क्या यह अघोगति है? अथवा मेरा हृदय विस्तृत होता हुआ मुझे उस विश्वव्यापी प्रेम की ओर ले जा रहा है, जो साक्षात् भगवान् है? लोग कहते हैं कि वह मनुष्य, जो अपने चारों ओर होनेवाली बुराइयों को नहीं देख पाता, अच्छा काम नहीं कर सकता, उसकी परिणति एक तरह के भाग्यवाद में होती है। मैं तो ऐसा नहीं देखता। वरन् मेरी कार्य करने की शक्ति अत्यधिक बढ़ रही है और अत्यधिक प्रभावशील भी होती जा रही है। कभी कभी मुझे एक प्रकार का दिव्य भावावेश होता है। ऐसा अनुभव करता हूँ कि मैं प्रत्येक प्राणी और वस्तु को आशीर्वाद दूँ—प्रत्येक से प्रेम करूँ और गले लगा लूँ और मैं यह भी देखता हूँ कि बुराई एक भ्रान्ति मात्र है। प्रिय फ्रैंसिस, इस समय मैं ऐसी ही अवस्था में हूँ और अपने प्रति तुम्हारे तथा श्रीमती लेगेट के प्रेम और सहानुभूति का स्मरण कर मैं सचमुच आनन्द के आँसू बहा रहा हूँ। मैं जिस दिन पैदा हुआ था, उस दिन को धन्यवाद देता हूँ। यहाँ पर मुझे कितनी सहानुभूति, कितना प्रेम मिला है। और जिस अनन्त प्रेमस्वरूप भगवान् ने मुझे जन्म दिया है, उसने मेरे हर एक भले और बुरे (बुरे शब्द से डरो मत) काम पर दृष्टि रखी है—क्योंकि मैं उसीके हाथ के एक औजार के सिवा और हूँ ही क्या, और रहा ही क्या? उसीकी सेवा के लिए मैंने अपना सब कुछ—अपने प्रियजनों को, अपना सुख, अपना जीवन—त्याग दिया है। वह मेरा लीलामय प्रियतम है और मैं उसकी लीला का साथी हूँ। इस विश्व में कोई युक्ति-परिपाटी नहीं है। ईश्वर पर भला किस युक्ति का वश चलेगा? वह लीलामय इस नाटक की समस्त भूमिकाओं पर हास्य और रुदन का अभिनय कर रहा है। जैसा 'जो' कहती हैं—अजब तमाशा है! अजब तमाशा है!

यह दुनिया बड़े मजे की जगह है, और सबसे मजेदार है—वह असीम प्रियतम। क्या यह तमाशा नहीं है? सब एक दूसरे के भाई हो या खेल के साथी, पर वास्तव में हैं ये मानो पाठशाला के हल्ला मचानेवाले बच्चे, जो कि इम सप्सारूपी मैदान में खेल-कूद करने के लिए छोड़ दिये गये हैं। यही है न? किसकी तारीफ करूँ और किसे बुरा कहूँ—सब तो उसीका खेल है। लोग इसकी व्याख्या चाहते हैं। पर ईश्वर की व्याख्या तुम कैसे करोगे? वह मस्तिष्कहीन है, उसके पास युक्ति भी

(कैम्ब्रिज सेनेट को लिखित)

६३ सेण्ट जार्जेस रोड लन्दन

६ जुलाई, १८९६

प्रिय कैम्ब्रिज

अदृश्यात्मिक महासागर के इस पार मेरा कार्य बहुत अच्छी रीति से चल रहा है।

मेरी रचिबार की बस्तुएँ बहुत सफल हुईं और जहाँ तक कजाएँ भी। काम का मौलम खत्म हो चुका है और मैं भी बेहद थक चुका हूँ। अब मैं कुमाठी मूलर के साथ स्विटजरलैंड के भ्रमण के लिए जा रहा हूँ। गाम्बर्गों परिवार ने मेरे साथ बड़ा सहाय व्यवहार किया है। जो मेरी बड़ी खुशखबरी से उन्हें मेरी तरफ आह्वान किया। उनकी खुशखबरी और पान्थिपूर्ण कार्य-शैली की मैं मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करता हूँ। वे एक राजनीतिक कुशल महिला कही जा सकती हैं। वे एक राज बन सकती हैं। मनुष्य में ऐसी प्रकृति, साथ ही अच्छी सहज-बुद्धि मैंने किरसे ही देखी है। अमली घरतु में मैं अमेरिका लौटूँगा और वहाँ का कार्य फिर आरम्भ करूँगा।

परसों रात को मैं श्रीमती मार्टिन के यहाँ एक पार्टी में गया था जिनके सम्बन्ध में तुमने अवश्य ही 'जो' से बहुत कुछ सुना होगा।

इम्पेरिय में यह कार्य चुपचाप पर निरिच्छत रूप से बढ़ रहा है। यहाँ प्रायः हर दूसरे पुरुष अबका स्त्री के मेरे पास आकर मेरे कार्य के सम्बन्ध में बातचीत की। विविध साम्राज्य के कितने ही शोध कर्मी न हों पर भाव-प्रचार का ऐसा उत्कृष्ट पक्ष अब तक कहीं नहीं रहा है। मैं इस पक्ष के केन्द्रस्वरूप में अपने विचार रख देना चाहता हूँ और वे साथी बुनिया में फैल जायेंगे। यह सब है कि सभी बड़े काम बहुत धीरे धीरे होते हैं, और उनकी राह में असंख्य विघ्न उपस्थित होते हैं, विशेषकर इसलिये कि हम हिन्दू पद्यवीण जाति हैं। परन्तु इसी कारण हमें सफलता अवश्य मिलेगी क्योंकि आध्यात्मिक आदर्श सदा परवर्धित जातियों में से ही पैदा हुए हैं। मनुष्य अपने आध्यात्मिक आदर्शों से रोम साम्राज्य पर जा गये थे। तुम्हें यह मुन्नर प्रशंसा होगी कि मैं भी विनीतियन ईस्य और विशेषकर सहायगुणि के सबक लीए रहा हूँ। मैं समझता हूँ कि सक्तिवाली ऐन्कोइग्निवर्नी तक के मातृ में परमात्मा को प्रत्यक्ष कर रहा हूँ। मेरा विचार है कि मैं धीरे

(श्रीमती ओलि वुल को लिखित)

६३, सेण्ट जार्ज रोड, लन्दन,  
८ जुलाई, १८९६

प्रिय श्रीमती वुल,

अग्रेज जाति अत्यन्त उदार है। उस दिन करीब तीन मिनट के अन्दर ही आगामी शरद् मे कार्य सचालनार्थ नवीन मकान के लिए मेरी कक्षा से १५० पौण्ड का चन्दा मिला। यदि माँगा जाता तो तत्काल ही वे ५०० पौण्ड प्रदान करने मे किञ्चिन्मात्र भी नहीं हिचकते। किन्तु हम लोग धीरे धीरे कार्य करना चाहते हैं, एक साथ जन्दी अधिक खर्च करने का कोई अभिप्राय हमारा नहीं है। यहाँ पर इस कार्य का सचालन करने के लिए हमे अनेक व्यक्ति प्राप्त होंगे एव वे लोग त्याग की भावना से भी कुछ कुछ परिचित हैं—अग्रेजो के चरित्र की गहराई का पता यही मिलता है।

शुभाकाक्षी,  
विवेकानन्द

(डॉ० नजुन्दा राव को लिखित)

इंग्लैण्ड,  
१४ जुलाई, १८९६

प्रिय नजुन्दा राव,

'प्रबुद्ध भारत' की प्रतिर्या मिली तथा उनका कक्षा मे वितरण भी कर दिया गया है। यह अत्यन्त सन्तोषजनक है, इसमे कोई सन्देह नहीं कि भारत मे इसकी बहुत विक्री होगी। कुछ ग्राहक तो अमेरिका मे ही बन जाने की आशा है। अमेरिका मे इसका विज्ञापन देने की व्यवस्था मैंने पहले ही कर दी है एव 'गुड इयर' ने उसे कार्य मे भी परिणत कर दिया है। किन्तु यहाँ इंग्लैण्ड मे कार्य अपेक्षाकृत कुछ धीरे धीरे अग्रसर होगा। यहाँ पर बड़ी मुश्किल यह है कि सब कोई अपना अपना पत्र निकालना चाहते हैं। ऐसा ठीक भी है, क्योंकि कोई भी विदेशी व्यक्ति असली अग्रेजो की तरह अच्छी अग्रेजी कभी नहीं लिख सकता तथा अच्छी अग्रेजी मे लिखने से विचारो का सुदूर तक जितना विस्तार हो सकेगा उतना हिन्दू-अग्रेजी के द्वारा नहीं। साथ ही विदेशी भाषा मे लेख लिखने की अपेक्षा कहानी लिखना और भी कठिन है।

मैं आपके लिए यहाँ ग्राहक बनाने की पूरी चेष्टा कर रहा हूँ, किन्तु आप विदेशी सहायता पर कतई निर्भर न रहे। व्यक्ति की तरह जाति को भी अपनी सहायता



महीं है। वह छोटे मस्तिष्क तथा सीमित तर्क-शक्तिवासे हम लोगों को मूर्ख बना रहा है, पर इस बार वह मुझे झेंपता नहीं पा सकेगा।

मैंने तो एक बातें सीखी हैं प्रेम और प्रियतम—तर्क वाञ्छित्य और वायाइम्बर के बहुत परे। ऐ चाक्री प्याला भर रे और हम पीकर मस्त हो जायें।

तुम्हारा ही प्रेमोगमत  
त्रिवेकानन्द

(इस बहनों को लिखित)

कन्दन

७ जुलाई, १८९९

प्रिय बन्धियो,

यहाँ कार्य में आश्चर्यजनक प्रगति हुई। भारत का एक संन्यासी यहाँ मेरे साथ वा बिसे मैंने अमेरिका भेज दिया है। भारत से एक और संन्यासी बुका भेजा है। कार्य का समय समाप्त हो गया है, इसलिए कलाओं के लगने तथा एडिवासीय व्याख्यानों का कार्य भी आगामी १९ तारीख से बन्द हो जायगा। १९ तारीख को मैं कटौत एक महीने के लिए शक्तिपूर्ण भाषास तथा विधाम के निमित्त स्विट्जरलैंड के पहाड़ों पर चला जाऊँगा और आगामी सरदू ऋतु में कन्दन वापस जाकर फिर कार्य आरम्भ करूँगा। यहाँ का कार्य बड़ा सन्तोषजनक रहा है। यहाँ लोगों में विद्वत्सपी पैदा कर मैं भारत के लिए बसकी जपेला सचमुच कहीं अधिक कार्य कर रहा हूँ जो भारत में रहकर करता। मैं मे मुझको लिखा है कि यदि तुम लोग अपना मकान किराये पर जठ हो तो तुम लोगों को साथ लेकर दिवस भ्रमण करने में उन्हें प्रसन्नता होगी। मैं तीन बंधेव मित्रों के साथ स्विट्जरलैंड के पहाड़ों पर जा रहा हूँ। बार में शीत ऋतु के अन्त के कटौत कुछ बंधेव मित्रों के साथ भारत जाने की मुझे आशा है। ये लोग यहाँ मेरे मठ में रहनेवाके हैं, बिसेके निर्माण की अभी तो केवल कल्पना भर है। हिमाक्य परंत के अंतर्गत में किसी जगह उसके निर्माण का उद्योग किया जा रहा है।

तुम लोग यहाँ पर हो ? शीघ्र ऋतु का पूरा होर है, यहाँ तक कि कन्दन में भी बड़ी गरमी पड़ रही है। कल्पना श्रीमती ऐडम्स श्रीमती कॉंगोर्ट और शिवागो के अन्य सभी मित्रों के प्रति मेरा हार्दिक प्रेम ज्ञापित करता।

तुम्हारा उत्सह भाई,  
त्रिवेकानन्द

(श्री ई० टी० स्टर्डी को लिखित)

ग्रैंड होटल, वेल्ले,  
स्विट्ज़रलैंड

प्रिय स्टर्डी,

मैं थोड़ा बहुत अध्ययन कर रहा हूँ—उपवास बहुत कर रहा हूँ तथा साधना उससे भी अधिक कर रहा हूँ। वनो में भ्रमण करना अत्यन्त आनन्ददायक है। हमारे रहने का स्थान तीन विशाल हिमनदों के नीचे है तथा प्राकृतिक दृश्य भी अत्यन्त मनोरम है।

एक बात है कि स्विट्ज़रलैंड की झील में आर्यों के आदि निवास-स्थान सम्बन्धी मेरे मन में जो कुछ भी थोड़ा सा सन्देह था, वह एकदम निर्मूल हो चुका है, 'तातार' जाति के माथे से लम्बी चोटी हटा देने पर जो दशा होती है, स्विट्ज़रलैंड के निवासी ठीक उसी प्रकार के हैं।

शुभाकाक्षी,  
विवेकानन्द

(श्री लाला बद्री शाह को लिखित)

द्वारा ई० टी० स्टर्डी  
हाई व्यू, कैवरशाम्, रीडिंग, लंदन  
५ अगस्त, १८९६

प्रिय शाह जी,

आपके सहृदय अभिनन्दन के लिए धन्यवाद। आपसे एक बात मैं जानना चाहता हूँ। यदि लिखने का कष्ट करें तो इस कृपा के लिए मैं विशेष अनुग्रहीत होऊँगा। मैं एक मठ स्थापित करना चाहता हूँ—मेरी इच्छा है कि वह अल्मोडा में या अच्छा हो उसके समीप किसी स्थान में हो। मैंने सुना है कि श्री रैमसे नामक कोई सज्जन अल्मोडा के समीप एक बँगले में रहते थे, उस बँगले के चारों ओर एक बगीचा था। क्या वह बँगला खरीदा जा सकता है? उसका मूल्य क्या होगा? यदि खरीदना सम्भव न हो तो किराये पर मिल सकता है या नहीं?

क्या आप अल्मोडा के समीप किसी ऐसे उपयुक्त स्थान को जानते हैं, जहाँ बगीचे आदि के साथ मैं अपना मठ बना सकूँ? बगीचे का होना नितान्त आवश्यक है। मैं चाहता हूँ कि अलग एक छोटी सी पहाड़ी मिल जाय तो अच्छा हो।

आशा है कि पत्र का उत्तर शीघ्र प्राप्त होगा। आप एवं अल्मोडा के अन्य मित्रों को मेरा आशीर्वाद तथा प्रेम।

भवदीय,  
विवेकानन्द

आप ही करनी चाहिए। यही मन्तव्य स्वदेश-मेम है। यदि कोई जाति ऐसा करने में असमर्थ हो तो यह कहना पड़ेगा कि उसका अभी समय नहीं आया उसे प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। मद्रास से ही यह नवीन जालोक भारत के चारों ओर फैलना चाहिए—इसी उद्देश्य को लेकर आपको कार्य-क्षेत्र में अग्रसर होना पड़ेगा। एक बात पर मुझे अपना मत व्यक्त करना है वह यह कि पत्र का मुखपृष्ठ एकत्रम गैबार्क देखने में नितांत रही तथा महा है। यदि सम्भव हो तो इसे बदल दें। इसे भावपूर्ण तथा साब ही सरल बनायें—इसमें मानव-चित्र बिल्कुल नहीं होना चाहिए। 'बटवृक्ष' कठोर प्रबुद्ध होने का चिह्न नहीं है और भयङ्कर नसल ही यूरोपीय दम्पति भी नहीं। 'कमल' ही पुनरन्मूलन का प्रतीक है। 'अभिष्ट कला' में हम छान बहुत ही पिछड़े हुए हैं खासकर 'विभक्त' में। उपाहरणरूप मन में असन्त के पुनरागमन का एक छोटा सा दृश्य बनाइए—मनपस्त्र तथा कलिकाएँ प्रस्फुटित हो रही हों। बीरे बीरे आये बड़िए, सैकड़ों भाव है जिन्हें प्रकाश में लाया जा सकता है।

मैंने 'राजयोग' के लिए जो प्रतीक बनाया था उसे देखिए। 'जागमन श्रीम एम्ब कम्पनी' ने यह पुस्तक प्रकाशित की है। आपको यह सम्बन्ध में मित्र सकती है। राजयोग पर न्यूयार्क में जो व्याख्यान दिये थे वही इसमें है।

आगामी रविवार को मैं स्वित्स्जरलैण्ड जा रहा हूँ और अरक्तार में इन्सैन्ड आपस आकर पुनः कार्य प्रारम्भ करूँगा। यदि सम्भव हो सका तो स्वित्स्जरलैण्ड से मैं बाह्यबाहिक रूप से आपको कुछ लेख भेजूँगा। आपको भास्य ही होया कि मेरे लिए विद्याम अत्यन्त आवश्यक हो रहा है।

शुभावांसी

द्विवेकानन्द

( श्रीमती मोकि मूल को लिखित )

सैन्स प्रीम्ड स्वित्स्जरलैण्ड

२५ जुलाई, १८९९

प्रिय श्रीमती मूल

कम से कम दो मास के लिए मैं जयपुर को एकत्रम मूल जाना चाहता हूँ और कठोर साधना करना चाहता हूँ। यही मेरा विद्याम है। पहाड़ों तथा बर्फ के दृश्य से मेरे हृदय में एक अपूर्व ध्यानित ही छा जाती है। यहाँ पर मुझे पौनी अर्थात् नीर आ रही है, दीर्घ काल तक मुझे वही नीर नहीं आयी।

सभी मित्रों को मेरा प्रार।

शुभावांसी

द्विवेकानन्द

(श्री आलासिगा पेरुमल को लिखित)

स्विट्ज़रलैण्ड,

६ अगस्त, १८९६

प्रिय आलासिगा,

तुम्हारे पत्र से 'ब्रह्मवादिन्' की आर्थिक दुर्दशा का समाचार विदित हुआ। लन्दन लौटने पर तुम्हें सहायता भेजने की चेष्टा करूँगा। तुम पत्रिका का स्तर नीचा न करना, उसको उन्नत रखना, अत्यन्त शीघ्र ही मैं तुम्हारी ऐसी सहायता कर सकूँगा कि इस बेहूदे अध्यापन-कार्य से तुम्हें मुक्ति मिल सके। डरने की कोई बात नहीं है बत्स, सभी महान् कार्य सम्पन्न होंगे। साहस से काम लो। 'ब्रह्मवादिन्' एक रत्न है, इसे नष्ट नहीं होना चाहिए। यह ठीक है कि ऐसी पत्रिकाओं को सदा निजी दान से ही जीवित रखना पडता है, हम भी वैसा ही करेंगे। कुछ महीने और जमे रहो।

मैक्समूलर महोदय का श्री रामकृष्ण सम्बन्धी लेख 'दि नाइन्टीन्थ सेन्चुरी' मे प्रकाशित हुआ है। मुझे मिलते ही मैं उसकी एक प्रतिलिपि तुम्हारे पास भेज दूँगा। वे मुझे अत्यन्त सुन्दर पत्र लिखते हैं। श्री रामकृष्ण देव की एक बड़ी जीवनी लिखने के लिए वे सामग्री चाहते हैं। तुम कलकत्ते एक पत्र लिखकर सूचित कर दो कि जहाँ तक हो सके सामग्री एकत्र करके उन्हें भेज दी जाय।

अमेरिकी पत्र के लिए भेजा हुआ समाचार मुझे पहले ही मिल चुका है। भारत मे उसे प्रकाशित करने की आवश्यकता नहीं है, समाचार-पत्र द्वारा इस प्रकार का प्रचार बहुत हो चुका है। इस विषय मे खासकर मेरी अब कुछ भी रुचि नहीं है। मूर्खों को बकने दो, हमे तो अपना कार्य करना है। सत्य को कोई नहीं रोक सकता।

यह तो तुम्हें पता ही है कि मैं इस समय स्विट्ज़रलैण्ड मे हूँ और बराबर घूम रहा हूँ। पढने अथवा लिखने का कार्य कुछ भी नहीं कर पा रहा हूँ, और करना भी उचित प्रतीत नहीं होता। लन्दन मे मुझे एक महान् कार्य करना है, आगामी माह मे उसे प्रारम्भ करना है। अगले जाडो मे भारत लौटकर मैं वहाँ के कार्य को भी ठीक करने की कोशिश करूँगा।

सब लोगो को मेरा प्रेम! बहादुरो, कार्य करते रहो, पीछे न हटो—'नहीं' मत कहो। कार्य करते रहो—तुम्हारी सहायता के लिए प्रभु तुम्हारे पीछे खडे हैं। महाशक्ति तुम्हारे साथ विद्यमान हैं।

शुभाकाक्षी,  
विवेकानन्द

(भी ई टी स्टडी को सिद्धित)

स्विट्जरलैंड

५ अगस्त १८९६

प्रिय स्टडी

आज सुबह प्रोफेसर मैक्समूकर का एक पत्र मिला; उससे पता चला कि भी रामकृष्ण परमहंस सम्बन्धी जनका लेख 'दि नाइन्टीन्थ सेन्चुरी' पत्रिका के अगस्त अंक में प्रकाशित हुआ है। क्या तुमने उसे पढ़ा है? उन्होंने इस लेख के बारे में मेरा अभिमत माँगा है। अभी तक मैंने उसे नहीं देखा है, अतः उन्हें कुछ भी नहीं लिख पाया हूँ। यदि तुम्हें यह प्रति प्राप्त हुई हो तो कृपया मुझे भेज देना। 'ब्रह्मचरिन्' की भी यदि कोई प्रति आयी हो तो उसे भी भेजना। मैक्समूकर महोदय हमारी योजनाओं से परिचित होना चाहते हैं तथा पत्रिकाओं से भी उन्होंने अधिकाधिक सहायता प्रदान करने का वचन दिया है तथा भी रामकृष्ण परमहंस पर एक पुस्तक लिखने को वे प्रस्तुत हैं।

मैं समझता हूँ कि पत्रिकावि के विषय में उनके साथ तुम्हारा सीधा पत्र-व्यवहार होना ही उचित है। 'दि नाइन्टीन्थ सेन्चुरी' पढ़ने के बाद उनके पत्र का जवाब लिख कर जब मैं तुमको उनका पत्र भेज दूँगा तब तुम देखोगे कि वे हमारे प्रयास पर कितने प्रसन्न हैं तथा यथासाध्य सहायता प्रदान करने के लिए तैयार हैं।

पुनरुक्त—आशा है कि तुम पत्रिका को बड़े आकार की करने के प्रश्न पर भली भाँति विचार करोगे। अमेरिका से कुछ बनराधि एकत्र करने की व्यवस्था हो सकती है एवं साथ ही पत्रिका अपने लोगों के हाथों ही रखी जा सकती है। इस बारे में तुम्हारी तथा मैक्समूकर महोदय की निश्चित योजना से अग्रगत होने के बाद मैं अमेरिका पत्र लिखना चाहता हूँ।

सिद्धितम्यो महापुत्रः कलछायासमन्वितः।

यदि ईवात् पत्रं नास्ति छाया केन निवार्यते ॥

—'असि ब्रह्म में पत्र एक छाया ही उसी का आशय लेना चाहिए कदाचित् पत्र न भी मिले फिर भी उनकी छाया से ही कोई भी बहित नहीं कर सकता। अतः मूल बात यह है कि महान् कार्य को इसी भावना से प्राप्त करना चाहिए।

शुभरात्री

विश्वकालम्

बहरहाल, श्रीमती एनी बेसेन्ट ने अपने निवास स्थान पर मुझे—भक्ति पर बोलने के लिए—निमंत्रित किया था। मैंने वहाँ एक रात व्याख्यान दिया। कर्नल अल्कोट भी वहाँ थे। मैंने सभी सम्प्रदाय के प्रति अपनी सहानुभूति प्रदर्शित करने के लिए ही भाषण देना स्वीकार किया। हमारे देशवासियों को यह याद रखना चाहिए कि अध्यात्म के बारे में हम ही जगद्गुरु हैं—विदेशी नहीं—किन्तु, सासारिकता अभी हमें उनसे सीखना है।

मैंने मैक्समूलर का लेख पढ़ा है। हालाँकि छ माह पूर्व जब कि उन्होंने इसे लिखा था—उनके पास मजूमदार के पर्चे के सिवा और कोई सामग्री नहीं थी। इस दृष्टि से यह लेख सुन्दर है। इधर उन्होंने मुझे एक लम्बी और प्यारी चिट्ठी लिखी है, जिसमें उन्होंने श्री रामकृष्ण पर एक किताब लिखने की इच्छा प्रकट की है। मैंने उन्हें बहुत सारी सामग्री दी है, किन्तु भारत से और भी अधिक मँगाने की आवश्यकता है।

काम करते चलो। डटे रहो बहादुरी से। सभी कठिनाइयों को झेलने की चुनौती दो।

देखते नहीं बत्स, यह ससार—दुःखपूर्ण है।

प्यार के साथ,  
विवेकानन्द

(श्री जे० जे० गुडविन को लिखित)

स्विट्ज़रलैण्ड  
८ अगस्त, १८९६

प्रिय गुडविन,

मैं अब विश्राम कर रहा हूँ। भिन्न भिन्न पत्रों से मुझे कृपानन्द के विषय में बहुत कुछ मालूम होता रहता है। मुझे उसके लिए दुःख है। उसके मस्तिष्क में अवश्य कुछ दोष होगा। उसे अकेला छोड़ दो। तुममें से किसीको भी उसके लिए परेशान होने की आवश्यकता नहीं।

मुझे आघात पहुँचाने की देव या दानव किमीमें भी शक्ति नहीं है। इसलिए निश्चिन्त रहो। अचल प्रेम और पूर्ण निःस्वार्थ भाव की ही सर्वत्र विजय होती है। प्रत्येक कठिनाई के आने पर हम वेदान्तियों को स्वतः यह प्रश्न करना चाहिए, 'मैं इसे क्यों देवता हूँ?' 'प्रेम से मैं क्यों नहीं इस पर विजय पा सकता हूँ?'

स्वामी तब जो स्वागत किया गया, उनमें मैं अति प्रमत्त हूँ और वे जो अच्छा कार्य कर रहे हैं, उनमें भी। बड़े काम में बहुत समय तक लगातार और महान्

पुनरुत्थ—डरने की कोई बात नहीं है वन तथा अन्य वस्तुएँ सीम ही प्राप्त होंगी।

(श्री आकाशिंगा पेशमस को लिखित)

स्विट्जरलैंड

८ अगस्त १८९९

प्रिय आकाशिंगा

कई दिन पहले मैंने अपने पत्र में तुम्हें इस बात का आभास दिया था कि मैं 'ब्रह्मवादिन्' के लिए कुछ करने की स्थिति में हूँ। मैं तुम्हें एक या दो वर्षों तक १ स्वयं माहवार दूंगा—अर्थात् साल में १ अथवा ७ पौड—यानी जितने से सी स्वयं माहवार हो सके। तब तुम मुक्त होकर 'ब्रह्मवादिन्' का कार्य कर सकोगे तथा इसे और भी सफल बना सकोगे। यीशु मधि जम्पर और कुछ भिन्न कोष इकट्ठा करने में तुम्हारी सहायता कर सकते हैं—जिससे छ्पाई आदि की झीमठ पूरी हो जायगी। चरे से कितनी आसानी होती है? क्या इस एजम से सेबकों को पारिभ्रमिक देकर उनसे अच्छी सामग्री नहीं मिलवायी जा सकती? यह आश्चर्य नहीं कि 'ब्रह्मवादिन्' में प्रकाशित होनेवाली सभी रचनाएँ सभी की समझ में आवें—परन्तु यह बकरी है कि बेधमकित और सुकर्म की भावना—प्ररणा से ही लोग इसे करीवें। भोग से मेरा मठकज हितुजों से है।

यों बहुत सी बातें आवश्यक हैं। पहली बात है—पूरी ईमानदारी। मेरे मन में इस बात की एती मर शंका नहीं कि तुम भोगों से से कोई भी इससे उदासीन रहोगे। बल्कि व्यावसायिक मामलों में हितुजों में एक अजीब बिकारी देखी जाती है—बेतर्कीय हिसाब-किताब और बेविकसिसे का कारण। दूसरी बात उद्देश्य के प्रति पूर्ण निष्ठ—यह पान्ते हुए कि 'ब्रह्मवादिन्' की सफलता पर ही तुम्हारी मुक्ति निर्भर करती है।

इस पत्र (ब्रह्मवादिन्) को अपना इष्टरेकता बनाओ और तब देखना सफलता किस तरह आती है। मैंने अमेकानन्द को नारत से बुसा भेजा है। आसा है, अन्य संन्यासी की जाति उसे बेरी नहीं छोपी। पत्र पाठे ही तुम 'ब्रह्मवादिन्' के आम-भ्य का पूरा केला-ओखा भेजो जिसे देखकर मैं यह सोच सकूँ कि इसके लिए क्या किया जा सकता है? यह माह रखी कि परिवर्तन निस्वार्थ भावना और गुह की आजाकारिता ही सभी सफलताओं के रहस्य हैं।

किसी वारिक पत्र की सफत—विदेस में असंभव है। इसे हितुजों की ही सहायता मिलनी चाहिए—बदि उनमें भले-बुरे का जल हो।

अथवा 'अन्धकारमय प्रकाश' के समान ही हैं। यदि ससार साधु होता तो यह ससार ही न होता। जीव मूर्खतावश असीम अनन्त को सीमित भौतिक पदार्थ द्वारा, चैतन्य को जड द्वारा अभिव्यक्त करना चाहता है, परन्तु अन्त में अपने भ्रम को समझकर वह उससे छुटकारा पाने की चेष्टा करता है। यह निवृत्ति ही धर्म का प्रारम्भ है और उसका उपाय है, ममत्व का नाश अर्थात् प्रेम। स्त्री, सन्तान या किसी अन्य व्यक्ति के लिए प्रेम नहीं, परन्तु छोटे से अपने ममत्व को छोड़कर, सबके लिए प्रेम। वह 'मानवी उन्नति' और इसके समान जो लम्बी चौड़ी बातें तुम अमेरिका में बहुत सुनोगे, उसके भुलावे में मत आना। सभी क्षेत्रों में 'उन्नति' नहीं हो सकती, उसके साथ साथ कहीं न कहीं अवनति हो रही होगी। एक समाज में एक प्रकार के दोष हैं तो दूसरे में दूसरे प्रकार के। यही बात इतिहास के विशिष्ट कालों की भी है। मध्य युग में चोर डाकू अधिक थे, अब छल-कपट करनेवाले अधिक हैं। एक विशिष्ट काल में वैवाहिक जीवन का सिद्धान्त कम है तो दूसरे में वेश्यावृत्ति अधिक। एक में शारीरिक कष्ट अधिक है, तो दूसरे में उससे सहस्र गुनी अधिक मानसिक यातनाएँ। इसी प्रकार ज्ञान की भी स्थिति है। क्या प्रकृति में गुरुत्वाकर्षण का निरीक्षण और नाम रखने से पहले उसका अस्तित्व ही न था? फिर उसके जानने से क्या अन्तर पड़ा? क्या तुम रेड इन्डियनो (उत्तर अमेरिका के आदिवासियों) से अधिक सुखी हो?

यह सब व्यर्थ है, निरर्थक है—इसे यथार्थ रूप में जानना ही ज्ञान है। परन्तु थोड़े, बहुत थोड़े ही कभी इसे जान पायेंगे। तमेवैक जानथ आत्मानमन्या वाचो विमुचथ—उस एक आत्मा को ही जानो और सब बातों को छोड़ दो। इस ससार में ठोकरें खाने से इस एक ज्ञान की ही हमें प्राप्ति होती है। मनुष्य जाति को इस प्रकार पुकारना कि उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरास्त्रिवोषत—'जागो, उठो, और ध्येय की उपलब्धि के बिना रुको नहीं।' यही एकमात्र कर्म है। त्याग ही धर्म का सार है, और कुछ नहीं।

ईश्वर व्यक्तियों की एक समष्टि है। फिर भी वह स्वयं एक व्यक्ति है, उसी प्रकार जिस प्रकार मानवी शरीर एक ईकाई है और उसका प्रत्येक 'कोश' एक व्यक्ति है। समष्टि ही ईश्वर है, व्यष्टि या अश आत्मा या जीव है। इसलिए ईश्वर का अस्तित्व जीव पर निर्भर है, जैसे कि शरीर का उसके कोश पर, इसी प्रकार इसका विलोम समझिए। इस प्रकार, जीव और ईश्वर परस्परावलम्बी हैं। जब तक एक का अस्तित्व है, तब तक दूसरे का भी रहेगा। और हमारी इस पृथ्वी को छोड़कर अन्य सब ऊँचे लोको में शुभ की मात्रा अशुभ से अत्यधिक होती है, इसलिए वह समष्टिस्वरूप ईश्वर, शिवस्वरूप, सर्वशक्तिमान और सर्वज्ञ



प्रयत्न की आवश्यकता होती है। यदि मोड़े से व्यक्ति असफल भी हो चार्ज हो भी उसकी चिन्ता हमें नहीं करनी चाहिए। संसार का यह नियम ही है कि बनेक भीचे गिरते हैं, कितने ही पुनः जाते हैं, कितनी ही मरकर कठिनाइयाँ सामने उपस्थित होती हैं, स्वार्थपरता तथा अन्य बुराइयों का मानव रूप में बोर संघर्ष होता है। और सभी आध्यात्मिकता की अग्नि में इन सभी का विनाश होनेवाला होता है। इस समय में श्रेय का मार्ग सबसे दुर्लभ और पथरीला है। आदर्श की बात है कि इतने शीघ्र सफलता प्राप्त करते हैं, कितने सोम असफल होते हैं यह आश्चर्य नहीं। सबलों ठोकर खाकर चरित्र का मजबूत होता है।

मुझे अब बहुत ताजगी मालूम होती है। मैं बिड़की से बाहर दृष्टि डालता हूँ मुझे बड़ी बड़ी हिन्दू-नवियाँ मिलती हैं और मुझे ऐसा अनुभव होता है कि मैं हिमात्म्य में हूँ। मैं विस्तृत ध्याता हूँ। मेरे स्नायुओं ने अपनी पुरानी शक्ति पुनः प्राप्त कर ली है और छोटी छोटी परेशानियाँ जिस तरह की परेशानियों का तुमने भिन्न किया है, मुझे स्वर्ण भी नहीं करतीं। मैं बच्चों के इस खेल से कैसे विचलित हो सकता हूँ। साधु संसार बच्चों का खेल मान है—प्रचार करना सिखा देना तथा सभी कुछ। श्रेयः स निरत्यसंप्राप्तीषो न द्वेष्टि न कोदति—'उसे सम्प्राप्ती समझो जो न द्वेष करता है, न ईर्ष्या करता है। और इस संसार की छोटी सी कीचड़ मरी तनीया में जहाँ कुछ रोग तथा मृत्यु का चक्र निरन्तर चलता रहता है, क्या है जिसकी ईर्ष्या की जा सके? त्पायात् शान्तिरनन्तरम्—जिसने सब ईर्ष्याओं को त्याग दिया है वही सुखी है।

यह विद्याम—निरत्य और शान्तिमम विद्याम—इस रमणीक स्थान में अब उत्पत्ती सफल मुझे मिल रही है। आत्मानं जेषु विजानीयात् अपमस्मीति पुरुषः। किमिच्छन् कस्य कामाय शरीरमनुसन्धरेत्।—'एक बार यह जानकर कि इस आत्मा का ही केवल अस्तित्व है और किन्तीका नहीं किन्तु शीघ्र ही या किसीके किए ईर्ष्या करके तुम इस शरीर के लिए कुछ उठानोये ?

मुझे ऐसा चिन्तित होता है कि जिसकी वे शीघ्र 'कर्म' कहते हैं, उसका मैं अपने हितैः का अनुभव कर चुका हूँ। मैं भरपाया अब निकलने की मुझे उत्कट अभिलाषा है। मनुष्याणां सङ्गेषु करिष्यन् प्रतति सिद्धये। प्रततानपि सिद्धायां करिष्यामि चेति तत्पत्तः।—'सहस्रों मनुष्यों में कोई एक स्वयं को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। और प्रयत्न करनेवाले उद्योगी पुरुषों में मोड़े ही श्रेय तक पहुँचते हैं। इन्द्रियाणि प्रबाधीनि हृदन्ति प्रसन्नं मनः—'बौद्धिक इन्द्रियाँ बहवती हैं और वे मनुष्य को भीचे की ओर खींचती हैं।

'सामु सत्तार' सुगो जयन् और 'सामाजिक उन्नति' से सब 'उत्तम मज्ज'

अथवा 'अन्धकारमय प्रकाश' के समान ही हैं। यदि ससार साधु होता तो यह ससार ही न होता। जीव मूर्खतावश असीम अनन्त को सीमित भौतिक पदार्थ द्वारा, चैतन्य को जड द्वारा अभिव्यक्त करना चाहता है, परन्तु अन्त में अपने भ्रम को समझकर वह उससे छुटकारा पाने की चेष्टा करता है। यह निवृत्ति ही धर्म का प्रारम्भ है और उसका उपाय है, ममत्व का नाश अर्थात् प्रेम। स्त्री, सन्तान या किसी अन्य व्यक्ति के लिए प्रेम नहीं, परन्तु छोटे से अपने ममत्व को छोड़कर, सबके लिए प्रेम। वह 'मानवी उन्नति' और इसके समान जो लम्बी चौड़ी वाते तुम अमेरिका में बहुत सुनोगे, उसके भुलावे में मत आना। सभी क्षेत्रों में 'उन्नति' नहीं हो सकती, उसके साथ साथ कहीं न कहीं अवनति हो रही होगी। एक समाज में एक प्रकार के दोष हैं तो दूसरे में दूसरे प्रकार के। यही बात इतिहास के विशिष्ट कालों की भी है। मध्य युग में चौर डाकू अधिक थे, अब छल-कपट करनेवाले अधिक हैं। एक विशिष्ट काल में वैवाहिक जीवन का सिद्धान्त कम है तो दूसरे में वेश्यावृत्ति अधिक। एक में शारीरिक कष्ट अधिक है, तो दूसरे में उससे सहस्र गुनी अधिक मानसिक यातनाएँ। इसी प्रकार ज्ञान की भी स्थिति है। क्या प्रकृति में गुरुत्वाकर्षण का निरीक्षण और नाम रखने से पहले उसका अस्तित्व ही न था ? फिर उसके जानने से क्या अन्तर पडा ? क्या तुम रेड इन्डियनो (उत्तर अमेरिका के आदिवासियों) से अधिक सुखी हो ?

यह सब व्यर्थ है, निरर्थक है—इसे यथार्थ रूप में जानना ही ज्ञान है। परन्तु थोड़े, बहुत थोड़े ही कभी इसे जान पायेंगे। तमेवैक जानथ आत्मानमन्या वाचो विमुच्य—उस एक आत्मा को ही जानो और सब बातों को छोड़ दो। इस ससार में ठोकरें खाने से इस एक ज्ञान की ही हमें प्राप्ति होती है। मनुष्य जाति को इस प्रकार पुकारना कि उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य धरान्निबोधत—'जागो, उठो, और ध्येय की उपलब्धि के बिना रुको नहीं।' यही एकमात्र कर्म है। त्याग ही धर्म का सार है, और कुछ नहीं।

ईश्वर व्यक्तियों की एक समष्टि है। फिर भी वह स्वयं एक व्यक्ति है, उसी प्रकार जिस प्रकार मानवी शरीर एक ईकाई है और उसका प्रत्येक 'कोश' एक व्यक्ति है। समष्टि ही ईश्वर है, व्यष्टि या अंश आत्मा या जीव है। इसलिए ईश्वर का अस्तित्व जीव पर निर्भर है, जैसे कि शरीर का उसके कोश पर, इसी प्रकार इसका विलोम समक्षिण। इस प्रकार, जीव और ईश्वर परस्परावलम्बी हैं। जब तक एक का अस्तित्व है, तब तक दूसरे का भी रहेगा। और हमारी इस पृथ्वी को छोड़कर अन्य सब ऊँचे लोको में शुभ की मात्रा अशुभ से अत्यधिक होती है, इसलिए वह समष्टिस्वरूप ईश्वर, शिवस्वरूप, सर्वशक्तिमान और सर्वज्ञ

कहा जा सकता है। ये प्रत्यक्ष मुझ हैं और ईश्वर से सम्बन्ध होने के कारण उन्हें प्रमाणित करने के लिए तर्क की आवश्यकता नहीं।

बहुत इन दोनों से पने हैं और वह कोई विशिष्ट अवस्था नहीं है। यह एक ऐसी ईकाई है जो अनेक की समष्टि से नहीं बनी। यह एक ऐसी सत्ता है जो कोस से लकर ईश्वर तक सब में व्याप्त है और उसके बिना किसीका अस्तित्व नहीं हो सकता। वही सत्ता अपना बहु वास्तविक है। जब मैं सोचता हूँ 'मैं बड़ा हूँ' तब मेरा ही अर्थ अस्तित्व होता है। ऐसा ही सब के बारे में है। विश्व की प्रत्येक वस्तु स्वतन्त्र नहीं सत्ता है।

कुछ दिन हुए इपान्त को मिलने की मुझे अकस्मात् प्रबल इच्छा हुई। धारण वह बुझी या और मुझे भाव करता होगा। इसलिए मैंने उसे सहानुभूतिपूर्ण पत्र लिखा। आज अमेरिका से खबर मिलने पर मेरी समझ में आया कि ऐसा क्यों हुआ। हिम-नदियों के पास से ठोके हुए पुष्प मैंने उसे भेजे। कुमारी बार्न्स से कहना कि अपना आन्तरिक स्नेह प्रदर्शित करते हुए उसे कुछ बत भेज दें। प्रेम का कभी नाश नहीं होता। पिता का प्रेम अमर है सन्तान चाहे जो करे या भीमे भी हो। वह मेरा पुत्र जैसा है। अब वह बुद्ध में है इसलिए वह समाप्त या अपने माप से अधिक मेरे प्रेम तथा सहायता का अधिकारी है।

सुमाकाशी

दिव्यकान्त

(पी ई टी स्टडी को लिखित)

ग्रैंड होटल सत पी

बीके स्ट्रिडरलीड

८ अगस्त १८९९

महामास एवं परम प्रिय

तुम्हारे पत्र के साथ ही पत्रों का एक बड़ा पुलिका मिला। यैकामुत्तर न मुलकी जो पत्र लिगा है उसे तुम्हारे पास भेज रहा हूँ। मेरे प्रति उनकी बड़ी इया और गौरव्य है।

कुमारी मूलर का विचार है कि वे बहुत जल्द इंग्लैंड चली जायेंगी। तब मैं 'प्यागिनी वापस' के शरीर हान के लिए बर्न या मरुंगा डिगटे लिए मैंने बारा दिया था। यदि मरियर वर्गति मुझे भयन गाव के अपने की राठी हो मये तभी मैं बॉन जाऊंगा और मूषमार्थ तुम्हें पढ़े ही पत्र मिले बुना। मरियर वर्गति बड़ मरुन और इपान्त है किन्तु उनकी उदारता के साथ उठाने का मुझे

अधिकार नहीं। क्योंकि वहाँ का खर्च भयानक है। ऐसी दशा में वर्न कांग्रेस में शरीक होने का विचार त्याग देना ही मेरे विचार से सर्वोत्तम है, क्योंकि बैठक मितम्बर के मध्य में होगी जिसमें अभी बहुत देर है।

अतः जर्मनी में जाने का मेरा विचार हो रहा है। वहाँ की यात्रा का अन्तिम स्थान कील होगा, जहाँ से इंग्लैंड वापस आऊँगा।

वाल गगाधर तिलक (श्री तिलक) नाम है और 'ओरायन' उनकी पुस्तक का नाम है।

तुम्हारा,  
विवेकानन्द

पुनश्च—जेकबी की भी एक (पुस्तक) है—शायद उन्हीं पद्धतियों पर वह अनूदित है तथा उसके वे ही निष्कर्ष हैं।

पुनश्च—मुझे आशा है कि तुम ठहरने के स्थान और हाल के विषय में कुमारी मूलर की राय ले लोगे, क्योंकि यदि उनकी तथा अन्य लोगों की सलाह न ली गयी तो वे बहुत अप्रसन्न होगी।

वि०

कल रात कुमारी मूलर ने प्रोफेसर डॉयसन को तार भेजा और आज सबेरे ९ अगस्त को तार का जवाब आ गया, जिसमें उन्होंने मेरा स्वागत किया है। १० सितम्बर को मैं कील में डॉयसन के यहाँ पहुँचनेवाला हूँ। तो तुम मुझसे कहीं मिलोगे? कील में? कुमारी मूलर स्विट्ज़रलैंड से इंग्लैंड जा रही है, मैं सेवियर दम्पति के साथ कील जा रहा हूँ। १० सितम्बर को मैं वहाँ रहूँगा।

वि०

पुनश्च—व्याख्यान के विषय में अभी तक मैंने कुछ निर्धारित नहीं किया है। पढ़ने का मुझे अवकाश नहीं। बहुत सम्भव है कि 'सालेम सोसायटी' किसी हिन्दू सम्प्रदाय का सगठन है, झक्कियो का नहीं।

वि०

(श्री ई० टी० स्टर्डी को लिखित)

स्विट्ज़रलैंड,

१२ अगस्त, १८९६

प्रिय श्री स्टर्डी,

आज मुझे एक पत्र अमेरिका से मिला जिसे मैं तुम्हारे पास भेज रहा हूँ। मैंने उनको लिख दिया है कि मैं चाहता हूँ कि कम से कम वर्तमान प्रारम्भिक

कार्य में ध्यान केन्द्रित किया जाय। मैंने उनको यह भी समझा ही है कि कई पत्रिकाएँ शुरू करने के बजाय 'ब्रह्मवादिन्' में अमेरिका में मिश्रित कुछ उद्यम कर काम शुरू करें और बाद में कुछ बढ़ा दें जिससे अमेरिका में होनेवाला वर्ष निरस जाये। पता नहीं वे क्या करेंगे।

हम सोच सकते हैं कि जर्मनी की तरफ रवाना होंगे। जैसे हम जर्मनी पहुँचे कुमायी मूलक इंग्लैण्ड रवाना हो जायेंगे।

कैप्टन तथा श्रीमती सेवियर और मैं श्रीम में तुम्हारी प्रतीक्षा करेंगे।

मैंने अब तक कुछ नहीं सिखा और न कुछ पढ़ा ही है। अस्तुतः मैं पूर्ण विभ्रम में रह रहा हूँ। चिन्ता न करना तुमको खेद तैयार मिलेगा। मुझे मठ से इस आशय का पत्र मिला है कि बृहस्पति स्वामी रवाना होने के लिए तैयार है। मुझे आशा है कि वह तुम्हारी इच्छा के उपयुक्त व्यक्ति होगा। वह हमारे संस्कृत के अच्छे विद्वानों में से है और जैसा कि मैंने सुना है उसने अपनी बंगाली काफ़ी सुधार की है। सारवानन्द के बारे में मुझे अमेरिका से अच्छाचारों की बहुत सी कठोरें मिली हैं। उनसे पता चलता है कि उसने बहुत बहुत अच्छा काम किया है। मनुष्य के अन्दर जो कुछ है उसे विकसित करने के लिए अमेरिका एक अत्यन्त सुन्दर प्रयोगक्षेत्र है। वहाँ का वातावरण कितना सहानुभूतिपूर्ण है। मुझे मुश्किल तथा सारवानन्द के पत्र मिले हैं। सारवानन्द में तुमको श्रीमती स्टर्न तथा अच्छे की स्नेह भेजा है।

शुभाकांक्षी  
विश्वकालम्

(श्रीमती जोति बाल को लिखित)

स्युडनि स्ट्रुवरसैण्ड

२३ अगस्त १८९६

प्रिय श्रीमती बाल

आपका अन्तिम पत्र मुझे आज मिला आपके भेजे हुए ५ पौड की रसीद अब तक आपकी मिल चुकी हूँ। आप जो सदस्य होने की बात लिखी है, उस में ठीक ठीक नहीं समझा गया फिर भी किसी मन्त्रा की सत्य-शुद्धी में मेरे नायोक्त्य के सम्बन्ध में मुझे कोई आशय नहीं है। किन्तु इन विषय में स्टर्न का क्या अभिमत है मैं नहीं जानता। मैं हम समय स्ट्रुवरसैण्ड में भ्रमण कर रहा हूँ। यहाँ न मैं जर्मनी जाऊँगा बाद में इंग्लैण्ड जाता है तथा अगस्त जाड़े में आता। यह जानकर कि सारवानन्द तथा मुश्किल अमेरिका में अच्छी तरह से प्रचार-वार्द

चला रहे हैं, मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई। मेरी अपनी बात तो यह है कि किसी कार्य के प्रतिदान स्वरूप मैं उस ५०० पाँड पर अपना कोई हक कायम करना नहीं चाहता। मैं तो यह समझता हूँ कि मैं काफी परिश्रम कर चुका। अब मैं अवकाश लेने जा रहा हूँ। मैंने भारत से एक और व्यक्ति माँगा है, आगामी माह मे वह मेरे पास आ जायगा। मैंने कार्य प्रारम्भ कर दिया है, अब दूसरे लोग उसको पूरा करें। आप तो देखती ही है कि कार्य को चालू करने के लिए कुछ समय के लिए मुझे रुपया-पैसा छूना पडा। अब मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि मेरा कर्तव्य समाप्त हो चुका है। वेदान्त अथवा जगत् के अन्य किसी दर्शन अथवा स्वयं कार्य के प्रति अब मुझे कोई आकर्षण नहीं है। मैं प्रस्थान करने के लिए तैयारी कर रहा हूँ—इस जगत् मे, इस नरक मे, मैं फिर लौटना नहीं चाहता। यहाँ तक कि इस कार्य की आध्यात्मिक उपादेयता के प्रति भी मेरी अरुचि होती जा रही है। मैं चाहता हूँ कि माँ मुझे शीघ्र ही अपने पास बुला लें। फिर कभी मुझे लौटना न पड़े।

ये सब कार्य तथा उपकार आदि कार्य चित्तशुद्धि के साधन मात्र हैं, इसे मैं ब्रह्म देख चुका। जगत् अनन्त काल तक सदैव जगत् ही रहेगा। हम लोग जैसे हैं, वैसे ही उसे देखते हैं। कौन कार्य करता है और किसका कार्य है? जगत् नामक कोई भी वस्तु नहीं है, यह सब कुछ स्वयं भगवान् हैं। भ्रम से हम इसे जगत् कहते हैं। यहाँ पर न तो मैं हूँ और न तुम और न आप—एकमात्र वही है, प्रभु—एकमेवाद्वितीयम्। अतः अब रुपये-पैसे के मामले से मैं अपना कोई भी सम्बन्ध नहीं रखना चाहता। यह सब आप लोगो का ही पैसा है, आप लोगो को जो रुपया मिले, आप अपनी इच्छा के अनुसार खर्च करें। आप लोगो का कल्याण हो।

प्रभुपदाश्रित, आपका

विवेकानन्द

पुनश्च—डॉक्टर जेन्स के कार्य के प्रति मेरी पूर्ण सहानुभूति है एव मैंने उनको यह बात लिख दी है। यदि गुडविन तथा सारदानन्द अमेरिका मे कार्य को बढ़ा सकते हैं तो भगवान् उन्हें सफलता दे। स्टर्डी के, मेरे अथवा अन्य किसी के पास तो उन्होंने अपने को गिरवी नहीं रखा। 'ग्रीनएकर' के कार्यक्रम मे यह एक भारी भूल हुई है कि उसमे यह छापा गया है कि स्टर्डी ने कृपा कर सारदानन्द को वहाँ रहने की (इंग्लैण्ड से अवकाश लेकर वहाँ रहने की) अनुमति प्रदान की है। स्टर्डी अथवा और कोई एक सन्यासी को अनुमति देनेवाला कौन होता है? स्टर्डी को स्वयं इस पर हँसी आयी और खेद भी हुआ। यह निरी मूर्खता है, और

कुछ भी नहीं। यह स्टर्डी का अपमान है, और यह समाचार यदि भारत में पहुँच जाता तो मेरे कार्य में अल्पसंख्यक हानि होती। सौभाग्यवश मैंने उन विज्ञापना को टुकड़े टुकड़े कर फाड़कर नामी में फेंक दिया है। मुझे आश्चर्य है कि क्या यह वही प्रसिद्ध 'यांकी' आचरण है जिसके बारे में बातें करके अंग्रेज साय मजा करते हैं? यहाँ तक कि मैं खुद भी जगत् के एक भी संन्यासी का स्वामी नहीं हूँ। संन्यासियों को जो कार्य करना उचित प्रतीत होता है उसे वे करते हैं और मैं चाहता हूँ कि मैं उनकी कुछ सहायता कर सकूँ—बस इतना ही उनसे मेरा सम्बन्ध है। पारिवारिक बन्धन कभी सोहे की साँकस में टोड़ चुका हूँ—जब मैं बर्मसंघ की छोटे की साँकस पहिलना नहीं चाहता। मैं मुक्त हूँ सदा मुक्त रहूँगा। मेरी अभिधाया है कि सभी कोई मुक्त हो जायें—आयु के समान मुक्त। यदि न्यूयार्क बोस्टन अथवा अमेरिका के अन्य किसी स्वस के निवासी बेवान्त बर्षों के लिए आप्रहृसीक हो तो उन्हें बेवान्त के आचार्यों को आबरपूर्वक ग्रहण करना उनकी बेखभाव तथा उनके प्रतिपासम की व्यवस्था करनी चाहिए। जहाँ तक मेरी बात है मैं तो एक प्रकार से अवकाश के चुका हूँ। जगत् की नाट्यशाला में मेरा अभिनय समाप्त हो चुका है।

मनवीर  
विश्वकामन्द

(स्वामी रामकृष्णानन्द को लिखित)

लेक न्यूयार्क सिट्टरलैण्ड

२३ अगस्त १८९९

प्रिय दाधि

आज रामदयाल बाबू का पत्र मुझे मिला जिसमें वे लिखते हैं कि दक्षिणेश्वर में भी रामकृष्ण के बाधिकोत्सव के दिन बहुत सी बेस्पार्ले नहीं आयी थीं इसलिये बहुत से लोगों को वहाँ जाने की इच्छा कम होती है। इसके अतिरिक्त उनके विचार से पुरुषों के जाने के लिए एक बिल निमुक्त होना चाहिए और स्त्रियों के लिए छुट्टा। इस विषय पर मेरा निर्णय यह है

१ यदि बेस्पार्ले को दक्षिणेश्वर बीठे महात् तीर्थ में जाने की अनुमति नहीं है, तब वे और कहीं जायें। ईश्वर विशेषकर पापियों के लिए प्रकट होते हैं, पुष्पबानों के लिये कम।

२ किंग जाति बन विद्या और इनके समान और बहुत सी बस्तों के बेस-याचों को जो छात्रात् गरक के द्वार हैं संसार में ही सीमाबद्ध रहने दी। यदि

तीर्थों के पवित्र स्थानों में ये भेदभाव बने रहेंगे तो उनमें और नरक में क्या अन्तर रह जायगा ?

३ अपनी विशाल जगन्नाथपुरी है, जहाँ पापी और पुण्यात्मा, महात्मा और दुरात्मा, पुरुष, स्त्री और घालक—विना किसी उम्र अथवा अवस्था के भेदभाव के—सबको समान अधिकार है। वर्ष में कम से कम एक दिन के लिए सहस्रो स्त्री-पुरुष पाप और भेदभाव से छुटकारा पाते हैं और परमात्मा का नाम सुनते और गाते हैं। यह स्वयं परम श्रेय है।

४ यदि तीर्थस्थान में भी एक दिन के लिए लोगों की पापप्रवृत्ति पर नियंत्रण नहीं किया जा सकता, तब समझो कि दोष तुम्हारा है, उनका नहीं। आध्यात्मिकता की एक ऐसी शक्तिशाली लहर उठा दो कि उसके समीप जो भी आ जायें, वे उसमें बह जायें।

५ जो लोग मन्दिर में भी यह सोचते हैं कि यह वेश्या है, यह मनुष्य नीच जाति का है, दरिद्र है तथा यह मामूली आदमी है—ऐसे लोगों की संख्या (जिन्हें तुम सज्जन कहते हो) जितनी कम हो उतना ही अच्छा। क्या वे लोग, जो भक्तों की जाति, लिंग या व्यवसाय देखते हैं, हमारे प्रभु को समझ सकते हैं ? मैं प्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि सैकड़ों वेश्याएँ आयें और 'उनके' चरणों में अपना सिर नवायें, और यदि एक भी सज्जन न आये तो भी कोई हानि नहीं। आओ वेश्याओ, आओ शराबियों, आओ चोरो, सब आओ—श्री प्रभु का द्वार सबके लिए खुला है। 'It is easier for a camel to pass through the eye of a needle than for a rich man to enter the Kingdom of God' (घनवान का ईश्वर के राज्य में प्रवेश करने की अपेक्षा ऊँट का सुई के छेद में घुसना सहज है।) कभी कोई ऐसे क्रूर और राक्षसी भावों को अपने मन में न आने दो।

६ परन्तु कुछ सामाजिक सावधानी की आवश्यकता है—हम यह कैसे रख सकते हैं ? कुछ पुरुष (यदि वृद्ध हो तो अच्छा हो) पहरेदारी का भार दिन भर के लिए लें। वे उत्सव के स्थान में परिभ्रमण करें, और यदि वे किसी पुरुष अथवा स्त्री की बातचीत या आचरण में अशिष्ट व्यवहार पायें तो वे उन्हें तुरन्त ही उद्यान से निकाल दें। परन्तु जब तक शिष्ट स्त्री-पुरुषों के समान उनका आचरण रहे, तब तक वे भक्त हैं और आदरणीय हैं—चाहे वे पुरुष हों या स्त्री, सच्चरित्र या दुश्चरित्र।

मैं इस समय स्विट्ज़रलैण्ड में भ्रमण कर रहा हूँ और प्रोफेसर डॉयसन से भेंट करने शीघ्र ही जर्मनी जानेवाला हूँ। वहाँ से मैं २३ या २४ सितम्बर तक



इन्वेन्ड लौकर आउंगा और जागामी जाड़े में तुम मुझे भारत में पाओगे। तुम्हें और सबको मेरा प्यार।

तुम्हाण  
द्विवेकानन्द

(डॉ० मञ्जुन्दा राव को लिखित)

सिद्द्वरतल्ल, २९ अगस्त १८९९

प्रिय मञ्जुन्दा राव

मुझे तुम्हाण पत्र अभी मिला। मैं बराबर भ्रम रहा हूँ मैं आल्फ के बहुत से पत्राङ्गों पर चढ़ा हूँ और येने कई हिम नदियाँ पार की हैं। अब मैं जर्मनी जा रहा हूँ। प्रोफेसर बोयसन ने मुझे कौल जाने का निमन्त्रण दिया है। वहाँ से मैं इंग्लैण्ड जाऊँगा। सम्भव है कि इसी राई में मैं भारत लौदूँ।

मैंने 'प्रबुद्ध भारत' के मूल-गुण की विज्ञान की विस्तृत बात पर आपत्ति की थी यह सिद्ध हमारा फुटफुन ही नहीं था बल्कि इसमें अनेक बिजों की निरद्वेष भ्रमण भी है। विज्ञान परम प्रतीतात्मक एवं सविष्ट होती चाहिए। मैं 'प्रबुद्ध भारत' के लिए लन्दन में विज्ञान बाने की कोशिश करूँगा और तुम्हारे पास गे भेजूँगा।

मुझ बडा हर्ष है कि नाम मतिमुन्दर रूप से चल रहा है। परन्तु मैं तुम्हें एक मन्नाह भूंगा। भारत में जो नाम सामे में होता है वह एक दीप के बोग से बन जाता है। हमन अभी तक व्यावसायिक दृष्टिकोण नहीं विचरित किया। अपने व्यावसायिक अर्थ में व्यवसाय व्यवसाय ही है, मिकता नहीं जैसा कि हिन्दू कहाता है 'मूदगी' न इतनी चाहिए। अपने विषये जो विचार-विचार हो वह बन ही नही के रचना चाहिए और अभी एक बोग का पत्र मिला मुझे नाम न बरानि न जाना चाहिए, चाहे दूसरे नाम भूय ही क्यों न रहना पड़े। यही है व्यावसायिक ईमानदारी। दूसरी बात यह है कि कार्य करने की बहुत शक्ति हानी चाहिए। जो कुछ मुझ करने ही उस समय के लिए उस क्षणी मुझ लक्ष्यो। उस समय इस विचार का अन्त इतर बना ला और मुझे मन्नाह जान हीनी।

मुझ इस विचार के मन्नाह के मन्नाह हाने के बाद इसी प्रकार भारतीय जनता में—विना लेख और कत्रद अर्थ में—भी बरानाई मुझ करी। मन्नाह: मुन्नाह है मुन्नाह है यह सब कुछ? परन्तु लेख मन्नाह होगा है कि मन्नाह की मन्नाह के मन्नाह का मन्नाह ही मन्नाह है।

मेरे बच्चों को मर्घर्ष में कूदना होगा, ससार त्यागना होगा—तब दृढ़ नीव पड़ेगी।

बीरता से आगे बढ़ो—डिजाइन और दूसरी छोटी छोटी बातों की चिन्ता न करो—‘घोड़े के साथ लगाम भी मिल जायगी।’ मृत्युपर्यन्त काम करो—मैं तुम्हारे साथ हूँ, और जब मैं न रहूँगा, तब मेरी आत्मा तुम्हारे साथ काम करेगी। यह जीवन आता और जाता है—नाम, यश, भोग, यह सब थोड़े दिन के हैं। ससारी कीड़े की तरह मरने से अच्छा है—कहीं अधिक अच्छा है कर्तव्य क्षेत्र में सत्य का उपदेश देते हुए मरना। आगे बढ़ो।

शुभाकाक्षी,  
विवेकानन्द

(स्वामी कृपानन्द को लिखित)

स्विट्ज़रलैण्ड,  
अगस्त, १८९६

प्रिय कृपानन्द,

तुम पवित्र तथा सर्वोपरि निष्ठावान बनो, एक मुहूर्त के लिए भी भगवान् के प्रति अपनी आस्था न खोओ, इसीसे तुम्हें प्रकाश दिखायी देगा। जो कुछ सत्य है, वही विरस्थायी बनेगा, किन्तु जो सत्य नहीं है, उसकी कोई भी रक्षा नहीं कर सकता। आधुनिक समय में तीव्र गति से प्रत्येक वस्तु की खोज की जाती है, इस समय हमारा जन्म होने के कारण हमें बहुत कुछ सुविधा प्राप्त हुई है। और लोग चाहे कुछ भी क्यों न सोचें, तुम कभी अपनी पवित्रता, नैतिकता तथा भगवत्प्रीति के आदर्श को छोटा न बनाना। सभी प्रकार की गुप्त सस्थाओं से सावधान रहना, इस बात का सबसे अधिक ख्याल रखना। भगवत्प्रेमियों को किसी इन्द्रजाल से नहीं डरना चाहिए। स्वर्ग तथा मर्त्य लोक में सर्वत्र केवल पवित्रता ही सर्वश्रेष्ठ तथा दिव्यतम शक्ति है। सत्यमेव जयते नानृतम्, सत्येन पन्था विततो देवयान । —‘सत्य की ही जय होती है, मिथ्या की नहीं, सत्य के ही मध्य होकर देवयान मार्ग अग्रसर हुआ है’ कोई तुम्हारा सहगामी बना या न बना, इस विषय को लेकर माथापच्ची करने की आवश्यकता नहीं है, केवल प्रभु का हाथ पकड़ने में भूल न होनी चाहिए, वस इतना ही पर्याप्त है।

कल मैं ‘मॉन्ट रोसा’ हिमनद के किनारे गया था तथा चिरकालिक हिम के प्राय मध्य में उत्पन्न कुछ एक सदाबहार फूल तोड़ लाया था। उनमें से एक इस पत्र के अन्दर रखकर तुम्हारे लिए भेज रहा हूँ—आशा है कि इस पार्थिव जीवन के समस्त

हिम तथा बर्फ के बीच में तुम भी उसी प्रकार की आध्यात्मिक बुद्धता प्राप्त करोगे।

तुम्हारा स्वप्न बलि सुन्दर है। स्वप्न में हमें अपने एक ऐसे मानसिक 'स्तर' का परिचय मिलता है, जिसकी अनुसृष्टि वास्तविकता में नहीं होती और कल्पना चाहे कितनी ही ख्याली क्यों न हो—अज्ञात आध्यात्मिक सत्य तथा कल्पना के पीछे रहते हैं। साहस से काम लो। मानव जाति के कल्याण के लिए हम यथासाम्य प्रयास करेंगे। सेप सब प्रभु पर निर्भर है।

अधीर न बनो उतावली न करो। धैर्यपूर्ण एकनिष्ठ तथा शान्तिपूर्ण कर्म के द्वारा ही सफलता मिलती है। प्रभु सर्वोपरि है। बस हम अबस्य सफल होंगे—सफलता अबस्य मिलेगी। 'उसका' नाम धन्य है।

अमेरिका में कोई आशय नहीं है। यदि एक आशय होता तो क्या ही सुन्दर होता। उससे मुझे न जाने कितना आनन्द मिलता और उसके द्वारा इस देश का न जाने कितना कल्याण होता।

धुनाकांशी  
द्विवेकानन्द

(मी ई ठी स्टडी को लिखित)

कीक

१ सितम्बर, १८९६

प्रिय मित्र

आखिर प्रोफेसर डॉयसन के साथ मेरी भेंट हुई। उनके साथ वर्तनीय स्तरों को देखने तथा वैधान्त पर विचार-विमर्श करने में कुछ का सारा दिन बहुत ही अच्छी तरह बीता।

मैं समझता हूँ कि वे एक सड़ाक जाईतवादी (A warring Adventist) हैं। जाईतवाद को छोड़कर और किसी से वे शिक करना नहीं चाहते। 'ईश्वर' धर्म से वे आकर्षित ही रहते हैं। यदि उनके सम्मेलन होता तो वे इसको एकदम निर्मूलक कर देते। मासिक पत्रिका सम्बन्धी तुम्हारी योजना से वे अत्यन्त आनन्दित हैं तथा इस बारे में तुम्हारे साथ सम्पर्क में विचार-विमर्श करना चाहते हैं। यीम ही वे बर्हा जा रहे हैं।

धुनाकांशी  
द्विवेकानन्द

(कुमारी हैरियेट हेल को लिखित)

एयरली लॉज, रिजवे गार्डन्स,  
विम्बलडन, इंग्लैण्ड,  
१७ सितम्बर, १८९६

प्रिय बहन,

स्विट्ज़रलैण्ड से यहाँ वापस आने पर अभी अभी तुम्हारा अत्यन्त शुभ समाचार मिला। 'चिरकुमारी आश्रम' (Old Maids Home) में प्राप्य सुख के वारे में आखिर तुमने अपना मतपरिवर्तन किया है, उससे मुझे बहुत ही खुशी हुई। अब तुम्हारा यह सिद्धान्त विल्कुल ठीक है कि नब्बे प्रतिशत व्यक्तियों के लिए विवाह जीवन का सर्वोत्तम ध्येय है, और जब वे इस चिरन्तन सत्य का अनुभव कर उसका अनुसरण करने को प्रस्तुत हो जायेंगे, उन्हें सहनशीलता और क्षमाशीलता अपनाती पड़ेगी तथा जीवन-यात्रा में मिल-जुल कर चलना पड़ेगा, तभी उनका जीवन अत्यन्त सुखपूर्ण होगा।

प्रिय हैरियेट, तुम यह निश्चित जानना कि 'सम्पन्न जीवन' में अन्तर्विरोध है। अतः हमें सर्वदा इस बात की सम्भावना स्वीकार करनी चाहिए कि हमारे उच्चतम आदर्श से निम्न श्रेणी की ही वस्तुएँ हमें मिलेगी, यह समझ लेने पर प्रत्येक वस्तु का हम अधिक से अधिक सदुपयोग करेंगे। मैं जहाँ तक तुमको जानता हूँ, उससे मेरी धारणा बनी है कि तुम्हारे अन्दर ऐसी प्रशांत शक्ति विद्यमान है, जो क्षमा तथा सहनशीलता से पर्याप्त पूर्ण है। अतः मैं निश्चित रूप से यह भविष्यवाणी कर सकता हूँ कि तुम्हारा दाम्पत्य-जीवन अत्यन्त सुखमय होगा।

तुम तथा तुम्हारे वाग्दत्त पति को मेरा आशीर्वाद। प्रभु तुम्हारे पति के हृदय में सर्वदा यह बात जाग्रत रखें कि तुम जैसी पवित्र, सच्चरित्र, बुद्धिशालिनी, स्नेहमयी तथा सुन्दरी सहर्षामिणी को पाना उनका सौभाग्य था। इतने शीघ्र 'अटलांटिक' महासागर पार करने की मेरी कोई सम्भावना नहीं है, यद्यपि मेरी यह हार्दिक अभिलाषा है कि तुम्हारे विवाह में उपस्थित रहूँ।

ऐसी दशा में हम लोगो की एक पुस्तक में से कुछ अश उद्धृत करना ही मेरे लिए उत्तम है 'अपने पति को इहलोक की समस्त काम्य वस्तुओं की प्राप्ति करने में सहायता प्रदान कर, तुम सर्वदा उनके ऐकान्तिक प्रेम की अधिकारिणी बनो, अनन्तर पौत्र-पौत्रियों की प्राप्ति के वाद जब आयु समाप्त होने लगे, तब जिस सच्चिदानन्द सागर के जलस्पर्श से सब प्रकार के विभेद दूर हो जाते हैं एव हम सब एक में परिणत होते हैं, उन्हें प्राप्त करने के लिए तुम दोनों परस्पर सहायक बनो।'

जमा की तरह तुम जीवन भर पवित्र तथा निष्काम रहो तथा तुम्हारे प्रति का जीवन शिब वैसे जमायतप्राप्त हो !

तुम्हारा स्नेहाभौन भाई  
बिबेकानन्द

(कुमारी मेरी इस को लिखित)

एमएसी सॉज रिजर्वे पार्सन्स  
बिम्बस्वन इन्डिया  
१७ सितम्बर, १८९९

प्रिय बहन

स्विट्जरलैण्ड में ही महीन तक पर्यटारोहण पर-यात्रा और हिमनदों का दृश्य देखने के साथ आज सम्पन्न पहुँचा। इससे मुझे एक काम हुआ—शरीर का व्यर्थ का मुटापा छूट गया और बदन कुछ पीड़ा बट गया। ठीक किन्तु उसमें भी शौरियत नहीं क्योंकि इस जन्म में जो ठोस शरीर प्राप्त हुआ है, उसने अनन्त विस्तार की होड़ में मन को मात देने की ठान रखी है। अगर यह खूबिया जायी रहा तो मुझे बस ही अपने शारीरिक रूप में अपनी व्यक्तिगत पहिचान खोनी पड़ेगी—कम से कम सब शारी बुनिया की निगाह में।

हैरियट के पत्र के धूम संबाह से मुझे जो प्रसन्नता हुई, उसे सभ्यों में व्यक्त करना मेरे लिए असम्भव है। मैंने उसे आज पत्र लिखा है। खेद है कि उसके बिबाह के अवसर पर मैं न आ सकूँगा किन्तु समस्त धूमकामनाओं और आशीर्षकों के साथ मैं अपने 'सूक्ष्म शरीर' से उपस्थित रहूँगा। और, अपनी प्रसन्नता की पूर्णता के निमित्त मैं तुमसे तथा अन्य बहनों से भी इसी प्रकार के समाचार की अपेक्षा करता हूँ।

इस जीवन में मुझे एक बड़ी मसीहत मिठी है, और प्रिय मेरी मैं अब उसे तुम्हें बताना चाहता हूँ। वह है—'जितना ही ऊँचा तुम्हारा ध्येय होया जतना ही अधिक तुम्हें सन्तुष्ट होना पड़ेगा। कारण यह है कि 'संसार में' अबका इस जीवन में भी आदरें नाम की वस्तु की उपलब्धि नहीं हो सकती। जो संसार में पूर्णता चाहता है वह पागल है क्योंकि वह ही नहीं सकती।

असीम में असीम तुम्हें कैसे मिलेगा? इसलिए मैं तुम्हें बताना चाहता हूँ कि हैरियट का जीवन अरन्त आनन्दमय और सुखमय होया क्योंकि वह इतनी कल्पनाशील और भावुक नहीं है कि अपने को मूर्ख बना ले। जीवन को सुमधुर बनाने के लिए उसमें पर्याप्त भावुकता है और जीवन की कठोर गुलियों

को, जो प्रत्येक के मागने आती ही है, सुलजाने के लिए उनमें काफी समझदारी तथा कोमलता भी है। उनमें भी अधिक मात्रा में वे ही गुण मैकॉकटले में भी हैं। वह ऐसी लडकी है जो सर्वोत्तम पत्नी होने लायक है, पर यह दुनिया ऐसे मूढों की खान है कि इने-गिने लोग ही आन्तर्गिक नान्दर्य प्राप्त पाते हैं। जहाँ तक तुम्हारा और आइसावेल का मवाल है, मैं तुम्हें मच बताऊँगा और मेरी भाषा स्पष्ट है।

मेरी, तुम तो एक बहादुर अरब जैनी हो—गानदार और भव्य। तुम भव्य राजमहिषी बनने योग्य हो—शारीरिक दृष्टि से और मानसिक दृष्टि से भी। तुम किमी तेज-नरक, बहादुर और जोखिम उठानेवाले वीर पति की पार्श्ववर्ती बन कर चमक उठोगी, किन्तु प्रिय बहन, पत्नी के रूप में तुम खराब में खराब भिन्न होगी। सामान्य दुनिया में जो आराम में जीवन व्यतीत करनेवाले, व्यावहारिक तथा कार्य के बोझ से पिमनेवाले पति हुआ करते हैं, उनकी तो तुम जान ही निकाल लोगी। सावधान, बहन, यद्यपि किसी उपन्यास की अपेक्षा वास्तविक जीवन में अधिक रूमानिअत है, लेकिन वह है बहुत कम। अतएव तुम्हें मेरी नज़ाह है कि जब तक तुम अपने आदर्शों को व्यावहारिक स्तर पर न ले आ सको, तब तक हरगिज़ विवाह मत करना। यदि कर लिया तो दोनों का जीवन दुःखमय होगा। कुछ ही महीनों में सामान्य कोटि के उत्तम, भले युवक के प्रति तुम अपना सारा आदर खो बैठोगी और तब जीवन नीरस हो जायगा। बहन आइसावेल का स्वभाव भी तुम्हारे ही जैसा है। अन्तर इतना ही है कि किंडरगार्टन की अध्यापिका होने के नाते उसने धैर्य और सहिष्णुता का अच्छा पाठ सीख लिया है। सम्भवत वह अच्छी पत्नी बनेगी।

दुनिया में दो तरह के लोग हैं। एक कोटि तो उन लोगों की है जो दृढ़ स्नायुओवाले, शान्त तथा प्रकृति के अनुरूप आचरण करनेवाले होते हैं, वे अधिक कल्पनाशील नहीं होते, फिर भी अच्छे, दयालु, सौम्य आदि होते हैं। दुनिया ऐसे लोगों के लिए ही है—वे ही सुखी रहने के लिए पैदा हुए हैं। दूसरी कोटि उन लोगों की है जिनके स्नायु अधिक तनाव के हैं, जिनमें प्रगाढ़ भावना है, जो अत्यधिक कल्पनाशील हैं, सदा एक क्षण में बहुत ऊँचे चले जाते हैं और दूसरे क्षण नीचे उतर आते हैं—उनके लिए सुख नहीं। प्रथम कोटि के लोगों का सुख-काल प्रायः सम होता है और द्वितीय कोटि के लोगों को हर्ष विषाद के द्वन्द्व में जीवन व्यतीत करना पड़ता है। किन्तु इसी द्वितीय कोटि में ही उन लोगों का आविर्भाव होता है, जिन्हें हम प्रतिभासम्पन्न कहते हैं। इस हाल के सिद्धान्त में कुछ सत्य है कि 'प्रतिभा एक प्रकार का पागलपन है।'

इस कोटि के सोम यदि महान् बनना चाहें तो उन्हें बारे-ब्यारे की छार्फ छड़नी होगी—मुझ के लिए मैदान साक़ करना पड़ेगा। कोई बौद्ध नहीं—न जासू न जाता न बच्चे और न किसी वस्तु के प्रति आत्मस्यक्तता से अधिक आसक्ति। अनुरक्ति केवल एक 'भाव' के प्रति और उसीके निमित्त पीना-मरना। मैं इसी प्रकार का व्यक्ति हूँ। मैंने केवल बेदान्त का भाव ग्रहण किया है और 'बुद्ध' के लिए मैदान साक़ कर लिया है। तुम और आइसायेक भी इसी कोटि में हो परन्तु मैं तुम्हें बठा देना चाहता हूँ मद्यपि है यह कष्टु सत्य कि 'तुम सोय अपना जीवन स्वयं खींच कर रही हो। या तो तुम सोय एक भाव ग्रहण कर लो, तन्निमित्त मैदान साक़ कर लो और जीवन अर्पित कर दो या समुच्छ एवं व्यावहारिक बनो आदर्श भीषा करो विवाह कर लो एवं 'मुगमय जीवन' स्थानीय करो। या तो 'मोग' या 'योम'—गोपारिक मुग भोगो या सब त्याग कर योगी बनो। एक साथ दोनों की उपसन्धि किसीको नहीं हो सकती। अभी या फिर कभी नहीं—जीम बुन लो। बहावत है कि 'जो बहुत लक्ष्मीय होता है उगटे हाथ कुछ नहीं समझता। अब मध्ये दिस से वास्तव में और सग के लिए कम-नैषाम के लिए 'मैदान साक़ करने' का संकल्प करो कुछ भी ले लो, दर्शन या विज्ञान या धर्म अथवा साहित्य कुछ भी ले लो और अपने सौय जीवन के लिए उगीका अपना ईश्वर बना लो। या तो मुग ही लाभ करो या मारना। मुम्हारे और आइसायेक के प्रति मेरी सगनुभूति नहीं तुमने इसे पुना है न उंग। मैं तुम्हें मुगी—जैसा कि ईरिपट मे ठीक ही पुना है—अथवा 'महान्' देना चाहता हूँ। भोजन अथवा न शृंगार तथा सामाजिक अस्तुफल ऐसी वस्तुओं नहीं कि जीवन को उगट हवाक कर लो—विषय तुम मेरी। तुम एक उगच्छ स्थित्य और पाण्ड्याओं में बुन लगने से नहीं ही त्रिगट लिए उग भी कारण नहीं है। तुमय महान् बनने की आम्हावांता होती आदि। मैं जानता हूँ कि तुम मेरी इन वस्तुओं का समुचित भाव में ग्रहण करोगी अथवा मुम्हें मान्य है कि मैं तुम्हें बरन दट कर जो समुचित कर रहा हूँ बीगा ही या उगय भी अथवा तुम्हें प्यार करता हूँ। इसी कारण का सग करन करने से विचार का और उगी उगी अनुभव करना जो रहा है लो लो इसे बना देने का विचार हो रहा है। ईरिपट मे जैसा लोबन मयावाय विना उगय हान् तुम्हें बर लव करने को उगीत हुआ। लोहा भी विचारित है। जाने और मुगी होने का उगी लव इस लकार में लव मुम्हें ही लगता है जैसा देहर लगी हीर्न अथवा मैं तुम्हारे बारे में बर मुम्हें लणन करेण कि लव महान् कार्य कर रही ही।

अबही से उगींकर उगींकर मे मेरी उगे करेण की। उगी विचार है कि

तुमने मुना होगा कि वे जीवित जर्मन दार्शनिकों में सर्वश्रेष्ठ हैं। हम दोनों साथ ही इंग्लैंड आये और आज साथ ही यहाँ अपने मित्र से मिलने आये, जहाँ इंग्लैंड के प्रवास-काल में मैं ठहरनेवाला हूँ। संस्कृत में वार्तालाप उन्हें अत्यन्त प्रिय है और पाश्चात्य देशों में संस्कृत के विद्वानों में वे ही एक ऐसे व्यक्ति हैं जो उसमें बातचीत कर सकते हैं। वह अभ्यस्त बनना चाहते हैं, इसलिए संस्कृत के सिवा अन्य किसी भाषा में वे मुझसे बातें नहीं करते।

यहाँ मैं अपने मित्रों के बीच आया हूँ, कुछ सप्ताह कार्य करूँगा और तब जाडो में भारत वापस लौट जाऊँगा।

तुम्हारा सदैव सस्नेह भाई,  
विवेकानन्द

(श्री आलार्सिगा पेरुमल को लिखित)

द्वारा कुमारी मूलर,  
एयरली लॉज, रिजवे गार्डन्स,  
विम्बलडन, इंग्लैंड,  
२२ सितम्बर, १८९६

प्रिय आलार्सिगा,

मैक्समूलर द्वारा लिखित रामकृष्ण पर जो लेख मैंने तुम्हें भेजा था, आशा है मिला होगा। उन्होंने कही भी मेरे नाम की चर्चा नहीं की है—इसके लिए दुःखित मत होना। क्योंकि मुझसे परिचय होने के छ माह पूर्व उन्होंने यह लेख लिखा था। और, यदि उनका मूल वक्तव्य सही है तो फिर इससे क्या लेना देना कि किसका नाम उन्होंने लिया और नहीं लिया। जर्मनी में प्रोफेसर डॉयसन के साथ मेरा समय आनन्दपूर्वक कटा। इसके बाद हम दोनों साथ ही लन्दन आये और हमारी मित्रता घनिष्ठ हो गयी है।

मैं शीघ्र ही उनके सम्बन्ध में एक लेख भेज रहा हूँ। सिर्फ एक प्रार्थना है, मेरे लेख के पहले पुराने ढग का—‘प्रिय महाशय’ मत जोड़ा करो। तुमने ‘राजयोग’ पुस्तक अभी तक देखी है या नहीं, इस वर्ष के लिए मैं एक प्रारूप भेजने की चेष्टा करूँगा। मैं तुम्हें ‘डेली न्यूज़’ में प्रकाशित रूस के ज़ार द्वारा लिखित यात्रा-पुस्तक की समीक्षा भेज रहा हूँ। जिस परिच्छेद में उन्होंने भारत को अध्यात्म और ज्ञान का देश कहा है—उसको तुम अपने पत्र में उद्धृत करके एक निबन्ध ‘इंडियन मिरर’ को भेज दो।

तुम ज्ञानयोग के व्याख्यान को खुशी से प्रकाशित कर सकते हो। और



इस कोटि के लोग यदि महान् बनना चाहें तो उन्हें बारे-भ्यारे की ऊर्ध्व कब्जी होगी—मुझ के लिए मैदान साफ़ करना पड़ेगा। कोई बौद्ध नहीं—ब बोक न पाँठा न बच्चे और न किसी वस्तु के प्रति आवस्यकता से अधिक आसक्ति। अनुरक्ति केवल एक 'भाव' के प्रति और उसीके विमित्त जीना-भरना। मैं इसी प्रकार का व्यक्ति हूँ। मैंने केवल वेदान्त का भाव ग्रहण किया है और 'मुझ के लिए मैदान साफ़ कर लिया है। तुम और आइसाबस भी इसी कोटि में हो परन्तु मैं तुम्हें बता देना चाहता हूँ मद्यपि है यह कष्ट सत्य कि 'तुम लोग अपना जीवन व्यर्थ जीवट कर रही हो। या तो तुम लोग एक भाव ग्रहण कर जो तन्निमित्त मैदान साफ़ कर लो और जीवन अर्पित कर दो या सन्तुष्ट एवं व्यावहारिक बनो आदर्श लीचा करो विवाह कर लो एवं 'सुखमय जीवन' व्यतीत करो। या तो 'योग' या 'योग'—सांसारिक सुख भोगो या सब त्याग कर योगी बनो। 'एक साथ दोनों की उपलब्धि किसीको नहीं हो सकती। लभी या फिर कभी नहीं—सीधे चुन लो। कहावत है कि 'जो बहुत सविशेष होता है, उसके हाथ कुछ नहीं लगता। अब सच्चे दिव्य से वास्तव में और सदा के लिए कर्म-संधाम के लिए 'मैदान साफ़ करने' का संकल्प करो कुछ भी से लो धर्मन या विज्ञान या धर्म अथवा साहित्य कुछ भी से लो और अपने शेष जीवन के लिए उसीको अपना ईश्वर बना लो। या तो मुझ ही काम करो या महानता। तुम्हारे और आइसाबस के प्रति मेरी सहानुभूति नहीं तुमसे इस चुना है न उसे। मैं तुम्हें सुखी—जैसा कि हैरियट ने ठीक ही चुना है—अथवा 'महान् बनना चाहता हूँ। भोजन मद्यपान शृंगार तथा सामाजिक अलङ्कारण ऐसी वस्तुएँ नहीं कि जीवन को उनके हवाले कर दी—विशेषतः तुम मेरी। तुम एक उत्कृष्ट मस्तिष्क और योग्यताओं में चुन लगने दे रही हो जिसके लिए बरा भी कारण नहीं है। तुममें महान् बनने की महत्वाकांक्षा होनी चाहिए। मैं जानता हूँ कि तुम मेरी इन बद्धवित्तियों को समुचित भाव से ग्रहण करोगी क्योंकि तुम्हें माकूम है कि मैं तुम्हें बहन कह कर भी सम्बोधित करता हूँ बैठा ही या उससे भी अधिक तुम्हें प्यार करता हूँ। इसे कताने का धैर्य बहुत पहले से विचार बा और ज्यों ज्यों अनुभव बढ़ता जा रहा है, त्यों त्यों इसे बता देने का विचार हो रहा है। हैरियट से भी हर्षमय समाचार मिला उससे हटत् तुम्हें यह सब कहने की प्रेरित हुआ। तुम्हारे भी विवाहित हो जाने और मुगी होने पर, जहाँ तक इस संसार में तुम मुलभ ही सचता है, मुझे बहुर खभी होगी अथवा मैं तुम्हारे बारे में यह मुलना पमान कर्मों का कि तुम महान् कार्य कर रही हो।

अर्थात् मैं प्रोफेसर डॉपलन ने मेरी भेंट मजेदार थी। मुझे विश्वास है कि

सदा सहायता मिलती थी तथा जो मुझमें शक्ति एवं उत्साह का संचार करता था। और कई हजार मील की दूरी के बावजूद वही मुखमंडल मेरे मनश्चक्षु के सम्मुख उदित हुआ, क्योंकि उस अतीन्द्रिय भूमि में दूरत्व का स्थान ही कहाँ है? अस्तु, तुम तो अपने शान्तिमय तथा पूर्ण विश्रामदायक घर लौट चुकी हो—परन्तु मेरे समक्ष प्रतिक्रमण कर्मों का ताडन बढ़ता ही जा रहा है। फिर भी तुम्हारी शुभ-कामनाएँ सदा ही मेरे साथ हैं—ठीक है न?

किसी गुफा में जाकर चुपचाप निवास करना ही मेरा स्वाभाविक संस्कार है, किन्तु पीछे से मेरा अदृष्ट मुझे आगे की ओर ढकेल रहा है और मैं आगे बढ़ता जा रहा हूँ। अदृष्ट की गति को कौन रोक सकता है?

ईसा मसीह ने अपने 'पर्वत पर उपदेश' (Sermon on the Mount) में यह क्यों नहीं कहा—'जो सदा आनन्दमय तथा आशावादी है, वे ही धन्य हैं, क्योंकि उनको स्वर्ग का राज्य तो पहले ही प्राप्त हो चुका है।' मेरा विश्वास है कि उन्होंने निश्चय ही ऐसा कहा होगा, यद्यपि वह लिपिबद्ध नहीं हुआ, कारण यह है कि उन्होंने अपने हृदय में विश्व के अनन्त दुःख को धारण किया था एवं यह कहा था कि साधु का हृदय शिशु के अन्तःकरण के सदृश है। मैं समझता हूँ, उनके हजारों उपदेशों में से शायद एकाग्र उपदेश, जो याद रहा, लिपिबद्ध किया गया है।

हमारे अधिकांश मित्र आज आये थे। गाल्सवर्दी परिवार की एक सदस्या—विवाहित पुत्री भी आयी थी। श्रीमती गाल्सवर्दी आज नहीं आ सकी, सूचना बहुत देर से दी गयी थी। अब हमारे पास एक हॉल भी है, खासा बड़ा जिसमें लगभग दो सौ व्यक्ति अथवा इससे अधिक भी आ सकते हैं। इसमें एक बड़ा सा कोना है जिसमें पुस्तकालय की व्यवस्था की जायगी। अब मेरी सहायता के लिए भारत से एक और व्यक्ति आ गया है।

मुझे स्विट्जरलैण्ड में बड़ा आनन्द आया, जर्मनी में भी। प्रोफेसर डॉयसन बहुत ही कृपालु रहे—हम दोनों साथ लन्दन आये और दोनों ने यहाँ काफ़ी आनन्द लिया। प्रोफेसर मैक्समूलर भी बहुत अच्छे मित्र हैं। कुल मिलाकर इंग्लैण्ड का काम मजबूत हो रहा है—और सम्माननीय भी, यह देखकर कि बड़े बड़े विद्वान् सहानुभूति प्रदर्शित कर रहे हैं। शायद मैं अगली सर्दियों में कुछ अग्रज मित्रों के साथ भारत जाऊँगा। यह तो बात हुई अपने वारे में।

उस धार्मिक परिवार का क्या हाल है? मुझे विश्वास है कि सब कुछ विल्कुल ठीक चल रहा है। अब तो तुम्हें फोक्स का समाचार सुनने को मिला होगा। मुझे डर है कि उसके जहाज़ी यात्रा शुरू करने के एक दिन पहले, मेरे यह कहने से कि तुम तब तक मेवेल से विवाह नहीं कर सकते, जब तक तुम काफ़ी कमाने न लगे,

डॉक्टर मन्बुन्वा राज भी उसे अपने 'प्रबुद्ध भारत' के लिए ले सकते हैं किन्तु सिर्फ़ सरस और सहज भाषणों को। उन व्याप्तियों को एक बार सावधानी से देखकर उसमें पुनरावृत्ति और परस्पर विरोधी बिचारों को निकाल देना है। मुझे पूरी आशा है कि छिन्ने के लिए अब अधिक समय मिलेगा। पूरी शक्ति के साथ कार्य में जुट रही।

समी को प्यार—

तुम्हारा

बिबेकानन्द

पुनरुत्थ—मीने उद्यत होनेवाले परिच्छेद को रेखांकित कर दिया है। बाकी बचा किसी पत्रिका के लिए निरर्थक है।

मैं नहीं समझता कि अभी पत्रिका को मासिक बनाने से कोई काम होया— जब तक कि तुमको यह विश्वास न हो जाय कि उसका कसेबर मोटा होना। बीसा कि अभी है—कसेबर और सामग्री सभी मामूली है। अभी भी एक बहुत बड़ा लेख पढ़ा हुआ है, जो अभी तक छूआ नहीं गया है। यथा—तुम्हीवाच करीर और तानक तथा दक्षिण भारत के सन्तों के जीवन और कृति के सम्बन्ध में लिखना। इसे विद्वत्तापूर्ण ढंगी तथा पूरी व्यापकायी के साथ लिखना होया—बीसे डाले और अपकचरे डग से नहीं बसल मे पत्र को आबर्षे—वेदात्त के प्रचार के अलावा भारतीय अनुसंधान और ज्ञानविषयाचारों का—मुख-मथ बनाता होया। हाँ बर्म ही इसका आधार होया। तुम्हें अच्छे लेखकों से निककर अच्छी सामग्री के लिए आबर्ष करना होया तथा उनकी लेखनी से अच्छी रचना बसूळ करनी होयी। समय के साथ कार्य में जुटे रही—

तुम्हारा

बिबेकानन्द

(शुमायी औतेड्रिन मैकलिगॉड को लिखित)

डा. कुमायी मूलर,

एयरली लॉज रिजने नार्थ

बिम्बसडन ईंग्लैण्ड

७ अक्टूबर, १८९९

प्रिय जी

पुनः अभी सम्बन्ध में। और करारों में सम्बन्ध शुरू हो गयी हैं। मेरा मन आज ही उन परिचित मूल को चारों ओर घूँड़ रहा था जिसमें कभी विष्णुवाह की एक रेखा तक नहीं दिगनी थी जो अभी परिचित नहीं होना था और जिनके मुझे

इसके लिए उसने महाकाक्षा से समस्त सुन्दर वस्तुओं का एक साथ आवाहन कर अपने शाश्वत मन में एकत्र किया और उनको एक चित्र की भाँति उत्कृष्ट तथा आदर्श रूप दिया। ऐसे दिव्य, ऐसे आश्चर्यजनक आदि रूप से उस सौन्दर्य राशि की रचना हुई।' (कालिदास कृत अभिज्ञानशाकुन्तलम्)

'जो', 'जो' तुम वह हो, मैं केवल इतना और जोड़ देना चाहता हूँ कि उसी रचयिता ने समस्त पवित्रता, समस्त उदारशयता तथा अन्य समस्त गुणों को भी एकत्र किया और तब 'जो' की रचना हुई।

शुभाकाक्षी,  
विवेकानन्द

पुनश्च—सेवियर दम्पति तुम्हें अपनी शुभकामनाएँ भेज रहे हैं। उनके निवासस्थान से ही मैं यह पत्र लिख रहा हूँ।

विवेकानन्द

(कुमारी एलेन वाल्डो या हरिदासी नामक एक शिष्या को लिखित)

एयरली लॉज, रिजवे गार्डन्स,  
विम्बलडन, इंग्लैण्ड  
८ अक्टूबर, १८९६

प्रिय वाल्डो,

स्विट्ज़रलैण्ड में मुझे पूर्ण विश्राम मिला एव प्रोफेसर पॉल डॉयसन के साथ मेरी विशेष मित्रता हो गयी है। वस्तुतः अन्य स्थानों की अपेक्षा यूरोप में मेरा कार्य अधिक सन्तोषजनक रूप से बढ़ रहा है तथा भारतवर्ष में इसका बहुत ज्यादा प्रभाव पड़ेगा। लन्दन में पुनः कक्षाएँ चालू हो गयी हैं—आज तत्सम्बन्धी प्रथम व्याख्यान होगा। अब मुझे एक ऐसा सभागृह मिल गया है, जिस पर मेरा ही नियंत्रण है, उसमें दो सौ या उससे भी अधिक व्यक्ति बैठ सकते हैं।

यह तो तुम जानती ही हो कि अग्रेज लोग कितने दृढचित्त होते हैं, अन्य जातियों की अपेक्षा उन लोगों में पारस्परिक ईर्ष्या की भावना भी बहुत ही कम होती है और यही कारण है कि उनका प्रभुत्व सारे ससार पर है। दासता की प्रतीक खुशामद से सर्वथा दूर रहकर उन्होंने आज्ञा-पालन, पूर्ण स्वतन्त्रता के साथ नियमों के पालन के रहस्य का पता लगा लिया है।

प्रोफेसर मैक्समूलर अब मेरे मित्र हैं। मुझ पर लन्दन की छाप लग चुकी है। 'र' नामक युवक के बारे में मुझे विशेष कुछ ज्ञात नहीं। वह बंगाली है तथा कुछ कुछ संस्कृत भी पढ़ सकता है। तुम तो मेरी इस दृढ धारणा से परिचित ही हो कि

बहु कुछ निराशा हा गया था ! क्या भिन्न अभी तुम्हारे यहाँ है ? उससे मैं प्यार करना। तुम अपना वर्तमान पता भी मुझे लिखना।

माँ कैसी है ? मुझे बिरबाम है कि फ्रांसिस पूर्ववत् पहले लरे जाने की तरह है। अल्बर्टा की संगीत और भाषाएँ सीख रही होगी पूर्ववत् खुब हँसती होगी और खुब सब जाली हामी ? हाँ आजकल फल-बादाम ही मेरा मुख्य आहार है, एम से मुझे काफ़ी अनुकूल ज्ञान पड़ते हैं। यदि कभी उस अज्ञात 'उच्च देशीय' बड़े डॉक्टर के साथ तुम्हारी मेट हो ता यह रहस्य उन्हें बतलाना। मेरी बर्बाद बहुत कुछ घट चुकी है जिस दिन मायन बना होता है, उस दिन अबस्य पीटिक मोशन करना पड़ता है। हासिस का क्या समाचार है ? उसकी तरह के मधुर स्वभाव का कोई दूसरा बालक मुझे बिलामी नहीं दिया। उसका समस्त जीवन सर्वदिन आशीर्वाद से पूर्ण हो।

मैंने सुना है कि जारपुट्ट के मतवाय के समर्जन में तुम्हारे मित्र कोया भाष्य वे रहे हैं ? इसमें सन्देह नहीं कि उनका भाष्य विशेष अनुकूल नहीं है। कुमारी एप्प्रीड तथा हमारे योगालम्ब का क्या समाचार है ? 'ज व ज' गोष्ठी की क्या खबर है ? और हमारी धीमती (नाम बाद नहीं है) कैसी हैं ? ऐसा सुना जा रहा है कि हास ही में आधा अहाब भरकर हिल्लू, बीड मुसलमान तथा अन्य और न जाने कितने ही सम्प्रदाय के लोग अमेरिका जा पहुँचे हैं तथा महारमाओं की खोज करनेवालों ईसाई धर्म-अभारको आदि का वृत्त चल भारत में भुसा है। बहुत खूब ! भारतवर्ष तथा अमेरिका—वे दोनों बेस धर्म-उद्योग के लिए बने जान पड़ते हैं ! किन्तु 'जो' सावधान ! विधिमियों की कूट खतरनाक है। धीमती स्टैसिस से माथ रास्ते में भेंट हुई। आजकल वे मेरे भाष्य सुनने नहीं जाती। यह उनके लिए उचित ही है क्योंकि अत्यधिक धार्मिकता भी ठीक नहीं है। क्या तुम्हें उस महिला की याद है जो मेरी हर धमा में इतनी बेर छ जाती थी कि उसको कुछ भी सुनने को न मिलता था किन्तु तुरन्त बाद में वह मुझे फ़कड़कर इतनी बेर तक बातचीत में सम्पाये रखती कि भूख से मेरे ज्वर में 'वाटरसू' का महातंषाम छिड़ जाता था। वह भाषी थी। लोग था रहे हैं तथा और भी आयेपि। यह जालम्ब का विषय है।

राज बड़ती जा रही है अत 'जो' बिदा—(स्युयार्क में भी क्या ठीक ठीक अरब-कामरे का पालन करना आवश्यक है ?) प्रभु गिरलर तुम्हारा कस्याव करें।

'मनुष्य के प्रवीण रचयिता ब्रह्मा को एक ऐसे निर्दोष रूप की रचना करने की इच्छा हुई जिसका अनुपम सौष्ठव सृष्टि की सुन्दरतम कृष्टियों में सर्वोत्तम हो।

इसके लिए उसने महाकाक्षा से समस्त सुन्दर वस्तुओं का एक साथ आवाहन कर अपने शाश्वत मन में एकत्र किया और उनको एक चित्र की भाँति उत्कृष्ट तथा आदर्श रूप दिया। ऐसे दिव्य, ऐसे आश्चर्यजनक आदि रूप से उस सौन्दर्य राशि की रचना हुई।' (कालिदास कृत अभिज्ञानशाकुन्तलम्)

'जो', 'जो' तुम वह हो, मैं केवल इतना और जोड़ देना चाहता हूँ कि उसी रचयिता ने समस्त पवित्रता, समस्त उदारशयता तथा अन्य समस्त गुणों को भी एकत्र किया और तब 'जो' की रचना हुई।

शुभाकाक्षी,  
विवेकानन्द

पुनश्च—सेवियर दम्पति तुम्हें अपनी शुभकामनाएँ भेज रहे हैं। उनके निवासस्थान से ही मैं यह पत्र लिख रहा हूँ।

विवेकानन्द

(कुमारी एलेन वाल्डो या हरिदासी नामक एक शिष्या को लिखित)

एयरली लॉज, रिजवे गार्डन्स,  
विम्बलडन, इंग्लैण्ड  
८ अक्टूबर, १८९६

प्रिय वाल्डो,

स्विट्ज़रलैण्ड में मुझे पूर्ण विश्राम मिला एव प्रोफेसर पॉल डॉयसन के साथ मेरी विशेष मित्रता हो गयी है। वस्तुतः अन्य स्थानों की अपेक्षा यूरोप में मेरा कार्य अधिक सन्तोषजनक रूप से बढ़ रहा है तथा भारतवर्ष में इसका बहुत ज्यादा प्रभाव पड़ेगा। लन्दन में पुनः कक्षाएँ चालू हो गयी हैं—आज तत्सम्बन्धी प्रथम व्याख्यान होगा। अब मुझे एक ऐसा सभागृह मिल गया है, जिस पर मेरा ही नियंत्रण है, उसमें दो सौ या उससे भी अधिक व्यक्ति बैठ सकते हैं

यह तो तुम जानती ही हो कि अग्रेज लोग कितने दृढचित्त होते हैं, अन्य जातियों की अपेक्षा उन लोगों में पारस्परिक ईर्ष्या की भावना भी बहुत ही कम होती है और यही कारण है कि उनका प्रभुत्व सारे ससार पर है। दासता की प्रतीक खुशामद से सर्वथा दूर रहकर उन्होंने आज्ञा-पालन, पूर्ण स्वतन्त्रता के साथ नियमों के पालन के रहस्य का पता लगा लिया है।

प्रोफेसर मैक्समूलर अब मेरे मित्र हैं। मुझ पर लन्दन की छाप लग चुकी है। 'र' नामक युवक के बारे में मुझे विशेष कुछ ज्ञात नहीं। वह बंगाली है तथा कुछ कुछ संस्कृत भी पढ़ सकता है। तुम तो मेरी इस दृढ धारणा से परिचित ही हो कि

बिचने काम-काज पर विजय नहीं पायी उस पर मुझे इतई मरोसा नहीं। तुम उसे सैद्धांतिक विषयों की शिक्षा देने का अवसर प्रदान कर देना सकती हो किन्तु वह 'राजसोय' कमी भी न सिखा पाये। जो नियमित रूप से उसमें प्रशिक्षित नहीं उसके लिए इससे सिखनाइ करना नितास्त कठतरनाक है। सारवानन्द के सम्बन्ध में कोई डर नहीं है, वर्तमान भारत के सर्वश्रेष्ठ योगी का आशीर्वाद उसे प्राप्त है। तुम क्यों नहीं शिक्षा देना प्रारम्भ करती हो? इस 'र' बाइक की अपेक्षा तुम्हारा दार्शनिक ज्ञान कहीं अधिक है। 'कसा' की मोटिस निकालो तथा नियमित रूप से बर्नबर्न करो और व्याख्यान दो।

अनेक हिन्दुओं यहाँ तक कि मेरे किसी मुठनाई को अमेरिका में सफरया मिकी है—इस संवाद से मुझे जो आनन्दानुभव होता है, उससे सहस्र गुना अधिक ज्ञानत्व मुझे तब प्राप्त होता जब मैं यह देखूँगा कि तुम लोगों में से किसीने इसमें हाथ बँटाया है। मनुष्य दुनिया को बीतना चाहता है किन्तु अपनी सन्तान के निकट परावित होता चाहता है। ज्ञानानि प्रवर्धित करो। ज्ञानानि प्रवर्धित करो।

शुभाकारिणी  
विश्वेकानन्द

(श्रीमती जोसि बूस को लिखित)

विश्वसदन इन्डिया  
८ अक्तूबर, १८९६

प्रिय श्रीमती बूस

जर्मनी में प्रोफेसर डॉपसन के साथ मेरी भेंट हुई थी। कौक में मैं उनका बठिबि बा। हम दोनों एक साथ सन्धन आये थे तथा वहाँ पर भी कई बार उनसे मिल कर मुझे विश्वेकानन्द मिला। जर्म तथा समाज सम्बन्धी कार्य के विभिन्न वर्गों के प्रति यद्यपि मेरी पूर्ण सहानुभूति है फिर भी मुझे ऐसा प्रतीत ही रहा है कि प्रत्येक के कार्यों का विश्वेकानन्द होना नितास्त आवश्यक है। वैदिक प्रचार ही हमारा मुख्य कार्य है। अन्य कार्यों में सहामता पहुँचाना भी इसी आदर्श का सहायक होना चाहिए। आशा है कि आप इस विषय को सारवानन्द के हृदय में अच्छी तरह बुझता के साथ जमा दिये।

जब आपने प्रोफेसर मैक्समूलर रचित श्री रामहृदय सम्बन्धी लेख पढ़ा? यहाँ पर इन्डिया में प्रायः सभी लोग हमारे सहायक बनत जा रहे हैं। न केवल हमारे कार्यों का यहाँ पर विचार हा रहा है, अस्तित्व उनको सम्मान भी मिल रहा है।

शुभाकारिणी  
विश्वेकानन्द

(१८९६ ई० के अन्त में डॉ० वरोज़ की भारतव्यापी व्याख्यान-यात्रा के पूर्व 'इण्डियन मिरर' नामक पत्र में स्वामी जी का एक पत्र प्रकाशित हुआ था, जिसमें उन्होंने अपने देशवासियों को डॉ० वरोज़ का परिचय प्रदान करते हुए उनका उपयुक्त अभिनन्दन करने के लिए अनुरोध किया था। नीचे उसी का कुछ अंश दिया जा रहा है।)

लन्दन,

२८ अक्टूबर, १८९६

शिकागो विश्व मेला में सम्मेलनों की विराट् कल्पना को सफल बनाने के लिए श्री सी० बॉनी ने डॉ० वरोज़ को अपना सहकारी निर्वाचित कर सबसे उपयुक्त व्यक्ति पर ही कार्यभार सौंपा था, डॉ० वरोज़ के नेतृत्व में उन सम्मेलनों में धर्म-महासभा को जो महत्त्व प्राप्त हुआ था, वह आज इतिहास-प्रसिद्ध है।

डॉ० वरोज़ का अद्भुत साहस, अथक परिश्रम, अविचलित धैर्य तथा स्वभाव-सिद्ध भद्रता के फलस्वरूप ही इस सम्मेलन को अपूर्व सफलता प्राप्त हुई थी।

उस आश्चर्यजनक शिकागो-सम्मेलन के द्वारा ही भारत, भारतवासी तथा भारतीय भावनाएँ ससार के समक्ष पहले से भी अधिक उज्ज्वल रूप से प्रकट हुई हैं एव इस स्वजातीय कल्याण के लिए उस सभा से सम्बन्धित अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा हम डॉ० वरोज़ के ही अधिक ऋणी हैं।

इसके सिवाय वे हमारे समीप धर्म के पवित्र नाम तथा मानव जाति के एक श्रेष्ठ आचार्य का नाम लेकर आ रहे हैं एव मेरा यह विश्वास है कि 'नेज़रथ के पैगम्बर' द्वारा प्रचारित धर्म की उनकी व्याख्या अत्यन्त उदार होगी तथा मन को उन्नत बनायेगी। ईसा की शक्ति का जो परिचय वे देना चाहते हैं, वह दूसरों के मत के प्रति असहिष्णु, प्रभुत्वपूर्ण और दूसरों के प्रति घृणापूर्ण मनोवृत्तिप्रसूत नहीं है। परन्तु एक भाई की तरह उन्नति-अभिलाषी भारत के विभिन्न वर्गों के सहयोगी भाइयों में सम्मिलित होने की आकांक्षा से प्रेरित होकर—वे जा रहे हैं। सबसे पहले हमें यह स्मरण रखना है कि कृतज्ञता तथा अतिथि-सेवा ही भारतीय जीवन का वैशिष्ट्य है, अतः अपने देशवासियों के समीप मेरा यह विनम्र अनुरोध है कि पृथिवी के दूसरे छोर से भारत जानेवाले इस विदेशी सज्जन के प्रति वे ऐसा आचरण करें जिससे उन्हें यह पता चल सके कि दुःख, दारिद्र्य तथा अवनति की स्थिति में भी हमारा हृदय, अतीत की तरह ही अर्थात् जब भारतवर्ष आर्यभूमि के नाम से प्रख्यात था एव उसके ऐश्वर्य की बात जगत् की सब जातियों की जिह्वा पर रहती थी, आज भी मित्रतापूर्ण है।



जिसने काम-काज पर विजय नहीं पायी उस पर मुझे इतई मरौदा नहीं। तुम उसे सैवान्तिक विषयों की शिक्षा देने का बखतर प्रदान कर देय सक्ती हो किन्तु वह 'उजबोध' कभी भी न सिखा पाये। जो नियमित रूप से उसमें प्रशिक्षित नहीं उसके लिए इससे सिखनाइ करना निस्तान्त सत्तरमाक है। सारवानन्द के सम्बन्ध में कोई डर नहीं है, वर्तमान भारत क सर्वपेष्ठ मोपी का बायीबाँध उसे प्राप्त है। तुम क्यों नहीं शिक्षा देना प्रारम्भ करती हो? इस 'र' शब्द की अपेक्षा तुम्हारा दार्शनिक ज्ञान कहीं अधिक है। 'कक्षा' की मोटिस निकालो तथा नियमित रूप से बर्नबर्ना करो और व्याख्यात हो।

बनेक हित्पुत्रों यहाँ तक कि मेरे किसी गुरुभाई को अमेरिका में सफसता मिली है—इस संवाद से मुझे जो आनन्दानुभव होता है, उससे सहस्र गुना अधिक आनन्द मुझे तब प्राप्त होता जब मैं यह देखूँगा कि तुम लोगों में से किसीने इसमें हाथ बँटाया है। मनुष्य दुनिया को जीतना चाहता है किन्तु अपनी सत्तान के निकट पराजित होना चाहता है। ज्ञानाम्नि प्रवर्धित करो। ज्ञानाम्नि प्रवर्धित करो।

सुभाषीणी  
विश्वकामन्द

(श्रीमती मोहि बुध को लिखित)

विश्वकामन्द इम्बैष  
८ जनवरी १८९९

प्रिय श्रीमती बुध

जर्मनी में प्रोफेसर डॉमसन के साथ मेरी में हुई थी। जिस म मैं उनका अतिथि था। हम दोनों एक साथ अन्वय आये थे तथा महीं पर भी कई बार उनसे मिल कर मुझे विशेष आनन्द मिला। बर्म तथा समाज सम्बन्धी कार्य के विभिन्न अंगों के प्रति यद्यपि मेरी पूर्ण सहानुभूति है फिर भी मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि प्रत्येक के कार्यों का विशेष विभाय होना नितान्त आवश्यक है। वेदान्त-अन्वय ही हमारा मुख्य कार्य है। अन्य कार्यों में सहायता पहुँचाना भी इसी आदर्श का सहायक होना चाहिए। आशा है कि आप इस विषय को सारवानन्द के हृदय में अच्छी तरह बुझता के साथ बना देंगे।

क्या आपने प्रोफेसर मैकसमूरर एचिन भी समझद्वय सम्बन्धी केस पढ़ा?

यहाँ पर इम्बैष में प्रायः सभी लोग हमारे सहायक बनते जा रहे हैं। न केवल हमारे कार्यों का महीं पर विस्तार हो रहा है, अपितु उनकी सम्मान भी मिल रहा है।

सुभाषीणी  
विश्वकामन्द

वाह्य स्वर्ग या राम-राज्य का अस्तित्व केवल कल्पना में ही है, परन्तु मनुष्य के भीतर इनका अस्तित्व पहले से ही है। कस्तूरी की मुगन्व के कारण की व्यर्थ खोज करने के बाद, कस्तूरी-मृग अन्त में उसे अपने में ही पाता है।

वाह्य समाज सर्वदा शुभ और अशुभ का सम्मिश्रण होगा—वाह्य जीवन की अनुगामी उसकी छाया अर्थात् मृत्यु, सर्वदा उसके साथ रहेगी, और जीवन जितना लम्बा होगा, उसकी छाया भी उतनी ही लम्बी होगी। केवल जब सूर्य हमारे सिर पर होता है, तब कोई छाया नहीं होती। जब ईश्वर, शुभ और अन्य सब कुछ हममें ही है तो अशुभ कहाँ? परन्तु वाह्य जीवन में प्रत्येक क्रिया की प्रतिक्रिया होती है और हर शुभ के साथ अशुभ उसकी छाया की तरह जाता है। उन्नति में अधोगति का समान अंश रहता है, कारण यह है कि अशुभ और शुभ एक ही पदार्थ हैं, दो नहीं, भेद अभिव्यक्ति में है—मात्रा में है, न कि जाति में।

हमारा जीवन स्वयं दूसरों की मृत्यु पर अवलम्बित है, चाहे वनस्पतियाँ हो, चाहे पशु, चाहे कीटाणु। एक बड़ी भारी भूल जो हम लोग बहुधा करते हैं, वह यह कि शुभ को हम सदा बढ़नेवाली वस्तु समझते हैं और अशुभ को एक निश्चित राशि मानते हैं। इससे हम तर्क द्वारा सिद्ध करते हैं कि यदि अशुभ दिन दिन घट रहा है तो एक समय ऐसा आयेगा, जब शुभ ही अकेला शेष रह जायगा। मिथ्या पूर्व पक्ष को स्वीकार कर लेने से हमारा तर्क अशुद्ध हो जाता है। यदि शुभ की मात्रा बढ़ रही है तो अशुभ की भी बढ़ती है। मेरी जाति की जनता की अपेक्षा मेरी आकाशाएँ बहुत बढ़ गयी हैं। मेरा सुख उनसे अत्यधिक है, परन्तु मेरा दुःख भी उनसे लाखों गुना तीव्र है। जिस स्वभाव के कारण तुम्हें शुभ के स्पर्श मात्र का आभास होता है, उसीसे तुम्हें अशुभ के स्पर्श मात्र का भी आभास होगा। जिन स्नायुओं द्वारा सुख का अनुभव होता है, उन्हींके द्वारा दुःख का भी, और एक ही मन दोनों का अनुभव करता है। ससार की उन्नति का अर्थ है सुख और दुःख—दोनों की अधिक मात्रा। जीवन और मृत्यु, शुभ और अशुभ, ज्ञान और अज्ञान का सम्मिश्रण—यही 'माया' कहलाती है—यही है विश्व का नियम। तुम अनन्त काल तक इस जाल में सुख और दुःख की खोज करो—तुम्हें बहुत सुख और बहुत दुःख दोनों मिलेंगे। यह कहना कि ससार में केवल शुभ ही हो, अशुभ नहीं, बालको का प्रलाप मात्र है। दो मार्ग हमारे सामने हैं—एक तो सब प्रकार की आशा को छोड़कर ससार जैसा है वैसा स्वीकार करके, दुःख की वेदना को सहन करें, इस आशा में कि कभी कभी सुख का अल्पांश मिल जाया करेगा। दूसरा मार्ग यह है कि हम सुख को दुःख का ही एक दूसरा रूप समझकर सुख की खोज को त्याग दें तथा सत्य की खोज करें—और जो सत्य की खोज करने का साहस रखते हैं, वे उसे नित्य अपने

(कुमारी मेरी हृद को मिलित)

१८ ब्रेकोट गार्डन्स,  
बेस्टमिनिस्टर, लण्डन,  
१ नवम्बर, १८९९

मिय मेरी

'खोला और चांदी मेरे पास किचिन् मात्र नहीं है, किन्तु जो मेरे पास है वह मैं तुम्हें मुक्तहस्त दे रहा हूँ।—और वह यह ज्ञान है कि स्वर्ग का स्वर्गत्व रजत का रजतत्व पुंस्य का पुंस्यत्व स्त्री का स्त्रीत्व और सब वस्तुओं का सत्यस्वल्प परमात्मा ही है और इस परमात्मा को प्राप्त करने के लिए बाह्य ब्रह्म में हम बनादि काम से प्रयत्न करते आ रहे हैं, और इस प्रयत्न में हम अपनी कल्पना की 'विभिन्न' वस्तुओं—पुंस्य स्त्री बालक सरीर, मन पृथ्वी सूर्य चन्द्र तारे, संसार, प्रेम द्वेष वन सम्पत्ति इत्यादि को और भूत राक्षस देवदूत देवता ईश्वर इत्यादि को भी—त्यागते रहे हैं।

एक तो यह है कि प्रभु हममें ही है, हम स्वयं प्रभु हैं—जो नित्य द्रष्टा सच्चा अहम् तथा अतीन्द्रिय है। उस ईश नाभ से देखने की प्रकृति तो केवल समय और बुद्धि को मूढ करता ही है। जब जीव को यह ज्ञान हो जाता है, तब वह विषयों का आशय लेना छोड़ देता है और आत्मा की ओर अधिकाधिक प्रवृत्त होता है। यही क्रम-विकास है अर्थात् अन्तर्बुद्धि का अधिकाधिक विकास एवं बहिर्बुद्धि का अधिकाधिक कोप। सर्वाधिक विकसित रूप मानव है क्योंकि वह मननशील है—वह ऐसा प्राणी है जो विचार करता है ऐसा प्राणी नहीं जो केवल इन्द्रियों से सम्बद्ध है। धर्मशास्त्र में इसे 'त्याग' कहते हैं। समाज का निर्माण विवाह की व्यवस्था उत्पान-प्रेम हमारे शुभ कर्म बुद्धाचरण और नीतिधरा से सब त्याग के विभिन्न रूप हैं। एक समाजों में हम लोगों का जीवन इच्छा पिपासा या कामता के समन में ही निहित है। इच्छा अथवा मिथ्या आत्मा के इस परित्याग—स्वार्थ से निकलने की अभिलाषा नित्य द्रष्टा को ईश नाभ से देखने के प्रयत्न के विकट समर्पण के निमित्त निमित्त रूप तथा उनकी अवस्थाएँ ही संसार के निमित्त निमित्त समाज एवं सामाजिक नियम हैं। मिथ्या आत्मा के समर्पण तथा स्वार्थनिग्रह का सबसे सरल उपाय है प्रेम तथा इच्छा विपरित उपाय है द्वेष।

स्वर्ग-नरक तथा आकास के परे राज करनेवाले पासकों से सम्बद्ध अनेक कथाओं अथवा अन्वयिस्वाधों के द्वारा मनुष्य को नृकाले में बाँधकर उसे आत्मसमर्पण के लक्ष्य की ओर अग्रसर किया जाता है। इन सब अन्वयिस्वाधों से दूर रहकर अन्वयिस्वाधों के त्याग द्वारा आत्मवृत्तकर इस धर्म्य की ओर आये बढ़ता है।

बाह्य स्वर्ग या राम-राज्य का अस्तित्व केवल कल्याण में ही है, परन्तु इसके भीतर इनका अस्तित्व पहले से ही है। कस्तूरी की गुणधरा के कारण वह खोज करने के बाद, कस्तूरी-मृग अन्त में उसे अपने में ही पाता है।

बाह्य समाज सर्वदा शुभ और अशुभ का सम्मिश्रण होगा—बाह्य जीवन में। अनुगामी उसकी छाया अर्थात् मृत्यु, सर्वदा उसके साथ रहेगी, और जीवन जिनना लम्बा होगा, उसकी छाया भी उतनी ही लम्बी होगी। केवल जब सूर्य हमारे निर पर होता है, तब कोई छाया नहीं होती। जब ईश्वर, शुभ और अन्य सब कुछ हममें ही है तो अशुभ कहाँ? परन्तु बाह्य जीवन में प्रत्येक क्रिया की प्रतिक्रिया होती है और हर शुभ के साथ अशुभ उसकी छाया की तरह जाता है। उन्नति में अवोगति का समान अंश रहता है, कारण यह है कि अशुभ और शुभ एक ही पदार्थ है, दो नहीं, भेद अभिव्यक्ति में है—मात्रा में है, न कि जाति में।

हमारा जीवन स्वयं दूसरो की मृत्यु पर अवलम्बित है, चाहे वनस्पतियाँ हो, चाहे पशु, चाहे कीटाणु। एक बड़ी भारी भूल जो हम लोग बह्वधा करते हैं, वह यह कि शुभ को हम सदा बढ़नेवाली वस्तु समझते हैं और अशुभ को एक निश्चित राशि मानते हैं। इससे हम तर्क द्वारा सिद्ध करते हैं कि यदि अशुभ दिन दिन घट रहा है तो एक समय ऐसा आयेगा, जब शुभ ही अकेला शेष रह जायगा। मिव्या पूर्व पक्ष को स्वीकार कर लेने से हमारा तर्क अशुद्ध हो जाता है। यदि शुभ की मात्रा बढ़ रही है तो अशुभ की भी बढ़ती है। मेरी जाति की जनता की अपेक्षा मेरी आकाक्षाएँ बहुत बढ़ गयी हैं। मेरा सुख उनसे अत्यधिक है, परन्तु मेरा दुःख भी उनसे लाखों गुना तीव्र है। जिस स्वभाव के कारण तुम्हें शुभ के स्पर्श मात्र का आभास होता है, उसीसे तुम्हें अशुभ के स्पर्श मात्र का भी आभास होगा। जिन स्नायुओं द्वारा सुख का अनुभव होता है, उन्हींके द्वारा दुःख का भी, और एक ही मन दोनों का अनुभव करता है। ससार की उन्नति का अर्थ है सुख में दुःख—दोनों की अधिक मात्रा। जीवन और मृत्यु, शुभ और अशुभ, जान और न जान, सम्मिश्रण—यही 'माया' कहलाती है—यही है विश्व का नियम। अन्त काल तक इस जाल में सुख और दुःख की खोज करो—तुम्हें वहाँ मिलेंगे। यह कहना कि ससार में केवल शुभ ही है, अशुभ मात्र है। दो मार्ग हमारे सामने हैं—एक तो ससार जैसा है वैसे स्वीकार करके, दुःख की खोज करो। कभी कभी सुख का अल्पांश मिल जायगा और फिर भी को दुःख का ही एक दूसरा रूप समझकर खोज करे—और जो

में ही विद्यमान पाते हैं। फिर हमें यह भी पता लग जाता है कि वही सत्य किस प्रकार हमारे व्यावहारिक जीवन के भ्रम और भ्रान्तियों के रूपों में प्रकट हो रहा है— हमें यह भी पता लग जाता है कि वही सत्य 'आत्म' है, जो शुभ और अशुभ दोनों रूपों में अभिव्यक्त हो रहा है। साथ ही हमें यह भी पता लग जाता है कि वही 'सत्' जीवन और मृत्यु दोनों रूपों में प्रकट हो रहा है।

इस प्रकार हम यह अनुभव करते हैं कि ये सब बातें उसी एक अस्तित्व— सत्-चित्-आत्म— सब चीजों के अस्तित्व स्वरूप में यथार्थ स्वरूप की विभिन्न प्रतिष्ठायाएँ मात्र हैं। तब और केवल तभी बिना कुराई के मकाई करता सम्भव होता है क्योंकि ऐसी आत्मा ने उस यथार्थ को बिखरे कि शुभ और अशुभ दोनों का निर्माण होता है, जान लिया है और अपने बस में कर लिया है और वह अपनी इच्छानुसार एक या दूसरे का विकास कर सकता है। हम यह भी जानते हैं कि वह केवल शुभ का ही विकास करता है। यही 'जीवन्मुक्ति' है जो वेदान्त का और सब तत्त्व-ज्ञानों का अन्तिम अर्थ है।

मानवी समाज पर चारों बर्ण—पुरोहित, वैदिक व्यापारी और मजदूर बायीं बायीं से शासन करते हैं। हर शासन का अपना गौरव और अपना शोष होता है। जब ब्राह्मण का राज्य होता है, तब आनुवंशिक आधार पर मर्यादा पबकता रहती है—पुरोहित स्वयं और उनके बंधन नामा प्रकार के अधिकारों से सुसज्जित रहते हैं, उनके अतिरिक्त किसीको कोई ज्ञान नहीं होता, और उनके अतिरिक्त किसीको शिक्षा देने का अधिकार नहीं है। इस विधिष्ठ युग में सब विद्याओं की नींव पकती है, यह इसका गौरव है। ब्राह्मण मन को उद्यत करते हैं, क्योंकि मन द्वारा ही वे राज्य करते हैं।

अधिय शासन कर और अन्वयी होता है, परन्तु उनमें पबकता नहीं रहती और उनके युग में कला और सामाजिक संस्कृति उत्थिति के सिद्ध पर क्लृप्त जाती है।

उसके बाद वैश्य शासन आता है। इसमें कुचकने की और शून भुसने की मीन शक्ति अत्यन्त मीथक होती है। इसका ज्ञान यह है कि व्यापारी सब बगह जाता है, इसलिए वह पहले दोनों युगों में एकत्र किये हुए विचारों को फैलाने में सफल होता है। उनमें अधियों से भी कम पबकता होती है, परन्तु सम्पत्ता की अवन्ति बारम्भ हो जाती है।

अन्त में आयेया मजदूरों का शासन। उसका नाम होगा भीतिक युगों का समाज वितरण—और उससे हाथि होमी कथाचित् संस्कृति का निम्न स्तर पर गिर जाना। साधारण शिक्षा का बहुत प्रकार होया परन्तु असामान्य प्रतिभावाली व्यक्ति कम होते आयेये।

यदि ऐसा राज्य स्थापित करना सम्भव हो जिसमें ब्राह्मण युग का ज्ञान, क्षत्रिय युग की सम्यता, वैश्य युग का प्रचार-भाव और शूद्र युग की समानता रखी जा सके—उनके दोषों को त्याग कर—तो वह आदर्श राज्य होगा। परन्तु क्या यह सम्भव है ?

परन्तु पहले तीनों का राज्य हो चुका है। अब शूद्र शासन का युग आ गया है—वे अवश्य राज्य करेंगे, और उन्हें कोई रोक नहीं सकता। सिक्के का स्वर्ण अथवा रजतमान रखने में क्या क्या कठिनाइयाँ हैं, मैं यह सब नहीं जानता (और मैंने देखा है कि कोई भी इस विषय में अधिक नहीं जानता), परन्तु मैं यह देखता हूँ कि स्वर्णमान ने घनवानों को अधिक धनी तथा दरिद्रों को और भी अधिक दरिद्र बना दिया है। ब्रायन ने यह ठीक ही कहा था कि 'सोने के भी ऋँस पर हम लटकाये जाना पसंद न करेंगे।' रजतमान हो जाने पर इस असमान युद्ध में गरीबों के पक्ष में कुछ बल आ जायगा। मैं समाजवादी हूँ, इसलिए नहीं कि मैं इसे पूर्ण रूप से निर्दोष व्यवस्था समझता हूँ, परन्तु इसलिए कि रोटी न मिलने से आधी रोटी ही अच्छी है।

और सब मतवाद काम में लाये जा चुके हैं और दोषयुक्त सिद्ध हुए हैं। इसकी भी अब परीक्षा होने दो—यदि और किसी कारण से नहीं तो उसकी नवीनता के लिए ही। सर्वदा एक ही वर्ग के व्यक्तियों को सुख और दुःख मिलने की अपेक्षा सुख और दुःख का बटवारा करना अच्छा है। शुभ और अशुभ की समष्टि ससार में समान ही रहती है। नये मतवादों से वह भार कंधे से कंधा बदल लेगा, और कुछ नहीं।

इस दुःखी ससार में सब को सुख-भोग का अवसर दो, जिससे इस तथाकथित सुख के अनुभव के पश्चात् वे ससार, शासन-विधि और अन्य झझटों को छोड़कर प्रभु के पास आ सकें।

तुम सबको मेरा प्यार।

शुभाकाक्षी,  
विवेकानन्द

(श्री आलासिंगा पेरूमल को लिखित)

१४, ग्रेकोट गार्डन्स,  
वेस्टमिनिस्टर, एस० डब्ल्यू०,  
११ नवम्बर, १८९६

प्रिय आलासिंगा,

बहुत सभ्य है कि मैं १६ दिसम्बर या उसके दो एक दिन बाद यहाँ से प्रस्थान

करें। यहाँ से इटली जाऊँगा और वहाँ के कुछ स्थानों को देखने के बाद नेपुस में स्टीमर पर सवार हो जाऊँगा। कुमारी मूरर, श्री और श्रीमती सेवियर तथा गुडविन नामक एक युवक मेरे साथ चल रहे हैं। सेवियर बम्पति जम्माड़े में बसने जा रहे हैं और कुमारी मूरर भी। सेवियर भारतीय सेना में पाँच साल तक ब्रिगेड के पद पर थे। वत भारत के बारे में उन्हें काफ़ी जानकारी है। कुमारी मूरर थियोसॉफिस्ट भी जिन्होंने ज्ञान को गोप किया। गुडविन अंग्रेज है जिसके द्वारा धीप्रसिद्धि में तैयार की गयी टिप्पणियों से पुस्तिकाओं का प्रकाशन सम्भव हुआ।

मैं कोकम्बो से सर्वाप्रथम भद्रास पहुँचूँगा। अल्प समय अहमोड़े जायँगे। वहाँ से मैं कलकत्ता जाऊँगा। जब मैं यहाँ से प्रस्थान करूँगा तब ठीक ठीक सूचना देते हुए पत्र लिखूँगा।

गुम्हार धुमाकासी  
विश्वकालम्

पुनश्च— राजकीय पुस्तक के प्रथम संस्करण की सभी प्रतियाँ बिक गयीं और द्वितीय संस्करण बनाने के लिए प्रेस में है। भारत और अमेरिका सबसे बड़े खरीदार हैं।

वि

(श्रीमती बुल को लिखित)

ब्रेकोट मार्केस  
बेस्ट मिनिस्टर

१३ नवम्बर, १८९९

द्वितीय श्रीमती बुल

मैं श्रीमती ही भारत के लिए प्रस्थान करनेवाला हूँ कदाचित् १६ दिसम्बर की। अमेरिका जान से पहले मुझे एक बार भारत जाने की ठीक अवसरिका है और मैंने अपने साथ इंग्लैण्ड से कई मित्रों को भारत के जाने का प्रबन्ध किया है इसलिये बाहे मेरी कितनी ही इच्छा हो परन्तु अमेरिका हीटै हुए जाना मेरे लिए अहम्भव है।

निरन्तर ही डॉ. केन्थ बाँधे प्रथम नाम कर रहे हैं। उन्होंने मेरी और मेरे कार्य की जो सहायता की है, उनके लिए और उनके हृषामात्र के लिए इच्छाता प्रकट करने में मैं अत्यन्त ना हूँ वहाँ का कार्य अत्यन्त सुन्दर रूप से जाने बढ़ रहा है।

गुम्हार  
विश्वकालम्

(श्री आलार्सिंगा पेरुमल को लिखित)

३९, विक्टोरिया स्ट्रीट, लन्दन,

२० नवम्बर, १८९६

प्रिय आलार्सिंगा,

मैं इंग्लैण्ड से इटली के लिए १६ दिसम्बर को रवाना होऊँगा और नेपल्स से 'नार्थ जर्मन लॉयड एस० एस० प्रिन्स रीजेन्ट लिओपोल्ड' नामक जहाज से प्रस्थान करूँगा। जहाज आगामी १४ जनवरी को कोलम्बो पहुँचने-वाला है।

श्रीलंका में कुछ चीजें देखने की मेरी इच्छा है, वहाँ से फिर मद्रास पहुँचूँगा। मेरे साथ तीन अग्रेज दोस्त हैं—कैप्टन तथा श्रीमती सेवियर तथा श्री गुडविन। श्री सेवियर और उसकी पत्नी अल्मोडा के पास हिमालय में एक मठ बनाने की सोच रहे हैं, जिसे मैं अपना 'हिमालय केन्द्र' बनाना चाहता हूँ। और वही पार्श्वतय शिष्यो को ब्रह्मचारी और सन्यासी के रूप में रखूँगा। गुडविन एक अविवाहित नवयुवक है। वह मेरे साथ भ्रमण करेगा और मेरे ही साथ रहेगा। वह सन्यासी जैसा ही है।

मेरी तीव्र अभिलाषा है कि श्री रामकृष्ण देव के जन्मोत्सव से पहले मैं कलकत्ता पहुँच जाऊँ। मेरी वर्तमान कार्य-योजना यह है कि युवक प्रचारको के प्रशिक्षण के लिए कलकत्ता और मद्रास में दो केन्द्र स्थापित करना है। कलकत्ते के केन्द्र के लिए मेरे पास पर्याप्त धन है। कलकत्ता श्री रामकृष्ण के कर्म-जीवन का क्षेत्र रह चुका है, इसलिए वह मेरा ध्यान पहले आकर्षित करता है। मद्रास के केन्द्र के लिए मैं आशा करता हूँ कि भारत से मुझे धन मिल जायगा।

इन तीन केन्द्रों से हम काम आरम्भ करेंगे। फिर इसके बाद बम्बई और इलाहाबाद में भी केन्द्र बनायेंगे। इन तीन स्थानों से, यदि भगवान् की कृपा हुई तो, हम भारत भर में ही नहीं, परन्तु ससार के प्रत्येक देश में प्रचारको का दल भेजेंगे। यह हमारा पहला कर्तव्य होना चाहिए। दिल लगाकर काम करते रहो। कुछ समय के लिए लन्दन का मुख्य कार्यालय ३९, विक्टोरिया स्ट्रीट में रहेगा, क्योंकि कार्य यहीं से होगा। स्टर्डी के पास सन्दूक भर 'ब्रह्मवादिन्' पत्रिका है, जिमका मुझे पहले पता नहीं था। वह अब इसके लिए ग्राहक बनाने के लिए प्रचार-कार्य कर रहा है।

चूँकि अब अग्रेजी भाषा में भारत से एक पत्रिका आरम्भ हो गयी है, अब भारतीय भाषाओं में भी हम कोई पत्रिका आरम्भ कर सकते हैं। विम्बलटन की कुमारी एम० नोबल बड़ी काम करनेवाली है। वह मद्रास की दोनों पत्रिकाओं



के लिए प्रचार-कार्य भी करेगी। वह तुम्हें सिखेगी। ऐसे कार्य बीरे बीरे, किन्तु निश्चित रूप से आगे बढ़ेंगे। ऐसी पत्रिकाओं को अगुमायियों के छोटे से समुदाय द्वारा ही सहायता मिलती है। एक ही समय में उनसे अनेक कार्य करने की आशा नहीं करनी चाहिए। उनको पुस्तकें खरीदनी पड़ती हैं। इंग्लैण्ड का कार्य बचाने के लिए पैसा एकत्र करना पड़ता है; यहाँ की पत्रिका के लिए ग्राहक ढूँढ़ने पड़ते हैं और फिर भारतीय पत्रिकामों को खरीदना पड़ता है। यह बहुत क्लेशदायी है। यह शिक्षा प्रचार की अपेक्षा व्यापार-कार्य अधिक जान पड़ता है। ऐसी स्थिति में तुम बीरज रहो। फिर भी मुझे आशा है कि कुछ ग्राहक बन ही जायेंगे। इसके अलावा मेरे जाने के बाद यहाँ लोगों के पास करने के लिए काम होना चाहिए, नहीं तो सब किया-कराया मिट्टी में मिल जायगा। इसलिए बीरे बीरे यहाँ और अमेरिका में भी पत्रिका होनी चाहिए। भारतीय पत्रिकामों की सहायता भारतवासियों को ही करनी चाहिए। किसी पत्रिका के सब राष्ट्रों में समान ध्यान से अपनाये जाने के लिए, सब राष्ट्रों के सेवकों का एक बड़ा भारी विभाग रखना पड़ेगा जिसके माने हैं प्रतिवर्ष एक लाख रुपये का खर्च।

तुम्हें वह न भूलना चाहिए कि मेरे कार्य अन्तर्राष्ट्रीय है केवल भारतीय नहीं। मेरा तथा अमेकानन्द दोनों का स्वास्थ्य अच्छा है।

धुमाकाजी

बिबेकानन्द

(भी लाला बड़ी साह की लिखित)

३९ विक्टोरिया स्ट्रीट, लन्दन

२१ नवम्बर, १८९९

प्रिय लाला भी

७ जनवरी तक मैं मद्रास पहुँचूँगा कुछ दिन समस्त क्षेत्र में खूबर मेरी अहमोड़ा जाने की इच्छा है।

मेरे साथ मेरे तीन अंग्रेज मित्र हैं, उनमें दो ऐडियर सम्पत्ति अहमोड़ा में निवास करेंगे। आपको शायद यह पता होगा कि वे मेरे सिध्द हैं एवं मेरे लिए हिमात्म्य में वे एक गठ बनवायेंगे। इसीलिए मैंने आपको एक उपयुक्त स्वाम ढूँढ़ने के लिए लिखा था। हमारे लिए एक ऐसी घूँटी पहाड़ी चाहिए, जहाँ वे हिम-वृक्ष दिखायी देता हो। इसमें संदेह नहीं कि उपयुक्त स्वाम निर्वाचित कर आश्रम निर्माण के लिए समय चाहिए। इस बीच क्या आप मेरे मित्रों के रहने के लिए किराये पर एक छोटे से बँगले की व्यवस्था करने की हवा करेंगे? उसमें तीन

व्यक्तियों के रहने लायक स्थान होना आवश्यक है। बहुत बड़ा मकान नहीं चाहिए, इस समय छोटे से ही कार्य चल सकेगा। मेरे मित्र वहाँ पर रहकर आश्रम के लिए उपयुक्त स्थान तथा मकान की तलाश करेंगे।

इस पत्र के उत्तर देने की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि उत्तर मिलने से पहले ही मैं भारत की ओर रवाना हो जाऊँगा। मद्रास पहुँच कर मैं आपको तार से सूचित करूँगा।

आप सब लोगों को स्नेह तथा आशीर्वाद।

भवदीय,  
विवेकानन्द

(कुमारी मेरी तथा हैरियट हेल को लिखित)

३९, विक्टोरिया स्ट्रीट,  
लन्दन,  
२८ नवम्बर, १८९६

प्रिय वहनो,

चाहे जिस कारण से भी हो, मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि तुम चारो से ही मैं सबसे अधिक स्नेह करता हूँ एव मुझे अत्यन्त गर्व के साथ यह विश्वास है कि तुम चारो भी मुझसे वैसा ही स्नेह करती हो। इसलिए भारत रवाना होने से पूर्व तुम लोगों को यह पत्र स्वयं ही आत्मप्रेरित होकर लिख रहा हूँ। लन्दन में हमारे कार्य को ज़बरदस्त सफलता मिली है। अंग्रेज़ लोग अमेरिकनो की तरह उतने अधिक सजीव नहीं हैं, किन्तु यदि कोई एक बार उनके हृदय को छू ले तो फिर सदा के लिए वे उनके गुलाम बन जाते हैं। धीरे धीरे मैं उन पर अपना अधिकार जमा रहा हूँ। आश्चर्य है कि छ माह के अन्दर ही, सार्वजनिक भाषणों के अलावा भी मेरी कक्षा में १२० व्यक्ति नियमित रूप से उपस्थित हो रहे हैं। अंग्रेज़ लोग अत्यन्त कार्यशील हैं, अतः यहाँ के सभी लोग क्रियात्मक रूप से कुछ करना चाहते हैं। कैप्टन तथा श्रीमती सेवियर एव श्री गुडविन कार्य करने के लिए मेरे साथ भारत रवाना हो रहे हैं और उमका व्यय-भार भी वे स्वयं उठावेंगे। यहाँ पर और भी बहुत से लोग इस प्रकार कार्य करने को प्रस्तुत हैं। प्रतिष्ठित स्त्री-पुरुषों के मस्तिष्क में एक बार किन्ही भावना को प्रवेश करा देने पर, उमें कार्य में परिणत करने के लिए वे अपना सब कुछ त्याग करने के लिए कटिबद्ध हो जाते हैं। और मनुष्य अधिक आनन्दप्रद नमाचार (यह कोई नाधारण बात नहीं) यह है कि भान्त में तार्य प्रारम्भ करने के लिए हमें आर्थिक महायत्ना प्राप्त हो गयी है एव आगे चारों ओर भी प्राप्त होगी। अंग्रेज़ जाति के सम्बन्ध में मेरी धारणा पूर्णतया

बदल चुकी है। अब मुझे यह पता चल रहा है कि अत्याम्य जातियों की अपेक्षा प्रभु ने उन पर अधिक दया बर्पा की है। वे दुर्गमकल्प तथा अत्यन्त निष्ठावान हैं। साथ ही उनमें शार्दिक सहानुभूति है—बाहर उदासीनता का बचस एक आचरण रहता है। उसको ताड़ देना है, बस फिर तुम्हें अपनी पसन्द का व्यक्ति मिल जायगा।

इस समय कसकता तथा हिमात्म्य में मैं एक एक केन्द्र स्थापित करने का रहा हूँ। प्रायः ७ फूट ऊँची एक समूची पहाड़ी पर हिमालय-केन्द्र स्थापित होगा। यह पहाड़ी गर्मी की ऋतु में धीतरक तथा जाड़े में ठंडी रहेगी। कैंपन तथा शीमली सेवियर वहीं रहेंगे एवं यूरोपीय कार्यकर्ताओं का यह केन्द्र होगा क्योंकि मैं उनको भारतीय रहन सहन अपनाने तथा निरामतप्त भारतीय समतल भूमि में बसने के लिए बाध्य कर मार डालना नहीं चाहता। मैं चाहता हूँ कि संकड़ी की संख्या में हिन्दू मुखक प्रत्येक समय रैत में जाकर बेरान्त ना प्रचार करें और वहाँ से नर-नारियों को एकत्र कर कार्य करने के लिए मारत भर्से। यह आशान प्रधान बहुत ही उत्तम होगा। केन्द्रों को स्थापित कर मैं 'जॉब का प्रत्य' में बचित उस व्यक्ति की तरह ऊपर नीचे चारों ओर भूमंगा।

बाज यहीं पर पत्र को समाप्त करना चाहता हूँ—यहीं ठो बाज की डाक से खाना न हो सकेगा। सभी ओर से मेरे कार्यों के लिए सुविधा मिलती जा रही है—तबर्ष में अत्यन्त सुखी हूँ एवं मैं समझता हूँ कि तुम लोगों को भी मेरी तरह सुख का अनुभव होया। तुम्हें अनन्त कस्याज तथा मुक्त-शान्ति प्राप्त हो। अनन्त प्यार के साथ—

मुनाकाशी  
विश्वकामन्द

पुनरुक्त—बर्मपाक का क्या समाचार है? यह क्या कर रहा है? उससे भेंट होने पर मेरा स्नेह कहना।

वि

१ Book of Job (जॉब का प्रत्य) बाइबिल के प्राचीन व्यवस्थान का अंशविशेष है। इसमें एक कथा इस प्रकार है, एक बार अलतान ईश्वर से मिलने गया। ईश्वर ने उससे पूछा कि यह कहीं से आ रहा है। उत्तर में उसने कहा "इस पुत्रिणी के इश्वर उबर बचकर लमाकर तथा उत्तके ऊपर नीचे धूमता हुआ से आ रहा हूँ। यहाँ पर स्वामी जी ने इश्वर उबर धुमने के प्रसंग में परिष्कारपूर्वक बाइबिल की उस घटना को लक्ष्य कर उक्त बाल्य का प्रयोग किया है।

( कुमारी जोसेफिन मैक्लिअॉड को लिखित )

ग्रेकोट गार्डेन्स,

वेस्टमिनिस्टर एस० डब्ल्यू०, लन्दन,

३ दिसम्बर, १८९६

प्रिय 'जो',

तुम्हारे कृपापूर्ण निमंत्रण के लिए अनेक धन्यवाद। किन्तु, प्रिय जो-जो, प्यारे भगवान् ने यह विधान किया है कि मुझे १६ तारीख को कप्तान तथा श्रीमती सेवियर एव श्री गुडविन के साथ भारत के लिए प्रस्थान करना है। सेवियर दम्पति मेरे साथ नेपुल्स में स्टीमर पर सवार होंगे। चूंकि चार दिन रोम में रुकना है, इसलिए मैं अल्बर्टा से विदा लेने जाऊंगा।

यहाँ अब कुछ चहल-पहल शुरू हो गयी है, ३९, विक्टोरिया के बड़े हाल में कक्षा लगती है, जो भर गया है, फिर भी और लोग कक्षा में शामिल होना चाहते हैं।

साथ ही, उस प्राचीन भले देश की पुकार है, मुझे जाना ही है। इसलिए इस अप्रैल में रूस जाने की सभी परियोजनाओं को नमस्कार।

मैं भारत में कर्म-चक्र का प्रवर्तन मात्र कर पुनः सदा रमणीय अमेरिका तथा इंग्लैण्ड इत्यादि के लिए प्रस्थान कर दूंगा।

मेवुल का पत्र भेज कर तुमने बड़ी कृपा की—सचमुच शुभ समाचार है। केवल थोड़ा अफसोस है तो बेचारे फॉक्स के लिए। चाहे जो हो मेवुल उससे बच गयी, यह बेहतर हुआ।

न्यूयार्क में क्या हो रहा है, इसके बारे में तुमने कुछ नहीं लिखा। आशा है वहाँ सब अच्छा ही होगा। बेचारा कोला! क्या वह अब जीविकोपार्जन में समर्थ हो पाया?

गुडविन का आगमन बड़े मौक़े से हुआ, क्योंकि इससे व्याख्यानो का विवरण ठीक तौर से तैयार होने लगा जिसका प्रकाशन पत्रिका के रूप में हो रहा है। खर्च भर के लिए काफी ग्राहक बन गये हैं।

अगले मप्ताह तीन व्याख्यान होंगे और इस मौसम का मेरा लन्दन का कार्य समाप्त हो जायगा। यहाँ इस वक्त घूम मची है, इसलिए मेरे छोड़कर चले जाने को सभी लोग नादानी समझते हैं, परन्तु प्यारे प्रभु का आदेश है, 'प्राचीन भारत को प्रस्थान करो।' मैं आदेश का पालन कर रहा हूँ।

क्रैडिनसैंस माँ होसिस्टर तथा धन्य एबनो मेरा बिर प्रेम तथा आजीर्ण  
बीर बही तुम्हारे लिए मी।

तुम्हारा सुमाकांशी  
दिवेकानन्द

(शुमायि अस्वर्टा स्टाएगीब को लिखित)

१४ सेकोट गार्डन्स

वेस्टमिनिस्टर, एस डब्ल्यू कन्वन्

१ सिसम्बर, १८९९

प्रिय अस्वर्टा

इस पत्र के साथ 'जे-प्यो' को लिखित मैकेक का पत्र भेज रहा हूँ। इसमें  
उल्लिखित समाचार से मुझे बड़ी खुशी हुई और मुझे विश्वास है, तुम्हें भी होगी।

यहाँ से १६ टापीब को भारत खाना हो रहा हूँ और नेपुस में स्टीमर पर  
सवार हो जाऊँगा। अब कुछ दिन इटली में और तीन चार दिन रोम में रहूँगा।  
बिदाई के समय तुमसे मिल कर बड़ी प्रसन्नता होगी।

कप्तान सेवियर और श्रीमती सेवियर दोनों मेरे साथ इंग्लैंड से भारत जा  
रहे हैं और वे भी मेरे साथ इटली में रहेंगे। पिछली शीप आतु में तुम उनसे मिल  
चुकी हो। कथमम एक वर्ष में अमेरिका लौटने का मेरा इरादा है और वहाँ से  
यूरोप आऊँगा।

सप्रेम एवं आशीष  
दिवेकानन्द

(श्रीमती जोकि बुक को लिखित)

१८, बिबोटोरिया स्ट्रीट,  
कन्वन्

१ सिसम्बर, १८९९

प्रिय श्रीमती बुक

आपके इस अत्यन्त उदारतापूर्ण हान के लिए कृतज्ञता प्रकट करना  
अनावश्यक है। कार्य के प्रारम्भ में ही अधिक धन संग्रह कर मैं अपने को संकट  
में डालना नहीं चाहता हूँ किन्तु कार्य-विस्तार के साथ साथ उस धन का प्रयोग  
करने पर मुझे बड़ी खुशी होगी। अत्यन्त छोटे पैमाने पर मैं कार्य प्रारम्भ करता  
चाहता हूँ। अभी तक मेरी कोई स्पष्ट योजना नहीं है। भारत के कार्यक्षेत्र में  
पूर्वजने पर वास्तविक स्थिति का पता चलना। भारत पहुँच कर मैं अपनी योजना

तथा उसे कार्य में परिणत करने के व्यावहारिक उपाय आपको विशद रूप से सूचित करूँगा। मैं १६ तारीख को रवाना हो रहा हूँ एव इटली में दो चार दिन रहकर नेपल्स से जहाज़ पकड़ूँगा।

कृपया श्रीमती वागान, सारदानन्द तथा वहाँ के अन्य मित्रों को मेरा स्नेह दीजियेगा। आपके बारे में मैं इतना ही कह सकता हूँ कि सदा ही से मैं आपको अपना सर्वोत्तम मित्र मानता आया हूँ एव जीवन भर वैसे ही मानता रहूँगा। मेरा आन्तरिक स्नेह तथा आशीर्वाद ग्रहण करें।

शुभाकाक्षी,  
विवेकानन्द

(एक अमेरिकन महिला को लिखित)

लन्दन,

१३ दिसम्बर, १८९६

प्रिय श्रीमती जी,

नैतिकता का क्रमविन्यास समझ लेने के बाद सब चीजें समझ में आने लगती हैं।

त्याग, अप्रतिरोध, अहिंसा के आदर्शों को सासारिकता, प्रतिरोध और हिंसा की प्रवृत्तियों को निरंतर कम करते रहने से प्राप्त किया जा सकता है। आदर्श सामने रखो और उसकी ओर बढ़ने का प्रयत्न करो। इस सस्यार में विना प्रतिरोध, विना हिंसा और विना इच्छा के कोई रह ही नहीं सकता। अभी सस्यार उस अवस्था में नहीं पहुँचा कि ये आदर्श समाज में प्राप्त किये जा सकें।

सब प्रकार की बुराइयों में से गुजरते हुए सस्यार की जो उन्नति हो रही है, वह उसे धीरे धीरे तथा निश्चित रूप से इन आदर्शों के उपयुक्त बना रही है। अधिकांश जनता को तो इस मद विकास के साथ चलना पड़ेगा, पर असाधारण लोगों को वर्तमान परिस्थितियों में इन आदर्शों की प्राप्ति के लिए अपना मार्ग अलग बनाना पड़ेगा।

जो जिस समय का कर्तव्य है, उसका पालन करना सबसे श्रेष्ठ मार्ग है, और यदि वह केवल कर्तव्य समझ कर किया जाय तो वह मनुष्य को आमक्त नहीं बनाता।

सगीत सर्वोत्तम कला है और जो उसे समझते हैं उनके लिए वह सर्वोत्तम उपानना भी है।

हमें अज्ञान और अधुम का नाश करने का भरसक प्रयत्न करना चाहिए, केवल यह समझ लेना है कि धुम की वृद्धि से ही अधुम का नाश होता है।

सुभाषांबी  
विश्वकामन्द

(श्री फैंथिस लेगेट को लिखित)

१३ दिसम्बर १८९९

प्रिय फैंथिस

तो गोपाल<sup>१</sup> बेबी शरीर धारण कर बैठा हुए! ऐसा होना ठीक ही था— समय और स्थान के विचार से। आजीवन उस पर प्रभु की कृपा बनी रहे! उसकी प्राप्ति के लिए तीव्र इच्छा थी और प्रार्थनाएँ भी की गयी थीं और वह तुम तथा तुम्हारी पत्नी के लिए जीवन में बरमान स्वरूप आमी है। मुझे इसमें रंज भी सम्बैह नहीं है।

मेरी इच्छा थी कि चाहे यह रहस्य ही पूरा करने के क्रिया है कि 'धाववात्य धिम्' के लिए प्राण्य मुनि उपहार का रहे है, मैं इस समय अमेरिका जा जाता। किन्तु सब प्रार्थनाओं और आशीर्वाहों से भरपूर मेरा हृदय नहीं पर है और शरीर की अपेक्षा मन अधिक धक्तिशाली होता है।

मैं इस महीने की १६वीं तारीख को रवाना हो रहा हूँ और नेपुम्स में स्टीमर पर सवार हो आऊँगा। अल्बर्ट से रोम में अवश्य ही मिलूँगा।

पावन परिवार को बहुत बहुत प्यार।

सदा प्रभुपराभित  
विश्वकामन्द

(स्वामी ब्रह्मानन्द को लिखित)

होटल मित्रवाँ फ्लोरेन्स  
२ दिसम्बर १८९९

प्रिय रामानन्द

इस पत्र से ही तुम्हें यह भाव हो रहा होगा कि मैं जनी तक मार्ग में हूँ। लन्दन छोड़ने से पहले ही तुम्हारा पत्र तथा पुस्तिका मुझ मिली थी। मन्मथार के पामरपत्र पर कोई प्यान न देना। इसमें कोई सम्बैह नहीं कि ईप्सा के जलवा विमाप

१ गोपाल का प्रयोग श्री ब्रह्म के सिंगु रूप के लिए किया जाता है; यहाँ पुत्र जन्म की प्रतीक्षा में पुत्री के जन्म का संकेत किया गया है।

खराब कर दिया है। उन्होंने जिस अभद्रोचित भाषा का प्रयोग किया है, उसे सुनकर सम्य देश के लोग उनका उपहास ही करेंगे। इस प्रकार की अशिष्ट भाषा का प्रयोग कर उन्होंने स्वयं ही अपने उद्देश्य को विफल कर डाला है।

फिर भी हम कभी अपनी ओर में हरमोहन अथवा अन्य किसी व्यक्ति को ब्राह्मसमाजियो या और किसीके साथ झगडने की अनुमति नहीं दे सकते। जनता इस बात को अच्छी तरह से जान ले कि किसी सम्प्रदाय के साथ हमारा कोई विवाद नहीं है और यदि कोई झगडा करता है तो उसके लिए वह स्वयं उत्तरदायी है। परस्पर विवाद करना तथा आपस में निन्दा करना हमारा जातीय स्वभाव है। आलसी, कर्महीन, कटुभाषी, ईर्ष्यापिरायण, डरपोक तथा विवादप्रिय—यही तो हम वगालियो की प्रकृति है। मेरा मित्र कटकर अपना परिचय देनेवाले को पहले इन्हे त्यागना होगा। नहीं हरमोहन को कोई पुस्तक छापने की अनुमति देनी होगी, क्योंकि इस प्रकार के प्रकाशन केवल जनता को छलने के लिए होते हैं।

कलकत्ते में यदि सतरे मिलते हों तो मद्रास में आलासिंगा के पते पर सौ सतरे भेज देना, जिसमें मद्राम पहुँचने पर मुझे प्राप्त हो सके।

मुझे पता चला है कि मजूमदार ने यह लिखा है कि 'ब्रह्मवादिन्' पत्रिका में प्रकाशित श्री रामकृष्ण के उपदेश यथार्थ नहीं हैं, मिथ्या हैं। यदि ऐसा ही है तो सुरेश दत्त तथा रामबाबू को 'इण्डियन मिरर' में इसका प्रतिवाद करने को कहना। मुझे यह पता नहीं है कि उन उपदेशों का सम्ग्रह किस प्रकार किया गया है, अतः इस बारे में मैं कुछ नहीं कह सकता हूँ।

सस्नेह तुम्हारा,  
विवेकानन्द

पुनश्च—इन मूर्खों की ओर कोई ध्यान न देना, कहावत है कि 'वृद्ध मूर्ख जैसा और कोई दूसरा मूर्ख नहीं है।' उन्हें चिल्लाने दो। अहा, उन बेचारों का पेशा ही मारा गया है। कुछ चिल्लाकर ही उन्हें सन्तुष्ट होने दो।

वि०

(श्री आलासिंगा पेरुमल को लिखित)

१४, ग्रेकोट गार्डन्स,  
वेस्टमिनिस्टर, लन्दन,  
१८९६

प्रिय आलासिंगा,

लगभग तीन सप्ताह हुए मैं स्विट्ज़रलैण्ड से लौटा हूँ, पर इसके पूर्व तुम्हें पत्र न लिख सका। पिछली ढाक से मैंने तुम्हें कील के पॉल डॉयसन पर लिखा एक लेख भेजा था। स्टर्डी की पत्रिका की योजना में अभी भी विलम्ब है।



बैसा कि तुम जानते हो मैंने सेंट जार्ज रोड स्थित भकान छोड़ दिया है। १९, बिकनोरिया स्ट्रीट पर एक सेम्बर हॉल हमें मिल गया है। ई टी स्टर्जी के मार्केट मेजबान पर बिट्टी-गणी मुझ एक साल तक मिल जाया करेगी। ब्रेकोट गार्डन्स के कमरे मेरे तथा मात्र तीन महीने के लिए आवे हुए स्वामियों के आवास के लिए हैं। कन्वन् में नाम धीम्रता से बढ़ रहा है और हमारी क्लबएँ बढ़ी हूँती जा रही हैं। इसमें मुझे कोई सन्देश नहीं कि यह इसी रफतार से बढ़ना ही जायगा क्योंकि अमेरिका लोग बड़ एवं निष्ठावान हैं। यह सही है कि मेरे छोड़ते ही इसका अधिकार जानाबाना टूट जायगा। कुछ बटित अवश्य होमा। कोई सकित्साधी व्यक्ति इसे बहुत करने के लिए उठ सका होमा। ईस्वर जानता है कि क्या अच्छा है। अमेरिका में बेवान्त और योग पर धीस उपदेशकों की आवश्यकता है। पर ये उपदेशक और इन्हें यहाँ जाने के लिए धन कहाँ मिलेगा? यदि कुछ सन्ने और सकित्साधी मनुष्य मिल जायें तो आजा संयुक्त राज्य इस वर्ष में जीता जा सकता है। वे कहाँ हैं? वहाँ के लिए हम सब सहमत हैं। स्वार्थी कामर, देश भक्ति की केवल मुझ से बकवास करनेवाले और अपनी कट्टरता तथा धार्मिकता के अभिमान से चूर।। मद्रासियों<sup>१</sup> में अधिक स्फूर्ति और दृढता होती है, परन्तु वहाँ हर मुँह विबाहित है। ओफ विबाह! विबाह! विबाह! और फिर आवश्यक के विबाह का ठीका जिसमे लड़कों को जोत दिया जाता है। अगासगत गृहस्थ होने की इच्छा करना बहुत अच्छा है परन्तु मद्रास में यनी उच्चकी आवश्यकता नहीं है—बल्कि अविबाह की है

मेरे बच्चे मैं जो चाहता हूँ वह है लोहे की नसें और प्रीसाथ के स्नायु जिनके भीतर ऐंश मन बास करता हो जो कि बन्ध के समान पदार्थ का बना हो। वह पुरुषार्थ आचारीय और ब्रह्मतेज। हमारे सुत्वर हानहार लड़के—उनके पास सब कुछ है यदि वे विबाह नाम की चूर बेरी पर लार्डों की गिनती में बलिदान न किया जायें! हे भगवान्, मेरे हृदय का कन्वन् सुनो। मद्रास सभी जाग्रत होना जब उसने प्रत्यक्ष हृदय स्वल्प ही विक्षित मन्वयुक्त समार को त्याग कर और कमर कस कर, देश देश में भ्रमन करते हुए सत्य का संघाम लड़ने के लिए तैयार होने। भारत के बाहर का एक भाषात भारत के अन्दर के एक काय भाषातों के बराबर है। और, यदि प्रभु की इच्छा होवी तो सभी कुछ ही जायगा।

मिग मूरर ही वह व्यक्ति है जिनमे मैंने तुम्हें रुपये विकाने का कन्वन् दिया था।

१ मद्रासी शब्द का प्रयोग स्वामी जी ने सदैव एक व्यापक संदर्भ में किया है जिसके अन्तर्गत तत्काल वसिष्ठवासी जा जाने हैं।

मैंने उन्हें तुम्हारे नये प्रस्ताव के विषय में बतला दिया है। वे उसके बारे में सोच रही हैं। इस बीच मैं सोचता हूँ उन्हें कुछ काम दे देना उचित रहेगा। उन्होंने 'ब्रह्मवादिन्' और 'प्रबुद्ध भारत' का प्रतिनिधि बनना स्वीकार कर लिया है। इसके विषय में क्या तुम उन्हें लिखोगे? उनका पता है एयरली लॉज, रिजवे गार्डन्स, विम्बल्डन, इंग्लैण्ड। वही उनके साथ पिछले कई हफ्तों से मैं रह रहा था। लेकिन लन्दन का काम मेरे वहाँ रहे बिना संभव नहीं है। इसीलिए मैंने अपना आवास बदल दिया है। मुझे दुःख है कि इससे मिस मूलर की भावनाओं को थोड़ी ठेस पहुँची है। लेकिन किया ही क्या जा सकता है! उनका पूरा नाम है मिस हेनरियेटा मूलर। मैक्समूलर के साथ गाढी मित्रता हो रही है। मैं शीघ्र ही ऑक्सफोर्ड में दो व्याख्यान देनेवाला हूँ।

मैं वेदान्त दर्शन पर कुछ बड़ी चीजें लिख रहा हूँ और भिन्न भिन्न वेदों से वाक्य संग्रह करने में लगा हूँ, जो कि वेदान्त की तीनों अवस्थाओं से सम्बन्ध रखते हैं। पहले अद्वैतवाद सम्बन्धी विचार, फिर विशिष्टाद्वैत और द्वैत से जो वाक्य सम्बन्ध रखते हों, वे संहिता, ब्राह्मण, उपनिषद् और पुराण में से किसीसे संग्रह करा कर तुम मेरी सहायता कर सकते हो। वे श्रेणीबद्ध होने चाहिए, शुद्ध अक्षरों में लिखे जाने चाहिए और प्रत्येक के साथ ग्रन्थ और अध्याय के नाम उद्धृत होने चाहिए। पुस्तक रूप में दर्शन शास्त्र को पश्चिम में छोड़े बिना पश्चिम से चल देना दयनीय होगा।

मंसूर से तमिल अक्षरों में एक पुस्तक प्रकाशित हुई थी, जिसमें सभी १०८ उपनिषद् सम्मिलित थे। मैंने प्रोफेसर डॉयसन के पुस्तकालय में वह पुस्तक देखी थी। क्या वह देवनागरी अक्षरों में भी मुद्रित हुई है? यदि हो तो मुझे एक प्रति भेजना। यदि न हो तो मुझे तमिल सस्करण तथा एक कागज पर तमिल अक्षर और सयुक्ताक्षर लिखकर भेज देना। उसके साथ देवनागरी समानार्थक अक्षर भी लिख देना जिससे मैं तमिल अक्षर पहचानना सीख जाऊँ।

श्री सत्यनाथन्, जिनसे कुछ दिन हुए मैं लन्दन में मिला था, कहते थे कि 'मद्रास मेल' ने जो मद्रास का मुख्य एंग्लो इण्डियन समाचार पत्र है, मेरी पुस्तक 'राजयोग' की अनुकूल समीक्षा की है। मैंने सुना है कि अमेरिका के प्रधान शरीर-शास्त्रज्ञ मेरे विचारों पर मुग्ध हो गये हैं। उसके साथ ही इंग्लैण्ड में कुछ लोगों ने मेरे विचारों का मज़ाक उड़ाया है। यह ठीक ही है, क्योंकि इसमें सन्देह नहीं कि मेरे विचार नितान्त साहसिक हैं और बहुत कुछ उनमें से हमेशा के लिए अर्थहीन रहेंगे, परन्तु उनमें कुछ ऐसे सकेत भी हैं जिन्हें शरीर-शास्त्रज्ञ यदि शीघ्र ही ग्रहण कर लें तो अच्छा हो। फिर भी उसके परिणाम से मैं विल्कुल सन्तुष्ट हूँ। वे चाहे मेरी निन्दा

ही करें, पर चर्चा तो करें। यह मरुत आदर्स-आक्य है। इंग्लैण्ड में बेसङ्ग भद्र लोग हैं और बेहूवी बातें नहीं करते वैसे कि मैंने अमेरिका में पाया। और फिर इंग्लैण्ड के सगमम सनी मिशनरी मित्रमतावसम्बी बर्ष के हैं। वे इंग्लैण्ड के घर जन बप स गही आते। यहाँ के सनी धार्मिक भद्रजन इंग्लिष बर्ष को मानते हैं। उन मित्रमतावसम्बियों की इंग्लैण्ड में कोई वृष्ट नहीं है और वे सिद्धित भी नहीं हैं। उनक बारे में मैं यहाँ कुछ भी नहीं सुनता जिनके विषय में तुम मुझे बार बार आगाह करते हो। उनको यहाँ कोई नहीं जानता और यहाँ बरुबास करने की उनको हिम्मत भी नहीं है। भासा है भार क नामक मद्रास में ही होये और तुम कुषाळपूर्वक हो।

उत्ते र्हो मरे बहादुर बच्चो ! हमने बनी कार्य आरम्भ ही किया है। निराश न हो। बनी न कहो कि बस इतना काफ़ी है। वैसे ही मनुष्य परिचय में आकर दूसरे राष्ट्रों को बेचता है उसको आँसू खुस जाती हैं। इसी तरह मुझे आशियागामी वायकृती मिस आते हैं—केवल बातों से नहीं प्रत्यक्ष दिखाने से कि हमारे पास भारत में क्या है और क्या नहीं। येटी कितनी इच्छा है कि कम से कम बस सात हिन्दू पूरे संसार का भ्रमण किये हुए होत !

प्रेमपूर्वक धर्म तुम्हारा  
विवेकानन्द

(कुमाठी बस्वर्टा स्टारगीड को लिखित)

होटल मिनर्वा क्योरेंस  
२० दिसम्बर, १८९६

प्रिय भद्रार्थ

कल हम लोग रोम पहुँच रहे हैं। चूँकि हम लोग रोम शहर से बेर से पहुँचने इतनी सम्मबन्ध में परतों ही तुमसे मिलने के लिए आ सहुँमा। हम लोग 'होटल कान्तिगैटम' में ठहरेंगे।

सन्देश और धार्मिक  
विवेकानन्द

(श्री आन्तार्गिषा वेदवत को लिखित)

अमेरिका  
१८९६

प्रिय आन्तार्गिषा

दुन आन्तार्गिषा मैंने तुमको ब्रह्मचरिद्व' के सम्बन्ध में लिखा था। यद्यपि कति

विषयक व्याख्यानो के बारे में लिखना मैं भूल गया था। उनको एक साथ पुस्तकाकार प्रकाशित करना चाहिए। 'गुड ईयर' के नाम से न्यूयार्क, अमेरिका के पते पर उसकी एक सौ प्रतियाँ भेज सकते हो। मैं बीस दिन के अन्दर जहाज से इंग्लैण्ड रवाना हो रहा हूँ। कर्मयोग, ज्ञानयोग तथा राजयोग सम्बन्धी मेरी और भी बड़ी बड़ी पुस्तकें हैं। 'कर्मयोग' प्रकाशित हो चुका है। 'राजयोग' का आकार अत्यन्त वृहत् होगा—वह भी प्रेस में पहुँच चुका है। 'ज्ञानयोग' सम्भवत इंग्लैण्ड में छपवाना होगा।

तुमने 'ब्रह्मवादिन्' में 'क' का एक पत्र प्रकाशित किया है, उसका प्रकाशन न होना ही अच्छा था। थियोसॉफिस्टो ने 'क' की जो खबर ली है, उससे वह जल भुन रहा है। साथ ही उस प्रकार का पत्र सम्यजनोचित भी नहीं है, उससे सभी लोगो पर छीटाकशी होती है। 'ब्रह्मवादिन्' की नीति से वह मेल भी नहीं खाता। अत भविष्य में यदि कभी 'क' किसी सम्प्रदाय के विरुद्ध, चाहे वह कितना ही खस्ती और उद्धत हो, कुछ लिखे तो उसे नरम करके ही छापना। कोई भी सम्प्रदाय, चाहे वह बुरा हो या भला, उसके विरुद्ध 'ब्रह्मवादिन्' में कोई लेख प्रकाशित नहीं होना चाहिए। इसका अर्थ यह भी नहीं है कि प्रवचको के साथ जानबूझ कर सहानुभूति दिखानी चाहिए। पुन तुम लोगो को मैं यह बतला देना चाहता हूँ कि उक्त पत्र (ब्रह्मवादिन्) इतना अधिक शास्त्रीय (technical) बन चुका है कि यहाँ पर उसकी ग्राहक संख्या बढ़ने की आशा नहीं है। साधारणतया पश्चिम के लोगो का इतनी अधिक क्लिष्ट संस्कृत भाषा तथा उसकी बारीकियों का ज्ञान नहीं है और न उनमें जानने की इच्छा ही है। हाँ, इतना अवश्य है कि भारत के लिए वह पत्र बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। किसी मतविशेष का समर्थन किया जा रहा हो, ऐसी एक भी बात उसके सम्पादकीय लेख में नहीं रहनी चाहिए। और तुम्हें यह सदा ध्यान रखना है कि तुम केवल भारत को नहीं, वरन् सारे ससार को सम्बोधित कर बातें कह रहे हो और तुम जो कुछ कहना चाहते हो, ससार उसके बारे में बिल्कुल अनजान है। प्रत्येक संस्कृत श्लोक का अनुवाद अत्यन्त सावधानी के साथ करना और जहाँ तक हो सके उसे सरल भाषा में व्यक्त करने की चेष्टा करना।

तुम्हारे पत्र के जवाब मिलने से पहले ही मैं इंग्लैण्ड पहुँच जाऊँगा। अत मुझे पत्र का जवाब द्वारा ई० टी० स्टर्डी, हाई व्यू, कैवरगम्, इंग्लैण्ड के पते पर देना।

तुम्हारा,  
विवेकानन्द

(स्वामी जनेशानन्द को लिखित)

द्वारा ई टी स्टर्डी  
 हार्ड्यू कैबरसम् टीडिन इंग्लैण्ड  
 १८९६

प्रेमास्पद

मेरा पहला पत्र मिळा होगा। अब इंग्लैण्ड में मुझे पत्रादि उपयुक्त पत्र पर भेजना। श्री स्टर्डी को तारक बाबा (स्वामी शिवानन्द) जानते हैं। उन्होंने ही मुझे इंग्लैण्ड बुकामा है तथा हम दोनों मिलकर इंग्लैण्ड में आन्वाष्म बसाना चाहते हैं। नवम्बर महीने में पुनः अमेरिका जाने का मेरा विचार है। कल यहाँ पर एक ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता है, जो संस्कृत तथा अंग्रेजी साधनर अंग्रेजी अच्छी तरह से जानता हो। मैं समझता हूँ कि इसके लिए सशि सारवा भवना तुम उपयुक्त हो। इन तीनों में से यदि तुम्हारा शरीर पूर्णतया स्वस्थ हो गया हो तो तुम्हीं भले माना। मेरी राय में यही अधिक अच्छा होता अन्यथा सरजू को भेजना। कार्य केवल इतना ही है कि मैं बिल सिम्प-सेबर्को को यहाँ छोड़ जाऊँगा उन्हें धिगा देना तथा बेचान्त पढाना होगा और बोझा-बहुत अंग्रेजी में अनुवाद करना तथा बीच बीच में मापप आदि भी देना पड़ेगा। कर्मका बापसे बुद्धि।—को जाने की आवश्यकता है, किन्तु वह सबकुछ किये बिना सब कुछ व्यर्थ हो जायगा। इस पत्र के साथ एक चेक भेज रहा हूँ उससे कपड़े-कपड़े खरीद लेना। महेश्वर बाबू (मान्दर महाशय) के नाम चेक भेजा जा रहा है। गयावर का तिब्बती बोना मठ में ही उही तरह का एक बोना मेरे से रँग लेना। कौंसर कुछ ऊँचा होना चाहिए, जिससे बला डका जा सके। सबसे पहले एक आयन्त परम बोबरकोट की आवश्यकता है यहाँ पर आवश्यक ठण्ड है। बोबरकोट के बिना जहाज में विशेष कष्ट होगा। द्वितीय श्रेणी का टिकट भेज रहा हूँ प्रथम श्रेणी तथा द्वितीय श्रेणी में कोई विशेष अन्तर नहीं है।

बम्बई पहुँचकर—मेसर्स किंग किंग एण्ड कम्पनी प्रोर्ट बम्बई ऑफिस में जाकर कहना कि 'मैं स्टर्डी साहब का बहानी हूँ' इसमें वे तुम्हारे लिए इंग्लैण्ड तक का एक टिकट देंगे। वहाँ से एक पत्र उक्त कम्पनी की भेजा जा रहा है। मिठड़ी के राजा साहब को भी मैं एक पत्र इस भाग्य का लिख रहा हूँ कि उनके बम्बई के एजेण्ट तुम्हारी अच्छी तरह से देखभाल कर टिकट आदि की व्यवस्था कर दें। यदि इन १५ रायों में उपयुक्त कपड़े-कपड़े की व्यवस्था न हो तो रायाक बाकी रायों का इस्तफाम करके बाद में मैं उसे भेज दूँगा। इसके अलावा ५ रायों के लिए रचना—ये भी रायाक से देने को कहना। मैं बाद में भेज दूँगा। गुनी

बाबू के लिए मैंने जो रुपया भेजा है, आज तक उसका कोई समाचार मुझे नहीं मिला। पत्र के देखते ही रवाना हो जाना। महेन्द्र बाबू से कहना कि वे मेरे कलकत्ते के एजेण्ट हैं। इस पत्र को देखते ही वे श्री स्टर्डी को यह उल्लेख करते हुए एक पत्र भेजें कि कलकत्ता सम्बन्धी हमें जो काम काज इत्यादि करने होंगे, वे उन कार्यों को करने के लिए प्रस्तुत हैं। अर्थात् श्री स्टर्डी मेरे इंग्लैण्ड के सेक्रेटरी हैं, महेन्द्र बाबू कलकत्ते के, आलार्सिंगा मद्रास के। मद्रास में यह समाचार भेज देना। सभी के आन्तरिक प्रयास के बिना क्या कोई कार्य हो सकता है? उद्योगिन पुरुषसिंह-मुपैति लक्ष्मी—‘उद्योगी पुरुषसिंह ही लक्ष्मी को प्राप्त करता है।’ पीछे की ओर देखने की आवश्यकता नहीं है—आगे बढ़ो। हमें अनन्त शक्ति, अनन्त उत्साह, अनन्त साहस तथा अनन्त वैर्य चाहिए, तभी महान् कार्य सम्पन्न होगा। दुनिया में आग फूंकनी है।

जिस दिन जहाज़ का प्रबन्ध हो, तत्काल ही श्री स्टर्डी को पत्र लिखना कि ‘अमुक जहाज़ में मैं आ रहा हूँ।’ अन्यथा लन्दन पहुँचने पर गड़बड़ी होने की सम्भावना है। जो जहाज़ सीधे लन्दन आता हो, उसीसे आना, क्योंकि यद्यपि उससे आने में दो चार दिन की देरी हो सकती है, किन्तु किराया कम लगता है। इस समय हमारे पास तो धन अधिक नहीं है। समय आने पर लोगो को हम चारों ओर भेज सकेंगे। किमधिकमिति।

विवेकानन्द

पुनश्च—इस पत्र को देखने ही खेतडी के राजा साहब को लिखना कि तुम बम्बई जा रहे हो, अतः उनके एजेण्ट तुम्हें जहाज़ में बिठाने के लिए सहायता करें।

वि०

यह पता किसी डायरी में लिखकर अपने साथ रखना—किसी प्रकार गड़बड़ी न हो।

(स्वामी रामकृष्णानन्द को लिखित)

ई० टी० स्टर्डी का मकान,  
हाई ब्यू, कैवरशाम्, रीडिंग,  
१८९६

प्रिय शशि,

मुझे स्मरण नहीं है कि मैंने अपने पूर्व पत्र में इसका उल्लेख किया है या नहीं, अतः इस पत्र द्वारा तुम्हें यह सूचित करता हूँ कि काली अपने रवाना होने के दिन अथवा उससे पूर्व श्री ई० टी० स्टर्डी को पत्र डाल दे, ताकि वे जाकर जहाज़ से उसे

किन्ना सार्ये। यह कन्वर्न सहर मनुष्यों का सागर है—इस पन्त्रह कसकता इसमें इकट्ठे समा सकते हैं। अब उस प्रकार की व्यवस्था किये दिना पडवड़ी होने की सम्भावना है। आन में बंटी न हो पत्र देखते ही उसे निकलन की कहना। सत्य की तरह आने में विकम्ब नहीं होना चाहिए। और बाकी बातें स्वयं सोच-विचार कर ठीक कर लेना। काली को जैसे मी हो सीध भोजना। यदि सत्य की तरह आने में विकम्ब हो तो फिर किसीक आन की आवश्यकता नहीं है—दुसगुल गीति-बाके आकृषी से यह कार्य नहीं हो सकता यह तो महान् रजोगुण का कार्य है। तमोगुण से हमारा वेध छाया हुआ है—वहाँ देखो नहीं तम रजोगुण चाहिए, उसके बाद सत्य यह तो अत्यन्त दूर की बात है।

सत्येक  
नरेन

(कुमारी मेरी हेछ को कितित)

ईम्पडर,

प्रिंस रीजेन्ट कियोपोल्ड'

३ जनवरी १८९७

प्रिय मेरी

तुम्हारा पत्र मिला जो कन्वर्न पर्युजन के बाद रोम के सिम्प प्रेंपिन किन्ना गया था। तुम्हारी कृपा भी जो इतना सुन्दर पत्र किन्ना और उसका पत्र सब मुझे अच्छा लगा। यूरोप में बाघ-बन्द के विकास के विषय में मुझे कुछ माध्यम नहीं। नेपुस्त से चार दिनों की भयावह समुद्र-यात्रा के पश्चात् हम लीम पोर्ट सईर के निकट पहुँच रहे हैं। जहाज अत्यन्तिक बोलावित हो रहा है, अतएव ऐसी परिस्थितियों में अपनी खराब लिखावट के लिए तुमसे क्षमा माहता हूँ।

स्नेह से एशिया महाद्वीप आरम्भ हो जाता है। एक बार फिर एशिया आया। मैं क्या हूँ? एशियाई, यूरोपीय या अमेरिकी? मैं तो अपने में व्यक्तित्वों की एक अजीब मिश्रणी पाता हूँ। तुमने धर्मपाल के बारे में उनके जाने जाने तथा कार्यों के विषय में कुछ नहीं किन्ना। पाँची की अपेक्षा उनके प्रति मेरी दिलचस्पी बहुत ज्यादा है।

कुछ ही दिनों में मैं कौलम्बो में जहाज से उतरनेवा और फिर लंका को बोझा देखने पर विचार है। एक समय या जब लंका की आबादी हो करोड़ है भी अधिक थी और उनकी राजधानी विद्याल थी। राजधानी के पश्चात्तरेप का विस्तार लगभग एक ही वर्ष मील है।

लकावासी द्राविड नहीं हैं, बल्कि विशुद्ध आर्य हैं। ईसा के जन्म से ८ सौ वर्ष पूर्व बगाल के लोग वहाँ जाकर बसे और तब से लेकर आज तक लकावासियों ने अपना इतिहास बड़ा स्पष्ट रखा है। प्राचीन दुनिया का वह सबसे बड़ा व्यापार-केन्द्र था और अनुरावापुर प्राचीनो का लन्दन था।

पश्चिमी देशों के सभी स्थानों की अपेक्षा रोम मुझे ज्यादा अच्छा लगा और पाम्पियाई देखने के बाद तो तथाकथित आधुनिक सम्यता के प्रति समादर की मेरी सारी भावना लुप्त हो गयी। वाष्प तथा विद्युत् शक्ति के अतिरिक्त उनके पास और सब कुछ था और कला सम्बन्धी उनके विचार तथा कृतियाँ तो आधुनिकों की अपेक्षा लाख गुनी अधिक थी।

कृपया कुमारी लॉक (Miss Locke) से कहना कि मैंने उन्हें जो यह बताया था कि मानव-मूर्ति-कला का जितना विकास यूनान में हुआ था, उतना भारत में नहीं, वह मेरी गलती थी। फर्ग्युसन तथा अन्य प्रामाणिक लेखकों की पुस्तकों में मुझे यह पढ़ने को मिल रहा है कि उडीसा या जगन्नाथ में, जहाँ मैं नहीं गया हूँ, ध्वसावशेषों में जो मानवीय मूर्तियाँ मिली हैं, वे सौन्दर्य तथा शारीरिक रचना-नैपुण्य में यूनानियों की किसी भी कृति की बराबरी कर सकती हैं। मृत्यु की एक महाकाय प्रतिमा है। उसमें मृत्यु को नारी के वृहदाकार अस्थि-पजर के रूप में दिखाया गया है, जिसके चमड़े पर तमाम झुर्रियाँ पडी हुई हैं—शरीर-रचना की वारीकियों का इतना सच्चा प्रदर्शन परम भयावह और बीभत्स है। मेरे लेखक का मत है कि गवाक्ष में निर्मित एक नारी-मूर्ति बिल्कुल 'वीनस डी मेडिसी' से मिलती जुलती है, इत्यादि। पर तुम्हें याद रखना चाहिए कि प्रायः सब कुछ मूर्ति-भजक मुसलमानों ने नष्ट कर डाला, फिर भी जो कुछ बचा है, वह यूरोप के तमाम भग्नावशेषों की तुलना में श्रेष्ठ है। मैंने आठ वर्ष परिभ्रमण किया, किन्तु बहुत सी श्रेष्ठतम कलाकृतियों को नहीं देखा है।

वहन लॉक से यह भी कहना कि भारत के वन-प्रान्त में एक मन्दिर के खण्डहर हैं और उसके साथ यदि यूनान के 'पार्थेनान' की समीक्षा की जाय तो फर्ग्युसन का मत है कि दोनों ही स्थापत्य कला के चरम बिन्दु तक पहुँच गये हैं—दोनों अपने अपने ढंग के निराले हैं—एक कल्पना में और दूसरा कल्पना एवं अलकरण में। बाद की मुगलकालीन इमारतों आदि में भारतीय तथा मुस्लिम कलाओं का सकर है और वे प्राचीन काल की सर्वोत्कृष्ट स्थापत्य कला की आशिक समता भी नहीं कर सकती।

तुम्हारा सस्नेह,  
विवेकानन्द



पुनरुत्थ—संयोग से फुडोरेंस में 'महर वर्ष' और 'छाहर पोप' के वर्णन हुए।  
इसे तुम जानती ही हो।

वि

(कुमारी मेरी हेतु को सिद्धित)

रामनाड

शनिवार, ३ जनवरी १८९७

प्रिय मेरी

परिस्थितियाँ अत्यन्त आश्चर्यजनक रूप से मेरे लिए अनुकूल होती जा रही हैं। कोसम्बो में मैंने बहारा छोड़ा तथा भारत के दक्षिण स्थित प्रायः अन्तिम मूलस्थ रामनाड में मैं इस समय वहाँ के राजा का अतिथि हूँ। मेरी माता एक बिरादर जुमूम के समान रही—बेगुमार जनता की भीड़ रोसनी मानपत्र बरीरह बौरह। भारत की भूमि पर, जहाँ मैंने प्रथम पर्यारण किया वहाँ पर ४ फुट ऊँचा एक स्मृति स्तम्भ बनवाया जा रहा है। रामनाड के राजा साहब ने अपना मानपत्र एक अत्यन्त सुन्दर नक़्कामी किम हुए असली सोने के बड़े बॉक्स में रखकर मुझे प्रदान किया है। उमम मुझे 'परम पवित्र' (His Most Holiness) कहकर सम्बोधित किया गया है। मद्रास तथा कलकत्ते में लोच बड़ी उत्कृष्टता के साथ मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं मानो सारा देश मुझे सम्मानित करने के लिए उठ खड़ा हुआ है। अठ मेरी तुम यह देख रही हो कि मैं अपने भाग्य के उच्चतम मिस्र पर जाकर हूँ। फिर भी मेरा मन निकरगो के उत निस्सन्ध विधान्तिपूर्वक विनों की ओर बीड़ रहा है—किन्तु सुन्दर विधामशायक शान्ति तथा प्रमपूर्वक से से दिन! इसीलिए मैं अभी तुमको पत्र लिखने बीठा हूँ। आशा है कि तुम सभी अनुसक्त तथा आनन्दपूर्वक होये। वाकडर बरोड की अन्वर्षना करने के लिए मैंने लम्ब से अपने बेशावतियों को पत्र लिखा था। उन लोगों ने अत्यन्त आश्चर्य के साथ उनकी अन्वर्षना की थी। किन्तु वे वहाँ के लोगों से प्रेरणा-सञ्चार नहीं कर सके इसके लिए मैं बोधी गयी हूँ। कलकत्ते के लोगों में कोई नवीन भावना पैदा करना बहुत कठिन है। अब मैं मुन रहा हूँ कि डॉक्टर बरोड के मन में मेरे प्रति अनेक धारणाएँ उठ रही हैं। इतीका नाम तो सञ्चार है।

माता जी पिता जी तथा तुम सभी को मरत प्यार।

मुन्दारा स्नेहबद्ध

विश्वकालम्ब

(स्वामी ब्रह्मानन्द को लिखित)

मद्रास,

१२ फरवरी, १८९७

प्रिय राखाल,

आगामी रविवार को 'यस० यस० मोम्बासा' जहाज़ से मेरे खाना होने की बात है। स्वास्थ्य अनुकूल न होने के कारण पूना तथा और भी अनेक स्थानों के निमंत्रण मुझे अस्वीकार करने पड़े। अत्यधिक परिश्रम तथा गर्मी के कारण स्वास्थ्य बहुत खराब हो चुका है।

थियोसॉफिस्ट तथा अन्य लोगो की इच्छा मुझे अत्यन्त भयभीत करने की थी, अतः उन्हें दो चार बातें स्पष्ट रूप से कहने के लिए मुझे बाध्य होना पडा था। तुम तो यह जानते हो कि उनके साथ सम्मिलित न होने के कारण उन लोगो ने अमेरिका मे मुझे बराबर कष्ट दिया है। यहाँ पर भी उसी प्रकार के आचरण करने की उन लोगो की इच्छा थी। इसीलिए मुझे अपना अभिमत स्पष्ट रूप से व्यक्त करना पडा था। इससे यदि मेरे कलकत्ते के मित्रो मे से कोई असन्तुष्ट हुए हो, तो भगवान् उन पर कृपा करे। तुम्हारे लिए डरने की कोई बात नहीं है, मैं अकेला नहीं हूँ, प्रभु सदा मेरे साथ है। इसके सिवाय और मैं कर ही क्या सकता था ?

तुम्हारा,  
विवेकानन्द

पुनश्च—मकान तैयार हो गया हो तो उसे ले लेना।

वि०



## अनुक्रमणिका

- अग्नेज ८८-८, ११८, १३८, १८६,  
 १९२, २०५, २०८, २१८, ३००,  
 ३६८, ३८१, ३८९, जाति १६८,  
 २०८, २०६, ३९१, सात्रक ८८,  
 मित्र २०३  
 अग्नेजी भाषा १०, ३८९, दीर्घी ९९  
 अक्षर २२०  
 'अकामहन' २३६  
 'अजा' (जन्मरहित) १०८  
 अजुंन ३३५  
 अज्ञेयवाद १११  
 अज्ञेयवादियों ३१२  
 अटलान्तिक महामागर २०४, ३५२, ३७३  
 अणिमा २२६  
 अतीन्द्रियवाद ५३  
 अयर्वेद संहिता १९२, ३५१  
 अदृष्टवाद २४  
 अद्वैत १२८  
 अद्वैत तत्त्व २१९, ३२२  
 अद्वैतात्मक २८८  
 अद्वैत भाव १२९, १३२, १७४, ३२९  
 अद्वैतभावात्मक २२५  
 अद्वैतवाद २८-९, ५९, ८५, १२५-२६,  
 १३७, १४९, १७४-७५, २१८,  
 २३९, २६८, २८७-८८, २९४-  
 ९५, ३०३, ३०५, ३०७, ३०९,  
 ३१३-१८, ३२१-२३, ३२८, ३७२,  
 ३९९  
 अद्वैतवादी १३, २०, ३३, ५८, १२४-  
 २५, १२८-२९, १३४, १५५, १८१,  
 १९१, २१३, २१५-१८, २२७,  
 २३२, २३७-३८, २८७-८८, ३००-  
 १, ३०५-७, ३१४  
 अज्ञानम ज्ञान ३२, ज्ञान ३०२, नन्व  
 ३२०, पुनर्गत्या ४२, प्रतिभा ३,  
 स्व ४५, त्रिया ८५, त्विन् ९,  
 निष्ठा ५०  
 'अनाय' ९८, १८६  
 अनुभूति २६९, 'प्रत्यक्ष' २७०  
 अनुभूत छद्म ३२५  
 जन्मदृष्टि पणयण ८८  
 अन्तिमोक्त २१५  
 'अन्प्रकारमय प्रकाश' २६३  
 अफगानिस्तान १८६  
 अफ्रीका ८८, १३८  
 अफ्रीकी ८८, १८६  
 अभाव मे भाव वस्तु का उद्भव २३  
 अभी ५७, १३२-३३, २१२, २७८  
 अभेदज्ञान २८  
 अभेदानन्द ३५१, ३६०, ३९०, ४०२  
 (देखिए काली)  
 अमिताचार २८०  
 अमरीकी १८६, २००, जाति २०४,  
 राष्ट्रो ३  
 अमेरिका ७, १४, ४१, ६६, ७४-५,  
 ८५-८, १०३-५, १०९, ११८,  
 १२१, १६२-६३, १६७, १७०,  
 १८३, २०४-५, २४१-४२, ३१८,  
 ३२२-२३, ३३२, ३३४, ३५१,  
 ३५४, ३५८, ३६४-६७, ३७२,  
 ३८०, ३८२, ३८८, ३९०, ३९३-  
 ९४, ३९६, ३९८-४०२, ४०७,  
 उत्तर ३६३  
 अमेरिकावासी १०४  
 अमेरिकी पत्र ३५९  
 अरब ९, ३७५

अरभ्यनिवासी १६५  
 अरुणकलावाद १  
 अरुणवती मन्त्र २८९ म्याम २८९  
 अल्फोर्ट, फर्नस ३६१  
 व्यम्बर, मणि ३६  
 व्यम्बर, मुद्गाहाप्य १ ४  
 मन्वर्ता ३८ ३९३ ३९६  
 अस्माह २२  
 'अस्माहो अफवा' ३६१  
 अत्मोद्गा १ २४१ ३४३ ३५७ ३८८ ९  
 अस्मोपनिषद् २२०-२२१  
 अविनाशी कामन्द २६  
 'अकृषित' २३६  
 अर्षोक १७  
 अहं २३८  
 अहीनुषी प्रेम भक्ति १५४

आकेतिस पुपेरो (पा टि ) ९  
 आइया मेम ३७५-७६  
 आकाश २९१  
 आत्ममक वृत्ति ७२  
 आत्मजोर्ब ३९९  
 आचरण-शास्त्र २६ २८ ९ ४७ ७९,  
 ८५, १२६  
 आचार ६९-७  
 आचार-शास्त्र ७९, ११२, १३६  
 आत्म-तत्त्व २२३ २४७ २५७  
 आत्म स्वरूप ५७  
 आत्म स्वरूप ब्रह्म २३८  
 आत्म वर्धन २७ विज्ञान ५७  
 आत्मा २५-७ ३ ४३ ४६, ७७  
 ८१ ८५, ८९, ९५, ११३ (पा  
 टि ) ११६ ११९ १३१ १३४  
 १३७ १३९ ४१ १४८ ४९, १५७  
 १५९, १६१ १६५, १७६, १७८  
 ७९ १९ २१३ २१८, २२६  
 २२८, २३५, २३८, २४ २४६  
 ४७ २५६ २६५ ६६ २६८ ६९  
 २७१ २९ २९२ २९४ ३ १  
 ३ ३ ८ ११ ३१५, ३२५-२६

३२८, ३३३ ३४ ३४६ ४७  
 ३७१ ३८४ ३८६ उचका स्वस्म  
 ११ और मन १६  
 आध्यात्मिक अर्थवृष्टि ३३५ आदर्श  
 ७३ २ ९ २५२ आचार ३२८  
 आधिष्कारक २ उन्माग ५६, ६६  
 उपवेश १२४ उपादेयता ३६७  
 अमर् १४८ जीवन ११६ ज्ञान  
 १८, ३२ ११७ तत्त्व २ १ २७४  
 ३३१ तेज २४७ शान ३२  
 पुनरुत्थान ४२ प्रतिमाएँ ५६  
 महत्त्वाकांक्षाएँ २५७ राज्य ६७  
 व्यवस्था ६६ धिष्ठा १४६, १९४  
 २ ९ धक्ति ५९, १४६ सत्य  
 १४८, २१४ ३६२ ३७२ सत्या  
 श्रेयस १८ संयति ७३ अर्थ ९६  
 आध्यात्म धिष्ठा ५२  
 आध्यात्मिकता' ४९  
 आध्यात्मिकता जीवन रत्न १८१  
 आनुमिक मस्त्व २२  
 'आत्म' ३८६  
 आनुवंशिक संक्रमणवाद ८८  
 आग्यान्तर सुष्टि २५१-५३  
 आरभ्यक २८६  
 आरमेतिया ३१८  
 आर्य ९४ १४८ २३१ अर्थ २४२  
 २५९, २९९ ३१८ ३२४ ३२७  
 ३४२ ४ ५  
 आर्षवर्ष ९८, १५ २५७  
 आयुतर २१  
 आसासिवा देवमक ३५९ ३ ३७७  
 ३८१ ३८७ ३८९, ३९७ ४  
 ४ ३  
 आत्मस ३७  
 आत्म्य शोच २२, २५२  
 आत्मिया ३२  
 आहार २२८ ३  
 आर्षवर्ष ७ ९, १७ ६३ ६६ ९९,  
 १ ३ ११८, १६५, १७ २ ५६

२४१, ३२०, ३५१-५२, ३५५-५६,  
३६४-७०, ३७३-७४, ३७७-७८,  
३८१-८२, ३८८, ३९०, ३९३-९४,  
३९९-४०३

इंग्लिश चर्च ९९

इटली ३८८-८९, ३९४-९५

'इण्डियन मिरर' ३७७, ३८३, ३९७

इतिहास, भारतीय ३५

इन्द्र २६, २९६, ३२५, ३२७

इन्द्रत्व २६

इन्द्रयनुप १७६

इलाहावाद ३८९

'इष्ट निष्ठा' ३०, ८०

इमरायल ८२

इस्लाम धर्म ६३, १४४

ई० टी० स्टर्डी ३५७-५८, ३६४-६५,  
३७२, ३९८, ४०१-३ (देखिए  
स्टर्डी)

ईरानियो २५३

ईशोपनिषद् (पा० टि०) २६८

ईश्वर तत्त्व २६

ईश्वरत्व ९५, १३५

ईश्वराराधन २७

ईश्वरीय शक्ति २७६

ईसा ३१, १०५-६, १७६, २५३, ३७९

ईसाई २५३, २५६, धर्म ८, १७, ६३,

७९, ८६, १०६, ११२, १३६,

१४४, १५८, २०४, मतावलम्बी

१६९, मिशनरी २२५

ईसा मसीह १४५, १५८

उडीमा ४०५

उत्तरी ध्रुव १८६

उपनिषद् ९, २०, ५७, ७१, ११६,

१२०, १२४-२५, १२७-३७, १३९,

१५५, २१५-१६, २१९-२३, २२५,

२७७, २८६-८७, ३२५, ३२८-२९,

३३३, ३४४, ३९९, अल्लोपनिषद्

२२०-२१,

ईशोपनिषद् २६८, उसमे द्वैतभाव  
१३२, कठोपनिषद् ८९, १३०,  
(पा० टि०) १३०, १७५-७६,  
२१२, २७७, ३२८, ३३४, केनो-  
पनिषद् (पा० टि०) १७५, मुड-  
कोपनिषद् २८९, ३०१, (पा०  
टि०) १३०, २२३, २६९, बृहदा-  
ग्न्यकोपनिषद् (पा० टि०) ३०८,  
विद्या १२६, श्वेताश्वतरोपनिषद्  
३१२

उपामना १५, १५५-५६, गृह ८३,  
पद्धतियाँ १५८

उमा ३७४

'उष्ण वरफ' ३६२

ऊर्जासधारणवाद ११

ऋग्वेद २९१, ३२५

ऋषि १३९, १४४, १४६-४९, १७२,

१८९, २२५, २२७, ३२७, ३३८,

३४३, ३४५

ए० कुलवीर सिंहम्, मन्त्री ४

एक सद्विप्रा बहुधा वदन्ति १३, ८३

एकमेवाद्वितीयम् २३२

एकेश्वरवाद ८२

'एजू' (घातु) २९१

एण्ड्रोज, कुमारी ३८०

एथेन्स २१५

एनी वेसेण्ट ३६१

एम० नोबल (कुमारी) ३६१, ३८९

एम० ई० नोबल ३३० (देखिए सिस्टर  
निवेदिता)

एयरली लॉज ३७४, ३७६, ३७८, ३८१,  
३९९

एशिया माइनर ११८

एसोटेरिक १०५

ऐंग्लो इण्डियन ३९९

ऐंग्लो-सैक्सन जाति ३३१-३२

बोंकार १९६  
 'बोरायन' ३६५  
 भोक्ति बुध भीमती ३५५-५६ ३६६,  
 ३८२, ३९४  
 भोस्व टेस्टामेण्ट ३८४

वीरंगञ्ज ९

कंठबोटिब ८  
 कठोपनिषद् ८९ १३ (पा टि )  
 १३ १७५ ७६ २१२, २७७  
 ३२८ ३३४

कन्नड ३७  
 कन्याकुमारी ११६  
 'करतकामसकवय्' ३४२  
 कर्नल ब्रम्फोर्ड ३६१ (रेसिए ब्रम्फोर्ड)  
 कर्नल पुसी ४६  
 'कमल' ३५६  
 कर्मकाण्ड २ १२४ १५५ १९४  
 २१२ २३४ ३५, २८५-८७ ३२५,  
 ३४४ वैदिक २१७

कर्मफल २८८  
 'कर्मयोग' ४ १  
 कर्मबाह १२  
 कर्मविद्या २४-५  
 कर्म संभाम २७६  
 कर्म समष्टि २७६  
 कलकत्ता २ ३ २१५, २३६,  
 ३५१-५२, ३५९, ३८८-८९ ३९२,  
 ३९७ ४ ३४ ४ ६-७ मिबायी  
 २ ३ २१२

कल्मिषुग २१ ३२ ३८, ६६  
 कल्प २२ ३  
 कलागण २२ २६५  
 कल्पुपी मूत्र ३८५  
 कर्दिलक ९६  
 क्राष्ट २३२ २२५  
 कापिल ठंठ ३४६  
 काबा १५  
 काक्लिबाध २२२, ३८१

काठी ३५१ ४ ३४ (रेसिए  
 भमेदानम्)

कास्मीर २४८  
 किम्बरगार्टन ३७५  
 कौल ३६४ ५६ ३७ ३७२, ३८२  
 ३९७

कुपमी १ ५  
 कुम्भकोणम् ७३  
 कुमार्पु २४२  
 कुनारिस मट्ट ३४८  
 कुरान २२५  
 कृपानम् ३६१ ३६५, ३७१  
 कृष्ण ९ १३७ १४४ ४५, १४९,  
 ५७ १६९ १७३ १७५, १८७  
 १९७ २२५, २१९ ३२३ (रेसिए  
 धी कृष्ण)

केनोपनिषद् (पा टि ) १७५  
 कैपिटोकाइन पहाड़ ६  
 कैपिटोल (पा टि ) ६ (रेसिए  
 कैपिटोकाइन)

कैवरसम ३५१ ३५७ ४ १-२  
 कोला ३८ ३९३  
 कोलम्बो १ ४ ७४ ९९ १ ३८८  
 ८९ ४ ४ ४ ६ मिबायी

कौमीनबायी ९३  
 कन विकास १३४  
 कन विकासबाह ११२  
 कन सकोच १३४  
 कलाइव कॉर्ड ३१७  
 कालिक विज्ञानबायी ३ १  
 सविम-युय २२४ ३ ५

खेठगी ९७ २२४ ४ २-३

पंजा ३४४ ३८४  
 पगावर ४ २  
 परोय २७३  
 पानी ३११  
 पाथी ४ ४  
 पाथपत्य २६२

- गात्सवर्दी ३५२  
 गीता २२, ३६, ५३, ८९, ९९, १०८,  
 ११९, १३७, १३९-४०, १४२,  
 १४५-४६, १५१, १५३-५७, १८६,  
 २०७, २२०, २३२ २८७, २९६-  
 ९७, ३१७, ३२३, ३३७, (पा०  
 टि०) २२, २९, ३६, ११९, १३९,  
 १५६, १६९  
 'भीनएकर' ३६७  
 'गुडईयर' ४०१  
 गुडविन, जे० जे० ३६१, ३६६-६७,  
 ३८८-८९, ३९१, ३९३ (देखिए  
 जे०जे० गुडविन)  
 गुरखा रेजीमेण्ट २४६  
 गुरु गोविन्द सिंह २५७, २७०-७१  
 गोपाल ३९६  
 गोपी प्रेम १५२-५३  
 गौतम ३८६  
 ग्रेकोट गार्डन्स ३८४, ३८७-८८ ३९३-  
 ९४, ३९७-९८  
 ग्रैण्ड होटल, वैले ३५७  
 'चढी' ३१०-११  
 चद्र २२३, २७७, २८४, २९१, ३१३,  
 ३२८  
 चद्रमा १३०, २४२  
 चट्टोपाध्याय, मोहिनीमोहन ३३२  
 चन्द्रलोक १३८  
 चिकित्सा शास्त्र १८२  
 चित्त २९३  
 'चिरकुमारी आश्रम' ३७३  
 चीन ७, ११७, १६९, २७२, ३३०,  
 ३३४  
 चुनी बाबू ४०२-३  
 'चैन्नापुरी अन्नदान समाजम्' १९८  
 चैतन्य १६०, १८४, २२८  
 छुआछूत ३२९  
 छूत-अछूत १६५  
 २७  
 जगदम्बा ३४०  
 जगन्नाथ ४०५  
 जगन्नाथ जी १५८  
 जगन्नाथपुरी ३६९  
 'ज ज ज' गोष्ठी ३८०  
 जनक १३४  
 जनकत्व १३४  
 जफना १७-८  
 जम्मू २४८  
 जारयुट्ट ३८०  
 जर्मन १०, २९७, दार्शनिको ३७७  
 जर्मनी ७, ८५, ३२५, ३६५, ३६९  
 -७०, ३७६-७७, ३७९, ३८२  
 जाट ३४३  
 जाति, ऐंग्लो-सैक्सन ३३१-३२, तातार  
 ३५७, ब्राह्मण १५८, ब्रिटिश ३३१,  
 यूनानी ८१, १६४, रोमन १६९;  
 हिन्दू ३४-५, ७६-७, ९१, ९३,  
 १७७, २४६, ३२२  
 जाति-दोष २२९, २५१  
 जातीय जीवन १८३, धर्म १३३, मन  
 १८३  
 जानकी २४९  
 जानकीपति २४९  
 जापान ७, २७२, ३३०, ३३४  
 जापानी ७३  
 'जाँब का ग्रथ' ३९२  
 जावा (पा० टि०) १६९  
 जिहोवा ५०, २८१  
 'जीवन्मुक्ति' ३८६  
 जीवात्मा ११-२, २५-६, २९, १३०  
 १४७, १५५-५६, १७५, २२६-  
 २८, २३२, २६५, २९७, ३०२,  
 ३०४-५  
 जुपिटर देवता (पा० टि०) ६  
 जेकवी ३६५  
 जे० जे० गुडविन ३६१ (देखिए गुडविन)  
 जेन्द अवस्ता ९  
 जेन्दवेस्ता २२४  
 जेन्टिल साहव ९



विष्णु जी ३६६ ३८८  
 वीन १९ २४ ४६ बर्न १२६, १४४  
 सुधारों ३३७  
 'जो' ३५२ (देखिए मैक्सवॉल्व जोसेफिन)  
 ज्ञानकांड २  
 ज्ञानयोग ४  
 ज्योतिषिज्ञान २३९

ट्रिप्लिकेन १६३  
 'जिम्नूत' २८

कच १७ १८६  
 डॉयसन प्रोजेक्टर ३२५, ३६५, ३६९,  
 ७ ३७७ ३७९-७७ ३७९, ३८२,  
 ३९९ (देखिए पॉक डॉयसन)  
 क्रिमोफेटिक बस ८  
 'डिली म्यूड' ३७७  
 डैम्प्टर ४ ४

डारा ३३९, ३४३

दण्ड मग २२५  
 'दत्तमणि' १४५, २१७  
 दत्तानुसंपान १८  
 दम २२८-२९ (देखिए दमीगुण)  
 दमिक १७ ३७ अक्षरों ३९९  
 दमीगुण २९८, ४ ४  
 दर्मशास्त्र ३१३  
 दानार १५९, १८ मानि ३५७  
 दारुत बाबा ४ २ (देखिए धिवातस्य  
 स्वामी)

दिग्गज १५८ १८६  
 दिग्गनी चौडा ४ २  
 दिग्ग बाल नंगापर ३६५  
 दीर्घत्व ३८  
 दुग्नी ३४  
 दुग्नीराम कवि सभाद् २४१ ३७८  
 दुर्ग १८  
 दुग्गु ३७७  
 दीर्घदीर्घोभिर्गु(वा टि) १७५, २१९

दिपिटक २२४ ३ ५  
 दिप्टुप ३२५  
 दिता २१  
 'द्वाम' ३३६  
 द्वामधि निरजन १३८

द्विपोर्तोक्रिस्ट ३८८, ४ १, ४ ७  
 द्विपोर्तोक्रिस्ट सोसायटी १ ३-५

दक्षिण बाह्या १८५  
 दक्षिणेश्वर ३६८  
 दम्पति सेविकर ३६४  
 दयानन्द सरस्वती २१९  
 दर्शन हिन्दू १८, ३४ वेदान्त २ १  
 २ ४ २१५ १६, २१८, २२  
 ३९९ बौद्ध २९५

दक्षि १२९, २२२  
 दाहू ११४  
 दाग १९८  
 दारासिफोहू ९, ३२५  
 दार्शनिक दत्त ३२ ज्ञान ५, १६७  
 दिग्गान्त १०९ संप्रवासी २२  
 'दि नाइन्टीन्थ सन्शुटी' ३५८-५९  
 दिग्ग २६, १७८  
 दिग्गानटी (द्वारा) ३९९ भाषा  
 (संस्कृत) १५७  
 दिग्गि १८ १८५ भाषा १८५  
 द्विगुणी १५२, १५४

द्विपर २१  
 द्विपरान्तक क्षेत्र ६७  
 देव राजा विजयहर्ष्य बहानुर २  
 द्विग भाग १२९, १५५, १७४ १८४  
 द्विगभाषामग २२५ देव १७४  
 द्विगबाह ८६ १२६ १४९, १७४  
 २३९, २६८, २८८-८९, २९५  
 २९९ ३ १  
 द्विगभाषामग ३ १ ३२२  
 द्विगानी १३ २ ३३ ८७ १२४  
 १२८-२७ १३४ १५६, १७४  
 १८१ २१५ १७ २२७ ३८७-८८

३००, ३०५, ३२२, ३४३-४४  
द्वैतात्मक १७४

घनजय (पा० टि०) १५६

धर्म ७६, १४८, १७५, ३१८, उस्लाम  
६३, ११४, ईनाई ८, १७, ६३, ७९,  
८६, १०६, ११२, १३६, १४४,  
१५८, २०४, जैन १२६, १४४,  
बौद्ध १११-१२, १२४, १४४,  
१५८-५९, २४८, २७९, ३३७,  
३४६, ब्राह्मण १५८, यहूदी ३४४,  
यूनानी ३४४, वर्णाश्रम ३३०,  
विश्व ४१, २४५, वेदान्त १२४,  
३४४, सार्वभौम २०८, सेमेटिक  
३२६, हिन्दू ६२, ६६, ९६-७,  
१०७, ११०, १६३-६४, २०२,  
२१६, २४२, २४५, २५७, २७०,  
३३९-४०, ३४४, ३४७

धर्मक्षेत्र ६२

धर्म-महासभा ७, ५२, ६१, ९६, १००,  
२०३

धर्मपाल २९२, ४०४

धर्म राज्य २७०, विज्ञान ८५, शास्त्र  
३८४, संप्रदाय ८७, १९५ आचार्य  
४९

धर्मानुष्ठान १७

धार्मिक आदर्श ७५

धृति ५

ध्रुव २७८

नजुन्दा राव, डॉ० ३५५, ३७०, ३७७

नचिकेता १३९, २१२-१३, २२४, ३३४

नमाज (पा० टि०) १५

नरेन्द्र ४०४ (देखिए विवेकानन्द)

नहुष २६

नाज्जरथ १७६

नानक ११४, २५७, ३७८

नायहू, आर० के० ४००

नार्थ जर्मन लॉयड ३८९

नारायण २८३, पूजा २८४

नान्ति भावात्मक ३०७-८ (देखिए  
नेति-नेति)

'नगर' १०९

निराकारवादी ३४३

निरुक्त ३५१

निर्गुण ईश्वरवाद १५१

निर्गुण ब्रह्म २८, २०८, पुरुष २८

निर्गुण ब्रह्मवाद २, ११, २९

नित्य बुद्ध २३

नित्य शुद्ध २३

निवृत्ति मार्ग ४६

निर्वेदिता, मिस्टर ३२०, ३३२ (देखिए

सिस्टर निवेदिता)

निष्काम कर्म १५४, प्रेम तत्त्व १५४

नीग्रो ८९, १०९, जाति ८८

'नेजरय के पैगम्बर' ३८३

'नेति-नेति' २२७, ३२८

नेपाल ३४४

नेपुल्स ३८८, ३९३-९६, ४००

नैयायिक १६०

न्याय २२०

न्यूयार्क ३१८, ३५६, ३६८, ३८०,

३९६, ४०१

पचनद २५८

पचलक्षण २१

पजाव २१८, २४८, ३४४

पतजलि १२७, २२६, २८६, २९७-९८

पम्पियाई ४०५

परपरा (सांस्कृतिक) ५

परमात्म तत्त्व २५

परमकुडी ५२, निवासी ५२

परमहंस ४१ (देखिए रामकृष्ण)

'परम पवित्र' ४०६

परमात्मा १४६, २२८, २३६, २६६,

३०६-७, ३१४, ३५२, सगुण और

निर्गुण २७

परिणामवाद २९७

'पर्वत पर उपदेश' ३७९

पहाड, कैपिटोलाइन ६, हिमालय ४२,

६९, ११६ १२ १६४ १७२  
 ७३ १७९ २१७ २४२, २४४  
 २७३ २८६ ३५४ ३६३ ३९  
 ३९२ (पा टि) २४१  
 पाटि फेसबुक मैक्सिमस ११२  
 पाइनामोरस ३२४  
 पाणिनि २२१  
 पातञ्जलयोगसूत्र २९७ (पा टि) २२६  
 'पार्थिवान' ४ ५  
 पांडे हरिमाण २४६  
 पाम्बल ३४  
 पातल डॉपसन २९७ ३८१ (रेखिए  
 डॉपसन)  
 पार्थिवी २४३  
 पारसिया २५३  
 पाश्चात्य एन १५७ जय्यु १ १  
 बालि ४७ ८१ कर्शन ४४  
 बार्थनिक २९६ बेषा १७-८,  
 ३५, ४१ ४४ ५२, ६ ७४ ७६,  
 ८६ ९६ ९८ १ ३ १ ८ १९८  
 ९९, २ १ २३ २९२ ३३३  
 ३३६ ३४१ ३७७ मायो २६६  
 बिचारों २७७ बिद्यान् ३४६-  
 ४७ बिज्जों ३८९ सन्म्यता ४६,  
 ३३१  
 पाश्चात्यवादी १७१  
 पासुपय १८१  
 'पाशावकल' ५६  
 पी कुमारस्वामी ४  
 पुराण १२, २१ २, ७ १२५ २६ १३३,  
 १३८ १५ १७२, २१७ २२५,  
 २७९ २८१ ३४५, ४६ ३९९  
 पुनर्वत्सवाह २२५, ३४६  
 पुर्तगामी १७ १८६  
 पुण्डरीकानुसमान ११  
 पुरातन पुस्त २७  
 पुरोहित-संपन्न ३ २  
 पूजा ४ ७  
 पेशमल बालासिया ३५९ ६ ३७७  
 ३८१ ३८७ ३८९ ३९७ (रेखिए

बालासिया पेशमल)  
 पैरिया (बाब्यास) ८९, ९४ १ ९-७  
 ११४  
 पोप (पा टि) ११२  
 पोर्न सदि ४ ४  
 पीरपिक १२७ परंपराएँ १४२  
 'प्योरिटी काप्रेस' ३६४  
 प्लेटी ३२४  
 प्लेटोवादियों ३२४  
 'प्रकृति का परिवर्तन' २२७  
 प्रक्षेप ११ २९१  
 प्रच्छन्न बीज २१८  
 'प्रत्यक्षानुभूति' २६८  
 प्रत्यक्षभाव ५३  
 प्रकय २३  
 प्रकृति मार्ग ४६  
 प्रज्ञाव २४८, २६२, २७८  
 प्राचीन संस्कृत १६४  
 प्राण २९१  
 प्रोटेस्टेंट ११२  
 प्रोटेस्टेंट डॉपसन २६५, ३६९ ३७  
 ३७६-७७ ३७९ ३८२ (रेखिए  
 पास डॉपसन)  
 प्रेम २८४  
 प्रेममन्त्रि (बहिनुकी) १५४  
 प्रिंस रीजेन्ट सिमोपोल ४ ४  
 छव्युसन ४ ५  
 'छावर पोप' ४ ६  
 छारस ९, ३८ १६९, १७५  
 छारसियों १९  
 छारसी ३२५ सापा ९  
 'छिगिन्स' २७२  
 छाय ७ ८५  
 छिंदीसी ९  
 छामिच ३८  
 छीकनसम्प ३९४ ३९६  
 छीमिच ३५३ (रेखिए छीमिच सेनेट)  
 छीमिच सेनेट ३५२, ३९६  
 'छीमोरल हॉल' ४

वग देश २१७

वगला भाषा ३३९, लिपि ३३०

वगाल १०६-७, ११९, १६०, १६२,  
२००, २१४, २१७-१८, २२७,  
२३१, २३६, ३३०, ३३५, ३३९,  
२४४, ४०५

वगाल, पूर्वी ३३९

वगाली १४, २०६, ३३३

वदरिकाश्रम २४२

वम्बई २३५, २५६, ३८९, ४०२

वरोज, डॉ० ३८३, ४०६

वलची १५९

'वलिष्ठ की अतिजीविता' १८९

वल्लभाचार्य २८७, सप्रदाय २३५

बुद्ध ७३, ११८, १४४-४५, १५८,

१७४, १८४, २३५, २९८, ३०५,

३१९, ३३१ (देखिए बुद्धदेव)

बुद्धदेव ११२, १४६, १४८, १६०

बुद्धि २९३-९४

बृहदारण्यक (पा० टि०) १४६

बृहदारण्यकोपनिषद् ३०८, (पा० टि०)

११६

वेबिलोन ३२६

वेबिलोनियन ८२, ३२६

वोघायन २१८, भाष्य २१९

वोनियो (पा० टि०) १६९

वेल्लुड मठ ३३६

बोस्टन ३६८

बैकुण्ठ ३०३

बैरोज ७९, ११२ (देखिए वरोज)

बैरेनो ४९

बौद्ध २४, ५६, ६३, १५९, २२५,

३००-६, ३८०, दर्शनो २९५,

धर्म १११-१२, १२४, १५८-५९,

२४८, २७९, ३३७, ३४६, मंदिर

१५, १५८

ब्रह्म २३, ३०७, ३१२

ब्रह्मचर्य आश्रम ३३

ब्रह्मचारी १५१

ब्रह्मज्ञानी १४९

ब्रह्म-दर्शन १३१

ब्रह्मपुत्र ११६

'ब्रह्मवादिन्' (पत्रिका) ३५८-६०, ३६६,  
३८९, ३९७, ३९९, ४००-१

ब्रह्मसूत्रो १५२

ब्रह्मा २९२, ३८०

ब्रह्माण्ड १२, २८-९

ब्रह्माण्ड तत्त्व २५, १४१, २८८

ब्रह्माण्ड विज्ञान ११, २१

बाल गगाधर तिलक ३६५

ब्राह्मण ७०, ८९, ९२-४, १५८-६०,

१६२, १८९-९०, १९२, १९८,

२०७, २३१, ३०४, ३२५, ३४४,

३४८, ३५१, ३८६, ३९९, जाति

१८९-९०, धर्म १५८, युग ३८७

ब्राह्म समाज १०३

ब्राह्म समाजियो ३९७

ब्रायन ३८७

ब्रिटिश जाति १८७, ३३१, भूमि २०४;

शासन १८७, साम्राज्य ३५२

भक्ति २४८, २५७, अहैतुकी २७७,  
३५४

भक्तिमार्ग २४८

भक्तिवाद २७८

भगवत्प्रेम १५२

भगवद्गीता १५१ (देखिए गीता)

भर्तृहरि १२१-२२

भवितव्यतावाद २४

भागवत १४९, १७५

भागवतकार १५०

भाग्यवाद ३५३

भारत १२-३, १६, १९-२०, २८,

३०, ३३, ३५-६, ४३, ४५-८, ५०-

१, ५४-७, ६६-८, ७५-६, ८१-३,

१०३-५, ११०-११, ११३, ११६-

१८, १२०-२१, १२४-२५, १२७-

३४, १३६, १३८, १४६, १४९-

५२, १५४, १५६, १५८-६१,

१६५-६७, १६९-७१, १७३,

१७७ २२१ २२, २२५, २२७-  
 २९ २३९ २४१ २४५, २५  
 २५७ २६१ २६४ २६८-७२  
 २७४ २७६, २८१ २८३-८४  
 २८६-८८ २९५, २९९ ३ ५,  
 ३१४ ३१७ ३१९ ३३ ३३२  
 ३३४ ३५, ३५४ ३५६, ३५९  
 ६ ३६६ ३६८ ३७ ३७७  
 ३७९-८ ३८३ ३८८-८९, ३९१  
 ९८ ३९८ ४ १ ४ ५६ पश्चिम  
 ३७८ (वेष्टिण मारुतवर्ष) मूमि  
 २१५, २१६ माता १९३  
 मारुतवर्ष ३ ७ २ ३५, ३७ ४१ ४३  
 ४७ ४९५ ५२ ५४ ५६ ७४  
 ८४ ९४ ९६ ९९, १ ६ ११५,  
 २४२-४३ २५१ २६८ ६९ २७३  
 २७५, २८१-८२ ३३१ ३३ ३४४  
 ३८०-८१ ३८३  
 मारुतवासी १३ ४ ४६ ८६ १ ५,  
 ३२९ ३३१ ३३३ ३८३  
 भारतीय अनुसंधान ३७८ आदर्श १५  
 आर्यो १६४ २४१ इतिहास ३५  
 गणपना २८६ जगता १ जीवम  
 १ वर्धन ६१ ८५ वर्म १४८  
 नागियों १५ पश्चिमार्थो ३ ९  
 भाव १३५ मूमि ५३ मम १८३  
 २८६ मनोविज्ञान २२६ महर्षियों  
 १७८ मस्तिष्क १६४ राष्ट्र  
 १११ विचार १४५, ३२४ (आध्या  
 त्मिक) ३३०-३५ विज्ञान १६४  
 विवाह २९९ वेदान्ती ३१३  
 विषय १६४ स्थियों १११  
 भाषा भर्षणी १ ३८९ प्राविद्ध  
 १८५ बनका ३३ दिल्ली  
 २४६  
 भाषा विज्ञान ३०५  
 भाषा वैज्ञानिक १८५  
 भाष्यकार १५५, १७४  
 धर्म गग ४५  
 भोग ३०६

भौतिक प्रकृति ४५  
 भौतिकवाद ५, १७ ५३ ४ ५९ ६  
 ६२ ३ ६६ ६९ ८१ ११६  
 १७१-७२, २७१-७२  
 भौतिकवादी २५, ५३ ४ ६ ६३  
 ६९ ११६ १९७  
 भौतिक विकासवाद २९७  
 भौतिक विज्ञान २९७  
 मंत्र इत्या १७७  
 मन्ना (नगर) १५  
 मन्मथार २६१ ३९६ ९७  
 मणि अय्यर ३६  
 'मवर वर्ष' ४ ६  
 मनुवा ६६-७  
 महाघ ९८ ९, १ २, १ ७ १११  
 १४ १२४ १२७ १४९ १६३  
 १७१ १७८, १८५, १९४ ९६,  
 १९८ २३ २७७ ३५६ ३८८  
 ८९ ३९१ ३९७ ४ ४०२,  
 ४ ६-७  
 'महास मेक' ३९९  
 मध्य अफ्रीका ८८  
 मध्य मूमि २१७  
 मध्याचार्य २१७ २८७-८८ ३२८-२९  
 मन २९३ ९४  
 मनु ४८ १६६ १९ २५७ २७३  
 मनुस्मृति १९ २५२ (पा टि )  
 ४८  
 मनोविज्ञान २२६ २९३  
 मन्वाधि पुराणो २५४ स्मृतियों १४३  
 २२४  
 मलय द्वीप ११८  
 महाभारत लंघ (पा टि ) २५६  
 महाभारत ३२ ९३ १८९  
 महाभाष्य २२१  
 महाभाषा २३३  
 'महिम्न स्तीव' १४  
 महेश्वर बाबु ४ २ ३  
 मनोना ३

- मातृभूमि १५, ४२, ४९, ५४, ९५, १०३,  
 २०३, २१२, २२५, २३५, २४१  
 मारगरेट, नोबल (कुमारी) ३३२  
 (देखिए निवेदिता)  
 मालावार १८७  
 मालावारी ८७  
 माया २२, २२७, २३३, २३८, २७९,  
 ३००, ३१०, ३१३, ३१९, ३३५,  
 ३८५  
 मायावाद १९१, २१८, २३२-३३  
 मिल्टन १२९, २२२  
 मिस मूलर ३३२  
 मित्र ३२४, ३२६  
 मुडकोपनिषद् २८९, ३०१, (पा०टि०)  
 १३०, २२३, २६९  
 मुक्ति २८, ३६, १५५, १७७, २२६,  
 २३३, (उपनिषदों के मूल मंत्र) ३६  
 मुगल १८०  
 मुमुक्षुत्व ३४१  
 मुसलमान १५, १९, ६३, ११४, १६०,  
 १८७, २५३, २५६, ३२२, ३३४  
 मुसलमानी १८८  
 मुहम्मद ३१, ६०, १४४-४५, २२०  
 मुहम्मद रसूलल्ला २२१  
 मुहम्मद साहब (पा० टि०) १५ (देखिए  
 मुहम्मद)  
 मूर्ति पूजा १५२, १५८  
 मूल तत्त्व ४, १८  
 मूलर, मिस ३३२, ३५२, ३६४-६६,  
 ३७७-७८, ३८८  
 मूल सत्य १५  
 मुसा के दम ईश्वरादेश २५३  
 मेवुल ३९३  
 मेवेल ३८०  
 मेरी ११२, ३७४-७६, ३८४, ३९१  
 मेरी हेल्, कुमारी ३७४, ३८४, ४०४,  
 ४०६  
 मेमर्स किंग-किंग एंड कंपनी ४०२  
 मेमर्स प्रिण्डले कंपनी ३५१  
 मेककिडले ३७५  
 मैक्समूलर २३२, ३२६, ३५८-५९,  
 ३६१, ३६४, ३७७, ३७९, ३८१-  
 ८२, ३९९  
 मैवेल ३९४  
 मैसूर ३९९  
 मोलोक १२, ८२  
 'मोलोक याह्वे' १३, ८२  
 मोरिया १०५  
 'मोलोक याव' ८२  
 मोहिनीमोहन चट्टोपाध्याय ३३२  
 यजुर्वेद (पा० टि०) ३४५, ३५१  
 यथार्थवादी ३१०  
 यम २१३, २२४ (देखिए यमराज)  
 यमराज २८६  
 यहूदी १३, २८, ८२, ११३, २५३,  
 २८१, ३५१, जाति १३, धर्म ३४४  
 'यस० यस० मोम्बासा' ४०७  
 'याकी' ३६८  
 याग-यज्ञ २०, २२, १२४, ३४६  
 याज्ञवल्क्य २२४  
 याज्ञवल्क्यादि संहिताओं १४३  
 यास्क २५१  
 युग, कलि २१, ३२, ३८, ६६, त्रेता २१,  
 सत्य २१, ७०  
 युक्तिवाद ३१४  
 युक्तिवादी ३०२  
 युधिष्ठिर १५२  
 यूनान ६, ९, ६८, ११२-१३, १६४-  
 ६५, २१५, २३१, ४०५  
 यूनानी ८१, ११८, २५६, ३२४,  
 (पा० टि०) २७२, जाति ८१,  
 १६४, धर्म ३४४, मेवा ८१,  
 मम्यता ३३१, साहित्य १०  
 यूरेगियन जाति ३२०  
 यूरोप ९, ४१, ५५, ७३, ७५-६, ८५,  
 ८७, ९३, १००-१, ११२, ११५,  
 १६२, १६५, १६७-६८, २०५,  
 २९०, ३००, ३२२ २३, ३२५,  
 ३४२, ३८१, ४०४-५, वाद ६९

यूरोपियन १ १९ ६९ ८७ ४ ४  
 यूरोपीय २२२ सम्मता ४७  
 यौय १९४ ३७६, ३९८ छात्र ३३३  
 यौवानन्द ३८

रबीयुन १५१ २९८, ४ ४  
 रवि ३४  
 रासायन २९६, ४ २, ४ ७ (रेखिए  
 ब्रह्मानन्द स्वामी)  
 'राजयोग' ३४९ ३५६ ३७७ ३८२,  
 ३८८, ४ १

राजा राममोहन राय २१  
 राजा रामकान्तदेव बहादुर २ ०  
 राजा २५५  
 राम ३४ १ ८, १४९, ५ १५७  
 २४९ (रेखिए रामचंद्र)  
 रामचंद्र ४१

रामकृष्ण १६२, ३४७ ३५९ ३६१  
 ३६८ ३७७ ३८२, ३८९ ३९७  
 परमहंस ३, ४१ ११३ १६१  
 २ १ २ ३-७ २ ९ २३५ ३६  
 २३९, २४७ २५८

रामकृष्णानन्द ३५१ ३६८ ४ ३  
 (रेखिए सति)

रामचरित १५  
 रामबनाल बाबू ३६८  
 रामनाथपुरम् ४१  
 रामनाथ ३४ ३७ ४१ ४३ ६७ ४ ६  
 रामराज्य ३८५

राम बाबू ३९७  
 रामानुज ११२, ११४ १३४ १६  
 १७५, १७८, १८४ २१८ १९  
 २२७-२८ २३५, २३८ ३९, २८७-  
 ८९ (रेखिए रामानुजाचार्य)

रामानुजाचार्य २१७ ३२८ २९  
 रामेश्वरम् ३८ ४१  
 रामसिद्धी २४८  
 राष्ट्रीय भाषायां १५९, जीवम १ ८  
 रिश्ते गार्हस्थ्य ३०३-७४ ३७८ ३८१,  
 ३९९

रिपब्लिक बल ८  
 रूय १५८, ३७७ ३९३ निवासी १५८  
 रूखी पुरातत्त्ववेत्ता १५८  
 रेड इन्डियनों ३६३  
 रेडिकल बल ८  
 रोम ९ ११२ ३ ० ३५२, ३९३-  
 ९४ ३९६, ४०४-५  
 रोमन कैथोलिक २५३ भाति १६९  
 रीपब्लिकन ८

रुका १ (रेखिए मीलका)  
 रुकावासी ४ ५  
 रुदमी ४ ३  
 रुम्मीपति २४९  
 रुमिमा २२६  
 'रुकाक जईतवादी' ३७२  
 रुदन २ १, ३२ ३५२-५३,  
 ३५५, ३५७ ३५९ ३७ ३७२  
 ३७७-७८, ३८१-८४ ३८९ ९६,  
 ३९३ ९४ ३९६ ९९, ४ ३-६

'साय मीन धीन एंड कंपनी' ३५६  
 साँक कुमारी ४ ५  
 साँक नकाश ३१७  
 साला बरीदा २४३ ३५७ ३९  
 साहीर २८५, ३१९-२  
 सेनेट श्रीमती ३५६  
 सेक स्पुफनि ३६८ (रेखिए स्पुफनि)

सेट ब्रूस ३५६  
 सेरी चतुष्टय २३  
 सेरीभम धर्म २३ विभाग २३  
 सेरिमर साहब ९  
 'सेरिप' १९४  
 सेरु १२६, ३२५, ३२७  
 साधिग्य नीति ४४-५  
 साधिष्मबाह ९९  
 सात्त्विकता ७१ १४८  
 साह, अजेय १११ बरत २८ ९,  
 ५९, ८५, १२५-२६, १३७  
 १४९, १७४-७५, २१८ २३९

- २६८, २८७-८८, २९४-९५, ३०३,  
३०५, ३०७, ३०९, ३१३-१८,  
३२१-२३, ३२८, ३७२, ३९९,  
ऊर्जासिंघारण ११, एकेश्वर ८२,  
८६, १२६, १४९, १७४, २३९,  
२६८, २८८-८९, २९५, २९९,  
३००-१, विशिष्टाद्वैत १२६, २२८,  
२३९, ३९९, शुद्धाद्वैत २१५, सप्ता  
२२५
- वानप्रस्थ ४६  
वानप्रस्थी २०  
वामाचार ३४६, तत्र २३१, ग्रथ  
२३२  
वालडो (कुमारी) ३६४  
वाल्मीकि १५०  
वाशिगटन ३१९  
वाराणसी २१८  
विकासवाद ११  
विज्ञानवाद २९५  
वितडावाद ३२१  
विद्यादान ३२  
विनय कृष्णदेव बहादुर २००  
विम्बलहन ३७-७४, ३७८, ३८१-३८२,  
३८९, ३९९  
'विविधता मे एकता' ९८  
विवेकचूडामणि २३६, ३१२, ३४१  
विवेकानन्द ३, १७, ४१, ५२, ६०,  
१६३, २०० (देखिए नरेन्द्र)  
विशिष्टाद्वैत ३२८  
विशिष्टाद्वैतवाद १२६, २२८, २३९,  
३९९  
विशिष्टाद्वैतवादी २०, ८७, १२४-  
२५, १८१, २१३, २१५-१६, २१८,  
३३३, ३४३  
विशुद्धाद्वैतवादी २१७  
विश्वधर्म ४१, २४५  
विश्वधनुत्व-भावना ३४  
विश्व ब्रह्माण्ड १६३, २८५  
विश्वामित्र ३३३  
'विषयान् विषवत् त्यज' ४५
- विष्णु १३, २१८, २७३, ३४०  
'वीनस डी मेडिसी' ४०५  
वृन्दावन १५१-५२, १५४, विहारी  
१५४  
वेद ९, १८, २०, ७०, १०६, १२४-  
२६, १२८, १४४, १४९-५०,  
१७२, १७४-७६, १८८, २२५,  
२३१-३२, २३४, २३६-३७, २६१,  
२८५-८६, ३००, ३०५, ३१२,  
३२५, ३४४-४६, ३६४  
वेद अर्चना ३४५, ज्ञान ३४५;  
पाठ १४०, पाठी ९३, वाक्य  
२२४  
वेद व्यास १५४, १६९ (देखिए व्यास)  
वेदान्त ९, ११, १७-२१, २३, २८,  
३०, ५४, ५८, ७०-७३, ७९-८१,  
८५, ९०-१, ९४, ९७-८, ११२,  
११५, १२५-२६, १४१, १४५,  
१४८, १५९, १६५, १७१-७४,  
२२९, २३२, २५७, २८५-८८,  
२९५, २९७, ३१८-१९, ३२४,  
३४६, ३६७-६८, ३७८, ३८२,  
३८६, ३९२, ३९८-९९, ४०२;  
उसका अर्थ (वेदो का अन्तिम भाग,  
वेदो का चरम लक्ष्य) २०  
वेदान्त दर्शन २०१, २०४, २१५-१६,  
२१८, २२०, ३९९, वर्म २४,  
३३४, प्रचार ३८२, भाष्य २१९,  
साहित्य २७७, सूत्र २२०  
वेदान्तवादी ८८  
वेदान्त सम्बन्धी ८२  
वेदान्ताचार्य २०१  
वेदान्तियो २२०  
वेदान्ती १२५,  
वेस्ट मिनिस्टर ३८७-८८, ३९३-९४  
३९४, ३९७  
वेदोक्त १७, १४७-४८  
वैदिक १९, १२५, प्राचीन २२१,  
यज्ञो १५८ ज्ञान २४२, वर्म २४२,  
व्याकरण २२१



विश्वकाम्य साहित्य

का कारण २३४ और व्यक्ति  
२३६ पश्चिमी २८२ पिछड़े  
हुए और पश्चिम के सोप २४२  
प्रत्येक उसकी एक विनिष्ठा  
२५ भारतीय संसार के प्रति  
उनका सहित २३६ यूरोपीय २५५  
राष्ट्रीय क्षमता २३४ जीवन २६५  
पठन उसका अक्षयी कारण २५८  
पाप २६ भावना कोपी अंश  
विद्वान ३९ रोग ३७३ विचार  
की धारा २३७

रासायनिक परिवर्तन १४२

रिजसे मॉनर ३७३

रीडिंग ३११ १२ ३२४ ३२६, ३४६

४८ ३५१-५२ ३५५, ३७९ ३९६

रु ११

'रूम' २९

रेषक ८५, १ १ १२०-२१ और  
पूरक ९२ -रूम्या ९५

रोम २९३

रोमन कौबोलिक २५१

रघू लिख ४०५

रुका १७८, ३१३ वहाँ का बुद्धमय  
२४९

रुका मिस्टर २५९ भी २८१

रुका मानवीय १३

रुका मीपति ३७

रुका उसकी सिद्धि और मुख्य ९६

रुका सखिबालक १ २ -स्वयं

७२ सर्वोच्च ५३

रुका ८१

रुका मींस ३८९

रुका १४७ २३ २३६ ३७ २४२

२६२ २९ ३ ४ ३१५, ३३

३३२ ३३४ ३४२ ४३ ३६६ ४७

३५२ ३५५ ५६, ३५८ ३६ ६३

३ २ ४ २ ४ ५९

'अन्तर्गत सीडन' २३६

कोक' कुमारी ३६५ बहन ३९६

'काई थी रामकृष्ण' ३२१

कांस एमिसिस १९७

काहोर ३६१

कीका २६८

कूबर १ ३

कयट एक ३ ३ एक एक भीमती

३४८ परिवार ३९ छाहर

३३ फ्रांसिस ३३२ थी २८८

२९ ३४२ ३६३ भीमती ३४८

३६४ ३८७

कैण्डसुवर्ग २८५, २९ २९२ थी

२७७-७८

कराहपुराण १

कदम ११

कस्तु अतीन्द्रिय १४७ अमूर्त १५८

अस्तित्वहीन १५३ उच्च स्तर और

उसका मापदण्ड १८९ उसका

संस्कार और प्रतिक्रिया १३२

उसका सञ्चा अर्थ १२९ उसका

स्वभाव २२ उसकी बहुविध

अभिव्यक्ति १५१ एक समता ही

१८१ एक समय एक ही १५३

और जाकास ११७ और मन ११

-निष्ठ पक्ष १४७ प्रत्येक उसमें

विकास की क्षमता २५६ प्रत्येक

पाठता की श्रृंखला १३६ प्रत्येक

मौलिक १३५ बाह्य ६६ १२६

१३८ २२ बाह्य उसका

अस्तित्व १३२ बाह्य और बीच की

कस्तु १३३ बाहर की ओर उसका

कारण १३३ सजाठ से उत्पन्न

५८ साधारण ५३ स्वयं

सूक्ष्म उपकरण से निर्मित १ ६

वास्तव्य भाव ७

वाक अद्वैत २४६ २६ ३३६

३४८ ३८४ जाबसे १३३

हज्जा ३४१ कमविकास ३४१

द्वैत १९१ ३३६ ३४८ यथार्थ

१३३ विकास २२

वामाचार ३१०, साधना ४००  
 वाराणसी ३६१  
 'वाल्डोर्फ-होटल' २९५  
 वाशिंगटन २३८, हाल १२२, १३१  
 वामना ३४१, अभिव्यक्ति का मूल  
 कारण ३४१, सामूहिक ४  
 विकास, उमकी पूरी प्रक्रिया १८१,  
 पुरातन का २५४  
 विकासवाद २२०  
 विक्टोरिया स्ट्रीट २४४  
 विचार, अन्तर्मुखी २३६, अशुभ १०३,  
 आकाश-तत्त्व में परिणत १७०,  
 आहार में उत्पन्न १५४, उसका  
 आधार ८१, उमके ससार में  
 परिवर्तन २३३, एक प्रकार के  
 चित्र ९१, और ज्ञान ११८,  
 जनतांत्रिक २४०, -तरंग २९,  
 १०३, १३९, -नीव्रता १३४,  
 पवित्र, उसका अनुसरण ९३,  
 प्रत्येक, उसकी तीन अवस्थाएँ ९८,  
 प्राण का स्पन्दन ९८, -बुद्धि  
 २६, -शक्ति ५, १०२, १५१,  
 -संक्रमण १६९, साम्प्रदायिक  
 ३१८, स्वतंत्र १७१  
 विजय गोस्वामी ३१९  
 विज्ञान, आधुनिक १९३, आध्यात्मिक  
 १९१, इन्द्रियगोचर १४२,  
 उसका काम १७७, और ज्ञान  
 १३६, और मनोवैज्ञानिक धारणा  
 १९३, पार्थिव ११४, भौतिक  
 १४७, १९२, २२१, २३६,  
 ३४१, रासायनिक १४७, सर्व-  
 श्रेष्ठ ११४, स्वतः प्रमाण तथा  
 स्वयंसिद्ध १८०  
 वितण्डावाद १४३  
 विद्या, अध्यात्म ३८३, ३९५, अपरा  
 ६०, परा ६०, -बुद्धि ३५४  
 विद्याभ्यास ३६०  
 विद्युत् लोक ३८५  
 विधवा-विवाह २६२

विधान, नये युग का २५५  
 विधि, अवैज्ञानिक १२४, वैज्ञानिक  
 १२४, सार्वभौम १२४  
 विभिन्नता और एकत्व १५३  
 विमला ३०७-८  
 विमोक ३८-९ (देखिए इन्द्रिय-निग्रह)  
 'विरह', उसकी परिभाषा ५४  
 विलियम स्टारगीज, श्रीमती ३३०  
 विलियम हूटर, सर २४४  
 विलियम हैमिल्टन, सर १०१  
 विविधता, उसमें एकता की उपलब्धि  
 १९०  
 विवेक, उसका अर्थ ३८, २२७  
 विवेकचूडामणि २१ (पा० टि०), २३  
 (पा० टि०), २५ (पा० टि०)  
 विवेकानन्द, स्वामी ७९, १२२,  
 १४७, २२५-२६, २३६, २५८,  
 २६३, २६९, २७६-८०, २८४-  
 ८८, २९०, २९२-९३, २९५,  
 २९७, ३०२-५, ३१२, ३१४-  
 -१५, ३२५, ३२८-२९, ३३२,  
 ३३४-३५, ३३८, ३४२-४४,  
 ३४६-४७, ३४९, ३५१-५२,  
 ३५५-५९, ३६२-६६, ३६८-  
 ६९, ३७१, ३७३, ३७५-७७,  
 ३८०, ३८२-८३, ३८६-८८,  
 ३९०-९६, ४०३-४, ४०६-७,  
 उनका आदर्श ४०७-८, उनका  
 उपदेश, धर्म-विरोधी नहीं २२९,  
 उनका निजी अनुभव ३३६, उनका  
 मूलमंत्र ३४८, उनका सत्य, ईश्वर,  
 देश और समग्र विश्व ३३९, उनका  
 सरल और प्रेमपूर्ण ढंग २३५,  
 उनकी सफलता का कारण ३९१,  
 उनके कार्य की गूढ़ता ३८६, उनके  
 दर्शन का मूल तत्त्व २३०, उन्हें  
 राजनीति में विश्वास नहीं ३४६-  
 ४७, सत्य पर उनकी श्रद्धा २७६  
 विशिष्टाद्वैत २८३, २९५  
 विशिष्टाद्वैतवादी, उनका कथन ३३

विद्वत् अंतिम रूप से गिण्या २४५  
 -इतिहास १९२ उसका चिन्तन  
 और ईश्वर ५६ उसका निवृत्तन  
 २ ९ उसका निर्माण २०८  
 उसका निर्माण सुजन की समष्टि  
 से १५४ उसका विभाजन १५१  
 उसकी आत्मा ६ उसकी प्रत्येक  
 वस्तु, शरीर सङ्घ १९४ उसकी  
 व्याख्या २ ७ उसके प्रकृत्य एवं  
 प्रकृति की तुलना १९४ उसमें  
 इच्छा का अस्तित्व २ ८ उसमें  
 धर्म के विभिन्न रूप १८७ उसमें  
 वस्तु का अध्ययन १५६ उसमें  
 शरीर और विभिन्न दृष्टिकोण  
 १५२ और बुद्धि २ ८ और  
 किन्तु १५५ और व्यक्ति २४५  
 कल्पना मात्र २४५ तथा ईश्वर  
 को समझने का उपाय २ ७  
 -धर्म-महासभा २२५, २३१  
 २३७ -अम्बुत्व २३४ -अम्बुत्व  
 उसकी बात का अधिकार ५१  
 ब्रह्ममय २४ -ब्रह्माण्ड २९, ७३  
 ३३१ -ब्रह्माण्ड उसकी उत्पत्ति  
 १ मगधालू का खेल ६९ -भाव  
 १३७ -मन १५४ महान् पुस्तक  
 १९८ मैं हूँ ९१ वास्तव में एक  
 १८१ विविधता में एकत्व का  
 उदाहरण १५२ व्यक्त १७४  
 -व्यक्ति का शरीर ९१ -व्यापी  
 चेतना उसकी अभिव्यक्ति ३४१  
 -शक्ति ३६८ संपूर्ण एक  
 ऊर्जासूत्र १५८ सहीम भाषा में  
 लिखा नवीम मात्र ६८  
 विश्वात्मा १२ और ईश्वर तथा  
 विश्व १२ समुद्र ३८५  
 विश्व ज्ञान और धारणा १३ -मौन  
 ४६ ४९ -वासना ११३  
 विष्णु-दृष्टि ३३  
 विष्णुपुराण ८ (पा टि) ५३  
 (पा टि)

बुन्दावन ७३  
 वेद ३ २१ १४३ २४४ २६३  
 २६७ ३१ अगति और निर्य  
 २४६ अथर्व ६ २७६ उनके  
 द्वारा नियम स्वामी और अपरि  
 वर्तनशील २४६ उनमें निहित  
 ईश्वी शरीर ३४६ उसका विज्ञान  
 १३६ उसका सबसे प्राचीन भाग  
 २४४ उसकी प्रामाणिकता उपा के  
 लिए २५४ ऋक ६ १९५  
 (पा टि) ३२८ ३३८ और  
 वेदान्त ३२ यजु ६ साम ६  
 वेदान्त ३४ १९१ २११ २१५  
 २१७ २२८ २४९ २५८ २६  
 २८७ ३३४ ३५ ३७४ ३७७  
 ३९ ४ ३-४ उसका अर्थ  
 २४४ उसका विज्ञान १३६  
 उसके अनुसार चेतना २१५  
 उसके बिना धर्म अन्वित्वात्  
 २५१ उसमें व्यापारिक आचार  
 २५२ उसमें समग्र धर्म २८३  
 -तत्त्व २२७ वर्धन २४३ २८७  
 वर्धन उसके तीन भाग २९५  
 वर्धन तीन स्तर में २८३ धर्म  
 उसका अर्थ २८३ धर्म उनाशन  
 ३६ -भाष्यकार ६ धारण २२७  
 धर्म धर्म का बौद्धिक धार २५१  
 धारणा-पद्धति का अमूर्त विज्ञान  
 २८८ -सुख ९ ३८  
 'वेदान्त एण्ड दि वेस्ट' १२२  
 वेदान्तशास्त्रीसङ्घ अाकर भाष्य ३२७  
 'वेदान्तवाद' २८  
 वेदान्त शीताश्री श्रीष्ठ राजन की-  
 श्रौतिया' १२२  
 वेदान्ती २१ २१२ २५१ २९८  
 आदर्श २५६  
 वेदवेदिया राजन २३६  
 वेदो तीनसप्त ३८८  
 वेस्ट मिनिस्टर मन्ड २९७  
 वैज्ञानिक अनुसन्धान १९२ अथवा

११२, आधार पर अतीन्द्रिय घटना १४७, आविष्कार १९३, क्रिया, सामान्य इन्द्रियगोचर १४९, जानकारी और व्यावहारिक उपयोग ११२, ज्ञान १९०, ३१६, धर्म १४३, पद्धति और ध्यान १३४, प्रतिभा, उसकी आवश्यकता ४०७, प्रदर्शन १४७-४८, प्रदर्शन, उसका अर्थ और खण्डन १४७-४८, रीति १३४, विधि १२४, विषय १४८, व्याख्या १४८, सत्य १९१  
 वैदान्तिक, प्राण ३८३, ब्रह्माण्ड-विज्ञान ३८४, सिद्धान्त ३८४  
 वैदिक अनुष्ठान, उसके लिए पत्नी आवश्यक २६६, -अश्वमेघ यज्ञानुष्ठान ३०९, घर्मावलम्बी ४०, मत्र, उनके प्रति विश्वास २४६, मत्र, उसका पाठ, अर्थ-सहित, महत्त्वपूर्ण २४६, वाणी २४५, शब्द की व्युत्पत्ति और अर्थ ६०, सूक्त ३६८  
 वैयक्तिक चुबक १७१  
 वैराग्य ३२६, भक्तियोगी का स्वाभाविक ४६, और ज्ञानयोगी ४५, और विनय ३०६, साधना ४७  
 वैषम्यावस्था ३८  
 व्यक्ति, अनुभूतिसम्पन्न ३३८, अन्त-स्फुरणसम्पन्न १३४, अपढ और ईश्वर-धारणा २६, उसके लिए उपयुक्त आसन ११०, उसमें धर्म-ग्रहण की तैयारी और गुरु-आगमन २४, उसे अपना उद्धार, स्वयं २८९, ऐतिहासिक २४७, और उसकी जीवन-शक्ति का स्रोत ३९५, और दान १२५, और धर्म ३५-६, और मृतात्मा १५९, और विश्व २४५, चमत्कारी १३४, तत्पर, कर्मठ ३३४, तथा सिद्धि १२४, धर्मान्व ५, ३७४, निम्नतम, उससे भी सत्य की सीख २४८, पवित्रात्मा १०३,

प्रत्येक में शक्ति १२३, प्रत्येक, साक्षात् ब्रह्म २२९, प्राज्ञ ३०७, 'बलिष्ठ, द्रष्टिष्ठ' ४१, बुद्धिमान, उसका उद्देश्य २३९, मूढ १९, विचारवान ३३५, विचारशील २२८, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान १९८, सिद्धि के शिकार १२४  
 व्यक्तित्व, उसका विकास आवश्यक ८१, उसकी विशेषता १७२, एक सत्य १७२, और नेता १७१  
 व्यवसाय, उसके लिए मनोयोग की आवश्यकता १७९  
 व्यवस्था, उसके भीतर जीवनी-शक्ति २५४, सामाजिक और राजनीतिक भलेपन पर टिकी २३४  
 व्यवस्थापिका सस्था, उसका निर्माण २५५  
 व्यावहारिकता, दृष्टि के अनुरूप १६१  
 व्यायाम, उसका अर्थ १६५, मानसिक या शारीरिक १६५, वेगयुक्त, हानिकारक १६४  
 व्यास ७, उनका कथन १२, उनकी दर्शन-पद्धति २०४, -भाष्य ८ (पा० टि०), -सूत्र ४  
 वृमन, डॉ ३००  
 शकर २४५, २५६, आचार्य १२, भगवान् ६ (देखिए शकराचार्य)  
 शकर पाण्डुरंग ३८८  
 शकरलाल, मा० ३११  
 शकराचार्य ३३, उनके मतानुसार आहार ३९, और आहार शब्द की व्याख्या ३९, भगवान् ३२  
 शक्ति, अणिमादि १२-३, आकर्षण १८, आकर्षण और विकर्षण की १९३, आध्यात्मिक २३, इच्छा ४२, ८३, ८९-९०, ईप्सित १६४, ईश्वरीय ४९, उच्च ९४, उनका निरापद मार्ग १००, उगता अधिष्ठान १७३, उसका परिणाम ११, ८,

उसका संबंध और पुनर्स्थापना  
 १९३ उसकी प्रकृतम अभिव्यक्ति  
 २२१ उसकी प्राप्ति १७ उसके  
 बिना बड़ पदार्थ नहीं १९६ एक  
 प्राण की विभिन्न अभिव्यक्ति  
 ११८ एक संभावना १५७ और  
 ऊर्जा ११७ और पदार्थ १९६  
 और विरहास ३६९ और मुख  
 १७६ काम ८९ केन्द्रापसारी  
 १९६ मूष २४८ चित् ३८५  
 बीजनी १५९ बीजनी और एका-  
 प्रता ८६ बीज ३३७ निम्नतम  
 १९३ नैतिकता और पवित्रता ही  
 २३४ प्रकाशवायिनी १८  
 प्रवक्तव्य, भीतर की ८५  
 प्रवाह ९ १ -प्रवाह उसका  
 नाम 'अम्ब' ८६ -प्रवाह, स्वस्थ  
 धारीरमे ८८ प्रेरक ६७ १८९  
 बोध ८३ मौक्तिक ३८४ मन  
 ९२ माह्वी ८९ मानसिक  
 ४२, १ ३ मानसिक उसका  
 नियंत्रण ८४ मौक्तिक, उनसे छतरा  
 १ मौक्तिक और काम-प्रवृत्ति  
 १ मरुप नहीं १ २ मरुप  
 १४ -संचार १८ २४ सबसे  
 अधिक सूक्ष्म में १७३  
 सर्वोच्च १९३ धारी सूक्ष्म में  
 १७३ सूक्ष्म और कारण १७४  
 सूक्ष्मतम बोध-समता की ११८  
 सूक्ष्म से सूक्ष्मतर और प्रकृति ११८  
 स्नायविक ९२

सब्ज आरमाभिभाषित ९५ और मास  
 में नित्य संबंध ३ -आस चित्त  
 को घटकानेवाका महावन २१  
 प्रतीकात्मक १२१ -बहु २९  
 मन के क्रियाशील बनने की विधि  
 १ ३

सुरजामति लक्ष्मी ५९  
 सूर्य ३ ७ ३११ ३१३-१४  
 ३२४ ३२६ ३५ ३५२, ३७८,

३८८ ३९३ ३९७ ३९९, ४ ९  
 (बेसिए सारवामन्द स्वामी)  
 धारीर १३, ५८ ९, ८२ १ ० ११९,  
 १५६, २६५, ३३९ ३४४  
 अन्तर की ऊपरी पर्य ११९  
 उनका पुनर्वर्णन प्राणायाम द्वारा  
 १२१ उसकी क्रिया का प्रभाव  
 मन पर ११ उसकी गति-विधि  
 १५१ उसकी प्रवृत्ति १ ३  
 उसकी सूक्ष्मतम क्रिया १११  
 उसके नाडीय प्रभाव का उद्भव  
 ९९ उसमें क्रियाशील प्राण का  
 नियंत्रण १५१ उसे चला करने  
 की शक्ति मनुष्य में १ २ उसे  
 बस में न करने से बुद्ध १९१  
 और हृच्छा की अभिव्यक्ति २ ८  
 और मन ४२, १ ७ १५ और  
 मन से परे ९२ और माता-पिता  
 १९९ और मानसिक अवस्था  
 ११ -क्रिया १५४ छोटा सा  
 वर्ष ९१ द्वारा मन तक पहुँचना  
 ११ द्वारा मन धारित १५१  
 बाह्य अभिव्यक्ति ११९ मन का  
 बाह्य रूप ९२ मनुष्य का प्रमुख  
 मान २३६ रूप २९ विज्ञान  
 आधुनिक १९७ २ २ विभिन्न  
 लता नहीं ११९ सूक्ष्म ३९, ११०-  
 ११ १९९ सूक्ष्म अपने विचार  
 द्वारा निमित्त २३९ स्तूक ११  
 १३ १९९ स्तूक बंध ११  
 २१३ स्वस्थ और इन्द्रिय-संबंध  
 की प्रतिबिम्बा ४२ हमार्य आदर्श  
 और मौक्तिक सहायता १६४  
 लधि ३ ७-८, ३१०-११ ३१३-  
 १४ २२४ २६, ३५ ३५९,  
 ३७८, ३८ ३८८, ४ १ ४ ८  
 (बेसिए रामकृष्णानन्द स्वामी)  
 धारक मान्य १३ (पा टि) ३२ ३  
 (पा टि) ३९ (पा टि)  
 ३२७



- शाक्त २८३  
 शाण्डिल्य ४, उनके 'अनुरक्ति' शब्द की व्याख्या ८, -सूत्र ८, ५४ (पा० टि०), ३२४, ३२७  
 शान्ति और प्रेम १८२, और सद्भावना २३२  
 शापेनहॉवर २३२, उनका कथन २०४, उनका विचार २०४, उनकी भविष्यवाणी २३७, और बौद्ध का इच्छावाद ३४१  
 शारीरिक अभ्यास, उसके तीन विभाग १०१, कष्ट, उसका परिहार १७४, परिवर्तन १२१, बल, नितान्त आवश्यक ४२  
 शालग्राम-शिला २६६  
 शास्ता ६७  
 शास्त्र, उसका उद्गम १७७, उसका कथन ७, १०, १३३, ३१६, उसका शब्दजाल २१, उसकी आत्मा का ज्ञान और गुरु २१, -ग्रन्थ ६७, प्राचीन २२८  
 शिकागो २२९, २३१, २३७, २५१, २५७, २७९-८०, २९३, २९६, ३०४, ३३०, ३४२, ३६५, ३९२, -वक्तृता ३६०, वहाँ की महासभा २५१  
 शिक्षक, आध्यात्मिक और लौकिक २६१  
 शिक्षा, उपयोगी २३, उसका अन्तर्-तम अंग, धर्म २६८, उसका आदर्श १५७, उसका ध्येय १७२, उसका रहस्य १७३, उसकी उपयोगिता १७३, और प्रगति, उसका उद्देश्य २२०, और विश्वविद्यालय २६२, और सस्कृति १३४, और सभ्यता ३४७, -दीक्षा २२७, ब्राह्मण-चाण्डाल, दोनों के लिए ३०९, -पद्धति ३७२, महान् २३३, महान् और जाति-भेद २३९, लोकोपयोगी २५२, सार्वजनिक ३७६  
 शिक्षाष्टक ३५ (पा० टि०), ७५ (पा० टि०)  
 शिव २९२, ३७८, भगवान् २५ 'शिव-सहिता' ३४०  
 शिवानन्द २८४  
 शिष्य २६३, उसका कर्तव्य ८१, उसकी परिभाषा १७, उसके लिए आवश्यक बातें २०, और अध्यवसाय २१, सच्चा १८  
 शुद्धि, उसकी साधना में त्याग, श्रेष्ठ ४५  
 शुभ २३, और अशुभ २९५, और अशुभ की भावना ३७२, और अशुभ विचार १०३, -विचार ३७१, -विचार और बीभत्सता की चरम सीमा ४०, विचार का उत्तराधिकारी १०३  
 शेक्सपियर, उसका 'एज़ यू लाइक इट' २३ (पा० टि०)  
 शैतान ५२, २२६, २८३, ३३१, ३४३, ३४५, उसकी उपासना, विकृत पाठ २४३  
 'शैतान-पूजा' २७५  
 शौच, आंतरिक ४०, उसके गुण, रामानुज के अनुसार ४०  
 श्रद्धा, उसका मूल ५४, -भाव ७९  
 श्रवण ७, -शक्ति १२४, १४०  
 श्रीभाष्य ८  
 श्रीमद्भागवत ११-२ (पा० टि०), २५ (पा० टि०), ५५ (पा० टि०), ७३  
 श्रीराम, कमललोचन ३७  
 श्रीश बाबू ३२७  
 श्रुत और श्रवण २०७  
 श्रुति ७, ३२, उसका कथन ३८, ४१, और स्मृति ३३  
 श्वास, -क्रिया, उसका नियमन १२०, -प्रश्वास-क्रिया १२७  
 श्वेताश्वतरोपनिषद् ३ (पा० टि०)

संस्कृत ३४१ अतिवैतन ३४२ वैतना-  
 रहित ३४२ विनाज्ञानके अर्धमन  
 ३४२ मयार्थ वैतन ३४२  
 संगठन उससे ही सक्रिय ४ ९, उस  
 प्राप्त करने का उपाय ३९५ १ ८  
 संपीठ -लोक १ ८ शास्त्रीय  
 संघमित्रा २६८  
 संघर्ष अज्ञान के कारण २२१ उसका  
 सृजन अधीरता २२१  
 संघात उसकी भावस्पर्कता २ ८  
 सजीवनी-सक्ति १७  
 सवे टाइम्स २३  
 संत महान् और माध्याय ८५  
 सन्ध्या २३४ २८९ ४ १ उसे वेद  
 की स्वीकृति प्राप्त ३६७ और  
 संगठन २३१ -मार्ग ३२६ अथ  
 उसका अर्थ २३५  
 सम्प्राप्ति २८१-८२, २९८ ३११  
 ३२३ ३२६ ३२८ ३३ ३४५  
 ४६, ३४८, ३६१ ६२, ३८१  
 ३८३ ३९१ ३९६ ३९९, ४०  
 ४ ५ और मोगी २२७ पूर्व  
 २३२ महान् २३२ धर्म का अर्थ  
 २३४ सिध्य ३९२ सम्प्रदाय  
 ३४७ हिन्दू २२६, २५७  
 'संस्थापि का गीत' ३३२  
 समय ४  
 संवेदक १९७ मित्र अवयव के लिए  
 मित्र इन्द्रिय १९७  
 संवेदन बाह्य ८५  
 संवेदना उसका विभाजन और प्रमाण  
 २१ और तरंग १३३ और  
 प्राय ८३  
 संस्कार २ ५ अतीत के १६३  
 उसकी साहचर्य-माप्ति २ ७  
 पूर्व और पूर्व जन्म ११४ हृदय  
 का १२६  
 संस्कृत एक पञ्चम-पद्धति १७७  
 उसका विद्वान् ३४७ कहावत  
 २४१ शीघ्र ३८८ ज्ञान ३६९

प्राथमिक उसकी शिक्षा ३६९  
 भाषा ४९ ३४७ धर्म १४१  
 दमोक २४८ साहित्य ३९५  
 संस्कृति केटिम और बुनानी २३२  
 संसार, अन्धविश्वास की मूर्खी से बचड़ा  
 ४ ७ इन्द्रिय बुद्धि और मुक्ति का  
 १८७ उसकी प्राचीनतम विचार  
 भाषा २१२ उसके धर्म ४ ८  
 उसके महान् उपदेष्टा का कथन  
 ७९ उसके मुख्य धर्म ३४ इसके  
 सभी धर्म की घोषणा १९ उसमें  
 आध्यात्मिकता की बाढ़ २८ उसमें  
 विविध बुद्ध नैसर्गिक नहीं ३१६  
 उसमें बुद्ध मूर्खता के कारण ३६१  
 उसमें ही प्रकार के मनुष्य ५२  
 उसमें स्वार्थपरता की बाढ़ ५८  
 एक पागलखाना ७५ एक भ्रम  
 १५९ और ऐन्द्रिक बुद्ध १ ६  
 अन्धमूर्ख ५८ बुद्ध से परिपूर्ण  
 १६१ बुद्धमान ५६ न अन्धा  
 न बुरा १६२ निरन्तर परिवर्तित  
 १४६ पश्चिमी २५८, २७५ बुद्ध  
 कमी एक स्वप्न १५९ बाह्य १ ६  
 मौलिकसाधु १५ -म्याधि ७६  
 शास्त्र के प्रति सुनृत १ ६ सुम  
 और अशुभ का मिश्रण २९५ सुख  
 और बुद्ध का मिश्रण २९५  
 संहिता पुरानी संस्कृत में २४४ वेद  
 का सबसे प्राचीन नाम २४४  
 सन्धिबालम् ३४१  
 सन्धेति और बाह्य १८८  
 सत्य ३२३  
 सत् १९४ ३३५ कर्म १६०-६१  
 शिष्टान ८९ प्रकृति उसके विप  
 रीत कार्य ११३  
 सत्ता अतीन्द्रिय २२ अगतीत १८८  
 सत्य १६ १६६ अनुभव बाध प्राप्त  
 १९२ आपातप्रतीपमान उसका  
 कारण २४५ आत्मन्तर १९२  
 आत्मन्तर अनुभूति बाध प्राप्त

१९२, ईश्वर विषयक और  
आत्मविषयक १३६, उदात्त,  
उसकी शिक्षा, पुराण का उद्देश्य  
२४७, उमका प्रचार २७६,  
उसकी खोज २४, उसकी  
जय २३०, २७६, ३१८, उसकी  
प्राप्ति, प्रथम कर्तव्य १९, उसकी  
सीख, निम्नतम व्यक्ति से २४८,  
उसके निम्न पाठ २४३, उसको  
प्रकाशित करने की भाषा ३१९,  
ऐतिहासिक और पुराण २४७,  
और ज्ञान २०, और भगवत्प्राप्ति  
की तीव्र आकांक्षा ८०, और शिव  
२७७, केन्द्रीय दिव्यत्व की अमि-  
व्यक्ति २३३, केन्द्रीय, भीतर का  
ईश्वर २३३, देवी, अपरिवर्तन-  
शील २४६, परम १३८ (पा०  
टि०), पूर्ण १९२, बाह्य १९२,  
भौतिक, उसका समनुरूप १९२,  
-लाभ २०७, वस्तु की नक़ल १६९,  
वैज्ञानिक १९१, सनातन २०,  
-समूह ३३६, सार्वभौमिक ११५,  
स्वप्रकाश २०, स्वयप्रमाण २०,  
२२९, -स्वरूप केन्द्र की त्रिज्याएँ  
२३३

सत्ययुग, उसका आविर्भाव ३०९  
सत्त्व, पदार्थ ३८-९, -शुद्धि ३९  
सनातनी, अन्धविश्वास २६४, लोग  
२६१, हिन्दू २६४  
सन्तुलन-केन्द्र ३१६  
सद्गुण और साहस ३८७  
सदसद्विचार, उसका आनन्द २२७  
सदानन्द, स्वामी ४०१  
सच्चाटेरियन, कट्टर ३०५  
सम्यता, अमेरिका २६१  
समष्टि, इकाई ५६, ईश्वर ही ५६,  
उसके माध्यम से विश्व-प्रेम समव  
५६, और व्यष्टि ५६, -क्रम २१७,  
-शुद्धि २१६, ब्रह्माण्ड २१७, भक्त  
का भगवान् ६७, भाव ५६,

-मन १५४, १७०, २१६, ३८४-  
८५, महत् २९, ३८५, सूक्ष्म और  
स्थूल जड २१६  
समन्वय और शांति २५८  
समरिया देश ३८९  
समाज, उसका मूल आधार, दोषजनक  
१५७, उसकी पूजा और मूर्ति-पूजा  
८०, -व्यवस्था २३४, शिक्षित  
३३५, -सुधार २५०  
समाजवाद २४३  
समाजवादी ३४९  
समाधि ८४, ९५, -अवस्था ९६,  
-अवस्था, उसकी भूमिका १०७,  
-अवस्था, सर्वोच्च २१३, उच्चा-  
वस्था १२९, तथा द्रष्टा और साक्षी  
१२९, -दशा १५६, धर्ममेघ ३३७,  
स्वरूपशून्यता १३२  
समाधिपाद ७ (पा० टि०)  
'समुद्र-पीडा' ३६५  
सम्प्रदाय, उदार-भावापन्न ३५, उसकी  
उपयोगिता की सीमा २३५,  
उसकी शक्ति का स्रोत १२९, और  
भक्ति ३५, ब्रिटिश २३०, वैष्णव  
१२६, सुधारवादी २६३, हठ-  
योग २२६  
सम्प्रदायवादी, सकीर्ण ३५  
सम्मोहन १८१  
सर्वभूत ५८  
'सर्वव्यापी' २६  
'सर्वशक्तिमान' २६  
सहस्रद्वीपोद्यान २७७, २८७-८८, २९२,  
२९५-९६, ३०२-३, ३३०, ३३२-  
३३, ३४२  
सहस्रार ८५, ९४, १४०  
सहारनपुर ३१२  
सहिष्णुता ८०  
मास्य ११, उमका दृष्टिकोण २००,  
उमका पुरुष २१०, उसका मत  
२०१, उनके अनुसार, अहंकार  
एक तत्त्व २११, उनके अनुसार



प्रकृति २ १ और प्रीक वार्ध  
 निक विचार का समारंभ २ ३  
 और वेदान्त १९१ वार्षिक  
 १९३ २ १ २ ८ वार्षिक  
 और प्रकृति २ १ मत्तानुसार  
 बस्तु की सत्ता २ बावी २१  
 २१४ सर्वोत्पूर्व सामान्यीकरण  
 मही २१ -मूत्र २१२ (पा टि )  
 सांख्य दर्शन १९४ २११ २१४  
 ३४१ उसके अनुसार आत्मा २१४  
 उसके अनुसार प्रकृति २११ उसके  
 अनुसार सत्त्व रज और तम ३८  
 उसके क्या दोष २११ उसे  
 समझने की सीढ़ी २ ३ जगत्  
 का सर्व प्राचीन वर्धन १९१  
 भारत की वर्धन प्रजापति की आचार  
 विद्या १९१ विषय-दर्शन का  
 आचार २ ३  
 सांख्यकारिका ३४ ३७५  
 सांसारिक आकांक्षा ५९ कुछ उसका  
 कारण ११४ प्रेम ५५, ७५  
 बस्तु ५३ वासना ४ सुख ११२  
 स्वार्थ ४९  
 साधक ८ १८ आदर्श १८ उसके  
 लिए एकनिष्ठा आवश्यक ३७  
 और आत्मा के बन्धन ५२ और  
 आहार संबंधी नियम ३९ और  
 ब्रह्माण्ड का चिन्तन ३१ और  
 सत्ता मगवान् ६ और मध्य  
 प्रेम ३९ सफलताकाजी और तीन  
 बातों की आवश्यकता ८  
 साधन उसमें परिश्रम अधिक ५२  
 और विकास १७५ इति १७९  
 द्वारा ईश्वर-भक्ति का उद्भव ४२  
 -नियम ७ -यथ १८ भक्ति  
 १५  
 साधना उसका लक्ष्य ८४ उतका  
 सर्वोत्तम समय ८१ और सिद्धि  
 २१ -पद्धति १५३ २२८  
 प्रजापति ६

साधनावस्था १५  
 साधु, भाव २३ -महापुरुष ४  
 -संन्यासी ३ ८  
 साम्याक ३ ७ ३१० ३२ ३२२  
 ३२४ ३२६, ३७  
 सामवेद ६  
 साम्यवादी सिद्धान्त २५२  
 सामाजिक कल्याण ३३७ परिस्थिति  
 ३१७ व्यवस्था २४१ सचठन,  
 राष्ट्रीय विचार की अभिव्यक्ति  
 २३९ समस्या १५६ समस्या  
 और हिन्दू जाति-मया ३४९  
 गुबार २४ २६० गुबार, उसको  
 आवश्यकता २५४ स्थिति इंग्लैण्ड  
 की २५९  
 सामाज्यीकरण और सूक्ष्म विचार २३५  
 साम्यावस्था १९३ २११ आदिम  
 १९३ और सृष्टि का अस्तित्व  
 १९३ पूर्व उसमें गति नहीं २ १  
 प्रकृति ३८  
 सार-तत्त्व और प्रेम २३८  
 सारवा ३ ३१३ ३१५ १६  
 ३१८ १९ ३२४ ३५ ३७८,  
 ३८ (केलिए विमुक्ततापानन्द,  
 स्वामी)  
 सारवानन्द ४ ६-७ स्वामी ३६९  
 (केलिए करतू)  
 सारा ही कुछ भीमती ७९  
 'साहसी' ४ ८  
 सिंगारारेकू मुनाकिमर २९३ (केलिए  
 किरी)  
 सिद्धांतिका २१२  
 सिद्धान्त ३९४ आधुनिक और आकाश  
 २ १ आधुनिकता ३५६ साम्य  
 बावी २५२  
 सिद्धि अप्राकृतिक और ज्ञान १३  
 मनस्तापिक व्याधि के लक्षण  
 ९८ यौगिक १ ५ -सात्र १२  
 ४ ७  
 सिद्धि सर्वोत् २३७

- मिलवरलाक, श्री ३५६  
मीता ३७  
मीतापति २६८  
मुकर्म ३८१  
मुख और दुःख-भोग २१३, दुःखात्मक  
अनुभव ४५, बुद्धिजन्य ४७, -भोग  
१४, १४४, -सम्पदा ५९  
मुधार, आदर्श २५४, आध्यात्मिक  
३३१, उमका अचूक मार्ग ९८,  
प्रगतिशील २५४, सामाजिक २६२,  
सामाजिक, उसकी आवश्यकता २५४  
मुधारक, आधुनिक २५६, और यूरोपीय  
लोग २६१  
मुद्गह्वण्य, अद्यर, न्यायाधीश २५७  
सुरेश ३२९, दत्त ३२७  
मुपुम्णा ९९, १०१, १०४, १३९,  
उसका ध्यान, लाभदायक ९४,  
उसकी सर्वोत्तम विधि ९४, उसके  
दो छोर पर कमल ९४, उसके  
मूल मे स्थित शक्ति १३८ (पा०  
टि०), -पथ ९०, -मार्ग १००  
सूक्ष्म और सयम ३९  
सूडान २३६, २४१  
सूत्रात्मा ९८  
सून्ज २० (देखिए सूर्य)  
सूर्य ११, २०, २४, ५१, ७०, ११७,  
१४८, १५३-५४, २१३, ३५९,  
४०७, और चन्द्र ७२, ८६, ८८,  
(पिंगला) ८५, प्राच्य २२९,  
-लोक ३८४  
सृष्टि, अनादि ९, आत्मा के हित के  
लिए १९८, उसका क्रम १९५-  
९६, उसका तथ्य १४६, उसका  
सर्वश्रेष्ठ विद्यालय ३४३, उसकी  
समष्टि से विश्व १५४, उसके  
पीछे एकता २४३, और उपादान  
२११, और प्रलय १९४-९५,  
कर्ममय ६९, क्रम १९६, द्वारा  
ईश्वर का अनुसंधान १४६,  
-निर्माण ६९, -रचनावाद, उसका  
सिद्धान्त १९८, -शक्ति, आदि  
३८४, सम्पूर्ण, उसके पीछे  
एकता २४३  
सेट जाजेंस रोड ४०३, ४०५-८  
सेन, केशवचन्द्र २४३  
मेमिटिक जाति २८३  
सेमेटिक लोग, उनमे नारी २६६  
सेवियर, श्री और श्रीमती २६२-६३  
सैन फ्रान्सिस्को १२२, १३१, १५१,  
१६०  
सैम ३७५, ३९६  
सोम ११  
सोलोमन, श्री एव श्रीमती ३६६  
सौन्दर्य और महानता ५१  
सौर-जगत् १९४  
स्टर्डी २८४, ३४२, ३४७-५२,  
३५५, ३५८, ३७९-८०, ३८८,  
३९१, ई० टी० २७५-७६, ३११-  
१२, ३२४-२६, ३३४-३५,  
३४०, ३४३-४४, ३४६, ३४८-  
४९, ३५२, ३५६, ३५८-५९,  
३६४-६५, ३६७, ३७३, ३७५,  
३८३, ३८७-८९, कट्टर वेदान्ती  
३२७, श्रीमती ३५८-५९, ३६४,  
साहव ३२७  
स्टारगीज़, अल्वर्टा ३०४, कुमारी  
२९२, श्रीमती ३०३  
स्टील, कुमारी ३७३  
'स्टैन्डर्ड' ३५६  
स्ट्रीट, डॉक्टर ३८३  
स्त्री, उसका महत्त्व ३१७, उसकी  
अवस्था-सुधार और जगत् ३१७  
'स्त्री-गुरु' ३१७  
स्थूल, उसका कारण सूक्ष्म मे ११८  
स्नायु-केन्द्र १९६  
स्पेन्सर, हर्बर्ट २६०  
स्फोट, अव्यक्त २९, ३०, ईश्वर के  
निकटवर्ती ३०, ईश्वरीय ज्ञान की  
प्रथम अभिव्यक्ति ३०-१, उसका  
अर्थ २९, उसका एकमात्र वाचक

मूल मिति १४५ उसकी सहि  
 प्युता ४२ उसमें अन्तर्मानव की  
 रीति २६१ उसमें लाभदायक  
 चर्च ९९ उसमें सीखने योग्य  
 बात ६३ एक स्पन्दन ११७  
 और धर्म ३७९ और मृत्यु ७८  
 ८५, १९५ गंभीर व्यापार २३६  
 जड़वत् और झूठ १४ ज्ञानमय  
 १६२ तथा स्वर्ण १३६-नाम  
 २६ बीप ५९ बीपक ८५  
 दूसरा की मलाई के लिए काम  
 करना ३३५ धार्मिक १३२  
 -नाटक २५५ -नाटक उसमें  
 शब्द प्रतीक का स्थान ४९ -यद्य  
 ८४ पार्थिव २३ -अभाव १३४  
 प्रेम ही ३३२ भोग-विच्छासुपूर्व  
 १२२ मौक्तिकपरमम ४९  
 मरणोत्तर ११८ मिथ्या ही ३७९  
 मृत्युस्वरूप अन्य स्तर का २६  
 यथार्थ कर्मणय ३७ यथार्थ त्याग  
 मय ३७ राष्ट्रीय ३३२ राष्ट्रीय  
 आध्यात्मिक ३३९ विस्तार ही  
 ३३३ व्यावहारिक ३८ ११४  
 -संघाम ९, १४ संघर्ष का नाम  
 ५९ सन्ध्या २६ सवा विस्तार  
 करना ही ३५५ सन्ध्या १३४  
 सम्पूर्ण एक व्यायामशाला २६  
 सम्मिश्रित व्यापार ५९  
 बीजन्त उसके सामान्य सङ्घम २ ४  
 तत्त्व १९८ शक्ति १९८ सत्य १९८  
 जीवन्मुक्त और संसार २६१  
 जीवात्मा १५१ १५८, १६७ १७३  
 १९९ ९७ २१७ २२०-२१  
 २२३ २५९, ३७५-७६ आत्म  
 मय २२१ उसका क्या स्वरूप  
 २२१ उसकी पूर्णता की स्थिति  
 होने पर २२३ उसकी पूर्णता  
 प्राप्ति २२३ उसके विस्तार की  
 आवश्यकता २२१ और ईश्वर  
 २८५ बाहरी स्तर पर २२८

धीन २८  
 वेस्टाइस ६७  
 वेस्त डॉ ३६४  
 पैक २१२ २२८  
 धीन और बौद्ध २४३ ५५०  
 ३२८  
 धीनी ६२  
 ओसेफ ६  
 ओसेफिन बहुत ३८८ सौक ११  
 ज्ञान अतीन्द्रिय १५३  
 २८ ज्ञान्यस्तिक १ ७  
 उसके विग्रह १९९ उसका २  
 मात्र उपाय १५४ उसका ५  
 मात्र मुख्य २२९ और ७ १५  
 ८४ और कर्म १५१ शैत्य ५  
 बादि तथ्य ११८ -ज्योति १३८  
 १५८ तत्त्व ६५, १६ वात ७  
 नीचे सार्विक ९  
 २८ ध्यान की शक्ति से १८१  
 पारमार्थिक २८ प्रत्यक्ष ७७५  
 मूकमूत कारण १५२  
 १५ बाहर से नहीं ३ बौद्धिक  
 १९५ मनुष्य का प्रकृत जीवन २८  
 मनुष्य में अन्तर्निहित ३ -मार्ग  
 ८१ यथार्थ ३३ -योग ६७ ९६  
 १६९-७ -योग उसकी शिक्षा  
 १५८ -योग और ईश्वरस्वरूप  
 की अनुभूति १७ -योगी १५३  
 योगी उसका प्रथम मार्ग ७२ रहस्य  
 १६४ -विचार १५१ वैज्ञानिक  
 ११५ -शक्ति १ ७ शास्त्र  
 १८४ सम्पूर्ण हममें निहित  
 १ ६ सांसारिक बस्तु विषय  
 ३३ -स्वरूप आत्मा ४  
 ज्ञानालोक ३३८  
 ज्ञानी उसका अनुपबन्ध १५७  
 उसकी शक्ति १ ५ उसकी  
 पहचान १५७ और एकत्वानु  
 भूतिरूप योग १५१ तथा कर्मा  
 और बन्ध ३१

ज्यामिति, विज्ञान मे श्रेष्ठ २२६  
 ज्योति की मन्तान ३७५  
 ज्योतिर्विद् १५३  
 ज्योतिष ३५२  
 ज्योतिषी लोग ३६७  
 'ज्वाइन्ट स्टॉक कम्पनी' १११  
 टाउन हॉल ३१९, ३३१  
 टोटेन, श्रीमती ३२१ (देखिए ई०  
 टोटेन)  
 ट्रान्सक्रिप्ट ३९२  
 डाइनेमो २७१  
 डाक्टर, नजुन्दा राव ३३६, राव ३३६  
 डार्विन ११५  
 डिट्रॉएट २७३, ३५५  
 डिट्रॉएट फ्री प्रेस २७३  
 डियरवोर्न एवेन्यू ३२८, ३४३, ३५८,  
 ३६४-६५  
 'डेगो' ३५३  
 डे, डॉ० ३८५  
 डेमोक्रेट २३९  
 तत्र-ग्रथ २३  
 तत्त्व, उपदेश १३३, जीवत १९८,  
 ज्ञान ६५, १६०, २५४, ३६८,  
 ज्ञानी १००, दर्शन १७५, दैवी  
 २८५, पौराणिक १४५-४६,  
 भौतिक २३२, वीरोचित ३०२  
 तत्त्वमसि १५८  
 तम, उसकी अभिव्यक्ति ११  
 तमोगुण ११  
 तर्क, उसके पथ मे वाधा १५२  
 तामसिक पुरुष १४  
 तारक दादा ३००, ३५२, ३५४, ३५७  
 (देखिए शिवानन्द स्वामी)  
 तितिक्षा, उसकी परिभाषा १००,  
 उसकी प्राप्ति के लिए कार्य १००  
 तिब्बत १४७, २९६, ३७३  
 तीर्थयात्रा २५१

तुलसी ३००  
 तुलसीदास ३८१ (पा० टि०)  
 तुलसीराम ३६३, वावू ३०९  
 त्याग, उमका अर्थ १८६, २७८,  
 उसकी परिभाषा १७९, उसकी  
 महिमा १७६, उमकी सीमा कही  
 नहीं १७६, उसके विना धर्म  
 नहीं १८५, और आत्म-बलिदान  
 २१२, और आध्यात्मिकता १३६,  
 और मनुष्य १७६, और विवाह  
 १७६, द्वारा अमृतत्व की प्राप्ति  
 ३१३, निवृत्तिमुखी ९-१०,  
 सच्चा १३  
 त्यागी और तेजस्विता ३१३  
 'त्राहि माम्' ३०७  
 त्रिगुणातीतानन्द, स्वामी ३७३ (देखिए  
 सारदा)  
 'त्रिपुरमदभजन' ३७४  
 त्रिभुज, उसका तीसरा कोण २७६  
 थर्ड यूनिटेरियन चर्च २७२  
 थर्सबी, कुमारी ६५, ३८४, श्रीमती  
 ३७८, ३८८  
 थियोसॉफिकल सोसायटी ३४६-४७  
 थियोसॉफिस्ट ३०७, ३३६, ३६९, ३७१  
 थेरेसा, सत २७५  
 दम और आहम्बर २७१  
 दक्षिणामूर्तिस्तोत्रम् १९९  
 दक्षिणी ध्रुव ३०१  
 दण्ड और पुरस्कार ९८, २७५  
 'दम', उसका अर्थ १००  
 दया ५१, एक हेतु १६३, और  
 नि स्वार्थपरता के कार्यरूप मे  
 ३५, दैवी सम्पत्ति ३५, मौलिक  
 वस्तु नहीं १८२  
 दर्शन, उच्चतम कविता २२८, और  
 धर्म ६१, -प्रणाली १११, प्राच्य  
 ३, शास्त्र ६०, ११७, २१७,  
 सार्वभौमिक १४१

बलवन्दी ३२  
 बला और श्रेष्ठ ७४  
 बलि ८५  
 बार्थनिक ६१ माया १४१  
 बाधु ३६३  
 बास ३३ उसमें सच्चा प्रेम संभव नहीं ३३ कर्त्तव्य और उसका बोध ३५  
 'बासों का बास' ३६  
 दिव्य प्रकाश उसका अनायास आभिमान १९  
 'दिव्य प्रेम' २१४ (पा टि)  
 दिव्य प्रेरणा २३९ (बेसिए अन्तस्फुरण)  
 दीनता और समबलित्व ३७८  
 दीवान भी ३२८ साहज ३ २, ३२५ (बेसिए बेसाई, हरिदास विहारीदास)  
 दुःख उसका उद्गम १६७ उसका कारण ५१ और कष्ट १५५ और श्लेष और भ्रम १६७ और मृत्यु २५९  
 दुःखमूल्य सुख ७८  
 दुनिया बच्चों का शिल्पाङ्क नहीं ३ ९  
 दुराग्रह ५४ २३४ एक प्रकार का रोम २३५ और वृष्टान्त ५४ और मदान्धता ५३ पूर्ण सुचार २३५ प्रेम का विरोधी ५५  
 दुराग्रही कई प्रकार के २३४-३५  
 दुराचार ३३५  
 दुर्बलता साधुता तथा सबलता ६३  
 दुर्भावना उसके कारण अत्याचार ४  
 'दुर्भावकारी धर्म' २३८  
 देवतागण उच्च अवस्थाप्राप्त विधनत मानव २६१  
 देव-मानव ६ १५२ २४७  
 देवमान मार्ग ३ ५ द्वारा प्राप्त गति श्रेष्ठ ३५९ (पा टि)  
 देवालय ३८

देस ३७५ उसके लिए नीर की आवश्यकता ३२३ -काष्ठ और परिणाम ११९  
 देव-काष्ठ-निमित्त ६९ ७१ ११९ १७४  
 देवमन्त्रि सदा पक्षपाती १४१  
 देसाई, हरिदास विहारीदास ३ २ ३२५, ३२८  
 देह और प्राण ३७६  
 देवी उगमाह २५७ कार्य ३३  
 दण्ड २८५ संपत् २९५  
 दूत-श्रीका २२  
 दन्त और संघर्ष १४  
 द्विवेदी भी ३२६  
 द्वेष और कठिनाई २२१  
 द्वैत बुनिया में १६८ भाव १६८  
 द्वैतवाद १६७ २२८ २३९  
 द्वैतवादी उसका कथन २५८ धर्म २ ५ स्तर २१७  
 धन और गीर्धन २६३  
 धर्म १६२ २१२, २३८, २६ ३ ४ ३२३ ३३८ अगुणति की वस्तु १५९ आवश्यकता २७४ इस्लाम ७ १३६ ईश्वर के विधान की दक्षिण १३१ ईसाई ४७ ८६ १२६, १२८ १४३ १७१ १७६ २६५, ३४७ ३६८, ३८ ३८९  
 उदार, उसकी मूर्च्छि तथा अन्धुधम काष्ठ १३८ उसका उच्चतम स्वप्न १७१ जनका लक्ष्य एक १६९ उनकी उत्पत्ति और अवगति १२७ उसका अर्थ २४८ उसका आरम्भ २८ ३७६ उसका उद्देश्य २६९ उसका कार्य १५  
 उसका सोच १ ९ उसका धर्म आदर्श १३१ उसका द्वार १५  
 उसका पतन २ १ उसका पुरुष द्वारा विवेचन २७३ उसका बाहरी धर्म ३८ उसका अर्थ

तत्त्व ३१८, उसका सार २५८, उसका स्थूल भाग १४१, उसकी उपलब्धि और आरम्भ १३६, उसकी ओर झुकाव १०९, उसकी पकड़ १३४, उसकी परिणति, भारत में २७६, उसकी परिभाषा १५९, उसकी पूर्व तैयारियाँ २५१, उसकी रूपरेखा १५०, उसकी वर्तमान अवस्था १५०, २५०, उसकी शक्ति और मनुष्य १४०, उसकी शिशुशालाएँ २४८, उसकी सच्चाई ३४०, उसके उद्देश्य की सूक्ष्मता और क्रियाशीलता १३९, उसके ऊपर उत्तरदायित्व १३३, उसके क्षुद्रतम भेद, शाब्दिक २६०, उसके चरम लक्ष्य-प्राप्ति के साधन का नाम १६९, उसके नाम पर दूकानदारी वृत्ति ३८०, उसके पास सदेश २६५, उसके प्रचारक होने का इच्छुक ४२, उसके प्रतीक की उत्पत्ति, स्वाभाविक रूप से ४७, उसके बाह्य रूप २२५, उसके सबध में असाधारण बात १३४, उसके सबध में सार्वभौमिक लक्षण १४४, उसके समन्वय की चेष्टा, व्यर्थ १४७, उसके हीनतम रूप २५९, उसमें नामोपासना की कल्पना २४६, उसमें प्रबल जीवनी-शक्ति १२५, उसमें मुक्ति-लाभ की चेष्टा ८२, उसमें विद्वत्ता का स्थान नहीं २२८, उससे प्राप्त तीव्रतम प्रेम और ज्ञान १३९, उससे समाज का क्या लाभ २७०, और आत्मा १२९, और जापानी फूलदान २५०, और परमेश्वर १०१, और पात्र का आकार १४७, और मुक्ति १९७, और योग का रहस्य, व्यक्ति में २८१, -कार्य १६, -ग्रथ १०६,

२३७, -चिन्तन और जीवन का उच्च स्तर १३९, -जगत् १३९, ज़रथुष्ट्र १२६, -जीवन, उसका रहस्य १२३, ज्ञात भाव से अग्रसर १३१, तथा कारण १४७, द्वारा कठोर शत्रुता और विद्वेष १२५, द्वारा घृणा और विद्वेष १२५, द्वारा दातव्य चिकित्सालय-स्थापना १२५, द्वारा भयकरता की सृष्टि १२४, द्वारा रक्त की नदी प्रवाहित १२५, द्वारा शक्ति को मान्यता ४९, ध्वजी १५०, न पथ में, न विवाद में २४८, परस्पर पूरक १३०, पवित्रता ही ४२, पारसी का १२६, पाश्चात्य ३१७, पुत्र का ३७, प्रचार १३१, -प्रचार, उसकी रूपरेखा १५१, -प्रचार और प्राच्य १२६, -प्रचारक ५, ९, ६१, १३२, ३४६, प्रत्येक, उनमें तीन भाग १४१, प्रत्येक, उनमें तीन मुख्य बात २४७, प्रत्येक, उसके पीछे आत्मा १२९, प्रत्येक, उसके विभाग ४७, प्राचीन १२६, प्राच्य ३६४, -प्रासाद ७९, -प्रेरणा १३९-४०, -प्रेरणा और मनुष्य-स्वभाव १४०, फैशन रूप में २५०, बौद्ध ३४६, ब्राह्मण २३७, -भाव ३५९, ३८५, -भित्ति ३३५, मत, उसकी विभिन्नता लाभदायक १७०, मत, सब सत्य १४७, मनुष्य के स्वभाव का अंग २७२, -मन्दिर, सार्वभौमिक १२४, -महासभा २३७, ३२६-२७, ३४२, मुसलमान १३४-३६, मुस्लिम २३७, मूल में सभी समान १७०, यथार्थ १५८, यहूदी १२५, -युद्ध २३, -राज्य १२८, -लाभ २५०, -लाभ, उसे करने की सभावना १३२, विभिन्न, उनमें सामजस्य कठिन १४१, विश्व १४५. विविध

१७१-७२, १७४-७६ व्यावहारिक उसकी परिमाणा १०९ व्यावहारिक उसकी व्याख्या १७७-७८ व्यावहारिक तथा ईसाई चारणा १८२ -शास्त्र १७१ २ २, २९ -शिक्षा ३६६ संन्यास ३५५, ३६१ संसार के १२६ संसार के सभी सरय १४७ संस्थापक १४३ सच्चा ११ सच्चा उसका आरम्भ ७१ सत युगी ८६ सगठन अत्याचार पीड़ित ३३७ -समान्य-समस्या १४१ समस्त अंतःजनमिति २२८ समस्त महान् भीषित १२६ -सम्प्रदाय १२५, १३८ १५५ -सम्प्रदाय-समूह १२४ सर्वाधिक सान्निध्यमी १२४ -साधन १ ६ सार्वजनीन १६९, ३६२ सार्वभौमिक १३१ १४३ सैद्धान्तिक उसका क्या अर्थ १७१ सैद्धान्तिक उसको पाना सरल १८२ स्व २३ हिल्सु १२६, १३६ १६ २३८ ३१७ ३३१ (पा टि ) ३३९ ३४८ ४९ ३५१ ३८ धर्मपाल ३४६ ४७ धर्मशास्त्रा २३ १४ धर्मान्त २६४ उत्तरवाचित्वाहीन १४१ मानवता के ईमानदार ८६ सबसे निष्पट १४१ धर्मान्धता ३४ एक ममानक बीमारी १४१ द्वारा कुट्ट बुद्धि १४१ धर्मोन्मत्तता ३६४ धर्मोपदेश १६, ३२७ ३५७ ३८ धर्मोपदेशक आचार्य १२ धार्मिक आन्धोत्तम १८५ जल्दाह २७४ उत्पत्ति ३३४ और आप्ता रिमक उत्पत्ति १६९ कार्य ११५ इन्द्र १७ जीवन १३२, १७ ठरव ३१७ चारणा २९५

मास्तिक धम्मी २४९ पुरुष ३२६ मठ-मठान्तर ३२३ विचार ४८ ३३३ विचारचारा २३७ विषय ३३८ व्यक्ति २३८, ३५१ उपर्य १४ सम्प्रदाय १८५, १८९ ध्यान १२३ -अवस्था मन की ९७ उसकी प्राप्ति १८ उसकी प्राप्ति कर्म द्वारा ८८ उसकी शक्ति १८ उसकी शक्ति से अनिष्ट का निराकरण १७९ एकमात्र असम वस्तु ९७ क्या है १८ द्वारा भौतिक भावना से स्वतन्त्रता १२३ द्वारा सामर्थ्य १८ बस है १८ सबसे महत्त्वपूर्ण ९७ ध्येय-प्राप्ति १२२ मन की संयमित करना २२९ ध्वनि १३ ध्रुव प्रवेश ३९४ ध्रुव सत्य ३३ तथिकेता १६ १६२ ६३ नदी गंगा ११६ १२६ १६६ २९९ ३१९ फराह १२६ तन्त्रन बन ३२५ 'मोनाचमचाम' १८७ नर-ईश्वर २ ६ नरक १९, ९६, १९६, २ ९ २०२, २३३ २५४ २७३ २८१ २८५ ३ -१ ३ ३ ३२४ -कुण्ड ६६ -विष ८५ नरक्यामी १३३ नरसिंह ३४२ नरसिंहाचारिण, जी जी ३६८ नरेन्द्र ३१ ३१४ ३५४ ३६३ (केलिए विद्वैकालम् स्वामी) नव व्यवस्था ११४ नवद्वीप २६१ नाम ७ उसकी उपासना २४६ उसकी नवचरता ३७९ और देव-मानव

२४७, और बोध अन्योन्याश्रित,  
२४६, और यश १९५, ३३८, ३४८,  
३८७, और यश, उसकी नश्वरता  
३७९, और यश, उसकी प्रवल  
आकाक्षा ३७०, और व्यक्ति २६२,  
-प्रचार ३४०, -यश ८-९, ६०,  
९५, ९८, १८४, ३२३, ३५९,  
-रूप ४८

नारद २८८, ३८२

नारायण ५२

नारायण, हेमचन्द्र ३२५

नारी, उसका ईश्वर के प्रति प्यार २७३,  
उसकी प्रकृति २७३, -कवि २०८,  
कुलटा भी दिव्य माँ १८८, हिन्दू  
२७३-७४

नासदीयसूक्तम् १६६ (पा० टि०)  
'नास्ति' १३

नास्तिक २०२, २५०, २७४, ३५६,  
धार्मिक २४९

नि स्वार्थ भाव ३४४

नि स्वार्थता, अधिक फलदायी ८,  
उसकी उपलब्धि, प्रयत्न द्वारा ८४,  
उसकी महत्तम शिक्षा ४२, और  
सत्कर्म ८३, शक्ति की महान्  
अभिव्यक्ति ८, हमारा लक्ष्य ८८

नि स्वार्थपरता, उसका अर्थ ८२,  
चरम लक्ष्य ८२

'निजत्व' ८३

'नित्यानित्यविवेक' १०५

निदिध्यासन १२३

निन्दा-स्तुति १७

'निम्न अह' ४१

नियम ६९, २२०, उसकी परिभाषा  
६९, उसके सर्वव्यापी होने का अर्थ  
६९, प्राकृतिक २७२, शब्द का  
अर्थ ६८, सनातन ६, सासारिक  
१३२, सामाजिक ३४१, सार्व-  
भौमिक ३३१, सीमाबद्ध जगत् मे  
समब ६९

'नियम तत्त्व' ६८

नियोग ३५४

निरजन ३१९, ३५२, ३९१

निराशा, परम सुख ३८३

निराशावादी ५०, ६६, ८५-६, वृत्ति  
१०४

निर्गुण ईश्वर २१६, पक्ष २१६,  
सत्ता २१६

निर्वाण ८९

निवृत्ति, उसका अर्थ ६०, उसकी पूर्णता  
६०, नैतिकता एव धर्म की नीव  
६०, -मार्ग ७१, -मुखी त्याग  
९-१०

निष्क्रिय अवस्था १४

नीग्रो ३२९, ३६२

नीति और धर्म ३२६, -शिक्षा ३७

नीतिशास्त्र ८२-३, १११, १२०,  
२११, २५८, हिन्दू १६

'नीतिसाधन-समिति' ३६४

नेगेन्सन, कर्नल ३४६

'नेति', 'नेति' ७१

नैतिक, ८३, विधान ५९, ८३, शिक्षा  
५०, शिक्षा, उसका लक्ष्य ८२

नैतिकता, उसका सार २०६, उसकी  
एकमात्र परिभाषा ८३

न्याय, उसकी भाषा मे १५२

न्यूटन ४

न्यूयार्क १२८, १८०, २०५, २१०,  
२४३, २५५, २९८, ३०४-५,

३१८, ३२५, ३३१-३२, ३३८-  
४१, ३५३, ३६४-६५, ३६९,

३७३, ३७७-७८, ३८१, ३८४,  
३८५ (पा० टि०), ३८६, ३८८,

३९०, ३९२, कोषागारस्वरूप  
३९४, थोर भौलिकतावादी ३०७,

शहर ३६४, सयुक्त राज्य का  
मस्तक तथा हाथ ३०४, ससार मे  
सबसे घनी ३५३, स्टेशन ३६४

पञ्चभौतिक देह १५०

पजाव ३५७, ३६२



पर्यवेष्टि ११४  
 परित्यक्ता स्त्री ४२  
 परमप्रदक्षक ज्योति १३२  
 परार्थ उसके चेतन उत्प १९५ पङ्  
 १७७ २५९ ३७६ सांसारिक  
 ३५२  
 पराति सार्वभौमीय १६९  
 पराधीन २२  
 परबर्म-सहित्युता १३८  
 परमहंस १८७ रामकृष्ण ३५२  
 परमहंस देव ३ १ ३५४ ३८१  
 (वेदिए रामकृष्ण)  
 परमात्मा ४४ ९८ १ ७ ११  
 १५१ १५८, १६९ २३५ २५  
 २६८ ३४६ ३४९ ३७०-७१  
 ३७६, ३७९ ३८१ और  
 जीवात्मा १९७ गतिमान करने  
 वाली शक्ति २५५ जगत् प्रभु १५८  
 परमानन्द २५१  
 परमेस्वर ८६, १ ७ ११ ११६  
 ११९ १२२, १६४ १६८ २४६  
 २४८ ४९, २५१-५४ उसका  
 स्वरूप प्रतीक २४६ प्राप्ति १६३  
 २४७ २५ वास्तविक सत्ता  
 १६७ समुच्च २४३ सर्वत्र विद्य  
 मान २४७ सर्वभ्यापी २४५  
 सर्वशक्तिमान २५२ (वेदिए ईश्वर)  
 पराचेतना २६२  
 परास्पर भूमि का विषय ११  
 'परोक्ष चिकित्सा' ३८४  
 परोपकार ३ ९, ३३६ उसकी इच्छा  
 ५१ शान और शांता ५१ पुत्र  
 ३ ३९ वही जीवन ३३३  
 पवहायी वाता ४५ (वा टि )  
 २७८ जलमें विष्य मात्र ७९  
 पवित्र पुरप २४६ पुस्तक २४४  
 मैरी २ २  
 पवित्रता ५८ अतस्वर ३४४ एवं  
 अम्यवसाय ३५ और शरीरत्व  
 ४२ सर्वप्रथम बर्म ४२

पशुत्व-भाव ७७  
 पश्चिम उत्तका अम्यवसाय-वाचिक्य  
 २३९ और पूर्व में अन्तर २३९  
 वही बर्म जाना फ्रीडम २३९ वही  
 के कोय और अम्यवसाय २६९  
 पश्चिमी ईसाई २३८ देश ४ राष्ट्र  
 और ईश्वर प्रेम का आधार २७४  
 राष्ट्र और डॉक्टर की पूजा २७४  
 रिवाज ३७ विचारधारा २३८  
 पसाडेमा १२४  
 पाषाण ३६  
 पाप ८, ३५, ७४ १६२ ६३ १९८,  
 २४४ २५९ २६१ ३९१ और  
 पत्नी तथा दुराग्रह ५५ दुराग्रह  
 जाना ३९ मय ही सबसे बड़ा  
 ३७९ -मोचन ३ ७  
 पानी तथा पुण्यात्मा ३९४  
 पारसी १२६ २ ५  
 पार्लोविक और बच्च २५४  
 पश्चिम उसकी परिभाषा २३ जीवन  
 २३ वस्तु २३१  
 पार्वती १९  
 पाषाण भाषा ३१९  
 पाश्चिक प्रकृतिवादा ४२ मात्र ४२  
 पाश्चात्य और प्राच्य के आदर्श ३१७  
 देश २४९ ३ २, ३१७ देश  
 उसकी बाह ११८ देश उसका  
 प्रमाण कर्म्य ९६ देश और सामा  
 जिक तथा धार्मिक उत्पत्ति ३१७  
 देशवासे १३ १२६ देशवासी ३ ४  
 देशवासी उसकी सफलता का  
 रहस्य ३२८ देश वहाँ अद्भुत  
 चरित्र और शक्ति का विकास ३ ८  
 देश वहाँ की स्थिरता के गुण ३ ८  
 देश वहाँ के लोग और 'मोय ३ ८  
 बर्म ३१७ भाषा ३७२ महाशक्ति  
 का विकास ३ ८ राष्ट्र ३३२  
 विचार ३६६ विवाह प्रथा ३ ६  
 उत्कृति १ ६  
 'पियका' ११६

'पिता' २७५  
 पित्तू ३२१  
 पिशाच विद्या ३०६  
 पीक, श्रीमती ३८७-८८  
 पीर-पूजा २२५  
 'पीलिया रोग' १६५  
 पुण्य ८, १६२, अनश्वर है ३४४  
 पुनरावर्तन की प्रवृत्ति ६८  
 पुरस्कार, अथवा दण्ड ७८, और दण्ड  
 २५२-५३  
 पुराण २८०, पुरुष १६२-६३,  
 -साहित्य १४१  
 पुरुष तथा नारी, दोनो आवश्यक ३०१,  
 मुक्त, उसका लक्षण ३०९ (पा०  
 टि०)  
 पुरुषार्थी १५१  
 पुरोहित ८, १५१, और पैगम्बर मे  
 अन्तर २२४, कट्टरपथी, उसका  
 कारण १३१, -प्रपञ्च ३३४, ३४५,  
 रुद्धिवादी शक्ति के प्रतीक २२४  
 पुस्तक, उसमे जीवत शक्ति नहीं १९८,  
 -प्रकाशन ३१०  
 पूजा, उसका अर्थ २८२, २९९, उसका  
 आरम्भ २१५, उसका प्रतीकात्मक  
 रूप २२७, उसके रूप २२६,  
 औपचारिक, एक आवश्यक अवस्था  
 २६८, -पद्धति १४१, -पाठ  
 ३४८, पीर २२५, वृक्ष २२५,  
 सर्प २२५ (देखिए उपासना)  
 पूजागृह २५२  
 'पूर्ण जीवन', स्वविरोधात्मक ५९  
 पूर्णत्व, प्रकृति से ढका १०६, -प्राप्ति  
 ६५  
 पूर्व, वहाँ धर्म, व्यवसाय २३९, वहाँ  
 धर्म की व्यावहारिकता २३९  
 पूर्वावस्था, उसकी ओर प्रतिगमन और  
 पतन ९३  
 पृथ्वी, उसके धर्म और समाधान १२९-  
 ३०  
 पेट्रो ३२५

पेरिस १११  
 पेरीपेटिक क्लव २३७  
 पैगम्बर, उनकी दो श्रेणियाँ ८९,  
 शक्ति के प्रतीक २२४  
 'पैत्रिक धर्म' १४०  
 पौराणिक, अभिव्यक्ति और भाव  
 २१०, कथा १४७, कहानी १४२,  
 तत्त्व १४१, १४५, १५५, भाग  
 १४१, व्याख्या २०६, सावभौमिक  
 १४६  
 प्यार, उसके साथ भय नहीं २५३  
 'प्यु' २३९  
 प्यूरिटन और मुसलमान १३७  
 प्रकाश २०६, अशुभ को नहीं जानता  
 २०८, उसका अस्तित्व ९४, उसकी  
 उपलब्धि ४६, और अधकार १७६,  
 और कम्पन १७८, सबमे है १९६  
 प्रकृति १०, ५७, ७७, ८८, १०५,  
 २१२, २३१, २४९, २५९, २६४,  
 २६६-६७, २७०, अनुभूत २१०,  
 आसुरी ६०, उसका अन्तिम ध्येय  
 ८३, उसका कथन १८०, उसका  
 धर्म, क्रियाशीलता २१०, उसका  
 भीषण प्रभाव १०३, उसकी चाहना  
 १८०, उसकी विजय, कार्य का प्रति-  
 मान १८२, उसके अस्तित्व का  
 प्रयोजन ३२, उसके इशारो पर  
 व्यक्ति १७९, उसमे साम्यावस्था  
 १२०, उससे सबकी सहायता ६३,  
 उसे विशेषत्व-प्रकाशन की स्वाधी-  
 नता ३६७, और जीवात्मा २१७,  
 और बुद्धि २१४, चञ्चल और परि-  
 वर्तनशील ३७५, तम, रज, सत्त्व  
 से निर्मित ११, प्रत्येक, उसका  
 अपना मार्ग १८०, बाह्य ५९,  
 लडाकू, उसमे रज या क्रियाशीलता  
 ७९, सनातन, और ईश्वर २२०,  
 समस्त, आत्मा के लिए ३२, सम्पूर्ण,  
 उसका चीत्कार १७४, साधु ६०  
 प्रगति और विगति ७०

प्रचारक उत्साही का वक्त ३७२  
 प्रचार-कार्य १३१ -कार्य और प्राथ्य  
 १२६  
 'प्रतिक्रिया' १०५  
 प्रतिदान ३५  
 प्रतियोगिता कक का नियम २७२  
 प्रतिरोध १३४ और शक्ति का प्रश्न  
 १३  
 प्रतीक उनका विशेष कारण ४८ उसकी  
 आकषण-शक्ति २२७ और अनु-  
 ष्ठान २७५ और बाह्य अनुष्ठान  
 २४३ और विधि २५१ कर्म  
 काशीय ४८ क्रॉस पर कटके  
 महापुरव का ४८ कूस पीपल  
 पर प्रभुत्व २२७ कूस सुपरिचित  
 २२६ इतिवृत्त मात्र नहीं ४८  
 बर्ष ४८ विधान उसका निर्माण  
 कृत्रिम उपाम से नहीं ४८ घण्ट ४८  
 प्रतीकवाद २२६  
 प्रतीकपोषणा २४४  
 प्रत्यक्षानुभूति १ ९  
 प्रत्यक्षवाद ११९  
 'प्रबुद्ध भाव' ३८६  
 प्रभु ७५, १३४ २१६ २३३ ३  
 ३१९ ३३८, ३६८, ३९४ अन्त-  
 र्यामी १६५ वर्षा ३७ विम्मम  
 १६५ प्रेममय २५२ सतत  
 कर्मशील विधाता ८ सत्यवपी  
 २७९ सर्वशक्तिमान ८  
 प्रमत्त-आम १५  
 प्रभाव चरित्र का ३६९ पविष्टता का  
 ३६९ सम्पूर्ण व्यक्तित्व का ३६९  
 प्रयोगशाका १५३  
 प्रकृत ८६ ७  
 प्रकृति ६ उसका अर्थ ६ और  
 निष्कृति ६ और पद्धति १३९  
 -मार्ग ७२  
 प्राचीन व्यवस्था १ ८  
 प्राथ्य उसकी आवश्यकता का कारण ३२५  
 और पाश्चात्य के कारण ३२७

आदि उसका चरित्र ३७२ ज्ञान  
 १५ ईश और धर्म १२६  
 ३१७ ३६४ धर्म उसके गुण  
 ३१८ लोग उनका नाम १२६  
 समाज ३१७  
 प्राण उसका महत्त्व ११७ उसकी  
 अभिव्यक्ति ११६ उसकी क्रिया  
 ११७ उसके सर्वोच्च स्पन्दन का  
 कार्य ११७ अन्त-सक्ति ११७  
 द्वारा ईपना-पिमला का कार्य ११७  
 मस्तिष्क द्वारा विचार-रूप में वर्धित  
 ११७ विद्युत् शक्ति ११७  
 प्राणायाम ९७ १२२, ११५ १७  
 उसका महत्त्व उद्देश्य ११६  
 प्राचीन प्रगति के प्रथम साधन २६२  
 -स्तुति १३७  
 प्रीति परम साध्य ३६ (पा टि )  
 प्रेतोपासना ३ ७  
 प्रेम सर्वत्र २७६ असीम २५६  
 आकर्षक मानवीय २५६ इष्ट  
 की बेखता है २७६ ईश्वर की  
 स्वामी भाव २७ ईश्वर है  
 २८१ उच्चतम २६९, २७६  
 उस पर आधारित पद्धति २७५  
 उसका अस्तित्व है २५१ उसका  
 आदर्श और प्रेमी २५४ उसका  
 आरम्भ २८८ उसका उद्देश्य  
 २५६ उसका कथन २८५ उसका  
 पहला चिह्न २७९ उसका प्रकाश  
 २५६ उसका प्रतिदान १५६  
 उसका प्रतीक निकोच २७९ उसका  
 महत्त्व २८१ उसका अर्थ २५१  
 ५२ उसकी अल्प महिमा २८५  
 उसकी अभिव्यक्ति समझ नहीं  
 २७७ उसकी असाध्य-साक्षिनी  
 शक्ति ३२३ उसकी पहचान  
 २८५ उसकी पाँच अवस्थाएँ  
 २६२ उसकी प्रकृति २८२ उसकी  
 महानता और मुक्ति २६३ उसकी  
 विशिष्ट अभिव्यक्तियाँ २५६ उसकी

शक्ति द्वारा इन्द्रिय परिष्कृत २७०, उसके आरंभिक क्षण २८५, उसके त्रिकोण का कोण २८०, उसके द्वारा उपासना २६८, २७९, उसके लिए ईश्वर-पूजा में विश्वास २३९, उसके लिए प्रेम २६२, २६९-७०, उसके सब आदर्श २८६, उसमें इन्द्रियाँ तीव्र २७७, एकमात्र उपासना ३३१, एव श्रद्धा ३५९, और अनुभव २७०, और उपासना २६२, और गूंगा मनुष्य २९०, और ज्ञान २६६, २८१, और दूकानदारी २५२, और भक्ति २४३, और भौतिक भावना २६९, और शक्तिसमूह १५४, और सहानुभूति ३३१, कभी निष्फल नहीं ३२३, कभी मांगता नहीं २७९, केवल प्रेम के लिए २७६, गहनतम २८६, गुण और अवस्था के अनुसार २९१, चिरन्तन २१५, दिव्य मिलन में २६२, देवी २७५, नि-स्वार्थ २१०, ३३०, निम्नतम २७७, पति और पत्नी का २६९, पारस्परिक २७७, प्रश्न नहीं करता २७९, प्रेम तथा प्रेमास्पद २५७, बड़ा सपना १०२, बन्धनरहित ३०१, बिना स्वाधीनता के नहीं ३३, भय नहीं जानता २७७, भिखारी नहीं २७९, भीख नहीं मांगता २७७, -मय पुरुष, उसकी क्रिया १०७, महान् है १७२, मातृवत् २६९, मानव २७०, मानव, अन्योन्याश्रित २७०, मानव-संबंध में दुर्लभ २७०, मानवीय २५७, २७७, २८८, मित्र का २६९, यथार्थ ३३, वही परमेश्वर २५५, वही प्रेम का उपहार २५७, वही सर्वोपरि २९२, वास्तविक, उसका आरम्भ २६२, विश्वव्यापी १६८, उसका यथार्थ अर्थ ३३,

'शात' २६९, शान्तिमय २७५, शाश्वत १८४, शुद्ध, उसका उद्देश्य नहीं २६२, सच्चा १६८, २७३, २७७, सच्चा, उसकी प्रतिक्रिया ३४, सच्चा, उससे अनासक्ति ३४, सच्चा और सहानुभूति २३५, सदा इष्ट २७७, सदा देता है २५२, २७९, सदा ही सर्वोच्च आदर्श २५३, सर्वोच्च और अनुभव २६९, सर्वोत्तम अनुभूति २९०, सर्वोपरि २८९, २९१, सात, अनंत तत्त्व २३२-३३, -माघना ३४, स्वयं अनादि, अनन्त बलिदान २८५, स्वयं ईश्वर २८०  
प्रेमी, और प्रेमी पात्र २६५, कल्पना से अतीत २५४  
प्रेय-मार्ग १६२  
प्रेरणा, उच्च प्रेम की १३, दिव्य २३६, -शक्ति ८८, सर्वोत्कृष्ट ५१, स्वतः स्फूर्त ३२७  
प्रेसबिटेरियन १२८, गिरजा ३४७  
प्रोटेस्टेंट ईसाई और बाह्य अनुष्ठान २४३, और कैथोलिक चर्च २२७, और गिरजाघर २४४, पथवाले २४४  
प्रोटेस्टेंटवाद २२७, २७८  
प्लीमाथ ३४६  
प्लेग २९९  
फरात १२६  
फर्स्ट यनिटेरियन चर्च २१२  
फर्स्ट स्ट्रीट ३२४  
फार्मर, कुमारी ३४१, ३६४, ३८२, ३८४, ३८७  
फिलाडेलफिया ३१८, ३२१, ३२४  
फिलिपाइनवासी १२८  
फिलिप्स, कुमारी २९७, ३६५  
फिस्कल २९८  
'फेरिसी' १७०  
फोनोग्राफ ३३६, ३३८

फ्रांसिस डेवेट, पी ३९  
 फ्रांसीसी १११ १२  
 फ्रजरिक डवण्डस ३२१

बंगाल १८६ ३३ ३५२, ३६२,  
 ३६६, ३७४ ३८१

बंमाली २९८ कहावत ३ ३

बनर्जी कासीचरण ३१५

बन्धन ३२५ ७१ २, ८७ ८९, १ ५,

१ ९ १७४ २५९ उधसे मुक्त

होने का उपाय ७१ रुपी सौचा

७ सामाजिक ३१७

बपतिस्मा उधका कर्म १९७ सच्चा

१९८

बम्बई २९९, ३२ ३२८, ३४५,

३६६

बरोज डॉ ३४२ ३६९

बल और ब्या ३५

बसराम बाबू ३५१

बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' ३४६

बहुत्व में एकत्व ३६ (पा टि )

बहुविवाह १३२

बाइबैलाइल कथा २६६

बाइबिल १२७ १३८, १७२ १९८

२२४ २४४ २४६ २७३-७४

बाबुषाम ३१३ १४ ३१९

बाबक अम्मजाठ-बाघाबाबी २०५

सुक ३५६ सुक उनकी परीक्षा

और सफलता ३६

बाबाजी ३ ४ डॉ ३७१

बास्टिमोर ३१८ २१ ३२४

बाइ अनुष्ठान २४४ अनुष्ठान

उधके अन्तराल में कल्पना २४६

उपचार २४३ बबत् २५४ कम

और अनुष्ठान १९८ बस्तु, उधमें

उहीपन २५४

बिष्णु १९६

बुद्ध ६, ९, ३१ ७८ ९, १२२ १३८

१७८, २४६, ३२४ आदर्श कर्म

पीली ९ और ईसा ७ और

कर्मयोग की शिक्षा ८९ आनी ३१

भगवान् ११२ मत १७६ महान्

दार्शनिक ९ सर्वप्रथम सुधारक

९९ धार्मिकस्य-भाव के सर्वश्रेष्ठ

उदाहरण ९

बुद्धि अन्तःस्फुरण नहीं १ ७ उसकी

अन्तिम गति १ ८ उससे प्राप्त

सुख और इन्द्रिय १७५ और विद्वता

१ ७ तर्क के क्षेत्र में १ ६ मनुष्य

में १५२ -शक्ति १५२ सुसंस्कृत

और परिणाम १ ८

'बुद्धि से अतीत शान्ति' ७१

बुद्ध श्रीमती ३१४ ३२१ ३४१

३६४ ३७८-८ ३८२, ३८६,

३८८-८९, ३९२ (देखिए बौद्ध

बुद्ध श्रीमती)

बृहदारण्यकोपनिषद् २५५ (पा टि )

२६३ (पा० टि )

बेकन स्ट्रीट २९६ ९७ ३१४

बेबिबोनियन २ ५

बेक कुमारी ३७७

बेल्जेयुमे होटल २९५ ९६ २१४

बीकुंठगाव साय्याक ३८१

बीम्बी श्रीमती २९५

बीटल स्ट्रीट ३४

बोस्टन १ ४ २९५ ९८ ३१४

३२५, ३६९ नगर १८४ 'बाइबली

का सहर्त' ३ ४ विद्या-बनौ का

प्रमाण स्वान ३ ४

'बोस्टन ट्रान्सक्रिप्ट' २९५

बौद्ध ७ १२६, १३८ धर्म ३१९

बाति ३३१ धर्म उसके नीति

उत्पन्न ३४६

बौद्धिक ज्ञानत्व उसकी ध्याक्या १७५

ज्ञान १९५ बुद्धिकोष २२६

विकास २४५ ध्यायाम १ ९

कहावत ३८ ९

बहा ६१ १६२, १८८ २१९ १७

१६२ -चित्ता ३ ६ -आन

१७ निर्गुण २५८ -यत् १६५

परम १७४, पूर्ण १६७, सगुण  
 २५८-५९, सर्वव्यापी २१६  
 ब्रह्मचर्य १६, ३०७  
 ब्रह्मचारी ३३७  
 ब्रह्मसूत्र ११० (पा० टि०)  
 ब्रह्मा-विष्णु ३१३ (पा० टि०)  
 ब्रह्माण्ड ७०, १६०, १७३, १९४-९५,  
 २१६, २६६, २७८, २८२, २८५,  
 उसका आधार २२०, उसका  
 कारण २२०, उसका सर्जक  
 २२०, उसके धारणकर्ता २६३,  
 पिता का राज्य २६७  
 ब्राह्मण २०९, ३०३, उपदेशक २३७,  
 धर्म २३७, धर्मग्रन्थ २३७, निर्धन  
 ३६  
 ब्राह्म समाजी २९८  
 ब्रुकलिन ३६४-६५, ३७५, ३७७  
 भक्त ६१, २८३, ३५६, उसके साथ  
 भगवान् का योग १५१, -सन्ध्यासी,  
 उसकी परिभाषा २८८  
 भक्ति २२, २५९, ३०१, ३४०, ईश्वर  
 के प्रति अनुराग २८७, उसका मार्ग  
 २६२, २९१, उसका मुख्य कारण  
 २८९, उसका स्वरूप अनिर्बचनीय  
 २९०, उसकी प्राप्ति की आवश्यक  
 बातें २९२, उसके इच्छुक की पह-  
 चान २९०, एक उच्चतर वस्तु  
 २५९, और उपासना २४३, और  
 ज्ञान ६१, ३६५, कर्म से ऊँची  
 २८८, गुरु से ३४९, द्वारा इच्छा  
 का तिरोभाव २८७, द्वारा मनुष्य  
 अमर और सतुष्ट २८७, द्वारा  
 योग २६४, द्वारा हानि नहीं  
 २९१, परा २५६, प्रगाढ २५७,  
 प्रेम का अमृत २८७, मार्ग ८१,  
 सबधी आवश्यक बातें २८९,  
 -सम्प्रदाय १४९, साधन और  
 साध्य, दोनों २८८, स्वयं अपना  
 फल २८८

भक्तियोग ६७, १५५-५६, १६९,  
 २४१, २६२, उसकी शिक्षा १५६  
 भगवत्प्राप्ति ९४  
 भगवत्प्रेम ४२  
 भगवद्गीता १३, २९, ३९, ८९  
 भगवद्भावना १७०  
 भगवदवतार ३१३ (पा० टि०)  
 भगवदाराधना १५४  
 भगवान् ७५-६, ७९, ९४, १०८, १२८,  
 १३२-३३, १३६-३८, १५१, १५८,  
 १६९-७०, १७२, १७८, १८५,  
 २५६-५७, २५९, २६२, ३२३,  
 ३४८, ३५३, ३६५, ३६९-७०,  
 ३७४, ३७६, ३८७, ३९४, आत्मा  
 की आत्मा १५७, उनकी ओर ले  
 जानेवाले मार्ग १७०, उसका  
 विराट् स्वरूप २९९, जगत् के पिता  
 १५७, नारायण २९९, पथप्रदर्शक  
 १५७, पालक १५५, प्राणों के प्राण  
 १५७, प्रेममय १४९, माता १५७,  
 सृष्टिकर्ता १५७ (देखिए ईश्वर)  
 भय, उन्नति में ईर्ष्या का ३८३, और  
 लाभ २११, गुण से खल का ३८३,  
 ज्ञान रहने से अज्ञान का ३८३,  
 दुर्बलता का चिह्न २४, धन से  
 दारिद्र्य का ३८३, रूप में बुढ़ापे  
 का ३८३, शरीर से मृत्यु का ३८३  
 भर्तृहरि ३८१  
 भलाई, और बुराई सापेक्षिक शब्द  
 २१८, दूसरे की ३०० (देखिए  
 शुभ)  
 भवसागर ३६३  
 भवसागर १४९  
 'भागवत' ३७४  
 भारत १६, २५, ४७, ७८, ९६, १००-  
 २, १११, ११३-१७, १२६, १३२,  
 १५०, २१०, २२२, २२७, २३४,  
 २३७, २३९-४०, २७४-७५, २९५,  
 २९७, ३००-१, ३०३, ३१४,  
 ३१६-२०, ३२३-२९, ३४२-४५,

३४७ ३४९-५ ३६६ ३७०-७२,  
 ३७४ ३८२ ३८७ ३८९ ३९२  
 ९३ उसका उत्पान ३३७ उसका  
 धर्म और मर्यादा समाज ३३४  
 उसका भविष्य सुदुष्मिति पर  
 ३३६ उसकी लोकलोकित १९  
 उसके अक्षयतन का कारण ३३७  
 उसके उठने के सुमोच ३३७  
 उसके महान् आदर्श ३३६ उसमें  
 एक कदावत् ८५ उसमें शान-भाव  
 का अन्वीकरण ३७ उसमें धर्म के  
 प्रति समझ ३ ३ उसमें पौराणिक  
 अभिव्यक्ति का दबाव २१ उसमें  
 शैतान की धारणा नहीं २ ७  
 चिरकाल से दुःख का भोक्ता ३३७  
 मध्य ३३४ वही अंधविश्वास  
 २३९ वही अतिथि का महत्त्व ३६  
 वही के इतिहास ३३ वही के नी-  
 जमान की प्रकृति और अंग्रेज ३३४  
 वही धर्म की परिणति २७६ वही  
 मैं सबसे ऊपर २१ (बेसिए  
 भारतवर्ष)  
 मायवर्ष ३८ ४५, ६५, १२६ १४७  
 २५६, ३१६ ३२२, ३३४ उसकी  
 अवलति का प्रमाण कारण ३३१  
 धर्मप्रवण या अन्तर्मुख ३१७  
 वही की छापवहोरी १४३  
 मायवासी १११  
 भारतीय आदर्श २२२ किसान २३९  
 शरीर ६८ नगर २२० भाषा  
 २७७ मग ९६ वस्तु ३७५  
 घंट २७५ समाचारपत्र ३४३  
 साम्राट् २७९ हिन्दू २९८  
 मान अनाद्यक १५५ ईश्वरीय ६१  
 और कवि १३७ और वास्तविक  
 कार्य २१५ हीन-हीन एक बीजाटी  
 १ ९ मानवीय १३६ मुक्त ७९  
 धार्मिक ६२ धाम् ६१ धर्म  
 अतिक ३६ धार्मिकीय १४७  
 स्वाधीन ७२

मायुक उसका आदर्श १४९  
 माया अंधेरी तथा वैधीय ३७२ आर्ष  
 संस्कृत १६ मार्सकारिक १२१  
 पाकी ३१९ भारतीय २७७  
 मनोवैज्ञानिक ३  
 नाय्य और दर्शन ३६६  
 मिमाटन २७९  
 मुक्ति-मुक्ति ३ १  
 मूलीस ३५२  
 मृतोपासना १४७  
 'भैरवभावहीन प्रेम' २७६  
 भोक्ता उसकी परिमाण १६३  
 भोग ३ ८ उसकी भावना के साथ  
 स्वार्थ ७४ और आनन्द जीवन  
 १६२ और प्रकृति १७९ शेष  
 मंगुर, दुनिया के १६८ -विश्वास  
 ३५३  
 भौतिक आकर्षण ३४ आनन्दकला  
 २८ इच्छा २३२ क्रिया ९७  
 जड़-वस्तु १६७ उत्प २३२ पर  
 मान् ८६ प्रगति ९६ भावना  
 और प्रेम २६९ विज्ञान ५६ ११५  
 १५६ शास्त्र १२९ धाम्नी १५  
 सम्मता ३३४  
 भौतिकवाद १७२  
 भौतिकवादी १७७  
 भाव-प्रेम ३२९  
 भ्रम वैतम्य शब्द के दो मिला अर्थ  
 २ ४ -तंत्र २४३ तांत्रिक २ ४  
 -शास्त्री २ ४  
 मजदूर, अंधि ११३ धर्मन ११३  
 मजदूर ३५८  
 मणि अम्बर ३६९ ३८५  
 मठ-मार्गक १२७  
 नगर वर्ष २९५, ३२०-२१ ३२५  
 ३४१ ३७७  
 नगर टेम्पल ३४१  
 महास २९५, २९७-९८ ३१ ३४२  
 ३४५, ३४८-५ ३५२, ३५५

३५७, ३५९, ३६३, ३६६, ३७२,  
 -वाले ३११, ३१३, -वासी ३२२  
 मद्रासी, युवक ३८६, लोग २९८,  
 शिष्य ३३२  
 मधुकरि की प्रथा १८६  
 मन सयोग, उसका अर्थ १५१  
 मन, अचेतन का नियंत्रण १२१, उसका  
 लक्ष्य २३२, उसका सूक्ष्म रूप  
 २६७, उसकी अभिव्यक्ति ५,  
 उसकी क्रिया, बाह्य तथा आन्तर  
 ९९, उसकी वहिर्मुखी गति ९,  
 उसके कई स्तर १३७, एक इन्द्रिय  
 ३०, एक झील के समान १८०,  
 और अशुभ विचार ३१, और इन्द्रिय  
 १००, और घात-प्रतिघात ४, और  
 प्रवचना १९४, और प्राण से काम  
 ३९२, और सस्कार ३१, १४९,  
 चेतन ही अचेतन का कारण १२१,  
 तथा तन का नियंत्रण और प्रकृति  
 १८२, वंधा हुआ ५६, बहुत चंचल  
 १८०, प्रत्येक, उसका अपना शरीर  
 २६७ प्रभाव तथा तनाव ५६,  
 विचारशील १६७, समष्टि-मन  
 का अंश १६७, सूक्ष्म स्तर से बना  
 २६७  
 मनन ६६-७  
 मनरो स्ट्रीट २७२  
 मनस्तत्त्व-विश्लेषण १५०  
 मनु १८६, ३७९, उनका मत ३८३  
 मनुदेव २०६, २१०  
 मनुष्य, अधिकांश नास्तिक २४९,  
 अशुभ से ऊँचे १९४, आत्मा की  
 शक्ति द्वारा विजयी १८२, आदर्श,  
 उद्देश्य की प्रतिमूर्तिस्वरूप १३५,  
 इन्द्रियलोलुप १७२, ईश्वर-प्रेम  
 का आकाक्षी २६९, ईश्वर-प्रेम  
 का इच्छुक २६९, उनका धर्म  
 सवधी भ्रम २४५, उसका अतिम  
 लक्ष्य ३, उसका अपना आदर्श १५,  
 उसका अपना विश्वास और ईश्वर

१३, उसका आश्रयी स्वभाव और  
 दुःख १८१, उमका कर्तव्य १२,  
 १५-६, ३९, १४८, उसका कर्तव्य,  
 अन्याय का प्रतिकार १४, उसका  
 गुण और अवस्था ११२, उसका  
 चरित्र और दुःख-बलेश २९, उसका  
 चरित्र, सस्कार की समष्टि ३०,  
 उसका दृष्टिकोण, नियमित ३९,  
 उसका दृष्टिक्षेत्र २००, उसका  
 ध्येय ८८, उसका प्रकृत स्वभाव  
 १६९, उसका प्रतिरोध और पाप  
 १३, उसका प्रतिरोध न करने का  
 कारण १३, उसका प्रेम, आरोपित  
 २७०, उसका मन और शरीर  
 २६७, उसका मूलमंत्र १३८,  
 उसका लक्ष्य २६७, उसका विकास,  
 स्वभावानुसार १६९, उसका  
 विश्वास और ईश्वर २७१, उसका  
 सच्चा स्वरूप ११८-१९, उसका  
 सत्य से सत्य में गमन १३०, उसका  
 सासारिक भाव ७२, उसका  
 स्वभाव और शारीरिक सहायता  
 २९, उसका स्वरूप ७३,  
 उसकी अच्छाई का कारण १२०,  
 उसकी अमरता ११८, १६५,  
 उसकी आत्मा और शक्ति ६४,  
 उसकी आध्यात्मिक उन्नति का रूप  
 १४८, उसकी इच्छा-शक्ति का  
 प्रकाश ६, उसकी इन्द्रिय-भोग की  
 लालसा तथा ईश्वर २०१, उसकी  
 उन्नति का उपाय ४३, उसकी  
 उपासना २३२, उसकी गुलामी  
 और स्वतन्त्रता की इच्छा १०५,  
 उसकी जन्मजात-पवृत्ति २९,  
 उसकी दृष्टि और ससार २५४,  
 उसकी देह सवधी मान्यता ३१२ (पा०  
 टि०), उसकी प्रकृति ४९, २२६,  
 उसकी प्रकृति के अनुसार पवृत्ति  
 २६४, उसकी प्रज्ञा १०७, उसकी  
 प्रथम महान् साधना ९७, उसकी



प्रकृति के अनुसार विभाजन ८१  
 उसकी भूस ३३ उसकी मुक्ति  
 २१३ उसकी शक्ति की उच्चतम  
 अभिव्यक्ति १४ उसकी सत्य ईश्वर  
 की प्रकिया १८४ उसकी स्वार्थ  
 परता और एकात्म्य २३४ उसके  
 अध्ययन का विषय ९३ उसके  
 क्लेश का अंत २९ उसके चरित्र  
 का नियमन और वस्तु ३५ उसके  
 निर्गुण प्रह्व करने का प्रयत्न २४३  
 उसके लिए महान् की पूजा २७२  
 उसके साथ मनुष्य-आदि का योग  
 १५१ उसके स्वभाव का अंग  
 धर्म २७२ उसमें ईश्वर-प्राप्ति की  
 विधा २४८ उसमें ईश्वर का प्रवेश  
 २७१ उसमें एकत्व ही सृष्टि  
 विधान १६ उसमें पुष्ट बुद्धि १४१  
 उसमें बीबी सम्पत् २५७ उसमें  
 दो प्रकार की बुद्धि १४ उसमें  
 धर्म और परमेश्वर के प्रांत अज्ञा  
 ११ उसमें भेद का कारण ८७  
 उसमें युक्तिसयत विरवा २३६  
 उसमें विरव विद्यमान २७८ उसमें  
 सबसे निष्कण्ट धर्मात्म्य १४१ उसे  
 तीन वस्तुओं की अकारण २७१, एक  
 असीम वृत्त ११९ और अन्तःश्रवण  
 ३८७ और अपनी प्रकृति तथा  
 भावार्थ २६५ और अधुम १९४  
 और आत्म-चेतना ११९ और  
 आमास १८१ और ईश्वर संबंधी  
 विचार २१२ और कर्म न करने  
 का कारण १५५ और कर्मशीलता  
 १५५ और चेतना २२५ और  
 जीवन के विभिन्न भाव २५७  
 और धर्म ३२३ और धर्म प्रेरणा  
 की शक्ति १४ और परमेश्वर  
 १४ और पद्म २३१ ३२, २५९  
 और मानव रूप में परमेश्वर-पूजा  
 २४८ और विचार का अभिकल्पन  
 २३२ और विविध प्रेरणा ७

और शक्ति ७ मृगा और प्रेम २९०  
 -आदि ९ १४५ -आदि उसका  
 वर्तमान इतिहास १२७ -जीवन  
 ७२, ७६ ज्ञानी १९ तथा अस्वा  
 मायिक संघर्ष और मृगा १६  
 तथा कर्मफल और वर्तमान कर्म ७  
 तथा कर्मशीलता १४ तथा चित्त  
 १२८ तथा प्रतीक और अनुष्ठान  
 २७१ दुर्बल ३२३ दुर्बल और  
 आत्मा ३ ९ दो का परिणाम  
 २ ६ ठाण धर्म का स्वीकार्य ३१३  
 नाडी प्रधान २ ६ निम्नतम १५३  
 पवित्रतम ८९ प्रकृति का गुणधर्म  
 १ ५ प्रत्येक उसके भावार्थ की  
 निष्ठा १५ भविष्य का २१५  
 भोजी व्याघ्र और अधम्य जंगली  
 १२९ भौतिकपरामर्श २८३  
 मनुष्य में भेद १३ मुक्तिवादी  
 १३७ विज्ञानवेत्ता ३५४ -धर्म,  
 विरोधाभासी २७ संबंधी धिया  
 त्त २१४ सबसे मुझी की १ ३  
 सुख-दुःख की समाप्ति मान ५  
 स्वयं से पीड़ित १ १  
 'मनुष्य-धर्म' २७  
 मनुष्यत्व उसका अमूर्त भाग १४४  
 उसकी विद्यमानता १ ४  
 मनुसंहिता २ (पा टि)  
 मनोविज्ञान ६८ ११४ १५ २८  
 यूरोपीय ६९ व्यावहारिक १२  
 सन्धा १२१  
 'ममी' १४६ (पा टि)  
 मरमन (mormon) १३२  
 महा मा उनकी संपत्ति कठिन २८९  
 बेदीयमान ज्योति १९६  
 महादेव ३ ९  
 महान् आकृति ७६ उसकी परिणाम ५  
 'महानता' ११२  
 महानिर्वाण तप १६  
 महापुरुष उनकी धिया तथा धिय  
 ३५१; उन्हें विचार-शक्ति ज्ञान

७९, और भगवान् १४९, द्वारा उदात्त भाव का सग्रह ७९, शान्त, अमुखर और अज्ञात ७९, शुद्ध सात्त्विक ७८, सर्वश्रेष्ठ ७८

महाभारत ४४

महामाया ३५६

महावैराग्य ३०६

महाशक्ति ३५६

महिम चक्रवर्ती ३६१

माँ ३८१, उसकी छाया २०९, उसकी लीला २०८, २१०, उसके गुण २०८, उसके प्रति समर्पण और शान्ति २११, उसके लीला-सखा २०८, गोलाप ३०१, ३०९, ३११, गौरी ३०१, ३०९-१०, ३६१, दुखो मे दुख २०९, योगेन ३०१, ३६१, विश्व की निष्पक्ष शक्ति २१०, सारा २९७, सुखो का सुख २०९

माता, उसका कर्तव्य ४२

माता जी ३१० (देखिए सारदा देवी) मातृदेवी, उसकी भावना से प्रेम-प्रारम्भ २६२

मातृ-पूजा उच्चतम वर्ग में प्रचलित २१०, उसका उद्देश्य २०६, एक विशिष्ट दर्शन २१०, -विचार का जन्म २१०

मादक-द्रव्य-निषेध २३५

मानव-जाति, उसका चरम लक्ष्य ३, -प्रकृति २१४, -प्रेम में पाँच अवस्था २६९, -प्रेम, सदा अन्योन्याश्रित २७०, मन के स्तर और प्रकार १३३, वास्तविक ५, श्रेणीबद्ध सगठन ११, -समाज, -स्वभाव, उसकी कमजोरी ४१ (देखिए मनुष्य)

'मानव-निर्मायिक धर्म' २२८

मानवात्मा ८१, अनन्त १७३

माया ११८, २१५-१६, २५८, २९०, ३७५

मार्ग, कर्म ८१, ज्ञान ८१, निवृत्ति, ७२, प्रवृत्ति ७२, भक्ति ८१, योग ८१

मार्सेल्स १११

मिथ्याचार १५

मिनियापोलिस २३७, जर्नल २३७ 'मिरर' ३७३

मिशनरी, ईसाई ३४३, पत्रिका ३४२, पाखडी ३०७, लोग ३४९

मिस्र देश १२८, १४६ (पा० टि०), -वासी ८४

मिस्री, प्राचीन २०५

मीराबाई २७३ (पा० टि०), द्वारा ईश्वर-प्रेम का प्रचार २७३, रानी २७५

मुडकोपनिषद् १५८ (पा० टि०)

मुकर्जी, प्यारीमोहन ३३१

मुक्त २६१, होने में सहायक प्रक्रिया ७५

मुक्तावस्था ६९-७०

मुक्ति ७३, ८१, ८७, ९३, ९६, १११, १७२, २३०, २५६, २६७, २८८, ३००, ३३५, ३३७-३८, उसका अर्थ ३१, उसकी इच्छा २६९, उसकी खोज और दृष्टि-भेद ८२, उसके मार्ग पर मनुष्य १८८, उसके लिए सघर्ष ८१, उसको प्राप्त करने का उपाय ७१, और जगत् का कल्याण १८५, और सिद्धि ३४०, कर्म और प्रेम में २१३, कर्मयोग का लक्ष्य ८०, -कामना ३३७, तथा भक्ति ३००, नैतिकता तथा निस्वार्थता की नींव ८२, पूर्ण १७४, पूर्ण निस्वार्थता द्वारा प्राप्त ८३, प्रकृति से १८२, लक्ष्य २२२, -लाभ २२, ७०, -लाभ, उसकी इच्छा ३१, ८३, -लाभ, उसके लिए सघर्ष ८१, -लाभ, उसे करने का धर्म ८३, -लाभ, भक्ति में समव ३००

मुसोपाध्याय यज्ञेश्वर ३१९  
 'मुमुक्षु' १०५ उसका जर्न १०  
 'मुझे मठ-कु-बाघ' २६  
 मुशाबिमट, सिंगारविमू ३ ४ ३४  
 (बेसिए किडी)  
 मुससमान ३८ १२५ २६ १३४  
 १३८ २२५ २२८ २४४  
 ३३ ३३४ ३७ उसका  
 बोलसापन १४३ उसकी  
 सस्या-बुद्धि १२५ उसका प्रकार  
 १३६ उसका सार-तत्व १३६  
 और प्रोटोस्टेंट ईसाई २४३ और  
 बौद्ध १२७ और विश्वबन्धुत्व  
 १४३ जर्म १३४ ३६ जर्मघोष  
 २४४  
 मुससमानी अत्याचार ३६७  
 मुस्लिम जर्म २३७  
 मुहम्मद २७२ २७४  
 मूर्ति और प्रतिमा २२६  
 मूर्ति-पूजा २४५ उसका रहस्य १८८  
 उसके मार्ग २२५  
 मूर्तिपूजक २४५  
 मूसर, कुमाठी ३२३  
 मूसा ४७ १ ८  
 मूमजस १ २  
 मृत्यु उसकी निघानी २२९ और  
 जीवन १६८ ठेप ३३२ जम  
 है ३७९ सकोब ३३२, ३३५  
 तर्कन है १७७ स्वार्थपरता ही  
 ३३३  
 मृत्युमृत्यु जीवन ७८  
 म फ्राजर' २३५  
 मेडिसन स्त्रोवर कम्पर्ट हॉक २४३  
 मयर लॉर्ड २७१  
 मेरठ ३१९  
 मेरी हेल २९५ ९६ ३ ६ कुमाठी  
 ३२१ ३२४ ३४ ४१ ३०८  
 मेकराज ३१४  
 मे ६ ७४ १९५ बहूराठी १५८  
 'और मेरा' ७४-५, ८२ 'मही सु

२ ६ -मन ७९ 'मन हूँ' ११७  
 सरीर हूँ ११७ साली हूँ ९७  
 मैक्सवॉड कुमाठी ३९  
 मैसूर ३४८ नरेश ३८६  
 मोन-काम ३७  
 मोलोक देवता २ ५  
 म्सेण्ड ३२४  
 यंग कुमाठी ३२२  
 यजुर्वेद संहिता ३६८ (पा टि)  
 यज्ञ उसका महत्त्व १६ उसकी अग्नि  
 ३५७ प्रत्येक की बसिना १६  
 मुमि ३६  
 यज्ञेश्वर मुसोपाध्याय ३१९  
 यम १६ १६४ ३ ७ ३५४ ३७४  
 यमपुरी ३५९  
 यद्य और कीर्ति १७  
 यहूदी ६७ १४२, २ ५, २७७  
 इतिहास २२४ उनकी सत्या  
 १२५ प्वाति १९९ जर्म १२५  
 राजपि २५६ विचार-संपत्ति का  
 निर्माण २२४  
 'भाकी' २९६, ३८५  
 मुक्ताहार, उसका जर्न १८३  
 मुक्तिवाद १५६  
 मुनामी ८६ और रोमन ८४  
 मुनिरेयियन २६४ जर्म २३७ २७३  
 यूरोप ४ १११ १२६ १४७,  
 २ ५, ३ २, ३४३ ३४५, ३५२  
 ५३ -यात्रा ३१०  
 यूरोपियन प्लान ३१४  
 यूरोपीय मनाबिज्ञान ६९ समाज  
 तथा भारत का जर्म ३३४  
 'योक' (yoko) उसका जर्न १६९  
 योग ४३ ४५, १५१ २८ उसका  
 ध्येय ३१ उसका सापन १५१  
 उसकी अग्नि अक्षयता १२२  
 उसकी प्रीतिक क्रिया ७ उसकी  
 सजापिठ और आत्मा २३२  
 उसकी विधि का प्रत्य और अभ्यास

१२२, उसके आभ्यन्तरीण मूल-  
भाव १५३, उसके विभिन्न प्रकार  
१६९-७०, उसके सहायक १२२,  
एकत्वानुभूतिरूप १५१, कर्म ६७,  
१५४, १६९, कर्म के माध्यम  
से १५१, निष्काम ६७, ज्ञान  
६७, भक्ति ६७, १५५-५६,  
१६९, भगवान् के भीतर से १५१,  
मनुष्य को पूर्ण बनाने में समर्थ  
६७, मार्ग ८२, रहस्यवाद द्वारा  
१५१, राज १५१, १५३, १६९,  
२६४, २८८, विभिन्न, उनमें  
विरोधी नहीं ६६, शब्द, उसकी  
उत्पत्ति १६९, शब्द, उससे तात्पर्य  
१५१, -साधन १५१, -साधना  
१२२, -साधना और अनासक्ति ७५  
योगक्षेम ३४८  
योगाभ्यास ४३-४  
योगी ७८, ११७, १५०, २८०,  
२८३, उनका मत ११६, उसका  
कथन १८२, उसका लक्ष्य १८२,  
उसकी पहचान १२१, उसके लिए  
जीवात्मा, परमात्मा का योग  
१५१, और चित्त की एकाग्रता  
१२१, और सत्य की उपलब्धि  
१२१, कर्म १५१, ज्ञान १५१,  
भक्ति १५१, महान् २८३, राज  
१५१, सर्वोच्च १५३  
योगवाशिष्ठ रामायण ३८२  
योगेन ३१३-१४, ३१९, ३५४, माँ  
३०१, ३६१  
'योग्यतम की अतिजीविता' १२६  
योजना, सगठित और प्रचार-कार्य ३५२  
रक्तमेघ १२९  
रघुवर ३६२  
रज, उसकी कर्मशीलता ११  
रमावाही ३८६  
रसायनविद् १५३  
रहस्यवाद १५१, २८१

रहस्यवादी २६४  
राहट, प्रोफेसर २९७, ३२४  
राखाल २९८, ३५७, ३९१  
राग-द्वेष १३९  
राजपूताना १८८, ३२०, ३४५,  
३५७, ३६२-६३  
राजयोग १६९, २८८, उसका आलोच्य  
विषय १५४, और ईश्वरीय अनुभूति  
१७०, और शारीरिक व्यायाम  
३६४, मनस्तरव का विषय १५३  
राजसकर्मी ७९  
राम ३७१  
राम बाबू ३६२  
रामकृष्ण (एक व्यक्ति) ३६३  
रामकृष्ण २६१, २९८, ३१०, ३११-  
१२ (पा० टि०), ३२०, ३३०,  
३३७-४०, ३५६-५७, ३६१,  
३६३, ३७३, ३८५, ३९१, उनका  
जीवन, ज्योतिर्मय दीपक ३३९,  
उनका श्रेष्ठत्व ३१३ (पा० टि०),  
उनकी लीला-सहृद्दिमिणी ३१०  
(पा० टि०), उनकी सन्तान  
३४४, उनके शिष्य की विशेष-  
षता ३४४, गुरुदेव १९४, जीव-  
न्मुक्त और आचार्य २६१, ज्ञान  
के उदाहरणस्वरूप ३३९, -तनय  
३५८, परमहंस २५२, परम-  
हंस देव २९८, परमहंस देव,  
उनका आविर्भाव ३०१, -महोत्सव  
३५१, यतिराज १८५, स्वयं  
अपनी पुस्तक २२८  
रामकृष्णानन्द ३१९, स्वामी ३५१,  
३५८, ३९१ (देखिए शशि)  
रामदयाल बाबू ३०९-१०, ३७३-७४  
रामदादा ३६१  
रामनाड ३४८  
रामलाल ३६३  
रामानुज ३३५  
रामेश्वर ३००  
राव, डॉ० नजुन्दा ३३६

राष्ट्र ३३६ उसका अपना जीवन-  
काल ३३५ उसका निर्माण उपाधि  
प्राप्त व्यक्ति से नहीं ३३  
उसका निर्माण पलवान से नहीं  
३३ उसकी रक्षा ३७ उसके  
जीवन में मुख्य प्रवाह ३३८

राष्ट्रीय आध्यात्मिक जीवन ३३९  
जीवन ३३२ धर्म १४१ भाव  
१३६

रिपब्लिकन २३६

रीति-नीति ३१७-रिवाज २९ ४  
३३१

रज २११

रक्षा ३७३

रूप २२५ २६ और अनुष्ठान  
२६६ और सम्प्रदाय २६९  
और सिद्धान्त २६९

रोमन ८४ ८६, १४८ २८४ ३८६  
कैथोलिक २६४ कैथोलिक धर्म  
२८२

रुका ३१९

रुक्मी ३ ८

रुक्मिणी ३१९ के राजा १६९

रुक्मिणी २९८ ३५७

रुक्मिणी ११४ १८ ३१९ ३२३

रुक्मिणी ३८८

रुक्मिणी ३५२

रुक्मिणी २९६ ९७

रुक्मिणी ३५५ ३५

रुक्मिणी १११

रुक्मिणी १८२ और १८२  
१४३

रुक्मिणी ३१६, ३२ ३१६  
३२

रुक्मिणी १४३

रुक्मिणी ३९३

रुक्मिणी २९७ ३६४ ३८१ ३८५

८६ ३५५ २९५ ३८३

(विश्वकाम्य)

संस्कृत २७२

'सोकमठ' ३७८

संस्कृत और इन्द्र २ ६

संस्कृत-विभाग ३६७

संस्कृत, उसके साम्य १८६ अस्ति २

१ ६ उच्चतम ३७ उसका

उपासना ६ उसका प्रत्यक्ष ९९

उसका धार-धर २८८ उसके मर्म

उक्त पद्धति का कठिन २१२ उसमें

विस्तार की प्रकृति ८१ ऐहिक

९७ और जीवन २१९ और

दृष्टि २६४ और कर्म १७४

कर्ममात्र २५८ दृष्टिकोण से

इसी जानेवाली ७८ पाणिप

२ १ २३-३१ प्रत्यक्ष उसके

लिए तीन बातें ९९ प्रत्येक

उसका निरन्तर स्मरण १ ६

प्रत्येक एक कार्य १७३ भाषा

१६४ २५४ भौतिक जड़

१६७ विजातीय १ १ विद्यमान

एक ११७ सही १६४ सांसा

निक ३४ १७५

वहेमियां ३२

बाद ३७४

बाद ३७४

बाद ३७४

बाद ३७४

बाद ३७४

बाद ३७४

बाद ३७४

बाद ३७४

बाद ३७४

बाद ३७४

बाद ३७४

बाद ३७४

बाद ३७४

बाद ३७४

बाद ३७४

बाद ३७४

बाद ३७४

और वायुमण्डल ५७, और वैचित्र्य १२८, और सस्कार ३०, -चेतन १२१, तथा शब्द ४९, २६७, -तरंग ५६, ३५५, पश्चिम तथा पूर्व की तुलना २३८, पार्थिव १९५, -प्रणाली ३६८, मूर्त तथा प्रतीक २४३, व्यापारी, हिंसाव-किताव करनेवाले १८८, -शक्ति ६७, १६७, शुभ ३१, सहानुभूति का ५९

विजय वावू ३११

विज्ञानवाद ११९

विज्ञानवादी, पुरातन १७८

विज्ञानशास्त्र १६९

'विदेशी शैतान' ४०

विदेह, उसका अर्थ ६५, राजा ६५

विद्वत्ता, उसका मूल्य नहीं २२९,

और तर्क १९७, और पुस्तक ३७०, और वृद्धि १०७, प्रगति की शर्त नहीं १९७

विधवा-विवाह २३४

विवि, उपासना २९९, और प्रतीक २५१, -विधान ७०

विराट् और स्वराट् २९९

विरोचन ३०८

विलासमयता, उसकी जरूरत ३३४

विवाह, और व्यभिचार-त्याग १७६, -प्रथा ७७

विविधता, उसका अर्थ ३६७, जीवन का चिह्न २२९

विवेकचूडामणि १२ (पा० टि०)

विवेकानन्द, स्वामी ४५ (पा० टि०), १७०, १८७, २०५, २१२, २३७-३८, २७२-७३, २९५-९८, ३०१-४, ३१४-१६, ३१८, ३२०-२२, ३२४-२५, ३२८, ३३१-३२, ३३६, ३३८-४३, ३४६, ३५०-५१, ३५६, ३५८, ३६५, ३७१, ३८१-८२, ३८४-८६, ३८८-९०, ३९४, अद्भुत व्यक्तित्व ३२७, अपनी अन्तरात्मा के प्रति

ईमानदार ३७९, आत्म-तत्त्व के चिन्तक ३१५, उनका मुक्ति ही एकमात्र धर्म ३८०, उनका व्यक्तित्व और दर्शन ३८०, उनकी कार्य-प्रणाली ३६७, उनकी प्रकृति ३२२, उनकी समस्त कार्य-योजना ३६८, तूफानी हिन्दू ३५९, त्यागी सन्यासी ३२२, देवी अधिकार-सम्पन्न वक्ता ३२७, धर्म-महासभा में महानतम व्यक्ति ३२७, ब्राह्मण उपदेशक २३७, राजनीतिज्ञ नहीं ३५१, सत्य की शिक्षा देने के सकल्पी ३६९, हिन्दू उपदेशक २१२, हिन्दू सन्यासी ३२७

विशेषाधिकार ३६७

विश्व, उसकी आत्मा सत्य है १६४, उसकी द्रष्टव्य क्रिया ११६, उसके अपरिहार्य व्यापार ७३, उसमें आत्मा एक १६७, उसे गतिमान करने-वाली शक्ति २५५, एक परिवर्तन-शील पिण्ड १०६, एक प्रतीक २४४, जगत् १५२, प्रेम की अभिव्यक्ति मात्र २५५, ब्रह्माण्ड २५६, ब्रह्माण्ड, जड द्रव्य का सागर ११७, मानो परमेश्वर का स्थूल प्रतीक मुक्ति के लिए २४६, लहर और गर्त के सदृश ११३, शुभ और अशुभ का सघात २११, सघर्ष का परिणाम ८१, समस्त, उसमें एकता तथा अखण्ड सत्य १६८, सम्पूर्ण, एक शरीर १६७

विश्ववधुत्व और साम्य १४४

विश्वात्मा २१७, अनन्त है १६७, उसका अंश १६७

विश्वास-भक्ति ३६३

विपमता, सृष्टि की नीव ८६

विषय-भोग १०५, १३६, २९१

विषयीकरण २५९, उसका प्रयास २५९

विषुवत्रेखीय उष्ण देश ३९४

विष्णु २४८ भक्त २४२  
 बीट, छयाका अर्थ २०९ छया उसकी  
 पहचान ३२४  
 पीरबंद गांधी ३२९ ३२८  
 बुदा और प्रस्तर-युवा २२५-युवा  
 २२५  
 बेंड्ट हॉल २१२  
 बैद २३ ३८ ४७ १३८ १६२, १६६  
 २ ४ २ ६ ३ ३३९ ३६६  
 उषका कथन ३८० उसका मूलभूत  
 सिद्धांत १६६ और वेदांत ३९  
 प्राचीन २१ रूप समुह ३१३  
 (पा टि )  
 वेदान्त १६ १८७ २११ ३२४  
 ३४९-५ ३७२ उषका मत  
 ३५९ बर्तन ४४ १६६, धर्म  
 उसका उद्देश्य तत्त्व ८१ ऐतिहास्य  
 से उद्भव १८८ सूत्र उसके प्रणेता  
 ६५  
 वेदान्त 'एंड दि वेस्ट' २१४ (पा  
 टि )  
 वेदान्ती १ ३ ७ अर्थ २५९  
 उषकी चार धर्म १९१  
 वेपद्याना १७५  
 वैज्ञानिक आविष्कार २७ प्रमाणी ७  
 वैदिक सृष्टि २ ६  
 वैर भाव ३५  
 वैराग्य ७४ २५९ २०९  
 वैराग्यसूत्रम् ३८१ (पा टि )  
 ३८३ (पा टि )  
 वैराग्य १४५, १४८ जीवन का विह्वल  
 १२८ भाव ८६  
 वैराग्य मत ३ ७  
 व्यक्ति 'उत्थित ३ ३ उषकी चार  
 धर्मियाँ १६९ उषका सम्प्रदाय  
 २३२ उषके आदर्श की कल्पना  
 और युवा २५४ उषके जीवन  
 में वर्तमान १६ उषके माध्यम से  
 विचार की शक्ति २७१ उषके  
 तीन शक्तिवादी ११ उष स्वप्न

की चाह १९१ एकान्तवादी  
 १ और राष्ट्र ३३०, और  
 सत्य-अनुसृष्टि की चाह १९१ कर्म  
 से परे ७२ जंगली ११३ जीवन  
 अर्पित करने को उद्यत ६१ ज्ञान  
 के आसोक से सम्बन्ध ३७८ धर्मज्ञ  
 गृही २१ धर्मार्थ ८८ धार्मिक  
 उसकी विजय अवधि ३५१ निष्ठा  
 ज्ञान १४३ भावना-धील २७१  
 योगप्रिय १५ योगमार्गी १४९  
 विचारशील तथा गतभेद १२९  
 धार्मिक ७९ धार्मिकसम्पुक्त  
 २६४ स्वतंत्र ७६ (वैदिक-अनुसृष्टि)  
 व्यक्तित्व उषका महत्त्व २२९ और  
 जीवन २२९ और मानवीय  
 जीवन २२९ प्राप्त करने का प्रयास  
 २२९ समास्त सफलता का रहस्य  
 २६१  
 व्यक्तित्ववाद ८२  
 व्यक्तित्ववादी ८२  
 व्यक्ति-शरीर १६७  
 व्याप ४४ 'गीता' ४४  
 'व्यापि' ६८  
 व्यापार और संगीत २३४  
 व्यावहारिक धर्म का तीया अर्थ  
 १७१ प्रयोजन १४९  
 व्यास १५, १८७ बैब ६५ ब्रह्मज्ञान  
 सूत्र के प्रणेता ६५  
 युमान बंधु ३२१  
 संकर ९ १ ३३२ ३८१  
 संकराचार्य १२९ ३३५  
 शक्ति अनुसृष्टि और ज्ञान २१  
 अमतिहल ३१२ अमृत ३१  
 अगाध्य-गांधी ३२३ अहितकारी  
 ३६१ आध्यात्मिक १३१  
 इच्छा ७५ उषका कथन २११  
 उषका विद्वान् आवरण २ १  
 उषका विचार २ ६ उषका  
 विचार में प्रथम स्थान २१

उसकी परिभाषा ११८, उसकी बड़ी अभिव्यक्ति ८, उसके सघर्ष होने से गति १२८, उसके साथ बल का विचार २११, और धर्म के बाह्य रूप २२४, कल्याणकारी ३६१, केन्द्रगामी १३९, केन्द्राभि-मुखी ७३, केन्द्रापसारी ७३, १३९, खल की २०७, जीवत १९८, दैवी २६१, द्वारा गति-शील जड ११८, निर्माणशील, उसका उद्भव किस प्रकार ८६, प्रबल आत्मा की ३१२ (पा० टि०), प्राकृतिक १३१, प्रेरक १९, मन ७५, मानसिक १९४, विश्वव्यापी २१०, शुभ ३१०, सत की २०७, सब घटना के पीछे २०६, सर्वत्र व्यक्त २०८, सर्वत्र है २०६, स्त्री है २०८ 'शक्तिमान' २७५ शब्द, उसको प्रकट करने के प्रतीक ४८, और आनुषंगिक भाव ४८, और भाव स्वभावतः अविच्छेद्य ४८, और विचार अन्योन्याश्रित २४६, द्वारा भक्ति २६७, पवित्र और रहस्यमय २६७, -प्रतीक ४८, प्रत्येक विचार का अर्थ २६७, मनुष्य के उच्चतम भाव का शरीर २६७, शक्ति, उसका परिचय ४९, शक्ति, उसका महत्त्व ४९ 'शम', उसकी परिभाषा १००, और 'दम' ९९-१०० शस्त्र ३११, ३५४ (देखिए सारदानन्द) शरीर १८, ७६, ८४, ९५, ११३, ११८, १२३, १६३, १६६, १७६-७८, १९२, १९४, २६७, २६९, २८४, अध्ययन का विषय ९३, आत्मा का केन्द्र २२१, उसका निर्माण ९४, उसके प्रति दृष्टिकोण २८३, उससे आसक्ति, दुःख का कारण १२३, उससे ऊँची वस्तु

का अनुभव २३२, उसे आत्मा समझने का भ्रम १९५, और मन ७१, २१७, और मस्तिष्क २१८, और वासना २००, जड २५१, जीर्ण २२१, नवीन २२१, बाह्य ७५, मन का स्थूल रूप २६७, -विज्ञान ३२, शत्रु और मित्र ९७, स्थूल स्तर से बना २६७, स्वयं से छोटा जगत् १६७, स्वयं सबसे बड़ा रोग २२२ (देखिए देह) शशि ३०५, ३१०-११, ३५१, ३५७-५८, ३९१ (देखिए रामकृष्णानन्द स्वामी) शाडिल्यसूत्र ३८२ 'शात' प्रेम २६९ शांति, शाश्वत, उसका पथ १६२ शा, अक्षय कुमार ३२३ शास्त्र ग्रन्थ, आधुनिक २६७, -पाठ ३४९, मतवाद मात्र ३३९ शिकागो २३४, २३७, २७२, २९५, ३०२, ३२०-२१, ३२५, ३२८, ३४१, ३४३, ३५०, ३५३, ३५८, ३६३-६५, ३६८, ३८७, महामेला ४०, ट्रिव्यून ३१८, हेरल्ड २७२ शिक्षक २९६, पुरोहित और पैगम्बर २२४ शिक्षा, उसका जनता में प्रचार और नाश ११३, और परिवेश १३०, नैतिक, उसका लक्ष्य ८२, -प्रसार ११३, बौद्धिक, उच्चतम १०६, सच्ची, उसका प्रथम लक्षण १५३ शिल्पकला और ईश्वरोपासना १३७ शिव २४८, ३९४, चिदानन्दस्वरूप ३०९ शिवोऽहम् ३०९-१० शिशु, नाडी प्रदान मनुष्य २०६ शिशुशाला १७२, २४८, ३८८ शिष्य, उसका गुरु में विश्वास आवश्यक १९५, उसकी गुरु के प्रति पूजा १९९, उसकी पूर्णता और मुक्ति-



प्राप्ति २०३ उसकी सहज-शक्ति  
 १९३ उसके नियंत्रण में इन्द्रिय  
 १३३ उसके लिए आवश्यक धर्म  
 १९२-९३ २० २०३ और  
 विषयता का अधिकारी १९३;  
 वही पुरुष का उत्तराधिकारी २९३

‘विषयत्व’ १९

शुद्धदेव ६५

सूत्राचारवादी २३५

सुम ३ ५ ८, २ ५ २ ७ २११  
 उसके करने की प्रेरणा ईश्वर २३९  
 और असुम १७४ १९४ २०७  
 २१ २१९ और असुम आस्था  
 के लिए बर्बनस्वरूप २९ और  
 असुम उनके ब्रह्म परिणाम २९  
 और असुम उसकी आस्था  
 २ ६ और असुम उसकी परस्पर  
 अनुभूति २१८ और असुम  
 नठिया के समान १७४ और  
 असुम-शक्ति ५७ और असुम  
 शक्ति की समष्टि ८५ और मनुष्य  
 में निहित उद्देश्य १७५ कर्म  
 १६, १२ कर्म उसका फल  
 २९ कामना १३ कार्य ५८  
 २९२ कार्य करने का माध्यम  
 २७१ फल ५७-८, ३३७  
 वस्तु, उसकी समष्टि ८४ वस्तु,  
 उसके प्रति लाठिया भ्रम १९४  
 संस्कार ३१

सुवासुम १९९

संज्ञान ४४ ९६, ९८ १८२, २ ५

२१२ २१९ अक्षरारूपी १८९

और बुद्धिमान १ ७

‘सौख्योपदेश’ १४९

स्वाम ३७१

सद्भा उसकी परिचाया १ १ और

शक्ति ६१ -शक्ति १५१

१५८ ३४९

समय ६६ उसका अर्थ १८७ एवं

समय ६७

‘श्री रामकृष्ण की जीवनी’ ३१७

शेष उसका मार्ग १६२

श्वेताश्वतरोपनिषद् २२ (पा टि )

२२२ (पा टि०)

संगठन उसकी आवश्यकता ३८७

उसमें अनुसूच ३८७

संनित-नष्टकी ३९२

संन उसकी आवश्यकता ३७२

संनर्ष आध्यात्मिक १२४ उसकी

उत्पत्ति २६ उसके लिए निरूपण

९७ एक बड़ा पाठ ९६ जीवन में

कारणायक ९६

संत उसकी शक्ति २ ७ और पापी

२ ७ २११ और शहीद २२७

शेरेठा २७५ शिबकृत २२६

संग्यास १६, २४ १८४ ३५५, ३६१

उसका अर्थ २८७ -ग्रहण करने से

पूर्व २९६ -जीवन २७ ३२६

-वर्ग ३५५

संग्यासी २४ २६-७ ४३, ४५

१३२ १८८, ३ १ ३७९, ३८१

आदर्श ३७ उनका मत ३ १

उनके लिए मित्रता और प्रेम-बन्धन

३७९ उसका कर्तव्य १८५

उसका जीवन १८४ उसका पत्नी

से मास्ता नहीं १८५ उसका

मत सम्प्रदाय नहीं १८४ उसका

कर्म १८५ उसकी परित्राया

२८८ उसके लिए मित्रता-भूति

१८६ ३५९ और गृहस्थ १८७

३६१ और संग्याधिनी २८२

पदार्थ ३६१ वेदशीर्ष ३८ धर्म

का अर्थ १८४ शब्द १८५

सम्प्रदाय १८५

संयुक्त राज्य ३२९

संघाट, अथेयन १६५ अति भयानक

कुत्सल ३८ अनन्त अतीत

का इतिहास १०६ अपने कर्म

द्वारा पाने का अधिकारी

६४, उसका इतिहास २१३, २७१, ३५१, उमका उपकार, स्वयं व्यक्तित्व का ४९, उमका ज्ञान-लाभ, मन से ४, उसका दृष्टान्त ५३, उसका ध्वंस और चरम साम्य १४६, उसका नियम ३३२, उसका मुख्य धर्म १२५, उसकी गति २१८, उसकी प्रकृति ८५, उमकी वस्तु प्रतीकरूप में ४७, उसके कार्य का सर्वोत्तम उपयोग ७३, उसके दुख को बढ़ाते जाना १८२, उसके द्वारा उपामना का आरम्भ और परिणति २१५, उसके प्रति उपकार का अर्थ ८४, उसके लिए अग्नि का उदाहरण ६६, उसके लिए अभिशापस्वरूप २३६, उसके प्रति ऋणी ५४, उसमें आश्चर्य की बात १०३, उसमें एकागी शिक्षक २१५, उसमें कठिन बात १७, उसमें दुख का मूल ३, उसमें पूर्ण सतुलन सम्भव नहीं ८७, उसमें बुराई क्यों २३०, उसमें भलाई-बुराई, सब जगह २१८, उसमें सम्प्रदाय की सख्या १२७, उसमें हँसी की अपेक्षा आँसू २०७, ऐंद्रिक १९५, और तीव्र इच्छा २०१, और दया १८२, और प्रकृति ४१, और स्वर्ग, इन्द्रिय से वैवे १९२, कर्मबहुल ७३, -चक्र ८४, -चक्र, उससे छूटने का उपाय ६२, चरित्र-गठन के लिए ५४, झूठा दृश्य-जाल १५८, -त्याग ३३७, न अच्छा, न बुरा ५०, प्रतीक है ४७, भोग के लिए नहीं ६४, माँ की लीला २१०, -यत्र ८८, रूपी क्षीरसागर १०७, -ब्यूह ५८, सत्य नहीं है १९१, सुख-दुख से बना २०५, -स्वप्न ७२, स्वयं पूर्ण ५०

सस्कार ३, ३२, अशुभ ३०, उसका नाश, शुभ द्वारा ३१, उसकी परिभाषा ३०, उसके द्वारा मनुष्य का चरित्र निर्मित ३०, बुरा, उसकी उत्पत्ति का कारण और व्यक्ति ३०, मनुष्य की जन्मजात-प्रवृत्ति २९, -समष्टि ८७, सु, और सत्कार्य की प्रवृत्ति ३१

संस्कृत, आर्य भाषा १६०, उसमें 'जाति' का अर्थ ३६६, उसमें दो शब्द ६०, कवि ६०, कहावत ११८, दर्शन ४८, पाठशाला ३११

सहिता, यजुर्वेद ३६८ (पा० टि०)

सतयुग ८५-७, २३४

सतयुगी, धर्म ८६, भावना ८६

सत् २२, ६०, १५६, १६६, २०७, २११, और असत् ५७, २०३, ३९४, कर्म १७, ८८, कार्य ३०, ६२, ७५, ७८, ८२, ८९, १३७, ३०१, ३०३, ३३०, ३८३, चिन्तन ३०, पुरुष ३८, यथार्थ ३३, वस्तु ११८, सस्कार ३०, सर्वोच्च फल ६०, सिन्धु १५६ (देखिए शुभ)

सत्कर्मि, स्त्री और पुरुष २२६

सत्ता, अद्वितीय निरपेक्ष ११९, अनन्त ७०, १९५, असीम ७०, २१४, निरपेक्ष २५९, निर्गुण २१६, विराट् १४५

सत्य ६६, २९२, अद्भुत २४६, अनन्त १३४, अनश्वर ३४४, अन्तरस्थ ३७८, उच्चतम १९६, उच्चतम, उसके ज्ञान की प्राप्ति २०२, उच्चतर १३०, ३६६, उसका आविष्कार परमाणु-विषयक १०८, उसका प्रभाव, अनन्त ३६९, उसका स्वरूप १०९, उसकी उपलब्धि और योगी १२१, उसकी जय अवश्य ३२३, उसकी तुलना ३७८, उसकी परिभाषा

उसका अस्तित्व १ ९ उसकी सीमा ४ उसकी सीमा में ही चिन्तन २७१ उससे परे जाने का उपाय २७१ और प्रवृत्ति ६३ और बुद्धि से परे २८५ और व्यक्ति २८७ कर्मभ्यता ४ प्राण्य जगत् २८ प्राण्य व्यापार १६३ पशु २३ पतित सुख और प्राणी १९९ निर्वचन १४६ पाँच ४६ ५७ ६५, २९९, २८५ भोग १४६ मन और बुद्धि ५४ मकार्ष १ ९ आस्तिकिक २३ भिलास ५५ विषय १३६ सीमाबद्ध १६० १८ सुख ६८ ११९, १७१ २६८ २७ सुख और बौद्धिक सुख २७ २७४ सुख और माया ७१ सूक्ष्म २९

इन्द्रियातीत तथ्य २४६ इष्ट वेषता निर्बुध २८६ इस्मिष्ट मेम ३८५ इस्लाम २४ २४९ धर्म २७८

ईश्वर ४४ तरंग २२२ सिद्धान्त ४४ ईगो ४८ (पा टि ) ईश-स्तिरस्कार २५९ -पूजन २६ ईसोपलियव १५ (पा टि ) १५२, १५७-५८ (पा टि ) ३३७ ईश्वर २४ ६१ ६४ ६९ ८९ ९४ १ ९ ११९, १२४ १४५, १५५, १७९ १९९, २ ५-८ २१ २१४ २२१ २२८ २३ २५६, २७४-७५, २८४ ३ ३२ ३२३-२४ ३२६ ३३३ ३३७ अज्ञात और ज्ञात नहीं ८९ अज्ञेय ८८ अनन्त अलम्ब १५८ अनन्त भुव का माण्डार २ ४ अनन्त ज्ञान १५८ अनन्त सत्ता १५८ अनन्त सर्वज्ञत्वमान ६७ अन्वेषक २५८ अपरिचामी और अजर ६२ मार्का धाहीन २२२ आत्मा के आकर्षण का केन्द्र २ ७ इन्द्रिय-बुद्धि से

परे २८५ उपादान कारण २ ८ १ उसका ज्ञान और सेमेटिक धर्म २३७ उसकी इच्छा १८१ उसकी उपासना और अभ्यक्त आत्मा ३४ उसकी उपासनास्वरूप्य प्रकृति २९६ उसकी कृपा २४९ उसकी दो धारा २८४ उसकी चारणा भाषा २९५, २९७ उसकी परि २६५, २८१ उसकी पूजा २६ उसकी प्रत्यक्ष उपलब्धि ४१ उसकी प्राप्ति ठर्क से नहीं १६६ उसकी बाणी ६३ उसकी समुच्चता १७९ उसकी समुच्च धारा से निर्गुण धारा १८ उसकी सत्ता २८१ उसके अस्तित्व में विश्वास २ ३ उसके चिन्तक २३२ उसके नाम में महान् नाम २५३ उसके प्रति विकासशील भाव २५८ उसको पाता चरम उद्देश्य २२९ उसकी समुच्च रूप में पूजनेवाले २६ उसमें मिश्रित बुद्धि १ ६ उससे प्राबुर्भूत विषय २ ९ एक उपास्य १८६ एवं आत्मा १६७ और अद्वैतभाव ९६ और कुर्वर ३५२ और द्वैतवादी ९६ और बन ३५ और पूजा तथा धर्म १९१ और मानवीय अभिव्यक्ति २६ और ऐतान १८८ और सृष्टि २ ८ अन्तरात्मा ३८ कारण २ ८ केवल प्रेम के लिए २ ८ चिन्तन से भी भयना २९ चिन्तन २ ३ चेतन और धारण २ ९ चैतन्यस्वरूप ३ १ जगत् का केन्द्रमन्त्र १५८ जगत् का समष्टिस्वरूप ६ जगत् के वासपकर्ता ७१ -आम २३१ २३३ तथा व्यक्ति और हिन्दू दर्शन २३२ तथा स्वर्ग २५५ -वर्तन १५ १५३ इच्छावादी ९७ बुद्धि ३२७ द्वैतवादी का ९६ धर्ममय २९८ -धारणा ६७ २९३

नि स्वार्थ पुरुष ६७, नित्य २०४,  
 नित्य ज्ञाता ८९, नित्य विपयी ८९,  
 नित्य शुद्ध ६२, निर्गुण ९४, २८६-  
 ८७, २८९, निर्गुण और मनुष्य  
 १८०, निमित्त कारण २०८, २१०,  
 निर्विशेष, उसकी उपामना का माध्यम  
 २८९, परम इच्छामय ३०३, पूर्ण  
 आनन्द १५८, पूर्णत्व १३१, प्रकृत  
 ६२, प्रकृति मे व्याप्त २३२, प्रकृ-  
 तिस्थ ८३, -प्राप्ति २३४-३५,  
 प्रेममय और सर्वशक्तिमान ६५,  
 बहु जीवात्मा के रूप से २९९,  
 -बुद्धि १५३-५४, बुद्धियुक्त १०४,  
 भक्ति २६२, भय का प्रतीक ३८९,  
 मनुष्य के साथ अभिन्न ८९, महिमा-  
 मय, अपरिणामीस्वरूप २९७,  
 मानवीय २०४, यथार्थ आत्मा ८९,  
 रूप १५४, रोग दूर करने की शक्ति  
 ३८९, वाद, सगुण १८६, विश्व  
 का सर्जक और शासक २०४, विश्व  
 की आत्मा १८१, विश्वव्यापी बुद्धि  
 १०६, १२६, विश्व से परे २३२,  
 विश्वातीत २३२, शब्द की महिमा  
 १०७, शाश्वत २६६, सबधी अन्त-  
 र्मुखी जिज्ञासा २३७, सबधी  
 धारणा ६२, ६५, ७१, सबधी  
 धारणा और अद्वैतवाद ८९,  
 सबधी सिद्धान्त २००, सगुण ५८,  
 ६८, ९६-७, २०४, २५९-६०,  
 २८७-८८, सगुण और मन १७३,  
 सगुण का ज्ञान और वेदान्त  
 ५९, सत्, मनुष्य की महान् कृति  
 २६०, समी आत्माओं की आत्मा  
 १८१, २०९, समष्टिस्वरूप ३०१,  
 समुद्ररूपी २६०, सर्वशक्तिमान  
 ३२९, सर्वशक्तिशाली २६६,  
 सविशेष २८८-८९, सृष्टि का  
 निमित्त तथा उपादान कारण  
 २१०, सृष्टि का रचयिता २०४,  
 २०८, सूक्ष्म इन्द्रिय से अधिक

समीप २९०, स्रष्टा ही नहीं, सृष्टि  
 भी २१०, स्वतः सिद्ध २९७, स्वयं  
 विश्व २१०, स्वाधीन २९४

ईश्वरत्व १८१

ईश्वरीय पुरुष ३६६, विधान ३६५,  
 सत्ता १०९

ईर्ष्या १३६, २१३, ३३९, ३५१-५२,  
 और सन्देह का परित्याग ३२४,  
 राष्ट्रीय चरित्र का धन्वा ३२९

ईसप की कहानी १५५

ईसा ७, ५५, १२६, १५२, १६७, १७६,  
 २२९, २४१, २५४, २५८, ३००,  
 ३६१, ३८६ (पा० टि०), -मानव  
 ८, १०५-६

ईसाई १०५, १६७, १८२, २०३,  
 २५८, २७९, ३३८, ३६४-६५,  
 और समृद्धिशाली राष्ट्र ५०, कट्टर  
 और मिशनरी ३७१, कट्टरपथी  
 शत्रुभावपन्न ३९३, दावा २७८,  
 दोस्त २७९, धर्म ५०, १८२,  
 २३१, २४०, २४९, ३४०, धर्मा-  
 वलम्बी राष्ट्र की समृद्धि का कारण  
 ५०, धर्मोपदेशक ३५०-५१, भूमि  
 २२८, महिला ३१३, मिशन ३३९,  
 मिशनरी ३११, ३४० (पा० टि०),  
 राष्ट्र ५०, लोग १७२, ३६२,  
 वैज्ञानिक ३८६, वैज्ञानिक सम्प्रदाय  
 ३८७ (पा० टि०), ३९३, सज्जन  
 ३७८

ईसात्रेल ३७९, मैर्क्किडली, कुमारी  
 ३४४, ३४६, ३९१

ईसामसीह ९७, १५५, २३१, २३३,  
 २४०, २९०, ३२४, ३६०

ईस्ट इन्डिया ३५९

उड, श्री ३८७

उत्तर मीमामा २०३

उत्तरी ध्रुववासी १८८

उत्थान और पतन १०२, -पतन २०२  
 उन्नति, और अवनति १८२, और दूख-

सुख की बीजिका ५२ और बिकास  
 ५१ और बुद्धि १२३ नीतिक भाव  
 की और मनुष्य का संग्राम ६३  
 उपकार २६६ उनका संकुचित अर्थ ४  
 उपनिषद् ४४ ६ ९५, १४२, २ ३  
 २४१ ३२९ अग्निम १७८  
 आधुनिक ४३ १७८ ईस १५  
 १५२ (पा टि) १५७-५८ (पा  
 टि) ३३७ उनका कथन १४१  
 उसका अग्निम शब्द १८ उसका  
 केन्द्रीय भाव १७३ उसका ज्ञानभाग  
 और संकराचार्य ९४ उसका नीति  
 भाग और बुद्धि ९४ उसकी कथा  
 का तात्पर्य १७९ उसके अध्ययन से  
 लाभ १७८ उसमें विचार भाव  
 ९४ और गीता १७८ और वर्धन  
 १८ कठ ९५ (पा टि) १४  
 (पा टि) १५९, १६१ १७८  
 २१४ (पा टि) ३ १ (पा  
 टि) छात्रोप्य ८९ प्राचीन ९४  
 १५ प्राचीनतर १७८ मुद्रक  
 २९९ (पा टि) द्वैताद्वैतर  
 ४४ ५८ (पा टि) १ ७  
 (पा टि) २८४ (पा टि)  
 ३३७  
 उपमान ११६  
 उपयोगिता उसका आधार १९६  
 उसका चरम बिन्दु २७ और  
 आध्यात्मिकता १९९ और नीतिक  
 नियम १ ६ मुख्य बुद्धिकोण  
 १९९ मध्य की बगैरी नहीं  
 १६  
 उपयोगितावादी १९६ १०८ अविद्वेदी  
 २६ आधार १९९ और गमात्र  
 १९७ नागिनर २६९ नियम तथा  
 ममात्र की स्थिति १ ७ नीतिक  
 १७४  
 उपादान आध्यात्मिक ५७ उपायोगी  
 ११८ और निमित्त कारण १ १  
 विद्वानुपायोगी ११८

उपासक उसकी क्रमोन्नति का स्वीकार्य  
 ६१ और उपास्य ६२  
 उपासना शैव ५८ - चारवा २८९  
 निबिद्येव की २८९ पूर्वज की  
 आत्माओं की २९२ प्रतीक ५८  
 मृत-मेत की २९४ मृत व्यक्ति  
 की २९२  
 उपास्य शैवता तथा मृत पूर्वज ८२  
 ऊर्ध्व भी ३ ७  
 ऊर्ध्व उसका परिणाम २६६ संवा-  
 रणवाक १ ५  
 ऋषेद ५ प्राचीन १३४ संहिता १९२  
 ऋचा १९४  
 ऋषि १६८ २७७ ३ १ उनका  
 सत्यानुसंधान १७२ उसका अर्थ  
 २४१ उसकी परिमाणा १९४  
 चरित ५८ तथा नियम का आवि-  
 श्यार २४२ प्राचीन ७९४  
 विचारों का द्रष्टा २४१  
 एकरव २१३ उसका भाव २४ उसकी  
 और १४६ उसकी सोच २१,  
 २३८ उसकी प्राप्ति २३८  
 उसकी रसा २४ ऊँच-नीच में  
 १५७ और मन २८ जाति में  
 १५७ शैवता और मनुष्य में  
 १५७ भर-भारी में १५७ भाव  
 २८४ आमक २८ वस्तु के  
 अन्तस्त्व में १५७ भारतीय  
 नहीं (बौद्ध मतानुसार) २८  
 एकत्वदर्शी पुण्य १५७  
 एकमेवाद्वितीय ८७  
 एकेश्वरभाव ८९ २३२ शूद्रक भाव  
 का आग्रह ८३  
 एद्विन आर्नस्ट १५९  
 एही धीमती ३८७  
 'एविकक कश्चर मीमांसनी' ३०१  
 एवम २६४

एनिसक्वाम ३४१, ३५५, ३५८,  
३८४, ३८६, ३९१  
एनी वेसेन्ट, श्रीमती ३०९  
एलिया २३१  
एलोहिम (Elohim) २३१  
एवॉन्स्टन ३९१  
एगिया २०४, ३११, वासी २३१  
'एगिया की ज्योति' १९४, २५७  
ऐक्य, उसकी प्राप्ति २३८  
ॐ, वेद मे उसकी महिमा १७०  
'ओडिन' देवता १६९  
ओलि बुल, श्री ३९१, श्रीमती ३९१  
ओल्ड, श्री ३७६  
'कट्टर' ३११, पादरी ३४२  
कट्टरता ५६  
कठोपनिषद् ९५ (पा० टि०), ११३  
(पा० टि०), १४० (पा० टि०),  
१५९, १६१, १७८, २१४ (पा०  
टि०), उसकी भाषा १७८  
कथा, नचिकेता और यम की १६१-  
६५, माया और नारद की ७५-६,  
रोम के धनी की १६९, सिंह और  
भेड की १८, २३६, २६०-६१,  
हरिण और कुत्ता की १५५  
कथा-नायक २४०  
कनाडा ३३४  
कन्फ्यूशस १९७  
कन्याकुमारी ३३८  
कबीला, उसका देवता ६३, उसका  
रक्षक ६३, और प्रेम ६३  
कबीलीय भाव ६४  
'कर्मशियल एडवर्टाइज़र' ३४३  
कर्ण-यन्त्र और श्रवण ज्ञान ११०  
कर्तव्य-भाव ६४  
कनॅल आल्कट ३८२, हिगिन्सन  
३४७, ३९०  
कर्म, अशभ २७, उसका परिणाम

२२९, उसका फल ११४, १२०,  
उसकी महत्ता २७, -काण्ड २५३,  
२५९, -काण्ड और वाह्याचार  
२४०, क्रियमाण २१९, दोष  
१२०, पाप २०९, पुण्य २०९,  
पूर्व और विचार १५१, प्रारब्ध  
२१९, फल ११८, १४०, १५४,  
१५७, भूमि, सर्वश्रेष्ठ स्थान  
२७, सस्कार ११७, सत्  
और उसकी शक्ति का क्षय  
२७  
कलकत्ता ३३३-३४, ३४२, ३४४-४५,  
३५४, ३६२, ३७५, ३७७, ३७९-  
८१, ३८३ ३९४  
कलचिस ४८ (पा० टि०)  
कल्प २२, २६  
कविता, उसके द्वारा अन्त स्फुरण  
९४, और विज्ञान ९४  
काम और काचन ३५०, और क्रोध  
और लोभ ७, -वासना १५८  
'काम के आदमी' ५६  
कारण, उच्चतम, आदिम और दूरवर्ती  
परिणाम २८२, उसका स्थूल  
रूप मे आविर्भाव १०२, उसमे कार्य  
की सभावना निहित २८२, और  
कार्य अभिन्न १०३, कार्य के भीतर  
वर्तमान १०३, निमित्त १०१,  
परिवर्तित रूप मे कार्य २०८,  
श्रृंखला २८२  
कारणता का सिद्धान्त २५५  
कार्य, असत् १२१, उसकी परिभाषा  
१८, उसके करने की समर्थता  
१५३, उसके दो अंश ९२, उसके  
लिए कारण अपेक्षित २०५, और  
कारण १०१, और कारण मे मौलिक  
भेद नहीं १२४, और विचार १८,  
१५१, कारण का रूपान्तर मात्र  
१०३, २८२, कारण का व्यक्त  
रूप १२४, कारण से मित्र नहीं  
१०२, २०८, पूर्ववर्ती कारण

की आवृत्ति मात्र २८२ प्रवृत्ति  
 ६७ छत् १२१  
 कार्य-कारण ११ नियम ८६ २१६,  
 २१९, २२२ स्त्रीधीवार ७४ भाव  
 १ ८५ ६, ९ १२९ २२२  
 सम्बन्ध १२९ १ १८४ (बेसिए  
 निमित्त)  
 कास, आत्मा में अवस्थित ११२  
 उसका स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं ९  
 उसकी उत्पत्ति ११२ उसकी  
 ब्रह्मा ९ और विचार ११२  
 वेद और निमित्त ९ दोषट्कामों  
 पर निर्भर ९ मन की अवस्था  
 पर निर्भर ९ मूढ ९ सर्व  
 संहारक ७६  
 काशी ३४८ (बेसिए अभेदानन्द)  
 काशीरूप्य ३६२  
 काशी १४२ ४३ २९७  
 किडी (सिगागबेकु मुवास्मिर) ३२१  
 ३२५, ३५८, ३७८ ३९४  
 कृष्ण ७५ २५३ ३२४ ३२९,  
 ३६ ९१ मयवान् ६१  
 कृष्णस्वामी अम्बर ३५७  
 कुक एव सप्त ३९३ कम्पनी ३१  
 ३५५  
 कुमारी आर्चर सिमन ३८६ ईसाबेल  
 मेकडिबली ३८४ ३४६ पर्नेची  
 ३८६ फिलिप्स ३८५ मेरी हेल्  
 ३३३ ३४१ ३७२ ३८५  
 सौराब ३१३ स्टॉकहूम ३८६  
 हेरियट हेल् ३८५ हेनेन पॉउल  
 ३४१ जो ३८७ ३९ ३९२  
 कुरान २३५, २४२ धरीष्ठ २७९  
 कुयस्कार २ १८७-८७ ३७७  
 उसका फल १५ (बेसिए जन्म  
 निवृत्त)  
 केनिठवर्ष ३९  
 केनिष्ठ ३९२ वृत्तिवृत्ति ३४६  
 केरावचन्द्र सप्त ३५४ (पा टि )  
 ३७६

कैडमस ४८ (पा टि )  
 कैबोलिफ ३४  
 कैटरवेटी ३१४  
 कोरा ३८७ स्टॉकहूम ३९  
 'कोरिनथियन कर्म' ३१७  
 कर्मों ८६ प्रश्न का अर्थ ८७ माया  
 में नहीं ४९  
 कर्मविकसित बीज ही बृद्ध १२४  
 कर्मविकास १३४ ५ ९२ उसकी  
 प्रक्रिया १२६ उसकी प्रक्रिया  
 में अशुभ-निवारण १३६ उसकी  
 व्याख्या १२४ उसके पूर्व कर्म  
 संकोच १२४ उसके साथ कर्म-  
 संकोच की प्रक्रिया ८ और कर्म  
 संकोच ८ १२३ उत्प १२६  
 प्रक्रिया ११६  
 कर्मविकासवादा ९१ १ ३४ १७६  
 उसकी व्याख्या १२३ उसके पहले  
 कर्मसंकोच १२३ कमी शुभ से  
 नहीं १२३ (बेसिए विकासवादा)  
 कर्मविकासवादी ७ १ ४ विज्ञान् ७  
 कर्मविकासशील मूखला १ ४  
 कर्मसंकुचित १ ७ बृद्ध ही बीज १२४  
 कर्मसंकोच ८ १ ३-४ १२३ २४  
 उसकी परिभाषा १२३ उसके  
 साथ कर्मविकास की ११६ तथा  
 कर्मविकास-उत्प १२६ प्रक्रिया  
 ११६ भाव १७६  
 काइस्ट, जीसस २७२  
 क्रिया-कलाप और बाह्य अनुष्ठाप  
 १८३  
 क्रियाकाण्ड १८८  
 'क्रियेवादा' २ ८  
 अग्रिम ३२९ कर्मों का उपदेशक ३२९  
 मांसमोची ३२८  
 शत्रु व्यष्टि ३  
 खगोल विद्या २१९ ३६६  
 खेतकी ३१३ ३१७ ३४१ ३४३  
 ३५३ ३५६, ३९३

- गगातट ६,५९  
 गठिया की बीमारी और जीवन के  
 विरुद्ध भाव ४९  
 गणितशास्त्र १२३, २५१  
 गणितीय और निरपेक्ष निश्चय १२६  
 गणितीय क्रम ५२, ६५, १७५, और  
 ज्यामितीय क्रम ५२, ६५, १७५  
 गतिशील (dynamic) २२  
 गति, मसार की और माया ५०,  
 सर्वत्र मापेक्ष १२  
 गन्धर्व लोक १४२  
 गर्नसी, कुमारी ३८६, डॉ० ई० ३७८  
 गाँधी जी ३४५, वीरचन्द्र ३०९  
 गाँड १४८, २४३ (देखिए ईश्वर)  
 गार्गी ३६१  
 गिरीशचन्द्र घोष ३३४, ३४४  
 गीता ७८, ९५, ३०२ (पा० टि०),  
 ३२९, ३७३ (पा० टि०),  
 उपनिषदों से संगृहीत पुष्प-गुच्छ  
 १७८ (देखिए भगवद्गीता)  
 गीति-काव्य १७९  
 गुरुत्वाकर्षण ११५, २०३, २८१,  
 उमका नियम ११, उसका सिद्धान्त  
 २४२, २८०, शक्ति ७४  
 गुरुदेव ३२२, ३३३, ३३६, ३३८-  
 ३९, ३४४, ३४९, ३५२, ३५६  
 (देखिए रामकृष्ण)  
 गैलीलियो २४२  
 गोपाल ३५३  
 गौतम बुद्ध ३९५  
 ग्रन्थी, श्रीमती ६८  
 ग्रन्थ और धर्म २३४, द्वारा ईश्वर  
 सृष्टि नहीं २३४, मनुष्य की रचना  
 का वहिर्गमन २७९, महान्,  
 उसकी प्रेरणा, ईश्वर २३४  
 (देखिए पुस्तक)  
 ग्रीक ६०, ६५ (पा० टि०), २३१,  
 पौराणिक साहित्य ४८ (पा० टि०)  
 ग्रीनेकर ३८४, ३९१, सराय ३८५  
 ग्लैंडस्टोन, भारत का ३५३  
 घृणा ७८, १६८, ३१०, -भाव ९२  
 'घृणित कीड़ा' ३३७  
 घोष, गिरीशचन्द्र ३३४, ३४४  
 चक्रवात, उससे आवागमन का एक  
 दृष्टांत २१७-१८  
 चण्डी ३५१ (पा० टि०)  
 चन्द्र २२, ३१, ३३, ६३, ८२, १०२,  
 १३१-३२, १३९, १४१, १५७,  
 २१२, २८५, ३५१, -सूर्य ४२, लोक  
 २६-७, ३५, ४५  
 चरित्र, अवतार ५८, ऋषि ५८, और  
 सस्कार २१७, -गठन ३२६, देव  
 ५८, -निर्माण १९९, प्रेत ५८,  
 महात्मा ५८  
 चाण्डाल ३३७-३८, ३५७  
 चारुचन्द्र वावू ३९३  
 चार्वाक, उसके अनुसार धर्म ६९  
 'चिकित्सा' ३८७  
 चित् २८२  
 चित्तवृत्ति, उसकी साधना देह से आरम्भ  
 २५६  
 चित्र, उससे अधिक आनन्द १५३  
 चिन्तनधारा, आधुनिक २८१  
 चिन्तन-शक्ति ८, शरीर में व्यक्त ८  
 'चिन्तनशून्य प्रमाद' २७८  
 चीन ८, १९१, ३७१, वाले १९२  
 चीनी २५७  
 चेतन और अचेतन स्तर २७२  
 चैतन्य ३६०, राज्य ३८९  
 चौम्बक १६०  
 च्यापन, श्रीमती ३८६  
 छान्दोग्य उपनिषद् ८९  
 छुआछूत ३१६, मार्ग ३६३  
 छूतमार्ग ३३७  
 जगत, ४१, १०२-३, अशत शुभ  
 और अशुभ १३८, अन्तर १५९,  
 अव्यात्म ३१, अपरिणामी आश्रय



२९ अविद्यामय १५८ आध्यात्मिक ८५, २६४ आनन्दमय १५४  
 भासुती १५४ इन्द्रिय २८, २६४ ईश्वर का शरीर २९ उसका अर्थात् मात्र ३९ ३ उसका उपकार १९ उसका उपादान और निमित्त कारण १७ उसका केन्द्रस्वरूप १५८ उसका प्रत्येक अणु अणु से सम्बन्ध ८६ उसकी अनन्त शक्ति मनुष्य के भीतर २ उसकी उत्पत्ति का प्रसंग ८ उसकी रीति ५१ उसकी मुक्ति में विद्यामय और कर्म ८ उसकी वस्तु-बर्ण की अभिव्यक्ति ७ उसकी सृष्टि १५९ उसके आचार्य ७१ उसके परे तत्त्व २६८ उसके प्रति अज्ञान-भाव ११४ उसके रहस्य-मीमांसा की श्रेष्ठा ७४ उसके विषय में मत-भारता १५ उसमें अणुम और कुक्ष का कारण १८ उसमें कुक्ष-मात्र विद्यमान १४८ उसमें परिणाम और अपरिणाम ३ उसमें व्यक्तिगत मात्र ११४ एक कारागार ७७ एक भीमरस प्रहास १७६ एक रमभूमि ११४ एकस्वरूप ३ और ईश्वर १५ और कर्म ३६ और जीवन १४५ और ज्ञान ३३ और पदार्थ १२५ और मनुष्य ७३ और मात्र १७५ और क्षुम अक्षुम ५४ गोचर २८८ बड़ ११ ३१ ८५, १५९, १६२ बड़ता अज्ञान से पूर्ण ७२ मात १६ मात और शेष २६४ तथा बीमारोपन प्रवृत्ति १९ ब्रह्म २९ ब्रह्ममान ३४ ईत ज्ञान का फल ३ न आशावादी न निराशावादी १३८ मन्वर ३ ५ नाम-व्यपारक २८७ नित्यता और स्थिरता नहीं २९ पंचेन्द्रियघ्राण ३ पदार्थ स्वतंत्र

माही ८७ परिणामहीन ३० परिवृक्ष्यमान २८ प्रपञ्च २२, २९, १०७ १३४ प्रवाह २९४ पूर-मात्रा से बका मुर्बा ३७३ बहिः ११६ बहुत्वपूर्ण ७२ १३१ बाह्य ३ १ १८ १३४ १३८ १४१ १५९ ६१ बाह्य उसमें असीम वस्तु की शीघ्र १३४ बाह्य और मात्र-बुद्धि २५२ बुरे-भले का मिश्रण १३९ ब्रह्म का एक विशेष रूप ९१ ब्रह्माण्ड १ १ १ ३ १ ६ भीतिक १९७ २८७ मन की अनुभूति और पदार्थ सत्ता ४४ (पा टि) मनी ३१ १६१ मिथ्या १५ वस्तु ३ विचार १२९, २३७ वैचिष्यमय १३ श्रुतता ६६ सत्य की एक छाया मात्र १७६ समस्या १६१ उद्योग १५ सापेक्ष २८६ सूक्ष्म ८५ १ ३ स्वप्न सा ११४ (देखिए संसार)

अणुब्रह्माण्ड ३८८  
 अणुब्रह्मा ३७९  
 अणुत्राय जी ३३१  
 अणुब्रह्मा की महिमा ३ ३  
 अणु उसका अनुकरण और माया ७४ और भेदन २३८ २८३ और ब्रह्म ९३ तत्त्व ९ १ ५, ११७ १२३ पदार्थ १३५, २८३ २९२ परमाणु १३५, २८३ २९२ -रूप प्राप्ति की उत्पत्ति १८५ वस्तु १११ सिद्धांत २६१  
 अणुबाध ६९, १८५ और आत्मबाध १८५  
 अणुबाधी ६८ ९, ११८ १२६ अत १६७ अणुता और अज्ञान ७२  
 अतर्क एवं ल्पयोगता १७९  
 अणुता उसकी अज्ञानता और भीष्म बर्ण ९४ उसकी उन्नति का उपाय ३२१ विचारहीन ३४९

जनसमूह, उनके दुःख-कष्ट ५१  
 जन्म और मरण २०६, २१८  
 जन्म और मृत्यु १३०, -मृत्यु १०५,  
 १८२, -मृत्यु प्रकृति में ३३  
 जन्मजात-प्रवृत्ति ११५, २७२, इच्छा  
 का भ्रष्टभाव ११६, उसका तत्त्व  
 ११६, और दिव्य स्फुरण २७२,  
 कार्य का क्रम-संकुचित भाव ११६  
 जप-माला ३५०  
 जरा-मरण २१०  
 जर्मन दार्शनिक १७५  
 जर्मनी ५४, प्राचीन १९२, भाषा  
 २०२  
 जीवनमुक्त, उसकी परिभाषा ३६  
 जात-पात ३२१, ३५१  
 जाति, दुर्बल १७५, -त्रया ३६५,  
 भेद ३११, ३२५-२६, ३२९, -भेद,  
 अर्थगत ३६८, यूरोपीय ९५,  
 विभिन्न और ईश्वर सबधी सिद्धांत  
 २३२, सबल १७५, सेमेटिक  
 २२७, हिन्दू ९५ (देखिए राष्ट्र)  
 जातीय जीवन ५५, दोष ३३९  
 जॉन हेनरी राइट, प्रो० ३०७, ३४४,  
 ३४७, ३५३, ३५८  
 जापान ३७१  
 जार्ज ३८२  
 जार्ज डब्ल्यू० हेल० ३१४, ३१९, ३३४,  
 ३७२, ३७८  
 जिउस देवता ४८ (पा० टि०)  
 जिहोवा ६१-२, ६४, १४८, २४३,  
 २७९  
 जी० डब्ल्यू० हेल, श्रीमती ३८१  
 जीव ५७, २२२, ईश्वर की दया का  
 अधिकारी १२०, क्षुद्र ३४८,  
 परिणामी १२, प्रातिभासिक और  
 यथार्थ ११, मर्त्य १४३, -विज्ञान  
 २६५, व्यावहारिक १५, -शरीर,  
 उच्चतर या निम्नतर ११९,  
 -हिंसा २०७  
 जीवन २८०, अनन्त सागर ७६,

अभिव्यक्ति का रूपविशेष १२९,  
 आनन्दपूर्ण और क्रियाशील १५४,  
 उसका अर्थ ५७, उनका एक और  
 नाम १२९, उसका क्रम २२१,  
 उसका चिह्न ३८३, उसका नियम  
 १०२, उसका मूलभूत सिद्धांत  
 २६५, उसका लक्ष्य ९२, २५४,  
 उसका वास्तविक रहस्य १४५,  
 उसकी अन्तरात्मा १४५, उसकी  
 उन्नति का साधन ३२१, उसकी  
 दो स्थितियाँ २२३, उसकी  
 व्यर्थ वासना १७६, उसकी सभा-  
 वना वीजाणु में १२४, उसके अग-  
 स्वरूप ५७, उसके पीछे मृत्यु  
 १२९, उसमें एकत्व नहीं २८,  
 उसे ईश्वर से अनुप्राणित करने का  
 प्रयास १५४, एक कठोर सत्य १४०,  
 एक महान् सुयोग ३९०, और  
 आनन्द १४७, और जगत् ७९,  
 और जगत् दुःखमय १४८, और  
 मृत्यु ७८, १२९, और विचार  
 ६१, और विषम विरुद्ध भाव ४९,  
 और व्रत १२३, जातीय ५५,  
 -दृष्टि १४४, नैतिक १६८, पचे-  
 न्द्रियगत १४८, पचेन्द्रियग्राह्य  
 पाशविक ३४५, प्रकृत १७६,  
 -बल ही भवरोग की दवा १८९,  
 भावी १२३, भौतिक १४८,  
 महान्, उसका लक्ष्य, ज्ञान २७०,  
 मृत्युहीन ५३, वर्तमान, विगत  
 का परिणाम २१८, विराम नहीं  
 जानता ४७, -व्रत ३०७, शाश्वत  
 २६९, -संग्राम १२२, सत् और  
 असत् का सम्मिश्रण ४६, -समस्या  
 की वास्तविक मीमांसा १३१-३२,  
 सांसारिक ७८, सामाजिक ८१,  
 सेवापूर्ण १५४  
 जीवाणु कोश ११७-१८  
 जीवात्मा २६, ८१, ९१, १६१, १८१,  
 २०४, २३३, उसका अमरत्व

१२२ उसका सङ्कोच और विधास  
 १८१ उसकी स्वाधीनता ११९  
 और ईद्वार ८३ और धर्मस्फी  
 विज्ञान २५२  
 औद्योगिक ८, १ ४-५ उच्चतम मानक  
 की कममकुचित व्यवस्था १०५  
 निम्नतर १२४  
 औसत काइस्ट २७२  
 जमानक ३३४ (पा टि) ३५३  
 जे जे बैम्बी धीमती ३४३  
 जे स्पेल ३ ७  
 जन्म और ३९१  
 जनी बहुत ३८४  
 जैन धर्म ३०९ प्रतिनिधि ३१३  
 जैन ४८ (पा टि)  
 जाल ८७-८ और जय जयन्त २६४  
 जाल ५६ २६२ २० अतीन्द्रिय  
 १९६ जनक ९८ अनुभव सं  
 जन्म १२२ अनुभव से प्राप्त  
 ११५ अमृत २५३ अमृतत्व या  
 मानस्य ११२ आत्मा के स्वल्प  
 ११२ आकाश ३९६ उच्चतम  
 ८ उमता अस्यास १९ उमका  
 मर्ष २४४ २७५ २८१ उमका  
 अमर्षी आशय २८३ उमका अम  
 ४६ उमता उत्पन्न ९८ उमता  
 कन १५ उमता शील २५१  
 २७२ उमती उत्पत्ति १६ उमती  
 क्या उपोदिता १५ उमती  
 कुमरी ध्याना २८१ उमती  
 कृति और मन की शक्ति ३२  
 उमती प्रकिया ११ उमती बिना  
 कृति अन्तर्भव ६ ६ एक निम्न  
 अवस्था १५ और अनुभव का  
 महत्त्व १६६ और अनुभव लय  
 २८० और आनन्द ९६ और  
 आनन्द अन्तर्भावित ८ और  
 अन्त ३६ और अन्त अनुभव  
 १६६ और प्रेम ८ और  
 अन्तर्भाव ३६ और अन्त ११५

कमोवेद धर्मीकरण का पर्याय २८१  
 कङ्क का धम नहीं ११ तथा  
 मुख मुक्ति की ओर २५४  
 मुख और मुख का ४९ बरता का  
 ६ इन्द्र का २९ द्वारा आनन्द  
 प्राप्ति २७ धार्मिक उसका  
 अन्तिम धर्म २७५ परम २७७  
 परम और आनन्द २७ पूर्वोक्त  
 तथा काम १६ प्राप्ति २१४  
 बुद्धि का आचार ११ भक्ति  
 और याग ३६३ भौतिक १६  
 मानव उसका आशय २३८  
 मानवत्वा संबंधी २३७ मानवीय  
 ६६ १२३ मानवीय उमकी  
 सीमा ६७ मानो बुद्धि ३५  
 मार्ग का गुण और अन्तगुण ३२५  
 मिथ्या ३४ या उद्भूत प्रकिया ११६  
 योग १४३ कप का ६७ अय  
 यक्ति १२ काम १४ सौमिक  
 २८ सौमिक तथा धार्मिक  
 २७७ विज्ञान बाह्य २७८  
 विभिन्न धर्मप्रणाली म २५९ विषय  
 ११ वैज्ञानिक ९८ २७५  
 गण्ड का अर्थ ८८ गण्डक २७१  
 सधवा २९१ समीप १४ गांवा  
 रिक्त ७७ मापेस ३२ नामकस्य  
 कूर्ष अनुभव १२२ -गुण १  
 स्वप्रकाश ११०-१२  
 ज्ञानी उमक निरा लक्ष भावप्रकाश  
 १५७ पुण्य १३३ १४१  
 'जिये' ८८  
 ज्याद्वितीय क्रम ५२ ६५ १७५  
 ज्योतिष्य वेद १ पदार्थ १  
 ज्योतिष ६ ६७७  
 हांसय बुद्ध ३७७ हां ३२२  
 निश्चय ७ ११६  
 निर्गन्तव्य ३८४  
 हेमात् अन्त ३ ७ धीमती ३१३  
 हेमात्क का अर्थ ६५ ६

'एन्म लॉ प्लेनी' ३८४

एफगिन, रेडी ३७१

डॉ० ई० गनमी ३७८

डाइनेमो २२०

द्याना देवी ३१८

डॉयमन, प्रॉफेसर २०२

दारविन ७

टिड्राँट ३३०, ३३२-३३, ३३९-३४० (पा० टि०), ३४१, ३४३, ३५८, ३८१, ३८३, ३८६, मिगि-गन ३४३

डियरवॉर्न एवेन्यू ३१३-१४, ३१९, ३२५, ३३४, ३५२-५३, ३५८, ३७२, ३७४, ३७७, ३८०, ३८२

तत्त्व, अतीन्द्रिय १६७, अमिथ्र २५५, जड ९, ज्ञान ३३६, परम १६५, २१६, २३३, २४५, परमार्थ १६५, परलोक १६५, प्रकृत १८०, बुद्धि २५५

तत्त्वमसि १७, ४२, ८९, १३१, २८४  
तर्क और विचार १६६, -शास्त्र २८८  
तारक दादा २६२ (देखिए स्वामी शिवानन्द)

तिव्वत १३६

तिर्यग्जाति १००

तीर्थंकर ३२९

'तुम' १४, ३०, २१३

तुलसीदास ३७२

'तू' २५९, २८४, २८९

'तू ईश्वर है' ८९

त्याग १७६, उसका प्रकृत अर्थ १५३, उसकी माँग १९६, उस पर नैतिकता आधारित १९५, उससे विभिन्न धर्मों का सामजस्य २०१, और नैतिक विद्वान १९५, नीति-सहिता का मूलमंत्र १७६, पूर्णता-प्राप्ति का साधन ५५

त्यागी साधु ३७०

थियोनाँफिलस मानायटी ३८२ (पा० टि०)

थियोनाँफिन्ट ३७६, ३९३, हिन्दू ३८२

थेमात्री देग ४८ (पा० टि०)

दण्ड-पुरस्कार १२०

दर्शन, आधुनिक १८५, उमकी उप-योगिता १७३, और तर्क ९५, और धर्म २४९, क्रिया १०९  
दर्शनशास्त्र ५३-४, २९९, ३३८, उमका मत १६९-७०, और प्रकृति ३००

दानव और देवता ६७

दानव-पूजा २९४, -योनि २७

दार्शनिक, आधुनिक १२८, एव महर्षि, उनका विश्वास २३१, जर्मन १७५, पण्डित ४४, भाषा ४४, मिद्धात १७५

दिव्य प्रेरणा २७३, स्फुरण २७२ (देखिए अन्त स्फुरण)

दिव्यातर (Transfiguration) २७२  
दीवान जी ३६७, साहब ३६५-६६  
दुःख, उमका आगमन, वासना से १७४, उसकी उपयोगिता १५१, उसकी न्यूनता के लिए कर्म ५४, उमसे शिक्षा १५१, और अशुभ ५६, और ज्यामितीय क्रम १३७, और सुख, परस्पर आश्रित ५१-२, -कष्ट और घनवान ५१, गठिया के समान १७४, -भोग ५२, १४१, भोग, उसके भीतर गरिमा १५१, -सुख और पशु ६७-८

देव ३४, और असुर ३०१, चरित्र ५८, जीवन ३७, -दासी ३३७, -देह २७, -मानव १०५, २८४, ३६७, -शरीर २६-७

देवता, उनके कार्य के उद्देश्य और जिज्ञासा ६४, नीतिपरायण ६४,

प्राचीन ६४ संबंधी चारणा और प्रकृति ८२  
 विद्यत् ४२ प्राप्ति १३४ विभिन्न पक्ष का नाम मात्र १३४  
 विद्यमान २७  
 विद्योपाख्यात २३१  
 विद्योपाख्याता ८२  
 वेद्य • आकार-उत्पत्ति का उपादान १३५ उसका अस्तित्व ९ उसकी मूल्य का विज्ञान ५६ और काष्ठ ४५, ९ २ १ और काल गामा के भीतर १३५ काल और निमित्त ४५ बर्षों का १४ १४६  
 वेद्य-काष्ठ-निमित्त १०-१ ३१ ४६, ८५ ६, ८९९ उसकी समष्टि १ उसके नियम ६७ उसके भीतर विशेषत्व ९ छाया सद्युक्त ९१  
 विसाई, हरिबास बिहारीबास ३२९ ३६४  
 विह, आत्मा नहीं है ११ और मन ३ १७१ स्फुट २५ (बेखिए शरीर)  
 वैन या भाष्य २३  
 वीवी हुना २४४ प्रेरणा २७२, २७४  
 वैदिक कष्ट ३८९  
 वीथ उसका कारण ७  
 वृद्ध और संवर्ष ४ १३१  
 द्विविधो मनिजाळ ३१३  
 वृत्त अवस्था २३३ तत्त्व १३८  
 भाव १३५, १३७ मिथ्या १३५  
 वृत्तबाह ९६, २ ४ २१२, २१४  
 १५ अपरिमाजित १८  
 वृत्तबाधार्थक बर्ण ९७  
 वृत्तबाधी ३२३ ३ १८९-८८  
 २ ४ २ ९ उनका कथन ९६  
 उनका दृष्टिकोण ९६ उनका मत २६ उनका विभिन्न सिद्धांत २ ९  
 उनकी अधिक संख्या का कारण ९६ उनकी ईस्वरसंबंधी भाष्यता २ ४ उनकी चारणा २ ८ और

अद्वैतबाधी २५ भाग मिथ्या ३  
 धर्म २ ५ धर्म की लोक-प्रियता का कारण ९७ धर्म प्राचीन ९३  
 चारणा १३५ उनके निरासिध तथा अहिंसावादी २ ७ भाव और बन्ध ३  
 मन तथा विज्ञान ३६८  
 धर्म ५८ १४४ १९४ ९५, २ ५, २८२, ३३७ ३८४ -अभ्ययान १३३ २२८, २४३ -अनुयायी २५८ -अन्वता ५५, २४१ -अन्वता का सूत्रपाठ २४१ -अभ्युदय और निश्चयस की सिद्धि ३२७ -अनछन्वी २ ७ आत्म संघ ३१४ -आचरण १७४ आत्मज्ञान ही २४७ मायमहायक २१ इन्द्रियातीत भूमिका की वस्तु २६३ २७१ इच्छाम २७८  
 ईसाई ५ १८२, २४ २४९  
 उदार, उसकी धर्मिता २  
 उनका स्वीकार्य २२८ उनकी शोचना २७५ उनकी सत्यता २२८ उनमें तथ्य और धर्म १४९  
 उनका अन्वयित्वात् ७ उनका धर्म वा परिमाण ३२८ उनका आत्ममूलक सिद्धांत १९१  
 उनका आचार पितर-भुजा और शीत १९२ उनका आरम्भ ६१ उनका आधिनाम प्रकृति-भुजा से १९१ ९२ उनका उद्देश्य ५८ उनका उपदेश ७९ उनका एकमात्र पक्ष ५ उनका एकमात्र अर्थ १५४ २५२, २७१ ३२८  
 उनका नाम आत्मा से ३२८ उनका शेष २७१ २८ -८१ २८४ उनका पतन २४१ उनका परम ज्ञान का बाधा २७७ उनका परमोद्देश्य २३४ उनका प्रत्यक्षीकरण और उपाय २४८ उनका

प्रमाण, मनुष्य-रचना की सत्यता पर २७९, उसका प्रादुर्भाव २३२, उसका प्रारम्भ ७८, १६८, १९१, उसका भाव ६४, उसका मूलस्रोत २७४, उसका यथार्थ आरम्भ ५४, उसका यथार्थ विज्ञान २५१, उसका लक्ष्य एक ३०२, उसका वास्तविक बीज १९३, उसका विकास १९१-९२, उसका व्यावहारिक पक्ष २४८, उसका सार ३९, १६७, उसका सार-तत्त्व २३९, उसकी अभिव्यक्तियाँ और मूल धर्म तत्त्व ७०, १८२, २४३, उसकी आवश्यकता २०१, उसकी उत्पत्ति २५४, उसकी उदारता और महत्ता का परिचायक ६९, उसकी उपयोगिता २६९, उसकी एक स्वर से घोषणा ५, उसकी क्षमता २६९, उसकी तीन अवस्थाएँ २४०, उसकी नीव ३२७, उसकी पवित्रता एव पूर्णता २०९, उसकी भित्ति ७९, उसकी मान्यता २५५, उसकी रूपरेखा ३२०, उसकी विनष्टता के प्रति भय २२७, उसकी शक्ति १९१, उसकी शिक्षा ३७०, उसकी शिक्षा, अनुभव-माध्यम से २५१, उसके गुण १९१, २०९, उसके विषय में महत्त्वपूर्ण प्रश्न २५५, उसके शाश्वत तत्त्व २७८, उसमें अद्भुत शक्ति २००, उसमें विश्वास और प्रत्यक्ष अनुभूति ३९, उसमें स्वाधीनता ७०, उसे न मानने से बुराई ३३८, एक, और साधना अनेक २५३, एकभूत, उसका सदेश २२७, एक सूत्र में मोती के समान २५२, एक ही आधार पर आधारित २३३, एव देश ३४३, और अवर्ण ९४, १६८, और आन्तरिक मनुष्य १९८, और आनन्दमय जगत्

१५४, और ईश्वर १६८, और ईश्वर की धारणा ६१, और दोषारोपण ३११, और प्रेरणा-शक्ति १९१, और बुद्धि २७९-८०, और मानव-जाति १९१, और युग ६, और विशुद्ध विज्ञान १९८, और समाज ६८, और सिद्धांत १९४, २८५, -कार्य १८८, कुसस्कारपूर्ण ३६९, -गुरु २४६, २४९, २७५, ३२३, -गुरु एव विचारक २७२, -गुरु तथा मार्ग २५०, -ग्रन्थ ५, १६७, २००, २०३, २१३, २४६-४७, २४९, २५९, २७९, -ग्रन्थ, उसका ज्ञान २३४, -ग्रन्थ को गढते हैं २३४, ग्रहणशील होना चाहिए २००, चार्वाक के अनुसार ६९, -जगत् ७०, जैन ३०९, ज्ञान तथा दर्शन २०३, तत्त्व १६६, १७४, तत्त्वज्ञ १०६, तत्त्वत एक २२८, तथा आध्यात्मिकता १९७, तथा रोटी-कपड़े की समस्या २६९, दूत २७९, द्वैतवादात्मक ९७, द्वैतवादी, प्राचीन ९३, निम्नतम ५८, निरर्थक २७८, पुराना और नया केन्द्र ३६६, -प्रचारार्थ सन्यासी ३९५, -प्रणाली १८३, -प्रतिनिधि ३६७, प्रत्यक्ष अनुभूति का विषय १६६, प्राचीन ६१, १०८, बौद्ध ९४, १८३, २४०, २४९, २५७, ३०८, ३९५, ब्राह्मण १९४, भगवत्प्राप्ति ही २५३, भविष्य का ९४, -भाव ७०, -भाव, आदिम ६२, मत ५३, २९४, ३२६, मत और नम्प्रदाय-समूह ३००, मत, श्रेष्ठतम ३००, -महामभा ३०७-९, ३१२, ३१४, ३१९, ३४२-४३, ३५१, ३८३, मानव-मस्तिष्क की आवश्यकता २०८, मूलत एशिया से निम्न २३१,

मूल्य समी एक २३५ स्त्री  
 विज्ञान २५२ -साम ३६३  
 लोकप्रिय २७८ वर्तमान उसका  
 बाबा १९४ वर्तमान जीवन की  
 वस्तु २७४ वर्तमान में अनुभूति  
 २४६ विज्ञान ५१ विज्ञान और  
 अन्वेषण-प्रवृत्ति २७८ विज्ञान और  
 उसमें निष्पत्त्य का अभाव २५१  
 विषय २४९ विश्वास ३१२  
 विश्वास की वस्तु नहीं होने और  
 बनने की २७९ -विषयक हमारे  
 विचार २५५ बेदान्त ६८  
 -शास्त्र हिन्दू ३ २ संघ २ २  
 -संघ और रूस्यवारी २५१  
 संबन्धित उनका मत और संस्था  
 पक १९४ सम्झे २३५ सटीक  
 ५५ सत्य की ओर में २६८  
 समाप्त ३१६, ३४३ -सभा ३७५  
 ७६ सभी सत्य ३२४ समाज-  
 सुधारक से उसका मतलब नहीं  
 ३२८ सम्पूर्ण मानव-जीवन में  
 परिष्कार २६९ सम्प्रदाय २८९  
 २९१ सर्वश्रेष्ठ प्रेरक क्षणित  
 १९९ सर्वोच्च लोक का २५४  
 -साक्षात्कार ही एकमात्र मार्ग २४६  
 सामान्य केन्द्रीय भित्ति ७९, सार्व-  
 भौम २३४ ३२६ सिद्धांत  
 मस्तिष्क की बात नहीं २३४  
 स्वमायता पवित्र २ ९ स्वार्थो-  
 न्मूलक ही २५४ हिन्दू ३ ९,  
 ३२८ ३४३ ३६२ ३६६ ३९५

बर्मेपाठ ३१३ ३३६ ३५६  
 धर्मधर्म ३७ ३२६  
 भारतमा उसीसही घटायी छतराई  
 की ९३ प्राचीन और वर्तमान  
 ३१ -साम २ ४  
 धार्मिक अनुभव २४७ अविष्मयित  
 २ १ आरामी २४६ आर्य  
 २ उपदेश ९७ उपाख्यान  
 २६९ उपासना ३८६ उर्ध्वता

२ २ उसके छिपे हुए प्रतिष्ठा  
 ७९ उसका होने का अर्थ २४६  
 एकता का सम्बन्ध १९१ शेष  
 २४३ ग्रन्थ २४७ चिन्तन १९९  
 २ २ ३३१ चेतना २४१  
 जीवन ३६ तत्त्व २७४ तत्त्व  
 २४७-४८ नियम २ पद्धति  
 २५८ परिभाषा १ ६ पुस्तक  
 २५९ प्रकृति २७२ प्रक्षिप्ता  
 २३७ प्रकृति की विधि २३७  
 बनने के लिए उपाय २४८ माघ  
 ३२ ३२३ मुद्रा २३७ सङ्कर  
 ३६६ बाद-विवाह २५२ वास्त  
 विक ७९ विकास ९६ १९१  
 विचार २ २४१ २६४ ३१९  
 विचार-समूह ३६ व्यक्ति १७४  
 शिक्षा २५१ ३६९ संविद्य २५३  
 संस्कार २४८ संस्था ३४ सत्य  
 २७५ सिद्धान्त २४२ सोपान और  
 मानव-मस्तिष्क २ स्वर्णमता ६८  
 ७ स्वाधीनता और भारत  
 ६९

धार्मिक एवं अधार्मिक निष्ठा ३७८  
 धार्मिक क्रोध ३७८  
 धार्मिकता उसकी परत २३५  
 'धार्मिक हत्या' ३७८  
 'धर्मों की सहानुभूति' ३९  
 ध्यान तथा एकाग्रता २५९  
 ध्येय और विषय १९६  
 ध्वनि-कल्प १ ९

नमन-विज्ञान २६५  
 नक्षत्रोत्था १६१ १६३ १५, १७  
 नरक ३३४ ८५, २९४ २९८ ९९,  
 ३३७ ३६३ उनका द्वार ३३७  
 नरपशु २६  
 नरसिंह ३५५, ३८२, ३९३  
 नरसिंहाचारिण्य, राज बहादुर ३७१  
 नरसिंहाचार्य ३१ ३१२  
 नरेन्द्र ३३४ (केलिए विश्वकालम्)

नव व्यवस्थान १५५, २२९, २३२, २८४  
 नाजरय २४९, २७२, २९०  
 नाम और रूप ३०, ९१, २११, और  
 शरीर २११, भ्रमात्मक है ३१,  
 -यश ३१०, ३१२, ३१८, वस्तु  
 सबही मन की धारणा ९१  
 नाम-रूप ३१, ३७, उसकी माया ३१,  
 उसमे भेद ३१  
 नायक, आदर्श २४०, पुराण के महान्  
 नैतिक पुरुष २४०  
 नारद २७७, और माया की कथा  
 ७५-६  
 'नारियो के अधिकार' २५८  
 नारी, उसकी पूजा ३३७, देवी स्व-  
 रूपा ३१८, घर का आधार-स्तम्भ  
 ३१७ (देखिए स्त्री)  
 नार्वेवासी, उनकी स्वर्ग सबही धारणा  
 १६९-७०  
 नाश का अर्थ १०१  
 नास्तिक ६८, ९७, २३४, २७५,  
 आधुनिक २०२ (देखिए अनी-  
 श्वरवादी)  
 निमित्त ८५-६, और जीवन ५५,  
 कारण १०१ (देखिए कार्य-कारण)  
 नियम, उसका अर्थ २६१, उसका पालन  
 २६१, उसका पालन और मनुष्य-  
 प्रकृति २९४, एकत्व का १३८,  
 और प्रतीक २३५, और भविष्य  
 १२५, गणितीय क्रम १३७,  
 ज्यामितीय क्रम १३७, प्राकृतिक  
 १५२, २६१, प्राकृतिक और  
 मानव-जाति ५९, भौतिक १९४,  
 सामाजिक १९६  
 नियात्रा ३३५  
 निरजन ३६१  
 निरपेक्ष ब्रह्मसत्ता ८७  
 निराशावाद ४७, १३७, और आशा-  
 वाद, अतिवादी दृष्टिकोण २६७  
 निराशावादी ४६, ५०, ५२, ५७,  
 दृष्टिकोण २६७-६८

निरीश्वरवादी ९३ (देखिए नास्तिक)  
 निर्गुण, इष्ट देवता २८६, उसके विना  
 सगुण नही २८७  
 निर्वाण, अवस्थाविशेष १८३  
 निर्वाणषट्कम् १९० (पा० टि०)  
 निर्विकल्पावस्था १९४  
 निर्विशेष २८७, उसका बोध २८७,  
 उसकी उपासना और परिणाम  
 २९०  
 निवृत्ति, उससे धर्म का आरम्भ ६३  
 नीति, उसका अर्थ १७६, और दया-  
 धर्म १७६  
 नीतिपरायण और सामाजिक प्रतिष्ठा  
 १६८  
 नीतिशास्त्र १९५-९६, २६५, ३७८,  
 उसका आदर्श १९६, उसका  
 क्षेत्र १९७, उसका मूलतत्त्व २३९,  
 उसका सम्पूर्ण विधान १९६, उसकी  
 पृष्ठभूमि २३९, और आध्या-  
 त्मिकता २१४  
 नीति-सहिता, उसका तात्पर्य १५,  
 उसका मूलमंत्र १७६  
 'नेता' ३९४  
 नेत्रपट (retina) २३, १२७  
 नेफोल ४८ (पा० टि०)  
 नैतिक विधान १९५, सतोष ३५२  
 नैतिकता, उसका अर्थ ९२, उसका  
 विकास २३९, उसकी भित्ति २३९,  
 और पवित्रता २४०, सर्वोच्च ९७  
 नैयायिक प्रक्रिया १८७  
 न्याय-युक्ति ३९  
 न्यूटन २४२, २८०, उसका आवि-  
 ष्कार २४२  
 न्यूयार्क २१, ९९, १०८, ३३०, ३४१-  
 ४२, ३४४, ३४६-४७, ३५५,  
 ३५८, ३७५, ३७८-७९, ३८६,  
 ३९१, प्रदेश ३८५, वासी ३९२  
 'न्यूयार्क सन' ३४३  
 पचभूत, उसकी समष्टि ८



पथेन्द्रिय ६५, २८७  
 पण्डित दार्शनिक ४४  
 पण्डे-पुरोहित २४६  
 पदार्थ उसकी अवस्था २५ उसका  
 अस्तित्व का कारण १७२ और  
 परमाणु १२५ कार्बीमूत्र १२७  
 पद २२ ज्योतिर्गम १ देह  
 १ बुद्ध २२ समायनिक ३५७  
 छान्त १३  
 परनिष्ठा और ईर्ष्या ३३३  
 परम तत्व १६५, २१६  
 परम पिता २८९  
 परमहंस २६  
 परमाधुवादी २ ४ उनका अनुसार  
 प्रकृति २ ४  
 परमाणु-सिद्धांत २ ४  
 परमात्मा २१४ २३४ २६७ २९  
 ३२२ ३३३ ३६८ ३९  
 परमाण्व १९८ ९९ २ ६, २७०-७१  
 परमार्थतत्व १६५ विज्ञान १६६  
 परमेस्वर २६ ३५२ ३५५  
 परब्रह्मण्य १६ बाब ३२  
 परापूर्वा ३  
 पराशक्ति ४६  
 परिणामी धीव १२  
 परिव्राजक प्रकारक ३१८  
 परीपकार १५, २ ६ ३१२ उससे  
 पुष्य ३३७  
 पवित्रता और मुक्ति का प्रश्न १८६  
 एवं पूर्णता २३३  
 पशु-मानव ५९  
 पश्चिम और पूर्व में अन्तर ३३४  
 पश्चिमी बेस ३२५ राष्ट्र ३२५  
 पॉटर, पामर, श्रीमती ३७१ ३९१  
 पाठशाला निःशुल्क ३६६  
 पावरी १३९  
 पाप २ ३३ १३१ १५१ २ ६  
 २ ९ २१४ २२९, २३८ ३ ३  
 ३२६ ३३३ ३५४ ३७८ -अत्या  
 चार १९ उसका प्रादुर्भाव २३

भीर अपवित्रता २९६ और  
 दुष्कर्म २७६, -कर्म २ ९ -ताप  
 २०८ ३ २ -ताप और असत् १९  
 परपीड़न ३ ३३७ प्रकृति १८  
 भय ही ३५७  
 पामर, श्री ३३०-३२ ३४१ श्रीमती  
 ३७१ ३ १ सेनेटर ३८३  
 पारमार्थिक व्यापार और कर्म १६६  
 सत्ता १२  
 पारसी ३  
 पार्थिव १६३  
 पॉल करस डॉ ३८१ ३८३  
 पॉड संत ३  
 पास्तनिक जीवन ६५  
 पाश्चात्य और भारत में धार्मिक कृष्टि  
 कोम २५८, २६१ और हिन्दू  
 की जीवन-कृष्टि १४४ बापि  
 १७९ तथा भारत में अंतर ३१५  
 बर्तन २३८ बेघ १४५, १७९,  
 २ २, २७१ ३६९ वेसवासी  
 ३६८ कोय १४४ वासी ३६८  
 विचारक २६ संस्थान १७  
 पितर-पूजा उससे धर्म की उत्पत्ति और  
 धीन १९२ और भारत १९२  
 और हिन्दू १९२  
 'पिता में एकत्व' २५९  
 पितृपाल २७  
 पुष्य २५४  
 'पुत्रत्व' २२९  
 पुनर्जन्म ३३ ११३-१४ १३ उसका  
 सिद्धांत २२९ और आत्मा की  
 स्वतंत्रता २२९  
 पुनर्जन्मवाद ११३ १४ उसका नियम  
 ११३ उसके बिना ज्ञान अर्थात्  
 ११४ और बीबात्या की स्वा  
 धीनता ११९ नैतिक उन्नति का  
 सहायक ११३  
 पुरस्कार और बंध २७  
 पुरातन आधि काल में २३९ उसके  
 गायक २४ उसमें सन्नि की

भावना २३९, और आत्मा मे लिंग  
या जाति-भेद ३२७, और आदर्श  
२४०, और सिद्धांत २४०, पथी  
३०७, प्रभावशाली २४०  
पुरुष, अनन्त ३९, पूर्णस्वरूप ३२,  
साधु ३४, सिद्ध ३४  
पुरोहित ६९, २७८, ३१८,  
उनके अत्याचार ३११, और  
समाज-सुधार ३२८, -सम्प्रदाय ६८  
पुरोहिती शक्ति और विदेशी विजेता  
३६९  
पुलमैन, श्रीमती ३८४  
पुस्तक, आन्तरिक २५१, उससे आत्मा  
की सृष्टि नहीं २३४, तथा औप-  
चारिकता २५३, दार्शनिक ४२,  
वाह्य २५१, मात्र मानचित्र २४७  
(देखिए ग्रंथ)  
'पुस्तकें' २५३  
पूजा-अर्चना १८३, -पद्धति २५९  
पूना ३१३  
पूर्ण पुरुष १७५, मानव १०६,  
स्वरूप पुरुष ३२  
पूर्णता, उसका अर्थ १७५, उसका मार्ग  
३३२  
पूर्वजन्म, उसका अस्तित्व ११३  
पृथ्वी, उसकी उत्पत्ति १०४  
पेरिस ३१०  
पेलियस ४८  
पैगम्बर २४२-४३, उसका तात्पर्य  
२४४, और वेदान्त २४९-५०,  
वनने के लिए प्रशिक्षण-केंद्र २४३,  
वनाने का महान् कार्य २४४,  
विशिष्ट तत्त्व की साकार प्रतिमा  
२४६, सिद्ध २४७  
पैशाचिक उपाय ५०, काण्ड १५०,  
घटना ६५, मानव-प्रकृति ५१,  
रीति ५०, हिन्दू ५६  
पोप, धर्म के ११४, विज्ञान के ११४  
पौराणिक कथा ७, ६५ (पा० टि०),  
२३१, भाषा ७, युग और सम्यता

का उपाकाल ३, साहित्य, ग्रीक  
४८ (पा० टि०)  
प्यारीमोहन ३४९  
प्रकाश, उसका दर्शन २५३, और अन्व-  
कार ५९, ६६, और छाया २९५,  
और ज्ञानस्वरूप ७२, किरण २४,  
१२७  
'प्रकृत मनुष्य' १३  
प्रकृति ३५, ४६, ७३, ७७, ९२, १३९,  
१८३, १८६, २०५, २४२, २६०,  
२९५, ३२१, अचेतन और जड  
७४, अनन्त का सीमावद्ध भाव  
९२, अपने कार्य मे एकरूप १००,  
आत्मा के सम्मुख ३२, आत्मा के  
सम्मुख गतिशील २१९, आंतरिक  
१९७, २३७-३८, उपादान २०४,  
उसका आधारस्वरूप १३०, उसका  
ज्ञाता २९७, उसका नित्यत्व २०४,  
उसका नियमन १९७, उसका परि-  
णाम ३३, उसका बन्धन ५८-९,  
उसका भविष्य और भूत १२६,  
उसका विरोध ५९, उसका सौंदर्य  
और महिमा १०८, उसकी अभि-  
व्यक्ति १२६, उसकी नियमावली  
१००, २९४, उसकी भावमूलक  
शक्ति ३१९, उसकी शक्ति का  
मानवीकरण १९३, उसकी सहायता  
से ब्रह्मदर्शन १५८, उसके ऊपर  
उठने के लिए सघर्ष १९७, उसके  
गुलाम ७४, उसके द्वन्द से परे  
२५३, उसके नियम का पालन  
२६१, उसके पीछे आत्मा १३०,  
उसके प्रभु २९५, उसमे एक नियम  
का राज्य ११६, उसमे जन्म-  
मृत्यु ३३, उसमे विकास की प्रक्रिया  
१०४, उसमे शक्ति २०३, एव  
जीवात्मा से पृथक् ईश्वर २०४, और  
देशकालातीत सत्य १४, और  
विविधता ८४, और वेदान्ती द्वैत-  
वादी २०४, तथा आत्मा २०९,

ईवी २३६ परम सुखर १५८  
परिवर्तन की परिणामी २९  
बाह्य ९५, २३७-३८ मीतिक  
२९६ मनुष्य का उद्देश्य मही  
१९७ मानव १२२ १९७ मान  
वीय २६ क्मी पुस्तक २१२  
व्यक्त २ ३ व्यक्त का परिचय  
और विश्व ८१ साक्षरता २२८  
संबन्धी चारणा ८२ सहीम और  
मनुष्य का ज्ञान ९२ हिंदीसे सृष्टा  
१२६

प्रगति उसका चरमतम विकास २१

उसका पथ २७५

प्रवाही और नियम १

प्रतीक उसका विकास २४

प्रत्यक्षावाही १६६

प्रत्यजानुभूति ३८४ १६५ ६६,

१६८ और धर्म १६६ धर्म का

सुर ३९ सत्य की २४४

प्रत्यक्षीकरण २४८

'प्रबुद्ध भारत' ३९५

प्रभु ७५, १२६ १३९ २६२, ३२३

३२५ ३३५, ३९६ उसका संसार

२६७ प्रत्येक मानव हृदय में १२

सर्वसमाधीक २३ सर्वव्यापी १५१

प्रकृत्य ५ ६ उसकी कथा ६

प्रकृति अतीत के कर्म का परिणाम

२३ और इन्द्रिय ६५ और

निवृत्ति ६३ और संयम ६४

पापविक ३५८ समस्त कर्म का

मूल ६३

प्रवाल महासागर ३५५

प्राचीन कथा १४८ देवता ६४

प्राचीन तथा मनु व्यवस्थान १८३

प्राचीन व्यवस्थान ६१

'प्राच्य इतिहासोक्ति' ३१७

प्राच्य चिन्तन १४६ दर्शन और धर्म

१८६ दण १६५ बार्मिक भाष

३ -बामी मानव ३१७

प्राच्य ४ २१७ उमरा प्रमाथ

और जगत्-सृष्टि २२ उसका

स्वरूप १४५ और आत्मा २५

-कर्मण से विश्व-उत्पत्ति २ ३

तत्त्व ४४-५ महासक्ति की जमि

व्यक्ति २२ मूल २२

प्राभाषाम उसका लक्ष्य २५६

प्रतापचन्द्र मञ्जुशर ३ ९

प्रतिबन्धिता उसका सिद्धांत २६६

प्रार्थना-विधि २८९

प्रेत-चरित ५८

प्रेतात्मा १९२

प्रेम २६२, २७१ अमृत और माया

७५ उसकी अनन्त सक्ति ७१

और कबीकीर्ण भाव ६४ और

बागविक प्राणी ३७३ और मान

मता ६३ सूत्र २७१ तथा कबीका

६३ तथा निष्कपट सक्ति ३९६

तथा मानव-जाति ४१ भाव ३४८

-सागर २८९

'प्रेम तेजस्विता स्वाधीनता' ३८८

प्रेम और श्रेय १६५

प्रेरणा बतल से प्राप्त २७२ ईवी

२७२ सहज ११६

प्रेसबिटेरियन ३४४ पुरोहित ३७८

प्रीत श्रीमती ३९

प्लाइमाउथ ३९

प्लेटो ९४

फल कर्म का ११४ पूर्व अनुभूति का

११६ समष्टिभूत ११४

फ्रावर पीय २४७ ३७९

फ्रिंस श्रीमती ३८७

फिरिकर ३९ ९१ लीचिंग ३७८

फिलिप्स कुमारी ३८५

फीनी हार्टमी ३ १

फोनीषाफ ३७६

फोरोम ३४५

फोम उनके निवासी २५८ उत्तरी

जाति २७७

फोलीती विज्ञान ३८५

फ्रिक्सस ४८ (पा० टि०)

फ्लैंग ३२२

वगाल ३२२, ३२५, ३३४ (पा० टि०)

वगाली ३७८, कहावत ३४९, ३६१

वन्धन ३७, ४८, ७८, ९५, १३१,

१७५, २०६, २१८-१९, २५३,

२५७, २६०, २९३, २९५, अनै-

तिकता का ९५, उसकी कारणीभूत

प्रकृति २९७, उसकी धारणा

२९५, और मुक्ति २९५, नैतिक,

उसकी धारणा २९६, प्रकृति का

५८, मुक्त ६९, ससार का ५५

बन्धुत्व, उसकी भावना २०१

बम्बई ३९३

बरोज़, डॉ० ३०९, ३१९, ३४३, ३७५,

३८०, जे० एच० ३८३, प्रेसी-

डेंट ३३६

बर्मी २५७

बबर देश १४५

बलिदान और बड़ा काम ३५६

बहिश्त २७८ (देखिए स्वर्ग)

बहुईश्वरवादी ३२६

बाइबिल १६८, १७५, १८२-८३,

२२९, २३१, २३५, २४२, २४६,

२७९, २८४, २९०

बाँनी, श्री, उनके गुण ३१९

बालक, क्रमसकुचित मनुष्य १२३

बाल-विवाह ५५

बालाजी ३८२, ३९४

बिम ३५५

बिमला ३६२-६३

बीज, उसमें उद्भिद् की सृष्टि १०१,

और सृष्टि १००-३

बुद्ध ७, ४७, ९३, १२६, १७६, १९४,

२२७, २५८, २७६, ३००, ३२४,

३२९, और ईसा २४१, भग-

वान् ६९, महान् ९७, -मानव

८, १०६ (देखिए बुद्धदेव)

बुद्धदेव ६९, ७८, ९३-४, ३११, ३६०-

६१, उनका अद्भुत प्रेम और  
हृदय ९४

बुद्धि २३, १२७, उसका आदि तत्त्व

२८०, उसकी अभिव्यक्ति १०५-

६, उसकी देवी २७७, उसकी

परिभाषा २७२, उसके सहारे

अस्तित्व का अनुभव १११, उससे

आशय २८०, एव मनन १४३,

और जड १११, और सस्कृति

१४९, क्रमसकुचित १०४, जगत्

की अन्तिम वस्तु १०५, पहले

क्रमसकुचित, फिर क्रमविकसित

१०६, विश्वजनीन का नाम ईश्वर

१०६, विश्वव्यापी १०६-७

बेकन स्ट्रीट ३५१

बेविलोन ६, १९१-९२

बेविलोनियावासी २३१

बैंगली, परिवार ३९१, श्रीमती ३३२,

३४१, ३४६, ३५८, जे० जे० ३८३

बोधिवृक्ष ७८

बोस्टन २७३, ३०७, ३३०, ३३२,

३४५, ३४७-४८, ३५१, ३५५,

३५८, ३७५, ३८१, ३८७, ३९१-

९२, निवासी ३९२

'बोस्टन ट्रान्सक्रिप्ट' ३९२

बौद्ध २८, ४४, ६८, ३८२, ३९५,

अर्वाचीन २५७, आदि २५७,

उनकी प्रमुख प्रार्थना ३३३, उनकी

मान्यता २५५, और जैन २०२,

और नास्तिक ७१, और नैतिक

नियम १९४, दक्षिण सम्प्रदाय के

प्रतिनिधि १९४, दर्शन २८,

दार्शनिक ४४, धर्म १८३, २४०,

२४९, २५७, ३९५, धर्म, उसके

अनुयायी २५५, लोग २९, २०७,

सम्प्रदाय १८५

बौद्धिक अन्वेषण २७८, अवस्था १९४,

आनन्द ५५, २७०, चिन्तन १९४,

प्रगति, उसका मूलस्रोत २६८, श्रद्धा

९३, सुख २७०

ब्रह्म २६ १३ १५, १२६, १४२,  
 १४४ १४८ १७ १८३ २१३  
 २१६, २२ २४३ २५९ २८२,  
 २८४ अगस्त ९ अपनो सत्ता  
 का आधार ८७ उसमें बेस-काक-  
 निमित्त नहीं ८७ एकमेवशिवी  
 मम् ८७ और भाग ९१ १४२  
 और विद्व २२ और विपवी  
 ९२ भाग सहाय ३६३ वर्तन  
 १४२ १५६ नित्य पूर्ण १७१  
 निर्गुम पूर्व ७२ निविद्येय उसकी  
 परम अभिष्यक्ति २८८ बुद्धि  
 १५५ भाष ८४ १५३ भाष  
 निर्गुम ९७ लोक २६-७ ३२ ३६  
 १४२ नहीं बनत् ८५ धारण  
 २६९ संवधी विभिन्न मत और  
 मूलमूल तत्त्व ८ सत्ता निरपेक्ष  
 ८७ सत्ता पूर्व ८९ स्वस्व ४  
 १५ १९ २९९

'ब्रह्म को जानना' ८७  
 ब्रह्मचर्य १७ -सतकारण ३१६  
 ब्रह्मरथ उसकी अभिष्यक्ति ३२८ और  
 पयुत्न २२३  
 ब्रह्ममय १७  
 ब्रह्मण्ड २२ २९, ४२ १ २३  
 १६-६१ १७१ १८२ २११  
 २२८ २८८ अक्षिप्त २१२  
 ईश्वर क शरीर जैसा १८१ उसमें  
 मुक्ति २९७ भाग १ ०-१  
 १ ६ बृहत् २१४ २६४ विविध  
 १२५ विद्व १ ५, ११३ १८३  
 ३ १ मूढम १ ३ २१४ २३  
 २६४ स्वस्व ३

ब्रह्ममन्त्र १७ शर्मा ३६२  
 ब्राह्म गमात्र ३ ० ३४३ ३५४ ३७५  
 ब्राह्मण ६ २६४ ३११ ३२०  
 ३३७ ३६२ बय १ ४ भाग ४४  
 भाष वेद का १४२  
 और धीकरी ३४१ ३४५, ३८४  
 ईश्वर धीनून ३ १

भक्ति २ ४ उसके युव और अबपुत्र  
 ३२५ भक्त तथा भगवान् एक  
 २६२  
 भगवत्कृपा ३९३  
 भगवत्सेवा ३५  
 भगवद्गीता १७८ २२९ अक्षिप्त  
 उपनिषत् १७८ (देखिए गीता)  
 भयवान् ४ १३ ९८ १२ १२६,  
 १३६, १३९ १५२, १८६ २५२-  
 ५४ २६२ २९९ ३ ३१२,  
 ३२०-२१ ३२८ ३४२, ३५  
 ३५६, ३६५, ३६७ ३७८-८

भोजन २५९  
 'भयानक विजयी' ३१८  
 भर्तृहरि ३३६ राजा ३५४ नीति-  
 शास्त्रम् ३५  
 भागवत और पुराण ३६  
 भाष्य उसका अर्थ ४ और ईश्वर  
 ११९ और वायु ११९  
 भारत २१ ४१, ५८, ९३ ४ ९६,  
 ९९, १४२ १७२, १८७ २ २  
 ४ २ ७-८ २५८, २६१ ३ ९,  
 ३१२, ३१६ ३१९ ३२१ २३  
 ३२५, ३३१ ३३५ (पा टि )  
 ३३९ ४३ ३४५ ४६ ३४९,  
 ३५२, ३५४-५५, ३५७-६४  
 ३६७ ३६९, ३७ -७१ ३७५,  
 ३७७ ३८ ३ ५ ९६ उत्तर  
 ३११ उसकी अक्षीम-समस्या  
 ३४५ उसकी बेटी ५६ उसकी  
 निवृत्ति ३३७-३९ उसमें प्रचलित  
 विभिन्न धर्म २ २ और पारनाय  
 में अन्तर ३८, ७ और समाज  
 मुवाकफ ४९ दशम ३३७ ३४  
 परिचय ३६ मी ३६८ माना  
 ३२९ वही उच्च ज्ञान का नीच पर  
 अत्याचार ३३७ वही के लमात्र  
 मुवाकफ ३११ वही धार्मिक  
 शर्माजिना ६८ शर्मा ३३९  
 (देखिए भारतवर्ष)

भारतवर्ष १७, ६८-७०, ९३-४, ९६, १२३, १४२, १६१, १६७, २०८, २२८, २४०, ३११, ३२५, ३३७, उसके अनर्थ की जड़ ३६९

भारतीय एव अमेरिकन ३४५, चिन्तन-धारा २०२, दर्शन ६८, २०२-३, २१४, दर्शन, उसका विकास-क्रम २१४, दार्शनिक १३, २१-२, द्वारा भारत की उन्नति सम्भव ३२९, धार्मिक चिन्तन २०२, धार्मिक विचार-समूह ३६०, नारी ५६, पत्र ३७४, पुराण ७, मत १८१, महिला ३७१, वायुमण्डल ३११, ममाचारपत्र ३१४, ३९३, साधु १७

भाव, उसकी समष्टि और नाम ६४, पौराणिक या रूपक १८१, भ्रमात्मक, स्वामित्व का १५३, साहचर्य-विधान १०६, सूक्ष्म से स्थूल मे १२५, स्वर्गीय १५३, भावना और आदि मानव ६२, और इन्द्रिय १५२

भाषा, अलंकारपूर्ण १६१, और मात्रा का तारतम्य ७, जर्मन २०२, पौराणिक ७, यूनानी ३०८, लौकिक १०९, वैदिक १००, सस्कृत १०, १२८

भूत-प्रेत ५८, -योनि २७

भेद-ज्ञान ३००, -ज्ञान और अशुभ १६, -भाव १४६

भोग-वासना ११४, १६५, १७४, -विलास १५४, ३७०, विषय १६५, सवधी धारणा १३७, सामग्री १६२

भौतिक, अन्वेषक, उसकी प्रवृत्ति २८५, कार्यकलाप २२०, घटना १२६, जगत् २५१, २८७, द्रव्य २१६-१७, निधि २६८, पदार्थ २३७, प्रकृति २९६, प्रगति २६८,

रूपाकार १२५, वस्तु २६५, वाद ९३-४, २२७, २३०, वाद और भोग-विलास ३२२, वादी २२, २३०, विज्ञान २२, २४२, २५१, २६५, २७७, २९१, शास्त्र १९५, २६५, शास्त्री २८१, साधन और जगत् २००

भौतिक कोप' ११८

भौतिकी वेत्ता १६६

भ्रम ६०, उससे भ्रम की उत्पत्ति २१३, और वादल का दृष्टान्त २१३

भ्रान्ति और मनुष्य ३३

भ्रम, उसका द्रष्टा १९४, विशेष व्यक्ति की सम्पत्ति नहीं २४१, शब्द का अर्थ २४१

भगल १३९ (देखिए शुभ)

भक्का २४९

भजद्वार तथा पूंजीपति ३६८

भजूमदार ३५४, प्रतापचन्द्र ३०९, महाशय ३३५

भणिलाल द्विवेदी ३१३

मत और प्रणाली १८१, और सम्प्रदाय का अपना महत्त्व २३४, मन का व्यायाम और बुद्धि की कसरत १८१, शिक्षा और मनुष्य पर परिणाम १८९

मतान्ध और कट्टर ७०

मदर चर्च ३४१, ३४५, ३७९, ३८७-मद्रास ३४३, ३५३, ३७४, ३८१, ३८३, ३९५

मद्रासी बन्धु ३७७, शिशु ३७६, शिष्य ३१९, ३७४, लोग ३७६, मन, अनेक बार जन्म-ग्रहण ११८;

आत्मा के हाथ यत्र १२८, आत्मा नहीं ११-२, ११०, उच्चतर सत्ता २२, उसका आधार १०, उसका नियामक १५८, उसका व्यक्तित्व और ईश्वर १७३, उसका सस्कार

५१ उसका स्वभाव १२  
 उसकी अनिवार्यता ११ उसकी  
 प्रकृति १३ उसकी शक्ति और  
 शरीर १८ उसकी सीमा और  
 विषय ८७ उसकी सृष्टि १२  
 उसके कार्य पूर्वनिर्मिति के फल  
 ११७ उसके द्वारा उपयोगी तथा  
 बाधग्रहण ११८ उसके द्वारा ब्रह्म  
 बस्तु उसीम ८७ उसके पीछे  
 आत्मा २४ उसके संस्कारों की  
 छाया ११७ उसमें ही संस्कारवास  
 ११८ एक प्रकार के परिणाम  
 का नाम ८५ और आत्मा २४  
 २१६ और बाह्य बस्तु का प्रभाव  
 १११ और बुद्धि २४ ५४ ११  
 और मस्तिष्क १८९ और व्यर्थ  
 तर्क १६६ और शरीर ११४  
 और संस्कार ११ कभी निर्बल  
 कभी सबल ११ तथा इन्द्रिय  
 २ १ यंत्र मात्र १२८ बाह्य  
 ११ शरीर का विरोधी नहीं  
 २३८ शरीर में विद्यमान २३८  
 संस्कार-मूल्य और ब्रह्मा ११५  
 सत्त परिणामशील विचार प्रवाह  
 २८ सर्वव्यापी २३

ममता और मिथिष्यासन १८

मनस्तत्त्व ९५

मनु महर्षि ६ ३१५ १६

मनु ३१५, ३३७ (पा टि )

मनुष्य अज्ञानी २६ अज्ञान सत्ता  
 का आभाव मात्र १५ अणुमिति  
 की लक्ष्मि केकर उसका जन्म  
 ११६ जन्मा १६७ अपना  
 उत्तरदाता २ ५ ६ अपना भाग्य  
 निर्माता १२ जन्म २९६  
 भाविम ११७ भाषुनिक ५५,  
 २७७-७८ भाषुनिक १९८  
 उत्तम कमी १६८ उत्तम अमरत्व  
 और कामना १८६ उत्तम अमल  
 ३६ उत्तम आत्मा के प्रति

विग्रह ३ ३ उसका आदर्श  
 १५६ उसका इतिहास १४ उसका  
 चक्षुष्य १९९ उसका चक्षुष्य 'प्रकृति'  
 नहीं १९७ उसका कर्तव्य १७६  
 उसका कष्ट और कल्याण चेष्टा  
 १२ उसका केन्द्र १६१ उसका  
 छोटा हुआ राज्य १८१ उसका  
 ज्ञान १८ ६७ १२२ उसका  
 नाम नाम और नैतिकता का  
 विकास २३९ उसका वेदत्व और  
 पशुत्व २४५ उसका बर्ण आत्मा  
 में २५२ उसका ध्येय मुक्ति  
 २६१ उसका परम ज्ञान २७  
 उसका प्रकृत स्वरूप १-१११  
 ११२ उसका प्रश्न ९९ उसका  
 ब्रह्मभाव १८५ उसका भय से  
 मुक्त होना सक्य ८६ उसका  
 भ्रम २१२ उसका मन १ ८  
 उसका पदार्थ 'व्यक्तित्व' १३  
 उसका बस्तु के लिए सर्व  
 २५६ उसका वास्तविक प्रेम ४  
 उसका विकास और शक्ति की  
 अभिव्यक्ति २४ उसका शरीर  
 २४ उसका सत्य १२ उसका  
 सबसे बड़ा प्रयोजन १६ उसका  
 समग्र जीवन स्वाधीनता हेतु २९३  
 उसका स्वभाव १९८ उसका  
 स्वरूप १४ उसकी अमल की  
 शक्ति २६३ उसकी असमर्थता  
 १९८ उसकी आकांक्षा १९३  
 उसकी आत्मा १३ १३४ २५२  
 उसकी आत्मा अनुभवकर्ता धास्ता  
 एवं लप्ता १२९ उसकी आत्मा  
 कार्य-कारणबाध से परे १२ उसकी  
 आत्मा की अन्तरात्मा ८९ उसकी  
 आत्मा की व्याख्या २४ उसकी  
 आत्मा व्यष्टि में २४ उसकी  
 आकांक्षता १९७ उसकी आत्मा  
 १ ६; उसकी इच्छा ब्रह्म ३७  
 उसकी इन्द्रिय की रूप २५ उसकी

ईश्वर सबधी धारणा २६०, उसकी उत्पत्ति १०३, उसकी एकता और आस्था २८३, उसकी कोटि ३४, उसकी चिन्ता और मुक्ति ११, उसकी ज्ञानक्षेत्र में सफलता २७०, उसकी दृष्टि १००, उसकी धारणा ६३, उसकी प्रेम की पहचान ३६०, उसकी भूल ३३, उसकी महानता के लिए तीन बातें ३२४, उसकी मृत्यु इच्छानुसार ५, उसकी विचारधारा ९९, उसकी सत्य तथा धर्म के हेतु चेष्टा ७९, उसकी सफलता और प्रयत्न १५६, उसकी सबसे बड़ी मिथ्या बात ३४, उसकी स्थिति, धर्म की बदौलत २६९, उसकी स्थूल देह और मन ११२, उसकी स्वाभाविक दुर्बलता ११९, उसकी हताशा और ईश्वरीय वाणी ७८, उसके अध्ययन के विषय २३७, उसके आदर्श नायक २४०, उसके आन्तरिक स्वरूप की जिज्ञासा १५९, उसके ईश्वर को देखने की दृष्टि २६०, उसके चारों ओर १००, उसके ज्ञान होने पर ३४, उसके द्वारा आत्मा का विषयीकरण २६०, उसके द्वारा विश्लेषण १०८, उसके पीछे यथार्थ पुरुष ६२, उसके भीतर कष्ट से छुटकारा पाने का रास्ता २५६, उसके भीतर स्वर्ग का राज्य २३३, उसके शाश्वत सगी २२७, उसके सत्य का ज्ञान ३९, उसके सामने दुःख का प्रतीक १९५, उसके सुखो होने की इच्छा ४, उसके स्वरूप-प्राप्ति में साधना २५९, उसमें अनन्त शक्ति २०, उसमें जगत् की महाशक्ति २०, एक अपरिवर्तनशील तत्त्व २५५, एक इकाई २५५, और अन्वेषण १९३, और अपरिमित

शक्तिवाला आदर्श १९५, और असतुलन २१०, और आध्यात्मिक प्रदीप २३६, और ईश्वर २६०, और जगत् ३, और धर्म का विकास १९१, और धर्म तथा सत्य-प्राप्ति का पथ ७९, और नियम २९३, और नीतिसंगत भाव ६४, और नैतिक भाव की उन्नति ६३, और पशु तथा उसमें अन्तर ६७-८, २६८, २७०, और पूर्ण आदर्श १४, और प्रकृति ७४, ३२४, और बीजाणु १०३, और बौद्धिक श्रद्धा की आवश्यकता ९३, और आन्ति ३३, और महान् सत्य ४१, और मृत्यु-भय की विजय-प्राप्ति १३, और रुचि के अनुसार आदर्श २५२, और शरीर सबधी सिद्धान्त २१, और 'संस्कार' २५, २१७, और ममाज १४, और स्थूल देह ५, और स्वतन्त्रता ३२१, और हृदय-ग्रन्थि १४४, कमजोर पौधा २१०, कर्म का शाश्वत फल नहीं २०७, किसे कहा जाता है १९७, क्रमविकसित बालक १२३, क्रम-विकास का परिणाम ७, चिन्तनशील और जगत्-समस्या १६०, चैतन्य-स्वरूप ३०१, जगली ५१-२, २९६, जगत् का ईश्वर १३१, जगत् की आत्मा १३२, जगत् की एकमात्र सत्ता १३१, जगत् में सर्वश्रेष्ठ प्राणी २७, जन्म की प्रक्रिया २६, जाति का स्वभाव १९८, जाति की चेतना का अग २४२, जाति के परित्राता ४७ (देखिए बुद्ध), -जीवन ३७, जीवन भर पहली में आवद्ध ६६, ज्योतिस्वरूप १४०, तथा आदर्श का चुनाव २५२, तथा इन्द्रिय, उसका प्रश्न २७१, तथा जगन्नियन्ता, अभिन्न २८८, तथा धार्मिक विचार



मीर सत्यता २६४ तथा मया  
 विचार और असंतुलन २१  
 तथा प्रेम और भय १६५ तथा  
 महत्त्वपूर्ण प्रश्न २५५ तथा माम  
 सिक संवेदन २५५ तथा विश्वास  
 २५६ तथा व्यक्तिगत विशेषता  
 २५२ दिव्य है २४४ इष्टा २४४  
 द्वारा अस्तु कर्म और सकोचन  
 १८१ द्वारा ईश्वर ज्ञातव्य १२३  
 निर्गुण और निर्गुण ईश्वर १८  
 निर्गुण पुरुष निष्पाप उसकी अब  
 गति ५ भीतिपरायण क्यों ९५  
 परिणामत परिवर्तनशील २५५  
 पानी और बुद्ध ३४ पासबी  
 प्रकृतिवादी ५१ पूर्ण और वासना  
 २२२ पूर्णतम १४ पूर्णस्वरूप  
 १४ प्रकृत ३७-अकृति २९३  
 प्रकृति का बिरोधी ५९ ब्रह्म ५८  
 बलवान १५५ भौतिक पदार्थ से  
 निर्मित २३७ मदीन नहीं है  
 ३३१ मुक्त स्वभाव १४ २९३  
 मुक्त है ३७ मृत्यु के पास उसकी  
 बसा १७०-७१ यथार्थ एक अखंड  
 मत्तास्वरूप ३५ वर्तमान काल में  
 १७४ विद्रोही और मरक का  
 अस्तित्व २९४ व्यष्टि २४ सर्व  
 श्रेष्ठ ११७ साधारण १९८  
 सीमा से अकड़ा ५८ स्वभाव से  
 मुक्त १८४ स्वरूप ११  
 अनुप्याय और देवत्व १८१ २२  
 'मनुष्या का स्वामी' ३३४  
 मनाविज्ञान २३  
 मर्णावृत्ति और विचार ५७ और  
 मकीर्णताकारी ३४  
 अद्विज और नगर ६-अग्निद २७४  
 मरीचिका और मान ३६ और मय  
 ३६  
 मरेनिया उगता वाग्य ३६०  
 मरिचक एक दृश्य १६ और बुद्धि  
 २० और लीला ८

महाज्ञान उसकी पिपासा ७३  
 महात्मा उसकी जीवनी और नियम  
 २४८-अरिज ५८  
 महापुरुष ७५ अनुभव के माध्यम  
 २४७ उनके गुण और लुब्ध अनु  
 १४ और जानकारी ७१  
 कल्याण के प्रेरक २४१ तथा  
 पैगम्बर २४ ४१ प्राचीन और  
 बेहान्त वर्णन ७१  
 महाशक्ति उसकी अभिव्यक्ति २२  
 'महामेला' ३७१  
 महावीर ७९  
 महिन ३५३  
 महिला-कर्म ३४८  
 महोत्सव न्यायरत्न ३८  
 माता अरुणा गुलाम ७५  
 माणव ३८८  
 मान और मय १६१  
 'मानव-कर्मण' ३३  
 'मानव का अधिकार' २५८  
 मानव-अर्थम अद्भुत अवसर २८  
 अद्भुत स्थिति २८ महान् कैन्द  
 २८-यसू २८४  
 मानवता उसका अर्थ २६८ उसका  
 विशिष्ट अंग २८  
 मानवात्मा २२९ ईश्वर का अर्थ मान  
 १२९ उसका उपमोष्य ५५  
 पूजा के लिए सर्वश्रेष्ठ मंदिर १४२  
 मानवी भाषा और शब्द ६  
 मानवीय अज्ञानता २८३  
 मानसिक चिन्तितक ३८७  
 माया ६३ ४ ५९ ५९ ६६-७ ७३  
 ८०-१ ८१४ ९ १ १३७  
 १४ १५१ १५३ उसका साधा  
 रण भाव १७ उसका स्वामी ६७  
 उसकी धारणा ६ उगती परि  
 भाषा ५ उगती ध्याया ५९  
 ५७ उगते अर्थान ५५ उगते  
 शान ७७ उगते मानव व्यक्तित्व  
 ७६ उगते न वेगता न बपी ४०

उसमे मनुष्य-जन्म और जीवन ६६, ७७, उसमे। अतीत आत्मा ७८, १८४, उसे ही प्रकृति समझो ४४, और आसक्ति ४७, और इन्द्रिय ७४, और इन्द्रिय-सुख ७६, और जड का अनुकरण ७४, और नारद ७६, और प्रकृति के गुलाम ७४, और प्रेम ७५, और बन्धन ४८, और मृत्यु ४९, तत्त्व ४३, त्रिगुणमयी ७८, देश-काल, उसके भीतर १३५, द्वारा व्यक्ति-सृजन तथा पार्थक्य बोध ३१, -प्रपच ८३, 'भ्रम' नहीं ६०, महेश्वर ४४, वाद ४३-४, ५०, ५५, ६२, १८१, वाद, यथार्थ ४३, वादी, उसका कथन १८३, विशेष सिद्धान्त नहीं ६०, विषयक धारणा ४३, ससार का तथ्यात्मक कथन ६०, ससार की वस्तु-स्थिति का वर्णन मात्र ५२

मार ७९

मार्ग, वास्तविक १५४, सच्चा, अत्यन्त कठिन १४४

मार्स (मंगल) देवता ४८ (पा० टि०)

मासाचुसेट्स ३३९ (पा० टि०)

मित्र, हरिपद ३१४

मिथ्या और पाखण्ड ७८

मिनियापोलिस ३१३

मिल्स कम्पनी ३८७

मिल्स, श्रीमती ३८६, ३९१

मिशनरी ३८१, लोग ३५५, ३६४, ३७५, ३८०

मिशिगन एवेन्यू ३०७, भाषण ३३०

मिख ६, १९१, २३०, वासी १९१-९२

मुक्त पुरुष, उसका स्वरूप ८०

मुक्ति ३७, ८२, २१०, २३४, २५७, २९४-९५, ३६९, आत्मा का जन्म-गत स्वभाव ३७, आत्मा की अन्त-रात्मा ८३, ईश्वरस्वरूप २९६,

उसका अनुसन्धान २९६, उसका अर्थ १८४, उसका उपदेश ७९, उसका उपाय २९८, उमका पथ ३०१, उसका भाव ८२, उसका मार्ग ३५२, उसका मार्ग नैतिकता ९५, उसकी अदम्य आकाक्षा २९७, उमकी धारणा ९७, २९६, उसकी प्राप्ति २७, उसकी भावना ८०, उसके लिए सघर्ष और व्यक्ति २२१, और ईश्वर ५७, और उज्ज्वल अग्नि २९६, और ज्ञान २९६, और भक्ति ३६३, और स्वाधीनता २९६, तत्त्व २९८, मनुष्य का ध्येय २६१, मनुष्य मे सदैव वर्तमान २९६, -लाभ २६-७, २९४, २९९, लाभ और प्रकृति पर आधिपत्य २९६, सुख-दुख का अतिक्रमण २९८, ही यथार्थ स्वाधीनता २९६

मुण्डकोपनिषद् २९९ (पा० टि०)

मुदालियर, सिगारावेलू ३२५ (देखिए किडी)

मसलमान १६७, १८३, २०३, २४०, २४९, २५८, २७८-७९, ३३८,

३६५, सिपाही १७

मुहम्मद १८३, २५८, ३००, ३३८, ३६६

मूर्ति-पूजा ३२३, ३३६, ३६५

मूसा ७, २४१

मृत्यु, उसका रहस्य १५९ (पा० टि०),

उसकी महिमा ४८, और जीवन

१२९, प्रकृत सत्ता की अमिव्यक्ति

१८२, -मय १३, रूपी तथ्य ४७,

सवका लक्ष्य ४७, -हीन जीवन ५३

मेरी हेल, कुमारी ३३३, ३४१, ३८४-८५

'मैं' १४-५, ३०, १७६-७७, २१३,

२८९, २९१

'मैं और मेरा' २०७

'मैं नहीं तू' १९५

'मैं-पन' १२७

'मैं वही हूँ' २६०

मिचलियूबेल धीमती ३३२  
 मैक्स मूलर २ २ ३१३  
 मैजिक सैन्टर्न ३५७  
 मैक्सिम ३१३  
 'मीडोना' २३१  
 मैग्नी ३६१  
 मैसूर ३४३ ३६८ ३७१ ३७४ ३८२  
 ३९३ ३९५  
 मोल २ ६-७ २३४ उसकी परिभाषा  
 २६८ प्राप्ति २ ७ २२  
 मोनेरी डॉ ३१३-१४

मन १६१ ६२ उसकी सन्धि १६४  
 और आकाश १४ कर्ता १६१  
 कार्य १६३ सर्वश्री ज्ञान १६३  
 यथार्थवाद ४४  
 मन १६२, १६४ ६६, १७ १७२  
 (देखिए मम देवता)  
 मन देवता १६२ पितर के सासनकर्ता  
 १६२  
 मस-प्राप्ति २ ६  
 मङ्गली ५, १६३ २३१ २४९, २७९,  
 २९३ उसकी परम्परा २३१  
 उसकी विशेषता २३७ और ईसाई  
 १९४ प्राचीन ६१ लीय २२९  
 मुझको उसमें माला भेषकर ७९  
 मुक्तिपिठ, गजा ४९  
 मुनाग २३ २६४ (देखिए धीक)  
 मुनागी भाषा ३ ८  
 'मुनिवर्धक द्रुप' ३८६  
 यूरोप ८७ ९४ २ ४ २३१ ३१०-१२  
 ३६१ उसका उद्घाट, बुद्धि  
 पत्रक बर्म पर ९४ वही बर्म कुठि  
 सलीय ७  
 यूरोपियन विश्वेशी ३४  
 यूरोपीय जाति ९५ दार्शनिक ११५  
 राजपरिवार ३७१ लीय ३१  
 २५९ वैज्ञानिक आधुनिक ४५  
 योगदान १४३ राज १४३  
 योगी १४३ मुक्तपुत्र १ ५

योगिक पदार्थ समका राज १२९  
 नियम के राज्य क अन्तर्गत १२९  
 रसायनशास्त्र १६६ २४३ २४७  
 २६५ २७५, २७८ और प्रकृति  
 पुस्तक २५१ वेता १६६  
 रसायनशास्त्री २४७ २७५, २८१  
 रहस्यवादी २५१ (देखिए अतीन्द्रिय  
 वादी)  
 राष्ट्र के एक ३८१ डॉ ३ ८  
 प्रोफेसर ३४५ ४६ ३९१  
 राजा ३६२ (देखिए ब्रह्मानन्द स्वामी)  
 राजपूताना ३४१ ३५६  
 राजप्रासाद ४७  
 राजयोग १४३  
 राजा साहब (रामनाथ) ३८२  
 राम ३२९  
 रामहृष्य ३२६ ३२९, ३४८ ३६  
 ३६३ ईश्वर के अकार ३६  
 उनका जीवन और उपदेश ३२६  
 उनका महत्त्व ३६१ उनकी विशेष  
 बात ३६ -जन्मोत्सव ३४९  
 परमईश ३२२, ३५९, ३७७  
 भयवान् ३३४ (पा टि)  
 समन्वयपूर्ण जीवन ३२६  
 रामकृष्णानन्द स्वामी ३३४ (देखिए  
 कृष्ण)  
 रामचन्द्राक बाबू ३६२  
 रामनाथ ३१२, ३४३ ३८२  
 रामपार्टी रो ३९३  
 राममोहन राम ३११  
 रामायण ३७२  
 राज बहादुर नरसिंहाचारियर ३७१  
 राज्य उसका बनी होना अन्य की सति  
 २६३ उसकी भाषी सति ३२१  
 उसकी महानता के लिए तीन  
 आवश्यक बातें ३२४ पश्चिमी  
 ३२५ भारतीय उसके उद्घाट का  
 उपाय ३२५ भारतीय औपनी में  
 बसा ३२१ हिन्दू ३२४

राष्ट्रीय जीवन ३१८, मृत्यु २६१  
रामायनिक द्रव्य ३२१, सामग्री ३६५,  
३६९

'रिव्यू ऑफ रिव्यूज़' ३४५

रिस डेविड्स ३१३

रीति-रिवाज ५६, ३२९, ३८३

रूप ९१, -आकृति १२५,

और आकार २०४

रूपक-कथा और प्रतीक २२९

रेवरेण्ड आर० ए० ह्यूम ३३९ (पा०-  
टि०)

रोटी, रुपया और वस्त्र २६९

रोमन २३१, कैथोलिक २८९

लका ३१३

लदन ७३, ८५, १५९, ३१३, ३७६

(देखिए लन्दन)

लन्दन ३, ४३, १३३, १४८, १७८, १९१

'ललितविस्तर' ४७

लाग हाउस फार्म ३३१

लीन ३३१, ३४६, क्लब ३४१

लीम एबॉट ३४७

लेपेल, सर ३४५

लोकाचार १९७

'लोकायत दर्शन' ९३

'वयोवृद्ध बालक-सघ' ३३०

वरुण १३४

वर्ण-व्यवस्था ३११

वस्तु, अचल २४, अनन्त काल से १०४,

अपरिणामी २९, इन्द्रिय विषयक

१९८, उसका आदि और अन्त

१०१, उसका आभ्यन्तरिक सत्य

१५८, उसका मर्म १४५, उसका

वास्तविक स्वरूप १३३, उसकी

उत्पत्ति देश-काल मे १३५,

उसके अन्तराल मे एकत्व भाव

१२३, १५७, उसके दो विभिन्न

रूप १३५, उसके मर्म की खोज

१४५, उसके स्वरूप की व्याख्या

१३१, उसमे ईश्वर-बुद्धि १५४,

उससे आत्मा, पृथक् २३९,

एकता की ओर २३९, एक ही,

दुःख-सुख का कारण १३५, और

अज्ञानी प्राणी २३९, और ज्ञान-

लाभ १४, काम्य ५५, १३३,

चलनशील २४, जड १११,

जीवित २९२, तथा नियम १३०,

तरंग की भाँति १०४, दृश्य ३०,

नाम-रूपयुक्त १२३, परमाणु

की सहति मात्र १०, परमाणु के

समवायविशेष १२५, प्रकृति २८२,

सयोगजनित और पाप २४४,

समानधर्मी २८०, सर्वव्यापी एक

३०, ससीम १२, सासारिक २८९,

स्थिर २४

वाद्य संगीत २२८

वाल्डोर्फ ३४६, होटल ३४६

वाशिंगटन एवेन्यू ३८३

वासना, उसकी शक्ति १७५, उससे

दुःख १७४, उसे पूर्ण करने की

शक्ति १७४, -त्याग, उसका क्या

अर्थ १५१-५२, सासारिक १५३

विकास ५४, उसका सार २८२,

उसकी पहली शतें ६९

विकासवाद २८४, उसका सिद्धान्त

२८२ (देखिए क्रमविकासवाद)

विचार, असत् १२१, और कार्य ३२०,

और काल ११२, और जड पदार्थ

२८३, कार्य-प्रवृत्ति का नियामक

१५६, दार्शनिक १३४, १८६,

धर्म विषयक २५५, नया २१०,

परिवर्तनशील २५५, मानवीय

भावात्मक ३२४, -शक्ति २४१,

शक्ति, उससे आकाश और प्राण की

उत्पत्ति २२, सत् १२१, -सागर

२८३

विज्ञान, आधुनिक २२, ४४, ९५, २८३,

उसका अध्यापक ९५, और अध्या-

त्म-तत्त्व १४६, और कविता ९४,

और धर्म १४ वर्षा १४५  
 अगत् २८४ भौतिक २२ -वाव  
 ४४ -वासी १६६

वित्त-मोह १६५  
 विद्या अपरा २७७ वान ३३८  
 विदुस्सोक २६  
 विषयी ३ ८  
 विषय-संगठन ३६६  
 विधि-नियम सामाजिक ३८६  
 विविधता उसमें एकता २७५ और  
 प्रकृति ८४

विश्वकामन्द ३ ७-८, ३१ ३१२  
 ३१४ ३१७ ३१९ ३२१ ३३  
 ३४ ३३९, ३४ (पा टि)  
 ३४१ ४२, ३४४ ३४६ ४८,  
 ३५१ ५५, ३५८-५९ ३६३ ३६८  
 ३७१-७२ ३७४ ३७८-७९ ३८४-  
 ८५, ३९०-९२, ३९६

विशिष्टाईत २ ८ -वासी २ ९  
 २१५ सम्प्रदाय २ ८

विशेषाधिकार ७  
 विश्व उसका अस्तित्व २३९ उसका  
 इतिहास २७१ उसका उपकार  
 २६६ उसका प्रयोजन २६७  
 उसका समष्टिक्रम अचक २८८  
 उसके मूल में अर्थात् की भाषणा  
 २६३ उसमें ब्रह्म सत्य २१६  
 और अस्तित्व का अस्तित्व २६७  
 -कविता १५३ -वैयता २१३  
 न अण्डा न मुरा ५६७ प्रपंच  
 २९९ ब्रह्माण्ड ३७ ३ १ ब्रह्मा  
 ब्रह्मरूप ३७ भौतिकतया धैतन  
 २३९ -महामिमा ३८३

विश्वाम्ना २९ ९१  
 विश्वास उमन मुक्ति ३२५ और  
 अन्तर्दृष्टि ३२५ और यज्ञा ३५७  
 विषय ८ अनुमति २३ इन्द्रियाणीत  
 १९४ उसकी अर्थमिता १९९  
 ज्ञान की प्रक्रिया ११ जीव ३  
 १३७ १९ ७ १७३ -मौप

वासना १७४ -सविदना ११०  
 -सुख १७६  
 विषयी और वस्तु १२  
 'विषयीकरण' ८८  
 'विषयीकृत' ८८ ९  
 वीरचन्द गांधी ३ ९  
 मून्नाम ३७४  
 वेद ४३-४ ६३ ४ १२३ ३४ १४२,

१७ १७२ १७७ १८१ २३५,  
 २३८ २४३ २५६ २५९, २७७  
 ३२३ ३२९ उनकी बोधना २५९  
 उनकी चरम शिक्षा २१४ उसका  
 अध्ययन १७८ उसका चरम रहस्य  
 ३२७ उसका प्राचीन भाग १६३  
 उसका ब्राह्मण भाग १४२ उसका  
 महस्य १७२ उसका संहिता भाग  
 १६२ उसकी जिज्ञासा आत्मा से  
 २३७ उसमें ईश्वर संबंधी ज्ञान  
 २ ३ उसमें की महिमा १७  
 उसमें महान् शिक्षा २४२ अर्थात्  
 द्वारा रचित १९४ द्वारा अगत्  
 सृष्टि १७२ पवित्र और विज्ञान  
 ३६९ बुद्धिसंगत अंत २५९  
 विभिन्न अर्थों में प्रतिपादित २५९  
 -वेदान्त ३६ शास्त्र २ ३  
 २४२ शास्त्रत आप्त वाक्य २ ३  
 समस्त ज्ञान का केन्द्र १७२ समस्त  
 ज्ञान की समष्टि २५९

वेदान्त ४३ ४ ५३ ६ ६६, ८१-७  
 ८९, ९३-४ १३९ ४ १४८-५  
 १५२, १५७ १६७ १७६ १७९,  
 १८२ १८८, २१२ २१४ २३९,  
 २४८ ४९, २५७-५८ २८२, २८८,  
 २९३ ३५५ अद्वैत ८५, १८७  
 २१७ उसका आध्यात्मिक शिक्षा  
 ६ उसका आरम्भ ८१ उसका  
 उद्देश्य ६१ उसका अर्थ १३७  
 १३९, १४२, १४९, १५३-५४  
 १९ २४६ उमरा कर्म ११  
 ८ उसका शेष २६१ उमरा

दृष्टिकोण ५७, उसका पहला कार्य १३८, उसका पहला सिद्धान्त २४७, उसका प्रारम्भ १५१, उसका मत १७०-७१, १८६, उसका मूल १६८, उसका सिद्धान्त २४६, उसकी भाषा ५७, उसकी शिक्षा ८३, १३९, १५०, उसके ईश्वर विषयक विचार २९६, उसमें, वैराग्य का अर्थ १५०, उसमें सिद्धान्त जीवित २४०, और अद्वैत ६०, तथा प्राच्य दर्शन और धर्म १४४, दर्शन २७, ५२, ७१, २५९, दर्शन, असली २०८, दर्शन और वाद ५२, दर्शन का आदि-अन्त २२१, दर्शन का उद्देश्य २१, दर्शन पर तीन व्याख्यान २०२-३, -धर्म ६८, २८४, धर्म की तीन अवस्थाएँ २४०, मत २५, ३६, ५९, -वादी ४५, व्यक्ति पर आधारित नहीं २४०, सभी धर्मों में सर्वाधिक साहसी ६८

वेदान्ती १४८, १६७, २१४, उनका मत तथा मान्यता २०३, उनके प्रमुख भेद २०३, उसका लक्ष्य ३६, द्वैतवादी २०४, मनीषी १८२, लोग १८३

वैज्ञानिक, आधुनिक ९३, ११६, तथा वाह्य पुस्तक २५१, सिद्धान्त, आधुनिक २१

वैदिक, दर्शन ४५, दार्शनिक ४५, भाषा १००, वाक्य, प्राचीन ९९, विचारक ४५, साहित्य ४३, साहित्य और प्राचीन आचार-व्यवहार १७९

वैराग्य और वैदिक नीति १६५, चूडान्त १५०

व्यक्ति, अज्ञानी १४४, अपने कष्ट का उत्तरदायी २३०, असाधु ३४, ३७२, अस्वस्थ ३५३, उनके गुरु तथा धर्म मन्त्री इच्छा २४९, २-२८

उसका जन्मसिद्ध अधिकार २४४, उसका जीवन-दर्शन और विचार-स्वतन्त्रता २१५, उसका तत्त्वज्ञान १३२, उसका प्रभाव, सवेग पर २४१, उसका भेद, प्रकारगत ८२, उसकी दुःख-प्रतिकार की चेष्टा १४८, उसकी परख ६०, उसके अभ्यन्तर से धर्मोदय २६४, उसके कार्य और विचार की छाया २१७, उसके भीतर स्वर्ग-राज्य १५२, उसके लिए देश का स्वरूप अनजान ९०, और धार्मिक सस्कार २४८, और विचार-प्रभाव ३३, और विश्व की मूलभूत एकता २४९, और सयोग २४४, चिन्तनशील ११३, १८८, जगली १३६, ज्ञानी १७२, तथा राष्ट्र और व्यक्तिभाव ३३८, तीन तत्त्व से निर्मित २१६, दानी ८२, दिशाहीन ४७, धर्मान्ध ५६, ७१, धर्मार्थी २५१, धार्मिक १७४, धैर्यवान और न्याय-पथ ३५०, पवित्र ४०, पूर्ण और उनकी आकांक्षा में अन्तर २२३, पूर्ण, जीवन्मुक्त के लिए ३२, प्रत्येक, एक एक अलग मन ३२, प्राच्य ३१०, भावुक २४८, महा-अवम १८२, विचारशील १०३, विभिन्न स्वभाववाले और साधना २४८, विशाल हृदय ९८, शुद्ध स्वभाव १८३, साधु ४०, ३७२, स्वभावतः मुक्त १८३ (देखिए मनुष्य)

व्यक्तित्व १२-३, १५, २९४, अनन्त १३, आपातप्रतीयमान १५, उसके अभाव का परिज्ञान २३९, - उसको प्राप्त करने के लिए सघर्ष १३, शुद्ध ५३, -भाव १२, मामाजिक ३११

व्यष्टि भाव ९६, -मनुष्य २४  
व्यापार, नैतिक जगत् का १६१, पार-



'शिकागो हेरल्ड' ३४३

शिक्षा, उसका अर्थ ३२८, उसका फल ६३, उसके अवगुण २०, उमके प्रसार की आवश्यकता ३६६, एव धर्म ३२२, और गरीबी ३७०, और सगठन ३७०, -प्रणाली १८९, वडी, भगवान् की २५२, -लाभ ३२०, सामना करने की २९८

शिव १८९-९०, और महत् १९९

शिवनाथ शास्त्री, पंडित ३५४

शिवमहिम्नस्तोत्र ३१८ (पा० टि०)

शिवानन्द, स्वामी ३५९ (देखिए तारक दादा)

शिवोज्ह १३१, १८६, १९०, ३८८

शुभ ४७, ५२, १३७, -अशुभ, विश्व के अग २८६, उसका परिणाम ५१, उसका साधन ४६, उसकी मनोज्ञता २६५, और अशुभ २७, ३८, ५१-४, १७१, २०६, २८५-८६, २९०, और अशुभ का मूल्य वरावर ५७, और अशुभ पृथक् सत्ता नहीं ५३, कर्म २७, ५६, -देवता १३८

शून्य, उससे वस्तु की उत्पत्ति नहीं १०४

शून्यवादी ४-५

शैतान ३३, १५५, १८१, १८९, २०५, और धर्म १८७, जगत् ३३

शैलोपदेश १६७, २७९

श्रद्धा, बौद्धिक ९३

श्रवण १८, -क्रिया १०९

श्रीघर ३०९

श्री माताजी ३३९

श्रुति, ग्रन्थ २३५, वाक्य १४०,

विषयक धारणा १७२

श्रेय और प्रेय १६५

श्रेष्ठ पुरुष, उनकी पूजा २९३

श्वेताश्वत्थरोपनिषद् ४४, ५८ (पा० टि०), १०७ (पा० टि०), २८४ (पा० टि०), ३३७

सगठन, उसका राज ३८२

सघर्ष २२०, शाश्वत, उसकी अभिव्यक्ति २२०

मत, उनका जीवन-चरित्र और साधना २४८, और आन्तरिक पुस्तक, २५१, और द्रष्टा २४९, पॉल ३००, महात्मा २८९

सन्यास ३३३, ३५४

सन्यासी ९३, १८८, ३३८, ३५२,

३९५, और महात्मा १७, और

सम्राट् १०८, नि स्वार्थ परोपकारी

३३८, मच्चा ३५४

सयम, उसकी भावना और ममाज ६४

सयमी पुरुष १३६, ३७२

सयोजक (adhesive) १०१

सवेग, उसका सवघ बुद्धि से अधिक इन्द्रिय से २४१, और व्यक्तित्व २४१

सवेदक नाडी १२७

सशयवादी २७१, २७३

ससार, इन्द्रिय, बुद्धि और युक्ति का

२६३, उसका तथ्यात्मक कथन

६०, उसका वन्धन ५५, उसका

शाब्दिक अर्थ २२०, उसकी परि-

भाषा ६६, उमके सभी मतो मे

सर्वनिष्ठ भाव १८१, उसमे

प्रतिद्वंद्विता १७६, और धर्म ७९,

और प्रयोजन का अर्थ ८१, और स्वर्ग

२११, -क्षेत्र १५५, चमत्कार की

आशा मे २९३, -त्याग २२१, न

अच्छा, न बुरा २६७, परिदृश्यमान

१४६, भयावह ३३३, -वृक्ष १४२,

व्यावहारिक स्तर पर १७५, शुभ

और अशुभ ५२, ६२, मापेक्ष २८८,

मुख और आराम का उपासक २९८,

मुख-दुःख का मिश्रण ५३ (देखिए

जगत्)

'सन्सार माया है' ४४

सम्भार २१७, २१९, उसकी व्याख्या

२५-६, और पुनर्जन्मवाद ११५,

सकट और प्रलोभन १५५



मायिक और धर्म १६६ बुद्धि राज्य  
का १६१ मनोजयत् का १६१  
व्यास ३३७  
व्यासपुत्र ३२९  
व्रत-वासना १६१

संकर ९८ (देखिए संकराचार्य)  
संकराचार्य ९४ मगवान् ४४  
राजिब आकार एवं मौक्तिक इत्यम् २१६  
मान्तरिक उसकी प्रेरणा २५६  
इच्छा १२४ उसका पुनरायी ३१५  
उसकी अभिव्यक्ति १ उसकी  
उपासना ३६१ उसकी कृपा ३६१  
उसकी व्याख्या ९ और भाष्यात्मिक  
आदर्श १९९ और ज्ञान २६ और  
मृत ३५ और महिमा ३ ३  
और छरीर ९ किमाधीक २९  
गुरुत्वाकर्षण ७४ चिन्तन ८९,  
१२७ जगत्प्रयी सर्वव्यापी १२९  
आगतिक १ ७ ज्ञानस्वरूप १२  
तथा नीतिपरामर्श ६४ बुद्धि की  
और सुख-मोह की ५२ द्वारा सन्नि  
प्राप्ति १ ५ द्वारा संसार का उच्चार  
३६१ धर्म की १९१ प्रतिनिधा  
१२७ प्राकृतिक १९१ मौक्तिक  
१२७ मानसिक और उपचार  
३८६ विचार २२ १२७ शास्त्र  
२५३ ३२५ शिवालयक २ १  
सुम एवं असुम ५४ संवृति १२४  
सरीर ५८ २४ ३४ ३८ ६२ ६६  
७६ ९१ १७ ११६ ११८  
१२६ १३४ १५६ १६२, १७१  
१८४ ८५, १९२ ३ २ ४ २२२  
आत्मा का आवरण २१६ आत्मा  
त्मिक ११ उसका अन्त होने पर  
१ ८ उसका अर्थ ११७ उसका  
अन्तर्भाव नष्ट हो ११२ उसका  
राज्य ११ उसकी कति ८६  
उसकी रसा १६ उसकी रचयित्री  
१२७ उसमें उत्पत्ति और अन्तर्पत्ति

११ एक अर्थ में निरव रूप १२५  
एक परिचाम ८५ और आत्मा  
२२९ और इच्छा ८३ और मन  
२४-५, २८ ३० २१७-१८ और  
मन का संघर्ष ११ और मन  
परिचर्जनधीक ११ और विचार  
२८७ और सन्धि ९ और सिद्धांत  
२१ कमी आत्मा नहीं १२७  
-अन्त ११९ अन्त यौगिक नहीं  
२१६ ज्ञान-प्रकाश करने में असमर्थ  
१२८ ज्योतिर्मय १ मन्वर  
२२८ परिवर्तित पर आत्मा नहीं  
२२१ पूर्व कर्म अर्थात् ३६  
मन का विरोधी नहीं २३८ मन में  
विशील २३८ मनस्य अस्मि ३५  
मृत १९२ रसा १५१ रस  
१७२ वैज्ञानिक १२७ सतत  
परिचामधीक जड़ प्रवाह २८  
सूक्ष्म २५ ६, ११ ११२, ११९,  
१३ सूक्ष्म और संस्कार २५  
स्थूल २३ ११ ११२, ११९,  
१२९ स्वप्रकाश नहीं १११

(देखिए बेहू)  
धर्मन श्रीमती ३४१  
धृति ३३४ ३४९, ३६२ ६३  
(देखिए रामकृष्णालय)  
धृति साम्याक ३४८  
धातु उसका अर्थ ३१५  
धातेनहीकर ८६  
धातुत उसका तात्पर्य २४२  
धातु और पुराण ५  
धातु की सिद्धता पंथित ३५४  
शिकागो ३ ७-९ ३१३ १४ ३१९,  
३२२, ३२५, ३३२, ३३४ ३५,  
३४२-४३ ३४६ ४७ ३५२-५४  
३६४ ३६८, ३७१-७२, ३७४  
३७७ ३८३ ३८३ ३९  
शिकागो इन्टीरिबर ३४४  
शिकागो इन्टीरिबर ३४३  
'शिकागो हिरोस' ३२२

'शिकागो हेरल्ड' ३४३  
 शिक्षा, उसका अर्थ ३२८, उसका फल ६३, उसके अवगुण २०, उसके प्रसार की आवश्यकता ३६६, एव धर्म ३२२, और गरीबी ३७०, और सगठन ३७०, -प्रणाली १८९, बडी, भगवान् की २५२, -लाम ३२०, सामना करने की २९८  
 शिव १८९-९०, और महत् १९९  
 शिवनाथ शास्त्री, पंडित ३५४  
 शिवमहिम्नस्तोत्र ३१८ (पा० टि०)  
 शिवानन्द, स्वामी ३५९ (देखिए तारक दादा)  
 शिवोऽह १३१, १८६, १९०, ३८८  
 शुभ ४७, ५२, १३७, -अशुभ, विश्व के अग २८६, उसका परिणाम ५१, उसका साधन ४६, उसकी मनोज्ञता २६५, और अशुभ २७, ३८, ५१-४, १७१, २०६, २८५-८६, २९०, और अशुभ का मूल्य बराबर ५७, और अशुभ पृथक् सत्ता नहीं ५३, कर्म २७, ५६, -देवता १३८  
 शून्य, उससे वस्तु की उत्पत्ति नहीं १०४  
 शून्यवादी ४-५  
 शैतान ३३, १५५, १८१, १८९, २०५, और धर्म १८७, जगत् ३३  
 शैलोपदेश १६७, २७९  
 श्रद्धा, बौद्धिक ९३  
 श्रवण १८, -क्रिया १०९  
 श्रीघर ३०९  
 श्री माताजी ३३९  
 श्रुति, ग्रन्थ २३५, वाक्य १४०, विषयक धारणा १७२  
 श्रेय और प्रेय १६५  
 श्रेष्ठ पुरुष, उनकी पूजा २९३  
 श्वेताश्वतरोपनिषद् ४४, ५८ (पा० टि०), १०७ (पा० टि०), २८४ (पा० टि०), ३३७  
 सकट और प्रलोभन १५५

सगठन, उसका राज ३८२  
 सघर्ष २२०, शाश्वत, उसकी अभिव्यक्ति २२०  
 मत, उनका जीवन-चरित्र और साधना २४८, और आन्तरिक पुस्तक, २५१, और द्रष्टा २४९, पॉल ३००, महात्मा २८९  
 सन्यास ३३३, ३५४  
 सन्यासी ९३, १८८, ३३८, ३५२, ३९५, और महात्मा १७, और सम्राट् १०८, नि स्वार्थ परोपकारी ३३८, सच्चा ३५४  
 सयम, उसकी भावना और समाज ६४  
 सयमी पुरुष १३६, ३७२  
 सयोजक (adhesive) १०१  
 सवेग, उसका सबघ बुद्धि से अधिक इन्द्रिय से २४१, और व्यक्तित्व २४१  
 सवेदक नाडी १२७  
 सशयवादी २७१, २७३  
 ससार, इन्द्रिय, बुद्धि और युक्ति का २६३, उसका तथ्यात्मक कथन ६०, उसका बन्वन ५५, उसका शाब्दिक अर्थ २२०, उसकी परिभाषा ६६, उसके सभी मती में सर्वनिष्ठ भाव १८१, उसमें प्रतिबद्धिता १७६, और धर्म ७९, और प्रयोजन का अर्थ ८१, और स्वर्ग २११, -क्षेत्र १५५, चमत्कार की आशा में २९३, -त्याग २२१, न अच्छा, न बुरा २६७, परिदृश्यमान १४६, भयावह ३३३, -वृक्ष १४२, व्यावहारिक स्तर पर १७५, शुभ और अशुभ ५२, ६२, मापक २८८, मुख और आरामका उपासक २९८, मुख-दुःख का मिश्रण ५३ (देखिए जगत्)  
 'समार माया है' ४४  
 सन्वार २१७, २१९, उनकी व्याख्या २५-६, और पुनर्जन्मवाद ११५,

और शक्ति का समवेत फल २६  
 पूर्व उसका अधिपत्य प्रभाव १७३  
 पूर्व और प्राचीन ११५ मौक्तिक  
 ११७ मन का ११७ मन में ही  
 भाव ११८ मानव-स्वभावमुसम  
 २९४ मामनिक ११७

संस्कृत उसके प्राचीन प्रत्य ६३ माया  
 १ १२८

संज्ञित-शक्ति (adhesion) १२४

संहिता ६ श्रुतेय १९२

सकाम भाव २६

संकेतिस २६४ २७२ और बाह्यन २६४

संक्षिप्तानन्द-सागर २८४

सत्यगुण ५

सती स्त्री १३६

सतीत्व शक्ति की जीवनी शक्ति ५६  
 धर्म ५५

सत् ३८, ४६ ५३ ९९ १ ५, २८ २८२

३ २ जन्म १९५ और अज्ञान

१८२ और असत् १६८ कर्म

३२४ कर्म उसका मूल आधार १५

कर्म उसके फल का मोल २७

कस्तुरा तथा शूल चिन्तन ३८९

कार्य २७ १२१ पशु २५५

-विचार १२१ शारदा २८५

स्वल्प ईश्वर २८५

मन्-चिन्तनानन्द १८२

सत्ता अपरिणामी २९, ३५ अपरिमेय

२ ९ २११ अभीम ५६ ईश्वर

रीम १ ९ केवल एक ३१

जगदीश ३ निरलेख ५४ निर्गुण

नवा मण्डल १९५ पारमाधिक

१२ प्रहृष्ट १८२ भावक २११

मार्बमीनिक उसकी विवेचना ९५

मय माम्यन्तरिक ६ ईश्वर का

महान् नाम २५३ उच्यते १७

७० ४ उनका साधारण और

उत्तम ३८ उगाता २१३

उमकी उत्तम ३५ उमकी शक्ति  
 ५ उमकी शक्ति और मानवता

२७ उसकी जानकारी १८ १४९,

२१३ उसकी जीवन में परिपति

२ उसकी प्रत्यक्षानुभूति २४४

उसकी महत्ता और समान १६

उसकी शिक्षा १८८ उसके बन्धन

का साहस १८ उसके सामन की

विधि २३८ और अज्ञान १५२

और प्राचीन श्रुति ९४ और

मरीचिका ३६ और मिथ्या-मिथन

का प्रश्न ६६ मात ७१ तथा

उच्चतर आदर्श ६५ द्वारा बल-

प्राप्ति ६५, १८८ निरलेख ५१

प्रेरणाशक्ति २६२ भयव्यपत्ति

का फल २५३ महान् ४२ मयार्थ

११ उगातन १५, १ ९ सर्वोच्च

१७ ९७ सार्वभौमिक ५

सवाभाट, उसकी शक्ति में विपदा ३२४

सतत्कुमार २७७

सनातन धर्म ३४३ सत्य १५

सन्ध्या-बन्धन ६

सम्पत्ता एवं शिला ३६४

समर्पण १५

सम-धर्माधिकारी ३८२

समष्टि और आत्मा २४ भाव ९६

मन और ईश्वर २४ शोष १२३

समान उसकी प्रकृति १८ और धर्म

६८ बाह्य ३४३ स्थिति के समूह

का नाम १९७-मुबारक ३२७

३५४ मुबारक ४९, ३६५

सुरस्वरी ३ ९, ३१७

सुर्-पूजा २९२

सुखदरवाही ३२६

सुखिय ईश्वर २८८

सुधीम बल्लु १२

सुहृत् प्रेरणा ११६

सुहृत्पुत्रा उसकी आवश्यता ६४

और कौटुम्बिक मन ७१ और सजी

धर्मी शोचि ७१

सात्य ग्याय और मीमांसा २ ३ -वाही  
 १२८

सुमात्रा द्वीप ३९५  
 सुरेख बालू ३६९ ३७४-७५, ३७८  
 सुपुष्पा ७२ ७६ ७ ७९ ८१ ८८,  
 १३९ उसकी स्थिति साधारण  
 मनुष्य से ७५ ममी ७६ नाडी  
 उस पर विजय पाना आवश्यक  
 ७५ -मार्ग ७६  
 मूत्रकार उसका कथन १३३  
 सूर्य ८ १८ २ ४ १ ६२ ३ ६६  
 ११ १३५, १६ १७२, २३३  
 २३८ २४५-५ २९५, ४११  
 मास्वर १८ -मोक २३३  
 सत्यस्वरूप १७४  
 सुय सिद्धान्त ३४२  
 सृष्टि-उत्पादक ९ उत्पादन-शक्ति  
 २३३ उसका जर्ब ९ उसका न  
 आदि न अस्त ८ उसका ईश्वर  
 समर्थादि मिली २५ उसका  
 कारण २३९ २४८ उसकी आदि  
 वस्तु १६८ उसकी कल्पना  
 बड़ी विविध २२९ उसकी  
 योजना २९७ ३ ३ उसका आदि  
 में आकाश ५८ उसके पूर्व  
 प्रकृति १२६ १६६ -कर्मत्व  
 १३१ कल्प ३३ रचनाकार  
 उसका सिद्धान्त ९५ म्यापाट  
 १२ समग्र उसका नित्य प्रभ  
 १२९  
 सन केयवचन्द्र २९५  
 समष्टिक जाति २७३  
 सैन फ्रांसिस्को २६२  
 सैन बार्न कुमारी \* ८ भी ४ ८  
 सैनिक काव्य २९२ शासन २६२  
 मसीठ २९२  
 सैरा टाका ४ ८  
 माम रत्न २१९, २४ -ता २४  
 माद्रुम् २३८ २५६  
 मोनरि कृति २२५  
 सौर प्रगत् ६५ प्रदेश २३३  
 स्नात-पायक २६४

स्त्री उसका मुख्य धर्म ३९१ -जीवन  
 उसका महान् उद्देश्य ३१२  
 स्नान-पूजा और साधना ५६  
 स्नायविक प्रवाह १९६ -शक्ति  
 प्रवाह १९६  
 स्नायु, उसका मीठर दो प्रकार के प्रवाह  
 ७३ -केन्द्र ८३ -मुक्क-स्तम्भ  
 ७५ आनात्मक और कर्मात्मक  
 ७५ -तनु ७६ -प्रवाह ७५,  
 ७९ -यत्र १६  
 स्वप्न अतिषेवन ७ उष्णतर  
 उसकी भूमि ७ उसके अलग  
 अलग स्तर ७ -श्रेय ७  
 स्वार्ण ३४१  
 स्पनबाले २८१ ३२२ बासी २८  
 स्पेन्सर ३४५ उसका अत्रेय २८८  
 हर्बर्ट ३२  
 स्मरण और भक्ति १ २  
 स्मृति ३३९ उसका जर्ब १४  
 उसकी परिभाषा १२२ २१ एक  
 प्रकारकी वृत्ति १२२ और वितर्क-  
 भूम्य समाधि १४५ और संस्कार  
 २१  
 स्वतन्त्रता माध्यारिक और हिन्दू  
 २८६ राजनीतिक और यूनानी  
 २८६ सामाजिक २८६  
 स्वप्न अनुभूतिकय ७६ उसकी  
 परिभाषा १२२  
 'स्वप्नवृत्तियों' २८४  
 स्वप्नावस्था १६२ और सत्य का  
 ध्यान १६३  
 स्वभाव राष्ट्रीय और विरहभ्यापी ३ ३  
 स्वयम्भुव कर्ण ७५  
 स्वर्ग ५, १ ९, १६४ २ २ ९  
 २३६ २३८ २७५, २९८  
 ३७६ ३८७ ४ ८ मूर्तों का  
 २८६ राज्य ४ ४ राज्य-न्याय  
 ९६ सत्य ३ ५  
 स्वानि-न्याय ८९  
 स्वाधिष्ठा " "

स्वाधीनता, उसको रक्षा के प्रति  
सतर्कता ८६

स्वाध्याय १५१, १७६, सत्त्वशुद्धिकर,  
उसका अर्थ १०२

स्वामी, अखण्डानन्द ३३१, ३५९,  
३६६-६७, अभेदानन्द ३७२,  
ज्ञानानन्द ३७८, प्रेमानन्द ३३८  
(पा० टि०), विवेकानन्द ५  
(पा० टि०), ३३ (पा० टि०),  
२६२, २६३-६५, २६९, २७३,  
३०६, ३२४, ३२५ (पा० टि०),  
३३१ (पा० टि०), ३८७ (पा०  
टि०), सदानन्द ३५८, सारदानन्द  
३७७

स्वार्थ १९५, उसके हटाने पर ईश्वर  
प्रविष्ट ३०१, उसमें समय करने  
से पुरुष का ज्ञान १९४, हर  
मनुष्य में शैतान का अवतार ३०१  
स्वज नहर २८१

हखरत मुहम्मद २९७

हठवर्मिता ४

हठयोग ३६६, उसका उद्देश्य ४९

हठयोगी, उनका एकमात्र लक्ष्य ४९,  
उनका दृढ सत्कल्प ४९

हनुमान २९५

हव्शी ३४१

'हमारे स्वर्गस्थ पिता' ३११

हम्प्री डेवी, सर ६३, उनका कथन ६३

हरवक्स ३८०

हरि ३९२

हरिदास विहारीदास देसाई ३८१-८३,  
३८८-८९, ३९२

हरिद्वार ३३१-३२, ३४९

हरिपद ३९१, मित्र ३९४

हर्वर्ट स्पेन्सर ३२०

हाग काग ३९५-९७

हार्वर्ड और येल विश्वविद्यालय ३२१

हिंसा ४

हिगिन्सन, कर्नल ४१०

हिन्द महासागर २७८

हिन्दुस्तान २२ (देखिए भारतवर्ष)

हिन्दू ३, ६, १३, ८०, २४५-८६,  
२०४, २५६, ३२१, ३२३-२४,  
आदर्श, परमात्मा ३२३, आदर्श-

लीन, उममें दृष्टि का अभाव २९०,  
आधुनिक, उसके जीवन की केन्द्रीय

भावना ३२४, ईमानदार १०;  
उसका कथन ३१३, ३१५, ३२३,  
उसका गुण ३२३, उसका जीवन

२७०, उसका तर्क २७०, उसका  
देश, साधु का ३१६, उसका

दृष्टिकोण ३२३, उसका मूलभूत  
सिद्धान्त २९२, उसका लक्ष्य,  
जगदतीत ३२३, उसका विश्वास

१०, २९९, उसकी आत्म-विज्ञान  
में प्रगति २९०, उसकी आत्मा का

आतुर स्वभाव २७७, उसकी आरा-

धना और वाह्य प्रतीक १७,  
उसकी दृष्टि १८, उसकी

दृष्टि में धर्म-जगत् १९, उसकी  
धर्म-भावना १७, उसकी प्रवृत्ति

२७५, उसकी विशेषता २८३,  
उसकी सावना-प्रणाली का लक्ष्य

१५; उसके धर्म की शिक्षा ३१८,  
उसके धार्मिक विचार की रूप-रेखा

२०, उसके मन में 'स्त्री' शब्द  
३०९, उसके लिए 'माता' शब्द

३११, उसमें सामाजिक प्रधानता  
२७४, उसे अपने धर्म की आवश्यक-

कता २८३, उसे त्रिमूर्ति में विश्वास  
२८१, ऋषि १४, एक विचित्र

व्यक्ति २७०, और ईमा का जीवन  
२८४, और देवमूर्ति का उदाहरण

१६, और भाव का सबब, मूर्ति  
से १७, कट्टर ३८५, चतुर २८२,  
चित्त २९०, जाति ७, जीवन,

उसकी बड़ी समस्या, कन्या ३१८,  
जीवन और अन्वविश्वास २५१,  
तन्त्रज्ञान और दर्शन के अनुसार,

विश्व २४७ वर्तन ३ ६  
 वेद उसका विधि-रीति-रिवाज  
 ३२ धर्म ७ १९९, २५४  
 २८९ ३ ३४ ३८३ ४ १ ३  
 धर्म सामुनिक ३ २ ३२५  
 धर्म उसका अर्थ २६१ धर्म  
 उसका तत्त्व ३२५ (पा टि )  
 धर्म उसका मूलभूत सिद्धान्त १४  
 धर्म उसकी विधेयता २८७ धर्म  
 उद्भूती सारभूत बातें २८७ धर्म  
 उसके अनुसार समाज का आदर्श  
 ३१९ धर्म उसके दो मान २३  
 धर्म उसके संबंध में सत्य बात  
 २८८ धर्म उससे तात्पर्य २३  
 धर्म और बौद्ध धर्म २८८ ४ ३  
 धर्म-ग्रन्थ उस पर आस्था आष  
 स्पक २८३ धर्म वर्तमान और  
 बुद्धधर्म ३ २ नाटक २८१  
 मारी २४ ३२५ मारी उसके  
 जीवन की केन्द्रीय भावना ३२३  
 बालक ८ २७६ बाबिका ३२२  
 मन २४६ मन उसकी विधेयता  
 ५९ मनोविज्ञानशास्त्र उसकी  
 गति २३ मठिक उसका मुद्राव  
 ३८४ माता ३११ रीति-रिवाज

३१७ सोम १९२ २४३ २६  
 बस्ता २६५ बिबाह, उसका विधय  
 ३१३ विधवा ३२४ विज्ञान  
 २६७ संघाती २६७ २७७  
 संस्कृति ३२१ सन्त उनका कथन  
 २८३ समाजपरक ३१४ स्त्री  
 ३२१ ३२४ २५ स्त्री-मुख्य  
 उनका सामाजिक जीवन ३१९  
 'हिन्दू ईसा' २८४  
 हिन्दू उनका सिनाय पर्वत २८६  
 हिमाक्षय १३ २९३ ३३६ ३७९,  
 ४१ माखीय धर्म का २८६  
 'हु' बीज का चिह्नन २२२  
 हृदय-यत्र ४९  
 हृपीकेय ३५३-५४ ३५९, ३६४ ३६८  
 हेनेक २५३ ३६४  
 हेनरी १९  
 'हेनोबिज़म' २४३  
 हेल्ड्स ३४१  
 हेरराबार ३८२ ३८६  
 हेमसेट ३८८  
 हेरक बस्त ९६  
 हेटक मोरियेष्टक ३९४  
 होम ३५५  
 होमिबोपिक चिकित्सा ३३५







.. स्वामी विवेकानन्द की यही अनुभूति है, जिसने उन्हें कर्मयोग का महान् प्रचारक सिद्ध किया, जो ज्ञान-भक्ति से अलग नहीं वरन् उन्हें अभिव्यक्त करने-वाला है। उनके लिए कारखाना, अध्ययन-कक्ष, मैदान, खेत आदि भगवान् के साक्षात्कार के वैसे ही उत्तम और योग्य क्षेत्र हैं जैसे साधु की गुफ़ा या मन्दिर का महाद्वार। उनके लिए मानव की सेवा और ईश्वर की पूजा, पौरुष तथा श्रद्धा, सच्चे नैतिक बल और आध्यात्मिकता में कोई अन्तर नहीं है।

अपने गुरुदेव के जीवन और व्यक्तित्व में संक्षिप्त किन्तु सशक्त प्रतीक के समान जिस परिपूर्णता के दर्शन हुए थे उसकी व्याप्ति का अनुभव पाने के लिए कन्या-कुमारी से हिमालय तक समग्र भारत का भ्रमण करना, सर्वत्र साधु-सत, विद्वान् और साधारण लोगों से सम भाव से मिलना, सबसे शिक्षा ग्रहण करना और सबको उपदेश देना, सबके साथ जीवन बिताना और भारत के अतीत और वर्तमान का यथार्थ परिवय प्राप्त करना अनिवार्य था।

इस प्रकार विवेकानन्द की कृतियों का सगीत शास्त्र, गुरु तथा मातृभूमि—इन तीन स्वर-लहरियों से निर्मित हुआ है। उनके पास देने योग्य यही निधि थी। इन्हीं से उन्हें वे उपकरण मिले जिनसे विश्व-विकार को दूर करनेवाली आध्यात्मिक सम्पत्ति का परिपाक उन्होंने प्रस्तुत किया। १९ सितम्बर, १८९३ ई० से ४ जुलाई, १९०२ ई० तक कार्य की अल्पावधि में भारत ने अपनी तथा विश्व की संतति के पथ-प्रदर्शन के लिए उनके हाथों से जो एक दीप प्रज्वलित एवं प्रतिष्ठित कराया उसके भीतर ये ही तीन दीपशिखाएं प्रोज्ज्वल हैं। इसमें से अनेक इसी प्रकाश और अपने पीछे छोड़ी गयी उनकी कृतियों के लिए उनको जन्म देनेवाली पुण्यभूमि को, तथा जिन अदृश्य शक्तियों ने उन्हें विश्व में भेजा, उनको धन्य कहते हैं और विश्वास करते हैं कि उनके महान् संदेश की व्यापकता एवं सार्थकता का मर्म जानने में हम असमर्थ रहे हैं।